# अष्टपाहुड
## अमृत
## भाग ३

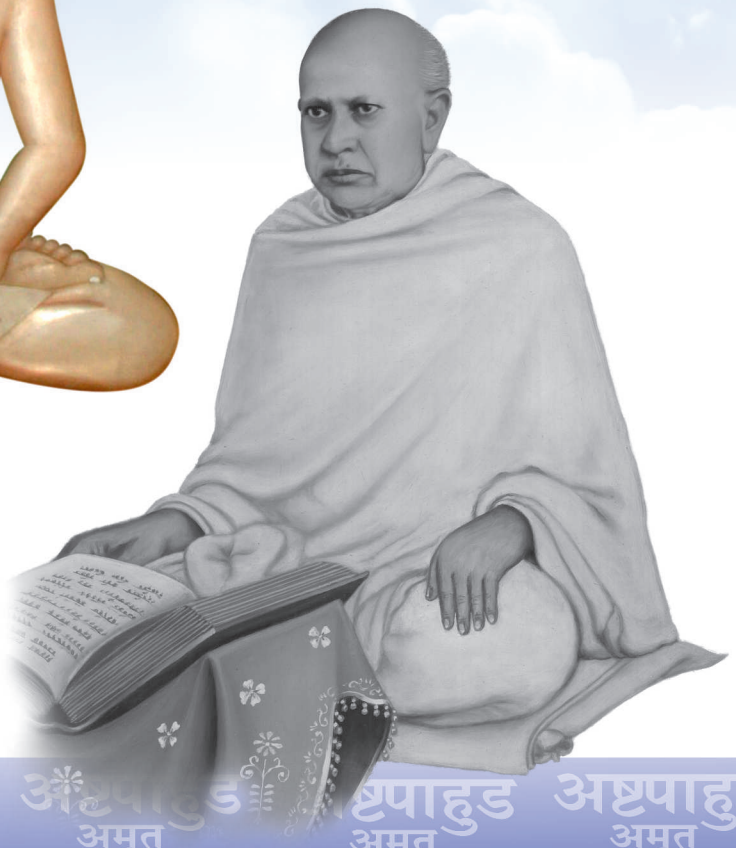

अष्टपाहुड अमृत

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

# अष्टपाहुड़ अमृत

## (भाग-3)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम श्री अष्टपाहुड़
पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1973-74 में हुए शब्दशः प्रवचन
बोधपाहुड़, गाथा 1 से 62; भावपाहुड़, गाथा 1 से 67
प्रवचन नं. 62 से 99; प्रवचन नं. 180-183


: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा ( राज. )



: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ ( सौराष्ट्र ) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले ( वेस्ट ), मुम्बई-400 056

फोन : ( 022 ) 26130820

| विक्रम संवत | वीर संवत | ई. सन |
|---|---|---|
| 2080 | 2550 | 2024 |

**—: प्रकाशन :—**

**वीरशासन जयन्ती के अवसर पर**

श्रावण कृष्ण 1, दिनांक, 22 जुलाई 2024

के अवसर पर

**—: प्राप्ति स्थान :—**

**1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

**2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

**विवेक कम्प्यूटर**

अलीगढ़।

# प्रकाशकीय

**मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।**
**मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥**

उपरोक्त मंगलाचरण में शासननायक महावीरस्वामी के पश्चात् श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके जिन्हें तीसरे नम्बर पर नमस्कार किया गया है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव वर्तमान जैनशासन के शासनस्तम्भ हैं, जिन्होंने मूल मोक्षमार्ग को शास्त्रों में जीवन्त रखकर अनेकानेक भव्य जीवों पर असीम उपकार किया है। वर्तमान जैनसमाज श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव से सुचारूरूप से परिचित है ही, तथापि उनके प्रति भक्ति से प्रेरित होकर उनके प्रति उपकार व्यक्त किये बिना नहीं रह जा सकता।

आपश्री ने स्वयं की अनुभवगर्भित कलम द्वारा निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप कैसा होता है, उसे भाववाहीरूप से अनेक परमागमों में प्रसिद्ध किया है। जंगल में रहकर स्वरूप आराधना में लीन रहते-रहते, केवलज्ञान की तलहटी में पहुँचकर, स्वसंवेदनमयी प्रचुर स्वसंवेदन में रहकर पवित्र मोक्षमार्ग प्रसिद्ध किया है। अनुभवप्रमाण वह सबसे बलवान प्रमाण गिनने में आया है, जो आपके प्रत्येक वचन में प्रसिद्ध हो रहा है। अनेक महान आचार्यों ने भी आपका उपकार व्यक्त करके कहा है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यदि इस काल में मोक्षमार्ग को प्रसिद्ध न किया होता तो हम मोक्षमार्ग को किस प्रकार प्राप्त कर सकते?

संवत् 49 में विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धरस्वामी की दिव्य देशना को प्रत्यक्ष सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर आपने अनेक परमागमों की रचना की है। पंच परमागम वर्तमान जैनसमाज में प्रसिद्ध हैं। उसमें अष्टपाहुड़ ग्रन्थ भी समाविष्ट है। अष्टपाहुड़ ग्रन्थ की रचना देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ दार्शनिक दृष्टिकोण से रचा गया है। आठ अधिकार (पाहुड़) की रचना में प्रत्येक में भिन्न-भिन्न विषयानुसार सूत्रों की रचना की गयी है। प्रत्येक अधिकार में वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करके विपरीत अभिप्राय किस प्रकार के होते हैं और उनका क्या फल आता है तथा सम्यक् अभिप्राय का फल क्या आता है, उसका स्पष्ट चित्रण कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने चित्रित किया है।

शास्त्रों में तो आचार्य भगवन्तों ने निष्कारण करुणा से भव्य जीवों के हित के लिये रचना तो की है परन्तु वर्तमान दुषमकाल में उसका भाव समझना अत्यन्त विकट हो गया था और विपरीत अभिप्रायों की प्रचलितता और रूढ़िवाद में समाज जब डूबा हुआ था, ऐसे कलिकाल में, विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना को साक्षात् सुनकर भरतक्षेत्र में पधारनेवाले भावितीर्थाधिनाथ परमकृपालु सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सूर्य समान अवतार, मुमुक्षु जीवों के मिथ्यात्व-अन्धकार को मिटाने के लिये हुआ। अनेक रूढ़िचुस्तता, मिथ्या अभिप्राय, क्रियाकाण्ड में मोक्षमार्ग समझकर, मानकर उसकी आराधना चलती थी, उसमें पूज्य गुरुदेवश्री ने निष्कारण करुणा से शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की अन्तरखोज द्वारा तथा श्रुतज्ञान की लब्धि द्वारा सत्य मोक्षमार्ग का स्वरूप खुल्ला किया। पूज्य गुरुदेवश्री ने 45 वर्ष तक अनेक परमागमों पर प्रवचन किये, जिसमें अनेकानेक सिद्धान्तों को प्रसिद्ध करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रसिद्ध किया। प्रत्येक प्रवचनों में आत्मा का मूलभूत स्वरूप, निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग का स्वरूप, मुमुक्षुता, सिद्धान्तिक वस्तु का स्वरूप, मुनिदशा का स्वरूप, निमित्त-उपादान का स्वरूप, सर्वज्ञ का स्वरूप इत्यादि अनेक विषयों को स्पष्ट करके कहीं भ्रान्ति न रहे, इस प्रकार से प्रकाशित किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को अक्षरशः प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होना, वह इस मनुष्य जीवन का अमूल्य आनन्द भरपूर अवसर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अष्टपाहुड़ परमागम पर, ई.स. 1973-74 में हुए प्रवचनों को प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन शृंखला के तृतीय भाग में बोधपाहुड़ की गाथा - 1 से 62 तथा भावपाहुड़ की गाथा- 1 से 67 तक के प्रवचन क्रमांक-62 से 99 तथा प्रवचन क्रमांक 180 से 183 तक का समावेश किया गया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इसी अष्टपाहुड़ परमागम पर ई.स. 1970-71 में हुए प्रवचनों का शब्दशः प्रकाशन 'अष्टपाहुड़ प्रवचन' भाग 1 से 7 तक पूर्व में गुजराती एवं हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा चुका है। तथा सन् 1952 में हुए प्रवचन दैनिक 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' में उपलब्ध हैं, जिसका पहला भाग संकलित प्रवचन के रूप में 'अष्टपाहुड़ प्रवचन, भाग-1' पूर्व में इसी संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में संग्रहित करने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हाल कर रखा, तदर्थ उसके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट

(vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन लें, कि जिससे यह वाणी शाश्वत् विद्यमान रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवतीमाता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं।

समस्त प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स, भावनगर द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारूलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर सके, इस उद्देश्य से प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि आपको कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का अनुग्रह करें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ vitragvani.com पर शास्त्र-भण्डार, गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन के अन्तर्गत तथा vitragvani (app) पर भी उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधें, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,
**श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,**
विले पार्ला, मुम्बई

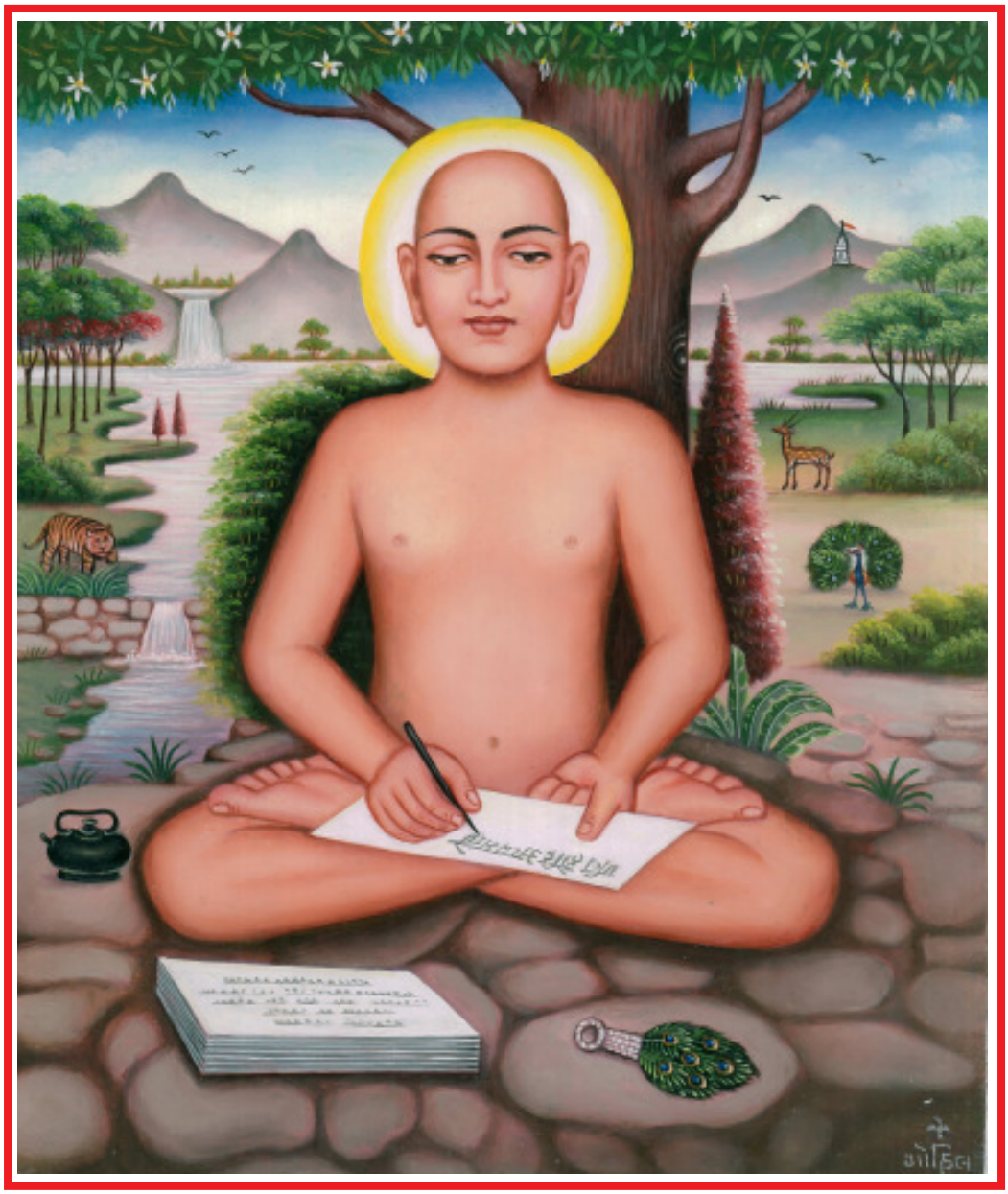

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

# अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

## ( संक्षिप्त जीवनवृत्त )

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

**शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

**आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

# अनुक्रमणिका


| प्रवचन क्रमांक | दिनांक | गाथा | पृष्ठ नम्बर |
|---|---|---|---|
| ६२ | ०८-१२-१९७३ | बोधपाहुड़ १ से ५ | १ |
| ६३ | ०९-१२-१९७३ | ६-७ | १९ |
| ६४ | १०-१२-१९७३ | ८ से १० | ३७ |
| ६५ | १२-१२-१९७३ | १० से १४ | ५४ |
| ६६ | १३-१२-१९७३ | १४ - १५ | ७१ |
| ६७ | १४-१२-१९७३ | १६ - १७ | ८७ |
| ६८ | १५-१२-१९७३ | १८ से २१ | १०३ |
| ६९ | १६-१२-१९७३ | २२ - २३ | ११८ |
| ७० | १७-१२-१९७३ | २३ से २५ | १३३ |
| ७१ | १९-१२-१९७३ | २५ से २७ | १४९ |
| ७२ | २०-१२-१९७३ | २८ से ३२ | १६५ |
| ७३ | २१-१२-१९७३ | ३२ से ३६ | १८२ |
| ७४ | २२-१२-१९७३ | ३६ से ४१ | १९९ |
| ७५ | २३-१२-१९७३ | ४१ | आवाज खराब है। |
| ७६ | २६-१२-१९७३ | ४२ से ४६ | २१६ |
| ७७ | २७-१२-१९७३ | ४६ से ४९ | २३२ |
| ७८ | २८-१२-१९७३ | ५० से ५२ | २४८ |
| ७९ | २९-१२-१९७३ | ५३ से ५५ | २६४ |
| ८० | ३०-१२-१९७३ | ५६ से ५९ | २७८ |
| ८१ | ०५-०१-१९७४ | ६० | २९४ |
| ८२ | ०६-०१-१९७४ | ६० - ६१ | ३१० |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८३ | ०७–०१–१९७४ | ६२,<br>भावपाहुड़, गाथा–१ | ३२७ |
| ८४ | ०९–०१–१९७४ | १ – २ | ३४३ |
| ८५ | १०–०१–१९७४ | २ | ३५७ |
| ८६ | ११–०१–१९७४ | ३ से ५ | ३७१ |
| ८७ | १२–०१–१९७४ | ६ से ८ | ३८६ |
| ८८ | १३–०१–१९७४ | ९ से १२ | ४०० |
| ८९ | १५–०१–१९७४ | १३ से १८ | ४१४ |
| ९० | १६–०१–१९७४ | १९ से २७ | ४३० |
| ९१ | १७–०१–१९७४ | २५ से ३१ | ४४६ |
| ९२ | १८–०१–१९७४ | ३२ से ३४ | ४६१ |
| १८० | २२–०६–१९७४ | १६२ से १६४, ३५ से ३७ | ४७७ |
| १८१ | २३–०६–१९७४ | ३७ से ४१ | ४९० |
| १८२ | २४–०६–१९७४ | ४२ से ४५ | ५०६ |
| १८३ | २६–०६–१९७४ | ४६ से ५० | ५२३ |
| ९३ | १९–०१–१९७४ | ५१ से ५३ | ५४० |
| ९४ | २०–०१–१९७४ | ५४ से ५६ | ५५४ |
| ९५ | २१–०१–१९७४ | ५६ से ५८ | ५६९ |
| ९६ | २२–०१–१९७४ | ५८ – ५९ | ५८४ |
| ९७ | २४–०१–१९७४ | ५९ से ६२ | ५९९ |
| ९८ | २५–०१–१९७४ | ६२ से ६४ | ६१५ |
| ९९ | २६–०१–१९७४ | ६४ से ६७ | ६२९ |

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

# अष्टपाहुड़ अमृत

( श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९७३-७४ के प्रवचन )

## —४—
## बोधपाहुड़

मगसिर शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक-०८-१२-१९७३
गाथा - १ से ५, प्रवचन-६२

बोधपाहुड़ है, यह अष्टपाहुड़ में। तीन भाग पूरे हो गये। दर्शनप्राभृत, सूत्रप्राभृत और चारित्र (प्राभृत)। बोधपाहुड़ चौथा है। दोहा।

**देव जिनेश्वर सर्व गुरु, वंदूं मन-वच-काय।**
**जा प्रसाद भवि बोध ले, पालैं जीव निकाय॥१॥**

जिनेश्वरदेव और सर्वगुरु। आचार्य, उपाध्याय आदि पंच परमेष्ठी लिये। '**वंदूं मन-वच-काय**' मन, वचन और काया से वन्दन करता हूँ। वचनिकाकार पण्डित जयचन्दजी ऐसा वन्दन करते हैं। '**जा प्रसाद भवि बोध ले**' जिस प्रसाद से भविजन बोधपाहुड़ का सच्चा बोध ले। यह सब निश्चय अधिकार लेंगे। क्योंकि बाहर में वे लोग मन्दिर और आयतन और बाहर के बनाये हुए न श्वेताम्बर आदि। वह आयतन तो नहीं परन्तु निश्चय आयतन आत्मा है और उसके जैसा बाह्य यह व्यवहार हो तो व्यवहार आयतन है। यह बताने के लिये यह है। समझ में आया?

निश्चय आयतन आदि आत्मा की दशा वीतरागी मुनि, वह जैनदर्शन और वह जैन आयतन है। उस तत्त्व की दृष्टि भूलकर बाहर मुनि का वेश लिया, वेश वस्त्र और बाहर में वीतराग की मूर्ति को दूसरे प्रकार से स्थापित करके किया, वह वस्तु से विपरीत बात यह करते हैं। आयतन, वह आत्मा का आयतन आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध ऐसे मुनिराज, वे धर्म के आयतन हैं। समझ में आया? वैसे तो देव-गुरु-शास्त्र व्यवहार आयतन कहे हैं।

**मुमुक्षु :** अपना आत्मा आयतन नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह अपना आत्मा ही आयतन है। वह व्यवहार डाले हैं उन्हें ऐसा। वह व्यवहार था सही, परन्तु सम्प्रदाय में वह व्यवहार दूसरा कर डाला। इसलिए निश्चय बताकर उसके जैसा व्यवहार हो, ऐसा बताने के लिये है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार है सही, परन्तु ऐसा। मुनि जिसे ... प्रतिमा आदि आयतन सब मुनिदशा को ही कहते हैं। निर्ग्रन्थ मुनि वस्त्ररहित, अन्तर तीन कषाय का अभाव और वीतरागी मुद्रा, जिन्हें अन्तर में आनन्द की प्रगट हुई है। उन्हें यहाँ मुद्रा और जिनप्रतिमा कहेंगे निश्चय से; और ऐसी ही व्यवहार प्रतिमा हो बाहर, उसे व्यवहार कहेंगे। इसके अतिरिक्त का जो अकेला व्यवहार करता है, प्रतिमा और यह गहने और यह वस्त्र, वह जैनदर्शन की पद्धति नहीं है।

**मुमुक्षु :** विपरीत है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विपरीत है। यह क्या तुम्हारे वहाँ सब हुआ है न। यह इकट्ठे हैं और भाई को... थे। आहाहा! आचार्य का हृदय यह है कि जिसे पूरा मुनिपना जैनदर्शन जो बाह्य नग्नदशा थी, अन्तर में अट्ठाईस मूलगुण विकल्प था व्यवहार, निश्चय में वीतरागता—तीन कषाय के अभाव की वीतरागता थी। उसे जैनदर्शन कहते हैं, उसे जैन का आयतन—धर्मस्थान कहते हैं। वह फिर मुनिपना कर डाला, वस्त्र-पात्रसहित मुनिपना मनाया और भगवान की प्रतिमा को भी आँगी और.... यह सब तत्त्व से विरुद्ध था, इसलिए यह बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने वर्णन की है। समझ में आया?

दिगम्बर मुनि जो है भावलिंगी जो अन्तर में छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं,

जिनकी दशा अन्दर में आनन्द का उफान अन्दर आता है। उनकी दशा, पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नदशा, उसे यहाँ जैनदर्शन और जैन का आयतन—धर्म का स्थान उसे कहते हैं। अकेला धर्म का स्थान बाहर बनावे, वह बताते हैं कि निश्चय ऐसा हो, उसका व्यवहार ऐसा ही सामने होता है। भगवान की प्रतिमा भी नग्न दिगम्बर वस्त्ररहित। और ऊपर गहने और वस्त्र नहीं होते। इसलिए यह निश्चय बताकर ऐसा उसका सामने व्यवहार होता है, ऐसा बताते हैं। दूसरा व्यवहार जो खोटा था और मुनिपना जो खोटा मानते थे, उन दोनों को इसमें उत्थापित करते हैं। हसुभाई! बहुत सूक्ष्म बातें। पूरे तत्त्व की बात है यह तो।

**'जा प्रसाद भवि बोध ले, पालैं जीव निकाय।'** वापस वह छहकाय के उसमें जरा हिंसा होती है न व्यवहार में तो। तो निश्चय में तो सजीव एकेन्द्रिय पृथ्वी की भी हिंसा नहीं होती, ऐसा। आहाहा! अब इसमें थोड़ा सावद्य लेशा भगवान की मूर्ति, प्रतिमा बनावे, उसमें थोड़ा तो पाप तो सावद्य है। पुण्य होगा शुभभाव से। इसलिए यह बताया है। उसमें छह काय के जीव का पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति। उनके जीव को जरा भी दुःख न हो, हिंसा न हो। ऐसा जीवनिकाय पालन करे। पाठ में है जीवनिकाय। है न **'छक्कायसुहंकरं'** उसका यह स्वयं ने डाला है।

**मुमुक्षु :** **'छक्कायसुहंकरं'** अन्तिम बोल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह। हाँ, अन्तिम बोल। यह जीवनिकाय। आहाहा! जिसमें पानी की एक बूँद भी घात हो... यह वीतरागमार्ग है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र के लिये भी एकेन्द्रिय जीव की हिंसा हो, वह कैसे पले? फिर स्पष्टीकरण करेंगे। छह काय के हितकर तो यह दशा आत्मा की है। यह छह काय की हितकर है। जिसमें एकेन्द्रिय जीव को भी पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति को भी जरा... आहाहा! ऐसे संयमी मुनि, वे धर्म के स्थान, धर्म के आयतन और धर्म की मुद्रा है। ऐसा मार्ग वीतराग का। यह बोधपाहुड़ आया। यह तुम्हारे मुहूर्त करना है न! परमागममन्दिर, देखो! वीतराग की वाणी है यह सब। सर्वज्ञ के अनुसार की वाणी है। उसका यह आयतन, पहले में पहला यह व्यवहार आयतन होता है। निश्चय आयतन आत्मा है।

**मुमुक्षु :** यह तो पहला हो, तब व्यवहार कहे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तब कहे। इसलिए कहा न? निश्चय तो भगवान आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित चीज़, उसकी परिणति जो शुद्ध चैतन्यघन की, वह वास्तविक आयतन, धर्म का स्थान। उसके सामने ऐसा व्यवहार होता है। वह शुभभाव का निमित्त है, इतनी बात है। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - १-२

**इस प्रकार मंगलाचरण के द्वारा श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथाबद्ध बोधपाहुड़ की देशभाषामय...** प्रचलित भाषा। उसका **हिन्दी भाषानुवाद लिखते हैं, पहिले आचार्य ग्रन्थ करने की मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं:**—आचार्य महाराज स्वयं कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवान के पास जाकर आठ दिन रहे थे। आकर यह सब बनाया है।

**बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे।**
**वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे॥१॥**
**सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।**
**वोच्छामि समासेण छक्कायसुहंकरं सुणहं॥२॥**

सकलजन के बोध के लिये कहा है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा स्वयं फरमाते हैं। जिन के मार्ग में। आहाहा! यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने मांगलिक किया।

**अर्थ :— आचार्य कहते हैं कि मैं आचार्यों को नमस्कार कर,...** गणधरदेव से लेकर अपने गुरु तक के आचार्यों को नमस्कार। अर्थ में आयेगा। अर्थ में करेंगे। बोधपाहुड़ रचना (करने से) पहले यह बहुत गणधर से लेकर अपने धर्मगुरु को नमस्कार करके। आहाहा! **छहकाय के जीवों को सुख के करनेवाले,...** छह काय के जीव को सुख का करनेवाला यह बोधपाहुड़। धर्मी को भी सुख का करनेवाला और छह काय के किसी भी जीव को दुःख न हो, ऐसे सुख का करनेवाला। आहाहा!

**जिनमार्ग में....** वीतरागमार्ग में। वीतरागमार्ग यह। दिगम्बर दर्शन, वह दिगम्बर, वह जैनदर्शन, वह जैनमार्ग। समझ में आया? आहाहा! यह सनातन सत्य परमात्मा का

त्रिलोकनाथ वीतराग ने कहा हुआ वह जैनमार्ग यह है। आहाहा! वह **जिनदेव ने जैसे कहा...** जिनमार्ग में जिनदेव ने जो कहा। यह निश्चयस्वरूप जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा है। व्यवहार में आवे तब ऐसा कहे, वह व्यवहार भी भगवान ने कहा है। निश्चय से भगवान ने यह कहा है। आहाहा! प्रतिमा और मूर्ति, वह भगवान आत्मा स्वयं, निर्विकारीदशा, वह जिनप्रतिमा है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यगृह, वह भी कहेंगे। आनन्द का घर वीतरागमूर्ति आत्मा, वह चैतन्य का घर है और वह जिनप्रतिमा है। ऐसा जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा है। समझ में आया?

**जिनदेव ने जैसे कहा है वैसे, जिसमें समस्त लोक के हित का ही प्रयोजन है...** लो! '**सयलजणबोहणत्थं**' सब आत्मा के हित का जिसमें कथन है, प्रयोजन है। सर्व लोक के हित का प्रयोजन है। **ऐसा ग्रन्थ संक्षेप में कहूँगा,...** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि ऐसा ग्रन्थ मैं संक्षेप से थोड़ा कहूँगा। सन्तों ने तो पूर्व में बहुत कहा है, परन्तु उसमें से थोड़ी वानगी कहूँगा, कहते हैं। वानगी समझते हो? नमूना। यह वानगी नहीं? चावल-बावल होते हैं। **उसको हे भव्य जीवो!** आहाहा! '**सुणहं**' है न शब्द? '**वोच्छामि सुणहं**' सुनो कहते हैं न? **हे भव्य जीवो! तुम सुनो।** आहाहा! सम्बोधन में भी है न! और सुनना कहे, और कहे कि सुनने से पुण्य-विकल्प बँधता है। तब वह होता है न!

**मुमुक्षु :** रास्ते में जाये तो कोई खड्डा बताये तो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बताते हैं। ऐई! चेतनजी! वह आया है न उसमें? सुनना, वाँचना, वह सब बन्ध का कारण है। वह बात भी आये बिना रहे नहीं। बीच में उस वचन को सुनना। सुनो, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा। आहाहा! ऐसा उज्ज्वल मार्ग दिगम्बर धर्म। यह जिनदेव ने जिनमार्ग में कहा है। समझ में आया? आहाहा!

**जिन आचार्यों की वन्दना की, वे आचार्य कैसे हैं?** अपने गणधर से लेकर... आता है न अपने? भाई! (समयसार की) पाँचवीं गाथा। पाँचवीं गाथा में। ओहोहो! वहाँ तो सर्वज्ञ से लिया। सर्वज्ञ से। यहाँ गणधर से लिया। आचार्य लिये हैं न? आचार्य। **जिन आचार्यों की वन्दना की, वे आचार्य कैसे हैं? बहुत शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले**

**हैं,...** बहुत शास्त्रों के अर्थ के जाननेवाले होते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** इतने पढ़े तो राग नहीं होता होगा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह राग है, परन्तु वापस अन्दर स्वभाव के लक्ष्य से है न? आहाहा! नहीं कहा अमृतचन्द्राचार्य ने? मैं यह समयसार की टीका करूँगा, उसमें मेरी शुद्धि बढ़ना। ऐसा कहा है, हों! समयसार। तीसरा श्लोक—तीसरा कलश। समयसार की टीका करते हुए मेरी (परमविशुद्धि होओ)... इसका अर्थ कि मेरा झुकाव, मेरा ध्येय तो द्रव्यस्वभाव के ऊपर है। आहाहा! उसके लक्ष्य से यह मेरी टीका होती है। उसके लक्ष्य की शुद्धि बढ़ने से मुझे निर्जरा हो जायेगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यह स्वभाव के आश्रय का जितना घोलन है, उस अपेक्षा से। बीच में शुभ विकल्प आवे, उसका तो बन्ध है। आहाहा! यह अपेक्षायें न जाने और शुभभाव से निर्जरा माने, वह सब गड़बड़ है। वह जैनमार्ग नहीं। जैनमार्ग तो राग का पोषण नहीं करता और वीतराग का पोषण करे, वह जैनमार्ग है। राग हो, उसे बतलावे। परन्तु राग से लाभ होता है, ऐसा पोषण जैनमार्ग में नहीं होता। राग से लाभ माने, मनावे, वह जैनमार्ग नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**बहुत शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले हैं, जिनका तपश्चरण ( मुनिपना ) सम्यक्त्व और संयम से शुद्ध है,...** तपश्चरण अर्थात् मुनिपना। जिनकी मुनिदशा। आचार्य उसे कहते हैं। जिसे समकित हो और संयम (हो)। समकित से शुद्ध हो और संयम से शुद्ध हो। आहाहा! पूर्ण आनन्द का नाथ जिसे सम्यग्दर्शन में, अनुभव में आ गया है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है। सच्चिदानन्द आत्मा, शाश्वत् आनन्द का स्वरूप भगवान आत्मा, उसका जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है। आहाहा! जिसने ऐसे आत्मा को देखा है अर्थात् जाना है और माना है। आहाहा! उसे वह मुनिपना ऐसे समकितसहित होता है। समकित न हो और मुनिपना आ जाये, (ऐसा नहीं होता)। आहाहा! समझ में आया?

और तदुपरान्त संयम से शुद्ध हो। समकित से शुद्ध हो, संयम से शुद्ध हो। जिसे पाँच इन्द्रिय, मन और छह काय के प्राणियों की हिंसा से निवृत्ति की संयमदशा प्रगट हुई। देखो, यह जैनमार्ग का मुनिपना। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्होंने एक

समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसे परमात्मा की वाणी में (आया कि) जैनमार्ग के आचार्य ऐसे होते हैं। कहो, समझ में आया? वे कहते हैं न, णमो लोए सव्वसाहूणं। उसमें कहाँ कहा है जैन के साधु? ऐसा कहते हैं। अरे, भगवान! जैन, वह कोई सम्प्रदाय नहीं। वह राग और द्वेष और अज्ञान को नष्ट करके वीतरागता और सर्वज्ञपना प्रगटे, यह उसे अनुभव की दृष्टि के माननेवाले, वे जैन। आहाहा!

वस्तु का स्वरूप ही जैन अर्थात् वीतरागस्वरूप जिन है। आत्मा ही अकषायस्वरूप वीतरागमूर्ति निर्दोष अर्थात् दोषरहित निर्दोषमूर्ति आत्मा है। ऐसा जो निर्दोष आत्मा, वह दोष को टालकर निर्दोष की पर्याय प्रगट करे, वह जैन। यह तो वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? गजब! आत्मा प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है। इसे खबर कहाँ है? अन्दर भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। ऐसी अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति में जिसे सम्यग्दर्शन में स्वाद आया है। आहाहा! और तदुपरान्त चारित्र के उग्र आनन्द का स्वाद जिसे आया है, उसे यहाँ आचार्य और मुनि कहा जाता है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द से भरपूर, पूर्ण ज्ञान से भरपूर। आहाहा! अनन्त गुण। भाव आया है न? अनन्त भाव सामर्थ्य जिसका अन्दर पड़ा है। उसकी जिसे अनुभव की दृष्टि हुई है और जिसे अन्तर में रमणता का सम्यक् प्रकार से यम—चारित्रदशा प्रगट हुई है। उससे वह शुद्ध होता है। आहाहा!

**कषायरूप मल से रहित हैं...** संयम से शुद्ध कहा, उसका विशेष स्पष्टीकरण किया है। पाठ में कहा है न, **'संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे' 'कसायमलवज्जिदे'** ऐसा। यह कषायमल जिसे पुण्य और पाप के विकल्प का राग जिसे नहीं। आहाहा! जिसका आत्मा खिल गया अन्दर वीतरागभाव से, जिसकी रमणता आत्मराम के साथ जम गयी है। प्रभु भगवान आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी मौज जिसे प्रगट हुई है। आहाहा! समझ में आया? हसुभाई! यह सब तुम्हारे धूल की मौज नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! यह तो अकेले हैं। ... पैसे हों, उसके अकेले भागीदार। लड़के... आहाहा! यह तो कोई भाग ही नहीं उसमें। ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** कोई भाग ले सकता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ले सकता नहीं। आहाहा! प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ,

उसमें दृष्टि कर। जन्म-मरण से यदि तुझे पार होना हो तो। आहाहा! उद्धार करना हो तो। यह मुनि ने पहले सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, ऐसा कहे। फिर इन्होंने संयम की शुद्धि प्रगट की है। समझ में आया? ऐसा 'मार्ग वीतराग का भासित श्री जिनराज वीतराग।' आहाहा! भारी कठिन काम! यह सम्प्रदाय श्वेताम्बर और स्थानकवासी। श्वेताम्बर निकला न पहले? ६०० वर्ष में श्वेताम्बर पंथ निकला। सनातन वीतरागदर्शन में से विपरीत दृष्टि होकर यह मार्ग निकला, भाई! किसी के प्रति विरोध और वैर करना नहीं, तथापि वस्तु का स्वरूप है, वैसा उसे बराबर जानना और मानना पड़ेगा। आहाहा! वह भी अकेला द्रव्यलिंग भी नहीं। इसलिए कहा न! समकितसहित जिसकी अन्तर आनन्द की दशा। तब कहने में आता है न अभी कि भाई! व्यवहार क्रिया करो, उससे निश्चय प्राप्त होगा। एकदम झूठी बात है। व्यवहार आचरण करो, यह व्रत और नियम। समझ में आया? उससे निश्चय चारित्र न हो, तब तक व्यवहार पालन करो और उससे निश्चय होगा।—यह बात ही झूठी है। उसकी श्रद्धा ही विपरीत मान्यता है। आहाहा! आत्मा अन्तर में निश्चय स्वभाव जो शुद्ध आनन्द, उसकी दृष्टिसहित संयम प्रगट हुआ है, उसे फिर ऐसे पंच महाव्रतादि के विकल्प हों तो उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बहुत विवाद। जगत के साथ वीतरागमार्ग को बहुत विवाद। आहाहा!

**कषायरूप मल से रहित हैं, इसलिए शुद्ध हैं।** आहाहा! उसे जानना पड़ेगा न कि आचार्य मुनिपना कैसा? आचार्य महाराज स्वयं कहते हैं कि ऐसे आचार्य को मैं वन्दन करता हूँ। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे आचार्य। यह ऐसे आचार्य को वन्दनीक, वे कैसे आचार्य होंगे? वे ऐसे हैं। जिन्हें अन्तर में आनन्द का सम्यग्दर्शन पहले प्रगट हुआ है। पश्चात् संयम-चारित्रदशा है। कषायमलरहित जिनकी दशा है। आहाहा! उसे कहते हैं न '**वंदित्ता आयरिए**' है न दूसरा पद? ऐसे आचार्य को वन्दन करके। आहाहा! स्वयं कहते हैं कि उन्हें वन्दन करके मैं यह बोधपाहुड़ कहूँगा। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य नग्न दिगम्बर मुनि पंच महाव्रतधारी और वीतरागमूर्ति तीन कषाय के अभाववाले। आहाहा! वे कहते हैं, मैं ऐसे आचार्य को वन्दन करता हूँ। यह वन्दन करूँ, वह व्यवहार नहीं? व्यवहार आया। यह तो वन्दन को करता हूँ, यह विकल्प है, व्यवहार है। आता है न! व्यवहार नहीं? परन्तु व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है, ऐसा

नहीं है। यह निश्चय तो त्रिकाल भगवान आत्मा आनन्द के आश्रय से प्रगट होता है। महाप्रभु चैतन्यस्वरूप के आश्रय से अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया?

**भावार्थ :- यहाँ आचार्यों की वन्दना की...** बहुवचन है न? बहुत आचार्यों की वन्दना की है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज। आहाहा! ठीक यह तुम्हारी मीटिंग इकट्ठी होती है और अपने यह मंगलाचरण किया, लो! सेठ! कब आते हैं अब भाई? बड़े भाई। यह मीटिंग होती है न आज। ... ठीक तुम्हारे छोटे सेठ है न साथ में। आहाहा! **यहाँ आचार्यों की वन्दना की, उनके विशेषणों से जाना जाता है कि गणधरादिक से लेकर अपने गुरुपर्यन्त सबकी वन्दना है...** आचार्य है न वापस? **और ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की। उसके विशेषणों से जाना जाता है कि जो बोधपाहुड़ ग्रन्थ करेंगे, वह लोगों को धर्ममार्ग में सावधान कर...** आहाहा! धर्ममार्ग में सावधान करने के लिये **कुमार्ग छुड़ाकर...** उल्टे रास्ते जो यह धर्म को मान रहे हैं, उन्हें छुड़ाकर **अहिंसाधर्म का उपदेश करेगा।** है न? छह काय है न? अहिंसा। जिसमें एकेन्द्रिय प्राणी का भी घात न हो। आहाहा! ऐसे अहिंसाधर्म का उपदेश करूँगा, लो!

★ ★ ★

## गाथा - ३-४

यह बोधपाहुड़ में ग्यारह स्थल बाँधते हैं। नाम। यह सब निश्चय।

**आयदणं चेदिहरं, जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं।**
**भणियं सुवीयरायं, जिणमुद्दा णाणमादत्थं॥३॥**
**अरहंतेण सुदिट्ठं, जं देवं तित्थमिह य अरहंतं।**
**पावज्जगुणविसुद्धा, इय णायव्वा जहाकमसो॥४॥**

**अर्थ :- १- आयतन,...** है न अर्थ में? धर्मायतन, यह निश्चय भगवान आत्मा धर्म का आयतन है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** शुद्धरूप से परिणमा हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुद्ध का परिणमन, वही धर्म का आयतन है। द्रव्य तो शुद्ध है, वह कहीं रहा। त्रिकाली शुद्ध चैतन्य भगवान तो शुद्ध पवित्र आनन्द है, परन्तु जिसकी दशा में पवित्र और शुद्ध का परिणमन हुआ है। संयमसहित की उसकी यहाँ बात है। उसे यहाँ आयतन कहते हैं। वह धर्म का घर। वह धर्म का स्थान। वह धर्म का स्थान... स्थान करते हैं न बाहर के? वह भी उस समय स्वयं के माने हुए मन्दिर आदि करके। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान तो श्वेताम्बर निकलने के बाद १०० वर्ष में हुए हैं। इसलिए सब गड़बड़ बहुत थी। यह सब मकान बनावे, धामधूम करे। हो...हा...हा... अर्थात् वह आयतन नहीं। आयतन तो यह है। और ऐसे आयतन का व्यवहार हो, वह बाहर से व्यवहार आयतन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! दुनिया के साथ...

कहो, एक व्यक्ति पूछता था कि हमारे क्या करना? करना क्या? मार्ग हो वैसा करना। ...ऐसा कि सब एक साथ जायें और मन्दिर हो, साथ में सब व्यक्ति हों, हम अन्दर न जायें, वन्दन न करें तो अलग पड़ जायें। ऐई! कहा, भाई ने कहा था। अनन्तराय। अनन्तराय। ऐई! तुम्हारा। बैंगलोर। प्रवीणभाई थे। उन्हें पूछा था उनके भाई ने। बहुत व्यक्ति साथ में हो और फिर मन्दिर में जायें और वन्दन करें। मार्ग नहीं, बापू! कहा यह (मार्ग नहीं)। विरोध करे यह नहीं, द्वेष नहीं, किसी के साथ बैर नहीं, किसी के प्रति द्वेष नहीं। परन्तु मार्ग तो यह है, बापू! चिमनभाई! अभी भाई ने प्रश्न किया था। प्रवीणभाई थे। प्रवीणभाई बोलते थे या नहीं? लज्जा... ऐसा होता होगा?

**मुमुक्षु :** गृहीत मिथ्यात्व है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिथ्यात्व है, फिर प्रश्न क्या? गृहीत मिथ्यात्व है। वास्तव में तो मार्ग ऐसा है। बापू! क्या हो? कुदेव, कुगुरु है, उनका विनय, वह तो मिथ्यात्व है। मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! दूसरे ऐसा कहे, साथ में खड़े हों तो जायें। ऐसा नहीं होता। बात की थी। उस समय बैंगलोर हमारे घर में आवास रखना, हों! कहे। यह कहीं मेरा काम है? संघ को ठीक पड़े वैसा करेंगे न। यह बैंगलोर जाना है न। नौ लाख रुपये मन्दिर में खर्च किये हैं।

**मुमुक्षु :** आप....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो उसका भाव मिथ्यात्व हुआ, ऐसी बात करते थे। वे कहते थे, हों! भाई कहते थे, हों! भाई ने कहा। चन्दुभाई कहते थे। नौ लाख डाले हैं। दूसरा कोई कहता था। कौन कहता था? वहाँ का। कान्तिभाई। हाँ, हाँ, कान्तिभाई। अपने गढडावाले। यह गढडावाले लो। नौ लाख... नौ लाख। दो व्यक्तियों ने नौ लाख दिगम्बर मन्दिर बैंगलोर में। गत वर्ष गये थे न। अब तैयार हो गया है। बाबूभाई नहीं आये? आज शाम को? क्या हुआ? वहाँ से भेजते हैं न सब। वे कहते थे। लोगों को बहुत उत्साह है। जुगराजजी स्थानकवासी करोड़पति थे। और एक करोड़पति भभूतमल मन्दिरमार्गी दोनों ने मिलकर दिगम्बर मन्दिर बनाया नौ लाख का। बैंगलोर में। जिनप्रतिमा तो ऐसे वीतराग मुद्रा हो। जैसे वीतराग थे, वैसा सामने बिम्ब हो। प्रतिबिम्ब है न? जैसा सामने मनुष्य हो, वैसा दर्पण में बिम्ब आवे या दूसरा आवे? वीतराग। निष्क्रिय—राग से रहित अन्दर स्थिर हो गये हैं। उसे ऊपर कहा, कुछ न करे।

**मुमुक्षु :** आपकी कृपा का जोर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो जगत में होनेवाला हो, वह होता है। उसका भाव क्या है, उतना जानना बस। भाव उसका शुभ है। वह होनेवाला हो, वह होता है। कहीं शुभभाव से होता है? मोहनभाई!

**मुमुक्षु :** वह आवे तब हो मुम्बई से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! कल नहीं कहते थे कि भाई पहले मेरा, फिर दूसरे का, फिर दूसरे का, फिर मेरा। तुम्हारे ढेबरभाई। वे चार। पहला अपना, फिर दूसरे का, फिर दूसरे का। वह और कुछ होगा देश का, कुटुम्ब का और फिर मेरा। ...ऐसे के ऐसे। कौन करे? रस चढ़ गया। रामजीभाई के सामने ऐसे बोलते थे। परन्तु वे ऐसा बोलते थे। तुम बैठे और बोलते थे सब। रामजीभाई बैठे थे। रामजीभाई तो तब उनके गुरु कहलाते थे। पहले करना अपना। रामजीभाई कहे, करना अपना। पहले अपना, दूसरा दूसरे का, तीसरा दूसरे का—ऐसे तीन थे कुछ। कुछ होगा यह परिवार का या जाति का या देश का। और फिर अन्त में मरते। अब मरने को कौन करता है? घुस गये उल्टे। ऐसी विपरीतता घुस गयी न।

**मुमुक्षु :** ब्लडप्रेशर का दर्द है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लो, ब्लडप्रेशर का दर्द है। आहाहा! मुख में ऐसे अच्छा है। पहले तो मैंने पहिचाना नहीं। तुमने कहा फिर। ऐसे चरण में आड़े लगे थे।

**१. आयतन, २. चैत्यगृह...** वह चैत्यगृह भी यह आत्मा आनन्द का ज्ञान, चैत्य अर्थात् ज्ञान। आनन्द का गृह, यह आत्मा चैत्यगृह है। यह चैत्यगृह तो व्यवहार है। समझ में आया? चैत्य अर्थात् ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा का घर, वह चैत्यगृह तो आत्मा है। वह यहाँ मुनिपने से सब बात है।

**३. जिनप्रतिमा,...** वह भी वीतरागीदशा आत्मा की हो, वह जिनप्रतिमा। जिनप्रतिमा हो... जिनप्रतिमा आता है न भाई! श्रीमद् में आती है। चैतन्य जिनप्रतिमा। पुण्य-पाप के विकल्प से रहित वीतरागी मूर्ति आत्म... हो, उसे जिनप्रतिमा कहते हैं। निश्चय जिनप्रतिमा वह है। तब व्यवहार जिनप्रतिमा होती है। आहाहा! समझ में आया?

**४. दर्शन...** वह भी जैनदर्शन। वह भी यह व्याख्या। आत्मा वीतरागमूर्ति, उसे पंच महाव्रत के विकल्प हो, नग्नमुद्रा हो, खड़े-खड़े आहार हो खड़े, उसे जैनदर्शन कहते हैं। समझ में आया? यह वस्त्रवाले, उसे जैनदर्शन नहीं कहते यहाँ तो परमात्मा। '**जिणमुद्दा**' कहा न? जिनदेव ने जिनमार्ग में ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? **३. जिनप्रतिमा, ४. दर्शन,...** आगे आयेगा दर्शन। १४वीं गाथा है वहाँ, यहाँ १४वीं है यहाँ। वहाँ १४वीं है अष्टपाहुड में। यहाँ १४वीं है। दर्शन उसे कहना। समकित नहीं। आत्मदशा में वीतरागीदशा जिसे प्रगट हुई है, उसे जैनदर्शन कहते हैं, उसे दर्शन कहते हैं। आहाहा! ऐसे जैनदर्शन की श्रद्धा आत्मा से हो, उसे समकित कहते हैं। परन्तु ऐसा जैनदर्शन हो उसे। उसको मानना चाहिए। समझ में आया? जिसकी बाह्य नग्नदशा है, माता से जन्मा वैसी दशा। अन्दर में नग्न-रागरहित दशा है। वीतरागमूर्ति आत्मा। आहाहा! उसे यहाँ जैनदर्शन अर्थात् दर्शन कहा जाता है।

**५. जिनबिम्ब।** यह भी एक वीतरागी मूर्ति आत्मा। जिनबिम्ब। यह जिनबिम्ब व्यवहार है। वीतरागमूर्ति, वस्त्र, पात्र (रहित)। बौद्ध को देखो न, एक ऐसा रखते हैं। एक पात्र रखते हैं। बौद्ध में आती है न मूर्ति? वह गया में है। एक पात्र नीचे रखे। और

वे कहते थे, लो! बौद्ध को और महावीर को कौन जानता? यह सब जाने। कहते थे। भाई कहते थे। बौद्ध को जाने। कहाँ बौद्ध और कहाँ महावीर? खबर नहीं होती। महावीर कौन? आहाहा! बौद्ध तो गृहीत मिथ्यादृष्टि। वैरागी को राजा अर्थात् क्या? उसे माननेवाले बहुत हैं अभी। हिन्दुओं से भी बौद्ध के माननेवाले बहुत हैं। उससे (अधिक) ख्रिस्ती के माननेवाले बहुत हैं। उससे क्या? वह बड़ा ... है।

जिनबिम्ब तो उसे जैनमार्ग में जिनेश्वर ने राग, विकल्परहित चीज़ अन्दर स्थिर हो गयी है अन्दर आनन्द में। उसे जिनबिम्ब कहा जाता है। आहाहा! **कैसा है जिनबिम्ब?** देखो! **भले प्रकार वीतराग है...** देखा! जिसे रागरहित अन्तर दशा प्रगट हुई है, उसे यहाँ जिनबिम्ब कहा जाता है। पाठ में है न यह देखो न! '**भणियं सुवीयरायं**' यह जिनबिम्ब जिसमें राग का कण नहीं, ऐसी आनन्ददशा। बिम्ब, चैतन्यबिम्ब जम गया है अन्दर में। आहाहा! ऐसी मुनि की अन्तरदशा को जिनबिम्ब कहा जाता है। यह सब निश्चय की बात है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** निश्चय की बात है अर्थात्?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह सच्ची बात है ऐसा, निश्चय अर्थात्। यही सत्य बात है। वापस वे कहे वहाँ निश्चय... निश्चय... निश्चय... परन्तु निश्चय अर्थात् सच्चा। आहाहा! बहुत ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़ तो निश्चय... निश्चय... निश्चय... परन्तु निश्चय अर्थात् क्या? सत्य का निश्चय, निश्चय को सत्यार्थ कहते हैं, व्यवहार को असत्यार्थ कहते हैं। आहाहा! बात यह कहे कि देव-गुरु से धर्म हो, देव-गुरु से लाभ हो, ऐसा कहो तो कुछ व्यवहार आवे। उन भक्तिवालों को सम्प्रदाय रखना है न, इसलिए अपने ऐसे कि देव-गुरु की भक्ति करे, उससे समकित होगा। यहाँ इनकार करते हैं। ऐसा है नहीं। देव-गुरु की भक्ति है, वह शुभभाव है। भगवान आत्मा की भक्ति, वह शुद्धभाव है। आहाहा! ऐसी बात है। यह कहीं सम्प्रदाय नहीं बाँधना। कहीं वाड़ा इकट्ठा नहीं करना कि ऐसे सब माने तो अधिक लोग आवे। मार्ग तो यह है। आहाहा!

६. **जिनमुद्रा रागसहित नहीं होती है,...** देखो, है न? यह भी दोनों ओर ले लेना। यह भी वह यहाँ है न '**वीयरायं, जिणमुद्दा**' ऐसा। अर्थात् ऐसा। '**जिणबिंबं। भणियं सुवीयरायं, जिणमुद्दा**' ऐसा दोनों ओर ले लेना। और **७. ज्ञान पद कैसा है? आत्मा ही**

**है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसमें,...** उसे ज्ञान कहते हैं। आहाहा! जिसमें भगवान आनन्दस्वरूप का ज्ञान हो और आनन्द, उसे ज्ञान कहते हैं। अकेले शास्त्र ज्ञान और बाहर के संस्कृत और व्याकरण को ज्ञान नहीं कहते। **आत्मा ही है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसमें,...** यह ज्ञान। ज्ञान में जिसे आत्मा भासित हो। भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ जिसके ज्ञान में भासित हो और ज्ञान में आनन्द का परिणमन हो, वह ज्ञान कहलाता है। आहाहा! जिस ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसे ज्ञान कहने में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**इस प्रकार सात तो ये निश्चय, वीतरागदेव ने कहे वैसे तथा अनुक्रम से जानना और ८. देव...** देव की व्याख्या करेंगे। ददाति ईति देव, इसमें है न? धर्म, अर्थ को। भावपाहुड में। भावपाहुड में आता है, नहीं? बोध में आयेगा। उसमें आयेगा देव। धर्म, अर्थ और काम तथा मोक्ष। ऐसे आत्मा को समझावे, वह देव। उसके पास हो, वह दे न। उनके पास तो यह धर्म और आनन्द स्वरूप है, उसे बताते हैं। उसमें जरा पुण्य का विकल्प आवे तो उसे बाह्य की सामग्री आदि मिले, उसे बतावे। बतावे।

**९. तीर्थ...** यह तीर्थ, वह यह आत्मा का आनन्दस्वभाव का अनुभव, वह तीर्थ है। बाहर के सम्मेदशिखर, शत्रुंजय और गिरनार, वह व्यवहार शुभभाव। उसका तीर्थ करे तो शुभभाव, धर्म नहीं। सम्मेदशिखर की यात्रा करे या गिरनार की करे या शत्रुंजय की करे शुभभाव—पुण्य है; धर्म नहीं। यह निश्चय तीर्थ नहीं। आहाहा! देखो, यह जिनमार्ग में जिनदेव ने उसे तीर्थ कहा। वह मूल तीर्थ तो पड़ा रहा और अकेला बाहर के तीर्थ में (सन्तुष्ट हो गया)। आत्मा राग और पुण्य के विकल्प से रहित शुद्ध की परिणतिवाला आनन्द आत्मा, आनन्द की दशावाला आत्मा, उसे यहाँ तीर्थ कहते हैं कि जिससे तिरा जाये, उस उपाय को तीर्थ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? 'त...रार ते करूं...' आता है न। आता है।

उसमें आनन्दस्वरूप भगवान में स्नान कर, जा। और राग-द्वेष का मैल उससे टाल। उसे यहाँ तीर्थ कहा जाता है। वहाँ भी कहा था। परमात्मप्रकाश। परमात्मप्रकाश में भी कहा। उसमें भी कहा नहीं यह योगीन्द्र? योगीन्द्रदेव। वहाँ भी कहा। 'नहि देव देरा (मन्दिर) विशे है... मुनि...' देव तो यहाँ है। मूर्ख जहाँ-तहाँ भ्रमे अपने को भूलकर।

देव का देव भगवान आत्मा स्वयं है। उसकी यात्रा करता नहीं और अकेली बाहर की यात्रा से धर्म मान बैठे, वह जैनमार्ग नहीं है, ऐसा कहते हैं। जिनमार्ग में जिनदेव ने ऐसा कहा नहीं। जिनमार्ग में जिनदेव ने तो आत्मा, वह पुण्य और पाप के भावरहित स्वभाव, उसका अनुभव, उसकी श्रद्धा और उसमें रमणता, वह तिरने का उपाय, वहाँ उसे तीर्थ कहते हैं। आहाहा!

**१०. अरहन्त...** इसकी व्याख्या करेंगे। अरिहन्त और वापस उसमें अरिहन्त... कितना गुणस्थान, कौन सी पर्याय, कौन से प्राण, यह सब व्याख्या करेंगे। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव। **तथा गुण से विशुद्ध। ११. प्रव्रज्या...** अन्तिम लो।

**मुमुक्षु :** गुण से....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ यह। अरिहन्त गुण से विशुद्ध।

**११. प्रव्रज्या, ये चार जो अरहन्त भगवान ने कहे...** यह प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा। चारित्र की दीक्षा प्रव्रज्या। यह वस्त्र लेकर प्रव्रज्या मानते हैं, वह प्रव्रज्या नहीं है, ऐसा कहते हैं। उसके सामने यह सब बात है न? 'सकल जन...' सर्व जीवों के बोध के लिये जिनमार्ग में जिनेश्वर ने ऐसी प्रव्रज्या कही है कि जिसमें आनन्द का नाथ प्रभु जागकर जिसे रमणता हो, उसे यहाँ प्रव्रज्या कहा जाता है। अब यह तो अभी समकित का ठिकाना न हो। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का ठिकाना न हो और चारित्र हो गया। दीक्षायें लीं दीक्षायें। सब दख्या है। दुखिया हैं वे सब। सुखिया तो भगवान उसे कहते हैं। शुद्ध स्वरूप की... यह सब मुनिपने की दशा का ही पूरा वर्णन है और एक अरिहन्त का। यह ज्ञान... अर्थात् यही आत्मा में प्राप्त होता है, उसका ज्ञान। आहाहा! **ये चार जो अरहन्त भगवान ने कहे, वैसे इस ग्रन्थ में जानना,...** ७ और ४ हुए न? पहले ७ कहे थे। यह ४।

**भावार्थ :- यहाँ आशय इस प्रकार जानना चाहिए कि धर्ममार्ग में कालदोष से...** देखो! धर्ममार्ग में कालदोष से क्या होता है? आहाहा! **अनेक मत हो गये हैं तथा जैनमत में भी भेद हो गये हैं,...** आहाहा! श्वेताम्बर और स्थानकवासी और तेरापंथी। स्थानकवासी तेरापंथी। तुलसी-तुलसी। तुम्हारे मुम्बई आते हैं न? तेरापंथी तुलसी। क्या कहते हैं उसे? अणुव्रत आन्दोलन। धूल में भी अणुव्रत नहीं। आहाहा! उसकी अपनी दृष्टि का ठिकाना नहीं, वहाँ अणुव्रत कहाँ से आये?

**मुमुक्षु :** जिसे सम्यग्दर्शन नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्यग्दर्शन ही नहीं न उसे। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! गजब बातें हैं। जैनमत में भी भेद हो गये हैं। आहाहा! साधारण प्राणी को तो निर्णय करना महामुश्किल पड़े। सच्चा क्या है? किस प्रकार की प्ररूपणा और किस प्रकार के प्रोफेसर और प्ररूपणा को...। आहाहा!

**मुमुक्षु :** गच्छ में भी बहुत हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गच्छ में भी गजब। एक गच्छ में अन्तर्भेद का पार नहीं होता। आहाहा!

**उनमें आयतन आदि में विपर्यय ( विपरीतपना ) हुआ है,...** देखा! जैनमत में भेद हुए, उसके आयतन आदि में भी विपरीत हो गया है सब। **उनका परमार्थभूत सच्चा स्वरूप तो लोग जानते नहीं है...** सच्ची जिनप्रतिमा, सच्चा अरिहन्तपना, सच्ची प्रव्रज्या इत्यादि। **और धर्म के लोभी होकर जैसी बाह्य प्रवृत्ति देखते हैं, उसमें ही प्रवर्तने लग जाते हैं,...** धामधूम पूजा, भक्ति और यह और यह। क्या कहलाता है तुम्हारा? शान्तिस्थापना। सिद्धचक्र। उसमें आवे? धमाल... धमाल... वह तो भी एक शुभभाव है और हम यह करते हैं, यह करते हैं, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! लोग उसमें मुड़ जाते हैं। परन्तु लोग अभी यह आया था न। लाख, डेढ़ लाख लोग इकट्ठे हुए। यह उसने महिमा की है भाई ने—कटारिया ने। कटारिया न? केकड़ी। उसने महिमा की। डेढ़ लाख लोग श्वेताम्बर के इकट्ठे हुए। परन्तु उसमें क्या हुआ? आहाहा!

**लोभी होकर जैसी बाह्य प्रवृत्ति देखते हैं, उसमें ही प्रवर्तने लग जाते हैं,...** यह सच्चा है। मन्दिर और पच्चीस-पचास लाख का मन्दिर बनावे। विशाल हो... हा... बाह्य प्रवृत्ति। परन्तु सत्यवस्तु कहाँ है वहाँ? आहाहा! **उनको सम्बोधने के लिये यह बोधपाहुड़ बनाया है।** लो! **उसमें आयतन आदि ग्यारह स्थानों का परमार्थभूत सच्चा स्वरूप जैसा सर्वज्ञदेव ने कहा है, वैसे कहेंगे, अनुक्रम से जैसे नाम कहे हैं, वैसे ही अनुक्रम से इनका व्याख्यान करेंगे सो जाननेयोग्य है।** लो!

★ ★ ★

## गाथा - ५

अब पहला आयतन, लो।

**मणवयणकायदव्वा आयत्ता जस्स इन्दिया विसया।**
**आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं॥ ५॥**

जैन वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ के मार्ग में **संयमसहित मुनिरूप है उसे 'आयतन' कहा है।** लो! जिसे अन्दर सम्यग्दर्शनसहित, संयमसहित मुनिपना, उसे आयतन, धर्म का आयतन कहा है। वह धर्म का घर। आहाहा! **कैसा है मुनिरूप? जिसके मन-वचन-काय द्रव्यरूप है...** वश किया है। आधीन। अर्थात् उसके आधीन हुआ नहीं, उससे छूटकर आत्मा (के) आधीन हुआ है। उसे आधीन किया अर्थात् उनके वश वह नहीं हुआ।

**तथा पाँच इन्द्रियों के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द ये विषय हैं वे, आयत्ता अर्थात् अधीन हैं—वशीभूत हैं।** पाँचों ही इन्द्रिय के वशीभूत होता नहीं, परन्तु स्वयं वश किया है। अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी रमणता है। आहाहा! उसे यहाँ आयतन अर्थात् धर्म का स्थान है। धर्म अर्थात् पवित्रता का स्थान तो वह मुनिपना है। आहाहा! बाकी उसे समझे और माने और अनुभव किये बिना बाह्य के बड़े आयतन बनावे। पचास लाख की मूर्ति और पचास लाख का यह, ढ़ीकणा लाख का यह। उसमें व्यवहार भी सच्चा नहीं।

**उनके (मन-वचन-काय और पाँच इन्द्रियों के विषय) संयमी मुनि आधीन नहीं है,...** पर के आधीन नहीं। आहाहा! स्वयं उसे वश किया है अर्थात् कि उसके आधीन नहीं होता। मन, वचन और काया तथा पाँच इन्द्रिय के आधीन नहीं होता। आहाहा! आत्मा अणीन्द्रिय के आधीन वर्तता है, वह अणीन्द्रिय के वश हुआ ही वह आत्मा धर्मायतन—आयतन कहा जाता है। आहाहा! क्योंकि वहाँ से धर्म की उत्पत्ति होती है। शुभभाव में या देह की क्रिया में कहीं धर्म की उत्पत्ति नहीं है। आहाहा! **संयमी मुनि आधीन नहीं है, वे मुनि के वशीभूत हैं।** आहाहा! **ऐसा संयमी है, वह आयतन है।** देखो! उसमें कहा, देव-गुरु आयतन है। पच्चीस बोल में आता है न? निहालभाई ने

कहा है, वह अनायतन है। चिल्लाहट मचाये। वह आयतन नहीं। आयतन तो यह आत्मा अनन्त गुण का धाम, उसकी दृष्टि और अनुभव में स्थिरता करे, वह उसमें से धर्म की दशा उत्पन्न हुई, वह आयतन है। आहाहा! वह धर्म का स्थान यह है। कहते हैं न कि यह धर्मस्थानक है। यह धर्मस्थानक है। यह भगवान का धर्मस्थानक है। आता है न नौ बोल? नव देव।

**मुमुक्षु :** पंच परमेष्ठी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पंच परमेष्ठी, जिनवाणी, जिनमन्दिर, प्रतिमा, जिनधर्म, यह सब (नव देव)। वह जैनधर्म यह। दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति का भाव, वह राग। उससे रहित होकर आत्मा की दृष्टि करके स्थिरता करे, वह धर्म का स्थान है। अहो! धर्म के स्थान को धर्मस्थान... ऐसा कहते हैं न लोग? वह धर्मस्थान कहाँ है? बाहर है? आहाहा! कहो, समझ में आया? धर्मस्थानक... धर्मस्थानक... पुकार करे। दूसरे ऐसा कहे, यह धर्मस्थानक बनाया, फलाना यह बनाया, यह बनाया। धर्मस्थान कहाँ है? भगवानजीभाई! यहाँ है धर्मस्थान। आहाहा! आचार्यों ने सत्य को बाहर प्रसिद्ध करने में संकोच नहीं किया है। सत्य तो यह है। और यह सकल जीव के सम्बोधन और हित का कारण यह है। सकल जीव के लिये और छह काय के हित के लिये यह है, बापू! आहाहा! ऐसा हो, फिर उसका व्यवहार जो हो, उसे व्यवहार धर्मस्थान कहा जाता है। वह पुण्य का कारण निमित्त है। परन्तु जहाँ ऐसा धर्मस्थानक आया नहीं, उसे व्यवहारधर्मस्थान कैसे कहना? व्यवहार के प्रधानपने निकले थे न वे सब, इसलिए उनके सामने यह बात है। समझ में आया? यह पहली आयतन की व्याख्या की, लो! यह अभी आयतन की दो गाथा बाकी है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल १४, रविवार, दिनांक-०९-१२-१९७३
गाथा - ६-७, प्रवचन-६३

गाथा - ६

अष्टपाहुड़ है। आयतन का अधिकार है पहला। धर्मायतन—धर्म का घर—धर्म का स्थान किसे कहते हैं ? धर्म की जिस स्थान में उत्पत्ति हो, उसे आयतन और धर्म का घर कहते हैं। तेरह बोल अध्यात्म के निश्चय है, उसमें पहला बोल यह है। पहले पाँचवीं गाथा हो गयी है। छठवीं गाथा है। है न ?

**मयरायदोस मोहो, कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।**
**पंचमहव्वयधारी, आयदणं महरिसी भणियं॥६॥**

कहते हैं कि इस जगत में धर्म के आयतन, धर्म के मन्दिर, धर्म के स्थान बहुत कहलाते हैं। यह धर्म के स्थान वास्तव में नहीं। धर्म का स्थान तो भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसमें अन्तर स्वरूप के अनुभव में दृष्टि होकर स्वरूप में स्थिरता की वीतरागता निर्दोष आनन्द प्रगट करे, ऐसी दशावन्त को धर्म का स्थान कहा जाता है। समझ में आया ? बाह्य में तो अनेक प्रकार के स्थान गिने जाते हैं। व्यवहार से लोग मानो यह धर्मस्थान... धर्मस्थान... धर्मस्थान... चलो धर्मस्थान में। परन्तु धर्मस्थान परमार्थ से कहाँ है ? परमार्थ धर्मस्थान समझे बिना बाह्य धर्मस्थान में व्यवहार भी उसका यथार्थ नहीं होता। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

जिसे, मन-वचन-काया के योग हैं, वे जिसे वश वर्तते हैं। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। यह बाहर के जो इन्द्रिय के विषयों में और मान-कीर्ति में जो सुख मानता है, वह तो बहिरात्मा, मिथ्यादृष्टि, मूढ़ जीव है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी है। आहाहा! वह तो अधर्म के स्थान में है। आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य की मूर्ति। वस्तु है न आत्मा, तत्त्व है न, पदार्थ है न! उसमें अनन्त आनन्द और शान्ति का स्वरूप उसका पूर्ण भरा है उसमें।

उसमें जिसकी अनुभव दृष्टि हुई, वह सम्यग्दर्शन जिसे प्रगट हुआ और तदुपरान्त स्वरूप की रमणता, लीनता, आनन्द की उग्रता जिसकी दशा में प्रगट हुई, उसे धर्म का स्थान (कहते हैं)। डॉक्टर! उसे धर्म का मकान, उसे धर्म का घर कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? दुनिया बाहर से अनेक प्रकार के... उस समय भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के समय में सम्यग्दर्शन के भान बिना बाहर के धर्मस्थान बनाकर हम धर्म करते हैं, ऐसा सब चलता था। उसके सामने यह बात है।

**मुमुक्षु :** ऐसा का ऐसा चलता था, ऐसा का ऐसा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा का ऐसा चलता है अनादि से। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर एक समय में शुद्ध आनन्दघन। शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें कर विचार तो पाम।' आत्मसिद्धि है। ऐसी आत्मसिद्धि? अभी नहीं आयी। नहीं होगी। यहाँ है, यहाँ थी वह वहाँ। समझ में आया? श्रीमद् राजचन्द्र की आत्मसिद्धि है। उसकी पुस्तक। ... दी थी। यहाँ नीचे। उसमें ऐसा कहा कि भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा को देखा। स्वयं प्रगट किया जिसे, वैसी दशा को सर्वज्ञपद (कहते हैं)। परन्तु जिसके ज्ञान में यह आत्मा कैसा, ऐसा ज्ञात हुआ, कि यह आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द का घन प्रभु है। उसकी जिसे अन्तर दृष्टि हुई है और दृष्टि उपरान्त स्वरूप में राग और द्वेष का त्याग होकर वीतरागता निर्दोषदशा जिसे प्रगट हुई है, वह धर्म का स्थान है। समझ में आया? वह धर्म का घर है। भगवान आत्मा उसमें से जिसे अन्तर में से प्रगट अंकुर फोड़े, फूटे अन्दर में से शान्ति के आनन्द के। आहाहा! यहाँ तो चारित्रसहित की बात लेनी है न! सम्यग्दर्शन उपरान्त जिसमें शान्ति... शान्ति... शान्ति... आनन्द की वीतरागदशा जहाँ प्रगट हुई है, ऐसे जीव को, ऐसे मुनि को धर्म का घर और धर्म का स्थान कहा जाता है। उसके सामने गमन करना, उसे वन्दन करना, उसका आदर करना, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। आहाहा! ऐसा जिसे नहीं, वह धर्मस्थान नहीं। वह धर्मरूप से वन्दनयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

अर्थ में आगे सब है। समझ में आया? तो कहते हैं **जिस मुनि के मद...** नहीं। आहाहा! जाति मद, कुल मद, रूप मद, ईश्वर मद, विद्या मद। यह मद जिसे नहीं और

जिसे निर्मलानन्द आत्मा के आनन्द की दशा अविकारी निर्दोष प्रगट हुई है। जिसे राग नहीं। अनुकूल इष्ट पदार्थ के प्रति प्रेम नहीं, प्रतिकूल के प्रति जिसे द्वेष नहीं। ऐसी जिसे अन्तर में चैतन्यस्वभाव के भानपूर्वक निर्दोषता—वीतरागता प्रगट हुई है, उसे यहाँ धर्म का स्थान कहते हैं। हेतु तो ऐसा था कि उस समय बहुत भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हुए तब अन्य में और जैन में वाड़ा में भी विरोध बहुत हो गया और फिर धर्म के स्थानक मन्दिर बनावे दस-दस लाख के, बीस लाख के। धूमधाम और, वे धर्म के स्थान व्यवहार से नहीं। जिसमें प्रतिमा को कपड़ा और वस्त्र और ऐसे गहने चढ़ावे, उसे—प्रतिमा को, वह तो व्यवहार प्रतिमा भी सच्ची नहीं है, ऐसा कहते हैं। वह व्यवहार से धर्म का स्थान सच्चा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! बात तो यह है।

जिसे अन्तर में क्रोध, **मोह...** भ्रान्ति टल गयी है जिसे। मैं आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन हूँ, उसमें जिसे निर्भ्रान्तदशा अन्तर से प्रगट हुई है, उसे यहाँ धर्म का घर और धर्मस्थानक, धर्म का मन्दिर उसे कहा जाता है। बाह्य मन्दिर तो व्यवहार है। ऐसी सूक्ष्म बात है। जिसे **क्रोध, मोह, लोभ और चकार से माया आदि ये सब 'आयतन'...** जिसे यह विकारभाव स्वाधीन हो गये हैं अर्थात् कि जिसने विकार का भाव टाल दिया है। आहाहा! और निर्विकारी भगवान आत्मा के वश होकर जिसने अन्तर में निर्दोषदशा मुनिपना... जरा सूक्ष्म बात है, भाई! यह वस्त्र बदलकर, वस्त्र बदलकर मुनि हो, वह मुनि नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि नग्नमुनि हो और अन्दर पंच महाव्रत के परिणाम भी हों, परन्तु जिसे अन्तर आत्मदर्शन और आत्मा का अनुभव नहीं, वह धर्म का स्थान है ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! पंच महाव्रत हो, नग्नपना हो क्रियाकाण्ड में, परन्तु जिसे आत्मा अन्तर चिदानन्द प्रभु राग और विकल्प से भिन्न पड़कर जिसने अनुभव किया नहीं, मेरी दशा और मेरा स्वरूप कौन है, ऐसा जिसने अन्तर में जाना नहीं, ऐसे मुनि को मुनि नहीं कहते और वह धर्म का स्थान ही है नहीं। आहाहा! ऐसा है। समझ में आया?

**पाँच महाव्रत जो अहिंसा,...** छह काय प्राणी को—जीव जिसे मारने का विकल्प

छूट गया है। अहिंसा। निश्चय अहिंसा उसे कहते हैं। पर जीव को न मारने का भाव, वह शुभराग है और निश्चय से वह शुभराग हिंसा है।

**मुमुक्षु :** कौन सा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपना। आनन्द के प्राण जिसमें राग उत्पन्न होने से घात हो जाता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! पर की दया पालूँ, ऐसा जो भाव... वह (दया) पाल सकता नहीं। क्योंकि पर की अवस्था कर नहीं सकता, परन्तु उसका भाव, वह शुभराग है। क्योंकि परसन्मुख के झुकाववाली वृत्ति का उत्थान है। वह राग स्वयं ही हिंसा है। आहाहा! उस राग से रहित जिसे अन्तर में अहिंसा दशा प्रगट हुई है। आहाहा! अपने जीव के स्वभाव की दया, अपना जीवन जो शुद्ध आनन्दकन्द है, उसकी उसे दया होकर वीतरागता और अहिंसा अर्थात् राग की उत्पत्ति बिना, अहिंसा अर्थात् अराग दशा जिसे प्रगट हुई है, उसे यहाँ अहिंसा और उसे धर्म का स्थान कहते हैं। आहाहा! यह जीव मण्डली, दया मण्डली आता है न सब? यह दया मण्डली यह दया पालन करो उसमें इकट्ठे। यह सब कहते हैं कि वह सब व्यवहार की बातें हैं, परन्तु यह निश्चय हो तो उसे व्यवहार कहा जाता है।

जिसे आत्मा की दया की ही खबर नहीं। जिसका जीवन आनन्द और शान्ति का जीवन आत्मा का है, ऐसे जीवन की जिसने ज्योति प्रगट की नहीं। आहाहा! और बाहर की अकेली दया और व्रत के परिणाम में रुककर हम धर्म करते हैं, यह माननेवाले धर्म के स्थान नहीं हैं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! अनन्त काल से यह रुला है। अनन्त काल से, आता है न श्रीमद् में? 'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान, सेये नहीं गुरु सन्त को छोड़ा नहीं अभिमान।' यह भगवान आत्मा, कहते हैं कि भले पंच महाव्रत पालता हो बाह्य व्रत, परन्तु जिसे व्रत के विकल्प से रहित आत्मा शान्त और अनाकुल आनन्द का धाम 'सुखधाम स्वयं ज्योति सुखधाम है।' उसकी जिसे अन्तर में अनुभव की दृष्टि हुई नहीं और जिसमें स्थिरता, वीतरागता, निर्दोषता प्रगट नहीं, वह जीव धर्म का स्थान नहीं। फिर भले नग्न हो और पंच महाव्रत पालता हो तो भी वह धर्म का स्थान नहीं। वह तो अधर्म का स्थान है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह तो परमार्थ की बात है। आहाहा! अनन्त काल से इसने यह बात अन्तर में इसे रुचि नहीं

और रुचि नहीं, इसलिए उसमें स्थिरता इसे हुई नहीं अन्दर में। इसे पुण्य और पाप के भाव में रुचि है और उसमें यह स्थित है। उसे तो यहाँ अधर्म का स्थान कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं, **पाँच महाव्रत जो अहिंसा, सत्य,...** पूर्ण सत्य प्रभु आत्मा है, उसकी अन्तर्दृष्टि और स्थिरता होना, वह सत्य है। सत्य वस्तु जो आत्मा पूर्ण सत्य जो परमात्मदशा जिसका स्वरूप है, ऐसी ही सत्यता जिसकी दशा में प्रगट हुई है, उसे यहाँ सत्य और धर्म का स्थान कहा जाता है। **अचौर्य...** जिसे राग की उत्पत्ति की चोरी भी जिसको नहीं। आहाहा! जिसे अरागीभाव अन्तर में प्रगट हुआ है, उसे अचौर्यव्रत निश्चय से कहते हैं। और **ब्रह्मचर्य...** ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप में चर्य अर्थात् रमे। काया से ब्रह्मचर्य पाले, सेवन करे, वह तो एक शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा! स्वस्त्री या परस्त्री का त्याग करके ब्रह्मचर्य शरीर से पाले, मन-वचन से। वह शुभराग है। वह मूल ब्रह्मचर्य नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु!

ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, उसमें जिसका चरना, विचरना, रमना होता है, ऐसी दशावन्त को ब्रह्मचारी और ब्रह्मचर्य कहते हैं। और उस ब्रह्मचारी को धर्म का स्थान कहते हैं। आहाहा! जगत को यह व्यवहार ऐसा लग पड़ा है। बाहर का एक तो व्यवहार बिना समझ का और अन्तर का व्यवहार जो शुभ क्रिया दया, दान, व्रत आदि, वह आत्मा के अन्तर अनुभव और वीतरागदशा की प्राप्ति बिना वह सब थोथा है। यह महाव्रत पाले तो भी थोथा चार गति में भटकने का संसार है। समझ में आया? कहाँ उसकी अभी निवृत्ति क्या? प्रवृत्ति क्या? कौन है आत्मा? क्या है वह दशा? इसकी खबर नहीं। अनन्त काल में अन्धेरे में चला है इसका खाता। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं **ब्रह्मचर्य...** जिसे आत्मा के आनन्द की दशा प्रगट हुई। ब्रह्म अर्थात् आनन्द। उस आनन्द की मूर्ति की चर्या जिसे रमणता हुई है। आहाहा! वह धर्म का स्थान है। वह धर्म का घर है। उसमें धर्म रहा हुआ है। दुनिया से अलग जाति है, भाई! समझ में आया? **तथा परिग्रह का त्याग...** यह राग का जो विकल्प है, दया, दान, व्रत, भक्ति का, वह भी परिग्रह है। लक्ष्मी धूल तो बाहर की बात रही। यह लक्ष्मी परिग्रह। हसुभाई! सेठ! यह सब सेठिया पैसेवाले कहलाते हैं न, यह सब धूल

के सेठ हैं। उस लक्ष्मी की तो बात भी नहीं यहाँ। परन्तु अन्दर में राग का कण उठे, दया का, दान का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का, भगवान स्मरण का। उस राग को भी परिग्रह कहा है। आहाहा! उस परिग्रह का जिसे त्याग है, उस निष्परिग्रह को निर्ग्रन्थ कहा जाता है। डॉक्टर! सूक्ष्म बात है यह। यह सब मीटिंग इकट्ठी होकर। बात की थी डॉक्टर को। ... आये। खबर पड़ी।

**मुमुक्षु :** .... थोड़ी-थोड़ी खबर पड़ गयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह मीटिंग ऐसी है यह सब। यह क्या करना यह? फाल्गुन शुक्ल तेरस का है न। आहाहा!

ऐसा जो परिग्रह... ऐसे लोग ऐसा कहते हैं कि वीतराग का मार्ग अनेकान्त है, अपरिग्रह है और अहिंसा है। ऐसे तीन बहुत आते हैं। अभी यह तीन लेख बहुत आते हैं। पच्चीस सौंवे वर्ष में भगवान (महावीर के निर्वाण महोत्सव में)।

**मुमुक्षु :** इसका अर्थ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अर्थ। यह २५००वें वर्ष में मनाते हैं न सब? सरकार की ओर से पचास लाख दिये हैं। यह सब मनाने के लिये। महाराष्ट्र में से बाहर लाख सरकार ने दिये हैं। उस सरकार ने। चारों ओर दुनिया... होगा। बाहर में। इसलिए लोग बहुत उसे, उसमें यह तीन डालते हैं। अपरिग्रह, अनेकान्त और वीतराग का मार्ग अहिंसा है। परन्तु यह अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त कहना किसे? अनेकान्त की व्याख्या यह है कि आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, उसमें राग और दु:ख नहीं। ऐसी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता को अनेकान्त धर्म कहा जाता है। व्याख्या अलग है, भाई! समझ में आया?

वे दरबार थे, नहीं? भाई! गोंडल दरबार। भगतसिंह, भगतसिंह। यह फिर थे अपने यह चन्दुभाई शिक्षा अधिकारी। यह सिहोर के। चन्दुभाई पूरे गोंडल में शिक्षा अधिकारी। दरबार को बहुत माने। व्याख्यान में आवे, वे स्वयं चन्दुभाई। तो वहाँ जाकर दरबार से बात करे। कहे, महाराज कुछ व्याख्या ही अलग प्रकार की करते हैं। कहे, अपने शब्दकोश में डालो। शब्दकोश बनाया है न गोंडल का। भगवत् शब्दकोश। उसमें डाला भाई! क्या कहा जाता है उसका नाम? भगवत मण्डल कोश। यहाँ आती है पुस्तक।

**मुमुक्षु :** डिक्शनरी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, डिक्शनरी है। यह तो वे चन्दुभाई कहते कि दरबार पूछे वहाँ कि महाराज अब कहा। उसकी दूसरी व्याख्या ही प्रत्येक की अलग करते हैं। यह शब्द डालो अपने शब्दकोश में। यह धर्म की व्याख्या अलग, अहिंसा की अलग। सब व्याख्या अलग। आहाहा! ऐसा है, बापू! उसे—जगत को खबर नहीं। अन्ध के अन्ध अनादि से चल गये हैं। उसने आँख खोली नहीं इसने आत्मा की।

कहते हैं, जिसे ऐसे पंच महाव्रत के निश्चयभाव प्रगट हुए हैं, व्यवहार से उसे विकल्प पंच महाव्रत का होता है। **ऐसा महामुनि ऋषीश्वर आयतन कहा है।** ऐसे मुनि को धर्म का स्थान कहा जाता है। कहो, हसुभाई! अब उसे पहिचानना पड़ेगा या नहीं? किसे ऐसा आयतन कहना? धर्म किसे कहना? धर्म किस प्रकार से उत्पन्न होता है?

**भावार्थ :- पहली गाथा में तो बाह्य का स्वरूप कहा था।** पाँचवीं में। पाँचवीं में बाह्य का स्वरूप कहा। भाई ने ऐसा लिया। मन, वचन और काया... लिया है न! **यहाँ बाह्य-आभ्यन्तर दोनों प्रकार के संयमी हो...** उसके आयतन। अब तीसरा आयतन। है तो आयतन की अब व्याख्या तीसरी गाथा।

★ ★ ★

## गाथा - ७

**सिद्धं जस्स सदत्थं, विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स।**
**सिद्धायदणं सिद्धं, मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं ॥७॥**

आहाहा! **अर्थ :- जिस मुनि के सदर्थ...** सत् अर्थ। सद्। **समीचीन अर्थ जो शुद्ध आत्मा...** सदर्थ है न? सत् अर्थ। सच्चिदानन्द प्रभु सत् अर्थ आत्मा। उसका जिसे अन्दर में ज्ञान वर्ते और अनुभव वर्तता है। आहाहा! है? सत् अर्थ। शुद्ध सत्। परमानन्द की मूर्ति सत्स्वरूप आत्मा का जिसे सत् का समीचीन... अर्थ अर्थात् पदार्थ **शुद्ध आत्मा जो सिद्ध हो गया हो...** आहाहा! जिसकी दशा केवलज्ञान प्राप्त की है। आहाहा! जो सत् स्वरूप प्रभु आत्मा है, उसका अर्थ जिसने प्रयोजनभूत जो पर्याय केवलज्ञान

प्रगट किया है। आहाहा! उस केवलज्ञानी आत्मा को यहाँ सिद्धायतन—धर्म का स्थान कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

समीचीन। सच्चा पदार्थ प्रभु स्वयं। आहाहा! शुद्ध आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प जो हैं, उससे रहित ऐसी पवित्र भूमि प्रभु की, ऐसी पवित्रता को जिसने अनुभव करके दशा प्रगट की है। वह **सिद्ध हो गया हो, वह सिद्धायतन है।** वह सिद्ध अर्थात् परमात्मदशा प्रगट की, वह सिद्ध। उसका आयतन। उस सिद्ध का आयतन वह आत्मा है। आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त बल की जहाँ उत्पत्ति जिसमें सत् अर्थ पदार्थ से हुई है, उस आत्मा को ही सिद्धायतन—सिद्ध का आयतन, परमात्मा का घर, उसे परमात्मा का स्थान कहा जाता है। इसके बिना बाहर के अकेले व्यवहार में लगे और परमार्थ की कुछ खबर न हो, उसके जन्म-मरण नहीं मिटते। समझ में आया? बाह्य के मन्दिर और बाह्य में धमाधम करे। क्या है चेतनजी? 'धामधूम से धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रहा दूर रे।' बाहर की धमाधम करे विकल्प और शुभराग की। प्रवृत्ति तो जड़ की होनेवाली होती है, वह होती है। शुभराग की धमाल करे, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा!

जहाँ आगे आत्मा की दशा पूर्ण प्रगट हुई है। सत् अर्थ। जैसा सत् है, वैसा पर्याय में प्रगट हो गया है। उसे यहाँ धर्म का स्थान सिद्धायतन, सिद्ध को रहने का स्थान, सिद्ध की उत्पत्ति का स्थान उसे कहते हैं। कहो, यह सिद्धायतन, यह भगवान की मूर्ति हो सिद्ध की, उसे सिद्धायतन कहते हैं। वह तो व्यवहार है, भाई! ऐसा निश्चय जिसे हुआ हो, उसे फिर वह शुभ विकल्प हो तो व्यवहार कहा जाता है। परन्तु जिसे ऐसी खबर ही नहीं, उसे अकेले बाहर के सिद्धायतन और प्रतिमा... आगे कहेंगे। प्रतिमा वह यह आत्मा है। आहाहा! आनन्द की मूर्ति प्रभु स्थिर होकर बिम्ब हो गया। वही आत्मा स्वयं प्रतिमा और आत्मा स्वयं जिनबिम्ब और आत्मा स्वयं चैत्यगृह है। आहाहा! इस आत्मा को इस प्रकार से जाने और अनुभव किये बिना अकेली बाहर की धमाल करे, वह धर्म नहीं, पुण्य है। वह पुण्य तो संसार है। आहाहा! अन्दर भगवान है या नहीं अन्दर? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उससे उल्टा है तो इससे सुलटा हो न। आहाहा!

**कैसा है मुनि ? जिसके विशुद्ध ध्यान है,...** यहाँ केवली लेना है, भाई! **धर्मध्यान को साधकर शुक्लध्यान को प्राप्त हो गया है,...** आहाहा! जिसे आत्मा अनन्त आनन्द का धाम, उसका धर्मध्यान, उसके धर्म का ध्यान करके, फिर शुक्ल अर्थात् उज्ज्वल वीतरागी ध्यान करके जिसे **ज्ञानसहित है, केवलज्ञान को प्राप्त हो गया है।** केवलज्ञान जो एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी जो आत्मा की सर्वज्ञ शक्ति थी, वह प्रगट करके जिसने केवलज्ञान प्रगट किया है। आहाहा! वह केवलज्ञानी ही आत्मा और धर्म आत्मा और सिद्धायतन है। धर्म का स्थान वह है। समझ में आया? क्या कहा? यह है धर्मायतन।

**केवलज्ञान को प्राप्त हो गया है। घातिकर्मरूप मल से रहित है...** आहाहा! ज्ञानावरणीय की हीनता जिसकी दशा में थी, उस हीनता का नाश करके जिसके ज्ञान की पूर्णता दशा में प्रगट हुई है, ऐसे परमात्मा स्वयं सिद्धायतन, वह सिद्ध का घर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **घातिकर्मरूप मल से रहित है, इसलिए मुनियों में वृषभ अर्थात् प्रधान है,...** मुनि तो आत्मध्यानी, ज्ञानी, आनन्द में रहनेवाले नग्न दिगम्बर, वनवासी रहनेवाले, वे भी एक धर्म के आयतन हैं, यह पहले कहा। परन्तु इन मुनि में प्रधान हैं यह। आगे बढ़ गये। आहाहा! जैसी आत्मा में सर्वज्ञशक्ति थी, सर्वज्ञस्वभावी ही भगवान आत्मा है। जैसे पीपर चौंसठ पहरी चरपराई से भरी हुई है। छोटी पीपर चौंसठ पहरी चरपराई से भरी हुई है और उसमें हरा रंग भरा है, वह चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया अर्थात् पूर्ण। अब सौ पैसे का रुपया हुआ न? अभी तक चौंसठ था न। चौंसठ पैसा अर्थात् रुपया। इसी प्रकार चौंसठ पहर घूँटे तो रुपया अर्थात् पूर्ण। ऐसी अन्दर में पूर्ण शक्ति थी, वह बाह्य प्रगट होती है। वह कहीं घूंटने से प्रगट नहीं होती। घूंटने से होवे, तब तो पत्थर और कोयला घूंट डाले तो निकलना चाहिए। उसमें थी।

पीपर के दाने में कद में छोटी, रंग में काली, कद में छोटी। कद इतना छोटा। रंग में काली। परन्तु चरपराई से भरपूर चौंसठ पहरी। रुपया-रुपया भरा है अन्दर, कि घूंटने से उसकी दशा शक्ति में से बाहर आती है। तब उसे चौंसठ पहरी पीपर कहा जाता है। देशी वैद्य रखते हैं या नहीं गर्मी के लिये। सर्दी-बर्दी हुई हो तो चौंसठ पहरी थोड़ी दे। लेना घी में, गुड़ में। अज्ञानी और शहद में बतावे। धर्मी जीव शहद में न कहे। शहद में

बड़ा पाप है। एक बूँद में बड़ा पाप शहद में। उसे ऐसा कहे कि यह थोड़ी सर्दी है तो यह ले लो इसमें से।

इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं, तेरे आत्मा में चौंसठ पहरी सर्वज्ञ और चौंसठ पहरी आनन्द पड़ा है। आहाहा! अन्दर में पूरा-पूरा आनन्द और पूर्ण ज्ञान भरा है। इसे अन्दर में एकाग्रता के घोंटन से जिसे शक्ति में से बाहर लाये हैं, सर्वज्ञपना, केवलज्ञान और अनन्त आनन्द। उसे यहाँ सिद्धायतन, वह मुक्ति के धामवाला आत्मा। आहाहा! वही गुण का धाम और सिद्धायतन मन्दिर कहलाता है। आहाहा! उसमें आता है न मन्दिर क्या कहलाता है? भक्ति में नहीं कहते गाँधी का? मन्दिर। भूल गये। ऐसी भाषा आती है। भक्ति में आवे।

**मुमुक्षु :** .... मंगल मन्दिर खोलो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ यह। मंगल मन्दिर खोलो। हाँ, बस यह। यह भजन है। परन्तु मंगल मन्दिर कहना किसे, उसकी खबर नहीं। आत्मा मंगल मन्दिर है। आत्मा में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान है, वह मंगल मन्दिर है। उसमें से एकाग्रता करके जिसने दशा में मंगल मन्दिर, केवलज्ञान और परमात्मदशा प्रगट की है, उसे यहाँ सिद्धायतन कहा जाता है। वह प्रतिमा है न भाई शाश्वत्? शाश्वत् सिद्धायतन है न! तो उसे अकेला माने। वह नहीं, कहते हैं, यहाँ है। सिद्धायतन है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु कहते हैं, तेरी महत्ता अन्दर पूर्ण पड़ी है, भाई! तुझे खबर नहीं। यह जो कुछ बड़े परमात्मा आदि हुए, वे कहाँ से हुए? वह कहाँ से यह दशा आयी? वह अन्दर में सामर्थ्य है। अन्तर में ... है, वह बाहर आयी है और सर्वज्ञपना और अनन्त आनन्द अन्दर है, उसमें एकाग्र होने से जिसने सर्वज्ञपद पर्याय में प्राप्त किया, वह धर्म का स्थान है। आहाहा! पहले मुनि को कहा था। यहाँ केवलज्ञान को कहा। आयतन। **जिसने समस्त पदार्थ जान लिये हैं।** लो! '**मुणिदत्थं**' है न? यह अन्तिम शब्द है न भाई! '**मुणिदत्थं**' यह। जिसे केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक के द्रव्य, गुण और पर्याय जिसे जानने में आ गये हैं। '**मुणिदत्थं**' है वह। पहला '**सदत्थं**' था दूसरा '**मुणिदत्थं**' है। '**सदत्थं**' में आत्मा समीचीन भगवान। '**मुणिदत्थं**' में इसके अतिरिक्त

तीन काल-तीन लोक के द्रव्य, गुण और पर्याय, वह भगवान केवलज्ञान में जाने। जिसने एक समय में तीन काल और तीन लोक की अस्ति अपने ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसा जो केवलज्ञान जिसे प्राप्त है, उसे धर्मस्तम्भ, धर्मस्थान, सिद्धायतन, घर, धर्म का घर उसे कहा जाता है। द्रव्य है, उसे नहीं। यहाँ तो पर्याय में प्रगट हो उसे (कहा जाता है)। समझ में आया? आहाहा!

राजकोटवाले दूसरे नहीं आये। यह डॉक्टर तो महीने, डेढ़ महीने से है। चन्दुभाई नहीं वहाँ? होंगे। ऐई! चन्दुभाई! दो व्यक्ति तो देखे हैं। आहाहा! समस्त परिहय। याद आया। **समस्त पदार्थ जान लिये हैं।** आहाहा! तीन काल-तीन लोक के द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय अर्थात् वर्तमान प्रगट अवस्था। यह जिसके ज्ञान में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, वह मुनिदर्शन हुआ। अर्थ अर्थात् पदार्थ को जिसने जाना है। पहले सद् अर्थ अर्थात् अपना आत्मा अनुभव किया है। पश्चात् अनुभव में परपदार्थ जितने हैं, उन सबको जिसने जाना है। ऐसी जो केवलज्ञानदशा, उसे धर्मायतन, सिद्धायतन, धर्म का स्थान, धर्म का घर, धर्म का मन्दिर उसे कहा जाता है। मंगल मन्दिर खोलना, आता है ऐसा। मंगल मन्दिर यह। दूसरा बाहर में कहीं नहीं। आहाहा! मम् अर्थात् पाप, गल अर्थात् गलाये, ऐसा जो आत्मस्वभाव अथवा मंग अर्थात् पवित्र और ल अर्थात् प्राप्ति—लाति। मंगल। आत्मा की पवित्रता जिसे अन्दर में प्रगट हुई, उसे मांगलिक कहा जाता है। आहाहा! यह तो तुम्हारे करते हैं न विवाह-बिबाह करे तब। वह है न क्या कहलाता है वह खीला? माणेकस्तम्भ। खीला डाले न चार। पहला मांगलिक किया। वह धूल भी नहीं मांगलिक। आहाहा!

मांगलिक तो यहाँ आत्मा में पूर्ण सच्चिदानन्द प्रभु, उसमें जिसने एकाग्र होकर धर्मध्यान और शुक्लध्यान करके... कहा न यह? उपाय भी कहा। ऐसी जिसे दशा प्रगट हुई है, उसे केवली परमात्मा और सिद्ध के स्थान, मंगलदशा के स्थान उसे कहा जाता है। कहो, चिमनभाई! इसमें सब पैसा-बैसा की बात इसमें कुछ आती नहीं कि इतने पैसे पैदा करते हैं।

**मुमुक्षु :** पैसे तेरे नहीं, ऐसा आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसे इसके पिता के भी नहीं और इसके भी नहीं। वे तो जड़ के हैं। पिता के अर्थात् वह पिता छोड़ गया हो न पाँच, पचास लाख, दो लाख। हसुभाई! इसे और करोड़ रुपये हो। किसी को और थोड़े हों। धूल भी नहीं। आहाहा! तेरी लक्ष्मी तो प्रभु! तेरे पास है। आहाहा! उसे भगवान कहते हैं आत्मा को। क्यों? भग का अर्थ ऐसा है। भग-वान है न? भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी। भग की व्याख्या यह है। भगवान। भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी। वान अर्थात् वाला। ज्ञान और आनन्द लक्ष्मीवाला ऐसा आत्मा, उसे यहाँ भगवान कहा जाता है। परन्तु शब्दार्थ जानना पड़ेगा या नहीं इसे? भगवान अर्थात् क्या? वह तो शब्द हुआ। परन्तु भग और वान। भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी से भरपूर प्रभु। भगवान अर्थात् लक्ष्मीवाला। यह आत्मा की लक्ष्मीवाला आत्मा है। यह धूल की लक्ष्मी और रागवाला आत्मा है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **जिसने समस्त पदार्थ ( पर्याय ) जान लिये हैं।** लो, इसमें तो सब पर्याय जानना आया। वह कहे कि वर्तमान पर्याय को जाने, भूत-भविष्य को न जाने। ऐई! तुम्हारा कहता है न... वहाँ। बहुत चर्चा चलती है, हों! पत्र में बहुत चलती है। वर्तमान प्रगट है, वह जाने। जो परिणमी नहीं, जो दशा-अवस्था वर्तमान में नहीं, भविष्य में होगी, भूत की गयी। अभी परिणमनरूप नहीं, इसलिए उसे न जाने।

**मुमुक्षु :** जिस समय जो निमित्त आनेवाला है, उसी प्रमाण।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो और अलग बात है। परन्तु उसे क्रमबद्ध तोड़ना है, वह था। जैसा निमित्त आवे, वैसी अवस्था हो। अर्थात् वह अवस्था भगवान तब जाने। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान के ज्ञान में—यह आत्मा भगवान सर्वज्ञ हो, उनके ज्ञान में—जैसे भूत की परिणमित अवस्था थी और भविष्य में परिणमित है, वह परिणमित है ऐसा जानते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बातें, भाई! समझ में आया? यहाँ ज्ञान में ख्याल नहीं आता? एक रोटी की लोई ले आटे की। आटा आटा। रोटी बनाने को। वह लोई टूटने पर उसके ख्याल में नहीं कि अभी यह परिणमन है और भूत में उसे आटे की दशा का था, वह ख्याल में नहीं उसे? और यह भविष्य में यह रोटी ऐसी होगी, ऐसा ख्याल में अभी से नहीं आता? इसकी रोटी ऐसी होगी, यह पहले से ख्याल में है। यह आकार ऐसा पहले

ख्याल में आ जाता है। भूतकाल में आटे का आकार था, अभी यह लोई का आकार हुआ। लोई अर्थात् टुकड़ा करे न उसमें से। आटे का। क्या कहलाता है तुम्हारे? लोई। और उसमें से रोटी ऐसी होगी। ऐसी अल्पज्ञ प्राणी को भी उस-उस पदार्थ की भूत, वर्तमान और भविष्य की पर्याय ख्याल में आ जाती है। बाबूभाई! आहाहा! यह तो हम तो बहुत वर्ष से कहते हैं ठेठ से।

यह वस्तु तीन काल-तीन लोक, बापू! यह सर्वज्ञपद, वह क्या है? और वह सर्वज्ञपद, वह तेरा स्वरूप है। आहाहा! यह एक समय में—सेकेण्ड के असंख्य भाग में, भविष्य जो अनन्त काल जब जो परिणमेगा, वह परिणमेगा, वह परिणमी है, ऐसा यहाँ ज्ञान में जाने। आहाहा! होगा इसमें से शक्ति है, ऐसा जाने, ऐसा नहीं। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान क्या न जाने? हीराभाई! भविष्य में जो अनन्त दशा आत्मा के ऊपर होंगी, परमाणु यह रजकण-रजकण लो न। यह रजकण की पहली अवस्था धूल की थी, फिर हुई दाने की, आटे की, अभी रक्त की। रजकण तो जो हैं वे हैं। उनकी अवस्थायें बदला करती हैं। रूपान्तर होता है। यह रजकण अभी खून की अवस्था है, अभी देखो न यह। यह रजकण तो पहले थे, परन्तु यह धूल की अवस्थारूप थे, फिर गेहूँ की अवस्था, फिर आटे की अवस्था, फिर खूनरूप से। और इस अवस्था के बाद राख होगी। रजकण है, उसका अस्तित्व रहकर, परमाणु पॉईन्ट जो है, उसका अस्तित्व रहकर उसकी अवस्था रूपान्तर होती है। वह रूपान्तर जैसा वहाँ है, वैसा भगवान जानते हैं। होगा ऐसा, इसलिए उसका ऐसा। ऐसा नहीं। ऐसा है... ऐसा है—ऐसा वर्तमान है। आहाहा! प्रत्यक्ष है यह। बड़ा विवाद उठाते हैं न। खोटा। यह आत्मा की शक्ति की उसे खबर ही नहीं। आहाहा! जिसने शक्ति में से व्यक्तता प्रगट की, ऐसे मुनि प्रधान को सिद्धायतन कहते हैं। उसे मुक्ति के स्थान, धर्म के स्थान, परमात्मा की उत्पत्ति का स्थान, वह आत्मा है। आहाहा! कहो, रमणीकभाई! यह तुम्हारा मकान-बकान की कुछ कीमत नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा!

यहाँ तो यह वीतराग की मूर्ति की प्रतिमा का धर्मायतन भी व्यवहार कहलाता है। वह तो शुभभाव में निमित्त होता है, पुण्य में। धर्म नहीं। धर्मस्थान तो भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसी बात! चल निकले हैं न सब मानो यहाँ से धर्म होगा... यहाँ से धर्म

होगा... लाखों लोग निकले। यह अभी आया था। डेढ़ लाख लोग इकट्ठे हुए। परन्तु क्या हुआ? चींटियाँ बहुत इकट्ठी हो तो क्या उसकी कीमत है? चींटियों के नगर (झुण्ड) बहुत हों। इससे कहीं मनुष्य की गिनती में आवे वे? इसी प्रकार जिसे धर्म की खबर नहीं कि आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है। अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु प्रज्ञाब्रह्मा—ज्ञान का पुंज प्रभु आत्मा है। उसमें से जिसने केवलज्ञान की दशा जिसने प्रगट की, उसे यहाँ धर्मस्थानी जीव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जहाँ निश्चय का जिसे भान नहीं, उन जीवों को धर्म का स्थान नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। फिर भले वह महाव्रत पालता हो, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और मन्दिर लाखों कराता हो। मन्दिर तो वह बना नहीं सकाता। भाव शुभ करे। समझ में आया?

हमारे... कहते परसों आये थे। कि यह बाहर का कहा, यह सब इकट्ठे हुए। वह तो कहे, होनेवाला होगा वैसा होगा। तुम कहते थे न ऐसा। बात सच्ची। ...भाई कहते। वाणंद। वाणंद। वे सब इकट्ठे होते हैं। कहते हैं, वह तो होनेवाला होगा, वह होगा और कहे। बात सच्ची। आहाहा!

**भावार्थ।** यह आयतन की व्याख्या हुई। **इस प्रकार तीन गाथा में 'आयतन' का स्वरूप कहा।** भावार्थ है न भावार्थ। **पहिली गाथा में तो संयमी सामान्य का बाह्यरूप प्रधानता से कहा।** लो! बाह्य डाला। मन, वचन को गुप्त किया है, जिसने इन्द्रियाँ वश की हैं। उसे भगवान ने संगति का.. है, निर्ग्रन्थदशा है। जिसकी दिगम्बरदशा है। अन्तर निर्ग्रन्थदशा है। उसे आयतन कहा जाता है। **दूसरी में अन्तरंग-बाह्य दोनों की शुद्धतारूप...** दूसरे में, दूसरी गाथा में बाह्य शुद्ध नग्नदशा आदि, अन्तर शुद्ध विकाररहित। **ऋद्धिधारी मुनि ऋषीश्वर कहा...** लो, ठीक, ऐसा कहते हैं। पहले साधारण मुनि लिये। पहले ऋद्धिधारी मुनि। ओहोहो!

**इस तीसरी गाथा में केवलज्ञानी को,...** केवलज्ञानी परमात्मा तीसरे बोल में आयतन लिये। आहाहा! धर्म के स्थान यह हैं। मूल तो वह अधिक निकला था न श्वेताम्बर का। उसके सामने है। धर्म का भान नहीं था और बाहर मन्दिर बनाये और बाहर धमाधम करे, पाँच-पच्चीस लाख खर्च करे। तो मानो हम, धर्मी, धर्म की प्रभावना। लोग मिले उसमें मिले। उसके लिये है यह। बापू! धर्म तो यह है। जिसे वीतरागता

आत्मा के अन्दर में से प्रगट हुई है। वह साधारण मुनि भी धर्मायतन, ऋद्धिधारी मुनि भी धर्मायतन, केवलज्ञानी परमात्मा हुए, वे भी धर्मायतन। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। वे धर्मात्मा हुए।

**यहाँ इस प्रकार जानना जो 'आयतन' अर्थात् जिसमें बसे,...** देखो! जिसमें बसे। **निवास करे, उसको आयतन कहा है,...** लोग नहीं कहते कि भाई! यह घर के मकान हो तो भूखे-प्यासे भी पड़े रहें। ऐसी लोग बातें करते हैं, नहीं? रोटियाँ बिना चले, परन्तु स्थान बिना नहीं चले, ऐसी बातें करे, यह फुरसत हो न वे। ओटाला अर्थात् स्थान। डॉक्टर! ऐसा कि भूखे-प्यासे हों तो भी रह सकें, परन्तु स्थान तो चाहिए न। महिलायें बातें करे फुरसत हो न, वे कितनी ही बातें करे। यह तो तब। स्थान के सामने ऐसा कि मकान मिला हो तो ५०-५० हजार, पच्चीस हजार। भाई! भूखे। यदि अपवास हो ऐसा हो तब तो रहें आहार बिना। परन्तु मकान बिना कहीं रहा जाता है?

यहाँ कहते हैं कि कौनसा मकान? जिसमें बसे वह निवास करे, वह आयतन। **इसलिए धर्मपद्धति में जो धर्मात्मा पुरुष के आश्रय करनेयोग्य हो, वह धर्मायतन है।** आहाहा! अन्दर में आनन्द के धाम में रहना है, वह धर्मायतन आत्मा है। धर्म अर्थात् निर्दोष वीतरागीदशा। जिस स्थान में उत्पन्न होती है, उसे यहाँ धर्मायतन कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा! **इस प्रकार मुनि ही धर्म के आयतन हैं,...** मुनि वेश अकेला। **अन्य कोई भेषधारी,...** नहीं। भाषा देखो! नग्नमुनि दिगम्बर और अन्तर में तीन कषाय का अभाव। अनुभव की दशा, ऐसे मुनि को धर्मायतन कहा जाता है।

**अन्य भेषधारी,...** ऐसे रहित दूसरे वेश के धारक, चाहे तो वस्त्र पहनकर मुनिपना माने, वे सब अन्य वेशधारी कहलाते हैं। वे वीतरागमार्ग के वेशधारी नहीं। भगवानजीभाई! ऐसा मार्ग भारी सूक्ष्म। वहाँ तुम्हारे मोम्बासा में किया था? क्या किया? मोम्बासा में? दस लाख का मन्दिर। वहाँ सब इकट्ठे हुए और उसमें भाई ने पैसे भरे थे। लालजीभाई ने। ४५ हजार कुछ थे। ४२ हजार। खबर है। अफ्रीका में था और मोम्बासा में मन्दिर। हो...हा... हो...हा...हा... धूल भी नहीं, सुन न! जिसे अभी आत्मा क्या भगवान ने कहा, ऐसे आत्मा की सम्यग्दर्शन का भान नहीं, उसे यहाँ बाहर से धर्म कहाँ

से होता था ? लो ! लाख मन्दिर बनावे न ! करोड़ रुपये खर्च करे, उसमें धर्म कहाँ था ? आहाहा ! वह तो मिथ्यात्वसहित राग की मन्दता हो तो पुण्य हो।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं... नहीं। ... नहीं....

प्रभु आत्मा विकल्प और राग रहित चीज़, उसकी जिसे दृष्टि और धर्म के स्थान जिसने देखे नहीं, वह धर्म के स्थान में अन्दर में प्रवेश किया नहीं, उसे धर्म कहाँ से होगा ? आहाहा ! बाहर के ऐसे स्थान में अनन्त बार गया और आया। पुण्यबन्ध हो राग मन्द हो तो। वह चार गति में भटके। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

**अन्य कोई भेषधारी, पाखण्डी ( -ढोंगी ) विषय-कषायों में आसक्त,...** उस राग में जिसकी आसक्ति पड़ी है। आहाहा ! यह ऐसा कहते हैं। चाहे तो पुण्य का भाव हो। दया, दान, व्रत, भक्ति का पुण्यभाव, उसमें जिसकी आसक्ति है, वे सब वेशधारी मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा ! समझ में आया ? अब यह अधिकार आया मौके से इसमें। वह... विरोध किया है इसमें। **परिग्रहधारी...** यह वस्त्र और पात्र रखनेवाले मुनि माननेवाले, वे सब वेशधारी धर्मी नहीं। मणिभाई ! है ? परिग्रह—वस्त्र-पात्र रखकर हम धर्मी हैं, साधु हैं। कहते हैं कि वह तो **परिग्रहधारी धर्म के आयतन नहीं हैं,...** आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बातें।

**तथा जैनमत में भी जो सूत्रविरुद्ध प्रवर्तते हैं...** फिर जैनमत, भाई ! यह दिगम्बर मत। दिगम्बर धर्म के नाम से भी जैनमत में भी कोई सिद्धान्त विरुद्ध श्रद्धा-ज्ञान में प्रवर्ते, वह भी धर्मायतन नहीं। आहाहा ! कहो, माणेकचन्दभाई ! ऐसा है। छगनभाई ! यहाँ तो ऐसी बात है, भाई ! किसी के साथ वैर और विरोध की बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान ने ऐसा कहा है और ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। वीतराग दिगम्बर मुनि के अतिरिक्त जितने वेशधारी हैं, वे सभी धर्मायतन नहीं। अधर्म के स्थान हैं। और दिगम्बर में भी मुनि दिगम्बर होकर भी जिसे अभी राग से भिन्न मेरी वस्तु है, (ऐसा) सम्यग्दर्शन नहीं और अकेले राग के क्रियाकाण्ड में पड़ा है, वह भी वेशधारी है। वह सूत्र से विरुद्ध चलनेवाला है। समझ में आया ? कठिन पड़े। पाटनीजी !

**सूत्रविरुद्ध प्रवर्तते हैं, वे भी आयतन नहीं हैं,...** जो कोई जैन में दिगम्बर साधु नाम धरावे और यह दया, दान, व्रत और भक्ति से धर्म मनावे, वह पुण्य की क्रिया, वह धर्म है और करते-करते धर्म होगा, ऐसा मनानेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। वे दिगम्बर जैन साधु नहीं।

**मुमुक्षु :** व्यवहार से धर्म मनावे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, व्यवहार से धर्म होता है, व्यवहार क्रिया करो, करते-करते निश्चय होगा। वे सब मिथ्यादृष्टि, दिगम्बर साधु हो तो भी वे जैन नहीं। आहाहा! ऐसा यहाँ कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का पुकार है यह। समझ में आया? जैनमत में भी... सातवाँ अध्ययन लिया है न? मोक्षमार्गप्रकाशक। सातवाँ अध्ययन। पाँचवें, छठवें में अन्यमति के सब लिये। सूत्रसिद्धान्त वीतराग ने कहे हुए सिद्धान्त। कल्पित बनाये हुए सिद्धान्त, वे सिद्धान्त नहीं। समझ में आया? उन आगमों की जो... वह तो भगवान के कहे हुए आगम हैं। उसका यह आगम मन्दिर है व्यवहार। समझ में आया? परन्तु जिसने कल्पित बनाये भगवान के नाम से सूत्र (बनाये), वे सूत्र नहीं। उन्हें माननेवाले भी मिथ्यादृष्टि हैं। वे धर्म के स्थान नहीं। बापू! ऐसी बात है यह। सम्प्रदाय के पक्षवालों को दुःख लगे जरा। क्या हो? सत्य बात तो ऐसी है।

**वे सब अनायतन हैं।** और सच्चे देव-गुरु भी आत्मा के लिये व्यवहार आयतन हैं। निश्चय आयतन नहीं। यह याद आया। क्या याद आया था? नवरंगभाई का याद आया। नवरंगभाई... अपने वाँचते थे न रात्रि में वह आयतन? तब नवरंगभाई बोले थे। ओय... देव, गुरु और धर्म भी अनायतन है। पर आयतन। गजब। ... नवरंगभाई बोले थे। याद नहीं आया था अभी? राजकोटवाले आये नहीं। पानी नहीं न वहाँ, इसलिए नहीं आये? पानी नहीं ... इसलिए नहीं आये? ऐसा पूछे। अन्तर और बाह्य दोनों कहा था। कहो, समझ में आया? रामजीभाई ने वाणी लिया था। यह सेठ आये है न अकेले। नीचे ... है।

यहाँ तो वीतराग मत में वीतराग केवलियों ने कहा हुआ मार्ग, उससे विरुद्ध दिगम्बर धर्म के नाम से भी जो वीतराग की आज्ञा को नहीं माननेवाले, यह देह की

क्रिया और दया, दान, व्रत की क्रिया से धर्म माननेवाले, वे भी धर्म के स्थान नहीं। वे वन्दन के योग्य नहीं, आदर करने के योग्य नहीं। ऐसा कहते हैं अन्दर। आहाहा! समझ में आया? कहेंगे अभी पीछे। यह आया, देखो। **धर्मात्मा को उसी का आश्रय करना, अन्य की स्तुति, प्रशंसा, विनयादिक न करना,...**

**मुमुक्षु :** बोधपाहुड़ का यह आशय है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आशय। बोधपाहुड़ ग्रन्थ का यह आशय है। कहने का यह आशय है। बातें करने का नहीं या कुछ यह। जिसे अन्दर में सम्यग्दर्शनसहित जिसे वीतरागता प्रगट नहीं हुई और मात्र जिसे राग की क्रिया और बाहर की नग्नदशा में मुनिपना मानते हैं, वे सब धर्म के स्थान नहीं हैं। समझ में आया? और दुनिया को प्रसन्न रखना कि भाई! यह क्रिया, व्रत और व्यवहार करूँगा और करते-करते निश्चय होगा, वे सब मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव हैं। उन्हें जैन के स्थान और धर्मायतन नहीं कहते। समझ में आया? यह तो ढ़िंढोरा पीटकर बात है यह।

**सब अनायतन हैं। बौद्धमत में पाँच इन्द्रिय, उनके पाँच विषय, एक मन, एक धर्मायतन शरीर ऐसे बारह आयतन कहे हैं, वे भी कल्पित हैं, इसलिए जैसा यहाँ आयतन कहा, वैसा ही जानना; धर्मात्मा को उसी का आश्रय करना,...** यह ऐसे धर्मात्मा सम्यग्दर्शनसहित चारित्रवन्त हो निर्ग्रन्थ मुनि या केवली। आहाहा! उन्हें धर्मायतन मानकर आश्रय करना। उनकी स्तुति करना; अन्य की नहीं। अन्य की प्रशंसा नहीं **विनयादिक न करना, यह बोधपाहुड़ ग्रन्थ करने का आशय है।** यह पण्डित जयचन्द्रजी जयपुर के, उन्होंने यह अर्थ किया है, लो! **जिसमें इस प्रकार के निर्ग्रन्थमुनि रहते हैं...** निर्ग्रन्थ मुनि, जिन्हें रागरहित दशा प्रगट हुई है, उन्हें वीतराग धर्म की दशा (प्रगट हुई), जिन्हें आयतन अन्तर से प्रगट हुए हैं। वे निर्ग्रन्थ मुनि और उन्हें रहने का स्थान—क्षेत्र, वह व्यवहार आयतन है। व्यवहार आयतन। मुनि रहे वहाँ व्यवहार घर कहलाता है। वह व्यवहार है। पुण्यबन्ध का कारण। स्वभाव का शान्ति का और आनन्द का स्थान। ऐसे तीन आयतन की व्याख्या की। चैत्यगृह कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मगसिर शुक्ल १५, सोमवार, दिनांक-१०-१२-१९७३**
**गाथा - ८, ९, १०, प्रवचन-६४**

...यह आता है। योगसार (में आता है)। सर्व जीव ज्ञानमय है, चैतन्यमय है। स्वयं चैतन्यमय आत्मा को जाने और दूसरे के आत्मा को चैतन्यमय जाने। जाननेवाला जाने। विशेष कहेंगे नौवें में। **अन्य जीवों को चैतन्य अर्थात् चेतनास्वरूप जानता हो, आप ज्ञानमयी हो...** विशेष है न वापस '**णाणमयं**' तीसरे पद में। **और पाँच महाव्रतों से शुद्ध हो,...** ऐसा विशेष। ज्ञानमय हो और विशेष पंच महाव्रत के साथ शुद्ध हो। **निर्मल हो,...** पंच महाव्रत के परिणाम और उस भूमिका में चारित्र की दशा की निर्मलता शुद्ध हो। ज्ञानमय आत्मा जाने, पर को ज्ञानमय जाने, तदुपरान्त ज्ञानमय सहित, ज्ञान के भानसहित जिसे अन्तर चारित्र की दशा और पंच महाव्रत का भाव साथ में होता है। **उस मुनि को हे भव्य! तू चैत्यगृह जान।** आहाहा! उस मुनि को तू चैत्य अर्थात् ज्ञान का घर (जान)। आहाहा! जाननेवाला आत्मा भगवान, उसे जिसने जाना और उसने जिसे दूसरे का ज्ञानस्वरूप आत्मा, ऐसा जिसने जाना और जो जानने के उपरान्त जिसे चारित्र की दशासहित पंच महाव्रत के भाव हों, उसे चैत्यगृह, वह चैत्य में-ज्ञान के घर में रहा हुआ है। उसे चैत्य कहते हैं। आहाहा! कहो, पण्डितजी! यह... आहाहा!

**तू चैत्यगृह जान।** ऐसा कहा है न? जान, शब्द है न इसमें। चौथे पद में है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि तू जान। उसे जान चैत्यगृह। यह मात्र प्रतिमा को लेकर बैठे और ऐसे चैत्य के अन्तर के ज्ञान के स्वभाव का भान न हो और ज्ञानस्वरूपी सब आत्मा है, ऐसी उसकी दृष्टि न में हो और वह ज्ञानमय आत्मा ज्ञानस्वरूप सहित चारित्र की रमणता में न हो, उसे चैत्यगृह नहीं कहा जाता। आहाहा!

**भावार्थ :- जिसमें अपने को...** यह अधिकार लेने का कारण क्या है? कि उस समय भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जब (हुए), तब श्वेताम्बर पंथ निकल गया था। सौ वर्ष पहले (निकल गया था), इसलिए यह चैत्य और देरासर और मन्दिर बनाकर मानो बड़े-बड़े चैत्यगृह बना लेंगे और धर्म और लोग इकट्ठे हों बाहर प्रवृत्ति में। उसे कहते

हैं कि बापू! वह चैत्यगृह नहीं। आहाहा! समझ में आया? चैत्यगृह तो यह है। ऐसा तो बनाकर करे, वह तो सब बहुत जीव होते हैं। परन्तु यह तो मिथ्यादृष्टि जो उसमें ही धर्म मानता है। उसमें भी जो चैत्यगृह भगवान ने कहा हुआ आत्मा ऐसा जिसे चैत्यपना सामने प्रतिमा हो, उससे विरोध जो अन्दर। गहने और वस्त्र डालकर मन्दिर बनाया, वह मन्दिर नहीं। वह व्यवहार से भी मन्दिर नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार मन्दिर तो कैसा होता है? कि जिसे चैत्य का ज्ञान है, ऐसा जो निश्चयवाला आत्मा। ऐसा जिसका बाह्य चैत्य हो। ज्ञान की मूर्ति जिसने वीतरागमूर्ति स्थापित की है, उसे दूसरा कोई अलंकार या वस्त्र या गहने होते नहीं। यह चैतन्य निश्चय जिसे उसका भान है, ऐसे जीवों को दूसरा व्यवहार ऐसा होता है, उसे पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? और अकेले बाहर के बनाकर अन्दर प्रवृत्ति लाखों लोग सम्मिलित हो और मानो कि ओहोहो! वह भी एक धर्म है, अथवा धर्म का साधन है, यह नहीं—ऐसा कहते हैं।

निश्चय तो आत्मा भगवान ज्ञानमय आत्मा। चैत्य चेतनेवाला। नौवें में अधिक कहेंगे। वह चेतनेवाला है, जाननेवाला है अकेला बस। वह जगत का साक्षी है। आत्मा जगत का साक्षी है और दूसरे आत्मायें भी जगत के साक्षी ही हैं। आहाहा! समझ में आया? 'सर्व जीव है ज्ञानमय धारे समता धार...' आता है न योगसार। योगसार। योगसार में आता है। सभी आत्मायें ज्ञानमय हैं। आत्मा जिसे कहते हैं। पुण्य और पाप, वह मेरा आत्मा है? वह तो अनात्मभाव है। आहाहा! आत्मा चैतन्यबिम्ब है। उसकी—जिनबिम्ब की व्याख्या लेंगे। यह तो चैतन्यस्वरूप है। वह चैतन्यस्वरूप तो स्वयं अपने को जाने और दूसरे को चैतन्यस्वरूप जाने और तदुपरान्त, आत्मज्ञान उपरान्त जिसे पंच महाव्रत के भाव हों अर्थात् चात्रिदशा हो, तब पंच महाव्रत की शुद्धि कही जाती है। आहाहा! शुद्ध शब्द प्रयोग किया है न? '**पंचमहव्वयसुद्धं**' का अर्थ यह है कि उसे वहाँ चारित्र होता है और उस चारित्र की भूमिका में ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प व्यवहार से होते हैं। आहाहा! उसे चैत्यगृह कहा है।

ऊपर कहा है न! जिनमार्ग में जिनेश्वरदेव ने उसे चैत्यगृह कहा है। ऐसा पहले से कहा था। है न यह शब्द आया है न? '**जिणमग्गे, णिद्दिट्ठं**' देखो, पाँचवीं गाथा। यह

पहले भी आया है। दूसरी गाथा। '**जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं। वोच्छामि समासेण**' '**जिणमग्गे**' जिनमार्ग, वीतराग का मार्ग परमेश्वर का। उसमें जो जिनवर ने जो कहा, चैत्यगृह। भगवान ने इस जैनमार्ग में उसे चैत्यगृह कहा है। समझ में आया? अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु, वह ज्ञान को जाने वापस। ज्ञानस्वरूप भगवान को ज्ञान से जाने और उसे यहाँ चारित्र की शुद्धतासहित पंच महाव्रत हों, उसे चैत्यगृह कहा जाता है।

**चेतनास्वरूप आत्मा...** लो! **जिसमें अपने को और दूसरों को जाननेवाला ज्ञानी...** भावार्थ। **निष्पाप-निर्मल इस प्रकार चैत्य...** निर्मल चैत्य भगवानस्वरूप आत्मा **चेतनास्वरूप आत्मा रहता है,...** लो! चेतनास्वरूप ऐसे चेतनास्वरूप जो आत्मा वहाँ है, उसे चैत्यगृह कहते हैं। आहाहा! **इस प्रकार का चैत्यगृह संयमी मुनि है...** आहाहा! जिसे आत्मज्ञानसहित चारित्र की दशा जिसे प्रगट हुई है, वह मूल तो आत्मज्ञान कहना है और आत्मा ज्ञानमय है, ऐसा जाने, ऐसा। आत्मा राग का करनेवाला है और व्यवहार का करनेवाला है, वह करनेवाला माने, वह आत्मा ही जानता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार, दया, दान, व्रत, परिणाम करे आत्मा, वह आत्मा—ऐसा नहीं। आत्मा तो जाननेवाला है अपना स्वरूप और पर का (जाननेवाला है) बस। समझ में आया? वह व्यवहार करे, व्यवहार करे—ऐसा है न? वह व्यवहार करे, वह आत्मा ही नहीं। होवे, उसे जाने, वह आत्मा। सेठ! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा!

व्यवहार बीच में आवे, परन्तु उसे करे, वह आया। यह तो ज्ञानमय आत्मा फिर करे किसे? व्यवहार हो, उसे ज्ञान में जाने। जाननेवाला वह आत्मा—ऐसा यहाँ कहा है न? किस शैली से बात की है, देखो न! व्यवहार... व्यवहार बीच में होता है, परन्तु उस व्यवहार का कर्ता नहीं, वह व्यवहार का जाननेवाला रहता है। वह जाणमय स्वरूप है, इसलिए जाननेवाला रहे, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**इस प्रकार का चैत्यगृह संयमी मुनि है...** लो! चेतनास्वरूप वह तो जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... चाहे तो आर्तध्यान हो तो भी जाननेवाला, रौद्रध्यान हो तो भी जाननेवाला, व्यवहाररत्नत्रय के भाव हों तो भी जाननेवाला। समझ में आया? ऐसा जिसका स्वरूप है, उसे यहाँ चैत्यगृह कहा जाता है। आहाहा! कितनी बात डाल दी! जाननेवाला व्यवहार को करे नहीं। जाननेवाला पर की कोई क्रिया करे नहीं। जाननेवाला

जाने। जाने, उसमें पर का करे, यह कहाँ आया? दया, दान के भाव भी करे, वह भी जाननेवाले में हो नहीं सकते। आहाहा! समझ में आया? वह जाननेवाला तो जाननेवाला जाने उसे चैत्य, जिसके घर में ऐसा चैत्यपना पड़ा है। उसे भले वहाँ व्यवहार हो, शरीर की क्रिया आदि हो, वह उसकी नहीं। उसका तो वह जाननेवाला रहनेवाला है। उसे यहाँ चैत्यगृह कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

**अन्य पाषाण आदि के मन्दिर को चैत्यगृह कहना व्यवहार है।** परन्तु वह इस जाति का वापस सामने वीतरागमूर्ति। मुनि हैं चैत्य, ऐसा सामने प्रतिबिम्ब हो। वीतराग मूर्ति के ऊपर कोई वस्त्र नहीं, यह केसर का फलाना करना, फूलमाल, वह नहीं होता। उसे तो व्यवहार से चैत्यगृह कहा जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा जैसा चैतन्यमय रागरहित चीज़ है, वैसा ही सामने प्रतिबिम्ब में (हो)। कोई राग का चिह्न ऊपर हो और उस प्रतिमा को चैत्यगृह नहीं कहा जाता। आहाहा! समझ में आया? यह आठवीं (गाथा) हुई। पाँचड़ा है इसमें? भूल है छापने में।

★ ★ ★

## गाथा - ९

**आगे फिर कहते हैं :—**

**चेइयं बंधं मोक्खं, दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।**
**चेइहरं जिणमग्गे, छक्कायहियंकरं भणियं॥९॥**

आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ने जैनमार्ग में **जिसके बन्ध और मोक्ष, सुख और दुःख हो, उस आत्मा को चैत्य कहते हैं...** क्या कहते हैं? कि बन्ध हो, उसे जाने; मोक्ष हो, उसे जाने परन्तु बन्ध है। अवस्था में बन्ध है। साधक जीव है न? वह बन्ध को जाने, मोक्ष को जाने, सुख-दुःख की कल्पना हो, उसे भी जाने। सुख-दुःख है। भूमिका की दशा की बात है। आहाहा! समझ में आया? **जिसके बन्ध और मोक्ष, सुख और दुःख हो, उस आत्मा को चैत्य कहते हैं अर्थात् ये चिह्न जिसके स्वरूप में हो, उसे चैत्य कहते हैं,...** जिसकी दशा में राग का अंश.... साधक है न

यहाँ? साधक की बात है न! मुनि की बात लेनी है न! केवली की लेनी है? जिसे राग का अंश है—भावबन्ध, उसे वह जाननेवाला रहता है। उसे राग से रहित होगा, ऐसा मोक्ष का भी उसे ज्ञान है। आहाहा!

यह तो समयसार में नहीं आया? सर्वविशुद्ध (ज्ञान अधिकार में) अन्त में। उदय, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष को जाने। ३२० (गाथा)। उसके पहले वह लेते हैं अधिक। समझ में आया? यह ३१९ में है चार बोल। ३२० में दो। वह उदय को जाने, निर्जरा को जाने, बन्ध को जाने, मोक्ष को जाने। आहाहा! वह तो जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... समझ में आया? ऐसा करके यह भी सिद्ध किया कि जाननेवाले को अभी राग का अंश है, मुनि है उसे। उसे भी जानता है। राग से रहित दशा हुई है मोक्ष, उसे भी वह जाने। जरा सुख की दशा आनन्द की हुई, उसे भी जाने। और दुःख की दशा का जरा विकल्प है, उसे भी वह जाने। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा को चैत्यगृह कहते हैं।

उसने थोड़ा दूसरा अर्थ किया है। ऐसा कि चैत्य ऐसा जो भाव, उससे विरुद्ध माने, वह बन्ध करे। ऐसा चैत्यस्वरूप जो भगवान आत्मा है, उसे न जाने तो बन्ध करे, उसे जाने तो मोक्ष करे। उसे जाने तो आनन्द आवे। उससे विरुद्ध करे तो दुःख हो, ऐसा कहते हैं। टीका करते हैं जरा। समझ में आया? क्या कहा यह? कि चैत्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द ज्ञानघन का विरोध करे अन्दर में तो बन्ध को करे। उसका अविरोध स्वरूप जानकर छूटे तो उसे मोक्ष हो, उसे—मोक्ष को जाने। उसमें सुख की कल्पना हो पर में जरा। अथवा आनन्द का सुख जो उत्पन्न हुआ, वह अनुकूल आत्मा के चैत्य की अनुकूलता करे तो सुख हो, प्रतिकूल करे तो दुःख हो। समझ में आया? चैतन्यस्वरूप जो ज्ञानभाव स्वभाव, उससे विरुद्ध करे तो दुःख हो, बन्ध हो। चैतन्यस्वरूप भगवान ज्ञानमूर्ति की अनुकूलता अर्थात् जैसा है, वैसा जाने और माने और अनुकूल रहे, उसे मोक्ष होता है, उसे सुख होता है, आनन्द की दशा फल में होती है। उसे यहाँ चैत्यगृह कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

**ये चिह्न जिसके स्वरूप में हो...** अर्थात् ज्ञानस्वरूपी आत्मा को बन्ध-मोक्ष को, सुख-दुःख को जानने की दशा होती है। जड़ में वह कुछ है नहीं। तथा चैतन्य को बन्ध

का कर्ता और दुःख का कर्ता, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? बन्धभाव राग का भाव है, उसका कर्ता आत्मा चैतन्य नहीं। उसका जाननेवाला है। आहाहा! गजब बातें आयीं! समझ में आया? यह सब गाथायें उत्कीर्ण हो गयी हैं परमागम (मन्दिर) में। यह ४७ शक्ति का विचार आया था, वह भी उत्कीर्ण हो गयी है, कहते हैं। ४७ शक्ति आवे न उसमें? ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी सर्वज्ञ अनुसार की। केवली परमात्मा के मुख में से निकली, उनके अनुसार की वाणी है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, ऐसा जो चैत्य भगवान आत्मा, उसे जो कुछ दुःख हो तो विरोध करे आत्मा के स्वभाव से तो दुःख हो। अथवा दुःख की दशा हो, उसे वह जाने, उसे चैत्यगृह कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **चिह्न जिसके स्वरूप में हो, उसे चैत्य कहते हैं, क्योंकि जो चेतनास्वरूप हो उसी के बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख सम्भव हैं।** जाननेवाले को सुख, दुःख, मोक्ष सम्भव है। जड़ को सुख होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। कहो, समझ में आया? ऐसा चैत्यगृह, लो।

जिसमें चैतन्यस्वभाव भरा हुआ है और जिसका जिसे भान हुआ है। उस भानवाले जीव को अभी जरा दुःख का ज्ञान होता है। दुःख होता है न थोड़ा, उसका ज्ञान होता है। आहाहा! लो! कहा न? **उसी के बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख सम्भव हैं।** जाननेवाले को। जाननेवाले के अन्दर में राग का, बन्ध का अंश है, मोक्ष है, सुख-दुःख की कल्पना। सुखरूप आनन्द उसे कहो, या दुःखरूप कल्पना। उसका वह जाननेवाला है। उसे सम्भव है। जड़ को नहीं हो सकते। आहाहा! समझ में आया? टीकाकार ने तो जरा अधिक... यह स्थानकवासी के ऊपर अधिक डालते हैं। वस्तुस्थिति यह है। ऐसा कि चैतन्य को माने नहीं, वे पापी हैं, ऐसा है। जगत को उसकी मान्यता है।

**मुमुक्षु :** मूल मिथ्यादर्शन....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, और यहाँ तो भाई! देखो, बात ऐसी है कि जैनधर्म और जैनदर्शन ही, यह दिगम्बर दर्शन को ही जैनदर्शन गिनने में आया है। दूसरे जैन के

सम्प्रदायों को जैनदर्शन गिना नहीं। भगवान ने—कुन्दकुन्दाचार्य ने गिना नहीं, इसलिए भगवान ने गिना नहीं। दुनिया के ऊपर विरोध और बैर नहीं। किसी के प्रति विरोध और द्वेष नहीं। परन्तु जैनदर्शन तो यह वीतरागी मुनि नग्न दिगम्बर, अट्ठाईस मूलगुण और अन्तर में तीन कषाय के अभाव का चैत्यगृह प्रगट हुआ है जिसे। उसे यहाँ जैनदर्शन कहा जाता है। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं। वह तो आत्मा का ऐसा स्वरूप है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह अभी दीक्षायें बहुत होती हैं न, इसलिए मानो कि ओहोहो! यह सब चारित्रवन्त हैं। मिथ्यादृष्टि है, उसे दीक्षा कैसी? गृहीत मिथ्यात्व के पोषक हैं। सवेरे कहते थे न भाई, कहाँ गये? तुम्हारे वींछियावाले। यह रहे। दीक्षायें हुई हैं। आठ लाख रुपये का चन्दा हुआ। वहाँ दो नम्बर के पैसे बहुत होते हैं। होवे परन्तु उसमें क्या है? इससे वस्तु क्या? आहाहा! ऐसी दीक्षायें दे! मिथ्यादर्शन है, वहाँ दीक्षा कैसी? आहाहा! अरे! मार्ग तो ऐसा है, भाई! किसी व्यक्ति के लिये बात नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! नुकसान तो उसे भोगना है न! जो करे, उसे भोगना पड़ेगा। मार्ग तो ऐसा है।

सर्वज्ञ पंथ में परमेश्वर ने जिसे दीक्षा कही है, वह तो वीतरागी मुनि नग्नदशा। बाह्य में नग्नदशा, खड़े-खड़े आहार ले, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हों और अन्तर में सम्यग्ज्ञानी चैतन्य को, चैतन्य को जानकर वेदता हो। उसे वह रागादि हों, उन्हें वह जाननेवाला रहता हो। आहाहा! उसे यहाँ जैनदर्शन कहो या चैत्यगृह कहो। यह दूसरे प्रकार से वर्णन है। समझ में आया? आहाहा! वह चैत्यगृह भगवान आत्मा में विराजता है आनन्द में, उसे चैत्यगृह कहा जाता है। आहाहा! पाटनीजी! दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा यह नहीं। यह तो अलग पड़े ऐसा है। एक भाई पूछते थे।

**मुमुक्षु :** भगवान के साथ मिलान खाये ऐसा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भगवान के साथ मिलान खाये ऐसा है। आत्मा के साथ मिलान खाये, ऐसा है न! आत्मा इसी जाति का है और इसी प्रकार से है। समझ में आया? आहाहा! यह चैत्य और प्रतिमा है, उसे उत्थापित की है, वह भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अनादि से सनातन मार्ग में जैसा चैत्य और जैसा जैनदर्शन का आत्मा का स्वरूप है वैसा, वैसी ही वीतराग मुद्रा सामने होती है अनादि की। वह प्रतिमा होती है,

व्यवहार से शुभभाव होता है उसमें। उसका निषेध करे, वह तो सारे जैनदर्शन का निषेध है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** व्यवहार का निषेध हुआ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जैनदर्शन का निषेध हुआ तो व्यवहार जैनदर्शन का निषेध हो गया। निश्चय का निषेध हो गया। ऐई! वह मार्ग यह है। उसमें कोई आड़ा-टेढ़ा जरा भी करे तो मिथ्यादृष्टि का पोषक है।

**मुमुक्षु :** वस्तु स्वरूप ही ऐसा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु स्वरूप ऐसा है। चैत्यगृह रखा, इसलिए सामने चैत्यगृह है। व्यवहार दिगम्बर प्रतिमा है, अनादि की है। नयी नहीं। वीतरागभाव अनादि का है, वैसी वीतराग की मूर्ति अनादि की शाश्वत है और कृत्रिम भी प्रतिमा और मन्दिर भी शाश्वत् सत् है, उसके साथ में है। आहाहा! गजब मार्ग, भाई!

कहा था भाई! नहीं? हमारे दामोदर सेठ थे। प्रतिमा के विरोधी थे। इसलिए वे कहे कि प्रतिमा की पूजा कब तक हो? कि मिथ्यादृष्टि हो तब तक। यह चर्चा चलती थी। (संवत्) १९८३ के वर्ष में। ४७ वर्ष हुए। ४० और ७। इतना कहा, देखो भाई! प्रतिमा की पूजा उसे होती है कि जिसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है, उसके ज्ञान का विषय जो निक्षेप है, उसे निक्षेप होता है। अज्ञानी को निक्षेप होता ही नहीं। जिसे नय प्रगट हुआ है। यह तो (संवत्) १९८३ की, ४७ वर्ष पहले की बात है। ऐसा नहीं चलता कहा मार्ग यह। तुम प्रतिमा को उत्थापित करो कि नहीं, ऐसा नहीं चलता। मिथ्यादृष्टि तो मिथ्यादृष्टि पूजे। यथार्थरूप से पूजता ही नहीं। जिसे सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है, ज्ञानमूर्ति प्रभु ऐसा श्रुतज्ञान प्रगट हुआ, उसका भेद पड़कर नय होते हैं। श्रुतज्ञान का भेद, वह नय निश्चय-व्यवहार। और निश्चय-व्यवहार का विषय—निश्चय का विषय स्व है और व्यवहार का विषय पर है। इसलिए निक्षेप के चार भेद, वे व्यवहार का विषय नयवाले को होता है। सम्यग्ज्ञानी को निक्षेप और प्रतिमा की पूजन यथार्थ होती है। न्याय समझ में आया? ऐसा नहीं चलता, कहा, यहाँ तो भाई! सम्प्रदाय में हैं, इसलिए तुम गड़बड़ करो, ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सुन्दर

मार्ग चैतन्य में जिसे प्रगट हुआ, जाना, उसे ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा कहते हैं। चैत्य की प्रतिमा, पूजा, ऐसा भाव होता है। परन्तु उसकी मर्यादा शुभ जितनी है। शुभ। ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं।

यहाँ तो निश्चय चैत्यगृह जिसे जानने में हो, उसे वह व्यवहार गृह होता है। इसलिए सामने तो मात्र मन्दिर और प्रतिमायें करके धमाधम चलाते और लोग मुड़ जाते अधिक। यह हम कहते हैं, बापू! निश्चय यह है। उसे समझे उसे फिर व्यवहार, उसके जैसा व्यवहार होता हो।

**मुमुक्षु :** उसे अनुसरकर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, उसे अनुसरकर होता है। आहाहा! गजब बातें भाई! यह तो परमसत्य की बात है, भाई! इसमें किसी पक्ष को दुर्भावना की बात नहीं यहाँ। सत्य यह है। उन्होंने... टीका में चैत्य आया है न? देखो, कहते हैं, यह चैत्य को उड़ानेवाले पापी हैं। ऐसा कहा। द्वेष नहीं। ... जाने। विपरीत मान्यता है। आहाहा!

यहाँ तो निश्चय बन्ध-मोक्ष और सुख-दुःख का सम्भव तो चैतन्य को होता है। अर्थात् कि जाननेवाला भगवान आत्मा, उसे बन्ध, मोक्ष और सुख, दुःख का ज्ञान होता है। जिसे जाननेवाला स्वभाव नहीं, उसे बन्ध-मोक्ष क्या है? अथवा अज्ञानी जो है, जिसे ज्ञानस्वरूप है—ऐसा भान नहीं, उसे बन्ध-मोक्ष और सुख-दुःख का ज्ञान नहीं। क्योंकि स्वयं ज्ञानस्वरूप है, ऐसा भान नहीं। तो उसे बन्ध-मोक्ष और सुख-दुःख का भी उसे ज्ञान नहीं। आहाहा! अज्ञानी, जिसे चैतन्यमय भगवान आत्मा है—ऐसी जिसकी दृष्टि हुई नहीं, उसे बन्ध-मोक्ष और सुख-दुःख का ज्ञान सच्चा नहीं हो सकता। समझ में आया? ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो गजब काम किया है। वस्तु की स्थिति है। जिनमार्ग में जिनेश्वर देव ने ऐसा स्वरूप कहा है। स्वयं कहे तो वह (भी) सत्य है, परन्तु जिनेश्वर के मार्ग में भगवान ने ऐसा कहा है। आहाहा!

**इस प्रकार चैत्य का जो गृह हो...** ऐसा जो चैत्य जाननेवाला-देखनेवाला। बन्ध-मोक्ष, सुख-दुःख की कल्पना को भी जाननेवाला-देखनेवाला। आहाहा! समझ में आया? **वह चैत्यगृह है।** वह चैत्य का जो गृह, ऐसे जाननेवाला-देखनेवाले का जो

स्थान आत्मा, वह चैत्यगृह है। आहाहा! **जिनमार्ग में इस प्रकार चैत्यगृह...** वीतरागमार्ग में ऐसा चैत्यगृह, देखा! **छह काय का हित करनेवाला होता है।** आहाहा! कोई एकेन्द्रिय प्राणी को भी जिसमें दुःख नहीं। समझ में आया? व्यवहार प्रतिमा चैत्यगृह में तो जरा एकेन्द्रिय आदि जीव का होता है न? व्यवहार। इसलिए यह कहा है। बाहर की भगवान की पूजा में सावद्य... सावद्यपना थोड़ा आता है। बहुत पुण्य राशि—शुभभाव बहुत होता है, परन्तु उसकी अपेक्षा कि यह जो चैत्यगृह है, किसी जीव को दुःख का कारण नहीं, ऐसा यह है। आहाहा! समझ में आया?

**चैत्यगृह छह काय का हित करनेवाला होता है। यह इस प्रकार का मुनि है।** वह तो मुनि ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। कोई भी प्राणी एकेन्द्रिय के पृथ्वी, अग्नि, वायु, पानी वह एकेन्द्रिय जीव भी न मरे, दुखित न हो, ऐसी दशा मुनि की होती है और उन मुनि को चैत्यगृह कहते हैं। समझ में आया? **इस प्रकार का मुनि है। पाँच स्थावर और त्रस में विकलत्रय और असैनी पंचेन्द्रिय तक केवल रक्षा ही करनेयोग्य हैं...** क्या कहते हैं? उन्हें कुछ उपदेश देने का नहीं। पाँच स्थावर। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति एकेन्द्रिय। आता है न? वे पाँच स्थावर और त्रस में विकलत्रय। त्रस में पंचेन्द्रिय नहीं, परन्तु विकलत्रय। अर्थात् जिनकी इन्द्रियाँ विकल हैं अर्थात् कम हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय।

**और असैनी पंचेन्द्रिय...** जिसे मन नहीं, वह पंचेन्द्रिय। **तक केवल रक्षा ही करनेयोग्य हैं,...** उन्हें मारना नहीं, इतना है, लो! उन्हें उपदेश नहीं हो सकता। मन नहीं, उसे उपदेश क्या? आहाहा! **इसलिए उनकी रक्षा करने का उपदेश करता है,...** कौन? मुनि। मुनि ऐसी रक्षा का उपदेश करे। आहाहा! किसी प्राणी को नहीं मारना, एकेन्द्रिय प्राणी भी नहीं। आहाहा! एकेन्द्रिय में तेरे माता, पिता, पुत्र पड़े हैं उसमें। पूर्व के माता-पिता। किसी प्राणी को मन से दुखित करने का भी भाव नहीं होता और दूसरों को ऐसे जीव की रक्षा अर्थात् नहीं मारने का उपदेश दे, उसे यहाँ चैत्यगृह कहा जाता है।

**इसलिए उनकी रक्षा करने का उपदेश करता है, तथा आप उनका घात नहीं करता है...** मुनि है, वह एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, छह काय का घात जरा भी न करे। आहाहा! **यही उनका हित है; और सैनी पंचेन्द्रिय जीव हैं... उनका घात नहीं करता है, यही**

**उनका हित है;...** पर का घात न करे, वही हित है, ऐसा कहते हैं। **और सैनी पंचेन्द्रिय जीव हैं, उनकी रक्षा भी करता है,...** उपदेश ऐसा दे, उसे न मारे वह उसका हित करे और उपदेश दे, ऐसा। दोनों है न! **रक्षा का उपदेश भी करता है तथा उनको संसार से निवृत्तिरूप मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश करते हैं।** लो! ओहोहो!

कहते हैं कि मुनि का ऐसा उपदेश होता है, वापस ऐसा कहना है। चैत्यगृह, ज्ञानस्वरूप जिसने भगवान आत्मा को जाना है, उस चैत्यगृह का उपदेश ऐसा होता है कि जिससे संसार से मुक्ति हो, ऐसा उसका उपदेश होता है। छह काय के प्राणी को नहीं मारने का उसका उपदेश होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! रक्षा शब्द पड़ा है न! उसमें... शब्द स्थानकवासी का, तेरापंथी का। स्थानकवासी कहे, रक्षा का उपदेश किया। वे कहे रक्षा का नहीं, नहीं मारने का। भाई! रक्षा का अर्थ इतना ही है। रक्षा कर कौन सकता है? दूसरे को नहीं मारने का भाव, बस उसका नाम रक्षा। आहाहा! पर की रक्षा कर कौन सकता है? उसके आयुष्य की स्थिति हो, वहाँ तक रहे और आयुष्य की स्थिति पूरी हो तो बचाने का भाव हो तो (भी) मर जाये। आहाहा! पर को नहीं मारने का भाव, वही पर की रक्षा कही जाती है।

यह व्याख्या ली थी न वहाँ? मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में नहीं? सातवें अध्याय में ली थी न वह। ऐसा कि इस जीव की रक्षा करना, ऐसा कहा है न शास्त्र में। कहा है टोडरमलजी ने। कि वह पर को प्रमाद से नहीं मारना, प्रमाद ऐसा नहीं करना, ऐसे उसकी रक्षा, उसका अर्थ है। पर को बचाना, ऐसा उसका अर्थ नहीं। कहा था। समिति में। अनित्य की भावना है न। वह समिति में लिखा है। बात सच्ची। जहाँ देखें वहाँ... ऐसा कि पर को बचाने का भाव नहीं वहाँ। रक्षा का नहीं, नहीं मारने का। प्रमाद नहीं, इसलिए नहीं मारने का भाव है। उसे समिति कहते हैं। वहाँ लिखा है। आहाहा! भाषा तो आवे। भाषा, परन्तु उसका अर्थ समझना चाहिए न! एक ओर कहना कि परजीव की दया पाल सकता नहीं और दूसरे प्रकार से कहना कि रक्षा करना, यह तो विरोध हुआ। सन्धि समझना चाहिए न। रक्षा करने का अर्थ कि पर को मारना नहीं। बस। पर को मारने का भाव नहीं, यही उसकी रक्षा कही जाती है। आहाहा! शास्त्र में विवाद।

**उनको संसार से निवृत्तिरूप मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश करते हैं।** छह काय का

हितकर शब्द है न? हित का उपदेश दे और उसे भी अपने को दूसरे को नहीं मारना, ऐसा। **संसार से निवृत्तिरूप मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश करते हैं। इस प्रकार मुनिराज को चैत्यगृह कहते हैं।** ऐसे मुनि को, नग्न दिगम्बर सन्त और अन्दर में नग्न अर्थात् रागरहित की दशा का भान, ऐसे मुनि को चैत्यगृह कहा जाता है। आहाहा! यह लोग अकेले बाहर में लगे थे। नग्न हो गये, हो गये मुनि। बापू! उसमें तो द्रव्यलिंग भी नहीं। आहाहा! मार्ग तो भगवान का ऐसा है, परन्तु यह निश्चय के भानवाला, वीतरागदशा जिसे हुई है और जिसके उपदेश में राग का पोषण नहीं परन्तु राग के अभाव के भाव का जिसमें उपदेश है। नहीं मारने का और मोक्ष करने का ऐसा उपदेश जिसका है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे उपदेशक जीव को, मुनि को चैत्यगृह कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह छह काय के हित के करनेवाले हैं, तब शब्द तो बहुत थोड़े हैं, परन्तु अन्दर ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा अपने को जाने, पर को जाने, जो ज्ञानस्वरूप ही है, उसे जो रागादि होते हैं, वह स्वरूप आत्मा नहीं। दूसरे को भी रागादि हो, वह कहीं आत्मा नहीं। वह तो अनात्मा है। ऐसे अपने आत्मा को ऐसा जाने, पर को भी ऐसा जाने और पर को छह काय को नहीं मारने का उपदेश करे और उसे मोक्ष का—संसार से निवृत्ति का मोक्ष उपाय कहा। संसार कैसे हो, उसका उपदेश मुनि का होता नहीं। समझ में आया?

तब ऋषभदेव भगवान ने दिया था न पहला उपदेश? तब मुनि कहाँ थे वे? वह तो गृहस्थाश्रम की बात है। यह तो मुनि की बात है और मुनि को चैत्यगृह यथार्थ कहा जाता है। समझ में आया? उस समय चौथे गुणस्थान में थे। ऐसा विकल्प था, ऐसा विकल्प होता है। यहाँ तो मुनि को कहना है न? मुनि चैत्यगृह ही हुए। उन्हें तो कोई प्राणी को संसार का पोषण, तुम्हारा संसार ऐसा निभेगा, ऐसे पकाना, ऐसे खाना, ऐसे बर्तन बनाना, ऐसा उपदेश मुनि को नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बहुत से ऐसा कहते हैं न कि भाई! कि भगवान ने कैसे कहा? तब अपने भी ऐसा उपदेश देना। आहाहा! अरे! भाई! सुन न! भगवान तो गृहस्थाश्रम में थे। अविरतिरूप से थे। इसलिए उस भूमिका के (अनुरूप) ऐसा भाव होता है। वह प्रसंग ऐसा था बाहर में और ऐसा भाव होता है। यहाँ तो मुनि की बात है। चैत्यगृह मुनि है। वे चैत्यगृह नहीं

थे। आहाहा! समझ में आया? जिसे आत्मा अन्दर में आनन्द से उछल गया है अन्दर के भान में और शान्ति... शान्ति... शान्ति... प्रगट हुई है छठे गुणस्थान के योग्य, उसे यहाँ पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं। उसे उपदेश होता है न! उपदेश की व्याख्या है न! सातवें गुणस्थान में कहीं उपदेश नहीं। वे तो ध्यान में हैं। उपदेश करनेवाला ऐसा चैत्यगृह, ऐसा। जब उपदेश का काल होता है, तब भी ऐसा उपदेश करे। संसार की निवृत्ति का करे, संसार के पोषक का न करे। आहाहा! समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो मुनि चैत्यगृहवाले का उपदेश ऐसा होता है कि जिसमें राग का पोषण नहीं होता। राग होता है, ऐसा उसे बतलाते हैं कि ऐसा राग होता है, उसे जाननेवाला तू। परन्तु राग पोषक है, वह उपदेश मुनि को नहीं होता। समझ में आया? उसे यहाँ चैत्यगृह कहा जाता है। भारी सूक्ष्म बातें भाई कठिन! अनजान को तो अटपटा जैसा लगे। यह क्या कहे? बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! **इस प्रकार मुनिराज को चैत्यगृह कहते हैं।** लो!

**भावार्थ :- लौकिक जन चैत्यगृह का स्वरूप अन्यथा अनेक प्रकार मानते हैं...** चैत्य का स्वरूप बाहर का मुनि का। **उनको सावधान किया है कि जिनसूत्र में...** भगवान की वाणी में। आहाहा! **हित करनेवाला ज्ञानमयी संयमी मुनि है...** देखो! स्वरूप का ज्ञान जिसे चैतन्यबिम्ब प्रभु आत्मा, वह ज्ञान का सागर—ज्ञान का समुद्र, ज्ञानस्वरूपी प्रभु है। ऐसा जिसे अन्तर ज्ञान हुआ और संयमी है। दो लिये हैं न। **ज्ञानमयी संयमी मुनि है...** ज्ञानमय का ज्ञान तो चौथे गुणस्थान में होता है। समझ में आया? परन्तु वह संयमी नहीं। आहाहा! संयमी ऐसे होते हैं। **ज्ञानमयी संयमी मुनि है, वह चैत्यगृह है; अन्य को चैत्यगृह कहना, मानना...** सामने प्रतिमा चैत्य वीतरागी मूर्ति जिसमें कुछ लेप आदि नहीं, जिसमें वस्त्र और गहने क्या कहलाते हैं? जेवर / गहने। गहने नहीं होते। ऐसी जो प्रतिमा का मकान, उसे चैत्यगृह व्यवहार से कहा जाता है। वह व्यवहार भी अनादि का होता है। निश्चय हो, जब तक (पूर्ण) वीतरागता न हो, तब ऐसा व्यवहार होता है। लो, यह चैत्यगृह की व्याख्या की। दो गाथा हुई न?

★ ★ ★

## गाथा - १०

**आगे जिनप्रतिमा का निरूपण करते हैं :-** यह जिनप्रतिमा किसे कहना? वह चैत्य था। जिनप्रतिमा किसे कहना? आहाहा!

**सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।**
**णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा॥१०॥**

यह जैनमार्ग में ऐसी प्रतिमा निश्चय से कही है। ऐई! फिर उसमें से कोई निकाले कि जिनमार्ग में तो ऐसी प्रतिमा कही है। यह प्रतिमा तो नहीं कही। भाई! ऐसा कहा न उसमें? ऐसी जिनमार्ग में प्रतिमा कही है। फिर वह कही नहीं, ऐसा निकालते हैं उसमें से। यहाँ तो निश्चय से ऐसी प्रतिमा जिनमार्ग में कही है। व्यवहार से है, उसका प्रतिबिम्ब दूसरा (विरुद्ध) वह दोष, वह तो व्यवहार में जाये।

**मुमुक्षु :** निश्चय ऐसा ही होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निश्चय से ऐसी ही जिनप्रतिमा होती है। परन्तु यहाँ से कोई ऐसा निकाले कि जैनमार्ग में ऐसी ही प्रतिमा कही है। व्यवहार प्रतिमा जिनमार्ग में नहीं। परन्तु जिनमार्ग न! वीतरागभाव में तो ऐसी ही प्रतिमा होती है। समझ में आया? वीतरागभाव में रह नहीं सके, जब भाव शुभ हो, तब जिनप्रतिमा वीतराग मुद्रा, जैसे परमात्मा थे, वैसा प्रतिबिम्ब उसका होता है। शान्त। वह शुभभाव का निमित्त है। शुभभाव का निमित्त है वह, हों! धर्म नहीं। धर्म नहीं तो करना किसलिए? और ऐसा कहे। परन्तु उसमें स्थिर नहीं हो सके, इसलिए ऐसा भाव पाप से बचने का आये बिना रहे नहीं। खींचतान करे। वह झूठी बात है कहते हैं। न ही आवे और ऐसा भाव न हो तो वह निश्चय को समझता नहीं और व्यवहार को समझता नहीं। आहाहा!

**जिनका चारित्र दर्शन-ज्ञान से शुद्ध-निर्मल है,...** जिसका चारित्र, ऐसा कहते हैं। जिनप्रतिमा किसे कहना? जिन वीतरागप्रतिमा। आहाहा! श्रीमद् में आता है न चेतनप्रतिमा हो, चैतन्यप्रतिमा हो। दो बार आता है। आहाहा! रागरहित चीज़ है अन्दर, उसरूप हो। वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। वस्तु वीतराग अर्थात् रागरहित चीज़ है, उस प्रकार से

पर्याय में हो। अवस्था में उस प्रकार से हो, उसका नाम जिनप्रतिमा। ऐसी जिनप्रतिमा को माने नहीं और समझे नहीं। और अकेले जिनप्रतिमा की पूजा, भक्ति और उसमें मान ले सब, तो वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

है न? जिसका चारित्र-दर्शन और ज्ञान से शुद्ध। वापस अकेला चारित्र अर्थात् व्रत की क्रिया वह यह नहीं। अन्तर चारित्र में आनन्द की दशा की जहाँ मौज उड़ती है, ऐसी आनन्द की दशा सम्यग्दर्शन और ज्ञानसहित होती है। समझ में आया? मार्ग को पहिचानना और श्रद्धा करना भारी सूक्ष्म! कोई कहीं फँसे, कोई कहीं फँसे। 'सांगो कहे सलवाणा कंईक चढ़्या कंईक पाळा।' यह आता है। जेल में पड़े ऊँट के ऊपर बैठा हो तो फँसता है। जेल में हो न जेल में? ऊँट हो... अन्दर में स्वयं बैठा हो ऊपर। परन्तु देख तो है कहाँ तू? जेल में। 'कोक चड्या ने कोई पाळा।' कोई चलता मनुष्य हो, वह बँधा अज्ञान में भान नहीं होता। यह साधु होकर त्यागी होकर कहते हैं बँधे। वह गृहस्थाश्रम में भान न हो जिसे। आत्मा क्या? वीतराग क्या? राग क्या और द्वेष क्या? भिन्न-भिन्न का भान नहीं होता, वह भी बँधा है अज्ञानी। आहाहा! ऐसे जैनमार्ग के स्वरूप को जाने बिना अकेली जिनप्रतिमा को पूजे, माने, तो पुण्य है, धर्म नहीं। समझ में आया?

जिसका चारित्र (अर्थात्) अन्तर में शान्ति वीतरागता दर्शन और ज्ञान से शुद्ध है, निर्मल है। शान्ति... शान्ति... चौथे गुणस्थान में शान्ति, पाँचवें में उससे (अधिक), छठवें में मुनि को विशेष शान्ति है। बहुत शान्ति। उपशमरस में जम गये हैं। उपशमरस में ढाला उपशम का ढल गया वहाँ अन्दर में। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित है। इसलिए वह शुद्ध है और निर्मल है। अज्ञानी के व्रतादि हैं, वे भान बिना के (होने से), वे सब अज्ञान और अशुद्ध हैं। आहाहा! आत्मज्ञान और आत्मदर्शन ज्ञाता-दृष्टा के अनुभव बिना जो कुछ व्रत और तप की क्रिया, वह सब अशुद्ध है। समझ में आया? मार्ग को बहुत बदल दिया है। मूल मार्ग के ऊपर आना जगत को कठिन लगता है। उसमें विविध प्ररूपणा, विविध आचरण, विविध वेश। श्रीमद् ने कहा न 'जाति वेश का भेद नहीं, कहा मार्ग जो होय' किस जाति में मोक्ष है? किस वेश में मोक्ष? उसका

निर्णय न बने, बहुत भेद से दोष। ऐसा आता है न! किस जाति में मोक्ष है? किस वेश में मोक्ष है? इसका निर्णय है न? इसका निश्चय न बने, बहुत भेद वह दोष। बेचारा उलझ गया। बहुत भेद बहुत बातें, बापू!

यह आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप से जहाँ विराजे, उसका भान करके स्थिर हो, उसे जो जाति और वेश हो, वह होता है। वह हो तो, ऐसा कहा है। उसमें ऐसा कहा। 'जाति वेश का भेद नहीं कहा मार्ग जो होय।' फिर अर्थ किया था न तब (संवत्) १९९५ में। ९५। ३५ वर्ष हुए। कहा मार्ग जो होय तो जाति वेश का भेद नहीं। जाति वेश जो होय, वही होय। तब अर्थ किया था। कहो, रतिभाई! परन्तु तब तो नहीं आते थे अभी तो। ९५ में। कहो, समझ में आया? वे कहे 'जाति वेश का भेद नहीं...' बात सच्ची है। कहा मार्ग जो होय तो जातिवेश का भेद नहीं। जो जाति और जो वेश हो नग्नपना, जो जाति उसे चाण्डाल आदि नहीं होती, वही उसे होती है। चाहे जिस जाति में और वेश में मुनिपना हो, यह तीन काल में नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात मार्ग की जगत को। वीतरागमार्ग को परखना भारी कठिन।

**उनकी स्व-परा अर्थात् अपनी और पर की चलती हुई देह है, वह जिनमार्ग में जंगम प्रतिमा है;...** देह साथ में ली थी न अपने? परन्तु चारित्र, दर्शन-ज्ञानसहित शुद्ध हो उसका **स्व-परा अर्थात् अपनी और पर की चलती हुई देह है, वह जिनमार्ग में जंगम प्रतिमा है; अथवा स्वपरा अर्थात् आत्मा से पर यानी भिन्न है, ऐसी देह है।** वह जंगम प्रतिमा कही जाती है। **जिसका निर्ग्रन्थ स्वरूप है,...** ऐसा कारण क्यों, ऐसा कहते हैं। निर्ग्रन्थ स्वरूप। नग्नदशा। माता से जन्मा ऐसा भाव। उसे जैनमार्ग में निर्ग्रन्थदशा, वह मुनि का वेश उसे कहते हैं। यह वस्त्र और पात्र मुनि का वेश नहीं, कुलिंगी है। आहाहा! समझ में आया? ऐई! शान्तिभाई! शान्तिभाई वहाँ वाँचते थे न... आहाहा!

**निर्ग्रन्थ स्वरूप है, कुछ भी परिग्रह का लेश भी नहीं है...** वस्त्र का एक धागा भी नहीं होता जिसे और अन्तर में आनन्द का नाथ जिसे जाग उठा है। समझ में आया? उसे यहाँ... है न? **जंगम प्रतिमा है...** कहते हैं। **ऐसी दिगम्बर मुद्रा है।** आहाहा! अन्तर वीतरागता प्रगटी है चारित्र। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित यह लिया था न पहले? चारित्र, वह

सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित है और नग्नमुद्रा है। उसे मार्ग में जंगम प्रतिमा कहा जाता है। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ ने उसे कहा है। जिसके वेश में वस्त्र और पात्र है, वह तो कुलिंग है, जिनप्रतिमा का व्यवहार भी नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, भाई!

**जिसका वीतराग स्वरूप है, किसी वस्तु से राग-द्वेष-मोह नहीं है, जिनमार्ग में ऐसी प्रतिमा कही है।** लो! जिसमें राग और द्वेष नहीं। वीतरागता प्रगट हुई है। उसे यहाँ जिनप्रतिमा कहा जाता है। जिन अर्थात् वीतरागता। उसकी प्रतिमा। वीतरागभाववाली। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर कृष्ण २, बुधमवार, दिनांक-१२-१२-१९७३
गाथा - १० से १४, प्रवचन-६५

जिनप्रतिमा का स्वरूप। निश्चय जिनप्रतिमा। व्यवहार जिनप्रतिमा तो जैसे भगवान होते हैं मुनि—साधु आदि, ऐसी ही वीतराग मुद्रा हो, उसके बदले सब बदल डाला है। उसके सामने यह बात है।

**सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।**
**णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा॥१०॥**

जिनमार्ग में ऐसी प्रतिमा कही है।

**अर्थ :- जिनका चारित्र, दर्शन-ज्ञान से शुद्ध-निर्मल है,...** जिसकी चारित्रदशा अन्तर में सम्यग्दर्शन और ज्ञान से शुद्ध निर्मल है। **उनकी स्व-परा अर्थात् अपनी और पर की चलती हुई देह है,...** ...स्थिति। **वह जिनमार्ग में जंगम प्रतिमा है;...** चलती है न? ...धर्मात्मा जिसका चारित्र सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित शुद्ध निर्मल है। ऐसे जिनदेव को ही यहाँ जंगम प्रतिमा कही है। ... है न आत्मा में? **अथवा स्वपरा अर्थात् आत्मा से पर यानी भिन्न है, ऐसी देह है। वह कैसी है? जिसका निर्ग्रन्थ स्वरूप है,...** दिगम्बर नग्नमुनि। **कुछ भी परिग्रह का लेश भी नहीं है...** वह तिल का तुषमात्र जितना भी परिग्रह जिन्हें नहीं। **ऐसी दिगम्बर मुद्रा है।** वह जिनप्रतिमा है, लो!

**जिसका वीतरागस्वरूप है,...** अब आया अन्दर, देखो! पाठ है सही न **'णिग्गंथवीयराया'** वीतराग परिणति जिसे प्रगट हुई है। तीन कषाय का अभाव है और ऐसी वीतरागदशा और बाह्य में नग्न दिगम्बरदशा। **किसी वस्तु से राग-द्वेष-मोह नहीं है,...** किसी वस्तु में जिसे मेरापना नहीं है इसलिए राग-द्वेष भी नहीं है। **जिनमार्ग में ऐसी प्रतिमा कही है।** ऐसी प्रतिमा जाने बिना और ऐसी प्रतिमा का स्वरूप समझे बिना अकेली बाह्य की प्रतिमा पूजे, उसमें कुछ निश्चय नहीं, इसलिए वह व्यवहार भी सच्चा नहीं। और कृत्रिम प्रतिमा का रूप कर डाला। उसकी तो व्यवहाराभास में भी जाती

नहीं। निश्चय नहीं, इसलिए उसे व्यवहार को खोटा, निश्चय सच्चा नहीं, उसका व्यवहार भी खोटा। उसकी प्रतिमा के ऊपर गहने और वस्त्र, इत्र लगाते हैं। इत्र चुपड़कर। वह महाहिंसा है। इत्र की एक बूँद में महाहिंसा। वह वीतराग की प्रतिमा ही नहीं। व्यवहार से भी प्रतिमा नहीं, ऐसा कहते हैं। निश्चय प्रतिमा वीतराग मूर्ति ऐसे आत्मा संयमी। संयमी मुनि जिन्हें सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र निर्मल अन्दर प्रगट हुआ है। बाह्य में नग्नमुद्रा। ... चलती देह। वे आत्मासहित हैं, इसलिए उन्हें जंगम प्रतिमा कहा है।

**जिसका वीतराग स्वरूप है, किसी वस्तु से राग-द्वेष-मोह नहीं है, जिनमार्ग में ऐसी प्रतिमा कही है। जिनके दर्शन-ज्ञान से निर्मल चारित्र पाया जाता है,...** लो! जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन और जो दर्शन है, जिसकी मुद्रा, दिगम्बर मुद्रा अन्दर दिगम्बर दशा। ऐसे का जिसे दर्शन है, ऐसी जिसे श्रद्धा है, वह मोक्ष का मार्ग तो ऐसा ही होता है। तीन कषाय का अभाव और... दिगम्बर की दशा। ऐसी जिसे अन्दर श्रद्धा आत्मा से हुई है। ऐसे दर्शन और ज्ञान, वह निर्मल चारित्र। उसका ऐसा दर्शन और ज्ञानसहित चारित्र होता है, उसे यहाँ जंगम प्रतिमा कहते हैं।

**इस प्रकार मुनियों की गुरु-शिष्य अपेक्षा अपनी तथा पर की चलती हुई देह...** लो! उसमें स्व-पर अकेला भिन्न कहा था। यह स्व-पर दोनों इकट्ठा दिया शिष्य और गुरु। **गुरु-शिष्य अपेक्षा अपनी तथा पर की चलती हुई देह निर्ग्रन्थ वीतरागमुद्रा स्वरूप है, वह जिनमार्ग में प्रतिमा है,...** इसके अतिरिक्त जगत में कल्पित जो मूर्तियाँ हैं, कल्पित मन्दिर आदि बनाये, उन्हें यहाँ व्यवहार प्रतिमा भी नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। तीन बातें डाली हैं। निश्चय यह प्रतिमा, उससे अन्य कल्पित है, वे सब खोटी।

**मुमुक्षु :** व्यवहार की....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह व्यवहार भी नहीं। वह खोटी। अब व्यवहार की है। वह तो खोटी। इसमें पक्ष नहीं हो जाता होगा... ? कि तुम तुम्हारा पक्ष करो, कहे। यह स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

तीन बातें लेते हैं। वीतराग मुद्रा जिसकी अन्तर दशा, बाह्य में निर्ग्रन्थदशा

दिगम्बर, ऐसे गुरु-शिष्य की प्रतिमा जो जंगम प्रतिमा और वैसी स्थितिवाली बाह्य प्रतिमा मुनिश्वर की हो, वह व्यवहार प्रतिमा। यह उससे कल्पित है, वह तो दोनों में नहीं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! एक ने प्रतिमा उत्थापित की, तब एक ने प्रतिमा में बहुत चढ़ा दिया। स्थानकवासी ने प्रतिमा उत्थापित की और मन्दिरमार्गी ने— श्वेताम्बर ने चढ़ाया यह सब कपड़ा-बपड़ा और गहने।

(संवत्) १९८२ में सम्प्रदाय में कहा। रात्रि में चर्चा चलती थी। वढ़वाण। वढ़वाण। कहा कि भाई! एक पिता ने सौ रुपये दिये उसके पिता को। वे सौ रुपये सच्चे थे। परन्तु दो शून्य चढ़ाकर माँगे तो कहे सौ भी नहीं। सर्वथा नहीं। मणिभाई थे, भाई नहीं? जाड़े। वडवा रहते वडवा। ८२ के वर्ष में चातुर्मास था न सुन्दरवोरा के उपाश्रय में। रात्रि में थोड़े लोग थे, उन्हें कहा जाये। अधिक को कहा जाये तब तो... सुनते थे। तब तो बहुत शंका नहीं न, उन लोगों को। कहा, यह एक सौ रुपये दिये हैं, एक के पिता ने उसके पिता को। यह बात सच्ची थी। दो शून्य चढ़ाकर माँगे। तेरे पिता ने मेरे पिता को दस हजार रुपये दिये थे। मैं देखूँगा, कहे। देखा तो सौ निकले। सौ के दस हजार माँगता है। स्थानकवासी कहे मूर्ति ही नहीं, जाओ। वह कहे वस्त्र और गहने ऊपर चढ़ाकर मूर्ति माँगी। ऊपर वस्त्र और यह। आहाहा!

दिगम्बर मूर्ति और दिगम्बर मुनि सच्चे सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित चारित्रवाले। वह निश्चय प्रतिमा है। और ऐसी दिगम्बर मुद्रा भगवान की, ऊपर कुछ नहीं होता, ऐसा को व्यवहार प्रतिमा कहा जाता है। समझ में आया? बहुत गड़बड़ हो गयी थी न उस समय। कुन्दकुन्दाचार्य जब हुए तब। श्वेताम्बर सौ वर्ष पहले निकल गये थे। इसलिए यह सब स्पष्ट कर डाला है कि मार्ग तो यह है। भले अधिक लोग सम्मिलित हो उसमें। वस्तुस्थिति...

तीन बातें लीं। निश्चय प्रतिमा अन्दर वीतरागदशावाली, सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्रवाली और जिसकी बाह्यदशा दिगम्बर। उससे कल्पित दूसरों की बात, वह झूठी। उससे अब जो **धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बर मुद्रा...** दिगम्बर मुद्रा, वह व्यवहार प्रतिमा। कहो, भगवनजीभाई! यह सब मन्दिर बनाये न तुम्हारे वहाँ। परन्तु यह मार्ग नहीं, कहते हैं। **दिगम्बर मुद्रा स्वरूप को प्रतिमा कहते हैं...** बाह्य प्रतिमा भी ऊपर

वस्त्र और कुछ नहीं। वीतराग मुद्रा दिखाई दे। उसका मन्दिर वह व्यवहार प्रतिमा कहलाती है, ऐसा। वह व्यवहार है। निश्चय हो, वहाँ व्यवहार होता है। पूर्ण वीतरागता न हो तब, ऐसा आत्मा के आश्रय से धर्म ऐसा प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित, तथापि ऐसा शुभराग मुनि को भी भगवान की प्रतिमा को वन्दन आदि का होता है। समझ में आया? परन्तु उसकी मर्यादा पुण्य जितनी है, इसलिए उसे व्यवहार कहा। आहाहा!

**वह भी बाह्य आकृति तो वैसी ही हो...** ऐसा कहा न? जैसे भगवान सन्त, मुनि वीतरागी हैं और उनकी नग्नदशा है, ऐसी ही उसकी बाह्य आकृति प्रतिमा में होती है। प्रतिमा में दूसरा फेरफार नहीं होता। **बाह्य आकृति तो वैसी ही हो, वह व्यवहार में मान्य है।** आहाहा! तीन बातें लीं। निश्चय, ऐसा ही सामने व्यवहार, उससे विरुद्ध वह कल्पित सब। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो जगत में बढ़ी हुई ही है न, उसमें नया क्या है? वही हो न जगत में।

परम वीतरागमार्ग, दिगम्बर धर्म, सनातन सत्य, परम्परा सर्वज्ञ का कहा हुआ। उससे यह ६०० वर्ष बाद गड़बड़ उठी। बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा, उसमें यह श्वेताम्बर पंथ निकला। स्थानकवासी तो अभी निकले अभी ५०० वर्ष से। तेरापंथी और अभी निकले २०० वर्ष हुए। वह सब जैनमार्ग नहीं है। लो, यहाँ तो बात यह है। ऐसी बात है, भाई! जैनमार्ग तो यह है। जैन की वीतरागदशा और बाह्य नग्नदशा। यह जैनमार्ग कहो, जैनदर्शन कहो, जिनप्रतिमा कहो। और ऐसी ही आकारवाली बाह्य आकृति के भगवान की मुद्रा, दिगम्बर मुद्रा, नग्नमुद्रा। उसके ऊपर कुछ नहीं होता। समझ में आया?

★ ★ ★

## गाथा - ११

**आगे फिर कहते हैं :-** अभी इसे अधिक स्पष्ट करते हैं।

**जं चरदि सुद्धचरणं, जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।**
**सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा॥११॥**

**अर्थ :- जो शुद्ध आचरण का आचरण करते हैं...** शुद्ध आचरण कहा है। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में आनन्द का आचरण करते हैं। उसका नाम चारित्र है। आहाहा! शुद्ध आचरण है न? निर्मल आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का जिसे आनन्द का आचरण शुद्ध निर्मल है। **तथा सम्यग्ज्ञान से यथार्थ वस्तु को जानते हैं...** आहाहा! उसमें सम्यग्ज्ञान द्वारा अपना वास्तविक स्वरूप शुद्ध को जाने; राग बाकी हो, उसे जाने; प्रतिकूल निमित्त हो, उसे भी जाने; अनुकूल निमित्त हो, उसे भी जाने। ऐसा यथार्थ वस्तु का स्वरूप है, उसे जाने।

**सम्यग्दर्शन से अपने स्वरूप को देखते हैं...** लो! अपना पूर्ण स्वरूप ध्रुव अनन्त आनन्द आदि से भरपूर चतुष्टय स्वभाव ऐसा जो भगवान आत्मा का स्वभाव, उसका सम्यग्दर्शन, उसे जो देखे अर्थात् उसे जो माने। **सम्यग्दर्शन से अपने स्वरूप को देखते हैं...** सच्ची श्रद्धा के साथ सच्चा ज्ञान है, उससे ऐसा परिपूर्ण स्वरूप है, उसे देखते और मानते हैं। **इस प्रकार शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है...** लो! विशेष लिया है न? '**पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं**' ऐसा है न वापस इसलिए। '**सुद्धचरणं चरदि जाणइ पिच्छेइ**' और '**सुद्धसम्मत्तं**' ऐसा। **इस प्रकार शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है...** शुद्ध निर्मल निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि—स्वभाव-सन्मुख हुई सम्यग्दर्शन की दशा, वह शुद्ध निर्मल सम्यग्दर्शन जिसे है, ऐसे आचरणवाले को, ज्ञानवाले मुनि **ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है...** वह निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा। यह वन्दन को डाला इसमें। उसमें बतलाया था। वह **वन्दन करनेयोग्य है।** ऐसा कहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिमा वन्दन करनेयोग्य है नहीं। आहाहा! **निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा...** बाह्य में निर्ग्रन्थ दिगम्बर दशा और अन्तर में तीन कषाय के अभाव की चारित्रदशा शुद्ध समकितसहित। वह वन्दन करनेयोग्य है।

**भावार्थ :- जाननेवाला, देखनेवाला... 'पिच्छेइ'** था न, इसलिए डाला। और

**शुद्धसम्यक्त्व, शुद्धचारित्रस्वरूप, निर्ग्रन्थ संयमसहित, इस प्रकार मुनि का स्वरूप है...** मुनि का ऐसा स्वरूप है। जाननेवाला, देखनेवाला, शुद्ध समकितसहित और शुद्ध चारित्रस्वरूप। आहाहा! ऐसा निर्ग्रन्थ संयमसहित मुनि का स्वरूप, **वही प्रतिमा है, वही वन्दन करनेयोग्य है;...** मुनि को ऐसे मुनि को मुनि मानकर वन्दन करनेयोग्य है। समझ में आया? **अन्य कल्पित वन्दन करनेयोग्य नहीं है...** कल्पित मुनि—जो वस्त्र आदि लेकर मुनि मानते हैं, वे मुनि वन्दन करनेयोग्य नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्त्र आदि रखकर मुनिपना मानते हैं, वे वन्दन करनेयोग्य नहीं अर्थात् मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! भारी कठिन! मार्ग तो यह है। पहले श्रद्धा में तो निर्णय करना पड़ेगा न? समझ में आया?

**मुमुक्षु :** समझ में आया तो नहीं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कैसा? कहाँ निर्णय किया? निर्णय करे तो... उसे निर्मल दशा जिसकी हो, उसे त्रिकाल दर्शन, उसमें उसे श्रद्धा का न्याय आ जाता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** मूल तो ध्रुव का है....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरे! उसमें आ जाये ध्रुव के साथ पर्याय का ज्ञान और पर्याय के साथ निमित्त का ज्ञान। सम्यग्ज्ञान होने पर, प्रमाणज्ञान होने पर, वह ज्ञान अपनी अशुद्धता कितनी जाने, शुद्धता कितनी जाने, निमित्त कैसा है, उसे जाने। किसे वन्दन करनेयोग्य या नहीं योग्य, उसे भी सम्यग्ज्ञान जानता है। ऊपर कहा था न! ऊपर कहा था। **सम्यग्ज्ञान से यथार्थ वस्तु को जानते हैं।** आया था न! है न! **'सुद्धचरणं जाणइ'**

**मुमुक्षु :** पहले जाने, फिर शुद्ध है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। जाने बिना कहाँ से हो? अंश अंश को जाने। यह निहालभाई में आता है। ऐई! चेतनजी! कि दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान हुआ ज्ञान प्रमाणज्ञान हुआ, अशुद्धता कितनी, शुद्धता कितनी, क्या है वह जाने। आता है उसमें। ऐसा है। वह तो दृष्टि के... व्याख्या में... विवेक प्रगटता है वहाँ ज्ञान में। अकेले विवेक के ऊपर लक्ष्य नहीं उसे। दृष्टि के ऊपर लक्ष्य, द्रव्य के ऊपर लक्ष्यसहित ज्ञान की जो सम्यक्ता शुद्ध हुई, प्रगट हुई, उसे बराबर जानता है। देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं? कुदेव-

कुगुरु-कुशास्त्र कैसे होते हैं? वह सब जाने सम्यग्ज्ञान। समझ में आया? आहाहा! **'चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।'** बहुत कठिन।

**और वैसे ही रूपसदृश धातु-पाषाण की प्रतिमा...** लो! ऐसी वीतराग मुद्रा हो। भले पत्थर और धातु की प्रतिमा हो, वह व्यवहार प्रतिमा कही जाती है। **व्यवहार से वन्दनेयोग्य है।** आहाहा! उस बावळा से नहीं आते थे खोजाभाई? खोजा हीराभाई। बावळा के खोजा थे। यहाँ तो अपने ऐसा देखा नहीं किसका मन्दिर। जैन मन्दिर हो चाहे जो, वन्दन करना। ...ऐसा कहते हैं। श्वेताम्बर हो या दिगम्बर हो, यह भेद करना ही नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भाई! श्वेताम्बर की मूर्ति वस्त्रसहित हो या मुनि वस्त्रसहित हो, वे दोनों वन्दन करनेयोग्य नहीं है। बात तो यह है, भाई! मार्ग ऐसा है। यह कहीं पक्ष की बात नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने मुनिदशा और दिगम्बरदशा जो कही, वह तो वस्तु की स्थिति का वर्णन है। और ऐसी ही प्रतिमा सामने हो। प्रतिमा के ऊपर वस्त्र और इत्र और क्या कहलाता है दूसरा? बहुत आवे पायजेब-पायजेब चाँदी के पहनाते हैं न? आंगी। आंगी करे वह? ... पत्र चाँदी के देखे और मुकुट तो तीन लाख का मुकुट। तीन लाख का मुकुट है .... नहीं? गये थे न हम एक बार तो कहे, चलो मुकुट देखना हो तो। हम गये। तब मुकुट उतारा था। .... के साथ थे न साकरचन्दभाई। तीन लाख का मुकुट भगवान के सिर पर। यह पहले के तीन लाख, हों! यह तो ५५ की बात है। अब तो महँगा हो गया है न?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत महँगा। आहाहा! यह सवेरे विचार आता था। (संवत्) १९९२ में वळा के आवास में भोजनशाला खोलनी थी। साढ़े तीन सौ का चन्दा हुआ। हीराभाई के मकान में थे न तब, पश्चात् लोग आवे। हीराभाई जीमाते थे... साधु आवे उनके घर में। फिर चन्दा किया। वळा के आवास में भोजनशाला खोलनी। साढ़े तीन सौ का चन्दा। और यहाँ परसों दो मिनिट आकर पाँच सौ रख गये। कहा, देखो यह कितना अन्तर! पैसे की कैसी कीमत! साढ़े तीन सौ का चन्दा। लो, ऐई! परसों आये थे न। ...तम्बोली। थे स्थानकवासी। ...वाले। स्थानकवासी न? दशाश्रीमाली। दो मिनिट के

लिये... और दस, पन्द्रह होंगे। देखे तो पाँच सौ। सौ के पाँच (नोट)। अब वह साढ़े तीन सौ का। बदल गयी न अभी रुपये की कीमत घट गयी।

**मुमुक्षु :** ....हो गयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... हो गयी, बात सच्ची। तब इतने इकट्ठे दो, चार, पाँच व्यक्ति सब। नागरभाई थे न... कहे, भोजनशाला। तब भी पाँच रुपये और छह रुपये महीने पड़ते थे।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नागरभाई? हाँ, वे। वे ही रहते और रहते। छह रुपये... है। अभी तो ८०। तुम्हारे तो वहाँ १०० हो रसोई में। खर्च हो। पूरी दुनिया बदल गयी। यह दुनिया में धर्म भी बदल दिया। यह तो पहले का बदला हुआ है न। आहाहा!

मुनि प्रतिमा जिसकी वीतरागदशा बिम्ब। आहाहा! श्रीमद् कहते हैं न, चैतन्य प्रतिमा हो, चैतन्य प्रतिमा हो। चैतन्य को वीतराग के पास परिणमा। वह चैतन्य प्रतिमा, वह मुनि की संयमसहित है। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, संयमसहित है—ऐसा निर्णय किया न इसने? निश्चय चैतन्य प्रतिमा कही। ऐसे ही आकारवाली सामने। वास्तव में तो उसे तो कुछ नहीं होता। यह केसर, फूल और यह सब वीतराग मुद्रा को नहीं होता। वीतराग मुद्रा तो जैसी है वैसी। पक्ष बँध गये, झगड़े खड़े हुए। वस्तुस्वरूप तो ऐसा है। **व्यवहार से वन्दनेयोग्य हैं।**

★ ★ ★

## गाथा - १२-१३

**आगे फिर कहते हैं :-** अब केवली लेंगे।

**दंसणअणंतणाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।**
**सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं॥१२॥**
**निरुवममचलमखोहा णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।**
**सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा॥१३॥**

अब सिद्ध की प्रतिमा ली। सिद्ध सिद्ध। यहाँ से गति करे न एक समय (में) ?यह और वहाँ स्थिर हो, वह सिद्ध प्रतिमा। उसे सिद्ध प्रतिमा कहते हैं। जिसे अनन्त दर्शन प्रगट हुआ है। आहाहा! वह स्थावर प्रतिमा है। स्थावर अर्थात् स्थिर रहनेवाली, ऐसा। वह जंगम प्रतिमा थी। मुनि, गुरु, शिष्य ऐसे चले—गति करे। यह स्थिर स्थिर है। भले ऐसे एक समय गति करे तो भी स्थिर है। वह स्थिर प्रतिमा स्थावर प्रतिमा कहलाती है। स्थावर अर्थात् यह एकेन्द्रिय, ऐसा नहीं। स्थिर... स्थिर। सिद्ध भगवान, बस।

उन्हें **अनन्त दर्शन,...** होता है। **अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुखसहित हैं,...** और **शाश्वत् अविनाशी सुखस्वरूप हैं,... 'अणंतसुक्खा य'** और **'सासयसुक्ख'** शाश्वत् सुख जिन्हें प्रगट हुआ है। आनन्दस्वरूप जो ध्रुव आत्मा। आत्मा जो अनन्त अनन्त शाश्वत सुखस्वरूप है। वह सुखदशा जिन्हें प्रगट हुई है। अनन्त सुख जो आत्मा में है। अनन्त सुख पड़ा है, ऐसा कहते हैं। उसमें से जिन्हें अनन्त सुख प्रगट हुआ है, उसे स्थावर प्रतिमा कहा जाता है। स्थिरबिम्ब हो गये। आहाहा! **अदेह है—** जिन्हें देह नहीं। सिद्ध की बात लेनी है न, केवली की!

**कर्म नोकर्मरूप पुद्गलमयी देह जिनके नहीं है;...** जिन्हें कर्म भी नहीं, शरीर भी नहीं। **अष्टकर्म के बन्धन से रहित हैं,...** सिद्ध भगवान अष्टकर्म बन्धरहित है। वह जिनप्रतिमा, स्थावर प्रतिमा है। आहाहा! **उपमा रहित हैं—जिसकी उपमा दी जाये ऐसी लोक में वस्तु नहीं है;...** भगवान सिद्ध परमात्मा की दशा को उपमा किसकी? जिन्हें अनन्त-अनन्त अपरिमित ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, ऐसी दशा जिन्हें प्रगट हुई, उसकी उपमा किसे दे? आहाहा! ऐसे जो सिद्ध भगवान, उन्हें यहाँ स्थिर प्रतिमा कहा जाता है।

**अचल हैं—प्रदेशों का चलना जिनके नहीं है;...** भले यहाँ स्थित हो और एक गति ऐसे करे परन्तु वह चल... वह तो। **चलना जिनके नहीं है; अक्षोभ हैं—जिनके उपयोग में कुछ क्षोभ नहीं है,...** आकुलता नहीं, क्षोभ नहीं। शान्त.. शान्ति। शान्ति। उस सुख के साथ शान्ति है। शान्ति पूर्ण शान्त प्रगट दशा हो गयी। **जंगमरूप से निर्मापित हैं; कर्म से निर्मुक्त होने के बाद एक समयमात्र गमनरूप हैं, इसलिए जंगमरूप**

**से निर्मापित हैं;...** उस समय की प्रतिमा कही न! टीका में अजंगम डाला है। क्योंकि यहाँ... करना है न।

**सिद्धस्थान जो लोक का अग्रभाग उसमें स्थित हैं;... जंगमरूप से निर्मापित हैं;...** ऐसा। जंगम प्रतिमा नहीं। **जंगमरूप से निर्मापित हैं;...** आत्मा के स्वरूप से निर्मानित है, ऐसा। आत्मा का जो स्वरूप है, उससे निर्मित—प्रगट हुई है। कहनी है तो उसे स्थावर प्रतिमा। समझ में आया? **जंगमरूप से निर्मापित हैं; कर्म से निर्मुक्त होने के बाद एक समयमात्र गमनरूप हैं,...** यहाँ। जहाँ देह छूटे तो आत्मा... एक समयमात्र जिसकी गति है। वह का वह समय वहाँ रहने का, वह का वह समय रास्ते का सब एक ही है। ओहोहो! एक समय सात राजू जाये और वहाँ रहे, वह पहला एक समय में यह सब पूरा है। आहाहा!

**अग्रभाग उसमें स्थित हैं; सिद्धस्थान जो लोक का अग्रभाग उसमें स्थित हैं; व्युत्सर्ग अर्थात् कायरहित हैं—** व्युत्सर्ग अर्थात् कायरहित, ऐसा। व्युत्सर्ग प्रतिमा है न? १३वीं गाथा में। व्युत्सर्ग। है न १३वीं? व्युत्सर्ग प्रतिमा। व्युत्सर्ग है। देह छूट गयी है। अकेला आत्मा कायरहित। **जैसा पूर्व शरीर में आकार था, वैसा ही प्रदेशों का आकार-चरम शरीर से कुछ कम हैं...** थोड़ा-थोड़ा (न्यून) है। **ध्रुव है—संसार से मुक्त हो ( उसी समय ) एक समयमात्र गमन कर लोक के अग्रभाग में जाकर स्थित हो जाते हैं...** सादि-अनन्त अनन्त वहाँ स्थित हो जाये। वे कहे, धर्मास्तिकाय नहीं, इसलिए (आगे) नहीं जाते, ऐसा। परन्तु उनकी स्वयं की स्थिति ही इतनी है वहाँ। इसका बड़ा विवाद है। देखो, वहाँ आगे दूसरा द्रव्य नहीं, इसलिए (जाते नहीं), उसकी शक्ति तो जाने की है। परन्तु शक्ति ही इतनी है। जाने की क्या हो? आहाहा! धर्मास्तिकाय अभावात्। ऐसा आता है न? परन्तु पहले तो वहाँ अग्रभाग में स्थित है, यह सिद्ध करके, फिर धर्मास्तिकाय के अभाव की बात है। उनका स्वभाव ही इतना वहाँ आगे स्थिर हो जाने का है, बस। आगे जाने की उनकी योग्यता ही नहीं, अपनी नहीं और धर्मास्ति (काय) नहीं। भारी विवाद। सब निमित्त का विवाद। उनकी (सिद्ध की) पर्याय स्वकाल की वहाँ स्थित होने के योग्य ही है, बस। **फिर चलाचल नहीं होते हैं...** वहाँ से वापस अवतार धारण करना, ऐसा है नहीं। **ऐसी प्रतिमा सिद्ध भगवान है।** लो!

**भावार्थ :- पहिले दो गाथाओं में तो जंगम प्रतिमा संयमी मुनियों की देहसहित कही।** यह स्थित है, वह जंगम प्रतिमा नहीं। वह तो जंगमरूप से निर्मित है, ऐसा कहते हैं। प्रतिमा तो स्थावर है। चैतन्यस्वरूप से निर्मित हो गयी। अलग-अलग बातें हैं। ....डाले। शरीर में रहा हुआ आत्मा। ऐसे आत्मासहित का देह, इसलिए से जंगम प्रतिमा कहते हैं। शरीररहित सिद्ध भगवान को स्थावर प्रतिमा कहते हैं। **पहिले दो गाथाओं में तो जंगम प्रतिमा संयमी मुनियों की देहसहित कही।** देखा न? **संयमी मुनियों की देहसहित कही।** ऐसा।

**इन दो गाथाओं में थिरप्रतिमा सिद्धों की कही, इस प्रकार जंगम-थावर प्रतिमा का स्वरूप कहा। अन्य कोई अन्यथा बहुत प्रकार से कल्पना करते हैं...** यह डाला है। **वह प्रतिमा वन्दन करनेयोग्य नहीं है।** बहुत प्रकार की कल्पनायें सब। निश्चय प्रतिमा में और व्यवहार में जो कल्पित किया है, वह सब वन्दन योग्य नहीं। पूछते थे कि हम साथ में होवें तब क्या करना? हिम्मतभाई के भाई। बैंगलोर। सब साथ में हों और फिर अन्दर न जायें तो वैसा हो। मैंने कहा, भाई! यहाँ तो लाज और लज्जा के लिये कुछ करने का नहीं है। मार्ग तो ऐसा है। उनके बहनोई वैष्णव हैं न यहाँ। भगवानभाई का पुत्र... वैष्णव है। उसके साथ जाये, इसलिए फिर वह जाये और मुझे खड़े रहना? वैष्णव है। ....भाई वकील है न उसकी पुत्री। यह हिम्मतभाई के... सब साथ में जाये। खड़े रहे, वन्दन न करे। मार्ग यह है। व्यवहार सम्हालना नहीं, कहा। यह तो धर्म की बात है, भाई!

वीतराग मुद्रा, वीतरागी सन्त, इसके अतिरिक्त वन्दन के योग्य है ही नहीं। मार्ग ऐसा कठिन, भाई! लज्जा, गारव... आता नहीं? ...लज्जा से, भय से भी दूसरे को वन्दन न करे। सच्ची प्रतिमा भगवान आत्मा की और प्रतिमा वीतराग मुद्रा, इसके अतिरिक्त दूसरे को वन्दन न करे। लज्जा से नहीं, गारव से नहीं। अर्थात् कि मुझे अब... साता गारव, रस गारव, ऋद्धि गारव और... वन्दन न करे। लज्जा से। राजा है। वह राजा कहे तो अपने लज्जा को... करना पड़े। मार्ग ऐसा है, भाई! लज्जा से भी वीतराग मार्ग से विरुद्ध श्रद्धावाले, विरुद्ध वेशवाले (को वन्दन नहीं करे)। सूक्ष्म बात है।

**अन्य कोई अन्यथा बहुत प्रकार से कल्पना करते हैं, वह प्रतिमा वन्दन करनेयोग्य**

**नहीं है।** जैनदर्शन में भी उस प्रतिमा को जो वस्त्र आदि रखे हुए हैं, वह वन्दन करनेयोग्य है ही नहीं। आहाहा! ऐसा है ...भाई! गजब जगत से तो अनमेल! मार्ग तो ऐसा है। यह कुन्दकुन्दाचार्य खड़े हों और यह बात करते हों और उनके सामने कुन्दकुन्दाचार्य को माननेवाले, और वे कहे, उनसे विरुद्ध करे तो वह उसने कुन्दकुन्दाचार्य का अनादर किया। वस्तु तो ऐसी है।

**यहाँ प्रश्न :- यह तो परमार्थरूप कहा और बाह्य व्यवहार में पाषाणादिक की प्रतिमा की वन्दन करते हैं, वह कैसे?** प्रश्न हुआ। **उसका समाधान :- जो बाह्य व्यवहार में मतान्तर के भेद से अनेक रीति प्रतिमा की प्रवृत्ति है, यहाँ परमार्थ को प्रधानकर कहा है....** बाह्य व्यवहार में मतान्तर से बहुत प्रवृत्ति होकर यह सब खड़ी? उसे छुड़ाने के लिये परमार्थ से प्रधान करके कहा। **और व्यवहार है, वहाँ जैसा प्रतिमा का परमार्थरूप हो...** जैसा प्रतिमा का परमार्थस्वरूप—नग्नदिगम्बर है। **उसी को सूचित करता हो वह निर्बाध है।** आहाहा!

**जैसा परमार्थरूप आकार कहा, वैसा ही आकाररूप व्यवहार हो तो व्यवहार भी प्रशस्त है...** नग्न दिगम्बर मुद्रा जैसी मुनि की है, वैसी ही सामने नग्न मुद्रा प्रतिमा हो तो वह व्यवहार है। उससे जरा भी फेरफार हो तो वह व्यवहार है नहीं। यह तो अब ४८ वर्ष हुए न, बहुत वर्ष हुए। अब बाहर स्पष्टता में कहाँ दिक्कत है? **व्यवहारी जीवों के यह भी वन्दन करनेयोग्य है।** व्यवहारी जीव की बात है न? साधकजीव की। प्रतिमा भगवान की मुद्रा। 'जिनप्रतिमा जिनसारखी।' आता है न बनारसीदास में? 'जिनप्रतिमा जिनसारखी, कही जिनागम माही। लेश दोष लगे तो वन्दन नाहि।' बनारसीदास। बनारसीदास में है। बनारसीविलास। (समयसार नाटक में है)।

**स्याद्वाद न्याय से सिद्ध किये गये परमार्थ और व्यवहार में विरोध नहीं है।** परमार्थ है, वह निश्चय वीतरागता जिसे प्रगटी है, नग्नमुद्रा वह मुनिपना, वह निश्चय प्रतिमा। स्याद्वाद में ऐसी ही सामने प्रतिमा हो, वह भी वन्दन करनेयोग्य है, उसमें विरोध है नहीं। ऐसा निश्चय हो, वहाँ ऐसा व्यवहार होता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....विरोधी हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विरोधी हो तो विरोधी तो कहा है। विरोधी होने पर भी विरोध नहीं अर्थात्? कि ऐसा भाव हो तो उसमें नुकसान हो जाये निश्चय को, ऐसा नहीं है। व्यवहार का भाव है वन्दन का। शुभभाव है वह। अशुभ से बचने को शुभभाव आता है। निश्चय स्वभाव से व्यवहार विरुद्ध है। परन्तु व्यवहार से व्यवहार बराबर है, यह ऐसा कहते हैं। व्यवहार होता है न उस समय। निश्चय है, उससे व्यवहार विरुद्ध है और व्यवहार हेय है। परन्तु व्यवहार आता है या नहीं बीच में? तो व्यवहाररूप से सत् है या नहीं? आहाहा! ऐसा है सब। उसमें परमार्थ और व्यवहार विरोध नहीं, यह क्या कहा? कि भाई! तुमने ऐसी चैतन्य प्रतिमा कही और फिर यह नग्न प्रतिमा और कही। तो उससे विरुद्ध परन्तु वह तो निश्चय से विरुद्ध व्यवहार, लो। अब व्यवहार से तो व्यवहार बराबर है। समझ में आया? व्यवहार है। व्यवहार नहीं? व्यवहार से निश्चय को लाभ नहीं। परन्तु व्यवहार व्यवहार के स्थान में व्यवहार नहीं, तब तो केवली हो जाये, प्रमाणज्ञान हो जाये। आहाहा! ऐसा है, भाई! कुछ भी थोड़ा बहुत फेरफार करे तो पूरा फेरफार हो जाये। आहाहा! मध्यस्थ रीति से देखना।

यह प्रश्न किया न कि परमार्थ से ऐसी चैतन्य प्रतिमा कहना और फिर वापस प्रतिमा ऐसी नग्न... पूजना? भाई! व्यवहाररूप से होता है। निश्चय है, वह बन्ध का कारण नहीं, परन्तु व्यवहार बन्ध का कारण साथ में है या नहीं? व्यवहार है या नहीं? या नहीं ही?

**मुमुक्षु :** बन्ध....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बन्ध हुआ, यही कहा। कि बन्ध को निश्चय की अपेक्षा से विरुद्ध है, परन्तु बन्ध का भाव वहाँ बन्धभावरूप से है या नहीं? व्यवहार व्यवहार का विषय है या नहीं? समझ में आया? हेय है, निश्चय की अपेक्षा से वे दो नय विरुद्ध हैं। परन्तु विरुद्ध भी नय है या नहीं? वही निश्चय से व्यवहार से विरुद्ध है। यह तो सिद्ध करन है। तथापि व्यवहार है। है, तब विरुद्ध हुआ न? आहाहा! ऐसी बातें कठिन मिलान करना! स्वरूप की वृत्ति और स्थिरता जिसे प्रगट हुई, वह तो जैन प्रतिमा निश्चय है। परन्तु अब जब ऐसा व्यवहार होता है या नहीं? सामने ऐसे ही आकार की प्रतिमा और ऐसे ही आकार की... व्यवहार से वन्दनीक है। वह तो निश्चय को वन्दन

करना, वह भी व्यवहार है, परन्तु यह वह निश्चय को वन्दन करते हैं, ऐसा कहते हैं। पर को वन्दन करना, वही व्यवहार है। परन्तु यहाँ निश्चय है, उसे वन्दन करे और वह व्यवहार है, उसे वन्दन करे, इतना अन्तर है, ऐसा। क्या कहा, समझ में आया?

पर को वन्दन करना, वह स्वयं व्यवहार है। परन्तु उस व्यवहार के प्रकार में दो भेद। एक निश्चय जो शुद्ध प्रतिमा है, उसे वन्दन करना, वह निश्चय का व्यवहार और उसको करना, वह व्यवहार का व्यवहार। ऐसा है। भाई! इसमें तो इसे दिमाग से जानने का प्रयत्न करना पड़ेगा। मार्ग यह है। कम, अधिक, विपरीत कुछ नहीं चलता। पूछा था न... व्यवहार को छोड़कर छोड़ना नहीं। अर्थात् क्या? व्यवहार है। गाथा आवे न... सामने? व्यवहार नहीं, ऐसा है? परन्तु व्यवहार से निश्चय पावे, ऐसा नहीं। दोनों को विरोध है। नय विरोध है। कहो, हीराभाई! ऐसा कठिन, भाई! यह तो मध्यस्थ की बातें हैं, बापू! जरा सा भी न्याय टूटे तो सब फेरफार हो जाए। समझ में आया?

निश्चय वन्दनीक कहा, उसके साथ व्यवहार भी वन्दनीक कहा। वस्तु है या नहीं? पूर्ण वीतरागता न हो, तब यह भाव आये बिना रहता ही नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है, उनका विनय आदि... होता है या नहीं? तथापि वह शुभभाव है, वह व्यवहार है। निश्चय के स्वभाव की अपेक्षा से विरुद्ध है। परन्तु वह विरुद्ध जो निश्चय वर्तमान है, उसे नुकसान नहीं करता। क्या कहा? वह आता है न व्यवहार? आया था न निश्चय? व्यवहार का जो विकल्प है अकेला, वह तो शुद्ध निश्चय को आगे बढ़कर रोकता है। समझ में आया? परन्तु वर्तमान निश्चय का विरोध नहीं। निश्चय वहाँ रहता नहीं, ऐसा व्यवहार होवे तो निश्चय रहता ही नहीं, ऐसा नहीं। निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में आते हैं न?

**मुमुक्षु :** निश्चय व्यवहार साथ में व्यवहार....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं आया? समयसार में आया है। पुण्य-पाप अधिकार में। कर्मधारा में।

**मुमुक्षु :** ज्ञानधारा में साथ में रहने में विरोध नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह ज्ञानधारा और कर्मधारा साथ में रहने में विरोध नहीं। यह

बराबर कहा है। समझ में आया? श्लोक में कहा है यह। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी निर्मल दृष्टि में शुद्ध का आदर और अपना आदर, वह निश्चय है। तथापि वहाँ व्यवहार रागधारा—कर्मधारा होती है। होती है, वह कहीं उसमें विरोध नहीं। विरोध नहीं अर्थात्? कि यह वर्तमान निश्चय है, उसे नुकसान नहीं करता। विशेष निश्चय उत्पन्न नहीं होता। परन्तु वर्तमान निश्चय है, उसका विरोध नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? बहुत पहलु पड़ते हैं इसमें। यह तो भाई! मध्यस्थ से... अनेकान्त मार्ग है न! स्याद्वाद है, उसे उस प्रकार से समझना पड़ेगा। 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही। वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' वाद-विवाद से पार नहीं पड़ता। वस्तुस्थिति ही ऐसी है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समझते नहीं तुम्हारी भाषा।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह अभी विवाद करने जैसा नहीं। अभी तो बात यह है। आहाहा!

**स्याद्वाद न्याय से सिद्ध किये गये परमार्थ और व्यवहार में विरोध नहीं है।** अपेक्षित बात सिद्ध करने में चैतन्य निर्विकल्पदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र, वह जिनप्रतिमा निश्चय से वन्दनयोग्य है और ऐसे ही आकारवाली जिनप्रतिमा भी व्यवहार से वन्दनयोग्य है। वह भी व्यवहार है और यह भी व्यवहार है। परन्तु यह व्यवहार निश्चय को वन्दन करता है और वह व्यवहार व्यवहार को वन्दन करता है, ऐसा है।

**मुमुक्षु :** बहुत....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ...अनादि बात है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। किसी का पक्ष वहाँ कहाँ चलता है? इसलिए कहा न? **स्याद्वाद न्याय से सिद्ध किये गये...** देखो! निश्चय से यह सिद्ध किया, व्यवहार से यह सिद्ध किया। परमार्थ और व्यवहार में कोई विरोध नहीं।

**मुमुक्षु :** मोक्षमार्गप्रकाशक में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो किस अपेक्षा से कहा? परस्पर विरुद्ध है। विरुद्ध तो

कहा पहले। विरोध है, वह निश्चय यहाँ है, ऐसा (व्यवहार) आता है, वह वर्तमान निश्चय को नुकसान करता है, ऐसा नहीं है। इसीलिए तो दो धारा साथ में होती है, ऐसा कहा। समझ में आया? परन्तु है तो विरुद्ध। निश्चय और व्यवहारनय तो विरुद्ध ही है न! निश्चय स्वभाव का आश्रय लेता है, व्यवहार पर का आश्रय लेता है। दोनों विरुद्ध है। परन्तु विरुद्ध होने पर भी उसकी भूमिका प्रमाण में आवे तो उस दशा को नुकसान नहीं करता। ऐसी ज्ञानधारा जो है, श्रद्धाधारा, उसे वह व्यवहार नुकसान नहीं करता। इसलिए साथ रहने में बाधा नहीं है। ऐसा है, भाई! यह जिनप्रतिमा का स्वरूप कहा।

★ ★ ★

## गाथा - १४

**आगे दर्शन का स्वरूप कहते हैं :-** देखो! १४वीं गाथा आयी थी न? दर्शनपाहुड़ की। १४वीं गाथा। वह यहाँ १४वीं दर्शन की बात है। वहाँ भी जिनदर्शन की बात थी। यहाँ दर्शन की बात है। यह दोनों १४वीं गाथा आयी। वहाँ १४वीं कहा था न अष्टपाहुड़ में। ...१४वीं। १४। पृष्ठ २० है।

**दुविंह पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।**
**णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥१४॥** (दर्शनपाहुड़)

जिसे जैनदर्शन कहते हैं। **जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो और मन-वचन-काया ऐसे तीनों योगों में संयम हो...** देखा! **तथा कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन कारण जिसमें शुद्ध हो वह ज्ञान हो,...** अर्थात् खोटे ज्ञान में भी मन, वचन को कहीं प्रेरे नहीं। यह शास्त्र का ज्ञान वे लोग चलाते थे न सब? उनके सामने यह बात है। बहुत शास्त्र आये। **निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे ऐसा, खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे,...** हाथ में आहार करे। **इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।** लो! इसे जैनदर्शन कहा जाता है। मूर्तिमन्त उसका स्वरूप वह जैनदर्शन है। आहाहा! ऐसा ही यहाँ (बोधपाहुड़ में) कहते हैं। दर्शन का स्वरूप ऐसा दिखाई दे मार्ग ऐसा। आहाहा!

**दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।**
**णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं॥१४॥**

जिनमार्ग में इस प्रकार दर्शन कहा। कहो, समझ में आया? वहाँ भी यह कहा। '**उब्भसणे दंसणं होदि**' इतना कहा। वहाँ दर्शन है। यहाँ जिनमार्ग में दर्शन उसे कहा है। त्रिलोकनाथ की वाणी कुन्दकुन्दाचार्य जगत में प्रसिद्ध करते हैं कि जिनमार्ग में तो उसे दर्शन कहा है। जिसकी दशा समकितसहित मोक्षमार्गवाली संयमसहित, सुधर्मसहित, निर्ग्रन्थ और ज्ञानमयी—अकेली दशा जिसकी ज्ञानमय हो गयी है। उसे जिनमार्ग में दर्शन कहा है, लो! मोक्षमार्ग अन्दर दिखाई दे, जिसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगटी है। वहाँ भी ऐसा कहा है। बाह्य-अभ्यन्तर। ऐसा जिनमार्ग में दर्शन जैनदर्शन तो उसे कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं कि वीतरागमार्ग में केवलियों ने सर्वज्ञों ने जैनदर्शन उसे कहा है। समझ में आया?

**अर्थ :- जो मोक्षमार्ग को दिखाता है, वह दर्शन है,...** देखा! दिखाई दे ऐसे। दिगम्बर मुद्रा और सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्रदशा मोक्षमार्ग को दिखाये, वह जैनदर्शन है। समझ में आया? **सम्यक्त्व अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यक्त्वस्वरूप है, संयम अर्थात् चारित्र पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति ऐसे तेरह प्रकार चारित्ररूप है,...** उस सहित जो हो, उसे जैनदर्शन कहा जाता है। समकित नहीं। जैनदर्शन। ऐसे जैनदर्शन की श्रद्धा आत्मा से हो, उसे समकित कहते हैं। समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर कृष्ण ३, गुरुवार, दिनांक-१३-१२-१९७३
गाथा - १४, १५, प्रवचन-६६

जैनदर्शन। उसका स्वरूप

**दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।**
**णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं॥१४॥**

**अर्थ :- जो मोक्षमार्ग को दिखाता है, वह दर्शन है,...** जिसे देखने से मोक्षमार्ग दिखता है, ऐसा। जिसे अन्तर में ज्ञानमय... यह शब्द बहुत आता है सर्वत्र। '**णाणमयं**' '**णाणमयं**' इसका अर्थ यह कि मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञानमय, दर्शन, ज्ञान और चारित्र सब ज्ञानमय हो गया। ऐसा जो दर्शन दिखलावे, ऐसा बाह्य। ज्ञानमय वस्तु दर्शन, ज्ञानमय, ज्ञान ज्ञानमय, चारित्र ज्ञानमय। और बाह्य में नग्नदशा। यह दिखावे, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं, लो! मोक्षमार्ग दिखाता है, ऐसा कहते हैं। सम्यक्त्व अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धानं समकित स्वरूप। उसमें सम्यग्दर्शन होता है। वीतराग ने कहे हुए मार्ग की अन्तर्मुख होकर प्रतीति / श्रद्धा, उसे संयम—चारित्र होता है। जैनशासन महाव्रत से कहा। पंच महाव्रत निश्चय है। यह व्यवहार होवे तो वह निश्चय को बतलाने के लिये बात है।

**पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति ऐसे तेरह प्रकार चारित्ररूप है, सुधर्म अर्थात् उत्तम-क्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है,...** सम्यग्दर्शनरूप, चारित्ररूप और उत्तम क्षमादि दशलक्षणरूप धर्म। सम्यग्दर्शन में जिसे उत्तम क्षमादिक चारित्र के भेद प्रगट हुए हैं। **निर्ग्रन्थरूप है...** जिसकी बाह्य दशा और **बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह रहित है,...** बाह्य में भी जिसे वस्त्र का धागा भी नहीं। अन्तर में जिसे ज्ञानमयदशा, श्रद्धा, चारित्र आदि प्रगट हुई है। **ज्ञानमयी है—जीव, अजीवादि पदार्थों को जाननेवाला है।** ऐसा नहीं, भगवान! वह तो ज्ञानमयी है, उसका अर्थ यह है। बहुत गाथा में आयेगा। '**णाणमयं**' '**णाणमयं**' '**णाणमयं**' यह ज्ञानस्वरूप से भगवान आत्मा है, वह ज्ञानमय जिसकी दशा, श्रद्धा और ज्ञान की, शान्ति की, स्थिरता की। ज्ञान की दशा हो गयी है सब। राग की दशा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह वस्तु स्वयं आत्मा ज्ञानमयी है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र भी ज्ञानमय हो जाते हैं। उसे अभ्यन्तर जैनदर्शन कहते हैं और बाह्य निर्ग्रन्थदशा, वह बाह्य वस्तु। आहाहा! यह १४वीं गाथा में पहले आ गया था। बाह्य-अभ्यन्तर। खड़े-खड़े आहार, नौ कोटि से ज्ञान शुद्ध संयमसहित उसे, अष्टपाहुड़ में, पहले दर्शनपाहुड़ में, उसे दर्शन कहा था। यहाँ यह दर्शन कहा है। **बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह रहित है, ज्ञानमयी है...** वह तो अकेला ज्ञानस्वरूपमय चिद्घन हो गया है। **बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह रहित है, ज्ञानमयी है... यहाँ निर्ग्रन्थ और ज्ञानमयी ये दो विशेषण दर्शन के भी होते हैं, क्योंकि दर्शन है, सो बाह्य तो इसकी मूर्ति निर्ग्रन्थ है और अन्तरंग ज्ञानमयी है।** लो! देखा! आहाहा! मूल तो ऐसा कहना चाहते हैं। कहा शब्दार्थ। '**णाणमयं**' '**णाणमयं**' ही इस बोल में।

आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई। वह बाह्य में अकेले व्रत के कारण साधु हैं, ऐसा मानते थे न? उनके सामने यह बात है। बाहर के क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रत के वस्त्रसहित कहते हैं, वह नहीं। वह मुनिपना नहीं और वह ज्ञानमय नहीं। अकेला भगवान आत्मा जहाँ ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र सब ज्ञानमय हो गया है। ऐसा यह दूसरे वेश में या दूसरे मत में होता नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया? वे तो पंच महाव्रत और बाह्य क्रिया और शुभराग को ऐसा मानते न? यहाँ कहते हैं कि वह नहीं। अन्तर ज्ञानमयी स्वरूप है। ज्ञानमयी अर्थात् ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द का दर्शन, ज्ञान और चारित्र सब स्वभाव की धारा होती है, ज्ञान की धारा वह है। वहाँ कर्मधारा नहीं। दूसरे प्रकार से वह पंच महाव्रत आदि से मानते न? इसलिए कर्मधारा—राग धारा। वह ज्ञानमय स्वरूप नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया? जिसे भगवान आत्मा और वह जिसे जैनदर्शन ऐसा मिला हो उसे अन्दर ऐसी ज्ञानमय दशा होती है, दूसरे मार्ग में उसे ऐसी ज्ञानदशा होती ही नहीं।

**मुमुक्षु :** विपरीत ही है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विपरीत ही सब। ज्ञानमय नहीं। क्रियाकाण्ड में बाहर की प्रवृत्ति की जो शरीर की और शुभराग की माने, वह कुछ वस्तु नहीं, ऐसा। और शास्त्र का जानपना हो, बातें करे, वह कुछ वस्तु नहीं। वस्तु तो भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप सर्वज्ञस्वभावी, उसका ज्ञानमय, श्रद्धा ज्ञानमय, ज्ञानमय ज्ञान और ज्ञानमय स्थिरता

उसकी सब ज्ञानमय—आत्ममय हो गयी है। उसे यहाँ जैनदर्शन और उसे मुनिपना कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत फेरफार हो गया था न, इसलिए कुन्दकुन्दाचार्य को ऐसी स्पष्टता करनी पड़ी।

दर्शन को बाह्य मूर्ति निर्ग्रन्थदशा। जिसकी वीतरागता बाह्य में दिखाई दे, जिसे कोई वस्त्र, पात्र, स्त्री, परिवार, आयुध कुछ होता नहीं। ऐसी वीतरागता दिखाई दे। ऐसी अन्तर में ज्ञानमयीदशा, वह वीतरागमयीदशा। आहाहा! समझ में आया? **अन्तरंग ज्ञानमयी है।** देखा! लिया न? बाह्य मूर्ति निर्ग्रन्थ और अन्तर ज्ञानमयी है। वह वस्तु है, उनका कहने का आशय ऐसा है। चैतन्य भगवान अन्तर राग से रहित ज्ञायक की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में है, वह ज्ञानमयी मूर्ति निर्ग्रन्थ अन्दर है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बाहर की प्रवृत्ति समिति, गुप्ति और बाहर की प्रवृत्ति, वह तो विकल्प, राग है। वह अभ्यन्तर अंग नहीं।

**अन्तरंग ज्ञानमयी है। इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में दर्शन कहा है...** लो, ठीक! मुनि के ऐसे रूप को जैनमार्ग में दर्शन कहा। जिसे अन्तरंग में ज्ञान, दर्शन, चारित्र ज्ञानमयी दशा हो गयी है और बाह्य में नग्नदशा, दिगम्बर बाह्य में कुछ भी परिग्रह का अंश दिखाई नहीं देता, उसे यहाँ निर्ग्रन्थ मुनि का रूप उसे जैनदर्शन कहा है। कहो, समझ में आया इसमें? पाठ है न, **'जिणमग्गे दंसणं भणियं'** जैनमार्ग में इसे दर्शन कहा है। समकित को बाद में। यह तो बाद में कहेंगे, देखो न! यह बाद में कहेंगे।

**इस प्रकार के ऐसे रूप के श्रद्धानरूप सम्यक्त्वस्वरूप को दर्शन कहते हैं।** फिर ऐसा। ऐसा जैनमार्ग में दर्शन कहा है कि जिसे आत्मज्ञान और दर्शन और चारित्र ज्ञानमयी परिणम गये हैं। इसलिए बाह्य में जिसकी वीतरागता निर्ग्रन्थदशा दिखती है, उसे यहाँ जैनमार्ग में दर्शन कहा जाता है। आहाहा! व्याख्या तो देखो! समझ में आया? जिसे ज्ञानमयी, दर्शन, आनन्द और शान्ति ज्ञानमयी हुए नहीं और मात्र क्रिया में बाहर में दिखाई दे महाव्रत और,... वह कहीं जैनदर्शन नहीं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! बोधपाहुड़। इसका नाम बोधपाहुड़ है न? ज्ञानपाहुड़, ज्ञानमयी, ज्ञानमयी का बोधपाहुड़।

आत्मा अन्तरंगमुख होकर ज्ञानमयी श्रद्धा, ज्ञानमय ज्ञान और ज्ञानमय स्थिरता, वह अन्तरंग जैनदर्शन है। बाह्य में व्यवहार से यह नग्नदशा, मुद्रा—ऐसा निमित्तपना होता है। वह मोक्षमार्ग दिखलाता है, ऐसा कहते हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्षमार्ग है, वे तीनों ही ज्ञानमय हैं, ऐसा कहते हैं। कोई व्यवहार के विकल्प में वह दर्शन नहीं, ऐसा कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, वह अन्तरंग वस्तु नहीं। जिसे अन्तरंग ज्ञानमय श्रद्धा, ज्ञानमय ज्ञान और रमणता होती है, उसे बाह्य फिर पाँच महाव्रत का विकल्प और नग्नदशा हो, यह जैनदर्शन और जैनमार्ग दिखलाता है। समझ में आया? देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं कि जैनमार्ग में '**णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं**' आहाहा! इस राग की क्रियारहित आत्मा का ज्ञान और क्रिया है, उसे यहाँ जैनदर्शन में जैनदर्शन, जैनमार्ग में उसे जैनदर्शन कहते हैं। आहाहा! बाहर में जिसका मुनिरूप, वीतरागदशा है यह।

**ऐसे रूप के श्रद्धानरूप...** अब। ऐसा जो दर्शन अन्तर आत्म ज्ञानमयी, ज्ञानमयी श्रद्धा, ज्ञानमयी दर्शन, ज्ञानमयी ज्ञान और ज्ञानमयी चारित्र तथा बाह्य में निर्ग्रन्थ—ऐसे रूप के श्रद्धानरूप। उसकी श्रद्धा करना, ऐसी चीज़ की। उस चीज़ की श्रद्धा के लिये स्वभाव-सन्मुख हो, तब होता है। क्योंकि जिसे स्वभाव-सन्मुख होकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र प्रगट हुए हैं, ऐसा जो जैनदर्शन, उसकी श्रद्धा के लिये... समझ में आया? जिसे आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मचारित्र, ऐसा जो मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, वह मोक्षमार्ग है और वह जैनदर्शन जिनमार्ग में है। उसकी जिसे श्रद्धा है... वह श्रद्धा कब हो? कि जिसे आत्मा के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए हैं, ऐसा जो जैनदर्शन, उसकी श्रद्धा करने जाये, तब उसे स्वभाव का आश्रय होता है। समझ में आया?

मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में भी आता है न, देव का आत्मा है, उसकी यथार्थ श्रद्धा करे तो समकित होता है, गुरु का आत्मा जिस प्रकार से है, उसे वस्तुरूप से जाने, तो यह गुरु अर्थात् यह मोक्षमार्ग की लीनता। उसे आत्मा की दर्शन-ज्ञान और चारित्र यह दशा है। ऐसी जो आत्मा से जाने, उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? कहो, यह रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है न! आप्त, आगम, तत्त्वार्थश्रद्धान। आप्त का, आगम का और तत्त्वार्थश्रद्धान है वह निश्चयज्ञान। आप्त निश्चय है। सर्वज्ञ ऐसे हैं, गुरु ऐसे ज्ञानमयी

हैं। बाह्य में व्यवहार में। उसे—शास्त्र को वह धर्म कहना है, अहिंसा—रागमयरहित ऐसा उसे जो जाने, उसे सम्यक्त्व होता ही है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** जानने का तो पराश्रितज्ञान.... ऐसा जैनदर्शन... मन के आश्रय से...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मन के आश्रय से नहीं यहाँ। आत्मा के आश्रय से जो मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है। ज्ञानमयी कहा है न? ऐसा जो मोक्षमार्ग दिखलाता है, ऐसे मोक्षमार्ग की श्रद्धा कब होती है? कि आत्मा का आश्रय ले तब। मन की बात नहीं इसमें। जिसे आत्मा ज्ञानमयी है, आत्मा अकेला ज्ञानमय ही आत्मा है। ज्ञान, वही आत्मा—ऐसा करके वर्णन किया है न बहुत जगह? उसका अर्थ ही यह कि ज्ञानमयी आत्मा है और उस ज्ञानमयी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता, वह ज्ञानमयी के आश्रय से हुई है, उसकी श्रद्धा करनेवाला ऐसा मोक्षमार्ग है, जैनदर्शन ऐसा है, ऐसी श्रद्धा करनेवाले को स्व का ही आश्रय होता है। समझ में आया? ऐसा है गिरधरभाई! सूक्ष्म बातें हैं, भाई! क्या कहा?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात सच्ची। आहाहा! पहला निर्णय तो करे उसे कि वस्तु तो यह है। आहाहा! सच्चे अरिहन्त देव और सच्चे गुरु यह मोक्षमार्गी। अरिहन्त तो मोक्षस्वरूप हुए और यह तो मोक्षमार्ग बतलाना है न! जैन में दर्शन कहा, ऐसा कहना है न यहाँ तो! मार्ग कहा है। आहाहा! जैनमार्ग में जिनेश्वरदेव ने ऐसा दर्शन कहा है। आहाहा! जिसे आत्मा के आश्रय से, परिपूर्ण परमात्मा सर्वज्ञ स्वरूपी, उसकी जिसे ज्ञान में ज्ञान की श्रद्धा हुई है, ज्ञान में ज्ञान का ज्ञान हुआ है, ज्ञान में रमणता ज्ञान की हुई है। इसलिए वह क्रियाकाण्ड के व्यवहार को माननेवाले सच्चे कि हमारे पास यह है, यह है, यह है व्यवहार, उसे यहाँ उत्थापते हैं। समझ में आया? हम ऐसा-ऐसा पालते हैं, महाव्रत पालते हैं, संथारा करते हैं, समाधि, वह वस्तु नहीं। वह तो विकल्प है। उसे भी व्यवहार कब कहा जाये? कि सच्चा ज्ञानमयी दर्शन, चारित्र हुआ हो और जिसे निर्ग्रन्थ बाह्यदशा हुई हो, उसके पंच महाव्रत के विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। अज्ञानियों के व्यवहार को व्यवहार भी नहीं कहा जाता। ऐसा है, भाई! समझ में आया? आहाहा! यह वीर का मार्ग है। आहाहा!

जिस मार्ग से सिंह विचरे, रज लगी तरणा, वे तरणा खड़े सूखेंगे, नहीं चरे उन्हें

हिरणा। जिसे मार्ग से सिंह ने विचरण किया, उसके पैर की रज जिसे—तृण को लगी है, वह तृण खड़ा सूखेगा, उसे हिरण नहीं चरेंगे। जिसके—वीर के मार्ग के... आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसे आत्मा के ज्ञानमयी दशा हुई है। ऐसी दशा में वीर ही चल सकेंगे, कहते हैं। वहाँ साधारण हिरण जैसों का काम नहीं। समझ में आया? आहाहा! वीरों का वीर का मार्ग वीरों का है। आहाहा! या होम करके पड़ अन्दर में जा, कहते हैं। भगवान पूर्णानन्द का नाथ है न, नाथ! जिसके अनन्त गुणों से तेजमयी जिसकी शक्ति से शोभित आत्मा है। अनन्त गुणों के तेज से ज्ञानमयी आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अविनाभावी है। ज्ञान के साथ अनन्त... धर्म अविनाभाव है।

उसके सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, चारित्र को जैनमार्ग, ज्ञानमयी मार्ग को जैनमार्ग कहते हैं। आहाहा! वीतराग मार्ग वहाँ खड़ा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और मूल तो वह पंथ निकला है, वह व्यवहार का लक्ष्य करके व्यवहार की प्रधानता से ही निकला है। हम भगवान के भक्त हैं, भगवान के माननेवाले हैं, सेवा करनेवाले हैं, हम आचरण के व्यवहार हैं, आचरण करनेवाले हैं। उसके सामने यह बात है। बापू! यह बात ऐसी नहीं। तेरा व्यवहार, वह व्यवहार सच्चा नहीं। जिसे ज्ञानमयी श्रद्धा, ज्ञानमयी ज्ञान, ऐसा आत्मा का जिसे चारित्र अन्तर में प्रगट नहीं हुआ। आहाहा! उसे जैनदर्शन निश्चय से कहें, वह उसे नहीं है। समझ में आया? भारी कठिन मार्ग है, भाई! आहाहा! कायर का कलेजा काँप उठे, ऐसा है। ऐसा मार्ग है।

**मुमुक्षु :** शूरों का मार्ग है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, 'हरि का मार्ग है शूरों का, कायर का नहीं काम।' आहाहा! वीर वीरता में पड़े अन्दर में, चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ जहाँ अनन्त गुणों से शोभित उसके ... शोभा आयी थी न पहले, नहीं आया था? शोभता है, आया था। शोभता है, आया था। उससे शोभता है। यह कहीं आया था। शोभता है, आया था न कहीं?

**मुमुक्षु :** लक्ष्य हुआ.... समयसार में...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह शोभता है। शोभता है आया है। उसमें आया है। शोभता

है, यह आया। विराजमान है, इसका अर्थ शोभता है, ऐसा किया। विराजमान।

यहाँ तो परमात्मा जहाँ विराजमान है अनन्त गुणों से भरपूर प्रभु, आहाहा! उसमें जिसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई है, वह शोभता है। आहाहा! वह उसकी शोभा है। उस **मुनि के रूप को जिनमार्ग में दर्शन कहा है...** ऐसे मुनि का रूप। जिसे ज्ञान-दर्शन-चारित्र ज्ञानमयी हो गये हैं और बाह्य में निर्ग्रन्थदशा हुई है। वीतराग... जिसे किसी की आवश्यकता नहीं, ऐसी वीतरागता आयी है। माँ से जन्मा ऐसा। आहाहा! जिसके शरीर में उपशमरस के ढाले ढल गये हैं, ऐसी दशा को जैनमार्ग में दर्शन कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

**तथा ऐसे रूप के श्रद्धानरूप...** है? **ऐसे रूप के...** अर्थात् अन्दर ज्ञानमयी दर्शन, चारित्र आदिरूप और बाह्य निर्ग्रन्थदशा। **ऐसे रूप के श्रद्धानरूप सम्यक्त्वस्वरूप को दर्शन कहते हैं।** यह बाह्य अकेला समकित आया। ऐसे दर्शन को अन्तर से श्रद्धा करे, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? भगवान को २५०० वर्ष होते हैं, तब ऐसा सब आया है। आज से ढाई हजार वर्ष (पहले भगवान महावीर) मोक्ष पधारे थे। २५००वाँ वर्ष चलता है न, यह २५००वाँ वर्ष चलता है। अभी दीवाली से लोग मनायेंगे। वे....

**मुमुक्षु :** अपने मनाने की शुरुआत की।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ मनाने की। वह चिन्तन वोरा ने लिखा है। ...भाई! विरोध न करो। विरोध किसलिए करते हो तुम? यह कहे कि यह जैनदर्शन की रीति से न मनावे तो? परन्तु तो तुम तुम्हारी जैनदर्शन की रीति से तुम मनाओ। परन्तु तुम यह क्या? चिन्तनभाई है। है न चिन्तन वोरा।

**मुमुक्षु :** स्थानकवासी जैन है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। अपने रतिभाई यहाँ थे न। उनके भाई रतिभाई आये हैं। बाह्य में। ...परन्तु वह बात यहाँ नहीं। कि तुम कितने ही विरोध करते हो। यह राजकीय रीति से कदाचित् करे, परन्तु तुम तुम्हारी रीति से करो। ऐसा विरोध करते हो? बात सच्ची है। नवनीतभाई! उचित है। तुमको तुम्हारी जैनदर्शन की रीति से तुमने जो माना हो

ऐसा। वहाँ तो जैनदर्शन ही कहाँ है ? आहाहा! कोई करते हों तो वे लोग बेचारे... महावीर भगवान को २५०० वर्ष की घोषणा होती है जगत में। भगवान थे और उसमें जिसे...

**मुमुक्षु :** लोगों के मुख में नाम तो आयेगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आयेगा। नाम आवे न, भगवान महावीर हो गये। उनकी प्रसिद्धि... बाह्य में लोग जो नहीं जानते, वे जानेंगे। ओहो! उन्होंने फिर करोड़ों रुपये खर्च किये जैन लोगों ने। भगवान मोक्ष पधारे। अहिंसा के पूरे पुजारी। वीतरागभाव के पुजारी कहो या अहिंसा के पुजारी कहो। ओहोहो! समझ में आया ? यह लिखा है उसमें जैन। जैन क्या कहलाये ? जैनप्रकाश।

यहाँ कहते हैं, बड़े अक्षरों में लिखा है, देखा! **इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में दर्शन कहा है।** ऐसा मुनि का रूप। जिसे ज्ञानमयी सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञानमयी ज्ञान और ज्ञानमयी चारित्र। वह जैनदर्शन। बाह्य में निर्ग्रन्थदशा दिखाई दे। किसी की आवश्यकता नहीं। ऐसा दिखाई दे। वीतरागता दिखाई दे। आहाहा! **इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में...** जैनमार्ग में तीर्थंकरों ने, केवलियों ने यह दर्शन कहा है। आहाहा! समझ में आया? जिनमार्ग के कहनेवाले तो प्रभु हैं या नहीं? आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव केवलियों ने जैनमार्ग में उसे दर्शन कहा है। अपना स्वरूप, वह तो स्वयं मोक्ष (सर्वज्ञ) है, परन्तु साधक जीव ऐसा हो, वह दर्शन है। मोक्षमार्ग में ऐसा जीव हो, वह दर्शन—ऐसा कहना है।

**मुमुक्षु :** यह खड़े।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह खड़े। यह तो वहाँ कहा। व्यवहार बतलाना है न। व्यवहार बतलाना। मोक्षमार्ग के प्रणेता यह हम खड़े। प्रवचनसार के तीसरे भाग में (कहा है)। आहाहा! मात्र अमृत प्रवाहित किया है, हों! हमको खबर है चारित्र की। उसमें व्यवहार कैसा, उसकी हमको सब खबर है। उसके हम कहनेवाले अनुभवी प्रणेता यह खड़े। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ भी कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, देखो न यहाँ। जैन परमेश्वर ने जैनमार्ग में तो ऐसा दर्शन का रूप कहा है। आहाहा! क्योंकि आत्मा स्वयं जैनस्वरूप, जिनस्वरूप है। उसे जो वीतरागता प्रगट होती है, वह तो पर्याय में, परन्तु वह स्वयं

स्वरूप है, वहाँ से प्रगट होती है। इसलिए जिनस्वरूप ही, वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। ऐसे वीतरागस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह सब वीतरागीदशा है। ऐसा जिनेश्वरदेव ने, तीर्थंकरों ने जैनमार्ग में उसे जैनदर्शन कहा है। आहाहा! समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! लोगों को दूसरा लगे परन्तु क्या हो भाई? मार्ग तो यह है। इससे समाज को सुगठित रखा जा सके, ऐसी यह चीज़ नहीं। यह तो सत्य को सुगठित रखा जा सके, ऐसी चीज़ है। आहाहा! क्या हो? बाकी तो 'तत्त्वेषु मैत्री'। सब आत्मायें, आत्मा के प्रति तो धर्मी को मैत्री है। तत्त्वेषु मैत्री। परन्तु वस्तु की दृष्टि में तो जो हो, वह आवे। आहाहा!

भाई ने कहा नहीं? 'तत्त्वेषु मैत्री।' सभी प्राणियों के प्रति आत्मभाव से तो मैत्री है। आहाहा! पर्याय में जिस जाति की भूल है, उसे स्वयं ने गौण की है। तो उसे गौण करके उसके प्रति देखता है। अवस्था में जो भूल है, उस भूल को तो बराबर जानना चाहिए। जाने तो जाने न। माँ-बाप मिथ्यादृष्टि हो और पुत्र समकिती हो। जाने या नहीं? लौकिकरूप से माँ-बाप को बाह्य नैतिक मैं बड़े रूप से गिने, परन्तु अन्तर में तो उसे यह है, वे तो (समकिती) नहीं। यह कहीं असज्जनता नहीं है। सज्जनता है यह तो। समझ में आया? तथापि माँ-बाप के प्रति का जो लौकिक प्रेम है, वह प्रेम जाता नहीं। धर्म के प्रेम में वह उड़ गयी हो बात अन्दर से। आहाहा! उसे कोई भी व्यक्ति, उसकी दृष्टि में भूल हो तो उसे जाने, परन्तु व्यक्तिरूप से उसके प्रति द्वेष हो या अप्रेम हो, ऐसा नहीं। वह भी आत्मा है। वह भूल तोड़ेगा, तब क्षण में तोड़ेगा। आहाहा! परन्तु भूल है, तब तक तो भूल को जाने न! आहाहा!

**इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में दर्शन कहा है...** आहाहा! अनन्त केवलियों ने, गणधरों ने, सन्तों ने। आहाहा! ज्ञानमयी भगवान आत्मा की ज्ञान की श्रद्धा, ज्ञानमयी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञानमय ज्ञान। ज्ञान, आहाहा! यह वीतरागदर्शन है, यह जैनमार्ग में दर्शन कहा जाता है, लो! ऐसा वीतराग मुमुक्षु का मार्ग वीतरागी है। उसमें व्यवहार समकित की बात नहीं लेते यह निश्चय में। व्यवहार में हो भले बाह्य। अट्ठाईस मूलगुण आदि। परन्तु यह निश्चय में ऐसा हो, उसे व्यवहार ऐसा होता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, विकल्प आदि, उसे व्यवहार जानना। समझ में आया? यह तो मार्ग

धमाधम का नहीं, भाई! आहाहा! यह तो अन्तर दृष्टि में अन्तर (में) समाने की बातें हैं। आहाहा! बाहर में होड़ बाँधे कि तुमने ऐसे खर्च किये, तो हम दस लाख खर्च करेंगे, वह कहे बीस लाख खर्च करेंगे। उसके साथ यह कुछ सम्बन्ध नहीं। अन्दर में आत्मा का खर्च वीतरागता कितनी निकाली (प्रगट की) तूने? बाहर तो अज्ञानी करे कि भाई! तुमने तो ऐसा किया, हमने तो पचास लाख खर्च किये, हम करोड़ खर्च करेंगे। हमारे धर्म की शोभा के लिये। इसलिए तुम्हारे धर्म की शोभा थोड़ी और हमारी अधिक। ऐसा उसका माप नहीं वहाँ। ऐई! चिमनभाई!

**मुमुक्षु :** मूल वस्तु रह गयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसी बात है। आहाहा! मूल हो और फिर शुभभाव ऐसा होता है। परन्तु उस जाति की वृद्धि और शुद्धि के लिये होता है विकल्प में। समझ में आया?

**ऐसे रूप के श्रद्धानरूप...** पण्डित जयचन्द्रजी, देखो न! पण्डित जयचन्द्रजी है न यह? **श्रद्धानरूप सम्यक्त्वरूप को दर्शन कहते हैं।** लो! यह बड़े अक्षर यहाँ से डाले होंगे इन लोगों ने? यहाँ से कहा था न। किसने किया यह? शास्त्र कहाँ प्रकाशित हुआ है?

**मुमुक्षु :** किशनगढ़।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किशनगढ़? यह बड़े अक्षर (बोल्ड टाइप) कहाँ से डाले? किसने किये होंगे? यहाँ से डाले होंगे?

**भावार्थ :- परमार्थरूप अन्तरंग दर्शन तो सम्यक्त्व है और बाह्य उसकी मूर्ति, ज्ञानसहित ग्रहण किया निर्ग्रन्थ रूप, इस प्रकर मुनि का रूप है...** लो! आहाहा! समझ में आया? **परमार्थरूप अन्तरंग दर्शन तो सम्यक्त्व है...** वह तो। परन्तु ऐसे दर्शन का दर्शन। आहाहा! और **बाह्य उसकी मूर्ति, ज्ञानसहित ग्रहण किया...** ज्ञानमयी वस्तु हुई है, उसे बाह्य में मूर्तिरूप निर्ग्रन्थदशा **इस प्रकार मुनि का रूप है, सो दर्शन है, क्योंकि मत की मूर्ति को दर्शन कहना लोक में प्रसिद्ध है।** मत की मूर्ति को दर्शन कहना, वह लोक में प्रसिद्ध है। बहुत सरस गाथा! १४ वीं उसमें (दर्शनपाहुड़ में) आयी थी। १४ में यहाँ आयी। दर्शनपाहुड़ में समकित की थी और यह....

★ ★ ★

## गाथा - १५

१५ गाथा। यह तो भाई शान्ति का मार्ग है। यह कहीं धमाधम और हा..हो (का मार्ग नहीं)। आहाहा! कीमत तो अन्दर में ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान की श्रद्धा, रमणता की कीमत है। फिर व्यवहार होता है। यही यहाँ कहते हैं। ऐसा नहीं और अकेला व्यवहार अपनी कल्पनावाला होता है, वह जैनदर्शन ही नहीं। ऐसा कहते हैं।

**जह फुल्लं गंधमयं, भवदि हु खीरं स घियमयं चावि।**
**तह दंसणं हि सम्मं, णाणमयं होइ रूवत्थं॥१५॥**

देखा! '**णाणमयं**' '**णाणमयं**' आता है। देखो! १६वीं में भी '**जिणबिंब णाणमयं**' १६वीं। सर्वत्र ज्ञानमयी का अर्थ बतलाना है मूल तो। बाहर की प्रवृत्ति क्रियाकाण्ड में जो व्यवहार, उसका माना हुआ, हों! उसमें सब धमाधम चलती थी। मन्दिर करोड़ों रुपये खर्च करे, लाखों खर्च करे, राजा भी उसके उसमें (प्रभाव में) आ जाये। ...वस्त्र पहनकर सर्वत्र जाये... नग्न मुनि दिगम्बर को तो कुछ पड़ी ही नहीं। जंगल में स्थित हों। आहाहा!

**अर्थ :- जैसे फूल गन्धमयी है,...** फूल-फूल। गुलाब का फूल जैसे गन्धमयी है। वह फूल लेना है, हों! आँक के फूल में गन्ध नहीं होती, वह फूल नहीं। वह क्या कैसिया के फूल होते हैं न? कैसिया कैसिया। कैसिया समझते हो? कैसिया के फूल बहुत पीले होते हैं। बहुत कैसिया पूरी सड़क के ऊपर बहुत होती है। सड़क के ऊपर मोटर निकले, तब दोनों ओर पीले फूल होते हैं। पीले। सुगन्ध नहीं। बिल्कुल सुगन्ध नहीं। यह कैसिया के फूल कहलाते हैं कैसिया। सड़क के ऊपर बहुत होते हैं। मोटर चले, तब दोनों ओर।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लाल नहीं। यह तो पीले। कैसिया... कैसिया कहलाता है। कैसिया यह सड़क के ऊपर निकले... नहीं? आहाहा!

**जैसे फूल गन्धमयी है, दूध घृतमयी है...** दूध में घी होता है दूध के अन्दर। फूल में गन्ध होती है। **वैसे ही दर्शन अर्थात् मत में सम्यक्त्व है।** जिसके इस मत में समकित,

उसका मूल चीज़ है। सम्यग्दर्शन, वह मूल चीज़ है। आहाहा! **कैसा है दर्शन?** अब वह दर्शन है, परन्तु वह कैसा है वापस समकितदर्शन? **अन्तरंग तो ज्ञानमयी है...** देखो! अन्तरंग तो आत्मा ज्ञानमय है, ऐसी निर्विकल्प प्रतीति हो, वह सम्यग्ज्ञानमयी है। विकल्प जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, वह समकित नहीं। वह ज्ञानमयी नहीं, इसलिए समकित नहीं। समझ में आया? उन लोगों में देव-गुरु को बहुत मानते न! अभी कहते थे या नहीं? कहाँ गये चेतनजी? आगम और क्या तुम्हारे कहते थे न भाई? आगम और मूर्ति का अभी यह...

**मुमुक्षु :** ....भव्यन को आधार।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भव्यन को आधार, ऐसा बोले श्वेताम्बर में। जिन आगम और जिनमूर्ति भव्यन को आधार। उसके सामने यह बात है।

**मुमुक्षु :** जिनमूर्ति, जिनआगम थे ही कब?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वे मानते हैं न वे जिन। भाई कहते अपने। नानालाल।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसके फूल में गन्ध हो और जिस दूध में घी हो, इसी प्रकार जिसके ज्ञानमार्ग में समकित हो, परन्तु वह समकित कैसा? कि ज्ञानमय समकित हो। भाषा देखो। देव-गुरु-शास्त्र को माने, देव-गुरु की भक्ति को, ऐसा नहीं। आहाहा! गजब बात! सबमें ज्ञानमय शब्द बहुत आता है इसमें। कहने का आशय ऐसा है। बाहर में यह माने, देव-गुरु को माने, नव तत्त्व को माने। हम भगवान को मानते हैं, इसलिए हमारा समकित है। वह दर्शन ही नहीं। आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, वह प्रज्ञाब्रह्म प्रभु, उसका समकित ज्ञानमयी दशा उसे यहाँ, दूध में घी और फूल में गन्ध, इसी प्रकार जैनदर्शन में समकित, परन्तु उस समकित में भी यह ज्ञानमयी समकित, ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

**कैसा है दर्शन? अन्तरंग तो ज्ञानमयी है और बाह्य रूपस्थ है—मुनि का रूप है...** नग्नदशा। जैसा माता से जन्मा, वैसा ही उसका रूप। आहाहा! हल्के फूल जैसे चलते हों मानो। यह तो बड़े पोटले और कपड़े सिर पर। निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी कहलाये वे। आहाहा! बहुत मार्ग! वह यहाँ कहते हैं, हों! बाह्य में मुनि का रूप। **उत्कृष्ट**

**श्रावक, अर्जिका का रूप है।** लो, दो लिये। तीन हुए न? गृहस्थ के दो। उत्कृष्ट श्रावक दसवीं, ग्यारहवीं प्रतिमा और आर्यिका और मुनि तीन लिये हैं। उसमें जरा अविरति समकिती लिये हैं टीका में, इसलिए उसमें भी अविरति समकिती डाले हैं। अगासवालों ने। क्योंकि तीन में वे नहीं इसलिए। आहाहा! अविरति समकिती उन्होंने डाला है।

यहाँ तो रूपस्थ कहना है न? रूपस्थ अर्थात् तो त्याग का जो रूप है उसका... अविरति को त्याग नहीं। तीन रूप आये थे न पहले में? वेशरूप से तीन आये थे न? वेशरूप से। गृहस्थाश्रम में गृहस्थ के भेद चाहे जिस प्रकार के हों, परन्तु त्यागी के वेशरूप से तो तीन ही वेश होते हैं। मुनि का, उत्कृष्ट श्रावक का और आर्यिका का, बस। रूपस्थ रूप ऐसा कहे। त्यागी के गिनती में गिनने में तो तीन वेश होते हैं।

**भावार्थ :- दर्शन नाम मत का प्रसिद्ध है।** दर्शन, यह नाम मत का प्रसिद्ध है। मत। यह मत है इसका, यह दर्शन है इसका। ऐसा कहते हैं न? षट्दर्शन नहीं कहते? यह उसका मत है, वह दर्शन है। **यहाँ जैनदर्शन में मुनि, श्रावक और आर्यिका का जैसा बाह्य भेष कहा, सो दर्शन जानना...** लो! उसे दर्शन कहा। मुनि को तो कहा, उत्कृष्ट श्रावक और आर्यिका, वह भी दर्शन में आ गये। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भक्ति करते हैं वे तीनों ही? आता है न नियमसार में। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की श्रावक भी भक्ति करता है, तीनों की। ऐसा नहीं कि चारित्र की। तीनों की भक्ति है उसे। भले कम हो परन्तु है तीनों की भक्ति। अन्तर वस्तु शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता की उन्हें भक्ति है, तीनों की भक्ति है।

**जैसा बाह्य भेष कहा, सो दर्शन जानना और इसकी श्रद्धा सो अन्तरंग दर्शन जानना।** देखा! ऐसा ही मोक्ष का मार्ग और वेश हो, उसकी श्रद्धा उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसके सामने जाने की बात नहीं, परन्तु उसका स्वरूप है, ऐसी श्रद्धा, वह स्व के आश्रय से हो। **अन्तरंग दर्शन जानना। ये दोनों ही ज्ञानमयी हैं।** दोनों ज्ञानमयी। समझ में आया? कि जो दर्शन, जैनदर्शन है तीन, वह ज्ञानमय है और उनकी श्रद्धा करनेवाले की श्रद्धा, वह भी ज्ञानमय है। समझ में आया? जो मोक्ष के मार्ग में रूप—मुनि, श्रावक, आर्यिका, ये तीनों दर्शन कहो तो वह भी ज्ञानरूप है अन्दर। ज्ञानरूप की दशा को यहाँ

दर्शन कहा है और उसकी श्रद्धा समकित, वह भी ज्ञान की श्रद्धा है, वह ज्ञानमय श्रद्धा है। उसकी श्रद्धा अर्थात् विकल्प, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**श्रद्धा सो अन्तरंग दर्शन जानना। ये दोनों ही ज्ञानमयी हैं,...** आहाहा! जैनदर्शन भी ज्ञानमय है और उसकी श्रद्धा जो सम्यग्दर्शन, वह भी ज्ञान की श्रद्धा है, ज्ञानमयी है। आहाहा! मूल आत्मा को उड़ाकर पूरी बात निकली न, इसलिए यह बात लेनी पड़ी। आत्मा को छोड़कर सब बात। पंच महाव्रत और देव-गुरु-शास्त्र उनके माने हुए। बापू! यह मार्ग नहीं, भाई! ज्ञानमयी मार्ग है मोक्ष का और ज्ञानमयी मार्ग है समकित का। समझ में आया? आहाहा! ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु आत्मा का दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह ज्ञानमयी दर्शन है और उसकी श्रद्धा, वह समकित, वह भी ज्ञानमयी है। विकल्प नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत अच्छा अर्थ किया है पण्डित जयचन्द्रजी ने। हृदय से आचार्य को जो कहना है, वह हृदय भरा है।

**दोनों ही ज्ञानमयी हैं,...** पाठ आया न, '**णाणमयं**' चौथे पद में। **यथार्थ तत्त्वार्थ का जाननेरूप सम्यक्त्व जिसमें पाया जाता है,... यथार्थ तत्त्वार्थ का जाननेरूप सम्यक्त्व...** ज्ञानरूप निश्चय। **यथार्थ तत्त्वार्थ का जाननेरूप सम्यक्त्व जिसमें पाया जाता है, इसलिए फूल में गन्ध का...** इसलिए फूल में गन्ध, **दूध में घृत का दृष्टान्त युक्त है;...** ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार जिसके मोक्षमार्ग में जिसकी ज्ञानमयीदशा है, ऐसे समकित भी ज्ञानमयी है, इस दृष्टान्त से फूल में सुगन्ध, दूध में घी। ऐसे यह ज्ञानमयी वस्तु है। वह घी और सुगन्ध है। आहाहा!

वस्तु जो ज्ञानमयी निर्विकल्प वस्तु है, उसकी श्रद्धा भी ज्ञानमयी है, कहते हैं। जैसे फूल में गन्ध है, वैसे यह ज्ञानमयी यह उसकी वस्तु है और पूरा मोक्ष का मार्ग जो है जैनदर्शन, वह भी ज्ञानमयी है। दूध में घी और यह फूल में गन्ध, इसी प्रकार जैनमार्ग में ज्ञानमयी दर्शन, ज्ञान और चारित्र और समकित पहला, उसका समकित, वह भी ज्ञानमयी—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** अकेले क्रियाकाण्ड में माननेवाले को अकेला....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात सच्ची है। उसके लिये तो यह बोधपाहुड़ है। जैनदर्शन के

अतिरिक्त में तो सब व्यवहार भी खोटा है। परन्तु जिसे व्यवहार हो वह सब; परन्तु यह निश्चय यदि न हो तो यह जैनदर्शन ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कि यह व्यवहारचारित्र पालन करो, निश्चयचारित्र न हो तब तक। फिर इससे चारित्र होगा। वे जैनदर्शन को मानते ही नहीं। उन्हें जैनदर्शन की खबर ही नहीं। आहाहा! बाबूभाई! सब ऐसा बहुत निकाला परन्तु। अरेरे! वीतरागमार्ग! प्रभु के विरह में मार्ग को नोंच डाला है।

भाई ने कहा था न वहाँ जयपुर में। मनोहरलाल वर्णी। यदि उद्देशिक का स्पष्टीकरण हो तो संगठन बहुत हो। ऐसा कि उद्देशिक आहार गृहस्थ उनके लिये करते हैं इसलिए... कहने का आशय। बोले नहीं थे यह भाषा, हों! परन्तु ऐसा आशय। मैंने कहा, भाई! देखो, परमात्मा का विरह पड़ा, उसमें वापस ऐसा अर्थ करना, वह वीतरागमार्ग का मार्ग नहीं। उनके लिये बनाया हुआ ले, वह उद्देशिक ही है। भले स्वयं ने न किया हो, कराया न हो। वह उद्देशिक ही है। मार्ग ऐसा है। प्रभु का विरह पड़ा, इसलिए उसे—मार्ग को ढीला करके दूसरे प्रकार से... वह मार्ग नहीं। तब कोई कहे ऐसा... ...में जरा फेरफार हो गया। ऐसे किसी का विरोध करने का क्या काम? बापू! जो भूमिका... लगती हो वह करे। आहाहा!

**यथार्थ तत्त्वार्थ का जाननेरूप सम्यक्त्व जिसमें पाया जाता है, इसलिए फूल में गन्ध का और दूध में घृत का दृष्टान्त युक्त है; इस प्रकार दर्शन का रूप कहा। अन्यमत में...** अन्यमत में अब। जैनदर्शन के अतिरिक्त जितने अन्यमत हैं, उनमें भी यह नहीं और **कालदोष से जिनमत में जैनाभास भेषी...** यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी जैनाभास वेशी हैं। ऐसी बातें हैं, भगवान! नवनीतभाई को तो कहाँ दिक्कत है। वे तो वहाँ जन्मे हैं। बहिन को और श्वेताम्बर में से आये। वे तो यहाँ अब आये न! आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, भगवान! आहाहा! यह कोई पक्ष की बात नहीं। वस्तु की स्थिति ही ऐसी है जहाँ। आहाहा! उसमें तो आचार्य ने ज्ञानमयी कहकर तो गजब करते हैं। रागमयी क्रिया से (धर्म) माननेवाले, वह जैनदर्शन नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव से भरपूर भगवान की श्रद्धा, उसकी जाति ज्ञानमय होती है। जिसका ज्ञान ज्ञानमयी चारित्र। वह जैनाभास में नहीं। आहाहा!

कान्तिभाई गये ? ...भाई। गये ? कालदोष से... क्या करे, भाषा करनी पड़े। अरेरे ! ऐसा काल वीतरागमार्ग। सनातन निर्मलानन्द से प्रवाह चला आता है। अरेरे ! कालदोष से जिनमत में भी **जैनाभास भेषी...** जैन जैसे दिखाव करे परन्तु ऐसे **अनेक प्रकार अन्यथा कहते हैं...** वे अन्यथा कहते हैं। आहाहा ! अपने तो व्यवहारी सो समकिती। आता है न भाई उसमें ? उसका अर्थ यह बाहर से ऊपर से ही सब मार्ग पूरा। प्रभु ! हम तुम्हारे भक्त हैं। बस। इसलिए हमको....

**मुमुक्षु :** वह व्यवहार से तो संसार है। यहाँ तो व्यवहार से समकिती।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** संसार। यशोविजयजी कहते हैं। आवश्यक में है। आवश्यक में व्यवहारी सो समकिती कहा है। ऐई ! चेतनजी ! वहाँ आता है न ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि वह **जैनाभास भेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहते हैं...** ऐसा भी वेश होता है और देव-गुरु और शास्त्र हमने माने, उन्हें मानते हैं तो समकित। 'अरिहंतो महादेवो' आता है न ? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है पाँचवें अध्याय में। मोक्षमार्गप्रकाशक में। ...गुरु, वह समकित। ऐसा कहते हैं न वे ? उसके समाने यह बात है। मोक्षमार्गप्रकाशक में, पाँचवें अध्याय में। जैनमत का प्ररूपण है न जहाँ स्थानकवासी... वहाँ है। अरिहंतो महादेवो जावजीव गुरु... ऐ समत्तं। यह कहते हैं, नहीं, वह समकित नहीं। समकित तो ज्ञानमयी विकल्परहित... उसकी तो विकल्पवाली बात हुई वह। वह समकित नहीं।

**जैनाभास भेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहते हैं जो कल्याणरूप नहीं है,...** आहाहा ! वह कल्याण का मार्ग नहीं। कहो, गुणवन्तभाई ! अब तुम्हारे क्या दिक्कत है ? परन्तु इनके पिता वहाँ जन्मे थे न स्थानकवासी में। आहाहा ! मार्ग ऐसा है, बापू ! जिसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करनी, समकित। उसके सामने यह कहा है। तुम कहते हो वह वस्तु ही सच्ची नहीं। यद्यपि उनके माने हुए देव-गुरु सच्चे नहीं, परन्तु उनकी मान्यता वह समकित, वह वस्तु का स्वरूप ही नहीं। आहाहा ! ज्ञानमयी सम्यग्दर्शन। जैनदर्शन ही ज्ञानमयी है। उसकी श्रद्धा, ज्ञानमयी समकित है। व्यवहारिक समकित से देव माने, वह समकित है नहीं। वह कल्याण का मार्ग नहीं। **संसार का कारण है।** आहाहा ! यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह राग, वह तो संसार का कारण है। आहाहा ! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

**मगसिर कृष्ण ४, शुक्रवार, दिनांक-१४-१२-१९७३**
**गाथा - १६, १७, प्रवचन-६७**

**नोट : इस प्रवचन में ३२ मिनिट से ५५ मिनिट तक की आवाज व्यवस्थित नहीं है।**

## गाथा - १६

गाथा १६। **आगे जिनबिम्ब का निरूपण करते हैं :-** परमार्थ से जिनबिम्ब किसे कहना? व्यवहार से तो जिनबिम्ब तो इस प्रतिमा को (कहते हैं), जो जिनेश्वर थे, वैसी प्रतिमा को जिनबिम्ब व्यवहार से (कहते हैं)। परमार्थ से जिनबिम्ब आचार्य को कहते हैं।

**जिणबिंबं णाणमयं, संजमसुद्धं सुवियरायं च।**
**जं देइ दिक्खसिक्खा, कम्मक्खयकारणे सुद्धा॥१६॥**

**अर्थ :- जिनबिम्ब कैसा है? ज्ञानमयी है,...** आत्मा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञानमयी जिनबिम्ब होता है। बाहर जो अचेतन बिम्ब है, वह तो व्यवहार है। ज्ञानमयी। इसका अर्थ करेंगे जानपना। परन्तु वास्तव में तो जिनबिम्ब यह आत्मा जाननस्वभाव, इसके ज्ञानस्वरूप से दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह ज्ञानमयी जिनबिम्ब कहा जाता है। वे आचार्य हैं। आचार्य को जिनबिम्ब कहा जाता है। **संयम से शुद्ध है,...** और संयम। स्वरूप की वीतरागता जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की लीनतासहित हो, उसे जिनबिम्ब कहा जाता है। यह निश्चय की बात है न सब?

**मुमुक्षु :** निश्चय की अर्थात्?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सच्ची। व्यवहार की अर्थात् उपचारिक। समझ में आया? जिनप्रतिमा, जिनबिम्ब, चैत्यगृह, यह सब तो निश्चय तो आत्मा के स्वरूप में ही यह सब है। बाह्य उसका व्यवहार, वह निमित्त कहा जाता है। परन्तु वह व्यवहार अकेला हो और निश्चय न हो तो उसे व्यवहार भी कहा नहीं जाता। ऐसा कहते हैं, लो! व्यवहार

होता है, परन्तु वह व्यवहार लाभदायक, आत्मा के धर्म के लिये लाभदायक है, ऐसा नहीं। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा व्यवहार से होती है, परन्तु उस श्रद्धा का भाव जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त कराये, ऐसा नहीं है। वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में तो आत्मा आनन्दमय, ज्ञानमय। उसकी अन्तर दृष्टि होने पर वह सम्यग्दर्शन अन्तर का ज्ञान और अन्तर की रमणता, उसे यहाँ आचार्य को, ऐसे आचार्य को जिनबिम्ब कहते हैं। उस समय श्वेताम्बर पंथ निकल गया था और जिन की (विपरीत) प्रतिमायें बहुत करने लगे थे, इसलिए उन्हें ऐसा कहे कि यह जिनबिम्ब है। उसके निषेध के लिये यह बात है। जिनबिम्ब तो आचार्य स्वयं आनन्दस्वरूप, (ऐसा) जिसे अन्तर में अनुभव में आया है। ज्ञानमय आत्मा। ज्ञान का सागर आत्मा। ऐसे ज्ञान की जिसे अन्तर दृष्टि हुई है, उसका ज्ञान हुआ उसमें रमणता—वीतरागता है, उसे यहाँ आचार्य, ऐसे आचार्य को जिनबिम्ब कहा जाता है। उस समय बहुत फेरफार हो गया न भगवान के बाद ६०० वर्ष में श्वेताम्बर निकले। कुन्दकुन्दाचार्य १०० वर्ष पश्चात् हुए। इसलिए यह सब उनके सामने यथार्थ वीतरागमार्ग का स्वरूप क्या है, वह कहते हैं।

**ज्ञानमयी है, संयम से शुद्ध है, अतिशयकर वीतराग है,...** '**सुवियरायं**' ऐसा है न? '**सुवियरायं**' जिसे अन्तर वीतरागता प्रगटी है। आहाहा! वह अतिशयकर उसका '**सु**' का अर्थ किया। विशेष वीतरागता जिसे प्रगटी, अतिशयवाली ऐसी वीतरागता। आहाहा! जिनबिम्ब हो गया आत्मा। **अतिशयकर वीतराग है, कर्म के क्षय का कारण...** उस आचार्य का भाव वीतराग ज्ञानमयीदशा, वह कर्म क्षय का कारण है। आहाहा! **और शुद्ध है...** वह अत्यन्त पवित्र है। जिनबिम्ब वीतरागीपर्याय की पवित्रता से प्रगट हुआ है। आहाहा! जैनमार्ग। निश्चय, ऐसा निश्चय हो, वहाँ आगे छद्मस्थ है; इसलिए उसे व्यवहार जिनबिम्ब होता है। व्यवहार का विषय है, व्यवहार है, परन्तु उससे आत्मा का आश्रय होकर धर्म हो, वह चीज़ नहीं है, वह व्यवहार। समझ में आया? चाहे तो तीर्थंकर स्वयं हो या मूर्ति हो, परन्तु उससे सम्यग्दर्शन हो, यह वीतरागमार्ग में नहीं, उसका यहाँ कहा पहला।

और आत्मा आनन्दस्वरूप वीतरागमूर्ति के आश्रय से धर्म का लाभ होता है। यह बात सिद्ध करनी है यहाँ। समझ में आया? पराश्रय में, मोक्ष का मार्ग पराश्रय से उत्पन्न

नहीं होता। वह चैतन्यमय, ज्ञानमय भगवान आत्मा अनन्त अविनाशी गुण का धाम प्रभु, उसके आश्रय से ज्ञानमय समकित, ज्ञानमय ज्ञान और ज्ञानमय संयम-स्थिरता, अतिशय वीतरागदशावाली, उसे यहाँ जिनबिम्ब कहा जाता है। **इस प्रकार की दीक्षा और शिक्षा देता है।** लो! वापस वे आचार्य कैसे हैं? कि ऐसी ज्ञानमयीदशा संयममयी, सुवीतरागपना, कर्म का क्षय—ऐसी ही दीक्षा दूसरे को दे। यह वस्त्र छोड़े और नग्न या वस्त्र बदलकर साधु दीक्षा, वह दीक्षा नहीं—ऐसा कहते हैं। ऐसी ज्ञानमयी, आनन्दमयी, संयमसहित, अतिशय वीतरागसहित ऐसी शुद्ध जो आचार्य स्वयं है, ऐसे और दूसरे को ऐसी दीक्षा दे और शिक्षा भी ऐसी दे। अरे! यह कोई निश्चय की ऐसी सूक्ष्म बातें!

सवेरे कहा नहीं था जरा कुछ। सवेरे आया था न भाई ऐसा, कि वीतराग की वाणी साक्षात् तीन लोक के नाथ की सुने, तो उस ज्ञान की पर्याय में वह निमित्त है और ज्ञान जो हुआ, वह सब परलक्ष्यी ज्ञान है। अर्थात् उस पर्याय से, उस पर्याय से द्रव्य में जाये और समकित हो, ऐसा नहीं। आहाहा! और वह चीज़ ही ऐसी कोई है कि जो अन्दर में द्रव्य का आश्रय होने पर पर्याय प्रगट हो और वह पर्याय द्रव्य के ऊपर आश्रय ले। आहाहा! यह शास्त्र से ज्ञान हो, वीतरागी परमेश्वर की वाणी सुनकर, साक्षात् परमेश्वर को देखकर। वह ज्ञान की पर्याय भी आत्मा के आश्रय करने में मददगार नहीं है। सवेरे कहा था। यह तो कठोर मार्ग है, भाई! मार्ग की शैली इस प्रकार से है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, परन्तु इसे ऐसा लगे कि यह तो निश्चय-निश्चय की ही बातें करते हैं। परन्तु बापू! निश्चय अर्थात् क्या? यह आचार्य... समझ में आया? जिसमें व्यवहार से निश्चय प्रगट न हो। वह तो स्वभाव के आश्रय से ही निश्चय प्रगट होता है। समझ में आया? वे वहाँ ऐसा कहे न सोनगढ़ में तो निश्चय... निश्चय... निश्चय... ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** सुने बिना क्या कहे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब सुना हो न यह बाहर के लोगों का। परन्तु बापू! व्यवहार, निश्चय किसे कहना? व्यवहार किसे कहना? आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा...

**मुमुक्षु :** ....व्यवहार नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो इसे बैठे... व्यवहार स्थापना हो तो क्या करे वह?

**मुमुक्षु :** उसे रागरूप व्यवहार स्थापना है। वीतराग व्यवहार स्थापना हो तो है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** देखो न यह अष्टपाहुड़। जिसमें, वस्त्र का धागा रखकर मुनि माने तो निगोद में जाये, ऐसा अर्थ है। अब उसमें अगास की ओर से ऐसा अर्थ भरा गया कि आज्ञा प्रमाण वस्त्र लेना और छोड़ना, वह आज्ञा प्रमाण। अब अन्दर ऐसा पाठ डाला। उसमें नहीं डालना था। श्रीमद् की पुस्तक में भले हो। परन्तु यह जो पुस्तक है, उसमें वह नहीं डालना चाहिए। वह पुस्तक (अष्टपाहुड़) तो ऐसा कहती है कि वस्त्र का धागा रखे, वह वीतराग की आज्ञा ही नहीं। समझ में आया? उसमें वह श्रीमद् का पत्र डाला। श्रीमद् में आता है। उन्होंने तो सब व्यवहार श्वेताम्बर का अलग किया नहीं। अन्त में किया है। अन्त में १९ सूत्र दिगम्बर के सत्शास्त्र रूप से स्थापित किये। एक भी सूत्र श्वेताम्बर का अन्त में नहीं रखा। योगदृष्टि समुच्चय, वह तो ग्रन्थ है ग्रन्थ। परन्तु अब वह माने नहीं। वस्तु यह है। अर्थ में यह भरा उसमें देखो न अगास की ओर से है न? अगास की ओर से। चारित्रपाहुड़ की ३७ गाथा है ३७। ऐसा अर्थ किया है। वह इसमें नहीं डालना चाहिए। ३७ गाथा में लिया है।

जैसे आज्ञा, वैसे आज्ञा के उपयोगपूर्वक वस्त्र आदि लेना, छोड़ना। परन्तु वस्त्र लेना, छोड़ना, वह वीतराग की आज्ञा है ही नहीं। ३७ गाथा है चारित्रपाहुड़ की। उसमें उन्होंने—अगासवालों ने अर्थ भरा है। पहले लिख गये हैं कि वस्त्रसहित तीर्थंकर हो तो मुक्ति नहीं होती, ऐसा पाठ। वस्त्रसहित मुनिपना माने, मनावे तो निगोद में जाये, यह तो पाठ है। उसमें वापस यहाँ डाला यह। अगास की ओर से यह डाला। अपने तो यहाँ स्पष्ट है। इसलिए वहाँ भी लोगों को अपने पक्ष में सिद्ध करने, क्या इसमें विरोध होता है, उसकी खबर रहती नहीं।

जिनेन्द्रदेव तीर्थंकर ने कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। जिनवर ने तो जन्मे, ऐसा रूप कहा। और उससे पहले आ गया है कि जो मार्ग है, निर्ग्रन्थ मार्ग, वीतरागी दशा और बाह्य वीतरागी मुद्रा नग्न। वह मार्ग, बाकी उन्मार्ग है। यह तो पाठ आ गया है

पहले। तथापि वापस अर्थ में ऐसा डाल दिया। अरेरे! वाडा बाँधकर बैठे रे अपना पक्ष...।

यहाँ तो कहते हैं, आचार्य तो जिसे अन्तर में वीतरागता प्रगटी है। आहाहा! जिनबिम्ब ही हो गया है आत्मा। वह जिनबिम्ब होने की दीक्षा और जिनबिम्ब होने की शिक्षा दे। समझ में आया? देखो न, दीक्षा ऐसी कही। पंच महाव्रत दे, ऐसा नहीं लिया, भाई! उस समय आवे। परन्तु दीक्षा-शिक्षा ऐसी दे। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! दुनिया की सुगठित समाज रहे या न रहे, उसके साथ तत्त्व को सम्बन्ध नहीं है कि समाज बहुत उसमें माने तो ठीक, यह वस्तु की स्थिति नहीं है। और बहुत प्रसन्न हों, ऐसा समन्वय करने से, वह कोई वीतरागमार्ग नहीं। वीतरागमार्ग तो अन्दर दया, दान के विकल्प से भिन्न पड़कर स्वरूप के आश्रय से जिसे दर्शन, ज्ञानमय समकित हुआ है, ज्ञानमय ज्ञान और ज्ञानमय संयम, चारित्र—ऐसी दशा जिसे प्रगट हुई है, उसे यहाँ आचार्य को जिनबिम्ब कहा जाता है और यह उनकी दीक्षा और उपदेश ऐसा होता है वापस, ऐसा। ऐसे आचार्य का उपदेश ऐसा होता है कि उसे वस्त्ररहित निर्ग्रन्थ दिगम्बरदशा और अन्दर वीतरागदशा। ऐसा वह आचार्य का उपदेश और शिक्षा ऐसी होती है। आहाहा! यह दीक्षा। समझ में आया?

वे वस्त्रवाले दीक्षा देते हैं, वह दीक्षा नहीं। वह तो मिथ्यात्व का पोषण है। समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! अब तुम्हारे जैसे सेठिया दीक्षा में सहायता दे। दीक्षा करे, चलो भाई पच्चीस हजार खर्च करो, दस हजार खर्च करो, ऐसा कहे। ऐसा कि हमारे से तो कुछ होता नहीं तो बेचारे दीक्षा ले तो लाओ अनुमोदन करें। लाभ होगा। परन्तु दीक्षा कैसी थी? मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! वीतराग त्रिलोक के नाथ की वाणी में तो यह आया है। उनके विरह में दूसरा हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? पुकार, कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं कि आचार्य ऐसे होते हैं, उन्हें जिनबिम्ब कहते हैं। फिर उनका रूप सामने हो, उसे व्यवहार जिनबिम्ब कहते हैं। वह पुण्य का, शुभभाव का कारण है। व्यवहार है, इतनी बात बराबर है, परन्तु व्यवहार के आश्रय से आत्मा को लाभ हो, यह बात नहीं है। सेठ!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धर्मलाभ हो, ऐसा नहीं। यह पंचम काल है। सेठ आये अब। पंचम काल अर्थात् कोई आटा के बदले मिट्टी का बनाया हलुवा? शीरा... शीरा क्या कहते हैं? हलुवा। आटे के बदले धूल डाली? घी के बदले कहीं पेशाब डाला? पंचम काल है न? पंचम काल हो या चौथा काल हो, वह तो जिस प्रकार से बने, उस प्रकार से ही वह बनेगा। गुड़, आटा और घी। साधारण गरीब व्यक्ति हो तो घी न डाले, तेल डाले। परन्तु कहीं पानी की सूखड़ी (मिठाई) होती होगी?

**मुमुक्षु :** इतना तो सुधार हुआ न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या सुधार किसका सुधार?

**मुमुक्षु :** घी के बदले तेल आया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो इसका अर्थ यह कि उसकी शक्ति चारित्र की उग्र न हो, तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान रखे, ऐसा।

**मुमुक्षु :** चारित्र....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चारित्र न हो उत्कृष्ट तो दर्शन-ज्ञान में स्पष्ट शुद्धता रखे। परन्तु श्रद्धा में बदले कि नहीं, नहीं, यह वस्त्रसहित भी साधु होते हैं और भगवान ने वस्त्रसहित भी चारित्र लेने के लिये कहा है। बिल्कुल झूठ है। वीतराग तीन लोक के नाथ की आज्ञा से विरुद्ध है। समझ में आया? यहाँ तो बात ऐसी है, भाई! लोगों को कठोर लगे।

**भावार्थ :- जो जिन अर्थात् अर्हंत सर्वज्ञ का प्रतिबिम्ब कहलाता है...** अरिहन्त सर्वज्ञ का प्रतिबिम्ब जिन अर्थात्। **उसकी जगह उसके जैसा ही माननेयोग्य हो, इस प्रकार आचार्य हैं...** जिन का प्रतिबिम्ब वह जिन का बिम्ब, वह आचार्य है, ऐसा कहते हैं। कहा न, **जिन अर्थात् अर्हंत सर्वज्ञ का प्रतिबिम्ब कहलाता है...** अरिहन्त सर्वज्ञ का प्रतिबिम्ब सामने बिम्ब, वह आचार्य। आहाहा! यह आचार्य हों। जिन्हें ज्ञानमय आत्मा की दृष्टि प्रगटी है। जिन्हें आत्मा का ज्ञान, स्वयं से ज्ञान हुआ है। पर से नहीं। स्वयं से दर्शन हुआ, स्वयं से लीनता अन्दर हुई है। ऐसे आचार्य को जिनबिम्ब कहा जाता है। आहाहा! सामने अकेली प्रतिमा और मूर्ति बिम्ब किया बड़ा, वह जिनबिम्ब भी नहीं

वास्तव में। उसे मूर्ति कहा जाता है। परन्तु जिनबिम्ब नहीं। जिनबिम्ब तो जैसे जिन थे, वैसा ही सामने आकृति-बिम्ब हो तो जिनबिम्ब कहलाये। समझ में आया? यह सब फेरफार हुआ श्वेताम्बर निकले, इसलिए (हुआ)। उसके सामने यह सब बात है। बहुत स्पष्ट करने जाये तो हृदय यह है इनका। आहाहा!

दो हजार वर्ष पहले बड़ी गड़बड़ उठी। वस्त्रसहित अर्धफालक रखा थोड़ा। टुकड़ा रखा। बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। अर्धफालक रखकर साधुपना मनाया। उसमें से यह सब श्वेताम्बर पंथ पूरा निकला। उसके सामने यह बात है कि यह वीतरागमार्ग नहीं। समझ में आया? आहाहा! जिनके शास्त्र में वस्त्र रखना कहा, वह शास्त्र वीतराग के हैं? भगवान ने तो ऐसा कहा कि 'जन्मे प्रमाणे रूप भासित।' यह मार्ग और बाकी उन्मार्ग। इसकी श्रद्धा में तो निर्मलता प्रगट करनी पड़ेगी या नहीं? आहाहा!

**उसकी जगह उसके जैसा ही... उसके जैसा...** अर्थात् अरिहन्त जैसा। **माननेयोग्य हो इस प्रकार आचार्य हैं, वे दीक्षा अर्थात् व्रत का ग्रहण...** दीक्षा अर्थात् व्रत का ग्रहण। **और शिक्षा अर्थात् व्रत का विधान बताना, ये दोनों भव्य जीवों को देते हैं।** ऐसे आचार्य दीक्षा और शिक्षा दे, वह सच्ची दीक्षा और शिक्षा होती है। आहाहा! **इसलिए १-प्रथम तो आचार्य ज्ञानमयी हो,... 'णाणमयं'** कहा है न? इसकी व्याख्या करे जरा। **जिनसूत्र का उनको ज्ञान हो,...** यह व्यवहार की बात की। बाकी उसकी वस्तु ज्ञानमयी हो, ऐसा कहा। रागमयी जो क्रिया है न, उसमय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं। बहुत जगह ज्ञानमयी आयेगा। सर्वत्र ज्ञानमयी... ज्ञानमयी... यह १५वीं में आया था **'णाणमयं होइ रूवत्थं'** १६वीं में आया **'णाणमयं'** सर्वत्र बहुत जगह आता है। १४वीं में आया था **'णाणमयं'**। ८वीं में आया था **'णाणमयं'**। सर्वत्र यह शब्द पड़े हैं। **'णाणमयं' 'णाणमयं' 'णाणमयं'** हो! आहाहा! अभी आयेगा आगे। **'णाणए जिणमुद्दा' 'णाणेण लहदि लक्खं'** मूल तो ज्ञानस्वरूपी भगवान है, वह यहाँ सिद्ध करना है। उसे व्यवहार जो दया, दान विकल्प, वह कहीं उसका स्वरूप नहीं। ऐसा जो ज्ञानबिम्ब प्रभु, उसकी ज्ञानमयी दशा प्रगट करके श्रद्धा, चारित्र में ज्ञान और वैसी ही दीक्षा और शिक्षा दे, ऐसे आचार्य को जिनबिम्ब कहा जाता है। अरिहन्त के बदले आचार्य ऐसे होते हैं, उन्हें जिनबिम्ब कहते हैं, ऐसा कहते हैं।

भगवान का विरह पड़ा न! भगवान नहीं थे तब कि अब जिनबिम्ब किसे कहना? भगवान साक्षात् विराजते अरिहन्त पद में जिनबिम्बरूप से, तब तो वाणी सीधी आती थी। परन्तु अब वीतराग नहीं, तब उसके स्थान में जिनबिम्ब कहना किसे? उसके स्थान में, उसके अधिकार में?—कि आचार्य को। आहाहा! ऐसे आचार्य कि जिन्हें आत्मा की ज्ञानमयी दशा जिन्हें प्रगटी है। ज्ञानस्वरूप तो वस्तु है, परन्तु दशा में ज्ञानमयी, श्रद्धा, चारित्र, शान्ति, सब ज्ञानमयी प्रगट हुई है। आहाहा!

और **जिनसूत्र का उसको ज्ञान हो, ज्ञान बिना यथार्थ दीक्षा-शिक्षा कैसे हो?** जिसे वास्तविक ज्ञान, आत्मा का ज्ञान ही नहीं और वास्तविक सूत्र का ज्ञान नहीं, वह दीक्षा-शिक्षा कहाँ से दे? यह सब मुँड़ाते हैं न अभी देखो न बहुत। टोळा (झुण्ड) के लिये ३८-३८, ३४-३४ आर्यिकाओं के झुण्ड सब। आहाहा! भारी कठिन काम! मिथ्यात्व के पोषक के झुण्ड हैं सब। जैनशासन के बैरी। यशोविजय कहते हैं। श्वेताम्बर है न, वे ऐसा कहते हैं। 'जेम जेम बहुजन...' आता है न, क्या आया? 'जेम जेम बहुजन सम्मत बहु शिष्य...' छह बोल है। ठाणांग के छठवें ठाणे में। ७८ में कहा था न राणपर में। 'जेम जेम बहुसुत बहुजन सम्मत बहु शिष्ये परवर्यो।' छह बोल हैं। उसकी इज्जत बड़ी हो, फलाना हो। 'तेम तेम जैनशासननो वैरी जो नवी निश्चय दरियो।' ठाणांग के छठवें बोल में है। टीका में 'जह जह बोले...' ठाणांग के छठवें ठाणे में। यह बोल कहा था। वे दीक्षा लेनेवाले थे न! यह देखो, यह रहे। आये थे। तब यह कहा था। उघाड़ा कुछ कहा जाता होगा? (संवत्) १९७८ में चातुर्मास था न राणपर में। आहाहा!

जिसे आत्मा वस्तु शुद्ध चैतन्यघन का ज्ञान, श्रद्धा और शान्ति नहीं निश्चय की, वे सब व्यवहार में माननेवाले, वे जैनशासन के बैरी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, पाटनीजी! भारी कठिन लगे हों! दुःख बेचारे को। परन्तु क्या हो? वस्तुस्थिति हो ऐसा हो। वीतराग का पुकार भी यह है। कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार यह है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय समुद्र है। परन्तु उसमें अर्थ कितना भरा है? कषायवाला जीव हो, वह निश्चय का उसे बहाना है। इतनी शर्त में। अर्थ किया साधारण। ....दूसरा कुछ इसमें आत्मवन्त और अनात्मवन्त ऐसा कहे। वे शब्द तो थे न शास्त्र के कितने ही। तो फिर

डाले सही लोगों ने। अर्थ तो वह हल्का साधारण कर डाला। अनात्मवन्त अर्थात् कषायवाला जीव। उसे यह सब हो परन्तु वह जैनशासन का बैरी है। और कषायरहित जीव हो, उसे यह हो तो जैनशासन का स्थापक, पालक, रक्षक है। ठीक है क्या हो प्रभु? पूरा आकाश फटा वहाँ अब पैवन्द किसे देना। ऐसी बात है बापू यह तो। आहाहा!

ऐसे आचार्य और **आप संयम से शुद्ध हो,...** देखा! यह '**संजमसुद्धं**' है न? संयम निरतिचार चारित्र जिसकी दशा हो। आहाहा! जो छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलता हो। आहाहा! ऐसा जिसे शुद्ध चारित्र होता है। **यदि इस प्रकार न हो तो अन्य को भी संयम से शुद्ध नहीं करा सकते।** अपने को जहाँ वीतरागदशा, सम्यग्दर्शन-चारित्र शुद्ध नहीं, तो दूसरे को किस प्रकार शुद्ध करावे? कुछ गड़बड़ ही करे। इस काल में— पंचम काल में ऐसा ही होता है। ऐई! सेठ! पंचम काल में कुछ दूसरा ढीला हो। अनाज के बदले ईयळ खाये पंचम काल में, ऐसा होगा? यह वह डालते हैं धूल आती है और ऊँची आती है। ऊँची चिरोड़ी (खड़िया जैसा एक नरम खनिज पदार्थ) निकलती है न बहुत यह नहीं? ... सफेद पत्थर बहुत ऊँचे हों बहुत ऊँचे। चिरौंजी-चिरौंजी। बहुत ऊँची। चिरौंजी का दल करके यह लश्कर के सिपाहियों को अनाज में डाले। देते हैं। ऐसी ऊँची। वह पत्थर पकता है ऐसा। यहाँ कुण्डला पकते हैं। और वह बहुत उसका पाक था। अपने भाई का लगभग वह जयचन्दभाई के पुत्र का पुत्र है। जयचन्दभाई का पुत्र। खबर है न, वहाँ गये थे और बताया था वहाँ। वहाँ गये थे देखने। बताया था। गहरे है। वह सफेद संगमरमर। चिरौंजी निकलती है मीठी। परन्तु उसका आटा करके लश्कर को बहुत बेचा जाता था वह। लश्कर के ज्वार की रोटियों के बाजरा में डाले। स्फूर्ति हो ऐसा था लो! आटे जैसा आटा हो। अकेले पत्थर का आटा कहीं ईयळ का आटा काम आवे वहाँ?

यहाँ तो वीतरागता का जहाँ अन्दर में पोषण हो गया है। आहाहा! राग में से निकलकर जिसने वीतरागीबिम्ब प्रभु आत्मा के अवलम्बन की वीतरागता प्रगट की है। आहाहा! ऐसी दीक्षा दूसरे को दे और ऐसी शिक्षा दूसरे को दे। उसे जिनबिम्ब कहा जाता है।

**अतिशयता=विशेषतया वीतराग न हो...** '**सुवियरायं**' है न? '**सुवियरायं**' है।

**विशेषतया वीतराग न हो तो कषायसहित हो, तब दीक्षा, शिक्षा यथार्थ नहीं दे सकते हैं;...** आहाहा! अकेले पंच महाव्रत के परिणाम कषाय है, वह दीक्षा नहीं। आहाहा! जैनमार्ग को समझना महापुरुषार्थ है। दुनिया की कोई अपेक्षा छोड़कर वीतराग क्या कहते हैं और वह भी वीतराग भी ऐसा कहें, हम कहते हैं तुझे और तुझे जो ज्ञान हुआ उस समय वह भले उस ज्ञान में भी तुझे स्व के आश्रय में नवीनता नहीं। समझ में आया? शास्त्र का जानपना हुआ और उसे ऐसा हो जाये कि आहाहा! अपना कुछ हुआ। इसलिए आता है देखो। फट... फट... क्या है परन्तु अब यह? समझ में आया? ...करनी है न? वीतरागता भाव हो जिसमें। ...ज्ञान वह भी ... आश्रय करने के लिये... नहीं। उसे छोड़कर अन्तर की पर्याय द्रव्य का आश्रय करने से वह पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय... आहाहा! गजब बात है। ऐसा वीतराग मार्ग। आहाहा! समझ में आया? जरा सूक्ष्म बात है, हों! मार्ग ऐसा है।

....के लक्ष्यवाला ज्ञान भी स्व के आश्रय से... आहाहा! अरे! इसमें स्थापित करे तब कहे, यह निश्चय स्थापते हैं। निश्चय यह है। ज्ञानी के पास से... चाहिए, वह तो सब व्यवहार की बातें हैं। ज्ञानी के पास से ज्ञान मिलना, ज्ञानी अर्थात् आत्मा, उसके पास से ज्ञान मिलना चाहिए। समझ में आया? ऐसा मार्ग, भाई! वह ... आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा स्पष्ट ज्ञाता है। समझ में आया? उसका अर्थ यह हुआ (कि) व्यवहार से निश्चय प्राप्त नहीं होता। पर की दिशावाला, लक्ष्यवाला ज्ञान, वह स्व के लक्ष्य के... आहाहा! अपने स्वभाव से ज्ञात हो, इसका अर्थ ऐसा विकल्प है कि... पूर्ण वीतरागता। आहाहा! जिसका पर्याय स्वभाव, वह स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है। पर के लक्ष्यवाले ज्ञान से ज्ञात नहीं होता, विकल्प से ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसा स्वरूप जिसे प्रगट हुआ है, वह उस जाति की बात करता है। ऐसा कहा न? ...दीक्षा-शिक्षा ऐसी ही कहते हैं दूसरे को। ऐसा मार्ग वीतराग का है।

व्यवहार व्यवहार के स्थान में है सही। दो नय का विषय है। परन्तु वह व्यवहार का विषय निश्चय में मदद करे, ऐसा नहीं। यह बड़ा विवाद है। इसलिए निश्चय है स्व का आश्रय, वही लाभदायक है। ऐसी दीक्षा और शिक्षा जिसे प्रगट हुई है, वह दीक्षा और शिक्षा वह बात करेंगे, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! चौरासी के

अवतार में दु:खी है... उस दु:ख से निकलने का रास्ता तो आनन्द है, वहाँ ही होगा न! दु:खी होने का रास्ता दु:ख का विकल्प और... हो? आहाहा! आचार्य ऐसे होते हैं, वे दीक्षा-शिक्षा यथार्थ दे। और ऐसे न हो, वे यथार्थ दीक्षा-शिक्षा दे नहीं। ...आहाहा!

**अत: इस प्रकार आचार्य को जिन के प्रतिबिम्ब जानना।** वीतराग का प्रतिबिम्ब आचार्य है, ऐसा कहते हैं। आचार्य वीतराग के स्थान में है यह। वीतराग सर्वस्व है। जिनबिम्ब जिन। और आचार्य तो छद्मस्थ और उनके स्थान में ऐसे आचार्य, वे जिनबिम्ब हैं। जिन के बदले बिम्ब उनका जिनबिम्ब। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तीर्थंकर का विरह पड़ा तो भी, कहते हैं कि उनके स्थान को (बनाये) रखे, ऐसा यह जिनबिम्ब ऐसे आचार्य हैं। समझ में आया? क्या वीतरागता! आहाहा! जिसे दुनिया माने और ... इच्छा जहाँ नहीं। आहाहा! अकेली वीतरागता जहाँ पड़ी है, उसे यह मैं कहूँ और वह (सीखे) तो मुझे कोई मान दे। यह भी जिसे नहीं। सुवीतरागता प्रगटी! आहाहा! उसे केवली जिन के स्थान पर उन्हें जिनबिम्ब कहा गया है। आहाहा! 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' आया था न कहीं? वह तो सब व्यवहार है। ऐसे जिनबिम्ब अरिहन्त के स्थान में आचार्य स्थापते हैं। आता है 'जिनप्रतिमा जिनसारखी।' आया था। वह व्यवहार से जिनप्रतिमा जिनसारखी। जिन के.. आचार्य वह स्थापते हैं। ऐसी वीतरागदशा जिन्हें प्रगट हुई है। आहाहा! जिन्हें दुनिया के सामने देखना नहीं। आहाहा! यह कहते हैं, प्ररूपित करते हैं, उसी प्रकार दुनिया समझे तो ठीक, यह जहाँ दरकार नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी वीतरागता, वह जैनदर्शन और जिनबिम्ब जैनदर्शन का कहलाता है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् जिनबिम्ब है। आहाहा! भगवान के पश्चात् भगवान का जिनबिम्बरूप से कुन्दकुन्दाचार्य, गौतमादि... मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। यह ... है परन्तु वस्तु ऐसे... इसका अर्थ स्वयं... आहाहा! उन्हें श्रीमद् ने सद्गुरु स्वीकार किया है। पंचास्तिकाय... अर्थ किये। ... पंचास्तिकाय का अर्थ किया है वह। आहाहा!

**इस प्रकार आचार्य को जिन के प्रतिबिम्ब जानना।** ऐसे आचार्य को जिन का

प्रतिबिम्ब, जिन जैसे सामने। यह लोग ऐसा बोलते भाई तेरापंथी। जब आचार्य को...जिन नहीं, परन्तु जिन सरीखे। ऐसा बोले। यह... रखा। तेरापंथी में आता है। जिन नहीं, परन्तु जिन सरीखा। ऐसा आता है, बात सच्ची। परन्तु यह कहाँ था वहाँ? ... जिन सरीखा, वह नहीं होता। तेरापंथी नहीं? यह तो ऐसे आचार्य जिनबिम्ब हैं। वे तो अभी गृहीत मिथ्यात्व जिन्हें। आहाहा! वस्त्रसहित साधुपना मनवाना, मानना, वह सब गृहीत मिथ्यात्व है। वीतराग सर्वज्ञदेव और जिनबिम्ब आचार्य, उनसे तो विरुद्ध बात है, भाई! आहाहा!

एक ओर कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहे, तब वे कहे कि वस्त्र हो तो भगवान ने कहा हुआ है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य को मिथ्या सिद्ध करना है न इसका अर्थ? आहाहा! बापू! ऐसा नहीं होता। मार्ग तो जैसा है वैसा (रहेगा)। गजब काम किया है कुन्दकुन्दाचार्य ने। बोधपाहुड़। ऐसा सच्चा ज्ञान, ऐसा। ऐसे जिनबिम्ब को जिनबिम्ब जानना, उसका सच्चा ज्ञान।

★ ★ ★

**गाथा - १७**

**आगे फिर कहते हैं :—** उस समय... चलती थी। ... हो, आचार्य हो, वन्दन करे। भाई! जिनबिम्ब तो ऐसे होते हैं।

**तस्स य करह पणामं, सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।**
**जस्स य दंसण णाणं, अत्थि धुवं चेयणाभावो॥१७॥**

**अर्थ :- इस प्रकार पूर्वोक्त जिनबिम्ब को प्रणाम करो...** ऐसे जिनबिम्ब को नमन करो। समझ में आया? श्रीमद् में... चला है न। ... क्या कहलाता है? बीली बीली। बीली द्वारा ... की पूजा। उसका विरोध आया है। उसमें बड़ा विवाद। ...अरे! भाई! ... वीतराग के स्थान में... प्रभु! क्या करता है? भाई! वीतराग का विरह पड़ा, उसके स्थान में यह? ... **इस प्रकार पूर्वोक्त जिनबिम्ब को प्रणाम करो...** ऐसे जिनबिम्ब को तुम आचार्य मानकर वन्दन करो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाहर

के स्त्री, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़े, करोड़ोंपति हो और करोड़ छोड़े, उसके कारण ऐसा हो कि ओहोहो! क्या दीक्षा! वह दीक्षा कहाँ थी, सुन न अब। उसने वह दीक्षा तो छोड़ी... जो छोड़ना चाहिए पहले, वह तो छोड़ा नहीं। कहाँ दीक्षा वहाँ आयी? वीतराग का मार्ग ही... है। आहाहा! उसे समझना, जानना, मानना, ऐसा कहते हैं। और उसे भी वह ... है न?

**सर्व प्रकार पूजा करो,...** '**सव्वं पुज्जं**' है न? '**सव्वं पुज्जं**' सर्व प्रकार से उसकी पूजा करो। बाहर की पूजा करके अकेला मानकर बैठा है। शुभभाव है, परन्तु वह ऐसे जिनबिम्ब ऐसे वापस सामने मूर्ति हो। जिसके ऊपर वस्त्र नहीं, गहना नहीं—ऐसा जिनबिम्ब हो तो वह व्यवहार... समझ में आया? यह तो वह भी बड़ी गड़बड़। केवली का विरह पड़ा, ज्ञान घट गया, आग्रह बढ़ गये। आहाहा! **सर्व प्रकार पूजा करो,...** देखा! सर्व प्रकार से पूजा करो। ऐसे आचार्य की सर्व प्रकार से पूजा करो।

**मुमुक्षु :** ....से करनी या... ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निश्चय... तीनों काल। धन्य अवतार। कल्पवृक्ष के घर आँगने... ऐसा बहुमान करके पूजा करो। वह पूजा है। अकेला... नहीं। यह पूजा में कितने ही... ... बात है। क्रिया की जब और हम ... यह तो एक बहुमान करना ... यहाँ तो सर्व प्रकार से पूजा करो तो ... परन्तु पूजा करो, ऐसा आता है या नहीं? ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** बहुत....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं। वह तो माने। भगवान के नाम से। भले स्थापित चाहे जो करे। परन्तु कहीं भगवान के ऊपर... चढ़ाकर उनकी पूजा करना? ... लेना छोड़कर पूजा करना? लोभ कम करो, ऐसा कहते हैं। उसे ... नहीं। ऐसा करेंगे... भगवान की प्रतिमा, उसकी पूजा, भक्ति। ... तब क्यों खर्चते हैं? फिर चन्दा करने जाये वहाँ? ऐई! सेठ! लड़के के विवाह में खर्च करते हैं... चन्दा करने जाता है किसी के पास? ... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, ऐसे जिनबिम्ब की सर्व प्रकार से पूजा करो। आहाहा! '**सव्वं पुज्जं**' बहुत... यह क्या? आहाहा! **विनय करो,...** बहुमान, ऐसा वीतराग मार्ग है प्रभु!

आहाहा! **वात्सल्य करो,...** ऐसे जिनबिम्ब के प्रति प्रेम करो। जिसके हृदय में भगवान के प्रति प्रेम उठे, ऐसे वीतरागी सन्त या आचार्य हों। आहाहा! वे जिन के स्थान पर हैं वे। जिन नहीं परन्तु जिन सरीखे। जिन की प्रतिमा, जिन सरीखी, ऐसे यह तो जिन साक्षात्। आहाहा! अरे! ऐसे आचार्य का विरह पड़ा। आचार्य मिले नहीं। भगवान नहीं मिले, आचार्य नहीं मिले। आहाहा!

**वात्सल्य करो, क्योंकि-उसके ध्रुव अर्थात् निश्चय से दर्शन-ज्ञान पाया जाता है...** निश्चय से उसे दर्शन-ज्ञान ही है। ...निश्चय से अन्दर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चेतना भाव है। वे उसके भाव। चेतनाभाव प्रगट हुआ है। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान जिसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता में चेतनाभाव प्रगट हुआ है। रागादि विकल्प की तो बात ही नहीं। आहाहा! और वह वास्तव में तो... निश्चय मोक्षमार्ग है.. (द्रव्य की) अपेक्षा से तो व्यवहार है। ...आहाहा! वह व्यवहार नहीं? है सही, परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं। उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं। आश्रय द्रव्य का। आहाहा! व्यवहार अभूतार्थ है। ऐसी बात है। वह पर्यायमात्र अभूतार्थ कही है। क्या कहा? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ... वह पर्याय अभूतार्थ है, त्रिकाली की अपेक्षा से। परिणाममात्र को व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा। ... त्रिकाल की अपेक्षा से। उसकी अपेक्षा से भूतार्थ है। आहाहा!

यह जगत की मिठास के समक्ष यह ... कठिन पड़े। मिठास... आहाहा! ...यह भगवान यह मिले उसे... ऐसा मार्ग वीतराग। शुद्ध चैतन्यघन चेतनाभाव। आहाहा! ... चेतनाभाव। ... व्यवहार है, वह तो जड़भाव है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति का भाव, वह जड़ है, राग है, वह अचेतन है, जड़ है। आहाहा! समझ में आया? होता अवश्य है। होवे उससे कहीं वह वस्तु हो जाये? होवे सही। परन्तु... वह चेतनाभाव नहीं। आहाहा! सूक्ष्म है सेठ! उस बीड़ी में पैसे इकट्ठे हो गये, ऐसा यहाँ... नहीं है। वह तो पुण्य के कारण होता है। होशियारी के कारण नहीं होता।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** .... आनेवाला हो वह आवे। ध्यान रखे तो क्या हो? आहाहा!

वे... गुजर गये, सुना है न? ... था कल। गोवावाले गुजर गये। ... दो अरब। दस मिनिट। ... बंगला बड़ा है गोवा में। मरते हुए .. ... डॉक्टर आये थे उसमें ... गोवा में। बड़ी इज्जत। मुर्दे के ऊपर फूल के हार डाले होंगे। ...कहीं चला गया। आहाहा! ऐसे वीतराग बिम्ब आचार्य, उन्हें वन्दन करो, उन्हें मानो, उनकी दीक्षा-शिक्षा देनेवाले का बहुमान करो। आहाहा!

**क्योंकि निश्चय से दर्शन-ज्ञान पाया जाता है और चेतनाभाव हैं।** वह समस्त ही। जिसे अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सब चेतनाभावरूप है। आहाहा! सब ज्ञानचेतना प्रगट होती है, लो, ऐसा कहते हैं। पहले ज्ञान तो करे, उसके ख्याल में तो आवे कि यह वस्तु ऐसी है। समझे बिना बैगार बहुत की।

**भावार्थ :- दर्शन-ज्ञानमयी चेतनाभावसहित...** देखो! **दर्शन-ज्ञानमयी चेतनाभावसहित...** यह दर्शन और ज्ञान, वह सब चेतनाभाव है। यह शास्त्र और ज्ञान और वह सब चेतनाभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात करते हैं न! शास्त्र को सुनकर जो ज्ञान हो, वह ज्ञान चेतनाभाव नहीं।

**मुमुक्षु :** क्या प्रभु? यह तो आप फरमाते हो, ऐसा हमको ज्ञान होता है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो उससे होता नहीं, होता है इससे वहाँ। वह भी ज्ञान नहीं। चेतनाभाव नहीं। आहाहा! ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली! सर्वज्ञ अनुसार की शैली।

**दर्शन-ज्ञानमयी चेतनाभावसहित जिनबिम्ब आचार्य हैं,...** देखा! आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपाद स्वामी, नेमिचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती। आहाहा! वे सब जिनबिम्ब थे। दिगम्बर सन्त। आहाहा! आचार्य जैसे थे। समझ में आया? **उनको प्रणामादिक करना।** उनका प्रणाम करना, विनय करना, प्रेम करना, वात्सल्य करना। है शुभभाव, परन्तु वह होता है न, ऐसा कहते हैं। **यहाँ परमार्थ प्रधान कहा है,...** यहाँ जिनबिम्ब को परमार्थ से मुख्य है, वह कहा है। **जड़ प्रतिबिम्ब की गौणता है।** लो! शब्द तो यह प्रयोग किया। जड़ प्रतिबिम्ब की यहाँ गौणता है। व्यवहार की। प्रधान तो यह है। आहाहा! और ऐसी प्रधानता में ऐसा व्यवहार विकल्प होता है, परन्तु उसका

अर्थ ऐसा नहीं कि वह विकल्प है, इसलिए वहाँ स्वभाव में सहायता होती है और स्वभाव का आश्रय विशेष होता है, आत्मा को लाभ होता है। ऐसा नहीं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! ऐसी बात है। चेतनाभाव कहा न, देखो न! चेतनाभाव तो चेतन में से जगा, वह चेतनाभाव।

**आगे फिर कहते हैं:—** १६ और १७ हुई न, दो (गाथायें)। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर कृष्ण ६, शनिवार, दिनांक-१५-१२-१९७३
गाथा - १८ से २१, प्रवचन-६८

## गाथा - १८

चौथा अधिकार है यह। १८वीं गाथा। जिनबिम्ब किसे कहना? निश्चय से जिनबिम्ब तो दिगम्बर मुनि, आचार्य को जिनबिम्ब कहा जाता है। वह मुद्रा भी इसमें डालेंगे। जिनबिम्ब कहो, जिनमुद्रा कहो।

**तववयगुणेहिं सुद्धो जाणहि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।**
**अरहन्तमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य॥१८॥**

जो इच्छा निरोधरूपी तप... बारह प्रकार के तप तो व्यवहार से है। अन्तर में इच्छा का निरोध करके अतीन्द्रिय आनन्द की उग्रदशा तपे, पर्याय में शोभे, उसे तप कहते हैं। वह अरिहन्त की मुद्रा अर्थात् बिम्ब, ऐसी तपवाली होती है। और **व्रत और गुण...** पंच महाव्रत आदि परिणाम होते हैं। **अर्थात् उत्तरगुणों से शुद्ध हों,...** चौरासी लाख उत्तरगुण आदि हैं, उनसे शुद्ध मुद्रा है। **सम्यग्ज्ञान से पदार्थों को यथार्थ जानते हों,...** वास्तविक सम्यग्ज्ञान आत्मा का, उससे स्व और परपदार्थ को भलीभाँति जानते हों, ऐसे आचार्य को यहाँ जिनबिम्ब कहा जाता है। उस समय अनेक प्रकार के जिनबिम्ब चलते थे भगवान की मुद्रा के नाम से। उसके सामने यह बात है। जिन नहीं, परन्तु जिन सरीखे आचार्य हों, उन्हें यहाँ जिनबिम्ब कहा जाता है। निश्चय से जहाँ न हो, उसे व्यवहार जिनबिम्ब भी नहीं हो सकता।

कहते हैं कि **सम्यग्ज्ञान से पदार्थों को...** जैसे सर्वज्ञ परमात्मा ने नौ पदार्थ कहे, वैसा उनका ज्ञान यथार्थ सर्वज्ञ ने कहा, उस प्रकार से उनका ज्ञान होता है। **सम्यग्दर्शन से पदार्थों को देखते हों...** सम्यग्दर्शन से अपना स्वरूप शुद्ध पूर्ण, उसे देखे, साधे और जगत के द्रव्य-गुण-पर्यायों के पदार्थ, उन्हें भी स्व के जानने में उन्हें भी जाने और देखे। ऐसी जिनबिम्बदशा दिगम्बर सन्त और आचार्यों की होती है। ऐसी दशा अन्यत्र

हो नहीं सकती, ऐसा सिद्ध करना है।

**इसलिए जिनके शुद्ध सम्यक्त्व है...** ऐसा लिया है न? '**जाणहि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं**' शुद्ध सम्यक् जिसे, सर्वज्ञ ने कहा ऐसा। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प शुभ और उससे रहित आत्मा के परमात्मस्वरूप को ध्येय बनाकर, लक्ष्य बनाकर जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया है। ऐसे सम्यग्दर्शनसहित जो व्रत और संयमवाले हों, उन्हें—आचार्य को जिनबिम्ब कहा जाता है। **इस प्रकार जिनबिम्ब आचार्य है।** लो! कहो, समझ में आया? दिगम्बर साधु, आचार्य ऐसे समकितसहित, सम्यग्ज्ञानसहित, संयम और व्रत और तपसहित, उत्तरगुणसहित (हों), उन्हें जिनबिम्ब कहा जाता है। समझ में आया? भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में दो भेद पड़ गये, उसकी बात यहाँ अधिक विस्तार से है। अकेले जिनप्रतिमा और जिनमूर्ति, मन्दिर और वह सब भी वह विकृत व्यवहार है, सच्चा नहीं। वह जिनबिम्ब सच्चा नहीं, व्यवहार भी नहीं। जिनबिम्ब तो यह सच्चा। अरिहन्त के बदले अरिहन्त की छापवाले, वीतराग मुद्रावाले। आहाहा! उसे यहाँ आचार्य जैन बिम्ब कहते हैं। बोधपाहुड़ है न यह तो सच्ची समझण के सब प्रकार हैं। आहाहा!

**यह दीक्षा-शिक्षा की देनेवाली...** सच्ची सन्त की दीक्षा और उसकी शिक्षा उसे देनेवाली **अरिहन्त की मुद्रा है।** ऐसे आचार्यों ने अरिहन्त की मुद्रा... है बिम्ब की बात। परन्तु मुद्रा की अब गाथा आती है न, उसका उपोद्घात किया है। ऐसे जिनबिम्ब को जिन मुद्रा कहा जाता है। आहाहा! **इस प्रकार जिनबिम्ब है, वह जिनमुद्रा ही है**—लो! यह जिनमुद्रा ही है वह। वीतराग की छाप। सन्त, आचार्य दिगम्बर वनवासी जंगल में बसते। अरे! भगवान का विरह पड़ा और ऐसे आचार्य के विरह पड़े। आहाहा! समझ में आया? आचार्य तो... ऐसे जिनबिम्ब थे, ऐसा कहा वीतराग मार्ग में। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से कहे, वह जिनबिम्ब नहीं। वस्त्रवाले साधु, वह जिनबिम्ब व्यवहार से भी नहीं। आहाहा! और वह जिनबिम्ब जैसी प्रतिमा हो सामने, उसके जैसा हो, वह व्यवहार से जिनबिम्ब कहा जाता है।

★ ★ ★

## गाथा - १९

**आगे जिनमुद्रा का स्वरूप कहते हैं :-**

**दढसंजममुद्दाए इन्दियमुद्दा कसायदिढमुद्दा।**
**मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया॥१९॥**

जिसे **दृढ़ अर्थात् वज्रवत् चलाने पर भी न चले ऐसा संयम-इन्द्रिय मन का वश करना,...** मेरु पर्वत हिले नहीं, इसी प्रकार जिसकी इन्द्रिय और मन संकल्प और विकल्प में जाये नहीं। आहाहा! ऐसी जिसकी संयम मुद्रा अन्दर में है। आहाहा! **संयम-इन्द्रिय मन का वश करना,...** पाँच इन्द्रिय, मन, उसे संकुचित करने और अन्तर्मुख होकर उसका—अणीन्द्रिय का विकास करना, इसका नाम यहाँ जिनमुद्रा कहा जाता है। अरे! भरतक्षेत्र में विरह पड़ा। भगवान को याद करके ऐसा स्मरण बताया। मार्ग ऐसा है। समझ में आया?

**इन्द्रिय मन का वश करना, षट्जीवनिकाय की रक्षा करना,...** है न संयम शब्द? उसका अर्थ छह काय। एकेन्द्रिय के प्राणी को, एक हरितकाय के जीव का भी घात न करे। आहाहा! और जिसे मन और इन्द्रिय वश वर्तते हैं। अणीन्द्रिय भगवान आत्मा में जिसकी जमवट जम गयी है। आहाहा! उसे यहाँ जिनमुद्रा, वीतराग की छापवाली मुद्रा उसे कहते हैं। समझ में आया? कोई कहे न कि हमको जैन का वेश तो है न? ऐसा कहे। वेश ही नहीं। वस्त्र राखना, वह जिन का वेश ही नहीं। मुनिपने की बात है न! आहाहा! समझ में आया? वस्त्र रखना, वह जिनमुद्रा, जिन का वेश नहीं। ऐसा कहते हैं, जिन का वेश तो है न? ऐसा कहे। वह तो वेश ही नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** क्या वेश है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह वस्त्र पहनकर, स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठे। वह इनकार करते हैं यहाँ, देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य। वह जिन मुद्रा व्यवहार से भी नहीं। आहाहा! जिसे वस्त्र-पात्र आदि छूट गये हैं, इच्छा का निरोध होकर जिसे आनन्द प्रगट हुआ है और सम्यग्ज्ञान द्वारा वास्तविक तत्त्व को जानता है और सम्यग्दर्शन से जिसका संयम भी शुद्ध है, वह सम्यग्दर्शन वीतरागमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र हो सकता ही नहीं, ऐसा

कहते हैं। समझ में आया? श्वेताम्बर मार्ग में सम्यग्दर्शन होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। बहुत कठिन बातें हैं। कहने का यह आशय है। कषाय के वश हो गये हैं, कषाय को आधीन नहीं किया। अकषायस्वभाव, जिसकी दृष्टि ही सम्यक् नहीं, उसे अकषाय परिणाम संयमादि हों कहाँ से? पूरा बोधपाहुड़ निश्चय से वर्णन किया है। आहाहा!

**विषयों में न प्रवर्ताना, उनका संकोच करना, यह तो इन्द्रिय मुद्रा है, और इस प्रकार संयम द्वारा ही जिसमें कषायों की प्रवृत्ति नहीं है...** आहाहा! राग की और शुभ की जिसे प्रवृत्ति नहीं, शुभ की भी प्रवृत्ति नहीं। ऐसा जो अन्तर में वीतरागी परिणति पर्याय, जिसमें इन्द्रिय और असंयम का संकोच हो गया है। छूट गये हैं उसके विषय। आहाहा! यह बातें नहीं, बापू! सूक्ष्म बातें हैं यह तो। इन्द्रिय के वश। वश का अर्थ? इन्द्रियाँ—जड़ इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय, सबको इन्द्रिय कहा है। आहाहा! भगवान की वाणी को इन्द्रिय कहा है, भगवान के शास्त्र को इन्द्रिय कहा है, भगवान को स्वयं को इन्द्रिय कहा है। उस इन्द्रिय के वश न हो, उस इन्द्रिय के वश न हो, उसे जीते अर्थात् कि उसकी रुचि और उसका लक्ष्य छोड़कर आत्मा के ध्येय को पकड़कर निशान जहाँ मारता है अन्दर। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, उसे जिनबिम्ब के बदले जिनमुद्रा कहा जाता है। आहाहा!

**तथा ज्ञान का स्वरूप में लगाना,...** और ज्ञान उसे कहते हैं कि जिसे स्वरूप में जो लगा हो। ऐसा कहते हैं। उसका हेतु बताते हैं। क्योंकि वह जानेपने की बातें कीं। ... वह इसकी बात है। ज्ञान उसे कहते हैं कि जो स्वरूप में लगा हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! वह यह जानपना करके जगत को व्याख्यान देना, स्वयं सभायें इकट्ठी करना, वह ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आशय यह है वहाँ। जिसका ज्ञान स्वरूप में लगा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है न पाठ, देखो न! '**मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा**' जिसका ज्ञान, ज्ञान उसे कहते हैं और जिनमुद्रा का ज्ञान उसे कहते हैं कि जिनस्वरूप जो वीतराग का ध्येय जिसने—ज्ञान ने पकड़ा है। आहाहा! जिस ज्ञान ने—ज्ञान की पर्याय ने—ज्ञान की दशा ने पूर्ण ज्ञानानन्द जिनस्वरूप है, उसे पकड़ा है। वह ज्ञान स्वरूप में लगा है, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! शैली ही पूरी ऐसी कुन्दकुन्दाचार्य की सर्वोत्कृष्ट शैली! आहाहा!

कहते हैं कि **ज्ञान का स्वरूप में लगाना, इस प्रकार ज्ञान द्वारा सब बाह्यमुद्रा शुद्ध होती है।** देखा! इस प्रकार से। जिसकी ज्ञान की दशा, जिसके ध्येय में चिपटी है अन्दर। आहाहा!

**मुमुक्षु :** मुनि की बात है, प्रभु?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो उत्कृष्ट मुनि की बात है न, उत्कृष्ट यहाँ जिनबिम्ब की बात है न! दूसरे को उसे ऐसा है, परन्तु वह जिनमुद्रा नहीं। जिनमुद्रा तो आचार्य को कहा जाता है न! सम्यग्दृष्टि को ज्ञान जिसे उसका ध्येय वहाँ लगा है। यहाँ तो संयमसहित की मुनि की बात है न! यहाँ तो यह कहना चाहते हैं आचार्य कि बड़े आचार्य नाम धरावे, उपाध्याय नाम धरावे, शास्त्र तो पढ़े हुए हों कितने ही और बड़ी सभा भरे और ओहोहो! संस्कृत व्याकरण के श्लोक ऐसे पानी के पूर की भाँति चले, इसलिए उसे ज्ञान कहते हैं, ऐसा नहीं है। ज्ञान तो जिसका ज्ञान जिसके ध्येय में लगा। निशान वहाँ है उसका। आहाहा!

नित्यानन्द प्रभु परमात्मस्वरूप में जिसका ज्ञान लगा है। आहाहा! ज्ञान ने वहाँ बाण मारा है। आहाहा! जिसने द्रव्य को—ज्ञायकभाव को ज्ञान से पकड़ा, उसे ज्ञान कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पर के जानने की बातें, पर की बातें, वे सब आत्मा के ज्ञान के ज्ञेय बिना की है, उसे ज्ञान कहते ही नहीं। **'णाणाए जिणमुद्दा'** वह तो जैनमुद्रा ऐसी तो दिगम्बर में होती है। अन्यत्र कहीं हो सकती नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! बहुत कठिन, हों! वाड़ा पड़ गया बड़ा। उसमें यह बात कठोर लगे। क्या हो भाई? मार्ग ही ऐसा है, वहाँ। अनादि का तीर्थंकर का कहा हुआ तो मार्ग यह है। आहाहा!

जिसका ज्ञान, पूर्णानन्द का नाथ, आनन्द का सागर जिसमें ज्ञान, वहाँ गया है वह तो। आहाहा! जिस ज्ञान की पर्याय अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ परमात्मा का जिसने स्वीकार किया है। वह ज्ञान का स्वरूप आनन्द में लगा है, कहते हैं। समझ में आया? वह ज्ञान आनन्द को भजता है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप भगवान आत्मा... आगे अधिक कहेंगे। आहाहा! ज्ञान उसे कहते हैं कि जो ज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द के अन्दर चिपट गया है। आहाहा! वह मुद्रा है। वह मुद्रा की मुद्दा है। आहाहा! मुद्दे की रकम यह है।

**ज्ञान का स्वरूप में लगाना, इस प्रकार ज्ञान द्वारा सब बाह्य मुद्रा शुद्ध होती है।** देखो! बाह्यमुद्रा सब यह संयम की, नग्नपने की, यह ज्ञान द्वारा शुद्ध हो, वह कहा जाता है। ऐसा ज्ञान नहीं, वहाँ आगे एक भी मुद्रा शुद्ध और सच्ची नहीं। आहाहा! अरे! मुनि ने कहा है न दर्शनसार में, देवसेनाचार्य ने। अरे! कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में जाकर यह बात यदि नहीं लाये होते तो मुनि किस प्रकार से सत्य को समझते? ऐसा कहते हैं। आहाहा! दर्शनसार में आता है। दर्शनसार ग्रन्थ है छोटा। वहाँ देवसेनाचार्य कहते हैं, हों! आहाहा! भगवान महाविदेह में जाकर यह बात न लाये होते तो मुनियों को यह बात कैसे समझ में आती? ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न? दर्शनसार। भाई! आज याद आया था। हाजिर चाहिए न कुछ।

**मुमुक्षु :** समयसार के पृष्ठ के ऊपर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह कहाँ है? शिलालेख।

**मुमुक्षु :** पद्मनन्दि.... शुरुआत में है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दर्शनसार आया।

**जइ पउमणंदिणाहो सीमन्धरसामि दिव्य णाणेण।**
**ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥**

आहाहा! महाविदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव श्री सीमन्धरस्वामी से प्राप्त दिव्यज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दि नाथ ने—कुन्दकुन्दाचार्य ने बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते? ...आहाहा! श्रीमद् का डाला था। हे कुन्दकुन्दादि आचार्यों! आपके वचन स्वरूप अनुसन्धान में इस पामर को परम उपकारभूत हुए हैं। परम उपकारभूत हुए हैं। इसलिए मैं आपको अतिशय भक्ति से नमस्कार करता हूँ। ओहो! भगवान के समक्ष मुनि ऐसा कहते हैं। देवसेनाचार्य। देखो, प्रभो! आप वहाँ जाकर ऐसा मार्ग न लाये होते तो हम कहाँ से प्राप्त करते? समझ में आया? वह ज्ञान से सब शुद्धता होती है, कहते हैं। सम्यक् शुद्ध है, चारित्र शुद्ध है और बाह्य मुद्रा नग्न दिगम्बर, वह भी शुद्ध है। आहाहा! **इस प्रकार जिनशासन में ऐसी जिनमुद्रा होती है।** लो! है न! '**जिणमुद्दा एरिसा भणिया**' '**भणिया**' अर्थात् कहा। भगवान ने यह जिनमुद्रा जैनशासन में कही है। आहाहा!

**भावार्थ :- १- जो संयमसहित हो, २- जिसके इन्द्रियाँ वश में हो, ३- कषायों की प्रवृत्ति न होती हो और ४- ज्ञान को स्वरूप में लगाता हो,... ज्ञान को स्वरूप में लगाता हो,...** जो ज्ञान स्वरूप में लगा हो... आहाहा! पढ़े हुए हो न, फिर दूसरे को समझावे तो दूसरे को लगे कि यह ज्ञान है। झपाटा बोलावे। वह ज्ञान नहीं, बापू! तुझे अभी... जिसका ज्ञान है, उसे तो तूने पकड़ा नहीं। उसकी तो दृष्टि की नहीं, उसे ध्येय में लिया नहीं। इसके बिना तेरा सब अशुद्ध है। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, भाई! वीतराग मार्ग बहुत बिखर गया। सच्ची बात कान में पड़ना मुश्किल पड़ गयी। ऐसी चीज़। बहु भाग अन्यत्र बह गया। जो वस्तु का स्वरूप अनादि आचार्य कहते आये हैं, सन्त कहते आये हैं जिनमुद्रा और जिनबिम्ब की यह बात पूरी अलग पड़ गयी। **ऐसा मुनि हो...** दिगम्बर मुनि। ऐसे आचार्य, **सो ही जिनमुद्रा है।** आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - २०

**आगे ज्ञान का निरूपण करते हैं :—** अब ज्ञान डाला थोड़ा। सब निश्चय बोल लिये हैं आयतन, प्रतिमा, मुद्रा, जिनबिम्ब। उसमें ज्ञान भी डाला (कि) ज्ञान किसे कहना। आहाहा! अकेले शास्त्र के पठन करके बोले, पूरे जगत को समझावे, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कि कितने लोग इकट्ठे हों? तो अब लोग इकट्ठे हों चींटियाँ बहुत इकट्ठी हो, इससे कहीं वह मनुष्य कहलाये? आहाहा! मार्ग ऐसा कठिन है। अन्तर में उसे बैठना... वीतराग ने कहा हुआ ज्ञान, वह ज्ञान किसे कहना? वह शास्त्र... अकेला ऐसा कि दुनिया को भाषण दे, व्याख्यान दे, इसलिए यह व्याख्याता जोरदार ज्ञानी, ज्ञानी कहलाये—ऐसा नहीं है। आहाहा! जिसके ज्ञान में सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, परमात्मस्वरूप से विराजमान भगवान, वह जिसके ज्ञान में वर्तता हो, उसे—ज्ञानी को ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा करके आत्मा के अतिरिक्त दूसरे पदार्थों के ज्ञान को यहाँ ज्ञान (नहीं कहा)। आत्मा का ज्ञान हो वह ज्ञानवाला भले पर का जाने, वह अलग बात है, परन्तु आत्मा का जहाँ ज्ञान नहीं, मूल वर का ही ज्ञान नहीं। अकेले बाहर के द्वीप और समुद्र और यह और

फलाना, देखो, यह तो हम जानते हैं। भगवान ने इतने द्वीप समुद्र कहे, इतने ३२ लाख विमान, वहाँ शाश्वत् प्रतिमायें हैं, उन्हें हम मानते हैं। यह नहीं, भाई! समझ में आया?

ऐसा ज्ञान होता है। देखो!

**संजमसंजुत्तस्स य, सुझाणजोयस्स मोक्शमग्गस्स।**
**णाणेण लहदि लक्खं, तम्हा णाणं च णायव्वं॥२०॥**

'**णाणेण लहदि लक्खं**' लक्षण से लें लक्ष्य। आहाहा! '**तम्हा णाणं च णायव्वं**' आहाहा!

**अर्थ :- जो ज्ञान संयम से संयुक्त...** सूक्ष्म बात की है। जिसमें संयम, सं—सम्यग्दर्शनसहित जिसे यम—स्वरूप में छह काय और मन से हट गया है और छह काय की हिंसा और पाँच इन्द्रिय से मन, बारह भाव से हट गया है। उसके ज्ञान को ज्ञानसहित, संयमसहित को ज्ञान कहते हैं। संयम... **संयम से संयुक्त और ध्यान के योग्य...** ध्यान के योग्य। **इस प्रकार जो मोक्षमार्ग...** ध्यान के योग्य। आहाहा! अपना स्वभाव परमात्मस्वरूप, उसका जिसे ध्यान और योग्य ज्ञान है। उसके ध्यान के योग्य जिसका ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

**इस प्रकार जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य...** जो ज्ञान का मोक्षमार्ग **उसका लक्ष्य अर्थात् लक्षणयोग्य-जाननेयोग्य निशाना जो अपना निजस्वरूप...** लो, ठीक! आहाहा! **मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य...** मोक्षमार्ग का लक्ष्य। **लक्षणयोग्य-जाननेयोग्य निशाना...** मोक्षमार्ग का लक्ष्य। वह कौनसा? मोक्षमार्ग का लक्ष्य। **अपना निजस्वरूप...** दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य ध्रुवस्वरूप। आहाहा! निजस्वरूप। संक्षिप्त बात, परन्तु बड़ी बात। आहाहा! देखो, यह वीतराग त्रिलोकनाथ अरिहन्त तीर्थंकरदेव की देशना यह है। कहते हैं कि मोक्षमार्ग का ध्येय, लक्ष्य तो निजस्वरूप है। मोक्षमार्ग का ध्येय जगत को कहे और समझावे तथा मनावे, इसलिए वह मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! मोक्षमार्ग का ध्येय निजनिशान निजस्वरूप है। आहाहा! उसे वह साधना है। दुनिया इकट्ठी करके रंजन करना है, यह उसका ध्येय नहीं है। समझ में आया?

कहो, जनरंजन, आया है न सेठ! तारणस्वामी (में आया है)। जनरंजन करने के

लिये इकट्ठे हो, निगोद में जायेगा। तारणस्वामी कहते हैं। अरे! बापू! आत्मा का रंजन करना चाहिए। दुनिया कैसे इकट्ठी हो? और अधिक सभा कैसे भरे? अधिक ऐसा कि ओहोहो! व्याख्यान, वह व्याख्यान! यह नहीं, कहते हैं। आहाहा! जिसके ध्यान के योग्य तो मोक्षमार्ग, उस मोक्षमार्ग का जाननेयोग्य ध्येय तो निजस्वरूप। पूर्णानन्द से भरपूर परमात्मा स्वयं उसका द्रव्यस्वरूप, परमात्मस्वरूप, वह मोक्षमार्ग का ध्येय, मोक्षमार्ग का लक्ष्य है। आहाहा!

**मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् लक्षणेयोग्य...** अर्थात् कि मोक्षमार्ग से जाननेयोग्य **निशाना जो अपना निजस्वरूप, वह ज्ञान द्वारा पाया जाता है,...** वह त्रिकाली स्वरूप ज्ञान द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। किसी क्रिया द्वारा यह दया, दान, व्रत और भक्ति इनके द्वारा (नहीं)। आहाहा! निजस्वरूप की प्राप्ति तो अन्तर के ज्ञान द्वारा होती है, कहते हैं। समझ में आया? यह बाहर से मनाया था न, प्रवृत्ति करो, व्रत पालन करो, तपस्या करो, यात्रा करो, भक्ति दो-पाँच-दस लाख खर्च करो। कहते हैं कि वह कोई मोक्षमार्ग का ध्येय नहीं है वह कोई। आहाहा! कहो, सेठ! मन्दिर बनाओ। उसमें यह सब सर्वस्व मनवा बैठे थे। आहाहा! वही सब बस है। ओहोहो! क्या हुआ परन्तु? मन्दिर बने और पाँच-दस लाख लोग इकट्ठे हो, पैसे उड़ावे करोड़ों रुपये। बापू! यह धर्म तो कोई ऐसी वह (अलग) चीज़ है, भाई!

**मुमुक्षु :** ज्ञान का कारण।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बिल्कुल नहीं। यहाँ तो ज्ञान का कारण पुस्तक भी नहीं, वाणी नहीं। विनय कहेंगे। उसका कारण है। परम्परा आचार्य दिगम्बर सन्त चले आते थे, उनका विनय छोड़ दिया और पंथ निकाला। यह तो कहेंगे अभी। '**विणयसंजुत्तो**' २२वीं गाथा में कहेंगे। हेतु तो यह है। अनादि सनातन जैन दिगम्बर मार्ग, आचार्यों की परम्परा से चला आता था, उसमें से भिन्न पड़े तो विनय तोड़ दिया। समझ में आया? इसमें यह बात है जरा, हो! यह तो अधिकार आया, इसलिए (बात है)। किसी के प्रति विरोध की बात नहीं। व्यक्ति के प्रति तो मैत्री होना चाहिए। 'तत्वेषुमैत्री'। मार्ग तो यह है। बड़े आचार्य नाम धरावे, बड़े ग्यारह अंग के पढ़नेवाले हों। ...नहीं। वह कुछ जानपना नहीं था शास्त्र का। परन्तु जहाँ ज्ञान का ध्येय मोक्षमार्ग का आत्मा चूक गया

उसे, कहते हैं, उसमें कुछ सच्चा नहीं। समझ में आया? अरे!

**अपना... अपना निजस्वरूप...** भाषा ऐसी है न वापस? उसका अर्थ '**णाणेण लहदि लक्खं**' लक्ष्य अर्थात् निजस्वरूप, ऐसा। उसमें से निकाला। '**णाणेण लहदि लक्खं**' ज्ञान से... लक्षण है न ज्ञान? उससे '**लहदि लक्खं**' तो लक्ष्य वह तो निजस्वरूप हुआ। समझ में आया? ऐसी बातें गजब भाई! एक को तो बाहर के क्रियाकाण्डवाले को सुनने में रस ही नहीं पड़ता। रूखा लगता है। वह तो कहे, प्रतिमा करो, सवेरे दर्शन, भगवान की स्तुति करो, धन दो, तुमको कुछ धर्म होगा। उससे समकित होगा। समझावे ऐसा। धूल में भी कुछ हो, ऐसा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **लक्षणेयोग्य-जाननेयोग्य...** लक्षणेयोग्य अर्थात् लक्ष्य करनेयोग्य, ऐसा। लक्ष्य करनेयोग्य, ध्यान करनेयोग्य, ऐसा जो निजस्वरूप। वह **ज्ञान द्वारा पाया जाता है,...** आहाहा! **इसलिए इस प्रकार के लक्ष्य को जानने के लिए...** ऐसे लक्ष्य को—त्रिकाली को—ध्रुव को—परमात्म निजस्वरूप **जानने के ज्ञान को जानना।** उसे भलीभाँति ज्ञान को जानना चाहिए। आहाहा! देखो, यह ज्ञान का स्वरूप वर्णन करते हैं। सब आयतन, जिनमुद्रा, जिनप्रतिमा, जिनबिम्ब। यह ज्ञान। इसका हेतु यह है कि आत्मा जिसमें जिस ज्ञान में ध्येय नहीं, प्राप्त करनेयोग्य लक्ष्य जो आत्मा जिस ज्ञान में नहीं, उस ज्ञान को ज्ञान कहते नहीं। तेरे ज्ञान के पढ़नेवाले हों बड़े, लाखों, करोड़ों लोग इकट्ठे हों। वह ज्ञान नहीं, भाई! आहाहा!

जिस ज्ञान में निजस्वरूप लक्ष्य में आवे। वह तो लक्षण से आया था न कल। ज्ञान लक्षण है पर्याय। तब लक्षण किसका? कि लक्ष्य का। लक्ष्य का है वह। आहाहा! धर्मी के ज्ञान का ध्येय तो द्रव्य है, ऐसा कहते हैं। भगवान परिपूर्ण स्वरूप, निजस्वरूप जिसके लक्षणे लक्ष्य होनेयोग्य वस्तु वह है। आहाहा! उस ज्ञान के स्वरूप को **पाया जाता है...** उस ज्ञान द्वारा वह स्वरूप—निजस्वरूप पाया जाता है। कोई बाहर की प्रवृत्ति क्रिया बहुत करे, उससे आत्मा प्राप्त होता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहना है। समझ में आया? **इसलिए इस प्रकार के लक्ष्य को जानने के लिए...** इसलिए इस प्रकार के लक्ष्य को जानने के लिये—निजस्वरूप को जानने के लिये ज्ञान को बराबर जानना चाहिए। उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं, उसे इसे जानना पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया?

**भावार्थ :- संयम अंगीकार कर ध्यान करे और आत्मा का स्वरूप न जाने...** देखा! आहाहा! बाहर का संयम ग्रहण करे और ध्यान करे। परन्तु (कौनसी) वस्तु— किसका ध्यान करना, इसकी तो खबर नहीं होती। **आत्मा का स्वरूप न जाने तो मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं है,...** अर्थ भी कैसे भरे हैं, देखो न! **संयम अंगीकार कर ध्यान करे...** बैठ जाओ ध्यान करने। किसका? किसका? कौन है अन्दर? गहरे पूर्ण स्वरूप गहरे कौन है? कैसा है? उसके ज्ञान बिना यह सब ध्यान-ब्यान सब झूठा है। उसे मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं। आहाहा! जिस ज्ञान में, लक्षण से लक्ष्य करनेयोग्य निजस्वरूप, वह जिसके ज्ञान में ध्येय आया नहीं, वह संयम लेकर ध्यान करे, वह किसका करेगा? जहाँ जाना है, वह कौन चीज़ है, वह तो दृष्टि में और ज्ञान में आयी नहीं। कहाँ स्थिर होगा वह? समझ में आया? भारी कठिन मार्ग, भाई! वह स्वयं ज्ञानस्वरूप ही है। ज्ञानस्वरूप का ज्ञान। ज्ञानस्वरूप का ज्ञान। और उस ज्ञान में ज्ञेय और लक्ष्य वही आत्मा। ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय कहो, लक्ष्य कहो, ध्येय कहो, मोक्षमार्ग का ध्येय तो वहाँ द्रव्य के ऊपर है, कहते हैं। श्रद्धा का ध्येय वहाँ, ज्ञान का ध्येय वहाँ और स्थिरता का ध्येय वहाँ है। आहाहा! बहुत थोड़ी बातें! ऐसा मार्ग है। इस मार्ग की खबर भी जहाँ न हो। आहाहा! अरे! उसे कहाँ जाना? भारी बात वर्णन की।

१३ बोल, कितने आ गये, नहीं? ११। उसमें यह डाला देखो। ११ में यह डाला। आयतन और चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन। दर्शन आया था। जिनबिम्ब और... जिनमुद्रा। '**णाणमादत्थं**' '**णाणमादत्थं**' है न? आहाहा! उसमें भी अर्थ किया है, देखो! पाठ है न। '**णाणमादत्थं**' अर्थात् **ज्ञान पद कैसा? आत्मा ही है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसमें, इस प्रकार...** का ज्ञान। ऐसा। '**णाणमादत्थं**' आत्मा जिसका प्रयोजन है जिस ज्ञान में। आहाहा! शैली तो शैली की है न! पाठ है न तीसरी गाथा। '**णाणमादत्थं**' शुरुआत बोल लिये उसमें। '**णाणमादत्थं**' ज्ञान उसे कहते हैं कि जो आत्मा जिसका प्रयोजन है। आहाहा! कहो, समझ में आया? गजब बात! परम सत्य को सिद्ध करने की पद्धति।

**भावार्थ :- संयम अंगीकार कर ध्यान करे और आत्मा का स्वरूप न जाने...** भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान का समुद्र—सागर प्रभु है। अकेला ज्ञानस्वरूप, अकेला आनन्दस्वरूप, अकेला श्रद्धास्वरूप, अकेला वीर्यस्वरूप, अकेली स्वच्छतास्वरूप, अकेली

प्रभुतास्वरूप। जिसमें अपूर्णता नहीं, जिसमें विपरीतता नहीं। ऐसा जो आत्मस्वरूप उसका जिसे ज्ञान नहीं, वह मोक्षमार्ग की सिद्धि किस प्रकार करे? क्योंकि मोक्षमार्ग की सिद्धि तो निजस्वरूप को सिद्ध करना, वह है। अभी स्वरूप ही क्या है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! दूसरा जानपना हो, न हो, कम-ज्यादा (हो), उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! मिथ्यात्वसहित का ज्ञान ग्यारह अंग और नौ पूर्व का (हो) परन्तु उसे अज्ञान कहते हैं। और स्वरूप के ध्येयवाला ज्ञान थोड़ा ज्ञान हो तो भी उसे विज्ञान कहते हैं। आता है न? कलश में आता है। पण्डित जयचन्द्रजी। पण्डित जयचन्द्रजी।

**इसलिए ज्ञान का स्वरूप जानना चाहिए, उसके जानने से सर्व सिद्धि है।** भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप। परमात्मस्वरूप, कारणपरमात्मा स्वयं। उस स्वरूप को जानना चाहिए। **उसके जानने से सर्व सिद्धि है।** समझ में आया? शास्त्र का बाहर का जानपना सबका अभिमान उड़ा दिया। ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो निजस्वरूप को साधे। ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो निजस्वरूप को ध्येय में, लक्ष्य में ले। आहाहा! यह **जानने से सर्व सिद्धि है।** लो।

★ ★ ★

**गाथा - २१**

**आगे इसी को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं :—**

**जह णवि लहदि हु लक्खं, रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।**
**तह णवि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स॥२१॥**

**अर्थ :- जैसे बेधनेवाला ( वेधक ) जो बाण, उससे रहित...** बाण न हो उसके पास। **ऐसा जो पुरुष...** निशान मारना हो न किसी को। उसके पास बाण न हो। **ऐसा जो पुरुष है, वह कांड अर्थात् धनुष के अभ्यास से रहित...** और बाण हो परन्तु उसका अभ्यास न हो वापस। धनुष को कैसे मारना, कैसे चलाना। **लक्ष्य अर्थात् निशाने को नहीं पाता है,...** जिसके पास बाण नहीं और बाण हो तो भी अभ्यास नहीं उसे, तो वह निशान को जहाँ मारना हो, वहाँ नहीं मार सकता। आहाहा! निशान को नहीं मार

सकता। **वैसे ही ज्ञान से रहित अज्ञानी...** जिसे निशान जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, ऐसे निशान को नहीं जो ज्ञान जानता नहीं, जिस ज्ञान में उसका ध्येय नहीं, ऐसे अज्ञानी, **वह दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् स्वलक्षण से जाननेयोग्य परमात्मा स्वरूप, उसको नहीं प्राप्त कर सकता।** आहाहा!

**निशाने को नहीं पाता है,...** बाण नहीं और बाण का अभ्यास नहीं, कैसे मारना, कैसे करना। **वैसे ही ज्ञान से रहित...** अपना निजस्वरूप, उसका ज्ञान... आहाहा! अनन्त-अनन्त अविनाशी शक्तियाँ अनन्त। अपने शक्तियाँ चलती हैं न दोपहर में? ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। वहाँ तो ४७ ही वर्णन की है। ऐसी अनन्त शक्तियों का समूह एकरूप वस्तु, ऐसा निजस्वरूप, उसके ज्ञान से रहित है। **वह दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् स्वलक्षण से जाननेयोग्य...** उसे दर्शन और चारित्र से भी जाननेयोग्य, साधनेयोग्य तो वह था। **स्वलक्षण से जाननेयोग्य परमात्मा का स्वरूप, उसको नहीं प्राप्त कर सकता।** आहाहा! लो, वह परमात्मा स्वयं परमात्मस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसे दर्शन और चारित्र का जो लक्ष्य है, दर्शन और चारित्र को साधनवाला लक्ष्य भी वहाँ जायेगा। उसे वह नहीं मिलता।

**परमात्मा का स्वरूप, उसको नहीं प्राप्त कर सकता।** आहाहा! क्या कहा? **ज्ञान से रहित अज्ञानी है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग...** समकित और चारित्र मोक्ष का मार्ग, उसका लक्ष्य तो वह परमात्मा स्वयं है। **स्वलक्षण को जाननेयोग्य...** परमात्मा स्वयं है। उसका जिसे ज्ञान नहीं, तो उसे यह चारित्र और दर्शन का ध्येय, उसे प्राप्त नहीं हो सकता। आहाहा! यह ऐसा कहते हैं कि ज्ञान है, उसका लक्ष्य—ध्येय त्रिकाल वस्तु है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र में भी त्रिकाल वस्तु यदि ध्येय में न हो तो साध नहीं सकता। उसका ज्ञान नहीं तो साध क्या सकेगा? उस दर्शन का ध्येय भी वहाँ है और चारित्र का भी लक्ष्य—ध्येय वहाँ है। उसमें स्थिर होना है। आहाहा! समझ में आया?

जो ज्ञान ऐसा, जो ज्ञान नहीं, कहते हैं। स्वरूप में, निजस्वरूप को ध्येय बनाकर ज्ञान नहीं, उसे दर्शन और चारित्र का लक्ष्य तो वह है, उसकी तो उसे खबर न रही। आहाहा! दर्शन और चारित्र में साधना है तो वह आत्मा। कहीं बाह्य साधन से साधना है

वह ? आहाहा! क्या कहा, समझ में आया ? **ज्ञान से रहित अज्ञानी...** वह दर्शन और चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग, उसका लक्ष्य तो **स्वलक्षण से जाननेयोग्य परमात्मा का स्वरूप,...** है। परन्तु जिसे ज्ञान नहीं, वह दर्शन और चारित्र से अपना स्वरूप साध सकेगा नहीं। आहाहा! लो, यहाँ तो ज्ञान के ऊपर वजन दिया। दर्शन की... चेतनजी! ज्ञान की व्याख्या थी न, इसलिए ऐसा तो कहा कि दर्शन और चारित्र से साधनेयोग्य निज परमात्मा। दर्शन और चारित्र से साधनेयोग्य तो निजस्वरूप है। उसका ज्ञान नहीं तो नहीं साध सकेगा। आहाहा! थोड़ा लिखा बहुत जानना, ऐसी बात है।

जहाँ ज्ञान का लक्ष्य भी द्रव्य निजस्वरूप और श्रद्धा तथा चारित्र का ध्येय तो वह है, उसे साधना है। परन्तु जिसे उसका ज्ञान नहीं, वह दर्शन और चारित्र से निजस्वरूप की प्राप्ति कैसे करेगा ? आहाहा! समझ में आया ? ऐसा मार्ग वीतराग का। आहाहा!

**मुमुक्षु :** दृष्टान्त अच्छा दिया बाण का।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाण का दिया। अभी आयेगा।

यहाँ तो लक्षनेयोग्य **लक्षण से जाननेयोग्य...** लक्ष्य कौन कहलाता है ? कि **स्वलक्षण से जाननेयोग्य...** लक्ष्य किसे कहा जाता है ? कि **स्वलक्षण से जाननेयोग्य...** अर्थात् ज्ञान के लक्षण से लक्ष्य—जाननेयोग्य। आहाहा! ऐसा जो **स्वलक्षण से जाननेयोग्य परमात्मा का स्वरूप,...** उसके ज्ञान बिना दर्शन-चारित्र से साधनेयोग्य तो वह है। तो नहीं पा सके वह। आहाहा! समझ में आया ? धीर का मार्ग है यह तो। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ध्यान तो पर्याय है, परन्तु उसका ध्येय यह निजस्वरूप है। ध्यान तो पर्याय है, परन्तु उसका ध्येय तो निजस्वरूप त्रिकाल है। आहाहा!

**भावार्थ :- धनुषधारी धनुष के अभ्यास से रहित...** पकड़ना भी न आता हो बन्दूक। सोल्जर सामने आवे तो किस ओर मारना इसमें ? घोड़ा ऐसा पड़े ऐसा रखे यहाँ आवे। बाण। क्या कहलाता है ? वह बन्दूक। बन्दूक का घोड़ा बराबर न दबे तो ऐसा करके रखे, ऐसा दबाने जाये। परन्तु ऐसा न करे तो ऐसे लगेगा। घोड़ा व्यवस्थित उघड़े नहीं। ऐसे घोड़ा। तो ऐसे दबाकर ऐसे करने जाये। आहाहा! स्वयं को मारेगा। इसी

प्रकार जिसे सच्चा ज्ञान निशान का नहीं, जिसे उसका अभ्यास नहीं। बाण नहीं और बाण का अभ्यास नहीं। आहाहा! अभ्यास बिना वह किस प्रकार निशान को साध सकेगा? ऐसा ध्येयस्वरूप का ज्ञान जिसे नहीं, वह निशान तो यह है, उसका जिसे ज्ञान नहीं। यह दर्शन-चारित्र का लक्ष्य भी वह है। उस ज्ञान बिना कैसे साध सकेगा? ओहोहो! ग्यारह बोल में दूसरे सब बोल में ज्ञान की महिमा। यह आत्मा है। जिस ज्ञान का प्रयोजन आत्मा है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली गजब शैली है!

**वैसे ही ज्ञानरहित अज्ञानी मोक्षमार्ग का निशाना...** मोक्षमार्ग का निशान क्या? निजस्वरूप त्रिकाली। आहाहा! समझ में आया? यह मोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग की बात है, हों! व्यवहारमोक्षमार्ग, वह मोक्षमार्ग नहीं। वह तो बन्धमार्ग को आरोपित कथन है। वापस इसका विवाद। **ज्ञानरहित अज्ञानी मोक्षमार्ग का निशाना जो परमात्मा का स्वरूप है...** देखा! स्वयं परमात्मा, हों! **उसको न पहिचाने, तब मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं होती है, इसलिए ज्ञान को जानना चाहिए। परमात्मरूप निशाना ज्ञानरूप बाण द्वारा वेधनायोग्य है।** परमात्मारूप निशान, वह ज्ञानरूप बाण से बेंधने योग्य है। बहुत सरस गाथा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर कृष्ण ७, रविवार, दिनांक-१६-१२-१९७३
गाथा - २२, २३, प्रवचन-६९

## गाथा - २२

अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़। उसकी गाथा २२। २१ हो गयी। **आगे कहते हैं कि इस प्रकार ज्ञान-विनय-संयुक्त पुरुष होवे, वही मोक्ष को प्राप्त करता है :—**

**णाणं पुरिसस्स हवदि, लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।**
**णाणेण लहदि लक्खं, लक्खंतो मोक्खमग्गस्स॥२२॥**

**अर्थ :- ज्ञान पुरुष को होता है...** आत्मा को। यह ज्ञान **पुरुष ही विनयसंयुक्त हो...** धर्मात्मा परम्परा से आचार्य दिगम्बर सन्त जिन्हें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त है, ऐसे पुरुष का विनय करने से ज्ञान मिलता है, ऐसा कहते हैं। **विनयसंयुक्त हो सो ज्ञान को प्राप्त करता है...** ऐसा कि जो मार्ग चला आता था, उसमें से विनय किये बिना भिन्न पड़ गये, उनकी बात करते हैं। समझ में आया? परम्परा वीतराग का मार्ग, वह दिगम्बर धर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित, नग्नमुद्रा ऐसी जो दशा चली आती थी, ऐसे पुरुष का विनय नहीं किया और भिन्न पड़ गये, उन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**ज्ञान पुरुष को होता है और पुरुष ही विनयसंयुक्त हो सो ज्ञान को प्राप्त करता है...** धर्मात्मा ज्ञानी का विनय करे तो प्राप्त होता है। यह बात बहुमान गिनाया है इतना। बाकी ज्ञान पर से प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु जिसे ज्ञान प्राप्त करना है उसे, धर्मात्मा ज्ञानी का विनय करना, यह उसका आचार है। समझ में आया? वास्तव में पर का विनय करना, वह तो विकल्प है। परन्तु यहाँ तो सिद्ध करना है कि जो ज्ञानानन्दस्वरूप को प्राप्त पुरुष है, उनका विनय, आदर करे तो वह जो कहते हैं कि आत्मा का ध्यान कर, ऐसा जो उसका ज्ञान उनसे प्राप्त होता है। शुद्ध आत्मा, परमात्मस्वरूप में ज्ञान को जोड़। ऐसा वे ज्ञानी पुरुष ऐसा कहते हैं, उसे। वह प्राप्ति ज्ञानी पुरुष से ही ऐसी बात

मिलेगी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

**जब ज्ञान को प्राप्त करता है, तब उस ज्ञान द्वारा ही मोक्षमार्ग का लक्ष्य...** सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो उस सम्यग्ज्ञान का हेतु... **परमात्मा का स्वरूप...** वह ज्ञान का लक्ष्य है। ज्ञान का ध्येय वहाँ है। अपना स्वरूप परमात्म ध्रुव ध्येय। ध्रुव स्वरूप चिदानन्द आत्मा का है, वह ज्ञान का ध्येय है। उसे सच्चा ज्ञान कहा जाता है कि जिस ज्ञान में द्रव्य का लक्ष्य हो, ध्रुव का ध्येय हो। नित्यानन्द भगवान आत्मा जिस ज्ञान का आश्रय हो, ज्ञान को आश्रय करनेयोग्य वह वस्तु हो, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? **जब ज्ञान को प्राप्त करता है, तब उस ज्ञान द्वारा ही मोक्षमार्ग का लक्ष्य...** अर्थात्? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का मार्ग, उसका लक्ष्य और ध्येय तो ध्रुव है। निमित्तबुद्धि नहीं, विकल्पबुद्धि नहीं, एक समय की पर्याय की बुद्धि नहीं, ऐसा कहते हैं।

उसे ज्ञान कहते हैं कि जहाँ ध्रुव भगवान नित्यानन्द प्रभु स्वयं है। वह ज्ञान वहाँ लक्ष्य करे, ध्येय बनावे तो वहाँ से सम्यग्ज्ञान होता है और पूरे मोक्षमार्ग का ध्येय वहाँ है। आहाहा! ऐसा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह सम्यग्दर्शन भी, ध्येय चिदानन्द ध्रुव के आश्रय से होता है। ज्ञान है, वह उसके आश्रय से होता है, चारित्र भी उसके आश्रय से होता है। बहुत सूक्ष्म बात है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आनन्द की पूर्ण प्राप्ति का हेतु, मोक्ष का मार्ग, उसका लक्ष्य ध्रुव के ऊपर है।

**मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो परमात्मा का स्वरूप...** वह ज्ञान से ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ज्ञान को प्राप्त करता है, तब उस ज्ञान द्वारा ही...** ऐसा कहा न? **ज्ञान द्वारा ही मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो परमात्म का स्वरूप उसको लक्षता...** ज्ञान द्वारा मोक्षमार्ग का ध्येय है, उसे वह जानता है, उसे देखता है, और उसका ध्यान करता है। समझ में आया? ज्ञान उसे कहते हैं कि जो ध्रुव भगवान आत्मा नित्य प्रभु अनन्त गुण का गंज—राशि एकरूप, उस ज्ञान का ध्येय वहाँ है, उसका लक्ष्य वहाँ है। उसे ज्ञान कहते हैं। जिस ज्ञान का लक्ष्य निमित्त और राग और पर्याय के ऊपर है, उसे ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? दूसरे तो यह जानपना करके सब यह भक्ति, पूजा और दान चढ़ाकर दिया था न? इससे कहते हैं कि वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? लाखों, करोड़ों रुपये खर्च करे, लो। यात्रा में। लोग आये हों, उन्हें

पाँच-पाँच, दस-दस रुपये दे यात्रा के। वह कहीं ज्ञान का लक्ष्य और ध्येय नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करने का वह ध्येय नहीं। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का लक्ष्य तो ध्रुव है। वह ज्ञान उसे प्राप्त कराता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कैसी सूक्ष्म बात की है! व्यवहारवाले ने बाहर चढ़ा दिया। मार्ग रह गया। बाहर की धमाधम। क्या कहा? चेतनजी! धामधूम से धमाधम चली। आहाहा!

जो वस्तु है आत्मा एक समय में—सेकेण्ड के असंख्य भाग में नित्यानन्द प्रभु एक समय की पर्याय के पीछे, राग-विकल्प के पीछे पर्याय और पर्याय के पीछे ध्रुव। वह परमात्मस्वरूप है अपना। परमात्म अर्थात् परम स्वरूप। परमात्मा अर्थात् परम स्वरूप। आहाहा! परमस्वरूप जो पारिणामिकभाव से ज्ञायकभाव त्रिकाल। उस मोक्षमार्ग का लक्ष्य वहाँ है और उस ज्ञान द्वारा उस मोक्षमार्ग का लक्ष्य वहाँ होता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब मार्ग, भाई!

**ज्ञान को प्राप्त करता है, तब उस ज्ञान द्वारा ही मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो परमात्मा का स्वरूप उसको लक्षता...** है। उसे लक्ष्य करता है, उसका ध्यान करता है, उसे देखता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अभी तो पहले पकड़ना, क्या कहते हैं यह मुश्किल है। कभी सुना न हो, बाहर की धमाधम, यात्रा, भक्ति, पूजा और पैसा खर्च करे। वह-वह चीज़ मानो कोई धर्म के ध्येय की हो, मोक्षमार्ग का तो यही लक्ष्य होता है, ऐसा मनवा दिया है। मोक्षमार्ग का लक्ष्य और ध्येय तो ध्रुव है, यह ज्ञान वहाँ लक्ष्य कराता है। ज्ञान वहाँ उसे देखता है, उसका ध्यान कराता है वहाँ। आहाहा! जो ज्ञान की दशा ज्ञान प्राप्त और जो धर्मात्मा ने उसे यह कहा था। विनयवन्त पुरुष ने विनय करके देखा, जाना। तो जिसका विनय किया, उसने यह कहा था कि तेरा आत्मा ध्रुव है, वहाँ दृष्टि और वहाँ लक्ष्य कर। हमारी ओर का लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। ऐसा आया या नहीं इसमें? आहाहा!

भाई! तू पूर्ण आनन्द का स्वरूप है अन्दर। आहाहा! साक्षात् परमात्मस्वरूपी विराजमान ध्रुव आत्मा। आहाहा! उसके ऊपर जिसका लक्ष्य कराते हैं और मोक्षमार्ग का लक्ष्य वह है कि ज्ञान वहाँ ध्यान कराता है। उसे देखे, उसे जाने, उसका लक्ष्य करे और उसे निशानरूप से लक्ष्य में ले। आहाहा! कठिन बातें, भाई! यह देखो न, ज्ञान की

बात ली है। स्थापना था सब निश्चय आयतन, तीर्थ और प्रतिमा और मुद्रा और जैनबिम्ब। ज्ञान... भाई! यह सब उसे जाननेवाला वह कौन? वह जाननेवाला जो ज्ञान है, वह ज्ञान कैसा होता है? कि जो मोक्ष का मार्ग है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वस्तु का पूर्ण स्वभाव उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, इन तीनों का लक्ष्य तो द्रव्य-ध्रुव है। उसे ज्ञान प्राप्त कराता है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान दुनिया को ऐसे लाखों लोगों को समझावे और बड़े भाषण करे, इसलिए वह ज्ञान। यह नहीं, कहते हैं। समझ में आया? बड़ी सभा इकट्ठी हो तो वह ज्ञान उसका सच्चा, ऐसा नहीं है। आहाहा! ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा जो आत्मा का नित्य स्वरूप। एक समय की प्रगट अवस्था व्यक्त से भी भिन्न ऐसी चीज़ को जिसने लक्ष्य में लिया है, श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, वह मोक्षमार्ग। उसका लक्ष्य करके उसका ध्यान करावे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मनुष्य कैसा है जैन? यहाँ पहला विनय है, यह तो कहा। बाकी परम्परा आचार्य जो मोक्षमार्ग के अधिकारी चले आते थे। समझ में आया? उनका विनय करके... उन्होंने ऐसा कहा था और वे ऐसा साधते हैं वे स्वयं। आहाहा! दिगम्बर मुनि वह साधते थे। वीतराग का मार्ग अन्तर में ध्येय-ध्यान में। उनका विनय करके, उन्होंने ऐसा कहा कि तेरे ज्ञान में तेरी जाति का ध्येय लक्ष्य में ले। तेरे श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में भी तेरा आत्मा लक्ष्य में ले। आहाहा! ऐसा कहनेवाले सन्त, दिगम्बर मुनि चले आते थे परम्परा में। उसे छोड़कर यह नया पंथ निकाला। उसके सामने बात है, भाई! भगवान! समझ में आया? यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी, वे जैनधर्म में से अलग पड़ गये। ऐसी सूक्ष्म बात है, भगवान! किसी को दुःख लगे, वह बात नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आचार्य यह पुकार करते हैं। आहाहा!

भाई! तेरा मार्ग तो जिस मार्ग में द्रव्यस्वभाव ध्येय में हो। जिस मार्ग में पुण्य करना और व्रत करना, वह ध्येय में हो, वह मार्ग नहीं है, भाई! आहाहा! व्यवहार के रास्ते चढ़े हुए को धर्म माने, उसे यह कहते हैं, हों! भाई! व्यवहार धर्म, वह ध्येय नहीं और उससे ध्येय प्राप्त नहीं होता। आहाहा! अरे! यह तो आत्मा के हित की बातें हैं, परन्तु अब भाई! ऐसी बात है, कि वाड़ा बँध गया, सम्प्रदाय अलग हुए। लोगों को

किसका मानना इसमें? बुद्धि थोड़ी, व्यापार-धन्धे में रुकना, मुश्किल से घण्टा भर मिले, उसमें किससे सच्चा... ? कोई कुछ कहे, दूसरा कुछ कहे। आहाहा! बनिये को व्यापार में जैसे उलझन, वैसे यहाँ उलझन वापस। अभी तो यह चला है, देखो न, ऐसे सरकार... क्या करना, किसका करना? पैसा पैदा होते हैं। क्या कितने करते थे? लाख के डेढ़ हजार... कोई कहता है। क्या करना इसमें? यहाँ धर्म में उलझन का पार नहीं होता। इतने सब भेद, उसमें कौन सा धर्म मानना उसमें? उलझन है ही नहीं, प्रभु! आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ का पथानुगामी धर्म जो है, वह तो ऐसा पुकारता है कि श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का ध्येय तो वहाँ द्रव्य के ऊपर है। वह ज्ञान उसे पहले ध्यान करावे, उसे देखे, उसकी श्रद्धा करे, उसका ध्यान। उसका नाम ज्ञान कहते हैं। आहाहा! गजब बात की है। संक्षिप्त में द्रव्यदृष्टि का आश्रय जिसे होता है, उसे ज्ञान की विशेषता होकर ज्ञान वहाँ जुड़ता है। आहाहा! समझ में आया?

**मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो परमात्मा का स्वरूप...** यह परमात्मा परमेश्वर अरिहन्त तीर्थंकर नहीं। भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप ध्रुव विराजता है यह। जिसमें से परमात्मा अरिहन्त और सर्वज्ञ हुए। वह दशा हुई जिसमें से, वह स्वयं ध्रुव परमात्मा स्वयं है। आहाहा! **मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो परमात्मा का स्वरूप...** निज। **उसको लक्षता...** है। कौन? वह ज्ञान। उसका लक्ष्य करावे। वहाँ... वहाँ... वहाँ... जो है, वह वहाँ है। आहाहा! उसे दिखावे। **देखता...** है ज्ञान उसे। और **ध्यान करता हुआ उस लक्ष्य को प्राप्त करता है।** उसका ध्यान करते-करते स्वयं परमात्मा हो जाता है। पर्याय में परमात्मा हो जाता है। परमात्मस्वरूप अन्दर है, उसका लक्ष्य करते, देखते, ध्यान करते हुए परमात्मा हो जाता है। बहुत सरस बात है। सेठ! आहाहा!

बाहर का व्यवहार होता है। वह न हो तो उसे शुभभाव... परन्तु वह शुभभाव कोई ध्येय नहीं। वह कोई प्राप्त करने की चीज़ नहीं। समझ में आया? बीच में आवे, इससे व्यवहार आवे, वह बन्ध का कारण होता है। व्यवहार है, वह सब बन्ध का कारण है। आवे सही, पूर्ण न हो, तब तक (आवे) परन्तु वह कोई चीज़ ध्येय है और उसका प्रयोजन उसमें से प्राप्त होता है आत्मा का, वह चीज़ नहीं। अपने परमात्मदशा की प्राप्ति का प्रयोजन तो द्रव्य के ध्येय से प्राप्त होता है। आहाहा! गिरधरभाई! आहाहा! विनय

करके पूछा, तब गुरु ने ऐसा कहा उसे। विनय किया, तब उसने ऐसा बतलाया कि तेरा नाथ अन्दर पूर्णानन्द प्रभु है, वहाँ तेरी नजर कर। तेरे ज्ञान को वहाँ जोड़, श्रद्धा को जोड़, ज्ञान को जोड़ और स्थिरता कर। आहाहा! देखो, यह मार्ग वीतराग परमेश्वर का, वीतराग परमेश्वर होने को। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है। उसे चाहे जिस प्रकार से कहे, सूक्ष्म पड़े या कैसे, परन्तु वस्तु तो यह है। अर्थात्? कि जिसे धर्म अर्थात् सुखी, सुखी होना है। धर्म करने का अर्थ कि सुखी होना इसका अर्थ। दुःखी तो हो रहा है अनादि काल से। पुण्य और पाप के भाव करे, वह तो दुःख का रास्ता है। आहाहा! वह दुःख का पंथ है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोगवासना, वह पापरूपी दुःख का पंथ है और दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का भाव पुण्यरूपी संसार का पंथ है वह। उसमें से जिसे सुखी होना हो तो उसकी श्रद्धा, ज्ञान और सुख पड़ा है त्रिकाल में, वहाँ जोड़ दे। ऐसी बात है। तंबोली! क्या है इसमें कुछ पैसा-बैसा में से तो कुछ आता नहीं सब। पुण्य में भी सुख नहीं, ऐसा कहा। राग की मन्दता का शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, वह शुभभाव, उसमें भी कुछ सुख नहीं, वह तो दुःख है, राग है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** सुख नहीं कहता कोई। सुख के साधन हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल में भी साधन नहीं। सुख के साधन दुःख होगा? शुभभाव तो दुःख है। वह सुख का साधन दुःख होगा?

**मुमुक्षु :** परम्परा कारण।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परम्परा कारण माने, वह मूढ़ है—ऐसा कहते हैं। लिखा है उसमें, हों! अध्यात्म पंचसंग्रह। उसने लिखा है। उसे—शुभ को परम्परा माने, मूढ़ है। राग कारण हो, वह परम्परा कहा, वह तो दूसरी अपेक्षा से (कहा है)। अभाव करेगा, अभाव किया है दृष्टि में। किया है और अशुभ टला है और शुभ रहा है उसे टालेगा और स्थिर होगा। आहाहा! वीतराग का मार्ग तो अलौकिक मार्ग है। आहाहा! लौकिक के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं। समझ में आया? जिसे सत्रूप से प्रभु आत्मा है। सत् का सत्त्व सत्य है जिसका स्वरूप। वह सुखरूप सत्य है। उसका जिसे सत्यरूपी सुख की प्राप्ति करनी हो तो उसका तो मार्ग यह एक है। जहाँ पूर्णरूप से सुख पड़ा है, उसे ध्येय बना, उसे ज्ञेय बना, उसे ध्यान का विषय कर। आहाहा! उसकी अभी श्रद्धा

की खबर न हो, वे सब कहाँ जायेंगे ? आहाहा ! वे सब अवतार पूरा होकर बापू ! वहाँ कोई मौसीबा नहीं बैठी वहाँ। आहाहा ! वहाँ भी नरक और निगोद में अवतरेगा। समझ में आया ? चौरासी की महा पाट महा भवसागर पड़ा है।

जिसे आत्मा के ध्येय की, ज्ञेय की, ज्ञान की, उसके ध्येय की, ज्ञान की खबर नहीं, जिसे उसकी ओर के परमात्मस्वरूप की श्रद्धा की खबर नहीं। वह महाप्रभु है, उसकी श्रद्धा, उसका विश्वास जिसे आया नहीं। उसका विश्वास राग और संयोग और पर्याय में पड़ा है। आहाहा ! गजब बात करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने तो गजब किया ! बोधपाहुड़ में ज्ञानस्वरूप डाला। भगवान ! ज्ञान तो हम उसे कहते हैं, कहते हैं, परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव की वाणी में ऐसा आया है, भाई ! कि ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो ज्ञान लक्ष्य जो मोक्षमार्ग में किया, उसे अधिक लक्ष्य में जोड़ दे, उसे ज्ञान कहते हैं। ऐई ! आहाहा ! फिर भले थोड़ा ज्ञान हो, परन्तु वह ज्ञान हो ध्येय को पकड़ने के लिये। विशेष हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा ! यह वीतराग अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की ध्वनि में यह उपदेश आया था। समझ में आया ?

भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आहाहा ! सीमन्धर भगवान विराजते हैं, महाविदेह में विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, अरबों वर्ष से है, अरबों वर्ष अभी रहेंगे। उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले गये थे। संवत् ४९। अरे ! ऐसा विश्वास कहाँ से लाना ? वह क्षेत्र है, वहाँ वीतराग विराजते हैं, सर्वज्ञ है। उन्हें सुनने, उनके दर्शन करने गये थे कुन्दकुन्दाचार्य। ( भगवान का) पाँच सौ धनुष का देह है और यह तो चार हाथ ऊँचे। वहाँ से आकर भगवान की बात जो अन्दर में अनुभव में आयी थी, वह बात यहाँ आलेखित की है। आहाहा ! भाई ! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि तेरे ज्ञान में वह ज्ञान होना चाहिए कि जो ज्ञान परमात्मस्वरूप अपना, उसे पहुँचे, उसे पकड़े, उसे लक्ष्य में ले, उसे ध्येय बनावे, उसे ज्ञेय बनावे, उसके ध्यान का विषय करे, उसे ज्ञान कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग बापू ! धर्म का मार्ग कोई अलौकिक है, भाई ! साधारण रीति से ऐसे खाना, पीना, पैसा खर्चना....

कोई कहता था अभी कल। वे यात्रावाले आये थे न ! अन्दर जाये उसे तिलक

करके रुपया दे। दे वह तो देते हैं न। उसमें कुछ... वह हो जाये कि आहाहा! भारी धर्म! बापू! वह धर्म नहीं, भाई! वह धर्म का ध्येय नहीं और वह धर्म भी नहीं। आहाहा! धर्म ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय, उसका ध्येय तो द्रव्यस्वरूप वस्तु है। आहाहा! वह ज्ञान उसे लक्ष्य करावे, दिखावे, उसका ध्यान करावे, उसका नाम ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! देखो, यह वीतरागमार्ग का ज्ञान। आहाहा!

**भावार्थ :- ज्ञान पुरुष के होता है...** भावार्थ उस ओर। आहाहा! कहो, हिम्मतभाई! यह सब लोहे के व्यापार यह सब ऐसा भारी सूक्ष्म पड़े। अब एक ओर कहते हैं कि विनय करना। पहले आ गया था न! महापुरुष, ज्ञानी, धर्मात्मा, सन्तों का वात्सल्य करना, प्रेम करना, पूजा करना, सर्व प्रकार से पूजा करना। परन्तु वह पूजा जिसकी करे, वे ऐसा कहते हैं। सेठ! आहाहा! यह तेरा शुभ विकल्प है न सुनने में, शुभ विकल्प है न विनय में, परन्तु वह तुझे इस विकल्प में ऐसा सुनाते हैं। तुझे साधना है, वह तो अन्दर वस्तु है, उसे साधना है। तुझे, मुझे साधना नहीं। आहाहा! धर्मचन्दभाई! ऐसा मार्ग है, भगवान! क्या करे? अरेरे! मार्ग को नोंच डाला, सत्य को झूठा ठहराते हैं, झूठे को सत्य ठहराते हैं। अरेरे! भाई! वीतराग मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! जिसका विनय किया, वह धर्मात्मा ऐसा कहते हैं, तेरा परमात्मा अन्दर ध्रुव है, प्रभु! उसमें तू जा। आहाहा! हमारे सामने देखना रहने दे। आहाहा! मुख के सामने ग्रास किसे न सुहावे? लोग नहीं कहते कि... भगवान तो कहते हैं कि हमारे सामने देखना (रहने दे), हम तुझे सुनाते हैं कि तेरे सामने तू देख अन्दर। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग तो यह है। समझ में आया?

**ज्ञान पुरुष के होता है...** पुरुष अर्थात् आत्मा। **और पुरुष ही विनयवान होवे...** जो आत्मा धर्मात्मा का विनयवान हो। समझ में आया? श्रीमद् में आता है न कि 'सद्गुरु उपदेश... पाम्यो ज्ञान।' आता है न? यह तो और वह। यह तो उस स्तवन में आता है। ज्ञान 'मूल मारग सुन लो जैन का रे।' उसमें। उन सद्गुरु ने ऐसा कहा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तुझे धर्म की दशा और शान्ति और सुख निकालना है, वह खान तो तू अन्दर है। उसकी खान कहीं हम नहीं हैं। आहाहा! जो तुझे आनन्द निकालना है—आनन्द प्रगट करना है, शान्ति चाहिए है, सुख चाहिए है, अनाकुल

आनन्द की खान, वह तू स्वयं है, उसमें तू जा। आहाहा! दुनिया को भूल जा। भगवान को याद कर अन्दर में। यह भगवान आत्मा, हों! आहाहा! समझ में आया?

**ज्ञान पुरुष के होता है और पुरुष ही विनयवान होवे, सो ज्ञान को प्राप्त करता है,...** क्योंकि वह ज्ञान सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ और मुनियों ने साधा हुआ, उसका विनय करे, वह ज्ञान उसे दे यह कि तेरा ज्ञान है, उसे पकड़, उसे हम ज्ञान कहते हैं। आहाहा! हमको पकड़, उसे ज्ञान नहीं कहते—ऐसा कहते हैं। आहाहा! निःस्पृह वीतरागभाव है। इसमें कहाँ वहाँ... आहाहा! नवनीतभाई! ऐसी बातें हैं। भाई! तू कहाँ अपूर्ण और विकारी है? तू पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण स्वभाव से भरपूर प्रभु तू है। वह तुझे विश्वास नहीं आता। इसलिए जहाँ-तहाँ व्यर्थ प्रयास करेगा। यहाँ मिलेगा... यहाँ से मिलेगा। जिसमें होगा उसमें से मिलेगा। नहीं है, उसमें से कहाँ से मिलेगा? आहाहा! देखो, कुन्दकुन्दाचार्य ने ज्ञान वर्णन करके गजब किया है! भाई! ज्ञान उसे कहते हैं कि जो ज्ञान द्रव्य का ध्यान करावे, द्रव्य का लक्ष्य करावे, द्रव्य को देखे। हमको भगवान कहते हैं कि जो ज्ञान हमको भूल जाये और तेरे भगवान को देखे, उसे हम ज्ञान कहते हैं। आहाहा! यह परलक्ष्यी ज्ञान का तो अभिमान टल जाये, उसमें से कुछ सब। आहाहा! इतना जाना, इतना आता है, इतना आया। क्या आया, बापू? आहाहा! भाई! तुझे तेरी खबर नहीं। ऐसे शास्त्र के पठन किये और उस जाति का भले यथार्थ हो, वह ज्ञान का जानपना उसका। परन्तु उस जानपने का परलक्ष्यी का अभिमान (कि) हमको आता है, हम जानते हैं। हम कुछ जाननेवाले हैं, हमको तुम परखो। हम जाननेवाले हैं, ऐसी तुम हमको कुछ महत्ता दो। भाई! उसकी कुछ कीमत नहीं। ऐई! सेठ! कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं, देखो न! आहाहा!

भाई! तेरे ज्ञान में ज्ञेय तो चैतन्य प्रभु होना चाहिए। उस ज्ञान का हम ज्ञेय नहीं। आहाहा! यह उसका प्रयोजन कहते हैं। समझ में आया? वह आता है न, भाई? मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं? वह आता है। कारणविपर्यास नहीं आता? उसमें एक आता है कुछ। कितने में है? सातवें में? कारणविपर्यास। उसके नीचे आता है। चौथे में, हों! चौथे में न? चौथा। सातवाँ नहीं। चौथे में, हों! मिथ्याज्ञान का स्वरूप। उसमें कारण विपर्यास आता है न? विपरीत भेदाभेद। उसके नीचे। ***मिथ्यादृष्टि किसी काल में किसी***

***पदार्थ को सत्य भी जाने तो भी उसके निश्चयरूप निर्धार से श्रद्धानसहित नहीं जानता, इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते अथवा सत्य जाने तो भी उसके द्वारा अपना अयथार्थ प्रयोजन साधता है...*** आहाहा! **इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते।** गजब बात! जिस ज्ञान द्वारा दुनिया से दिखाव, मान लेना चाहता है, वह ज्ञान उसका भले सच्चा हो। सच्चा अर्थात्? कहेंगे वह। तथापि... आहाहा!

***उसके द्वारा अपना अयथार्थ ही प्रयोजन साधता है, इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं।*** चौथे में, हों! मिथ्यादृष्टि के... ओहोहो! मोक्षमार्गप्रकाशक। हजारों बोल कंधा पकड़कर रखे हैं, हों! आहाहा! यह बैठता नहीं मोक्षमार्गप्रकाशक। ...भाई!

**मुमुक्षु :** ... बीस पंथ ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पंथ की कहाँ बात है? आत्मपंथ की बात है। यह.... आहाहा!

**मुमुक्षु :** तेरापंथी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसी मुफ्त की वस्तु पक्ष की मान ले। सत्य को खोटा करना, ऐसा कुछ हो। उसमें ऐसी... बात रखी है कठिन।

कहते हैं, ***जैसे किसी काल में वह मतवाला पुरुष माता को माता अथवा स्त्री को स्त्री जाने तो भी उसे निश्चयरूप निर्धार द्वारा श्रद्धानपूर्वक जानना नहीं होने से उसे यथार्थ ज्ञान नहीं कहते; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि किसी काल में किसी पदार्थ को सत्य भी जाने तो भी उसके निश्चयरूप निर्धार से श्रद्धानसहित जानता नहीं...*** एक बात। ***सत्य जानता है तो भी उसके द्वारा अपना अयथार्थ ही प्रयोजन साधता है, इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते।*** देखा! कितनी बात कही! यह यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहना चाहते हैं, वह यहाँ कहते हैं। लो! उसमें क्या है, सत्य कहता हो, लड़का कहता हो तो मानना, उसमें क्या? सत्य है या नहीं?

**भावार्थ :- ज्ञान पुरुष के होता है और पुरुष ही विनयवान होवे, सो ज्ञान को प्राप्त करता है, उस ज्ञान द्वारा ही शुद्ध आत्मा का स्वरूप जाना जाता है,...** लो! यह ज्ञान उसे कहते हैं, जिससे शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा जानने में आवे। आहाहा!

जिसकी कीमत करनेयोग्य है, उसकी कीमत ज्ञान करे तो उसे सच्चा ज्ञान कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरेरे! जीवन, इस तत्त्व को समझे बिना ऐसा का ऐसा पशु जैसा जीवन है। भले विद्वता विशेष न हो, परन्तु यह मूल प्रयोजन जो ज्ञान साधता है, कहते हैं कि उससे वह केवलज्ञान लेगा। आहाहा! क्योंकि जिस ज्ञान ने ध्रुव को ध्येय किया है, उसमें केवलज्ञान पर्याय पड़ी ही है। जिस ज्ञान ने उसे आधीन किया कि यह वह मैं, उसमें से पर्याय केवलज्ञान की प्रगट हुए बिना रहनेवाली ही नहीं है। उसे केवलज्ञान होने को अल्प काल में उसे केवलज्ञान होगा। आहाहा! समझ में आया? जिसने साधने का (साध्य) आत्मा को पकड़ा है और उसमें साधन नामक गुण भी उसमें पड़ा है। व्यवहार साधन है, वह साधन तो (कथनमात्र)।

**शुद्ध आत्मा का स्वरूप जाना जाता है, इसलिए विशेष ज्ञानियों के विनय द्वारा...** देखो! जो विशेष ज्ञानी धर्मात्मा हो, मुख्य तो मुनि की बात है न! यहाँ परम्परा वे चले आते थे और उनकी बात लेनी है मुनि को, हों! आचार्य को कहने का आशय है। ...स्वच्छन्द को करो, वह नहीं। भगवान का मार्ग छोड़कर पर से लाभ होगा, ऐसी बातें करो, वह नहीं। **विशेष ज्ञानियों के विनय द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करनी, क्योंकि निज शुद्धस्वरूप को जानकर...** क्योंकि वे मुनि धर्मात्मा सच्चे सन्त तुझे ऐसा कहेंगे कि भाई! तुझे तो तेरे ध्रुवस्वरूप को साधना है। आहाहा! तुझे राग भी साधना नहीं, हमको भी साधना नहीं। एक समय की पर्याय को साधना नहीं। आहाहा! इस प्रकार यह विनय करनेवाले पुरुष को वे धर्मात्मा उसे ऐसा बतलायेंगे। भाई! तेरे ज्ञान में शुद्धस्वरूप आवे।

**शुद्ध स्वरूप को जानकर मोक्ष प्राप्त किया जाता है।** आहहा! **यहाँ जो विनयरहित हो,...** इन्होंने स्वयं स्पष्टीकरण किया। श्वेताम्बर की बात है। बहुत कठिन काम। श्वेताम्बर पंथ निकला, वह वीतराग के मार्ग से विरुद्ध होकर निकला। ऐसा मार्ग भगवान... आहाहा! उसमें से यह स्थानकवासी निकले। बापू! यह मार्ग तो ऐसा है। वीतराग परमेश्वर ने तो जो कहा, वह मार्ग तो दिगम्बर धर्म है। समझ में आया? और उसमें इस ध्येय को पकड़ने की बात प्रभु ने कही है। आहाहा! वे सन्त उसे साधते हैं और उसका साधन और साधने के लिये वे कहते हैं कि तेरी वस्तु में जा, भाई! आहाहा!

तेरा प्रभु अन्दर विराजता है। भाई! तुझे भरोसा नहीं आया। आहाहा! तुझे भरोसा में, विश्वास में बैठता नहीं। एक बीड़ी बिना चले नहीं, इसके बिना चले नहीं, ऐसे को कहते हैं। परन्तु तीन लोक का नाथ प्रभु तू साक्षात् भगवान। आहाहा! प्रगट पुरुषोत्तम परमात्मा स्वयं है। भाई! उसके ऊपर ज्ञान को जोड़ दे। आहाहा! ऐसी करुणा के शब्द सन्तों के जगत को प्रसिद्ध करते हैं। भाई! आहाहा! उन्हें कुछ लेना है? देना है? वह तो सम्पूर्णत: ऐसा कहते हैं कि तेरे सन्मुख देख। हमारे सन्मुख विनय करके खड़ा है, वह वहाँ जा। हम तुझे ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**इसलिए विशेष ज्ञानियों के विनय द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करनी, क्योंकि निज शुद्धस्वरूप को जानकर...** देखा, यहाँ 'निज' आया, शब्द रखा। उसमें निज शब्द कहा था न? परमात्मा का स्वरूप, उसको लक्ष्य में देखता है, ऐसा था। वह निज नहीं था तो कोई ले ले वह परमात्मा, इसलिए यहाँ स्पष्टीकरण किया। **निज शुद्ध स्वरूप को जानकर...** वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है, भाई! तुझे बात नहीं बैठती। आहाहा! वह राग का एक कण जहाँ आवे, वहाँ तुझे ऐसा हो जाये कि आहाहा! शुभराग कुछ आया तो इसे हो जाये कि मैंने किया। भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! उस राग में आत्मा एकाकार होकर रहा है, वह तो उसमें लूट पड़ी है इसे। वह आत्मा का वहाँ खून हो जाता है। वहाँ राग में तुझे प्रसन्नता आ जाती है। आहाहा! हमने यह दया पालन की, व्रत पालन किये, तपस्या की। क्या है? भगवान! आहाहा! भाई! तुझे तेरी महत्ता की खबर नहीं। तेरी महिमा कितनी और कैसी है, यह तुझे खबर नहीं। वह महिमा परमात्मा की वाणी में (आयी और) सन्त यह कहते हैं इसे। समझ में आया?

कन्या अच्छे घर से आती हो, उसे एक ही पुत्री हो, करोड़ की पूँजी हो, और कहे विवाह के समय पच्चीस लाख दूँगा और ७५ लाख पड़े हो, ...६० वर्ष की उम्र है। लड़की बीस वर्ष की है। वह बाद में वह लेकर आयेगी। आहाहा! उसे लो, कहते हैं, लड़की को। वह बाद का वह उत्तराधिकार अपने को सब मिलेगा। कहते हैं कि यह भगवान में उत्तराधिकार पड़ा है न प्रभु तुझे। अभी दृष्टि कर तो शान्ति मिले और पूर्ण शक्ति है, वह तुझे प्राप्त होगी। आहाहा! समझ में आया? सब वह लेकर आयेगा आत्मा। दाता आत्मा है न। आहाहा! तेरी पर्याय में पूर्णता लेकर आयेगा, भाई! तुझे। आहाहा!

उसके साथ लगन लगा न! वहाँ लगनी लगन कर न! आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें आयी है।

यह कथा हो। एक राजा ऐसा था, रानी ऐसे थी। उसको समझायी ... प्रसन्न हो जाये। बापू! वे सब विकथायें हैं। आहाहा! धर्मकथा तो, जिसमें से वीतरागता प्रगट हो ऐसा जो वीतरागस्वरूप, उसका आश्रय करावे, ऐसी कथा को धर्मकथा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

**निज शुद्ध स्वरूप को जानकर मोक्ष प्राप्त किया जाता है। यहाँ जो विनयरहित हो,...** आहाहा! और **यथार्थ सूत्रपद से चिगा हो,...** सर्वज्ञ के सिद्धान्त जो थे, उसमें से श्वेताम्बर ने भ्रष्ट होकर दूसरे शास्त्र बनाये। उसकी बात है, भगवान! किसी को दुःख हो, उस बात की बात नहीं। यह तो सत्यस्वरूप की बात है। समझ में आया? क्योंकि उन लोगों का पूरा ध्येय ही व्यवहार का। व्यवहार, वह समकिती। आता है न, भाई! यशोविजय कहते हैं न विशेष आवश्यक में। विशेष आवश्यक में ऐसा कहते हैं कि व्यवहारी वह समकिती। इसलिए उनका ध्येय ही पर के ऊपर है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

अरेरे! मार्ग ऐसा अलग प्रभु तेरा। आहाहा! दुनिया के साथ—सम्प्रदाय के साथ कहीं मिलान (खाये ऐसा नहीं)। जैन के भेद पड़े, उनके साथ मिलान खाये नहीं तो अन्य के साथ तो कहाँ से हो, भाई! यह तो वीतरागता है यह तो। आहाहा! गजब काम है। एक श्लोक यह ज्ञान का।

**चिगा हो, भ्रष्ट हो गया हो, उसका निषेध जानना।** उसका यह निषेध किया है। सत्य सिद्धान्त से भ्रष्ट होकर सम्प्रदाय निकाला, उसका यहाँ निषेध किया है। उसका ज्ञान भी सच्चा नहीं, उसकी श्रद्धा सच्ची नहीं, उसका ध्येय सच्चा नहीं, उसे चारित्र नहीं और उसे समकित भी नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - २३

**आगे इसी को दृढ़ करते हैं :—** लो, यह ५५ मिनिट हुए। गाथा ऐसी थी न। लोग नहीं कहते कि ननिहाल में विवाह और माँ परोसे। समझ में आया? नहीं समझते? मामा-ननिहाल होता है न, क्या कहलाता है वह? मोसाळ। यह तो अपनी भाषा। उनकी भाषा कहाँ है? यह तो कही पहले। ननिहाल में विवाह हो और उसमें अपनी माँ परोसती हों। जीमावे भानेज को। कमी क्या? तो उसमें होगा या नहीं तुम्हारे? आहाहा! एक तो भगवान की वाणी और प्रिय, अब उसमें परोसने में क्या बाकी हो?

**आगे इसी को दृढ़ करते हैं :—**

**मइधणुहं जस्स थिरं, सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं।**
**परमत्थबद्धलक्खो, णवि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स॥२३॥**

यह देखो! यहाँ आया वापस। आहाहा! अरे! ऐसी बातें सुनने को मिले, वह भी भाग्य हो उसे मिले। यह तो तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर किसे कहते हैं, भाई! आहाहा! उनकी वाणी क्या कहती है? वह यथार्थ। कान में पड़ने के लिये भी भाग्य चाहिए है।

**अर्थ :- जिस मुनि के...** मुनि-धर्मात्मा। **मतिज्ञानरूप धनुष स्थिर हो,...** धनुष होता है न ऐसे बाण। स्थिर ऐसा। वह **मतिज्ञानरूप धनुष स्थिर हो, श्रुतज्ञानरूप गुण...** डोरी। ऐसे डोरी होती है न डोरी ऐसे बाँधी हुई। ऐसे कमान जैसा हो न कमान जैसा? ऐसे कमान जैसा वह धनुष कहलाता है और वह डोरी। जिसका मतिज्ञानरूपी धनुष स्थिर हो वापस और श्रुतज्ञानरूप गुण पर्याय **अर्थात् प्रत्यंचा हो,...** अर्थात् डोरी हो। जिसे श्रुतज्ञान की डोरी हो। आहाहा! और **रत्नत्रयरूप उत्तम बाण हो...** मतिज्ञान वह धनुष; श्रुतज्ञान, वह डोरी और रत्नत्रय वह उत्तम बाण अन्दर। जिसके ऊपर मारना है, वह बाण रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। तीनों का ध्येय यह है, ऐसा कहना है। आहाहा!

**और परमार्थस्वरूप निजशुद्धात्मस्वरूप का सम्बन्धरूप लक्ष्य हो,...** परमार्थ-स्वरूप। आहाहा! उसमें उपयोग में आता है न उपयोग। अलिंगग्रहण। कर्मग्रहण का

अभाव है, उसे उपयोग कहते हैं। जिस उपयोग में कर्मग्रहण का अभाव है। ११वाँ बोल है। उसका अर्थ यह है कि उसे कर्म का सम्बन्ध ही नहीं, ऐसा। है उसमें। उसके अर्थ में ऐसा है। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं न? उसका उसमें ११वाँ बोल है कि जो अपना उपयोग है, वह कर्मग्रहण का उसमें—उपयोग में अभाव है। अर्थात् ज्ञान का परिणाम जो है, उसे कर्म ग्रहना अर्थात् उसे कर्म का सम्बन्ध ही नहीं। आहाहा! जो ज्ञान का उपयोग है, वह उपयोग तो ध्येय को पकड़ना है उसने। अबन्धस्वरूपी को पकड़ा है। इसलिए उस उपयोग के साथ कर्म का सम्बन्ध है ही नहीं। समझ में आया? और कर्म का सम्बन्ध नहीं इसलिए वह उपयोग कर्म को ग्रहण करता ही नहीं। आहाहा! जिस ज्ञान ने आत्मा को पकड़ा, वह कर्म ग्रहण कैसे करे? यह ग्रहण किया है, वह यह भी कैसे ग्रहे? आहाहा! अलिंगग्रहण में है। समझ में आया?

है न (प्रवचनसार, गाथा) १७२ **द्वारा अर्थात् उपयोग नाम के लक्षण द्वारा लिंग ग्रहण अर्थात् पौद्गलिक कर्म का ग्रहण जिसे नहीं है, वह अलिंगग्रहण है। इस प्रकार आत्मा द्रव्यकर्म से असंयुक्त असम्बद्ध है। ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।** ओहोहो! जिस ज्ञान उपयोग ने उसे पकड़ा है, उस ज्ञान उपयोग को कर्म ग्रहण नहीं, कर्म का सम्बन्ध ही नहीं। समझ में आया? उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मगसिर कृष्ण ८, सोमवार, दिनांक-१७-१२-१९७३**
**गाथा - २३, २४, २५, प्रवचन-७०**

यह मागसर कृष्ण ८, गिनती पौष शुक्ल ८। इन्होंने शासन को टिका रखा आचार्य पद से। आहाहा! उनकी कथन शैली... भगवान के पास गये और आचार्यपद में थे। उन्होंने यह शास्त्र रचे। उनकी यह आचार्य की आरोहण तिथि है। उन्होंने भरतक्षेत्र पर बहुत उपकार किया है। जिनका ऐसा साहित्य जैनदर्शन में अलौकिक रीति से प्रसिद्धि और प्रशंसा को प्राप्त है, ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सनातन जैनधर्म के मुखिया तीर्थ के नायक थे वे। भगवान तो तीर्थनायक थे ही वे, परन्तु इन्होंने तीर्थ के नायक ऐसा काम इन्होंने पंचम काल में पंचम काल की अपेक्षा से तीर्थंकर जैसा काम किया है। आज समयसर आये। व्याख्यान चालू होता है।

आज कुन्दकुन्दाचार्य की आचार्य आरोहण की तिथि। समझ में आया? वे जैनशासन के स्तम्भ हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने जो मार्ग कहा, उस मार्ग को प्रसिद्धि में लानेवाले मुख्य कुन्दकुन्दाचार्य हैं। क्योंकि 'मंगलं भगवान वीरो' उसमें पहले भगवान आये। 'मंगलं गौतमोगणी'। गौतमस्वामी, पश्चात् 'मंगलं कुन्दकुन्दार्य' आये। उन्होंने जो काम किया, वह तो जिसे उस जाति के अनुभव की दृष्टि हो तो खबर पड़े कि इन्होंने क्या कहा और कैसा कहा है। ऐसा मार्ग जैनदर्शन का सनातन वीतराग दिगम्बर दर्शन को उज्ज्वल करनेवाले वे हों, वह कुन्दकुन्दाचार्य है। समझ में आया? उनकी यह स्वर्गारोहण तिथि नहीं, परन्तु आचार्य आरोहण तिथि है। आचार्यपद की प्राप्ति हुई है। लगभग ३३ वर्ष में, ऐसा कोई कहते हैं। ३३ वर्ष में आया था। फिर भगवान के पास गये थे। साक्षात् स्वदेह से। आठ दिन वहाँ रहे थे। छोटा देह और वहाँ पाँच सौ धनुष का देह है। भगवान विराजते हैं अभी तीर्थंकर परमात्मा। चक्रवर्ती ने पूछा था, यह कौन है यह? पतंगिया जैसा मनुष्य। पतंगिया जैसा मनुष्य। (ये) चार हाथ का और (वे) पाँच सौ धनुष—दो हजार हाथ। भगवान कहते हैं कि यह भरतक्षेत्र के धर्म के तीर्थ के प्रवर्तक आचार्य हैं। उन्होंने कहा हुआ मार्ग, वह दिगम्बर में सनातन सत्य प्रवाह चला आता है।

उसमें से श्वेताम्बर बाद में निकले। भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य से पहले १०० वर्ष पहले निकल गये। सत्य से विरोध करके दृष्टि विपरीत हुई, तब श्वेताम्बर पंथ अलग पड़ गया। उसमें स्थानकवासी बाद में निकले अभी ५०० वर्ष (पहले)। तेरापंथी तुलसी तो अभी २०० वर्ष (पहले निकले)। सब सनातन वीतराग जैनदर्शन से सब हट गये। मार्ग यह है, भाई! इस मार्ग को टिकानेवाले भगवान इस पंचम काल में कुन्दकुन्दाचार्य हैं। भाग्य हो, उसे ऐसी वाणी कान में पड़े ऐसी बात है। आहाहा! उन्होंने जो पंचम काल में काम किया है और टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य पंचम काल के तीर्थंकर के गणधर जैसा काम किया है। आहाहा! जहाँ आत्मा का दीपक प्रकाश में लाये कि ऐसा आत्मा है, भाई! वह अखण्डानन्द पूर्ण शुद्ध चैतन्य पिण्ड भगवानस्वरूप आत्मा है। आहाहा! उस आत्मा को साधने के लिये सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र चाहिए। वह भी परमात्मा ने कहा हुआ वह (चाहिए)। अज्ञानियों ने जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की कल्पनायें की हैं, वह नहीं।

यह अपने ज्ञान की व्याख्या चलती है। उन्होंने जो ज्ञान बताया, वह कैसा ज्ञान होता है? ऐसा कहते हैं। **धनुष की सब सामग्री यथावत् मिले, तब निशाना नहीं चूकता है,...** भावार्थ। २३वीं गाथा का भावार्थ। यह तो अमृतवाणी है, भाई! यह कोई कथा नहीं। भाई! भगवान की भक्ति करो, पूजा करो, दया करो, यह करो, तुम्हारा कल्याण होगा। यह वाणी भगवान की नहीं। भगवान का कहा हुआ ज्ञान, वह ज्ञान ऐसा होता है, कहते हैं। जो परम्परा आचार्य हुए कुन्दकुन्दाचार्य आदि आचार्य, उनके पास से जो विनय करके ज्ञान प्राप्त किया हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। अपनी कल्पना से शास्त्र रचे और उन्हें जाना और बातें कीं, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, उन धर्मात्मा के पास में ज्ञान की सब सामग्री होती है। **वैसे ही मुनि के मोक्षमार्ग की यथावत् सामग्री मिले, तब मोक्षमार्ग से भ्रष्ट नहीं होता है।** कुन्दकुन्दाचार्य आदि आचार्यों के पास जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र था, ऐसा जिसे ज्ञान हुआ मुनि को और उस ज्ञानवन्त ने ध्येय में आत्मा लिया मोक्षमार्ग से। ऐसे सामग्रीवाले मुनि मोक्षमार्ग से भ्रष्ट नहीं होते। दूसरे भ्रष्ट हो गये, ऐसा कहना है, भाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! क्या करें? श्वेताम्बर पंथ पूरा निकला, वह जैनदर्शन से भ्रष्ट होकर निकला

है। बहुत कठिन काम! अभी साधारण को कभी धर्म की दरकार नहीं। आहाहा! ऐसे मार्ग से भ्रष्ट हो गये थे वे तो। तब कल्पित शास्त्र बनाये और देव, गुरु और धर्म का स्वरूप सब कल्पित बनाया। वह यहाँ कहते हैं कि जिसके पास धर्म था, ज्ञान था, ऐसे दिगम्बर सन्त, उनके पास से जो ज्ञान प्राप्त किया हो, वह ज्ञान मोक्षमार्ग को यथार्थ साधता है। उस ज्ञान के बिना मोक्षमार्ग से भ्रष्ट हो जाये।

**उसके साधन से मोक्ष को प्राप्त होता है। यह ज्ञान का माहात्म्य है,...** आहाहा! **इसलिए जिनागम के अनुसार...** देखो! सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो शास्त्र कहे, वे कुन्दकुन्दाचार्य ने रचे। उस **जिनागम के अनुसार सत्यार्थ ज्ञानियों का विनय करके...** वे सच्चे सन्त दिगम्बर मुनि थे। अनादि सनातन प्रवाह वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का प्रवाह दिगम्बर सन्तों ने रखा था। उनके पास से विनय करके जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया, वे जिनागम के अनुसार सच्चे ज्ञानी **विनय करके ज्ञान का साधन करना।** ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य आदि ने जो कहा, उसका बहुमान करके, विनय करके वह ज्ञान प्राप्त करना। कहो, समझ में आया? बहुत कठिन बात, भारी सूक्ष्म! जगत से अलग मार्ग, यह मार्ग सुनने को भी इसे नहीं मिलता। बाहर की बातों में, वह भी भगवान कैसे हों, उसकी जिसे खबर नहीं।

**ज्ञान का साधन करना।** लो! **इस प्रकार ज्ञान का निरूपण किया।** क्योंकि जो ज्ञान सत्यार्थ हो, वह सम्यग्दर्शन को साधे अथवा स्वरूप के ध्येय को पकड़कर सच्चा ज्ञान वह हो तो उसे—आत्मा को पकड़कर साधे। परन्तु जिसके ज्ञान में ही खोटापन है, सिद्धान्त से विरुद्ध है, वह ज्ञान आत्मा को नहीं पकड़ सकता। सूक्ष्म बातें, भाई! चौरासी के अवतार (में) दुःखी होकर मर गया। उसे दुःख से मुक्त होने का उपाय जैनदर्शन ने—दिगम्बर दर्शन ने जो कहा, वह मार्ग है। आहाहा! उसने कहा हुआ ज्ञान, वह यथार्थ ज्ञान है और उस ज्ञान से आत्मा को साधकर मोक्ष साधा जा सकता है। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - २४

**आगे देव का स्वरूप कहते हैं :—** देव कैसे होते हैं ? आहाहा! अभी देव की भी जिसे खबर न हो। कहते हैं कि देव कैसे होते हैं ? और वह देव दे। वह देव धर्म दे, पुण्य दे, पैसा दे, भोग दे और मोक्ष दे। चारों ही दे। भाई! ऐसा साथ में होता है। वह जिसे सच्चे देव मिले, उसे सब धर्म मिले। उसे आत्मज्ञान मिले, उसे प्रव्रज्या मिले चारित्र अन्तर, उसे पुण्य ऐसा हो कि जो तीर्थंकरगोत्र आदि बाँधे ऐसा पुण्य उसे होता है। उसे धन, लक्ष्मी आदि सब होता है और भोग भी दूसरे को न हो, ऐसे उसे भोग होते हैं। ऐसा कहना है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** पुण्य का फल बताया धर्म का फल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दोनों हैं उसे। सच्चे देव के पास सच्चा ज्ञान, सच्ची प्रव्रज्या—सच्ची दीक्षा पाकर जिसने केवलज्ञान प्राप्त किया है, ऐसे परमात्मा त्रिलोकनाथ अरिहन्तदेव वे दुनिया को धर्म दे अर्थात् पुण्य भी दे। क्योंकि उन्होंने कहा हुआ मार्ग जो साधे, उसमें शुभभाव आये बिना नहीं रहता। उसे ही पुण्य कहते हैं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। तीर्थंकरपना या स्वर्ग का सर्वार्थसिद्धि का मिलना, वह सब ऐसे पुण्य समकिती के पुण्य हो और वह पुण्य स्वयं अरिहन्तदेव दे (अर्थात् कि) उन्हें पहिचाने और उन्हें माने, उसे वह मिले। समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो। २४ (गाथा)।

**सो देवो जो अत्थं, धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।**
**सो देइ जस्स अत्थि हु, अत्थो धम्मो य पव्वज्जा॥२४॥**

और ज्ञान दे उसका सब। आहाहा!

**अर्थ :- देव उसको कहते हैं जो अर्थ अर्थात् धन, धर्म,...** अर्थात् पुण्य। **काम अर्थात् इच्छा का विषय-ऐसा भोग और मोक्ष का कारण ज्ञान—इन चारों को देवे।** जो देव चार को दे, वह देव कहलाता है। आहाहा! जो भगवान त्रिलोकनाथ अरिहन्त देव ने कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। देव उसे कहते हैं कि जिसे पहिचाने, जिसके ज्ञान से उसे सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो, चारित्र हो, साथ में शुभभाव का पुण्य भी हो। तीर्थंकर हुए, वे शुभभाव से हुए। उन तीर्थंकर के अरिहन्त के मार्ग में ज्ञान में से हुए।

यहाँ ऐसा कहकर यह कहना है कि उत्तम पुण्य भी, धर्मी को तीर्थंकर के मार्ग में ही उत्तम पुण्य होता है। तीर्थंकरपना, बलदेवपना वह सब पुण्य वह सम्यग्दृष्टि सनातन दिगम्बर धर्म, उसका जो आश्रय करे, उस देव को जो माने, उसे ऐसे ऊँचे पद होते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**धर्म...** अर्थात् पुण्य है यहाँ। अर्थ-धन अर्थात् लक्ष्मी। जो अरिहन्तदेव, जिनके पास पूर्ण चारित्र और पूर्ण ज्ञान था, वह जिसे दे, उसे पुण्य भी होता है। पूर्ण वीतरागता न हो, वहाँ तो उसे पुण्य भी हाथ में आता है। ऐसा पुण्य आवे कि तीन लोक का नाथ तीर्थंकर हो। जिसे सौ इन्द्र पूजे। ऐसा पुण्य हो तो वह वीतरागमार्ग में होता है। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! यह सब पुण्य जो अभी का है, दो, पाँच करोड़, दस करोड़ रुपये धूल, वह तो साधारण पापानुबन्धी पुण्य है। वह पुण्य यथार्थ—वास्तविक पुण्य नहीं। आहाहा! कहो, सेठ!

**मुमुक्षु :** धूल है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल है, परन्तु वह धूल भी अच्छा पुण्य हो किसे? कि देव अरिहन्त को जो माने और पहिचाने उसे। समझ में आया? उन्होंने कहा हुआ जो आत्मा, उनका कहा हुआ जो मोक्ष का मार्ग, उसका जो ज्ञान दे, वह ज्ञान आत्मा लेनेवाले को पुण्य भी मिले, लक्ष्मी मिले, उस पुण्य के फलरूप से देव के पद और यह बड़े चक्रवर्ती के भोग भी उसे मिले। आहाहा! और मोक्ष भी उसे मिले। ऐसी व्याख्या की है। आहाहा!

**इन चारों को देवे। यहाँ न्याय ऐसा है कि जो वस्तु जिसके पास हो, सो देवे...** जिसके पास न हो, वह क्या दे? आहाहा! तीर्थंकर प्रभु के पास तो पुण्य का फल तीर्थंकरपद है। प्रव्रज्या का फल ज्ञान—केवलज्ञान है। भगवान के पास सब है। उन्हें जो पहिचाने और भगवान को माने, वह भगवान चारों ही दे, कहते हैं। पुण्य दे, मोक्ष दे, धन दे, भोग दे। ऐसी बुद्धि उसे—ज्ञानी को होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी रचना कुन्दकुन्दाचार्य (की) अलौकिक रचना है, देखो! जिसके पास हो वह दे। **जिसके पास जो वस्तु न हो, सो कैसे देवे?** आहाहा!

**इस न्याय से अर्थ,...** अर्थात् पैसा। चक्रवर्ती का राज भी समकिती—ज्ञानी को मिले। तीर्थंकरपद भी समकिती ज्ञानी को मिले। वह देव की कृपा और देव की अनुकूलता है। आता है न नियमसार में, नहीं? आपकी कृपा से। आपकी कृपा से सब है। व्यवहार की बात है। उसमें भी है अष्टपाहुड़ में। आहाहा! जिसने एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसे सर्वज्ञदेव, उन्होंने प्रव्रज्या-चारित्र अन्तर से जिसने केवलज्ञान प्राप्त किया, ऐसे भगवान तो सब देते हैं, कहते हैं। आहाहा! उन्हें माने और पहिचाने, उसे सब मिलता है। समझ में आया? आहाहा! उसे पूर्ण केवलज्ञान भी मिलता है और बीच में केवलज्ञान होने से पहले प्रव्रज्या भी होती है और उसके फलरूप से पुण्य बीच में आया हो, उसे तीर्थंकर और चक्रवर्ती पद भी मिलते हैं, उसके भोग भी उसे मिलते हैं। तथापि धर्मी तो उन भोगों को हेय जानता है, परन्तु मिलते हैं, इतनी बात लेनी है यहाँ तो। आहाहा!

लक्ष्मी और भोग को तो धर्मी हेय, जहर जानता है। आहाहा! अमृत का सागर परमात्मा स्वयं अन्दर है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु है। आत्मा अर्थात् अतीन्द्रिय अमृत के सागर से पूर्ण छलाछल भरा हुआ है। आहाहा! ऐसे आत्मा को जो बतावे भगवान, वह आत्मा को सब दे। आहाहा! ऐसा कहते हैं। उसे समकित दे, उसे ज्ञान दे, उसे चारित्र दे। फिर क्या मिले उसे? राज मिले, भोग मिले और मोक्ष मिले। समझ में आया? उसमें नहीं आता ॐकार बिन्दु में? कामदं मोक्षदं चैव। वह वस्तु बीच में पुण्य ऐसा आवे। ऐसे धर्मी को, हों! वीतराग की परम्परा से आया हुआ मार्ग....

**मुमुक्षु :** पुण्यानुबन्धी पुण्य।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पुण्यानुबन्धी पुण्य उसे होता है। ॐकार आता है न! ॐकार बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः कामदं मोक्षदं चैव। कामदं वह काम भी दे और मोक्ष भी दे। अर्थात्? कि जिसे भगवान के कहे हुए मार्ग का जहाँ अन्तर भान और ज्ञान हो कि प्रव्रज्या चारित्र अन्तर में होता है, उसे मोक्ष तो मिले, परन्तु बीच में ऐसे पुण्य उसे हो कि जिसे चक्रवर्ती और तीर्थंकर की पदवी के भोग मिले। समझ में आया? जिसे नवनिधान चक्रवर्ती के, वह सब पुण्य, वह सम्यग्दृष्टि को (होता है), वीतरागदेव उसे देनेवाले कहलाते हैं। अर्थात्? उन्हें माने, उन्होंने दिया—ऐसा कहा जाता है।

आहाहा! निमित्त से बात है न! समझ में आया?

**इस न्याय से अर्थ, धर्म, स्वर्गादिक भोग...** ऐसा। अर्थ अर्थात् पैसा। चक्रवर्ती की लक्ष्मी नवनिधान जिनकी सोलह हजार देव सेवा करें। तीर्थंकर, जिनकी सौ इन्द्र सेवा करें। ऐसी जो लक्ष्मी; अर्थ अर्थात् (लक्ष्मी)। वह धर्मात्मा को अरिहन्त देव दे। अरिहन्त देव दे अर्थात् अरिहन्त देव को जो माने, उसे वह मिले। आहाहा! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पुण्य हेय है, पुण्य का फल भी हेय है; परन्तु ऊँचा पुण्य और ऊँचे का फल मिले किसे? जिन्होंने—सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा कहा, उसका जिसे ज्ञान हो, उसकी जिसे प्रव्रज्या, चारित्रदशा हो, उसे यह सब मिले। आहाहा! समझ में आया? लो, आचार्य आरोहण की यह तिथि है। भगवान कहते हैं कि उसे पुण्य का आरोहण मिले, मोक्ष का आरोहण मिले, लक्ष्मी मिले, भोग मिले। आहाहा! परन्तु वह फिर ज्ञानी है न, इसलिए वह भोग को और पुण्य-लक्ष्मी को हेय जानकर स्वरूप में स्थिरता करके, चारित्र करके केवलज्ञान लेगा। आहाहा!

देखो **धर्म... अर्थ...** धर्म अर्थात् पुण्य और **स्वर्गादिक भोग...** ऐसा। स्वर्ग, चक्रवर्ती के राज्य जिसे अरबों रुपये की दैनिक आमदनी, ऐसे मनुष्यरूप से चक्रवर्ती आदि के भोग और **मोक्षसुख का कारण प्रव्रज्या...** वह भगवान दे, कहते हैं। भगवान यहाँ चारित्रदशा है, वह उसे समझावे, ऐसा कहते हैं। **मोक्षसुख का कारण प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा जिसके हो, उसको देव जानना।** और वह दीक्षा, उसे दे। आहाहा! स्वरूप की दृष्टि करके सम्यग्दर्शनपूर्वक अन्तर ध्यान में स्थिर-लीनता—ऐसी चारित्रदशा भगवान दे, ऐसा कहते हैं। और भगवान वह चारित्र लेकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए थे। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! दुनिया से पूरी लाईन अलग है यह तो। (दूसरे) सब भटकनेवाले रास्ते—मार्ग हैं। यह तो छूटने के मार्ग की बात है। आहाहा! दीक्षा... **उसको देव जानना।** लो! अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं।

★ ★ ★

## गाथा - २५

**आगे धर्मादि का स्वरूप कहते हैं, जिनके जानने से देवादि का स्वरूप जाना जाता है :—** २५वीं (गाथा)।

**धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।**
**देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं॥२५॥**

आहाहा! भव्य जीव का प्रगट उदय करनेवाले भगवान हैं। भव्य अर्थात् पात्र—लायक जीव को उदय करनेवाले भगवान हैं। अलायक—अभव्य जैसे को तो वह कुछ कर नहीं सकते। आहाहा!

**अर्थ :- जो दया वह विशुद्ध है, वह धर्म है,...** पुण्य का कारण। दया से किसी भी प्राणी को न मारना—ऐसी दया, ऐसा जो शुभभाव पुण्य, वह विशुद्धभाव है, पुण्यभाव है। विशुद्ध, वह धर्म है न, पुण्य की बात है यह। छह काय के जीव को न मारने का भाव, ऐसी दया है वह विशुद्ध है, शुभभाव। उसे धर्म कहते हैं। धर्म अर्थात् पुण्य। यहाँ धर्म का अर्थ पुण्य है। व्यवहार धर्म अर्थात् पुण्य। ऐसी वीतरागमार्ग में ऐसा विशुद्धभाव दया का होता है। और वह देव ने ऐसा किया था, वह दूसरे को बताया है। भगवान ने किया, वैसा कहा। किया, वैसा कहा। आहाहा! दया विशुद्ध धर्म छह काय के प्राणी को... एक भी वनस्पति का जीव, दाना, एक भी कण नहीं मारना, ऐसी जो दया विशुद्ध शुभभाव, वह पुण्य धर्म है। पुण्य अर्थात् धर्म।

**जो सर्व परिग्रह से रहित है, वह प्रव्रज्या हैं,...** यह भगवान ने कही हुई प्रव्रज्या। जिसे वस्त्र का धागा भी न हो। समझ में आया? वस्त्रसहित साधुपना तीन काल में नहीं हो सकता। समझ में आया? और वस्त्रसहित साधु हैं, ऐसा मानता है, उसे वीतरागमार्ग में मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कहा है। कठिन काम, भाई! कहो, ....भाई! है न? '**सव्वसंग**' '**संग**' शब्द वह परिग्रह है। वस्त्र-पात्र, वह मुनि को होते ही नहीं। मुनि प्रव्रज्या किसे कहे? आहाहा! अनादि सनातन देव परमेश्वर की कही हुई प्रव्रज्या, त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने कही हुई चारित्रदशा, उसमें उसे स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, व्यापार तो नहीं होता, परन्तु उसे वस्त्र का ओढ़ने का टुकड़ा भी नहीं होता। वह सर्वसंग, ऐसा कहा न?

'**सव्वसंगपरिचत्ता**' आहाहा! **सर्व परिग्रह से रहित है...** आहाहा! मार्ग में बड़ा विघ्न आया जगत को। शास्त्र बनाये, उसमें मुनि को ऐसे वस्त्र चलते हैं, यह चलता है, यह पात्र चलते हैं, उसमें रंग देना, उसमें ऐसा देना। ऐसा सब आता है। पात्र को रंग देना। तीन... ऐसा आता है शास्त्र में। ... सब कल्पित बातें हैं। आहाहा!

भगवान तो प्रव्रज्या अर्थात् चारित्र उसे कहते हैं, जिसे एक वस्त्र का तिल-तुष का छिलका भी जिसके पास न हो और अन्तर में वीतरागता जिसे प्रगट हुई हो, उसे बाह्य में नग्नमुनि ऐसी दशा होती है। इसके अतिरिक्त दूसरे को मानना... यह पहले आ गया है (कि) तीर्थंकर हो तो भी (जब तक) वस्त्रसहित है, तब तक मुनिपना नहीं ले सकते। उन्हें मोक्ष नहीं होता। जई होइ वस्त्रधरो आ गया है न? और वही एक मार्ग है और इसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है। वस्त्रसहित साधु माने, वे सब मार्ग उन्मार्ग हैं। वह वीतराग का मार्ग नहीं परन्तु उन्मार्ग है। वह श्रीमद् ने भी यह कहा है। यह एक मार्ग, (दूसरे) सब उन्मार्ग हैं। कहो, समझ में आया? कठिन भाई जगत के साथ।

**सर्व परिग्रह से रहित है, वह प्रव्रज्या है...** आहाहा! जैसा माता से जन्मा, वैसा ही उसका—मुनि का देह नग्न होता है। आहाहा! तिल के छिलके जितना वस्त्र रखकर मुनिपना माने। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य पहले कह गये हैं। उसका घर निगोद है। वह निगोद में जानेवाला है आलू, शक्करकन्द में अवतरित होनेवाला है। भगवानजीभाई!

**मुमुक्षु :** अभी बहुत अन्तर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़ा अन्तर है। पूरा पूर्व-पश्चिम का अन्तर किया है। लोगों को खबर नहीं बेचारे भोले भट्ट जैसे लोग। बनिया जैसे परन्तु कुछ बाहर की परीक्षा करे परन्तु इस तत्त्व की खबर नहीं होती। सेठ! भोला भट्ट जैसा कहा। वह यहाँ कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं कि मुनिपना चारित्र देव दे। वह कैसा चारित्र हो कि जिसे वस्त्र न हो, ऐसी प्रव्रज्या उसे होती है। स्वयं भी मुनि हुए जब तीर्थंकर तो वस्त्र छोड़कर आनन्दस्वरूप में लीन होकर चारित्र हुआ उन्हें। ऐसा ही मार्ग जगत को दिया, इसलिए दिया—ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

**जिसका मोह नष्ट हो गया है...** अब कैसे हैं भगवान? जिनका मोह नाश हो गया

है। भगवान की प्रव्रज्या ऐसी थी और जिनका मोह नष्ट हो गया है, वे देव। आहाहा! देखो न, यह जैन में रहकर बेचारे कितने और कहाँ... लोगों को वीतरागमार्ग की खबर नहीं होती। देवी, देवला अभी तो दूसरे, हों! बाबा और बाबा। ऐई! सांईंबाबा और वह दूसरा बाबा मानते हैं। ...नहीं? बाबा आये थे सवेरे कहा था। आये हैं? बाबा और बाबा मार डाले जगत को। ऐसा जैन परमेश्वर वीतराग का मार्ग। माँ को छोड़कर कुत्ती को दूध पिलाता है। आहाहा! जिसकी अभी श्रद्धा की खबर नहीं हो। वीतराग तो ऐसा कहते हैं। जिसका मोह नष्ट हो गया है, जिसे वीतरागता प्रगट हुई है, वह देव और वह देव वीतरागता दे अर्थात् बतलावे जगत को। समझ में आया?

**यह भव्य जीवों के उदय को करनेवाला है।** आहाहा! योग्य प्राणी को भव्यता प्रगट करनेवाले वे देव हैं। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी में यह आया, उन्होंने प्रव्रज्या ली और केवलज्ञान पाये, वही उन्होंने कहा। वह भव्य जीवों, योग्य प्राणी को मोक्ष का मार्ग उदय—प्रगट करनेवाले वे भगवान देव हैं। निमित्तरूप से है न यहाँ। आहाहा! है न? '**उदयकरो भव्वजीवाणं**' देखो, भाषा आयी इसमें, हों! श्रीमद् में भी आता है न, 'उदय होय चारित्र का।' उदय हो—प्रगट हो। इसमें बहुत आता है। आत्मा का ज्ञान और उसमें ऐसा चारित्र—रागरहित दशा, वह भव्य जीव को प्रगट होती है। भव्य जीव का उदय करनेवाले भगवान हैं। आहाहा! सूर्य उगता है और कमल खिलते हैं, वह कमल वनस्पति का होता है, वह खिलता है, उसके लिये वह (सूर्योदय) कारण है। लकड़ी का कमल हो, वह सूर्य उगे और खिले, यह नहीं हो सकता। ऐसे प्राणी योग्य जीव है, कहते हैं। आहाहा! उसका उदय करनेवाले त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा हैं। समझ में आया?

भाषा है न? '**उदयकरो भव्वजीवाणं**' जिसकी योग्यता है, ऐसे भव्य जीवों को प्रगट, धर्म का प्रगटपना करावे, ऐसे वे देव अरिहन्त स्वयं हैं। अरिहन्त देव के अतिरिक्त कोई देव जगत में सच्चे हैं नहीं। इन अरिहन्त ने यह अरिहन्त कहा, वह दिगम्बर सन्त ने कहा वह। अन्य तो अरिहन्त कहते हैं कि वे तो अभी वस्त्र रखे, आहार करे। केवलज्ञानी हो तो भी आहार करे—वह सब भगवान का स्वरूप विरुद्ध है। सब बिगाड़ दिया है। जैनदर्शन (से) विरुद्ध कर डाला है।

**भावार्थ :- लोक में यह प्रसिद्ध है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुष के प्रयोजन हैं।** लो! अपवर्ग, वर्ग। धर्म, अर्थ और काम, यह वर्ग; मोक्ष अपवर्ग। आता है न वहाँ यह समयसार में। पहली गाथा। **लोक में यह प्रसिद्ध है कि धर्म,...** अर्थात् पुण्य। **अर्थ...** अर्थात् पैसा, **काम...** अर्थात् भोग। **और मोक्ष, ये चार पुरुष के प्रयोजन हैं।** प्रयोजन पुरुष का है। **उनके लिये पुरुष किसी की वन्दना करता है,...** उनके लिये किसी की वन्दना करे, **पूजा करता है और यह न्याय है कि जिसके पास जो वस्तु हो, वह दूसरे को देवे,...** आहाहा! **न हो तो कहाँ से लावे ?** (जहाँ) उसके पास ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह दूसरे को क्या दे? अर्थात् दूसरे को वह किस प्रकार समझावे?

**न हो तो कहाँ से लावे ? इसलिए ये चार पुरुषार्थ जिनदेव के पाये जाते हैं।** यह वीतराग भगवान सर्वज्ञ में चार पुरुषार्थ होते हैं। आहाहा! **धर्म तो उनके दयारूप पाया जाता है...** अहिंसा राग शुभभाव की पालन की, वह दया। **उसको साधकर तीर्थंकर हो गये,...** देखा! पुण्य से। उस पुण्य से तीर्थंकर हुए, ऐसा कहते हैं। नामकर्म है। परन्तु सम्यग्दृष्टि है उन्हें। दया के भाव ऐसे, अहिंसा के, महाव्रत के भाव, उनसे पुण्य बँधा, उसके कारण तीर्थंकर हुए। आहाहा! वे दया को साधकर **तीर्थंकर हो गये,...** पुण्य से, ऐसा कहते हैं। **तब धन की और संसार के भोग की प्राप्ति हो गयी,...** तीर्थंकर हुए, तब लक्ष्मी के ढ़ेर। देव जिन्हें धन दें। जन्मे तब लाते हैं न देव। वहाँ से—स्वर्ग में से लाते हैं, वस्त्र, गहने और सब, तीर्थंकर के जन्म (के समय)। वह सब पुण्य का फल है, कहते हैं। आहाहा! उसे धन की और संसार के भोग की प्राप्ति देखो! देव सब भोग लाते हैं, वहाँ से—स्वर्ग में से। वे यहाँ की रोटी नहीं खाते। यहाँ के वस्त्र वे नहीं पहनते। देव के। स्वर्ग में है। सन्दूक होती है। तीर्थंकर के लिये जन्मे तब वस्त्र सब देव लाते हैं। वह सब पुण्य ऐसा आत्मज्ञान सम्यग्दर्शनवाला जीव कि जो अरिहन्त को पहिचानकर जिसने यह प्रगट किया, उसे ऐसे दया के (भाव से) पुण्य तीर्थंकर (पद) होता है। आहाहा! उनके पास है, वे वापस देते हैं, ऐसा कहते हैं।

और वे **लोकपूज्य हो गये...** तीर्थंकर तो आत्मज्ञान पाकर सम्यक् अनुभव दृष्टि होकर, फिर दया के परिणाम से तीर्थंकर हुए, तब लोकपूज्य हुए। पूरी महत्ता हुई। पूरी

दुनिया जिन्हें माने। जगत के बड़े महापुरुष उन्हें माने, इसलिए सब माने, ऐसा कहा जाता है। **और तीर्थंकर के परमपद में दीक्षा लेकर,...** लो! और **तीर्थंकर के परमपद में दीक्षा लेकर,...** फिर दीक्षा ली जब तीर्थंकर ने... पहले भोगादि सब साधन मिला। फिर दीक्षा लेकर नग्न दिगम्बर मुनि हुए। जिनके सौ इन्द्र तलिया चाटे, रज मस्तक पर ले, वे भगवान तीर्थंकर दीक्षित हुए। उनकी माता से जन्मे वैसे। वह दीक्षार्थी **सब मोह से रहित होकर...** राग आसक्ति का त्याग होकर **परमार्थस्वरूप आत्मिकधर्म को साधकर,...** लो! परमार्थस्वरूप आत्मधर्म। आहाहा! शुद्धस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा, उसका धर्म साधन। अन्तर में शुद्ध आत्मिक धर्म को साधकर। दया बीच में कही, उसका फल तीर्थंकररूप से पुण्यादि लक्ष्मी आदि भोगे।

और **आत्मिकधर्म को साधकर, मोक्षसुख को प्राप्त कर लिया...** आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन भगवत्स्वरूप आत्मा का साधन करके। है न? **आत्मिकधर्म को साधकर,...** अन्तर के वीतरागी निर्विकल्पस्वभाव का साधन करके **मोक्षसुख को प्राप्त कर लिया...** आहाहा! देखो, भाई! आज बराबर यह आया। अभी की स्थिति और देव का स्वरूप आया। वह देव दे यह सब, ऐसा कहते हैं। वह देव माने, उसे ऐसा सब होता है, ऐसा। आहाहा! श्रीमद् में ऐसा आया न 'वह तो प्रभु ने ही दिया वर्तुं चरणाधीन।' निमित्त से कथन तो ऐसे ही आवे न! बहुमान से। अरिहन्तदशा जिसे मोहरहित प्रगट हुई है। ऐसे परमात्मा णमो अरिहंताणं। बोल जाये अरिहन्त, परन्तु अरिहन्त कैसे, उसकी पहिचान नहीं होती। उन अरिहन्त को जो पहिचाने, श्रद्धा करे, वह अरिहन्त ने उसे दिया कहलाये। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान उन्होंने दिया कहलाये।

**वे ही देव हैं।** लो। **मोक्षसुख को प्राप्त कर लिया ऐसे तीर्थंकर जिन हैं, वे ही देव हैं। अज्ञानी लोग जिनको देव मानते हैं, उनके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नहीं है,...** सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जब पूर्व में चारित्र अंगीकार किया, तब उन्हें कुछ राग महाव्रतादि का पुण्य रह गया, उस पुण्य के कारण तीर्थंकरपना मिला। समझ में आया? और आत्मा के धर्म का साधन करके जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। आहाहा! दो बातें अलग कीं। उसे यहाँ देव कहा जाता है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर देव उसे कहते हैं कि जिसने अन्तर आत्मिकधर्म का साधन किया, अन्दर निर्मलानन्द

प्रभु, ऐसी निर्विकार निर्विकल्पदशा से जिसने मोक्ष प्राप्त किया और उनकी दशा अधूरी थी, पूर्व में तीर्थंकर होने से पहले, तब जो दया आदि के भाव, महाव्रत के भाव थे, वह पुण्य था। उस पुण्य के फल में तीर्थंकर पदवी मिली। सौ इन्द्र जिन्हें पूजे वे। उन्हें देव कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे देव कहे कि हम देव हैं, रागवाले, मोहवाले, स्त्रीवाले, हथियारवाले—वे सब कुदेव हैं। आहाहा! समझ में आया?

**अज्ञानी लोग जिनको देव मानते हैं, उनके धर्म,...** अर्थात् पुण्य। उन्हें ऐसा पुण्य भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं, भाई! तीर्थंकरपना बँधे, चक्रवर्ती हो, ऐसा पुण्य समकिती को होता है। अज्ञानी को होता नहीं। जो अरिहन्तदेव को वास्तविक पहिचाने, जाने, उसे ऐसा पुण्य होता है। अज्ञानी को वैसा पुण्य तीर्थंकरगोत्र या चक्रवर्ती जैसा नहीं हो सकता। आहाहा! अलग प्रकार का है न! पुण्य भी अलग प्रकार का है। आहाहा! **क्योंकि कई हिंसक हैं,...** और देव मानते हैं कि हम परमेश्वर हैं। **कई विषयासक्त हैं,...** स्त्री में आसक्त है और देव कहते हैं, हम देव मानते हैं। **मोही हैं...** पर में मोह करनेवाले हैं। **उनके धर्म कैसा?** उन्हें धर्म कहाँ से आया?

**अर्थ और काम की जिनके वांछा पायी जाती है...** जिसे लक्ष्मी और भोग की इच्छा, वह देव कैसा? यह तो लक्ष्मी और भोग तो धर्मी जीव को सहज मिल जाते हैं। मिलाना चाहते नहीं। सौ कलशी अनाज हो, वहाँ सौ गाड़ा घास साथ में हो। क्या कहा? सौ कलशी अनाज हो, वहाँ सौ गाड़ा घास होता है। अच्छा किसान घास का कामी नहीं होता। खेडु समझते हो? किसान। वह घास का इच्छुक नहीं होता, वह तो अनाज का इच्छुक (होता है)। उसमें घास साथ में आ जाता है। इसी प्रकार अरिहन्तदेव के मार्ग का जिसे भान हुआ है, ऐसे जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, उन्हें भोग की इच्छा नहीं होती। उन्हें पुण्य की इच्छा नहीं होती, तथापि पुण्य हुए बिना नहीं रहता और पुण्य के फल भोग की उसे इच्छा नहीं होती, परन्तु भोग मिले बिना नहीं रहता। जगत को न मिले, ऐसा धर्मी को मिलता है। आहाहा! वे सब अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा के मार्ग में यह सब होता है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र होता नहीं। आहाहा!

**अर्थ, काम कैसा? जन्म, मरण सहित हैं...** पहले यह कहा न? **अर्थ और काम की जिनके वांछा पायी जाती है...** वह देव कैसा? वह तो मोहवाला है। आहाहा!

तीर्थंकर भगवान को तो अर्थ और काम की इच्छा नहीं, परन्तु तीर्थंकर भगवान का मार्ग जिसने जाना और पहिचाना, उसे भी अर्थ और भोग की इच्छा नहीं है। सम्यग्दृष्टि को अर्थ अर्थात् लक्ष्मी की इच्छा ही नहीं। क्योंकि लक्ष्मी तो पर है, जड़ है, अजीव है और भोग, वह विषय के, वे तो राग हैं। उस भोग की आत्मा के आनन्द के भोग के समक्ष, सम्यग्दृष्टि तो उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा के आनन्द का अनुभव है। और जिसमें आत्मा का सुख आत्मा में है, ऐसा उसने माना है। भगवान ने ऐसा मानकर परमात्मा हुए, उन्होंने यह बताया। दोपहर में ही आयेगा न! सुख का शब्द आता है न! शक्ति। शक्ति आज ही आयेगी।

भगवान आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का सुख पड़ा है अन्दर। अरिहन्त भगवान ने जो अनन्त सुख को प्राप्त किया, वह कहाँ से आया? कहीं बाहर से आता है? अन्तर में अनन्त आनन्द है। आहाहा! कैसे बैठे? जैसे पाँच, पचास लाख पैसे मिले, वहाँ सुखी है, ऐसा अज्ञानी माने। मूढ़ है। आहाहा! वह जैनदर्शन और वीतराग को मानता ही नहीं। वीतराग देव उसे मिले ही नहीं। वीतराग देव ने तुझे मोहरहित की दशा तुझे दी ही नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **अर्थ और काम की जिनके वांछा पायी जाती है उनके अर्थ, काम कैसा?** उसे अर्थ, काम कहाँ से हो? यह **जन्म, मरण सहित हैं, उनके मोक्ष कैसा?** जिसे जन्म और मरण चौरासी के अवतार करना है, ऐसे मोहसहित प्राणी को मोक्ष कहाँ से हो? आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य परमात्मस्वरूप, उसका साधन करनेवाला तो मोक्ष को पावे। ऐसा साधन तो वीतरागमार्ग में और वीतराग की आज्ञा में होता है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र हो नहीं सकता। तो धर्मी अर्थ और काम की इच्छा रखता ही नहीं और धर्मी पर में भोग की इच्छा भी रखता नहीं, ऐसा भगवान ने फरमाया है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि हुआ चौथे गुणस्थान में, तब से पूरे इन्द्र के सुख को जहर जैसा वह मानता है। सम्यग्दृष्टि धर्मी शुरुआत का पहले पाया का। तब से इन्द्र के भोग को चक्रवर्ती के भोग को... नहीं आता, क्या कहलाता है वह? 'इन्द्र की सम्पदा, चक्रवर्ती के भोग, कागवीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।' आहाहा! कौवे की विष्टा। कौआ-कौआ होता है न कौवा? मनुष्य की विष्टा अभी तो खाद में काम आवे, शूकर भी खाये,

कौवे की विष्टा हो वह तो खाद में भी काम न आवे और शूकर भी न खाये। कौवे की विष्टा होती है न ऐसी बहुत कठोर होती है। उसी प्रकार भगवान को जिसने माना और भगवान को जिसने पहिचाना, जिसके ज्ञान में पहिचाना, उन भगवान ने उसे दिया कि यह ज्ञान और आनन्द, वह तेरी चीज़ है। ऐसे भानवाले जीव को 'कागवीट सम मानत है।' पूर्व के पुण्य के फल कौवे की विष्टा जैसा मानता है वह। आहाहा!

'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग...' है वहाँ। इन्दौर, इन्दौर काँच का मन्दिर। भाई ने बनाया है न सेठ का सर हुकमीचन्द। बाजार में है न काँच का मन्दिर। उसमें ऊपर लिखा है। 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग, कागवीट सम मानत है।' ....था न। बस उसमें। भाषा यह है। परन्तु वीतराग का अर्थ वापस वे ले लेवे, ऐसा नहीं। सम्यग्दृष्टि स्वयं ही वीतरागी है। आहाहा! वह 'सम्यग्दृष्टि लोग कागवीट सम मानत है।' सेठ, देखा है या नहीं? वह काँच मन्दिर। देखा है? वहाँ आये, उसे बताया था। आवे न, देखो यह लिखा है, देखो। सेठ! देखा है? उन लोगों का काँच का मन्दिर है न सेठ का—सर हुकमीचन्द। उसमें लिखा है। आहाहा!

यहाँ क्या कहना है? कि भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ उसे देव कहते हैं कि उसे ऐसा दे। क्या दे उसे? उसे सम्यग्दर्शन दे, उसे ज्ञान दे, उसे चारित्र दे। दे अर्थात् निमित्त होते हैं न, इसलिए (ऐसा कहा)। उनके पास है वस्तु वह दे और ऐसे जीव को अन्दर पुण्य भी ऐसा आवे कि जिसके फलरूप से तीर्थंकर चक्रवर्ती के भोग मिले, परन्तु उनकी इच्छा उसे हो नहीं। माँगे उससे भागे, त्यागे उसके आगे। जो माँगे उसके आगे (दूर)। पुण्य का फल। त्यागे उसके आगे। यह नहीं, उसे सामने हो। तीर्थंकर जैसे पद का भोग उसे मिले। तथापि उसकी इच्छा उसे होती नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग भाई वीतराग का! ऐसा मार्ग वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं होता। लोगों को चीज़ की खबर नहीं। यह बाहर की क्रिया है न, अकेली आत्मा के ज्ञान बिना। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो एक शुभभाव है। वह ऐसा नहीं यह। जो ज्ञानी को शुभभाव होता है, वह वैसा नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव को जो शुभभाव होता है, वह जाति यह नहीं। यह तो दया, दान, भक्ति, पूजा, यात्रा करे और माने कि धर्म है। वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव हो, परन्तु वह अलग प्रकार का होता है। उसे हेयबुद्धि से भाव आये बिना रहता नहीं। उसका फल भी उसे ऊँचा स्वर्ग आदि, इन्द्र आदि मिलता है। अरे! आत्मा के आनन्द के समक्ष यह क्या? अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे अनुभव हुआ। सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं। धर्म की शुरुआतवाला जीव उसे आत्मा के आनन्द का भान हो गया है। आहाहा! उस आनन्द की दृष्टि के समक्ष धर्मी जीव चक्रवर्ती हो तो भी उसकी इच्छा भोग की और पर की होती नहीं। पर में सुख है, यह बुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! क्योंकि आनन्द का नाथ भगवान स्वयं पूर्णानन्द प्रभु स्वयं जिसके ज्ञान में भासित हुआ है, अनुभव में आया है। आहाहा! उसे पर में सुखबुद्धि कैसे हो सकती है? वह यहाँ कहते हैं।

जिसे अर्थ और काम की इच्छा हो, उसे अर्थ, काम कहाँ से आवे ऐसा? और जन्म-मरणसहित, उसे मोक्ष कैसा? **ऐसे देव सच्चे जिनदेव ही हैं,...** ऐसे वे जिनदेव वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकररूप से होकर आवे, तीन ज्ञान लेकर तो माता के गर्भ में आते हैं। तीन ज्ञान। समकित, मति, श्रुत, अवधि। फिर मुनि हो प्रव्रज्या नग्न दिगम्बर दशा, तब तो चौथा ज्ञान होता है, पश्चात् स्वरूप की साधना करते-करते केवलज्ञान होता है। आहाहा! ऐसे देव हों तो सच्चे वीतराग जिनदेव हैं। इसके अतिरिक्त कोई सच्चा देव हो नहीं सकता। आहाहा!

**वही भव्यजीवों के मनोरथ पूर्ण करते हैं,...** लो! उसमें आया न '**उदयकरो भव्वजीवाणं**' भव्य जीवों का मनोरथ अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और उसका फल मोक्ष, उसे मनोरथ पूरा होता है। जो ऐसे देव को पहिचानकर माने और जाने, उसके मोक्ष का मनोरथ पूरा होता है। समझ में आया? **अन्य सब कल्पित देव हैं।** आहाहा! यह देव दे, वह देव—ऐसा कहते हैं। लो, ऐसी व्याख्या आयी आज। मगनभाई! उसे—देव को पहिचानना। किसी ने तो देव स्त्रीवाले माने, हथियारवाले माने, आहार करनेवाले माने, भगवान को रोग हो, (ऐसा) माना। सब खोटी बात है। सब कल्पना है। समझ में आया? भगवान अरिहन्त को रोग नहीं होता, उन्हें दवा ले और रोग हो, यह नहीं होता। वह सब देव के स्वरूप को जानते नहीं। ऐसे देव को जाने, उसका मनोरथ पूर्ण होता है, ऐसा कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मगसिर कृष्ण १०, बुधवार, दिनांक-१९-१२-१९७३**
**गाथा - २५, २६, २७, प्रवचन-७१**

बोधपाहुड़। २५वीं गाथा हो गयी है। देव, देव की व्याख्या हुई वह। देव का ऐसा स्वरूप लिया कुन्दकुन्दाचार्य ने। वह तो मोक्ष दे, केवलज्ञान दे, प्रव्रज्या दे, लक्ष्मी दे, भोग दे। धर्म अर्थात् पुण्य दे। यहाँ तो अधिक यह कहने का है कि देव अरिहन्त उसे कहते हैं कि जो ज्ञान दे। दे, ऐसा कहा है इसमें व्यवहार से बात है न! देव है न... शब्द था। उदात अर्थात् देव। देव का अर्थ कि जो यह देव को इस प्रकार से माने, उसे सम्यग्दर्शन होता है; उसे माने, वह आगे चारित्र अंगीकार करे और उसे माने, उसको केवलज्ञान होता है।

**मुमुक्षु :** किसे माने उसे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरिहन्त को, देव को।

**मुमुक्षु :** परपदार्थ को माने।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह माने अर्थात् यह निमित्त से कथन है।

यह तो प्रश्न वह हुआ था कहा न ७२ में। ५८ वर्ष हुए ५८। वह कहे कि भगवान ने देखा, वैसा होगा। अपने कुछ पुरुषार्थ नहीं। ५८ वर्ष हुए, फाल्गुन महीने में। मैंने कहा, भगवान को जो मानता है, जिसके ज्ञान में भगवान बैठे, उसे भव होते नहीं। वह यह कहते हैं, देखो! देव ददाति का अर्थ यह कि वे अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर हैं, ऐसा जिसने कहा स्वयं कि तू ऐसा आत्मा है और उसमें से तुझे ज्ञान... होगा, उसमें से चारित्र होगा, उसमें से सम्यक् होगा, उसमें से जितनी ऋद्धि तुझे मनोरथ चाहिए, वे सब पूरे पड़ेंगे। इसलिए तो कहा न, देखो! **ऐसे देव सच्चे जिनदेव ही हैं,...** अन्तिम लाइन है २५ की। पाठ में यह है। '**उदयकरो भव्वजीवाणं**' भव्य जीव को उदय करनेवाले हैं। भव्य जीव का मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, उन्हें माने उसे। उन्हें निमित्त कहा। जैसी सर्वज्ञदशा, जिसे चारित्र अंगीकार करके जिसे सर्वज्ञ पद प्राप्त हुआ है। ऐसे दिव्यशक्ति के धारक, उन्हें जो माने। समझ में आया?

यह प्रश्न उठा था तब। यह ... पहले, पश्चात् कौन आवे... देखो, यह सब।...है न। समझ में आया? यह प्रश्न उठा था तब। सेठ! ५८ वर्ष हुए। ६० में दो वर्ष कम। (संवत्) १९७२ के वर्ष। एक ने कहा कि सर्वज्ञ ने जिस दिन देखा, उस दिन भव घटेंगे।अपने नौ कोटि से ब्रह्मचर्य पालते हैं। और नौ वाड़ से ब्रह्मचर्य और नौ कोटि से चारित्र। परन्तु यह भगवान ने देखा, तब पुरुषार्थ काम आयेगा, इसके बिना अभी काम नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। सेठ!

**मुमुक्षु :** भगवान ने....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा नहीं, भगवान ने देखा... तब होगा, ऐसा भगवान ने कहा ही नहीं। भगवान को देखा नहीं उसने। आहाहा! समझ में आया? बहुत चर्चा चली थी। यह... यह बात हमको अन्दर बैठती नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर आज हाथ आया ददाति इति देव। सर्वज्ञ परमेश्वर तो केवलज्ञान दे। यह आया था न अभी?

**मुमुक्षु :** पुरुषार्थ दे, ऐसा नहीं कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह उसका अर्थ ही हुआ वह। दे, वहाँ कहाँ देता था? श्रीमद् में आया न? 'क्या प्रभु चरण निकट धरूँ, आत्मा से सब हीन, वह तो प्रभु ने ही दिया, वर्तु चरणाधीन।' यह अपेक्षा से वस्तु है। और यहाँ कहा न जो उसके पास जो हो, वह दे। भगवान अरिहन्त परमेश्वर के पास अनन्त आनन्द है, अनन्त ज्ञान है, परमावगाढ़ समकित है, चारित्र था और उसके फलरूप से केवलज्ञान हुआ है। उनके पास सब है। चारों ही यथाख्यातचारित्र है। आहाहा! वे भव्य जीव के मनोरथ को पूर्ण करनेवाले। आहाहा! भाषा तो देखो! परद्रव्य। उसका अर्थ कि वह परद्रव्य को जो दशा है केवली की, वह दशा जिसे अन्तर में से बैठती है, उसके मनोरथ पूरे पड़ते हैं। सेठ! आहाहा! यह सवेरे याद आ गया था। उसमें यह आया था।

**मुमुक्षु :** इसलिए पूजा, भक्ति करते हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह नहीं पूजा, भक्ति वह नहीं।!

**मुमुक्षु :** अन्तर में जाये तब भगवान की पूजा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्तर में वह सर्वज्ञ की पूज्यता प्रगट हो, तब उस प्रव्रज्या के

देनेवाले ज्ञान... है न अन्तिम? '**णाणं**' है न? शब्द यह '**णाणं**' २४ में है। '**णाणं च**' ज्ञान दे वे। इसका अर्थ यह कि वह केवलज्ञान का उपदेश दे। तो तुझमें केवलज्ञान भरा हुआ है प्रभु। उसे प्रगट कर और केवलज्ञान प्राप्त कर, वह तेरी सामर्थ्य और तेरा स्वरूप ही वह है। आहाहा! गुरु की वाणी तो देखो! तब की बात आयी मस्तिष्क में सवेरे उठकर। कहा, ५८ (वर्ष) पहले की बातें यह ... उसमें। यहाँ तो कहा, भव्य जीव का उदय करनेवाले हैं। केवली भव्य जीव को रोकनेवाले हैं, ऐसा नहीं कहा कि केवली ने देखा तब होगा। इसलिए उनके भव अभी नहीं घटेंगे। यह वस्तु ही, भाषा ही नहीं जैन आचार्य की। समझ में आया? यह वाणी ही आगम की नहीं। तब तो कहाँ यह पढ़ा था। यह वाणी ही आगम की नहीं। आगम की वाणी ऐसी होती नहीं।

सर्वज्ञ परमात्मा के मुख से वाणी निकले, वह तो सुननेवाले अल्पभव में या उस भव में मोक्ष जाये या एकाध भव में... गजसुकुमार का दृष्टान्त मैंने दिया था। गजसुकुमार तो सुनने गये भगवान के निकट, क्या सुना? ऐसा? सुनने गये और उसी और उसी दिन दीक्षा लेने का भाव। दीक्षा ली उस दिन और उसी दिन श्मशान में जाकर... आहाहा! भगवान केवलज्ञान जिसे मिले और प्राप्त हुए अन्दर में। उसे क्या मनोरथ... देखो न, अर्थ किया है न? '**उदयकरो भव्वजीवाणं**' योग्य जीव को उदय के करनेवाले हैं वे। आहाहा! एक ओर पर, पर का करे नहीं, यह बात सिद्ध करे। इसका अर्थ यह कि तब कहलाये। उसे जो कहा, प्रभु! तू सर्वज्ञस्वभावी है और पर्याय सर्वज्ञ की प्रगटी है, वह कहाँ से आयी है? अन्तर स्वभाव में से आयी। ऐसा तेरा जीवस्वभाव ही ऐसा है। ऐसा जिसने कहा, उसने दिया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! देखो न, आचार्य की भाषा! '**देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं**' योग्य जीव को तो केवलज्ञान मनोरथ पूरा करे, ऐसे वे देव हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जो सर्वज्ञ परमेश्वर उन्हें तुम याद करो और... पुरुषार्थ अभी हो सकता नहीं, यह मिलान नहीं खाता। सेठ! देखो आया यह।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्दर में थी न। अन्दर में थी तो आयी अन्दर में से... दो वर्ष की दीक्षा थी तब तो। (संवत्) १९७२। ५८ वर्ष हुए। फिर सवेरे उठे और यह विचार

आया। आहाहा! देखो न, भाषा तो देखो! आगम की भाषा, सन्तों की भाषा, केवली के कथन मार्गानुसारी केवली के हैं। आहाहा! वह पर दे देते हैं, ऐसा नहीं कहना परन्तु जो उन्हें माने, उन्होंने—पर (ने) दिया, ऐसा कहा जाता है।

**मुमुक्षु :** उसका क्या निमित्त....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह निमित्त को तब माना कि जिसने अपने स्वभाव का आश्रय करके श्रद्धा, ज्ञान आदि प्रगट किये, तब उसे प्रतीति में आया कि ओहोहो! यह सर्वज्ञ परमेश्वर, वह तो परमात्मा अन्दर में से हुए हैं और मेरी दशा केवलज्ञान की, वे परमात्मा कहते हैं कि तुझमें से होगी। ऐसा जिसने अनुभव किया और जाना। उसे उसने प्रगट किया, उसका मनोरथ पूरा हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह गाथा सब... एक ओर कहे वीतराग की वाणी सुने, वह ज्ञान नहीं।

**मुमुक्षु :** यह सुना, फिर छोड़कर अन्दर में गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसकी बात है यह। ऐई! आहाहा! वाणी सुनी और ज्ञान हुआ स्वयं से। वह ज्ञान नहीं। वाणी परलक्ष्यी ज्ञान, परसत्तावलम्बी ज्ञान। आहाहा! तथापि यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसा कहते हैं कि जिसे पर से जिसका ज्ञान, परसत्तावलम्बी ज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान नहीं। वह ऐसा कहे कि देव ने दिया केवलज्ञान, देव ने दी प्रव्रज्या। क्यों? कि उसके जिस ज्ञान में चारित्रदशा कैसी उसने प्रगट की और फिर चारित्र कैसा, उसके ज्ञान में जो आया था, ऐसी चारित्रदशा, वह सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी चारित्रदशा का वर्णन कोई कर नहीं सकता। दूसरा कोई दे नहीं सकता। लिखा है न दूसरा कल्पित। **अन्य सब कल्पित देव हैं।** आहाहा!

जिसकी ऐसी दिव्य शक्ति जिसकी पर्याय में प्रगट हुई है। वह तो भव्य जीव के मनोरथ पूर्ण करनेवाला भगवान है। आहाहा! भाषा है न! समझ में आया? और वे कहे कि नौ कोटि से ब्रह्मचर्य पालते हैं, नौ वाड़ से नौ कोटि से प्रत्याख्यान करते हैं, संथारा करते हैं। यह भी क्या है? वाणी वीतराग की, आगम की वाणी। कहो, सेठ! ऐसे... आया। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि जो ऐसे देव को माने अर्थात् देव उसे कहते हैं कि उसे दे। उसे समकित दे, ज्ञान दे, चारित्र दे, केवलज्ञान दे, सब दे। दे का अर्थ कि उन्हें

माने, उसे यह मिलता है। समझ में आया? भगवानजीभाई! ऐसी बात है यह। जिसके घर में माल हो, वह दे। माल न हो, वह क्या दे? आहाहा! केवली के घर में केवलज्ञान, यथाख्यातचारित्र, अनन्त आनन्द। आहाहा! वह आस्था का विषय है। ऐसा का ऐसा धारने का विषय नहीं। आहाहा! उसके अन्दर में, ऐसी सत्ता है जगत में कि एक समय में केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी सत्ता की श्रद्धा ऐसी जगत में है, ऐसी श्रद्धा, वह स्वयं अपना आश्रय करके करे, तब भगवान ने दिया—ऐसा कहा जाता है। उन्होंने तो उपदेश किया सबको। सब सुनते थे। ...सब अनन्त बार सुना। क्यों लिया नहीं? वह जब स्वयं उसे समझा, ऐसी दशा केवलज्ञान एक समय में। आहाहा! जिसने तीन काल-तीन लोक नहीं जानना, परन्तु पर्याय जानते हुए उसमें ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा! ऐसा जिसके ज्ञान में तेज, ज्ञानप्रभाकर तेज। आहाहा! ज्ञान की प्रभा का सूर्य, उसकी प्रभा का करनेवाला, ऐसा तेज। जिसे प्रगट हुआ, वह भगवान देव है। वह देव तुझे ज्ञान देंगे, कहेंगे। आहाहा! उनके पास है वह कहेंगे, समझायेंगे, उनके पास है वह समझायेंगे। और समझते हुए तू समझेगा तो उसे प्राप्त करेगा। समझ में आया? आहाहा! गजब बात है! दिगम्बर सन्तों की कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी तो... आहाहा! देव को सिद्ध करते हैं और देव मनोरथ पूरा करते हैं।

एक ओर कहे कि अरिहन्त की वाणी भी आत्मा के ज्ञान के लिये निमित्त भी नहीं। वह तो ज्ञान का कारण तो आत्मद्रव्य है। अन्तर के आश्रय से केवलज्ञान और सम्यग्दर्शन होता है, परन्तु ऐसा निमित्त उनकी वाणी में ऐसा कहा था उन्होंने। सर्वज्ञ की वाणी में ऐसी वाणी निकलती थी कि तेरे आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है, प्रभु! अर्थात् तू ज्ञानस्वभावी चीज़ है, ज्ञानस्वभावी तू चीज़ है। राग और संसार स्वभावी तू नहीं। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर में भगवान ने कहा, ऐसा बैठा, उसे भगवान ने दिया—ऐसा कहा जाता है। अल्पज्ञानी और राग कषायवाला क्या दे? क्योंकि उनके पास तो सर्वज्ञपना और वीतरागता है और (अ)कषाय तो है नहीं। तो वह किस प्रकार कहे, बतावे उसे? आहाहा! अकषायस्वभाव, वीतरागस्वभाव भगवान को प्रगट हुआ, वह कहा, उसे दिया। लिया उसे दिया। आहाहा! गजब भाषा भाई! देखो न! २४ के बाद दो आयी न उसमें? '**सो देवो जो अत्थं, धम्मं कामं सुदेइ णाणं च। सो देइ**' सुख दे बराबर दे, ऐसा

कहते हैं। है ? ददाति... ददाति। '**सो देइ जस्स अत्थि**' जिसके पास हो वह दे। इसका अर्थ कि जिसके पास हो, ऐसा उपदेश दे। उसमें से स्वयं अपने स्वभाव का आशय निकाल ले। आहाहा! भगवान की वाणी में ही ऐसा आया था कि तू सर्वज्ञस्वभावी और पूर्ण आनन्दस्वरूप है। ऐसी सत्ता का अस्तित्व का स्वीकार होने पर तुझे सम्यक्त्व होगा और केवलज्ञान हो जायेगा। आहाहा! यह भगवान के पास था, वह दिया। दूसरे के पास कहाँ है वह ? और कल्पित देव अज्ञानियों ने जिसने देव के स्वरूप को विकृत कर डाला है, उनके पास यह कहाँ था ?

आचार्य कहते हैं '**उदयकरो भव्वजीवाणं**' आहाहा! भव्य जीव के मनोरथ पूर्ण करनेवाले वे वीतरागदेव हैं। समझ में आया ? यहाँ तो निहालभाई में भी आता है। कहाँ, खबर है ? एक प्रश्न आता है। गुरु सब देंगे। उनके पास है यह देंगे। अज्ञानी के पास कहाँ है, क्या देगा ? अन्यमति क्या देंगे ? यह शब्द है। अन्यमति क्या देंगे ? सर्वज्ञ दे सब पूरा। कितने ही टुकड़े (वाक्यांश) भारी हैं। यह कहीं है अवश्य।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह ऐसा कहते हैं, कषायसहित क्या देंगे ? जो कषायरहित है, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित है, वह देंगे। दूसरा दे तो कितना देगा ? उसके पास कहाँ है ? ऐसा वह शब्द है। वह है कहीं, निकालो तो सही! तुम्हारे पास नहीं ? यहाँ है। है या नहीं ऐसा ? यह है। निकालो। इस ओर के पृष्ठ पर है ऊपर। इस ओर के पृष्ठ के ऊपर। लो, यह चला। ऊपर के पृष्ठ पर है, इस ओर। ऊपर ऊपर। नहीं आये अम्बालाल। ... आहाहा!

'**सो देइ जस्स अत्थि**' यह शब्द प्रयोग किया है। वह दे जिसके पास जो हो वह। आहाहा! है न ? २४वाँ। '**सो देइ जस्स अत्थि**' क्या दे ? अर्थ, धर्म और प्रव्रज्या उनके पास है वह दे। आहाहा! उन्होंने समझाया और उन्होंने कहा, वह दिया कहा जाता है। ऐसा ही यहाँ तो जीव लिया है। समझ में आया ? सुनकर उतारा नहीं, उस बात की यहाँ बात ही नहीं। कहा न कि वह तो प्रमाण करना। नहीं आयी पाँचवीं गाथा (समयसार)। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज पमाणं**' प्रमाण करना, सन्धि कर डालना अनुभव (करके)। आहाहा! पाँचवीं में कहा न! गजब बात है! कुन्दकुन्दाचार्य

की शैली तो ओहोहो! देखो, यह दिखाऊँ तो प्रमाण करना। '**जदि दाएज्ज**' पहले तो कहा कि '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं**' दिखाता हूँ। ... सामान्य बात की है। अब दिखाता हूँ, यह सामने दिखाता हूँ प्रमाण करना। आहाहा! समझ में आया? ...नहीं? यह नहीं जादवजी? ... इस ओर पृष्ठ पर है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पाठ में देखो न कितना है। कि '**सो देवो जो अत्थं, धम्मं कामं सुदेइ**' एक बात। '**सुदेइ**' एक बात। '**सो देइ जस्स अत्थि**' वह दे कि जिसके पास हो। दे और दूसरा कि '**उदयकरो भव्वजीवाणं**' भव्य जीव को प्रकाश देनेवाले हैं। सम्यग्दर्शन का, ज्ञान का, शान्ति का, चारित्र का, केवलज्ञान का। आहाहा! वह देव हो, इससे अरिहन्त, वह देव है। आहाहा! जिनके निमित्त में ऐसी बात जिसे सुनने को मिले और वह पावे। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह ऐसा नहीं कहा कि भगवान के पास सुना, तो उन्होंने—केवली ने देखा, अनन्त भव होंगे तेरे। अभी भव नहीं कहते। ऐसा नहीं कहा यहाँ। है? लाओ। कितनी? यह आयी।

**जैनदर्शन ही एक ऐसा है कि जो वीतराग होने से दूसरे को अपने समान बना लेता है, यह इसकी मूल विशेषता है। दूसरे मतवाले शिष्य को बहुत कुछ दे देवे, किन्तु पूरा तो नहीं देते। क्योंकि वह कषाययुक्त है।** वीतराग... (नहीं) कषाय जीव है। समझ में आया? ... है हों यह। १२० है। **जैनदर्शन ही एक ऐसा है कि जो वीतराग होने से...** जो वीतराग हो गये। **दूसरे को अपने समान बना लेता है, यह इसकी मूल विशेषता है। दूसरे मतवाले शिष्य को बहुत कुछ दे देवे किन्तु पूरा तो नहीं देते।** क्योंकि स्वयं पूरा नहीं। **क्योंकि वह कषाययुक्त है।** समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** देव किसे कहना? बस यह बात है। आहाहा! जिसे अरिहन्तदेव सर्वज्ञ अनन्त आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, वह जिसे बैठा, उसे भव नहीं होते। उसके भगवान ने भव देखे ही नहीं होते। पुरुषार्थहीनता—पावैया जैसी बातें हैं सब। ऐई! मारफाड़ करता हो, वह केवलज्ञान लेने के लिये परमेश्वर को जो माना, उसने पर

केवलज्ञान लेने का... अल्प भव में उसकी जाति की प्राप्ति उसे होनेवाली ही है। उसे और अनन्त भव हैं न, फलाना यह क्या? ऐसी वाणी आगम की होती है? सन्तों की ऐसी वाणी होती है? ...कहेंगे। कटोकटी का काल था तब। सम्प्रदाय में यह प्रश्न उठा बड़ा, यह (संवत्) १९७२ के वर्ष में नहीं? यह बात मार्ग वीतराग का नहीं। वीतराग के मार्ग की यह शैली नहीं। तुम कहते हो ... वीतराग जिसे बैठे, उसे भव होते नहीं। जो सुनने के कामी नहीं, वह सम्प्रदाय नहीं चाहिए, गुरु नहीं चाहिए, ... शास्त्र ऐसे नहीं चाहिए। (संवत्) १९७२। ५८ वर्ष (हुए)। कितनों का जन्म भी नहीं होगा। तुम्हारे ६५ हुए। परन्तु खबर नहीं होगी न।

यहाँ '**उदयकरो भव्वजीवाणं**' का अर्थ क्या किया पण्डित जयचन्द्रजी ने? **ऐसे देव सच्चे जिनदेव ही हैं,...** आहाहा! **वही भव्य जीवों के मनोरथ पूर्ण करते हैं,...** आहाहा! भगवानजीभाई! आहाहा! लो, यह फिर देव की बात हुई। आधा घण्टा हुआ। सवेरे याद आया था मुझे। कटोकटी का काल था। यह बात रखी। हीराजी महाराज को ऐसी... उसमें से भिन्न पड़कर... उम्र छोटी। पच्चीस वर्ष की उम्र। ... ढाई वर्ष ... आये रात्रि में सब सेठिया आये। क्या हुआ महाराज? कभी बोलते नहीं आप। इसमें वास्तविक पुरुषार्थ की गति वीतराग कहते हैं, वह रहती नहीं। शास्त्र में तो ऐसा कहा है। ... वहाँ। ... है न? ... तब तो वही था न। ...करनेवाले को भवच्छेद हो जाये। यह कहते हैं कि ऐसा करके कुछ नहीं होगा। उसे श्रद्धान... नहीं। यह आया वापस लिखा नहीं उत्तराध्ययन में। ... उसमें आता है। देखो, यह संसार परित किया है। संसार का भुक्का कर डाला है। यह भगवान ने कहा तत्प्रमाण करे और भव घटे नहीं, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। समझ में आया? कालीदासभाई! यह सुना नहीं होगा तुमने। तुमको याद नहीं होगा। पालियाद का बात (संवत्) १९७२ की। ... परन्तु यह तो छोटे थे तब। आर्जिका थीं वह एक... थी न वह? ... दीक्षा ली थी। शिवलाल... उसे वहाँ मध्यस्थ... वह बाई... राम जाने। ... ७२ में फाल्गुन शुक्ल चौदश होगी। बापू! मार्ग अन्दर में बैठे बिना मुझे... (किसी) रीति से बाहर की बात कोई रुचती नहीं। ऐसा मार्ग वीतराग का। आहाहा! बात ऐसी है आचार्यों ने, हों! दे... जिसका अर्थ यह कि वह उसे माल बताते हैं। देखा, यह तेरा माल है। हमारे में है, वह तुझमें है देख यह। आहाहा! तुझमें केवलज्ञान लेने

की ताकत है। कहीं अटकने की और रुकने की ताकत तेरी नहीं। ऐसा भगवान का पुकार आता है। इसलिए उन्होंने दिया, ऐसा कहा जाता है।

एक समय में केवलज्ञान और अनन्त आनन्द जिन्हें प्रगट हुआ, वे ऐसा कहते हैं कि एक समय में अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द तुझे प्रगट होगा। हम ऐसा कहना चाहते हैं और तू हमारे पास से इस बात को ग्रहण कर। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं यह।

**ऐसे देव सच्चे जिनदेव ही हैं,...** आहाहा! भगवानजीभाई! ऐसे वीतरागदेव। आहाहा! देखो न, निहालभाई में बहुत बात आ गयी। ...आहाहा! जिसे केवलज्ञान का सूरज जिसको उगा। उसने जो कहा और उसे जिसने माना, उसे क्या कमी रहती है? आहाहा! वह ऐसा कहते हैं। ऐसा का ऐसा ही अन्दर णमो अरिहंताणं, ऐसा नहीं। आहाहा! ढ़ेर अनाज उसे दिया ढ़ेर। आहाहा! उसके पास से... हजारों कलशी जो पके, उसका क्या कहलाता है? वह सेवक। सेवक को भी बहुत मिलता है। सेठ! दो कलशी पकता हो, उसमें सेवक को पाँच मण गेहूँ कहाँ से मिलते थे? सेवक नहीं समझे यह?

**मुमुक्षु :** काम करनेवाले।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** काम करनेवाले हो न यह लुहार, सुतार, किसान के पास काम करनेवाले हों और अमुक किसान दे बारह महीने में। जब पके न अनाज तब दे। परन्तु उसके पास हो, उसमें से उतना दे न! दो कलशी पका हो उसमें से दो मण कहाँ से दे? परन्तु सौ कलशी पका हो तो वह दो कलशी दे देवे, जा ले जा। इसी प्रकार भगवान के पास पाक इतना हुआ है। आहाहा! उसके सेवक अर्थात् सुननेवाले को ऐसा सब दे, ऐसा कहते हैं। सेठ! तब कहा था, हों! आहाहा! बड़े के सेवक सुतार और लुहार भी बड़े जोरदार होते हैं। जिसके घर में लाखों की आमदनी हो उसके लुहार... पाँच रुपये मिले, वह हो उसे? पके तब तो ले जाओ। गाड़ा भरकर अनाज, गाड़ा भरकर। जाओ। यहाँ कहाँ कमी है? इसी प्रकार त्रिलोकनाथ का जहाँ पाक हुआ अन्दर में। उसे सुननेवाला वडवाया अर्थात् उसके सेवक। वडवाया समझते हो? यह तुम्हारे काम करनेवाले हो न सुतार, लुहार। सुतार हो, लुहार हो, कुम्हार हो। वह अच्छा प्रसंग हो तो ऐसा ले जाये।

**मुमुक्षु :** फसल पके तब दे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दे बस वह। क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** आप तो भण्डार लेकर आये हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! भगवान के पास भण्डार था और वह सुना है। आहाहा!

कहते हैं, यहाँ तो भव्य जीव को उदय करनेवाला। एक ओर कहे कि पर जीव को देव कुछ कर नहीं सकते, वह किस अपेक्षा? वह निमित्त का कथन है। यह भी वह। उसने जो ऐसा कहा, ऐसा कि आहाहा! आत्म माल तो केवलज्ञान और केवलदर्शन ले, ऐसा माल तेरे पास है। हमने प्रगट किया, वही तुझे कहते हैं, ऐसा जिसने कहा और वैसा जिसने माना, उसे दिया ऐसा कहा जाता है। जिसके पास अल्पज्ञ और राग हो, वह क्या कहे उसे? उसे बतावे कहाँ से कि तुझमें ऐसा है। अनन्त ज्ञान और आनन्द का धनी है, प्रभु! वह अनन्त ज्ञान और आनन्द उसमें से निकला हमको। हमारी खान में से हमको आया। वह खान तू है। ऐसा वे भगवान केवली बता सकते हैं। दूसरे की हैसियत नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसका अर्थ कितना किया! **'उदयकरो भव्वजीवाणं' ऐसे देव सच्चे जिनदेव...** आहाहा! जिसने उनकी शरण ली अर्थात् आत्मा की (शरण) ली, उसने उनका शरण लिया, ऐसा कहा जाता है। ऐसी बातें हैं भाई! यह उसमें नहीं आया? ३१ गाथा में, भाई! केवली की स्तुति। केवली की स्तुति किसे कहना? ऐसा शिष्य ने पूछा। तब केवली की स्तुति उसे कहना, ऐसा जवाब दिया कि तेरे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु पड़ा है, उसकी एकाग्रता होना, उसका नाम केवली की स्तुति। वह पूछता है केवली की स्तुति। परन्तु वह केवली अर्थात् तू है, सुन न! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली तो गजब। एक-एक बात अन्दर बैठ जाये ऐसी अन्दर। और बैठी हुई, उनकी बातें वहाँ रखते हैं अन्दर। आहाहा! ऐसी रीति-पद्धति श्वेताम्बर में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? दिगम्बर सन्तों ने भण्डार खोलकर रखा है। आहाहा! इसे विश्वास आना चाहिए। बाकी सब बाहर की धूलधाणी है। आहाहा! लो, इस प्रकार से देव का स्वरूप कहा।

★ ★ ★

गाथा - २६

**आगे तीर्थ का स्वरूप कहते हैं :—** तीर्थ किसे कहना?

**वयसम्मत्तविसुद्धे, पंचेदियसंजदे णिरावेक्खे।**
**ण्हाएउ मुणी तित्थे, दिक्खासिक्खासुण्हाणेण॥२६॥**

**अर्थ :- व्रत-सम्यक्त्व से विशुद्ध और पाँच इन्द्रियों से संयत...** ऐसा तीर्थ होता है, ऐसा कहते हैं। यह नदी के, पर्वत के पानी में नहाकर तीर्थ मानते हैं, वह तीर्थ-बीर्थ नहीं। वहाँ तिरने का उपाय कहाँ था? यहाँ तिरने का उपाय यहाँ है, वह तीर्थ आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! यह शत्रुंजय में कहते हैं न, जो शत्रुंजय में न नहाये, उसका अवतार व्यर्थ जाये, ऐसी बातें करे। अवतार धूल भी नहीं लिया। आहाहा! बड़ी मछलियाँ बहुत नहाती है। आहाहा!

यहाँ तो तीर्थ उसे कहते हैं। है? २६ गाथा, २६ ऊपर। **व्रत-सम्यक्त्व से विशुद्ध...** जो आत्मा। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन, निश्चयसहित जिसे व्रत प्रगट हुए हैं अर्थात् जिसे चारित्र प्रगट हुआ है। **पाँच इन्द्रियों से संयत अर्थात् संवरसहित...** है। पाँच इन्द्रियों से जिसने परिणाम को रोका है। अणीन्द्रिय में परिणाम ले गया है। आहाहा! **तथा निरपेक्ष अर्थात् ख्याति, लाभ, पूजादिक इस लोक के फल की तथा परलोक में स्वर्गादिक के भोगों की अपेक्षा से रहित,...** है। जिसे दुनिया की ख्याति, लाभ की आवश्यकता नहीं। जिसे आत्मा के स्वभाव की प्रसिद्धि की आवश्यकता है। आहाहा! जिसने आत्मा में से एकाग्र होकर सम्यग्दर्शनसहित चारित्र प्रगट किया है और संवर-सहित इन्द्रियों का व्यापार रुक गया है। **ख्याति, लाभ, पूजादिक इस लोक के...** नहीं। जिसे परलोक की स्वर्गादि की इच्छा नहीं। **ऐसे आत्मस्वरूप तीर्थ में...** ऐसा आत्मस्वरूप तीर्थ। आहाहा! उसमें स्नान कर। आहाहा! सेठ! है या नहीं? यह तीर्थ है, फिर यह बाहर के तीर्थ का क्या करना ऐसा? वह तो निमित्त से (कथन) है। सम्मेदशिखर, शत्रुंजय। वह तो शुभभाव हो, तब होता है। निश्चय तीर्थ तो यह है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** जब तक इसकी महिमा न आवे तब तक?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तब तक उसकी महिमा करना। तब तक क्या है?

**मुमुक्षु :** तब तक अपनी महिमा रखना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, तब तक उस तीर्थ का करना, ऐसा कहते हैं। ऐसा कि इसकी महिमा न आवे, तब तक बाहर का तीर्थ करना, ऐसा। परन्तु बाहर का तीर्थ, वह तो व्यवहार है। निश्चय ऐसा आये बिना व्यवहार का तीर्थ नहीं हो सकता। ऐसी बात है भाई यह तो। आहाहा! यह है न सम्मेदशिखर जाये। 'एक बार वंदे जो कोई, तांहि नरक... पशु (गति नहीं होई)' धूल में भी नहीं वहाँ। वह तो व्यवहार तीर्थ है। निश्चय स्वरूप का जहाँ साधन है, आनन्द और शान्ति जहाँ प्रगट हुई है और चारित्र समकितसहित प्रगट हुआ है, वह तीर्थ है। वह तीर्थवाला जब अन्दर में स्थिर नहीं रह सकता, तब ऐसा वन्दन का—तीर्थ का शुभभाव होता है। उसने—टीकाकार ने बहुत वर्णन किया है। यह व्यवहार तीर्थ से ऐसा होता है और उससे मुक्ति होती है। व्यवहार तीर्थ, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। आवे अवश्य, परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। लोगों ने भारी खींचा है। बहुत लिखा है। यह तो शास्त्र का अर्थ है... निश्चय की बात है, वहाँ व्यवहार से ऐसा हो और व्यवहार से ऐसा हो और व्यवहार से ऐसा हो। धूल भी नहीं होता, अब सुन न! व्यवहार आता है, शुभभाव होता है। ... परन्तु उसकी मर्यादा पुण्य जितनी है। उसकी मर्यादा भव का अभाव करे, ऐसी मर्यादा नहीं है। पश्चात् सम्मेदशिखर जाये या गिरनार जाये। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

**'ण्हाएउ मुणी तित्थे' ऐसे आत्मस्वरूप तीर्थ में दीक्षा-शिक्षारूप स्नान से पवित्र होओ!** लो! आत्मस्वरूप में दीक्षा अन्दर। बाहर की दीक्षा वस्त्र बदलकर नग्न होकर बैठे, वह कहाँ दीक्षा थी? आहाहा! अन्तर आत्मा के आनन्दस्वरूप से भगवान भरपूर है। उसे आनन्द की दशा में प्रगटता करके जो उसकी दीक्षा लेता है, ऐसे आत्मस्वरूप तीर्थ में दीक्षा लेता है और उसकी शिक्षा जो पाता है, उसका ज्ञान, उस **स्नान से पवित्र होओ!** ऐसे दीक्षा-शिक्षा स्नान से पवित्र होओ। बाहर के किसी तीर्थ से पवित्र नहीं हुआ जाता। गजब भाई! वे कहे कि निश्चय... निश्चय... परन्तु निश्चय, वही पहला सत्य है, सुन न! व्यवहार होता है, परन्तु व्यवहार से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा नहीं है। व्यवहार होता है। दो नय है न! व्यवहार होता है। होता है इतनी बात। परन्तु उससे आगे लेकर व्यवहार से भी आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त हो या लाभ हो,

आत्मा को लाभ हो, यह बात उसमें नहीं है। समझ में आया? आहाहा! इसलिए यह जरा अवरोधक है लोगों को।

**मुमुक्षु :** .... हो जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ...है। उसे कहे उसको ऐसा स्थापित किया। व्यवहार विषय है, शुभभाव होता है। परन्तु उसकी मर्यादा से तुम ऐसा मानो कि उससे भव का अभाव होगा, ऐसी कुछ सामर्थ्य होगी, ऐसा नहीं है। भव के अभाव की सामर्थ्य तो भगवान आत्मा का आश्रय लेने से होती है। बाकी कुछ है नहीं। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' आहाहा! सोनगढ़ निश्चय... निश्चय की बातें करे। ऐसा कि यह शास्त्र से लाभ होता है, गुरु से लाभ होता है, देव से लाभ होता है, ऐसा कहे.... लाभ होता है वह? यहाँ से लाभ हो, इसका अर्थ कि तुझसे लाभ हो, तब इनसे लाभ होता है—ऐसा कहने में आता है। इसके लिये तो यह बात लगायी है। इसीलिए तो भव्य जीव लिया है। भव्य जीव को प्रगट करनेवाला। आहाहा! वह योग्यता उसे स्वयं की है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे भगवान की कही हुई बात बैठती है, स्थिर होता है, उसे यहाँ तीर्थ कहा जाता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** सोनगढ़ की बात सुनकर निरुत्तर हो जाते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निरुत्तर हो जाये। यह फाल्गुन शुक्ल तेरस को भाई यह... वह है। अपने तेरस है न? तब यह शत्रुंजय का छह कोस का क्या कहलाता है वह? प्रदक्षिणा। वह दिन है यह। यह शत्रुंजय का दिवस है। छह कोस के वे ढेबरा खाते हैं, नहीं ढेबरा। ढेबरा न? दही और ढेबरा। छह कोस के। .... प्रदक्षिणा करे शत्रुंजय की प्रदक्षिणा। फाल्गुन शुक्ल तेरस। यह अपने यहाँ फाल्गुन शुक्ल तेरस का यह है। शत्रुंजय का, तब अपने यह परमागम मन्दिर। आहाहा! **ऐसे निर्मल आत्मा के स्वभावरूप तीर्थ में...** लो, यह आया। **ऐसे आत्मस्वरूप तीर्थ में दीक्षा-शिक्षारूप स्नान से पवित्र होओ!**

**भावार्थ :- तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सहित...** अर्थात् सम्यग्दर्शनसहित। **पाँच महाव्रत से शुद्ध...** जिसे चारित्र प्रगट हुआ है और पंच महाव्रत भी जिसे है, ऐसा कहते हैं। **और**

**पाँच इन्द्रियों के विषयों से विरक्त...** यह सब मुनि की दशा का वर्णन है। वह दशा, वही तीर्थ है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इस लोक-परलोक में विषयभोगों की वांछा से रहित ऐसे निर्मल आत्मा के स्वभावरूप तीर्थ...** लो! ऐसा निर्मल आत्मस्वभावरूपी तीर्थ। आहाहा! **स्नान करने से...** उसमें **स्नान करने से पवित्र होते हैं...** बाहर की कोई शत्रुंजय और कोई सम्मेदशिखर (की यात्रा) में जाने से पवित्र होते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? उस समय धमाधम बहुत रही थी न! अलग पंथ निकला श्वेताम्बर का। बहुत निकाला था यह। यात्रायें, यह करना। साधु फुरसत में। कपड़ेवाले सर्वत्र जाये। यह नग्न मुनि कहाँ जाये? जंगल में रहते थे। इसलिए सब चला यह सब। उनके सामने यह बात है। यह तेरे तीर्थ-फीर्थ यह नहीं। यह तो निश्चय तीर्थ जो आत्मा के आनन्द स्वरूप में स्नान करना, वह तीर्थ है। पश्चात् ऐसा ही सामने व्यवहार हो, ऐसे तीर्थंकर की प्रतिमा ऐसा ही प्रतिबिम्ब। जिसके ऊपर वस्त्र नहीं, गहने नहीं। इत्र को लगाकर बड़ा... चोपड़ते है। लो, हम गये थे गिरनार। (संवत्) १९९६ में। तब वह ... बैठे थे वहाँ इत्र लगाते थे ऐसे। इत्र लगाकर चोपड़ते थे। जूनागढ़। बहुत हो गया। बहुत हो गया। इत्र के एक बिन्दु में बड़ा पाप है। ऐसा मार्ग होगा? एक इत्र के बिन्दु में सात गाँव को मारे, इतना पाप होता है। इत्र-इत्र। वह तो बहुत पापवाला। ... वहाँ बैठे थे इत्र लेकर। यहाँ वे लगाते थे भगवान को। बहुत बदल डाला। ऐसी मूर्ति नहीं होती। मूर्ति तो वीतराग बतावे। उसके ऊपर वस्त्र नहीं, उसके ऊपर तिलक भी नहीं, उसके ऊपर फूल भी नहीं। ...हो। वह तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। परन्तु यह निश्चय हो तो वह व्यवहार सच्चा हो। ऐसा जहाँ निश्चय नहीं, उसे व्यवहार मात्र पुण्यबन्ध करता है। समझ में आया? आहाहा!

**तीर्थ में स्नान करने से पवित्र होते हैं—ऐसी प्रेरणा करते हैं।** आचार्य महाराज जगत को यह प्रेरणा करते हैं। भाई! आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य और उसका समकित, उसका चारित्र अणीन्द्रियों का गमन, थोड़ा संवर, उसमें स्नान करो। आहाहा! वहाँ पवित्रता प्रगट होगी। बाहर के स्नान से और बाहर की स्थिरता से कहीं पवित्रता प्रगट नहीं होगी। सम्मेदशिखर की यात्रा हो तो पवित्रता नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। गिरनार और शत्रुंजय की यात्रा हो तो शुभभाव होता है। राग की मन्दता का शुभभाव होता है।

परन्तु यह निश्चय ऐसा तीर्थ हो उसे। यह सोनगढ़ की यात्रा। लिखा है उसमें। तीर्थधाम लिखा है उस आमन्त्रणपत्रिका में। आमन्त्रणपत्रिका लिखी है न, उसमें आया है तीर्थधाम सोनगढ़। ...है। लिखा है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आनुकूल... आहाहा! पत्रिका में है। पत्रिका अपने कहाँ हो? क्या कहलाता है वह? आमन्त्रणपत्रिका नहीं। आमन्त्रणपत्रिका का नाम उसका ... दूसरा नाम नहीं। ऐसा स्नान। आहाहा! बारम्बार बात तो यह वीतरागता में आओ, बस एक ही बात है। पूरे जैनशासन का सार, शास्त्र तात्पर्य आत्मा में से वीतरागता प्रगट करना, वह वीतरागता, वह तीर्थ है। वह तुझे तिरने का उपाय वह है। तिरने का उपाय यहाँ नहीं। भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग, वह तिरने का उपाय, वह तीर्थ है। वह तीर्थ है। पण्डितजी! यह तो धमाधम करेंगे उसमें। ... वे तो रुपया पहनाते हैं, हों! पचास हजार, लाख, दो लाख। उसके ब्याज में दे... अपने कर सकते नहीं। धूल भी नहीं वहाँ पाँच लाख क्या? वह तो सब...

स्वरूप में से माल निकालकर दान दे तुझे तू, वह तेरा तीर्थ है। तेरा तीर्थ तुझसे अलग होता नहीं। आहाहा! तिरने का उपाय तो भगवान आत्मा का... वह शुद्ध आनन्दघन प्रभु। उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, उसे यहाँ तीर्थ कहा गया है भगवान के उसमें। '**जिणमग्गे**' है न? २७वीं में अब आयेगा। '**तित्थं जिणमग्गे**' अब आयेगा। २७ में आयेगा।

★ ★ ★

**गाथा - २७**

**जं णिम्मलं सुधम्मं, सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।**
**तं तित्थं जिणमग्गे, हवेइ जदि संतिभावेण॥२७॥**

लो! जिनमार्ग में तो उसे तीर्थ कहते हैं। वह तो व्यवहार (तीर्थ) है सम्मेदशिखर, गिरनार। सिद्धगिरि। लो। सिद्धगिरि। व्यवहार है। '**तं तित्थं जिणमग्गे, हवेइ जदि**

**संतिभावेण**' शान्तभाव यदि कषायरहित हो तो, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**अर्थ :- जिनमार्ग में वह तीर्थ है...** लो, वीतरागमार्ग में यह तीर्थ है। आत्मा का स्वभाव शुद्ध प्रगट करना, वह (तीर्थ है)। वह मोक्ष का मार्ग, वह जैनमार्ग में तीर्थ है। तिरने का उपाय कहो या मोक्ष का उपाय कहो। वह तीर्थ है। आहाहा! **जिनमार्ग में वह तीर्थ है जो निर्मल उत्तमक्षमादिक धर्म...** स्पष्टीकरण किया। सम्यग्दर्शनसहित उत्तम क्षमा। आते हैं न दस प्रकार? मुनिधर्म। **तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण, शंकादिमलरहित निर्मल सम्यक्त्व...** ऐसा। **निर्मल उत्तमक्षमादिक धर्म तथा तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण, शंकादि-मलरहित निर्मल सम्यक्त्व तथा इन्द्रिय-मन को वश में करना,...** संयम। संयम है न?

**षट्काय के जीवों की रक्षा करना,...** रक्षा का अर्थ छह काय जीव को नहीं मारना। व्यवहार तप की बात करते हैं। अनशन, आहार का त्याग, ऊनोदर, ऊनोदर, **वृत्तिपरिसंख्यान,...** वृत्ति का संकोच करना। **रसपरित्याग, विविक्तशैय्यासन,...** एकान्त में रहना। ... आदि का संग नहीं। **कायक्लेश ऐसे बाह्य छह प्रकार के तप और प्रायश्चित,...** लगे हुए पाप का प्रायश्चित्त करना, विनय करना, **वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग...** अर्थात् कायोत्सर्ग, फिर **ध्यान, ऐसे छह प्रकार के अन्तरंग तप—इस प्रकार बारह प्रकार के निर्मल तप और जीव-अजीव आदि पदार्थों का...** परन्तु अन्दर में इच्छा निरोध होकर जो हो वह, ऐसा। '**णाणं**' कहा है न, '**णाणं**' '**ण्हाएउ मुणी**' था पहले में, यहाँ '**णाणं**' है।

**जीव-अजीव आदि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान,...** यह जीव और अजीव, पुण्य और पाप और आत्मा का भिन्न यथार्थ ज्ञान, वह तीर्थ है। आहाहा! समझ में आया? **ये भी यदि शान्तभावसहित हों,...** तो, ऐसा। उसमें भी कषायरहित हो, **कषायभाव न हो तब निर्मल तीर्थं,...** है। आहाहा! **क्योंकि यदि ये क्रोधादिभावसहित हों तो मलिनता हो...** ऐसा। मलिनता, वह कोई तीर्थ नहीं। निर्मल आत्मा का स्वभाव रागरहित, क्रोधरहित, कषायरहित, ऐसा जो आत्मा के वीतरागी परिणाम, उन्हें यहाँ तीर्थ कहा गया है। आहाहा! दूसरे में तीर्थपना होता नहीं। भावतीर्थ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मगसिर कृष्ण ११, गुरुवार, दिनांक-२०-१२-१९७३**
**गाथा - २८ से ३२, प्रवचन-७२**

...दूसरा बोल है न ११ (में)। ९ बोल चले। १०वाँ बोल है। अर्हंत किसे कहना। उस समय फेरफार हो गया था न अरिहन्त के नाम से। इसलिए अरिहन्त का वास्तविक स्वरूप कैसा है? यह वर्णन करते हैं।

**मुमुक्षु :** भावार्थ बाकी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भावार्थ बाकी रहा।

**भावार्थ :- जिनमार्ग में तो इस प्रकार तीर्थ कहा है। लोग सागर-नदियों को तीर्थ मानकर स्नान करके पवित्र होना चाहते हैं; वहाँ शरीर का बाह्यमल इनसे कुछ उतरता है, परन्तु शरीर के भीतर का धातु-उपधातुरूप अन्तर्मल इनसे उतरता नहीं...** शरीर का अन्तर का धातु मैल नहीं उतरे तो फिर राग-द्वेष तो कहाँ से उतरे? ऐसा कहते हैं। ऊपर का मैल उतरे, परन्तु शरीर का भी अन्दर का मैल न उतरे।

**तथा ज्ञानावरण आदि कर्मरूप मल और अज्ञान राग-द्वेष-मोह आदि भावकर्मरूप मल आत्मा के अन्तर्मल हैं, वह तो इनसे कुछ भी उतरते नहीं हैं,...** नदी में नहाये। गंगा और शत्रुंजय। कुछ नहीं मिलता। राग-द्वेष तो जाते नहीं। अन्तर शरीर का मैल अन्दर का जाता नहीं तो राग-द्वेष कहाँ से जाये? **हिंसादिक से पापकर्मरूप मल लगता है,...** लो! स्नान करने से पानी के जीव मरे। **इसलिए सागर, नदी आदि को तीर्थ मानना भ्रम है। जिससे तिरे सो तीर्थ है,...** लो! आत्मा अपने स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—चारित्र से तिरे, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तीर्थ है। भगवान आत्मा अपने स्वरूप की श्रद्धा ज्ञान और रमणता द्वारा भव सागर से तिरे, वह तीर्थ कहा जाता है। बाहर के तीर्थ तो व्यवहार से (कहे जाते हैं)।

★ ★ ★

गाथा - २८

**आगे अरहन्त का स्वरूप कहते हैं :-**

**णामे ठवणे हि संदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।**
**चउणागदि संपदिमे भावा भावंति अरहंतं॥२८॥**

जिसका नाम अरिहन्त। वह यहाँ गुणवाला लेना है। अकेला नामनिक्षेप नहीं। चार निक्षेप हैं, वे यहाँ नहीं लेना। **स्थापना...** दूसरे प्रकार से भाषा ली। **द्रव्य, भाव ये चार भाव अर्थात् पदार्थ हैं, ये अरहन्त को बतलाते हैं...** अरिहन्त को बताते हैं। **'सगुणपज्जाया' अर्थात् अरहन्त के गुण-पर्यायोंसहित...** अरिहन्त के गुण और उनकी पर्यायसहित और **चउणा अर्थात् च्यवन...** अरिहन्त कहाँ से आवे और कहाँ जाये? **आगति व सम्पदा...** समझ में आया? श्वेताम्बर में कहते हैं न कि त्रिशला के गर्भ से... देवनन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में आये। ऐसा नहीं होता, यह बतलाना चाहते हैं। तीर्थंकर तो... हो, वह तो स्वर्ग-नरक से आवे। अरिहन्त जो हो, वे या स्वर्ग में से आवे और या नरक में से आवे। क्या?

**मुमुक्षु :** स्वर्ग में से आवे और नरक में से आवे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तीर्थंकर नरक में से आवे? नरक में से आवे। यह श्रेणिक राजा। नरक में है न अभी। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। स्वर्ग और नरक में से आवे, परन्तु मनुष्य मरकर मनुष्य तीर्थंकर हो, यह नहीं होता, ऐसा कहते हैं। पहले देवनन्दा के गर्भ में थे बाकी वह वहाँ से बदलकर आये त्रिशला के गर्भ में, यह नहीं— ऐसा यहाँ बताते हैं। समझ में आया? श्वेताम्बर में तो आता है न स्वर्ग में से... आये। पहले आये देवनन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में। वहाँ बाकी रात्रि रहे। फिर इन्द्र ने आकर त्रिशला के गर्भ में रखे। ...रखे इन्द्र ने रखे? यह बड़ा फेरफार पूरा हो गया है।

**मुमुक्षु :** देवानन्द के गर्भ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ...मिलान बिना की बातें हैं सब। ऐसी बात है सब।

यह तो जैनधर्म वीतराग। गाँधी है? गाँधी? समझ में आया? आहाहा! धर्म

चीज़ ऐसी सूक्ष्म है। अरिहन्त को पहिचानना वह उसमें है। ऐई! भगवानजीभाई! आहाहा! श्वेताम्बर में पूरा अरिहन्त का स्वरूप ही बदल डाला पूरा। इसलिए यह बात करते हैं। च्यवन है न शब्द? च्यवन। वह मनुष्य में से फिर से मनुष्य में आवे, ऐसा नहीं होता। वह स्वर्ग और नरक में से ही आवे। समझ में आया? अरिहन्त का स्वरूप पूरा फेरफार कर डाला है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अछेरा ऐसे खोटे। अछेरा अर्थात्? यह सब खोटी बात है। इसके लिये तो यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य स्पष्टीकरण करते हैं। उसका **च्यवन और आगति व सम्पदा ऐसे ये भाव अरहन्त को बतलाते हैं।**

**भावार्थ :- अरहन्त शब्द से यद्यपि सामान्य अपेक्षा केवलज्ञानी हों...** लो, आया। केवलज्ञानी और तीर्थंकर सब अरिहन्त में आ जाये। परन्तु **वे सब ही अरहन्त हैं तो भी यहाँ तीर्थंकर पद की प्रधानता से कथन करते हैं...** अरिहन्त केवलज्ञानी भी होते हैं। उनकी यहाँ बात नहीं है। क्योंकि जो केवलज्ञानी होनेवाले हों, वे तो फिर कोई मनुष्य में से आये हों या पशु में से आये हों। मनुष्य होकर। ...केवलज्ञान पावे। परन्तु यहाँ तो तीर्थंकर की बात है। वह तीर्थंकर मनुष्य मरकर मनुष्य नहीं होता। वह पशु में से तीर्थंकर नहीं होता। यह बात सिद्ध करने को अरिहन्त का स्वरूप खास... देखो, भगवान का... यह वर्णन करते हैं।

**नामादिक से बतलाना कहा। लोकव्यवहार में नाम आदि की प्रवृत्ति इस प्रकार है—** यह लोक व्यवहार में अपने। चार निक्षेप। **जो जिस वस्तु का नाम हो, वैसा गुण न हो उसको नामनिक्षेप कहते हैं।** वह यहाँ नहीं लेना। नामनिक्षेप अभी नहीं लेना। धनलक्ष्मी है नाम फलाना हो जरा... वह नाम। वह यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो गुणवाला नाम लेना है। **जिस वस्तु का जैसा आकार हो, उस आकार की काष्ठ-पाषाणादिक की मूर्ति...** लकड़ी की-पत्थर की **मूर्ति बनाकर उसका संकल्प करे, उसको स्थापना कहते हैं।** वह यहाँ नहीं लेना। यह स्थापना जो भगवान की मूर्ति है, वह निक्षेप है। भगवान का स्थापना निक्षेप है। वह व्यवहार की प्रवृत्ति में है। निश्चय में वह बात यहाँ नहीं। समझ में आया?

**जिस वस्तु की पहली अवस्था हो, उस ही को आगे की अवस्था प्रधान करके कहे उसको द्रव्य कहते हैं।** पहली अवस्था हो और बाद में कहे, सेठ! बालक हो उसे सेठ कहे। **आगे की अवस्था प्रधान करके कहे, उसको द्रव्य कहते हैं।** चार निक्षेप की बात की, हों! व्यवहार की बात में अन्दर यह है। **वर्तमान में जो अवस्था हो, उसको भाव कहते हैं। ऐसे चार निक्षेप की प्रवृत्ति है। उसका कथन शास्त्र में भी लोगों को समझाने के लिये किया है।** यह यहाँ बात नहीं करना, ऐसा कहना है। **निक्षेप विधान द्वारा नाम, स्थापना द्रव्य को भाव न समझे...** कैसे समझाया है उसमें चार निक्षेप का शास्त्र में? कि **नाम को नाम समझे, स्थापना को स्थापना समझे, द्रव्य को द्रव्य समझे, भाव को भाव समक्षे, अन्य को अन्य समझे, अन्यथा तो व्यभिचार नाम का दोष आता है। उसे दूर करने के लिये लोगों को यथार्थ समझने को शास्त्र में कथन है।** चार निक्षेप का। नामनिक्षेप में द्रव्य न आ जाये, द्रव्य में भाव न आ जाये, भाव में स्थापना न आवे। चार की भूमिका बताने को लोगों में चार स्थापना व्यवहार से है।

**किन्तु यहाँ वैसा निक्षेप का कथन नहीं समझना।** यहाँ ऐसा नहीं। यहाँ तो पूरा गुण से वर्णन किया जाता है। **यहाँ तो निश्चय की प्रधानता से कथन है ऐसा जैसा अरहन्त का नाम है, वैसा ही गुणसहित नाम जानना...** अरिहन्त का नाम है, वह गुणसहित नाम जानना। अकेला अरिहन्त कहलाये। दुश्मन को मारे, उसे अरिहन्त कहा जाता है, वह बाहर में। मारे नहीं और अकेला नाम दे तो अरिहन्त कहलाये। वह यहाँ नहीं। यहाँ तो **अरहन्त का नाम है, वैसा ही गुणसहित नाम जानना...** स्थापना **जैसी उनकी देह सहित मूर्ति...** यह लेना। यह स्थापना नहीं। यह स्थापना व्यवहार में जाती है। आहाहा! **जैसा उसका द्रव्य है...** अर्थात् वस्तु। उसका आत्मा। **वैसा द्रव्य जानना, और जैसा उसका भाव है, वैसा ही भाव जानना।**

★ ★ ★

## गाथा - २९

**इस प्रकार ही कथन आगे करते हैं। प्रथम ही नाम को प्रधान करके कहते हैं:-** लो! अब अरिहन्त का नाम वह गुणनिष्पन्न है। ऐसे गुणनिष्पन्न के नाम को अरिहन्त कहा जाता है।

**दंसण अणंत णाणे, मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।**
**णिरुवमगुणमारूढो, अरहंतो एरिसो होइ॥२९॥**

देखो न आचार्य को ऐसा कहना है। अरिहन्त ऐसे होते हैं।

**अर्थ :- जिनके दर्शन और ज्ञान ये तो अनन्त हैं,...** आहाहा! जिसकी दर्शन और ज्ञान की पर्याय अनन्त है। अनन्त को जानते और देखते हैं। ऐसे अरिहन्त। है न '**दंसण**' और ज्ञान साथ में इकट्ठा डाला। उसमें फेर है न उसमें, भाई! दर्शन और ज्ञान क्रमशः हो, वह यहाँ नहीं। उसके सामने यह बात है। अनन्त है एक समय में। भगवान को देखना और जानना एक समय में अनन्त है। पहले समय में देखे और दूसरे समय में जाने, वह अरिहन्त की ... ही नहीं।

**मुमुक्षु :** आधा काल ज्ञान बिना का....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञान बिना का और आधा ज्ञान दर्शन बिना का। ऐसा नहीं। बहुत फेरफार कर डाला भाई! श्वेताम्बर जैनदर्शन में से भ्रष्ट होकर निकले, बहुत फेरफार किया। बहुत कठिन बात है पूरी। रूढ़ीगत के माननेवाले को यह सब कठोर लगे। यह सुधरे हुए को अभी बहुत कुछ पड़े न हो। नवनीतभाई! अन्य में ऐसे सुधरे हुए बहुत पड़े न हो। उन्हें नया सुनने का... परन्तु पुराने व्यक्ति जो हो गये हों उन्हें, हमारा धर्म खोटा है, ऐसा कहे। बापू! यह तो परमसत्य वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ है। इसे अरिहन्त का स्वरूप तो जानना चाहिए। आहाहा!

भगवान तो अनन्त दर्शन और ज्ञानसहित है, ऐसा कहते हैं। एक समय में साथ में। यह अन्त आ गया। ज्ञान का एक समय और दूसरे समय में दर्शन और तीसरे समय में ज्ञान, ऐसा श्वेताम्बर में आता है। सूत्र ३२, ४५। सब कल्पना अलग बात है। भारी

कठिन बातें! सम्प्रदाय बाँधकर तत्त्व की बात ऐसी फेरफार हो गयी। कहो, कान्तिभाई! तुम्हारे वहाँ उसमें पड़े थे? उसमें भी पड़े नहीं। आया तब यह आया। पहिचानते हो न? मन्दिर में रहते हैं। ब्रह्मचारी है स्वयं और लाखोंपति व्यक्ति है। पन्द्रह सौ का मासिक वेतन है। प्लेन में नौकरी (छोड़ दी)। पन्द्रह सौ मासिक वेतन, हों! यह निवृत्ति के लिये। वाँचन और श्रवण अधिक मिले। समझ में आया? यह कहा है... स्थानकवासी थे नहीं? स्थानकवासी हैं। यहाँ तो वासी कुछ नहीं। वीतराग है, वह मार्ग है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

अनन्त ज्ञान और अनन्त जिसे दर्शन है। आहाहा! सर्वज्ञ अरिहन्त तो उसे कहते हैं। यहाँ तीर्थंकर की प्रधानता से बात है, हों! कि एक ही सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिसे अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन एक समय में अद्भुत जिसकी शक्ति। दर्शन में सामान्यरूप से देखे भेद पाड़े बिना और ज्ञान में भेद पाड़कर एक-एक समय की पर्याय, गुण, द्रव्य आदि। ऐसी जिसकी पर्याय की अद्भुतता है, उसे यहाँ अरिहन्त कहा जाता है। णमो अरिहंताणं की अभी खबर नहीं होती। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं गाड़ी हाँके जाये। हो गया।

**घातिकर्म के नाश से सब ज्ञेय पदार्थों को देखना व जानना है,...** लो! है न? **सब ज्ञेय पदार्थों को देखना व जानना है,...** आहाहा! यह '**अणंत णाणे**' में से लिया है। ....अब आयेगा। सब ज्ञान दर्शन... यह घातिकर्म का नाश हो गया है। आहाहा! अपने को खुल गया है सब। **सब ज्ञेय पदार्थों को...** तीन काल के ज्ञेय अर्थात् ज्ञान में ज्ञात हो ऐसी चीज़—द्रव्य, गुण और पर्याय सबको एक समय में भगवान जानते और देखते हैं। आहाहा! ऐसी अरिहन्त की पर्याय इतनी महा सामर्थ्यवाली। ऐसा आत्मा, उसे अरिहन्त कहते हैं, कहते हैं।

और **अष्ट कर्मों का बन्ध नष्ट होने से मोक्ष है। 'मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण'** आठों ही कर्म का बन्ध का नाश किया है। है तो अरिहन्त। परन्तु एक अपेक्षा से आठों ही कर्म का नाश किया कहा जाता है। चार तो नाश ही है और चार नाश होने के योग्य है और उन्हें बन्ध है नहीं। इस अपेक्षा से आठ कर्म का नाश कहा जाता है। **यहाँ सत्त्व की और उदय की विवक्षा न लेना,...** कर्म का उदय और सत्ता पड़ी है, ऐसा यहाँ नहीं लेना।

**केवली के आठों ही कर्म का बन्ध नहीं है।** लो, बन्ध नहीं, ऐसा। बन्ध के लिये आठों कर्म छूटे हैं।

**यद्यपि साता वेदनीय का आस्त्रव भाव बन्ध सिद्धान्त में कहा है...** साता वेदनीय एक समय के रजकण केवली तीर्थंकर को भी आते हैं, ऐसा कहा है। **तथापि स्थिति-अनुभागरूप बन्ध नहीं है,...** स्थिति नहीं और एक समय है। **इसलिए अबन्धतुल्य ही हैं।** इस अपेक्षा से अबन्धतुल्य, इसलिए आठ कर्म का नाश है, ऐसा है। **इस प्रकार आठों ही कर्मबन्ध के अभाव की अपेक्षा भावमोक्ष कहलाता है...** देखो! अरिहन्त को भावमोक्ष है। आहाहा! अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, पूर्ण प्रगट दशा हो गयी है उन्हें। जिस जीव को मोक्ष साध्य है, उसे यह अरिहन्त को पहिचानना पड़ेगा, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**आठों ही कर्मबन्ध के अभाव की अपेक्षा भावमोक्ष कहलाता है और उपमारहित गुणों से आरूढ़ हैं-सहित हैं। 'णिरुवमगुणमारूढो'** आहाहा! जिनके गुण की उपमा क्या कहलाये? जिनके एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो, ऐसी ही पर्याय की उपमा क्या कहलाये? कहते हैं। ऐसे दर्शन, ऐसे आनन्द, ऐसी स्वच्छता, प्रभुता अनन्त गुण पूर्ण खिलकर विकसित हो गये हैं। अरिहन्त को अनन्त गुणों की राशि शक्तिरूप ध्रुवरूप थी, वह वर्तमान पर्यायरूप विकसित होकर पूर्ण पर्याय प्रगट हो गयी है। उन्हें यहाँ अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा! जैसे लाख पंखुड़ी का कमल हो, वह खिले, ऐसा दिखाई दे, उसी प्रकार पूरी शक्ति खिल गयी है। दोपहर में शक्ति का वर्णन किया जाता है न? ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड जो ध्रुव था, उसमें से सब व्यक्ति, शक्ति में से व्यक्ति पूर्ण प्रगट हो गयी है। व्यक्ति अर्थात् एक व्यक्ति जीव, ऐसा नहीं वहाँ। व्यक्ति अर्थात् प्रगटता। आहाहा!

जैसे पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई शक्तिरूप से है। पीपर का दाना छोटीपीपर। वह प्रगट होती है। वह व्यक्ति—प्रगट कहलाती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में अन्दर शक्तिरूप से अन्दर अनन्त शक्तियाँ हैं, उसकी व्यक्तिरूप से प्रगटरूप से दशा अनन्त प्रगट हो गयी। आहाहा! एक अरिहन्त को जाने तो वह आत्मा को जाने। आहाहा! **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'** द्रव्य, गुण और पर्याय अरिहन्त

के जाने, वह '**सो जाणदि अप्पाणं**' वह आत्मा को जाने। वह आत्मा के साथ मिलान करे कि उनका द्रव्य, गुण ऐसे और पर्याय ऐसी, वह मुझमें है या नहीं? उसकी पर्याय का झुकाव द्रव्य के ऊपर करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करके पूर्ण साधन करके केवलज्ञान पाये। मार्ग, ऐसा मार्ग है। आहाहा! पर के अवलम्बनरहित और वस्तु के आलम्बनवाला। अपनी निज वस्तु का आलम्बन। ऐसे भगवान को **उपमारहित गुणों से आरूढ़ हैं-सहित हैं।** ऐसा। गुण शब्द से यहाँ पर्याय है। जिसकी पर्याय पूर्ण प्रगट हुई है, ऐसे गुणों के समूह में जिसकी आरूढ़ता हुई है, उसे अरिहन्त कहते हैं। **इस प्रकार गुण छद्मस्थ में कहीं भी नहीं हैं,...** ऐसे गुण छद्मस्थ के कभी होते नहीं। **इसलिए जिनमें उपमारहित गुण हैं, ऐसे अरहन्त होते हैं।** लो! उसे अरिहन्त कहा जाता है।

**भावार्थ :- केवल नाममात्र ही अरहन्त हो, उसको अरहन्त नहीं कहते हैं।** नाममात्र तो अरिहन्त तो बहुत नाम दे। **इस प्रकार के गुणों से सहित हों, उनका नाम अरहन्त कहते हैं।** लो!

★ ★ ★

**गाथा - ३०**

**आगे फिर कहते हैं :—**

**जरवाहिजम्मरणं, चउगइगमणं च पुण्णपावं च।**
**हंतूण दोसकम्मे, हुउ णाणमयं च अरहंतो॥३०॥**

... के अर्थ में यह अगास (प्रकाशन) में अर्थ किया है न उसमें व्याधि का अर्थ छोड़ दिया। ...गायन बनाया। अर्थ में छोड़ दिया। जरा, व्याधि है न? वह व्याधि है, वह ऐसा कि उसमें यह शब्द पड़ा है अर्थ में। लाइन बनायी उसमें है। पाठ में है। आता है न शरीर हो उसे रोग होता है, फलाना होता है। २९ में आता है। ...थे, ऐसा। अरिहन्त को रोग होता ही नहीं। समझ में आया? महासाता। उनकी असाता टल गयी है... उन्हें रोग है क्या? यह श्वेताम्बर कहते हैं न, उन्हें—भगवान को छह महीने तक रोग हुआ था। अतिसार। खूनी दस्त छह महीने रहा। गोशाल ने तेजोलेश्या डाली, समवसरण में

भगवान के नाम से... समझ में आया? छह महीने भगवान को भी रोग रहा, यह बात सत्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बातें, बापू! मार्ग अलग है। अरिहन्त का पूरा मार्ग अलग है। दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। ...शब्द पड़ा रहा। वह पड़ा रहा, ऐसा लगता है। भगवान को रोग होता नहीं, इसकी मजाक करते हैं। ... पड़ता है?

अरिहन्त को **जरा...** नहीं होती। यह उनका शरीर जीर्ण नहीं होता। करोड़ वर्ष रहे, करोड़ पूर्व रहे तो भी शरीर जीर्ण नहीं होता। महापुण्यप्रकृति लेकर आये हैं न! और तीर्थंकर प्रकृति है। परम औदारिकशरीर तो पहले से होता है, जन्मे तब से। उन्हें बुढ़ापा आता ही नहीं। ऐसी उनकी शरीर की दशा होती है। **व्याधि,...** उन्हें नहीं होती और **बुढ़ापा,...** नहीं होता। जरा अर्थात् बुढ़ापा। जरा की व्याख्या बुढ़ापा। **व्याधि,...** रोग नहीं होता अरिहन्त को। समझ में आया? श्वेताम्बर में भगवती (सूत्र) के ... में शतक में आता है। गोशाल ने तेजोलेश्या डाली, छह महीने रोग रहा। साधु दवा लेने गये। दवा लाये, रोग मिट गया। दवा खायी। ऐसा नहीं, भाई! वह वस्तु सब कल्पित है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा मार्ग और उसका स्वरूप वह दिगम्बर धर्म में है, वह सत्य है। समझ में आया? उन्हें—भगवान को रोग नहीं होता, शरीर को रोग नहीं होता, हों! आत्मा को तो रोग कहाँ है?

**रोग...** नहीं होता, रोग। उन्हें **जन्म...** नहीं होता। देह छूटने के पश्चात् उन्हें जन्म नहीं होता। भगवान को फिर **मरण...** भी नहीं होता। मरण तो उसे कहते हैं कि वापस जन्म ले तो मरण कहते हैं। वे तो मोक्ष जानेवाले हैं। अरिहन्त तो देह छूटे तो मोक्ष—परमात्मपद सिद्धपद (होता है)। णमो सिद्धाणं। आहाहा! लोगों को कहाँ निवृत्ति है यह? संसार के पाप के कारण (निवृत्ति नहीं है)। कमाना... कमाना... आहाहा! भगवान कैसे थे और कौन थे, यह जानने की दरकार भी कहाँ है? लो अब... वापस। उन्हें मरण नहीं होता। अरिहन्त को मरण नहीं। देह नहीं छूटती? परन्तु देह छूटे, वह मरण कहाँ है? वह तो केवलज्ञानसहित सिद्धपद में जानेवाले हैं। जन्म हो, उसे मरण कहा जाता है। मरकर जन्मे, उसे मरण कहा जाता है। आहाहा! लो, तलकशीभाई उड़ गये अन्दर। सोते हुए कब मरे, इसकी खबर नहीं पड़ती, कहो। आहाहा! ग्यारह बजे तक तो बातें करते थे और करोड़पति व्यक्ति। दोनों लड़के करोड़पति।

**मुमुक्षु :** क्या काम आये ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं आये। ऐसे पड़े रहे। उस समय श्वास कैसे हुआ, वह कोई सामने देखनेवाला नहीं होता। तलकशीभाई थे अपने वढ़वाण शहर के प्रमुख। सब रामजीभाई के मित्र।

**मुमुक्षु :** प्रमुख थे। वहाँ की संस्था के।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रमुख। वढ़वाण के .... लड़के दो।

**मुमुक्षु :** लाखों की सम्पत्ति....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करोड़ों रुपये लड़के के पास है।

**मुमुक्षु :** शान्ति से तो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी शान्ति नहीं। रुपये... होली है। आहाहा! ग्यारह बजे तक, कहे, बातें करते थे। सोने के बाद दो बजे देखने गये। एक बाई है पकानेवाली, काम करनेवाली। चले गये। सेठ को कुछ नहीं। आओ आओ देखो। कुछ नहीं मिलता। आहाहा! लड़के पड़े रहे मुम्बई। पैसे पड़े रहे पैसे के घर में। आहाहा! शरीर पड़ा रहा शरीर। आहाहा! यहाँ से कहाँ जाना है, उसका कुछ ठिकाना नहीं होता और यहाँ सब सारसम्हाल। आहाहा!

**चारों गतियों में गमन,...** भगवान को नहीं होता। **पुण्य-पाप...** भगवान को नहीं होता। पूर्व के पुण्य हैं, वह गिनती में नहीं गिना जाता। **दोषों को उत्पन्न करनेवाले कर्मों का नाश करके,...** लो! उन्हें पुण्य से कर्म बँधे, यह भी नहीं, ऐसा कहते हैं। **केवलज्ञानमयी अरहन्त हुआ हो...** है न ? '**णाणमयं च अरहंतो**' अकेला ज्ञान की मूर्ति प्रभु हो गये। जैसा उसका स्वभाव भगवान आत्मा का ज्ञानमय... ज्ञानमय... है। ऐसी दशा ज्ञानमय हो गयी। उसे यहाँ अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा!

**भावार्थ :- पहली गाथा में तो गुणों के सद्भाव से... पहली गाथा में तो गुणों के सद्भाव से अरहन्त नाम कहा और इस गाथा में दोषों के अभाव से अरहन्त नाम कहा।** अस्ति-नास्ति। भगवान को **राग,...** नहीं होता। **द्वेष,...** नहीं होता। अरिहन्त को किसी के ऊपर द्वेष नहीं होता। **मद...** नहीं होता, अभिमान नहीं होता। **मोह...** नहीं होता,

**अरति...** खेद नहीं होता, **चिन्ता...** नहीं होती। **भय...** नहीं होता, **निद्रा...** नहीं होती। निद्रा कैसी? ...नाश हो गया न, भाई! **विषाद, खेद...** विषाद नहीं होता। यह खेद आदि। खेद नहीं होता। **विस्मय,...** नहीं होता। उन्हें विस्मय नहीं होता। विस्मय क्या हो? तीन काल-तीन लोक जाने, उन्हें विस्मय कैसा? आहाहा! ऐसे अरिहन्त के गुणों को पहिचानकर अरिहन्तपना ज्ञात होता है और वे अरिहन्त ऐसे होते हैं, ऐसा जाने, वह आत्मा ऐसा हो सकता है। ऐसी उसे अरिहन्त की श्रद्धा अर्थात् आत्मा की श्रद्धा होती है।

**और...** अरिहन्त को **क्षुधा...** नहीं होती। लो, यह आया। भगवान को क्षुधा लगी। दवा ले आये। दवा खायी, सब प्रसन्न हुए। ऐसा पाठ पन्द्रहवें शतक में आता है भगवती (सूत्र में)। सब कल्पित बनाया हुआ है। परन्तु क्या हो अभी बड़ा सम्प्रदाय वह है। वस्तु (की) कुछ खबर रही नहीं। जब से यह मार्ग अलग पड़ा, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! तीर्थंकर के शरीर को क्षुधा नहीं होहती, केवल (ज्ञान) के समय, हों! **तृषा...** उन्हें नहीं होती। उन्हें पानी पीने का नहीं होता। **जन्म...** नहीं, **जरा...** नहीं, **मरण...** नहीं। वह यह अघाति की बात है। घाति के इतने दोष। मरण नहीं होता और **रोग और स्वेद...** स्वेद अर्थात् पसीना। भगवान के शरीर में पसीना नहीं होता। **ये सात दोष अघातिकर्म के उदय से होते हैं।** लो! ११ और ७ = अठारह दोषरहित अरिहन्त होते हैं। यह कहे, इन अठारह दोषरहित, हों! वे कहते तो हैं अठारह, परन्तु दूसरे।

**मुमुक्षु :** अशुद्धि....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह न आवे। क्षुधा, तृषा, रोग यह न आवे। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बात है।

**अघातिकर्म में इन दोषों को उत्पन्न करनेवाली पाप प्रकृतियों के उदय का अरहन्त को अभाव है और राग-द्वेषादिक दोषों का घातिकर्म के अभाव से अभाव है। यहाँ कोई पूछे—अर्हंत को मरण का और पुण्य का अभाव कहा; मोक्षगमन होना, यह मरण अरहन्त के हैं...** भगवान का देह छूट जाता है तो मरण है। ऐसा प्रश्न शिष्य करता है। **पुण्यप्रकृतियों का उदय पाया जाता है,...** पुण्य प्रकृति का उदय है उनको। **उनका अभास कैसे?**

**उसका समाधान:-यहाँ मरण होकर फिर संसार में जन्म हो इस प्रकार के मरण**

**की अपेक्षा यह कथन है,...** मरकर जन्मे, उसे यहाँ मरण कहा जाता है। वह मरण नहीं है। देह छूटकर केवल (ज्ञानसहित) मोक्ष पधारेंगे। आहाहा!

**मरण अरहन्त के नहीं है; उसी प्रकार जो पुण्यप्रकृति का उदय पापप्रकृति सापेक्ष करे...** लो! पुण्यप्रकृति का उदय पापप्रकृति सापेक्ष हो, **इस प्रकार पुण्य के उदय का अभाव जानना...** उन्हें तो पुण्यप्रकृति, पापप्रकृति है नहीं। इसलिए पुण्य का अभाव कहा जाता है। **बन्ध-अपेक्षा पुण्य का भी बन्ध नहीं है।** एक समय का बन्ध है न वह। **साता वेदनीय बँधे, वह स्थिति-अनुभाग बिना अबन्धतुल्य ही है।** अनुभाग बन्ध नहीं। विशेष नहीं। वह तो कर्म की पर्याय तो है। पर्याय है तो अनुभाग भी है एक समय का। ... कहा न? एक समय की गिनती में, गिनती में गिनाया है। कर्मपर्याय हुई न? कर्मपर्याय हुई कैसे? अनुभाग वह... है, परन्तु वह कहीं वस्तु नहीं। स्थिति नहीं, अनुभाग तीव्र नहीं, कर्मरूप से रजकण परिणमित हुए, उसमें तो अनुभाग आये बिना कर्म परिणमते ही नहीं। यों ही परमाणु थे और कर्मरूप से परिणमा, उसमें अन्तर पड़ा न कुछ... में अन्दर। परन्तु वह यहाँ गिनती में गिनने में आता नहीं। एक समय की... वह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है।

**असाता का अत्यन्त मन्द-बिल्कुल...** लो! **वेदनीय का उदय भी सिद्धान्त में कहा है,... केवली के असाता वेदनीय का उदय भी...** शिष्य का प्रश्न। **उसकी प्रवृत्ति कैसे है? उत्तर :- इस प्रकार जो असाता का अत्यन्त मन्द-बिल्कुल मन्द अनुभाग उदय है...** ऐसा उदय नहीं होता कि शरीर में उन्हें रोग आवे। विशाल समुद्र के पानी में एक राख की चिपटी डाले जरा, वह कहीं गिनी नहीं जाती। इसी प्रकार असाता का थोड़ा उदय हो, थोड़े रजकण आवे, उनकी कुछ गिनती नहीं गिनी जाती। आहाहा! जिनका स्फटिक जैसा तो शरीर, परमौदारिकशरीर भगवान का होता है। जिनके शरीर के साथ भामण्डल देखे तो सात भव दिखते हैं। ऐसे को रोग कैसा?

**साता का अति तीव्र अनुभाग उदय है,...** साता का बहुत अनन्तगुना उदय है, ऐसा कहते हैं। **उसके वश से असाता कुछ बाह्य कार्य करने में समर्थ नहीं है,...** साता का उदय अनन्तगुना है न, इससे उसके वश से बाह्य पदार्थ में कार्य करने में समर्थ नहीं है। शरीर में रोग आवे, ऐसा नहीं होता। **सूक्ष्म उदय होकर खिर जाता है तथा संक्रमणरूप**

**होकर सातारूप हो जाता है...** दो बात। सूक्ष्म उदय देकर खिर जाये अथवा बदलकर खिर जाये। **सातारूप हो जाता है...** असाता पलटकर साता हो जाये, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार जानना।** आहाहा! यह तो अरिहन्त की पहिचान कराते हैं। यह तो अरिहन्तदेव कैसे होते हैं?

**मुमुक्षु :** इसमें कर्म की बात....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ....

**इस प्रकार अनन्त चतुष्टयसहित...** अरिहन्त भगवान को तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल—ऐसे **अनन्त चतुष्टयसहित सर्व दोषरहित...** गुणसहित, दोषरहित, ऐसा। अस्ति-नास्ति की न पहले? **सर्वज्ञ वीतराग हो, उसको नाम से अरहन्त कहते हैं।** उसे नाम से अरिहन्त कहा जाता है, उसका नाम है, ऐसा उसमें गुण हो तो नाम अरिहन्त कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहा पहला। ...व्याधिरहित, तृषारहित, रोगरहित, शरीर में जरा (बुढ़ापा) न हो तो फिर रोग कैसा? गजब फेरफार है। वाड़ा बँध गया। दो-दो हजार वर्ष पहले श्वेताम्बर निकले दिगम्बर में से और उसमें से स्थानकवासी अभी पाँच सौ वर्ष में निकले।

**मुमुक्षु :** वे कहते हैं, हम अनादि के हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहे न सब कहे। कौन इनकार करे? आहाहा! वीतरागमार्ग दिगम्बर धर्म अनादि तीर्थंकर का महाविदेह में चलता है। ऐसा अनादि मार्ग यह था। भगवान के बाद छह सौ वर्ष में उसमें से श्वेताम्बर निकले। बारह वर्ष के दुष्काल में। परन्तु लोगों को पता नहीं होता, इसलिए जो कुछ माना हो, वह मनवाकर चला। यह स्थानकवासी तो अभी निकले पाँच सौ वर्ष (पहले)। मूर्ति को उत्थापित किया। मार्ग तो अनादि सनातन वीतराग का तो यह दिगम्बर धर्म है। उसे जैनधर्म का जैनदर्शन कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! ऐसे अरिहन्त को अरिहन्त कहना। दूसरे प्रकार से अरिहन्त को कहते हैं, वे अरिहन्त को जानते नहीं। अरिहन्त के भक्त भी हो सकते नहीं। आहाहा! बहुत फेरफार।

★ ★ ★

## गाथा - ३१

**आगे स्थापना द्वारा अरहन्त का वर्णन करते हैं:—**यह स्थापना नहीं। यह व्यवहार स्थापना भगवान की मूर्ति की। और यह निश्चय स्थापना।

**गुणठाणमग्गणेहिं य, पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।**
**ठावण पंचविहेहिं, पणयव्वा अरहपुरिसस्स॥३१॥**

**अर्थ :- गुणस्थान, मार्गणास्थान,...** अरिहन्त भगवान को तेरहवाँ गुणस्थान होता है। सयोगी केवली है न। मार्गणास्थान। यह आयेगा... स्वीकारना ऐसा। ...इतना है। ...मार्ग। नाम है। उतारना अपने आप। ऐसा कहकर यह कहना चाहते हैं कि अरिहन्त हैं। तेरहवें गुणस्थान में हैं वे। शरीररहित हो गये हैं, ऐसा नहीं। शरीरसहित होने पर भी केवलज्ञान और केवलदर्शन और निरोग अवस्था है, ऐसा बतलाना है। शरीरसहित होने पर भी जिन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन पूर्ण है और शरीर होने पर भी जिन्हें क्षुधा, तृषा और रोग नहीं, ऐसा कहते हैं। उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा! ... महावीर की आज्ञा। वह रजनीश कहता है न? अठारह दिन, आठ और दस। आठ दिन श्वेताम्बर के, दस दिन दिगम्बर के। महावीर की आज्ञा। अब भाई! उसे महावीर की आज्ञा... आहाहा!

वीतराग परमेश्वर ने मार्ग कोई... वह और गीता ... स्थापित करे। एक ओर महावीर... आहाहा! ... क्या हो भाई? यह तो अरिहन्त परमेश्वर तेरहवें गुणस्थान में विराजमान हों, उन्हें पूर्ण वीतरागता होती है। कहते हैं न... अभी आया था पत्रिका में? कि सब पूर्ण लेकर जन्मे। मैं पूर्ण स्वरूप, लगभग पूर्ण होकर आया हूँ। आहाहा! ऐसा आया सेठ! रजनीश का। ऐसे श्रीकृष्ण, महावीर, वे सब पूर्ण लेकर जन्मे हुए। इसके लिये तो यह स्पष्टीकरण करते हैं। अभी पूर्ण हुआ नहीं। पूर्ण तो यहाँ हुआ है। पूर्ण हो, उसे जन्म नहीं होता। जातिस्मरण की बात आयी थी उसमें रजनीश की। कितने भव कहे नहीं? सात सौ वर्ष बिना भव रहा। गप्प ही गप्प सब। और सात सौ वर्ष। ऐसा था और ऐसा था। बौद्ध को पूर्व में यह भव था, महावीर पूर्व में यह थे और फलाना यह था। गप्प ही गप्प मारी है। ... अब। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होवे उसमें क्या हुआ?

यहाँ तो तेरहवें गुणस्थान। गुणस्थान के चौदह बोल हैं। गुणस्थान अर्थात् मंजिल पर चढ़ने के जैसे सोपान होते हैं न? इसी प्रकार धर्म के चौदह सोपान हैं। उसमें तेरहवें सोपान में केवलज्ञान होता है। ऐसी दशा होती है। वे सिद्ध नहीं हो गये। आहाहा! यह वाणी होती है, उपदेश होता है, ऐसा कहना है। उन्हें तेरहवाँ गुणस्थान वीतरागी केवलज्ञानी होने पर भी वाणी होती है, विहार होता है। क्योंकि देह की क्रिया, जड़ की क्रिया जड़ से होती है, वाणी वाणी के कारण से होती है। आहाहा! परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में अरिहन्त साक्षात् (विराजते हैं), वे तेरहवें गुणस्थान में हैं। अभी सिद्ध नहीं हुए।

'**सजोइकेवलिय होइ अरहंतो**' लो। और योगसहित हो उन्हें। तेरहवें गुणस्थान में हों, केवलज्ञान ... हो, तथापि योग-कम्पन होता है। वाणी निकलती है। शरीर विहार होता है। आहाहा! तथापि सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वीतराग होते हैं। आहाहा! '**सजोइकेवलिय होइ अरहंतो**' योगवाले केवली, वे अरिहन्त होते हैं। लो! व्याकरणवाले को पूछा था यह (संवत्) १९८० के वर्ष में। व्याकरण पढ़ा हुआ आवे बड़ा होशियार। ... कहा, यह संयोगी केवली का अर्थ कहो। संयोगी केवली। संस्कृत व्याकरण। संयोगी केवली। संयोगी केवली का अर्थ... ऐसा यहाँ नहीं कहा। यहाँ तो सयोगी केवली है। केवली संयोगी नहीं होते। सयोगी केवली होते हैं। योगसहित केवली होते हैं। ऊपर बिन्दी नहीं होती। ८० की बात है। एक पण्डित आया था।

**मुमुक्षु :** पुस्तक पढ़ा हुआ हो, समझता न हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। भाषा, हमने कहा, जबाव दिया तो भाव समझे। उसे भाषा का अर्थ आवे। भाव समझे बिना भाषा का अर्थ करने जाये, कुछ का कुछ हो गया। ... वस्त्रसहित दसवें,... ऐसा साधु है। ... करो। उसे गुणन करना या बाकी करना या कैसा करना? दस ... दस और आठ अठारह। अठारह... अठारह बोल हैं। दस को आठ से गुणा नहीं करना। ... अर्थ ऐसा करे। व्याकरण... भाव समझे उसका काम है। भाव

समझे, वह अर्थ कर सकता है। सयोगी केवली, लो न! योगवाले केवली। अर्थात् कि केवलज्ञानी परमात्मा अहिरन्त हैं, परन्तु जिन्हें अभी मन, वचन, और काया योग है, विहार है, भाषा है। कहो, पण्डितजी! आहाहा! ऐसी बात है।

**चौंतीस अतिशय...** गुणा। लो कहा? **योगों की प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानसहित सयोगकेवली अरहन्त होता है। उनके चौंतीस अतिशय...** चौंतीस अतिशय होते हैं। आहाहा! जहाँ जाये वहाँ सुकाल, रोग मिट जाये, क्षुधा मिटी, दुष्काल मिट जाये। अतिशय बहुत हैं। चौतीस अतिशय। इसके बिना अरिहन्त कहलावे, हम भी भगवान हैं, अरिहन्त हैं, हम भी पूर्ण हैं (—ऐसा नहीं होता)।

**मुमुक्षु :** दूसरे के रोग मिट जाये और स्वयं को रोग हो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह सब बातें।

'**चउतीस अइसयगुणा**' '**गुणा**' है न? अर्थात् चौतीस अतिशय होते हैं। '**तस्सठ पडिहारा**'। **आठ प्रातिहार्य होते हैं।** प्रतिहार्य, दिव्यध्वनि इत्यादि इत्यादि। **गुणस्थान द्वारा स्थापना अरहन्त कहलाते हैं।** इस द्वारा अरिहन्त की स्थापना पहचानी। अरिहन्त में ऐसा होता है, ऐसा जानना, वह स्थापना। इस प्रकार स्थापना करके पहिचानना।

**भावार्थ :- यहाँ चौंतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्य कहने से तो समवसरण में विराजमान...** ठीक! समवसरण भगवान का होता है धर्मसभा। इन्द्र आकर जिसे बारह सभा बनायी हो। आहाहा! यहाँ तो कहा, भगवान आते हैं बारह.. लाओ। श्वेताम्बर में। बगीचा में एक... (शिला) हो आज्ञा लेकर ... वहाँ उतरे। ... कर डाला है... देवालय, शिलापट् के ऊपर आकर भगवान विराजते हैं, यह भगवान नहीं करते। किसी की आज्ञा ले, ऐसा नहीं होता। आहाहा! ऐसा सब आता है तुम्हारे। ऐसा भगवान का स्वरूप है ही नहीं। आहाहा! कहो, ...दासजी! भगवानजीभाई सब तुम्हारे पक्ष में। ....

**मुमुक्षु :** भूले पड़े हुए इकट्ठे हुए हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मार्ग ऐसा है, भाई! ... या नहीं? अर्थात् कि ... परिवर्तन किया। कुछ उसमें सच्चा लगा नहीं और सच्चा कुछ दूसरा लगा, तब बदला। लोगों को परखना कठिन है, भाई!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो अरिहन्त का स्वरूप कहा, उसमें सब फेरफार कर डाला। श्वेताम्बर ने नये शास्त्र बनाकर फेरफार कर डाला। उसके लिये यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य बोधपाहुड़ वर्णन करते हैं। सच्चा ज्ञान कहे। ऐसे अरिहन्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**समवसरण में विराजमान तथा विहार करते हुए अरिहन्त हैं...** देखा! विहार करे। ... है न? आहाहा! ... चले। **और सयोग कहने से विहार की प्रवृत्ति और वचन की प्रवृत्ति सिद्ध होती है।** लो! **सयोग कहने से विहार की प्रवृत्ति और वचन की प्रवृत्ति...** वाणी होती है भगवान को। आहाहा! **केवली कहने से केवलज्ञान द्वारा सब तत्त्वों का जानना सिद्ध होता है।** लो! **चौंतीस अतिशय इस प्रकार हैं...** चौंतीस अतिशय की बात ली। **जन्म से प्रकट होनेवाले दस :- १. मलमूत्र का अभाव,...** यह तीर्थंकर जन्मे, तब से मलमूत्र का अभाव। वे पानी पीवे, आहार करे परन्तु पेशाब और दस्त नहीं होते। ओहोहो! ऐसा तो जिनके जन्म से शरीर। समझ में आया?

**१. मलमूत्र का अभाव, २. पसीने का अभाव,...** जन्म से उन्हें पसीना नहीं होता। यह मनुष्य को पसीना होता है न? हिले, चले कुछ सब। पसीना नहीं होता। आहाहा! यह शरीर डिब्बी ही अलग प्रकार की है, कहे केवली का शरीर। अभी यह तीर्थंकर का जन्म... बात है, हों! **३. धवल रुधिर होना,...** भगवान का रुधिर सफेद होता है, जन्में तब से, हों! तीर्थंकर का जन्म, तब से रुधिर सफेद। वह (श्वेताम्बर) कहे अरिहन्त हो, तब रोग हो, खूनी दस्त। बहुत अन्तर है।

**४. समचतुरसंस्थान,...** होता है उन्हें। शरीर का आकार बहुत अन्तर है। **५. वज्रवृषभनाराच संहनन,...** हड्डियों की मजबूताई पहले नम्बर की। **६. सुन्दर रूप...** होवे जन्म से। **७. सुगन्ध शरीर,...** होवे। शरीर जन्म से सुगन्ध मारे। **८. शुभ लक्षण होना,...** बाह्य लक्षण शरीर में शुभ होते हैं। **९. अनन्त बल,...** होता है। अनन्त बल शरीर का, जन्म से अनन्त बल। आहाहा! **१०. मधुर वचन,...** मीठे अमृत जैसे वचन होते हैं, जन्म से तीर्थंकर अरिहन्त को। उन्हें अहिरन्त की स्थापना कही जाती है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मगसिर कृष्ण १२, शुक्रवार, दिनांक-२१-१२-१९७३**
**गाथा - ३२ से ३६, प्रवचन-७३**

अरिहन्त का स्वरूप वर्णन करते हैं। अरिहन्त में यहाँ तीर्थंकर, वे भी ऐसे। यह चौतीस अतिशय सहित होते हैं। पहले ऐसा कहा, सयोगी तेरहवाँ गुणस्थान उन्हें होता है। जिससे अरिहन्त कहलाते हो न, कि उन्हें तेरहवाँ गुणस्थान और केवलज्ञान। तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा उन्हें ज्ञान होता है और जन्म से तीर्थंकर को तो दस अतिशय होते हैं। मल-मूत्र का अभाव होता है। यह आ गया है। वे आहार करे, परन्तु उन्हें मल और मूत्र नहीं होता। (उनके) माता-पिता को नहीं होता। भगवान तीर्थंकर के माता-पिता को मल-मूत्र नहीं होता। अलौकिक पुरुष हैं न। उन्हें पसीना नहीं होता। चले और थकान न लगे कि पसीना हो। जिनका रुधिर सफेद होता है। दुनिया की अपेक्षा अलग प्रकार है न वह सब? शरीर की समतुल संस्थान व्यवस्थित होता है। हड्डियाँ मजबूत होती हैं। संहनन। सुन्दर रूप, सुगन्धित शरीर। शरीर में सुगन्ध होती है। शुभ लक्षण और अनन्त बल, मधुर वचन। लो, यह शब्द आये थे कल।

अब, **केवलज्ञान उत्पन्न होने पर दस होते हैं :—** तीर्थंकर को **१. उपसर्ग का अभाव,...** यह लोग कहते हैं न कि ... उपसर्ग किया। वह बात खोटी है, झूठी बात है। भगवान को उपसर्ग होता ही नहीं। इसके लिये यह अरिहन्त का स्वरूप वर्णन करते हैं। सामने पक्ष पड़ गया न कल्पित किया हुआ सब। समझ में आया? उन्हें उपसर्ग नहीं होता। अरे! मुनि को भी सातवें गुणस्थान के बाद उन्हें उपसर्ग नहीं होता, यह तो केवली अरिहन्त हैं। इसलिए अरिहन्त को पहिचानना कठिन है, ऐसा कहते हैं। सम्प्रदाय दो पड़े और उसमें पूरा स्वरूप बदल डाला।

**२. अदया का अभाव,...** उनके समवसरण में कोई मारे... दो साधु को मारा, (ऐसा) आता है न। सर्वानुभूति... ऐसा नहीं होता। अदया का अर्थात् हिंसा का वहाँ अभाव होता है। समवसरण में दो साधुओं को जलाया, ऐसा आता है न? झूठी बात है। अरिहन्त को पहिचानना, वास्तविक अरिहन्त हैं, उन्हें (पहिचानना)। जो देवरूप से

पहिचान उसकी सच्ची न हो। समझ में आया? **अदया का अभाव,...** अर्थात् समवसरण में या आसपास में कहीं हिंसा नहीं होती। **३. शरीर की छाया न पड़ना,...** अर्थात् कि ऐसे शरीर चले, उसमें अपने जैसे नीचे छाया पड़ती है, वैसी छाया उन्हें नहीं होती। परमौदारिकशरीर है न। छाया नहीं होती। दर्पण में मुख देखे तो छाया नहीं पड़ती उसमें। ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुख उसमें ... दिखता है, यहाँ नहीं दिखता। ऐसा शरीर स्फटिक जैसा। उन्हें अरिहन्त कहते हैं, ऐसा कहते हैं।

**४. चतुर्मुख दिखना,...** चारों ओर चार मुख दिखते हैं। **५. सब विद्याओं का स्वामित्व,...** सब विद्या का स्वामी होता है। **६. नेत्रों के पलक न गिरना,...** आँखों के यह दो ऐसे नहीं होते ऐसे। अलौकिक है न! अरिहन्त अर्थात् पवित्रता के पूरे। तीर्थंकर की बात है न! उन्हें पुण्य में भी पूरे होते हैं, उन्हें अरिहन्त कहते हैं। **७. शतयोजन सुभिक्षता,...** भगवान जहाँ विचरें, वहाँ सौ योजन—चार सौ कोस (तक) दुर्भिक्ष नहीं होता। शतयोजन। चार सौ कोस। आहाहा! ऐसा ही प्राकृतिक मेल उन्हें होता है। समझ में आया? **८. आकाश गमन,...** होता है। भगवान का गमन नीचे पृथ्वी के ऊपर नहीं होता।

**मुमुक्षु :** ....शिला (पर) तो विराजते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बात ही खोटी है। इसके लिये तो यह वर्णन है। श्वेताम्बर में ऐसा आता है। सुवर्णभद्र... देवल में गये। ... शिला पर्वत पर विराजे। सब कल्पनायें की हैं, परन्तु क्या हो? सम्प्रदाय में तो इस ओर तो कुछ नहीं। उस ओर अधिक। उत्तर में।

**८. आकाशगमन, ९. कवलाहार नहीं होना;...** भगवान को आहार नहीं होता। भगवान को रोग हुआ और फिर आहार किया, दवा लाये, (ऐसा नहीं है)।

**मुमुक्षु :** भगवान भूखे रहें?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भूखे नहीं, आनन्द से तृप्त रहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के भोगी, अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण अनुभव करते हैं। उन्हें कवलाहार कैसा? आहाहा! आहार लेने जाये, आहार खाये, दवा लेने जाये—सब कल्पितरूपी। वीतरागमार्ग पूरा बदल डाला।

**मुमुक्षु :** .... जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लेने जाये। साधु लेने जाये। है न उसमें। भाई ने... आनन्द... आहार लेकर पात्रा को उठाकर साधु आये ऊपर से। ... वह सब कल्पित सब है। परन्तु अब क्या हो? इस ओर तो यह था नहीं। बड़ा मार्ग यह सब। उत्तर में तो सब दिगम्बर में आता है। वाड़ारूप से है। वस्तुरूप की खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं **कवलाहार नहीं होना,...** भगवान को कवल (ग्रासाहार) नहीं होता। आहार ले, पानी पीवे, दवा खाये, शरीर में रोग आवे—यह भगवान को नहीं होता। आहाहा! **१०. नख-केशों का नहीं बढ़ना...** नख और दाढ़ी तथा मूंछ ही उन्हें नहीं होते। नख बढ़ते नहीं। आहाहा! ऐसा शरीर... अरिहन्त उसमें तीर्थंकर अर्थात् क्या! ओहोहो! जिनकी पवित्रता तो पूर्ण परन्तु जिनकी पुण्य प्रकृति पूर्ण। उसमें पूर्ण सोलह-सोलह आना पुण्य हो उन्हें। ऐसे भगवान को इस तरह पहिचानना (कि) रोग था और दवा ली। आहाहा! देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में आये। वे देव लाये। कर्म लावे या देव लावे? (यह) सब बातें कल्पित हैं। आहाहा! समझ में आया?

**चौदह देवकृत होते हैं :—** भगवान अरिहन्तदेव तीर्थंकर कैसे होते हैं, उसकी यह व्याख्या है। श्वेताम्बर ने यह बात पूरी बदल डाली। वह अरिहन्त के स्वरूप को विकृत कर डाला। इसलिए यह वर्णन करते हैं बोधपाहुड़ में। मनसुखभाई! ऐसा है। **१. सकलार्द्धमागधी भाषा,...** होती है भगवान को, अर्धमागधी और अर्ध दूसरी, ऐसा करके सब भाषा, ऐसे करके अर्धमागधी। **२. सब जीवों में मैत्रीभाव,...** होता है। सब जीवों को कहीं बैर नहीं होता जहाँ-जहाँ भगवान विचरते हों। सब प्राणी गाँव, नगर के लोग सबको मैत्री। गाँव के लोग और नगर के लोग, जहाँ-जहाँ (तीर्थंकर) जाये, सबको मैत्री होती है। ऐसा तो भगवान को अतिशय है। अतिशय अर्थात् विशेषता।

**३. सब ऋतु के फल फूल फलना,...** छहों ऋतु के फल, जहाँ भगवान जाये वहाँ छहों ऋतु के फल होते हैं कि भाई! आम अमुक समय पके, ऐसा नहीं। वह तो छहों ऋतु के फल और फूल। अमुक फूल फलाने महीने में पके, अमुक फल फलाने महीने में पके, ऐसे भगवान जहाँ हो, वहाँ छहों ऋतु के फल-फूल। आहाहा! **४. दर्पण समान**

**भूमि,...** भगवान जहाँ विचरें, दर्पण समान भूमि (हो)। काँच के जैसी भूमि हो जाती है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** इन्द्र....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह देवकृत है न। मुनि है तो अतिशय तो उन्हें है। देव तो निमित्त हैं। अतिशय तो उनका अपना होता है। देव कहने में आवे, परन्तु अतिशय तो भगवान का है। देव तो निमित्त है।

**५. कंटकरहित भूमि,...** भगवान जहाँ विचरते हों, वहाँ काँटे और कंकड़ नहीं होते। यह नहीं... निकाल डाले हैं काँटे और कंकड़। वीतराग केवलज्ञान हुआ, वापस तीर्थंकर पद। वे कभी भी गति करें, वहाँ काँटे-कंकड़ नहीं होते। **६. मन्द सुगन्ध पवन,...** मन्द पवन। सुगन्धी पवन हो कि जिससे सब बारीक धूल आदि न उड़े। मन्द पवन ऐसी होती है। **७. सबके आनन्द होना,...** सब प्राणियों को आनन्द। अतीन्द्रिय आनन्द की बात नहीं है। किसी को दुःख नहीं होता, बाहर का सुख होता है, भगवान जहाँ विचरें, वहाँ सबको। ऐसा ही उसका निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। यह तो अरिहन्त की पहिचान कराते (हैं कि) ऐसे अरिहन्त होते हैं, भगवानजीभाई! यह तो णमो अरिहंताणं। जाओ हो गया। चाहे जैसा हो। कुछ भान भी नहीं होता।

**मुमुक्षु :** अरिहन्त कैसे होते हैं, उसकी खबर नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कैसे होते हैं, इसकी खबर नहीं होती। फिर अरिहन्त की वाणी और उनका कहा हुआ तत्त्व। इसलिए पहले अरिहन्त ही ऐसे होते हैं, उनकी पहिचान कराते हैं बोधपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य।

**८. गन्धोदकवृष्टि,...** भगवान जहाँ विचरें, वहाँ सुगन्धवाली वर्षा आवे। बारीक बारीक छींटें। धूल बैठ जाये नीचे की। **९. पैरों के नीचे कमलरचना,...** भगवान जहाँ चलें, वहाँ एक अपना ... सात कमल ऐसे पन्द्रह कमल होते हैं उन्हें। कमल होते हैं। **१०. सर्वधान्य निष्पत्ति,...** सब धान्य की उत्पत्ति वहाँ होती है। ऐसा नहीं कि फलाने वर्ष में अमुक चावल पके, गेहूँ अमुक मगसिर महीने में पकें, ऐसा कुछ नहीं। वहाँ सब धान्य पकते हैं। **११. दशों दिशाओं का निर्मल होना,...** भगवान जहाँ विचरते हैं, वहाँ

धूल नहीं, (कोहरा) नहीं। वह क्या कहलाता है समझे न? कोहरा। सवेरे कोहरा पड़ता है न, कोहरा। ऐसा नहीं होता। आहाहा! अन्धेरा नहीं होता, कोहरा नहीं होता। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव हों पुण्य के पूरे। उनके पास तो बाहर सब स्वच्छ... स्वच्छ... स्वच्छ ही होता है।

**११. दसों दिशाओं का निर्मल होना, १२. देवों के द्वारा आह्वानन शब्द,...** देव ध्वनि उठावे, पधारो... पधारो... पधारो... भगवान को सुनने आओ, ऐसी ध्वनि उठे। देव करते हैं। **१३. धर्मचक्र का आगे चलना,...** धर्मचक्र धम्मवर चाउरंत चक्कवटीणं आता है न? णमोत्थुणं में आता है। धम्मवर चाउरंत चक्कवटीणं। किया था णमोत्थुणं? पहले किया होगा। अर्थ की खबर नहीं। उसमें आता है धम्मवर चाउरंत चक्कवटीणं णमोत्थुणं अरिहंताणं। आहाहा! वह धर्मरूपी चक्र जहाँ सामने आगे चले। भगवान जहाँ चले, वहाँ सामने आगे चले। आहाहा! **१४. अष्ट मंगल द्रव्यों का आगे चलना।** लो, यह चौतीसवाँ। आठ मंगल। आठ मंगल। यह चौतीस अतिशय में आठ मंगल आते हैं। यह आठ मंगल के नाम अलग हैं। है चौतीसवाँ अतिशय यह।

१- **छत्र...** छत्र होता है। सामने छत्र चलता है। प्रतिहार्य में छत्र कहेंगे, वह अलग छत्र। वह सिर पर छत्र तीन होते हैं वे। तीन छत्र होते हैं न भगवान के ऊपर? वे तीन छत्र होते हैं, वह अष्ट प्रातिहार्य में। वह छत्र अन्तिम आयेगा। इसमें छत्र पहला है। मांगलिक में। २- **ध्वजा...** ध्वजा होती है। भगवान जहाँ चलें, वहाँ आठ मांगलिक में ध्वजा सामने होती है। ३- **दर्पण...** होता है। आठ मांगलिक आते हैं नहीं अपने? अपने यहाँ है या नहीं? ४- **कलश...** होता है कलश। ५- **चामर,** ६- **भंगार ( झारी ),** ७- **ताल ( ठवणा )...** ठवणा, वह ठवणा नहीं यहाँ? ठवणा होता है। **और स्वस्तिक ( साथिया )...** यह आठ। मांगलिक होते हैं। यह चौतीस अतिशय में यह आठ मांगलिक चौतीस में आ जाते हैं। ऐसा करके चौतीस गिने। अन्त में आठ आ जाते हैं। एक मांगलिक ऐसा। ऐसे चौतीस गिनना।

**भगवान के आठ प्रातिहार्य होते हैं...** पुण्य के कारण से। १- **अशोकवृक्ष...** भगवान हों वहाँ अशोक वृक्ष होता है। २- **पुष्पवृष्टि...** फूल की वृष्टि होती है। प्रातिहार्य... सब। जैसे सेवक हो न वैसे यह आठ सेवक होते हैं इस प्रकार के। पुष्प की वृष्टि होती

है, भगवान जहाँ हों वहाँ। ३- **दिव्यध्वनि...** होती है उन्हें। ऐसी आवाज नहीं होती उन्हें, हम बोलते हैं ऐसी। उन्हें ॐ ध्वनि। देखो, ऐसा करके ऐसे बोलते हैं दूसरे श्वेताम्बर, ऐसा आता है न? महिला ने पूछा, भगवान ने जवाब दिया, ऐसा नहीं होता। ऐसा कहते हैं। महिला पूछ सकती नहीं। वह तो पूछे तो प्रश्न कोई चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, इन्द्र, वे पूछ सकते हैं। जिनका पुण्य अलग होता है। साधारण पूछ नहीं सकते। उसमें तो महिलायें पूछें और भगवान जवाब दे, ऐसा उसमें आता है। वह सब कल्पित है। आहाहा! ऐसी बात है।

४- **चामर,...** होते हैं भगवान को। चौसठ चामर ढाले देव। ५- **सिंहासन...** होता है बैठने का। मणिरत्न का सिंहासन। ६- **भामण्डल...** होता है। प्रकाश... प्रकाश पूरा। भा अर्थात् प्रकाश का मण्डल। उसमें आया। और ७- **दुन्दुभी वादित्र...** होता है। साढ़े बारह करोड़ बाजा—दुन्दुभी बजे। और ८- **छत्र...** होते हैं सिर पर। सिर पर छत्र। वह (मांगलिक में) छत्र तो सामने आगे मांगलिकरूप से। यह सिर पर छत्र होता है। **इस प्रकार गुणस्थान द्वारा अरहन्त का स्थापन कहा।** लो! ऐसे अरिहन्त होते हैं। णमो अरिहंताणं, ऐसे तीर्थंकरदेव ऐसे होते हैं। उनका ऐसा वर्णन किया। इससे विरुद्ध कहे, वे अरिहन्त के स्वरूप को जानते नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ३३

**अब, आगे मार्गणा द्वारा कहते हैं :—** पूरी पहिचान ही ऐसी।

**गइ इंदियं च काए, जोए वेए कसाय णाणे य।**
**संजम दंसण लेसा, भविया सम्मत्त सण्णि आहारे॥३३॥**

नाम है। आहारा आदि नाम। **अरहन्त सयोगकेवली को तेरहवाँ गुणस्थान है,...** तेरहवाँ गुणस्थान। चौदह गुणस्थानों में उन्हें तेरहवाँ होता है। आहाहा! हमारे कुँवरजीभाई पूछते थे। कुछ खबर ही नहीं होती ऐसे बेचारे लोगों को। एक दिन पूछते थे वहाँ हीराभाई के मकान में। ईश्वर कर्ता ... लो, अब यह जैन में जन्मनेवाले। यहाँ कहलाये

सेठ। ईश्वरकर्ता... परन्तु तुम यह जैन में जन्मे। उसकी खबर नहीं होती, लो। ऐई! नटु! वस्तु है, सत् है, उसे करे कौन? सत् है। वस्तु अनादि द्रव्य और गुण-पर्यायवाला तत्त्व जीव और जड़ है। उसका ईश्वर स्वयं। दूसरा कौनसा था? परन्तु उसकी खबर नहीं होती। वाड़ा में पड़े हों। कोई भगवान अपने को दे देंगे कुछ। भगवान दे अपने को। शिवपद हमको देजो रे महाराज!

**मुमुक्षु :** आता है न भगवान सब दे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब दे। आता है। किस अपेक्षा से? उनका ज्ञान और उनका जो आनन्द है, वह बतलाते हैं उसमें। कि यह वस्तु मुनिपना ऐसा, श्रावकपना ऐसा होता है, समकित ऐसा होता है, ऐसा बतलावे, वह दिया कहलाता है। पुत्र भी दे। पुण्य ऐसा हो और भगवान ने कहा हुआ धर्म जो साधे, उसे अधूरा हो जहाँ, उसमें पुण्य हो तो पुत्र और लक्ष्मी और चक्रवर्ती का राज सब आवे, लो। आहाहा! तीर्थंकरपना आवे, वहाँ ऐसा समवसरण और ऐसे इन्द्र। देखो न, क्या कहलाता है? जमीन साफ दर्पण जैसी, छहों ऋतु के फल-फूल, धान्य की निष्पत्ति सब। आहाहा! वस्तु तो देखो! पुण्य कितना पुण्य! पवित्रता की तो बात क्या करना? परन्तु पुण्य क्या? उसके आगे यह तो तीर्थंकर की बात ली है न! सामान्य केवली की बात नहीं। आहाहा! उसका रूप पूरा बिगाड़ दिया है। भगवान को रोग होता है, भगवान दवा लावे, भगवान बातें करे दूसरे के साथ अपनी तरह। साधारण भाषा में आता है भगवती(सूत्र) में। वह एक महिला कैसी? रेवती। नहीं, रेवती नहीं। जयन्ती। जयन्तीबाई आती है। राजा की पुत्री है। फिर भगवान को पूछती हैं सब। उसका जवाब भगवान देते हैं। भगवान केवलज्ञानी पूर्णानन्द स्वरूप। आहाहा! उन्हें कहाँ देखना है सामने? कि यह मुझे पूछती है और मैं इसे (जवाब) दूँ। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रश्न होता नहीं वहाँ। पुण्यवन्त प्राणी हो, उसके प्रश्न होते हैं। गणधर, चक्रवर्ती, बलदेव, इन्द्र प्रश्न कर सकते हैं। वह भगवान को कहाँ सुनना है वहाँ? वह तो ज्ञान पहले से जानता है कि यहाँ प्रश्न होता है और उसका उत्तर ऐसा वाणी में आयेगा। वह तो पहले से जानते हैं। वाणी में ऐसा उत्तर आयेगा (और) यह

प्रश्न करेगा, वह तो केवलज्ञान हुआ, तब से जानते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! केवलज्ञान की बात सब... आहाहा!

अब उन केवलज्ञानी को चार गति में कौनसी गति होती है? ऐसा कहते हैं। उन चार गति में मनुष्यगति होती है। गति है वहाँ... है न, ऐसा कहना है। गति। वह तिर्यंचगति में अरिहन्त तीर्थंकर नहीं होते, नरक में नहीं होते, देव में नहीं होते, ऐसा कहना है। तीर्थंकर हों, वे मनुष्यगति में होते हैं। पाँच इन्द्रिय में पंचेन्द्रिय होते हैं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, भगवान को पाँच इन्द्रिय होती है। यहाँ तो बाहर का स्थापित करना है न!

**काय में छह त्रसकाय हैं,...** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस—छह काय है न, ऐसे भगवान को तेरहवें गुणस्थान में वह त्रसकाय कहा जाता है। आहाहा! ऐसा करके अरिहन्त की दूसरे जो अरिहन्त का स्वरूप वर्णन करते हों, उनसे भिन्न करके वास्तविक यह है, ऐसा बतलाते हैं। आहाहा! बोधपाहुड़ के अन्दर देखो। उन्हें—भगवान को योग होता है। **पन्द्रह में योग-मनोयोग तो सत्य और अनुभय इस प्रकार दो और ये ही वचनयोग्य दो तथा काययोग औदारिक इस प्रकार पाँच योग हैं,...** लो! दो मन के, दो वचन के और एक औदारिक शरीर, उसका उसके पाँच योग। साधारण रीति से। दूसरे दो वर्णन करते हैं।

**समुद्घात करे तब औदारिक मिश्र...** लो। तीर्थंकर भी समुद्घात करे, ऐसा हुआ न? तीर्थंकर... आता है। **समुद्घात करे, तब औदारिक मिश्र और कार्माण...** यह औदारिक में मिश्रपना होता है न! और कार्मणशरीर। **सात योग हैं...** लो! यह तो जानने की बात है कितनी ही अन्दर पहले से कुछ ख्याल हो अभ्यास हो उसे। अभ्यास न हो उसे क्या? **वेद - तीनों का ही अभाव है;...** भगवान को वेद नहीं होते। वेद का पूर्ण अभाव हुआ, अवेदी हुए तब केवली हुए। उन्हें अरिहन्त कहते हैं। उन्हें वेद नहीं होता।

**कषाय - पच्चीस सब ही का अभाव है...** पच्चीस कषाय है न? सोलह कषाय—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन ४×४=१६—और नव नोकषाय। पुरुष, स्त्री, नपुंसकवेद, हास्य, शोक, रति, अरति, भय, जुगुप्सा—इन सब पच्चीस कषायों का भगवान को अभाव होता है। उनकी इच्छा भगवान को नहीं होती, ऐसा

कहते हैं। भाशा निकले, चले, तथापि इच्छा नहीं होती। इच्छा बिना चले, इच्छा बिना बोले। **ज्ञान - आठ में केवलज्ञान है...** आठ अर्थात् पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान। यह भेद है न आठ ? ज्ञान के पाँच भेद सम्यग्ज्ञान के। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल तथा अज्ञान के तीन। अज्ञान मति, अज्ञान श्रुत, विभंग। आठ में भगवान को केवलज्ञान होता है। समझ में आया ? देखो ! वे कहते हैं न चार ज्ञान होते हैं भाई उसमें। आता है वह। सिद्धश्रेणी। यह तत्त्वार्थसूत्र टीका की है न, उसमें उन्होंने चार ज्ञान वर्णन किये हैं। कहते हैं, नहीं। यहाँ तो एक ही केवलज्ञान है। पूर्ण वस्तु है वह और ... क्या ? आहाहा !

इन सबमें दूसरे की अपेक्षा अन्तर करने में अरिहन्त का वास्तविक स्वरूप वर्णन करते हैं। समझ में आया ? समझ में आया चेतनजी ? उसमें यह आता है। तत्त्वार्थसूत्र की टीका आती है न सिद्ध (श्रेणी), उसमें यह आता है। चार ज्ञान के। .... आहाहा ! ज्ञान के आठ भेद हैं। आठ अर्थात् ? सम्यग्ज्ञान के पाँच और अज्ञान के तीन, यह उसके भेद कहलाते हैं। आठ में उन्हें एक केवलज्ञान होता है। अज्ञान तो नहीं होता, परन्तु चार ज्ञान भी भगवान को नहीं होते। आहाहा !

**संयम - सात में एक यथाख्यात है...** पाँच प्रकार के संयम हैं न ? सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय (और) भगवान को यथाख्यात। जैसा आत्मा का स्वरूप है, वैसा प्रसिद्ध हो गया है। ऐसा यथाख्यात नाम का चारित्र भगवान को संयम होता है। यह संयम शब्द प्रयोग किया है। ऐसा संयम। वहाँ सिद्ध को नहीं होता। चारित्र तो है या नहीं वहाँ ? **दर्शन - चार में एक केवलदर्शन है...** चार दर्शन कौन ? चक्षुदर्शन। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन। इन चार दर्शन में भगवान को केवलदर्शन होता है। **लेश्या - छह में एक शुक्ल जो योगनिमित्त है;...** भगवान को योग होता है न अभी कम्पन। इसलिए उसके—योग के कारण लेश्या गिनने में आती है। वरना योग और कषाय का मिलान, इसका नाम लेश्या है। कषाय अनुरंजित योगलेश्या। परन्तु वह योग है, इतना गिनकर उसे उपचार से शुक्ललेश्या कहा गया है।

लेश्या के छह प्रकार हैं। है न... वे। कृष्ण, नील, कापोत। कृष्ण लेश्या के परिणाम बहुत कठोर मलिन। पूरा वृक्ष काटकर जामुन खाना। जामुन या आम। पूरा वृक्ष काटकर खाऊँ, ऐसे मलिन परिणाम हैं। कृष्ण, कापोत। उससे थोड़ा डाली काटकर। और उससे

जरा नील। और फिर कापोत। यह छोटी-छोटी डालियाँ काटे। पीतवाला कहे कि भाई! यह किसलिए? अकेले गुच्छे ही तोड़ लो न आम के। पूरे वृक्ष तोड़ने की अपेक्षा। पद्मवाला कहे, ऐसा नहीं, अपने आम-आम तोड़ लो, नहीं। (शुक्ल) लेश्यावाला कहे, ऐसा नहीं, अभी हवा चलेगी, नीचे (फल) गिरेगा, वह खाऊँगा। पचास मण आम है ऊपर। थोड़े गिरेंगे (यहाँ पर) स्वयं गिरेंगे। अपने हैं छह व्यक्ति। परिणाम परिणाम में अन्तर होता है, उसे यहाँ लेश्या कहा जाता है। एक काम करने में होता है न देखो न, एक को तीव्र भाव हो और एक को मन्द हो। वह कषाय... भगवान को शुक्ललेश्या योग के कारण से गिनने में आयी है।

**भव्य - दो में एक भव्य है...** अभी भव्य हैं न जब तक सिद्ध नहीं हुए इसलिए। भव्य और अभव्य दो प्रकार के जीव, उसमें भगवान अरिहन्त तीर्थंकर भव्य जीव होते हैं। **सम्यक्त्व - छह में क्षायिक सम्यक्त्व है...** छह समकित, लो! मिथ्यात्व का भेद है न? सासादन आदि बहुत भेद हैं। उसमें मिथ्यात्व, ... क्षयोपशम, क्षायिक।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह। उसमें क्षायिक समकित भगवान को होता है। लो पूर्ण निर्मल।

**संज्ञी - दो में संज्ञी है,...** संज्ञी, वह द्रव्य है। भाव से तो क्षयोपशमभाव का अभाव है। भाव संज्ञी का अभाव है। **क्षयोपशमरूप भावमन का ( भगवान को ) अभाव है...** आहाहा! वे कहें, होता है। **आहारक अनाहारक - दो में आहारक है वह भी नोकर्मवर्गणा अपेक्षा है...** शरीर के रजकण आते हैं न, उसे आहार कहा जाता है। वह कवल आहार भगवान को होता नहीं। आहाहा! कवलाहार नहीं। **और समुद्घात करे तो अनाहारक भी है,...** समुद्घात अनाहारक। **इस प्रकार मार्गणा अपेक्षा अरहन्त का स्थापन जानना।** लो। यह मार्गणा अर्थात् गति, काय, लेश्या आदि चौदह बोल हैं न, उनमें से यह होते हैं, ऐसा स्थापन किया। ऐसे अरिहन्त को स्थापना निक्षेप से कहा जाता है। यह स्थापना नहीं। यह स्थापना व्यवहार है। ऐसी स्थापना गति में मनुष्यगति होती है, कषायरहित हो, ऐसी वह स्थापना। इस प्रकार अरिहन्त की, तीर्थंकर की पहिचान करायी।

★ ★ ★

गाथा - ३४

अब **आगे पर्याप्ति द्वारा कहते हैं :—** ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने भी एक अरिहन्त की व्याख्या बोधपाहुड़ निश्चय का कर्ता, ऐसी सब व्याख्या की।

**आहारो य सीरो, इंदियमणआणपाणभासा य।**
**पज्जत्तिगुणसमिद्धो, उत्तमदेवो हवइ अरहो॥३४॥**

**अर्थ :- आहार, शरीर, इन्द्रिय, मन, आनप्राण अर्थात् श्वासोच्छ्वास और भाषा—इस प्रकार छह पर्याप्ति है,...** यह छह। **इस पर्याप्ति गुण द्वारा समृद्ध अर्थात् युक्त उत्तम देव अरहन्त है।**

**भावार्थ :- पर्याप्ति का स्वरूप इस प्रकार है—जो जीव एक अन्य पर्याय को छोड़कर...** यह एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जीव जाये। **अन्य पर्याय में जावे, तब विग्रह गति में तीन समय उत्कृष्ट बीच में रहे,...** एक भव में से दूसरे भव में जाये तो मार्ग में अधिकतम तीन समय रहे। कोई एक समय, कोई दो समय। क बोले उसमें असंख्य समय जाते हैं। यहाँ तो अभी उसकी नाड़ी पकड़ते हों। बापूजी की पल्स हाथ नहीं आती। वहाँ वह चला गया। यह देखो न, तलकशीभाई तो बेचारे कब मर गये, खबर नहीं, लो! ११ बजे तो अभी बातें करते हैं, नहीं?

**मुमुक्षु :** ....दो बजे कहा यह खर्राटे क्यों बन्द हो गये ... तब खबर पड़ी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ठीक। यह रुपये सब काम नहीं आवे कुछ। लड़के भी काम नहीं आये। लड़के पड़े रहे।

**मुमुक्षु :** काम आये न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाद में आये न शरीर जलाने। वे तो चले गये। हो गया। आहाहा!

कहते हैं, मार्ग में अधिकतम तीन समय रहे। एक देह छोड़कर दूसरी देह में जाये तब बीच में एक समय, दो और तीन समय रहे। **पीछे सैनी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो।** सैनी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो। कहो, समझ में आया? यह संज्ञी पंचेन्द्रिय है न वह। **तीन**

**जाति की वर्गणा का ग्रहण करे...** यह पर्याप्ति का वर्णन है न। **आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, इस प्रकार ग्रहण करके आहार जाति की वर्गणा से तो आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास इस प्रकार चार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त काल में पूर्ण करे,...** यह गर्भ में, माता के गर्भ में। आहाहा! भगवान तीर्थंकर का आत्मा भी जब माता के गर्भ में आवे, तब वह भी इस आहार को ग्रहण करे रजकणों को। भाषा निमित्त है। निमित्त से बात है, हों! रजकण को ग्रहण करना। आहाहा!

**आहार...** माता के गर्भ में आहार ले न। रजकण शरीर बँधे। तो **शरीर, इन्द्रिय...** पाँच इन्द्रिय ऐसे बँधती है वहाँ पेट की। आहाहा! तीर्थंकर जैसों को ऐसा होता है, कहते हैं। जन्मते हैं न वे। अन्तिम अवतार। आहाहा! श्वास। **आहार, शरीर, इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास इस प्रकार चार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त काल में पूर्ण करे,...** अन्तर्मुहूर्त के अन्दर ही। पूर्ण करे वहाँ। **तत्पश्चात् भाषाजाति मनोजाति की वर्गणा से अन्तर्मुहूर्त में ही भाषा...** पश्चात् भाषा की पर्याप्ति बाँधे अन्दर। रजकण नामकर्म के उदय से अन्दर बँधे। **पूर्ण करे,...** स्वयं करे, ऐसी भाषा। वरना वहाँ शरीर के रजकण इन्द्रियरूप हो, वह तो जड़ होता है। माता के गर्भ में। आता है न, भगवती आराधना में आता है। माता के गर्भ में आवे, तब पहले सात दिन तो रुधिर और वीर्य का बिन्दु ऐसे चलता हो अन्दर गर्भ में। सात दिन तक। फिर सात दिन में जरा गाढ़ा हो। ऐसा करते... करते... करते... करते... करते... नौ महीने में शरीर, इन्द्रिय का आकार अन्दर आवे। आहाहा! यह शरीर की उत्पत्ति। बाहर आया वहाँ हो गया। आहाहा! भगवान का शरीर भी इस प्रमाण उपजता था वहाँ, ऐसा कहते हैं। माता के गर्भ में। आहाहा!

**भाषाजाति मनोजाति की वर्गणा से...** वर्गणा अर्थात् रजकणों का समूह। **अन्तर्मुहूर्त में ही भाषा, मनःपर्याप्ति पूर्ण करे,...** भाषा ग्रहण करने की शक्ति अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण करे। ऐसा मन नहीं। **इस प्रकार छहों पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण करता है, तत्पश्चात् आयुपर्यन्त पर्याप्त ही कहलाता है...** लो! माता के गर्भ में यह छह पर्याप्ति बँधती है, वह अन्तिम देह के छूटने तक वे रहती हैं। देव जिनकी सेवा करे। आहाहा! माता के गर्भ में आने से पहले भी देव आकर छह महीने पहले शरीर को साफ करे। स्फटिक रत्न जैसा हो, उसमें जन्म ले। बाँधे परन्तु ऐसा। आहाहा! 'व्युत्पत्ति देखा आपने...' आपने अर्थात्

शरीर। वहाँ आत्मा कहाँ? भगवान तीर्थंकर हुए, वे भी इस प्रकार से अवतरित हुए थे, ऐसा कहते हैं। कहीं अद्धर से आये थे? आहाहा! उन्हें अरिहन्तरूप से तीर्थंकररूप से फिर कहा गया।

जन्म हो, तब इन्द्र आवे। इन्द्र आकर नमस्कार करे। आहाहा! नमो रत्नत्रयी कुखधारिणी जनेता, माता! रत्न को कूख में रखनेवाली! पहले तुझे नमस्कार। ऐसा इन्द्र करे। देखो, इस प्रकार जन्मे उन्हें भी। उनकी माता को। आहाहा! इन्द्र ऐसा कहे 'पुत्र तुम्हारा धणी हमारा, तारण तरण जहाज रे। माता यत्न करके रखना इसे यह हम धर्मकुल आधार रे।' माता! यत्न करके (रखना)। वह तो देव आवे। देव आवे। तेरा पुत्र भी हमारा तो स्वामी है। कहो, अब इस प्रकार से जन्मे उन्हें नौ महीने आवे, तब इन्द्र आकर ऐसा करते हैं। कितना पुण्य! तीर्थंकर को पुण्य ऐसा ही होता है, ऐसा कहते हैं। उनका शरीर, यह रोग आवे। (ऐसा नहीं होता)। पहले से ही परम औदारिकशरीर होता है। मल-मूत्र नहीं होते पहले से। यह तो आ गया है न पहले। माता-पिता को मल-मूत्र नहीं होते। आहाहा! दोनों सीप के मोती जैसे माता-पिता भी मोक्षगामी होते हैं। भले माता उस भव में न जाये, परन्तु मोक्षगामी दोनों हैं। उसके गर्भ में भगवान आवे। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! ऐसा पुण्य है और ऐसी पवित्रता उनकी है। आहाहा! अरिहन्त के अनुसार। अरिहन्त कोई अद्धर से आये नहीं। तीर्थंकर भी माता के गर्भ में आकर आहार से प्राण पर्याप्ति बाँधी थी और फिर जन्मे हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, कुन्दकुन्दाचार्य जैसे मुनि, वे भी ऐसा वर्णन तीर्थंकर की उत्पत्ति का वर्णन ऐसा बतलाते हैं। अरिहन्त की पहिचान देते हैं कि अरिहन्त ऐसे होते हैं।

**इस प्रकार छहों पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण करता है, तत्पश्चात् आयुपर्यन्त पर्याप्त ही कहलाता है...** आयुष्य पूर्ण हो, तब तक सब पर्याप्ति रहे, ऐसा कहते हैं। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा, मन—ऐसा। **नोकर्मवर्गणा का ग्रहण करता ही रहता है।** पश्चात् शरीर के रजकण तो परमाणु आया ही करे उन्हें। जन्मने के बाद भी शरीर में रजकण आवे और पुष्टि हो। और केवली को तो रजकण औदारिक के आया करे। उन्हें कवल-बवल नहीं होता, ऐसा कहते हैं। **नोकर्मवर्गणा का ग्रहण करता ही रहता है।** ग्रहण करे का अर्थ? आते हैं, उन्हें ग्रहण करते हैं—ऐसा कहा जाता है। यह

तो आत्मसिद्धि में आगे आता है न 'ग्रहण करे जड़...' भाषा तो व्यवहार... क्या करे? 'ग्रहण करे जड़...' आता है आत्मसिद्धि में। क्या है उसमें पहला पद? आता है। यह ग्रहण शब्द यह तो आया। ग्रहण क्या करे? वहाँ आत्मा अरूपी है, उसे ग्रहण...? परन्तु उसमें संयोग रजकण ऐसे आते हैं अन्दर वहाँ।

**आहार नाम कवलाहार का नहीं जानना।** देखो! भगवान को कवलाहार, ग्रास नहीं होता, पानी और मौसम्बी को पीना उन्हें नहीं होता। आहाहा! उन्हें अमृत का आहार होता है। नित्यानन्द भोजी। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी, उन्हें यह आहार नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी आंशिक आनन्द का अनुभवी है। यह तो पूर्ण आनन्द। आहाहा! अकेला आनन्द स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्व-भाव अर्थात् सुखस्वरूप। उसकी पूर्णदशा प्रगट हुई, उसे फिर आहार और कवल, यह और कैसे? आहाहा! वह आहार आवे तो सुखी हो, तो शरीर पुष्ट रहे, वरना वैसा (क्षीण) रहे। भठ्ठा पुठ्ठा ऐसा पाठ है। आहार लिया भगवान ने, अब पुष्ट शरीर हो गया। पन्द्रहवाँ शतक। पढ़ा था व्याख्यान। पहले का हो न। पन्द्रहवाँ शतक। पूरा भगवती (सूत्र) ... था न।

**कवलाहार नहीं जानना। इस प्रकार तेरहवें गुणस्थान में भी अरहन्त के पर्याप्ति पूर्ण ही है,...** लो, ठीक! तेरहवें गुणस्थान में भी पर्याप्ति है, वह पूर्ण होती है। **इस प्रकार पर्याप्ति द्वारा अरहन्त की स्थापना है।** स्थापित किया अर्थात् है उसमें ऐसा। अरिहन्त को ऐसा भी होता है। वह स्थापनानिक्षेप। यह स्थापना वह नहीं।

★ ★ ★

## गाथा - ३५

अब प्राण। वे प्राण कितने होते हैं भगवान को? **आगे प्राण द्वारा कहते हैं:—** पर्याप्ति और प्राण।

**पंच वि इंदियपाणा, मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।**
**आणप्पाणप्पाणा, आउगपाणेण होंति दह पाणा॥३५॥**

**अर्थ :- पाँच इन्द्रियप्राण,...** यह जड़। कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श यह।

यह पाँच इन्द्रियाँ जड़। **मन-वचन-काया तीन बलप्राण...** मन, वचन और काया यह तीन बलप्राण। वाणी, मन और काया, ऐसे बलप्राण। **एक श्वासोच्छ्वास...** यह श्वास। यह प्राण **और एक आयु प्राण, ये दस प्राण हैं।** इसलिए अरिहन्तदेव को तेरहवें गुणस्थान में कितने प्राण होते हैं? ऐसा कहते हैं। है, नीचे है।

**उनमें तेरहवें गुणस्थान में भावइन्द्रिय और भावमन का...** अभाव होता है। भगवान केवली तीर्थंकरदेव को भावमन और भाव इन्द्रिय का अभाव होता है। जड़ इन्द्रियाँ होती है और यह जड़ मन होता है। भावमन और भाव इन्द्रिय का अभाव होता है। अतीन्द्रिय हो गये हैं न! भाव क्या और द्रव्य क्या? सब। **क्षयोपशमभावरूप प्रवृत्ति नहीं है...** ऐसा कहते हैं। भाव इन्द्रिय की और भावमन की क्षयोपशमभावरूप प्रवृत्ति भगवान को नहीं है। वह तो वहाँ तो क्षायिकभाव है। अधूरा कुछ है नहीं। आहाहा!

**इस अपेक्षा से तो कायबल, वचनबल, श्वासोच्छ्वास, आयु—ये चार प्राण हैं और द्रव्य अपेक्षा...** वह बाह्य अपेक्षा। **और द्रव्य अपेक्षा दसों ही हैं।** यह जड़ है न पाँच। मन, वचन, काया यह दस। द्रव्य अपेक्षा से दसों होते हैं और भाव अपेक्षा से इतना होता है। कायबल, वचनबल, श्वास और आयुष्य चार होते हैं। आयुष्य प्राण है न अभी? यह भाव की बात की है, हों! द्रव्य अपेक्षा से दसों होते हैं। सब पाँचों इन्द्रियाँ होती है, मन-वचन-काया (बल) मन होता है परमाणु, शरीर होता है, वाणी होती है, आयुष्य होता है, श्वास होता है। यह अरिहन्त का स्थापन किया, लो! वे ऐसे प्राण भगवान को होते हैं। ऐसा भी सुना न हो कभी अभी। भगवान एक अरिहन्त हैं, अरिहन्त ऐसे हैं। आहाहा! यह कहे कि मनुष्यपने थे, ऐसा सिद्ध करना है। तीर्थंकर मनुष्यगति में थे। प्राणवाले थे, पर्याप्तिवाले थे, आयुष्यवाले थे। सहित थे इतनी बात। ...आहाहा! मनुष्यगति में थे। वे कोई अद्धर सिद्ध में नहीं थे। कहीं सिद्ध में से कहीं आये नहीं थे। सिद्ध में नहीं थे, सिद्ध में से आये नहीं। मनुष्य में से और या नरक और स्वर्ग में से आये हैं। मनुष्य हुए सही, परन्तु आये हैं नरक और स्वर्ग में से। तीर्थंकर नरक में से आवे और स्वर्ग में से आवे। आहाहा! श्रेणिक राजा देखो न! अभी नरक में हैं। आयुष्य पूरा होगा। राजा की रानी के गर्भ में भगवान का—श्रेणिक का जीव आयेगा। आगामी चौबीसी में पहला तीर्थंकर होगा।

यह अरिहन्त का अद्धर से लटकता और पड़ना नहीं। उन्हें ऐसा स्वरूप शरीरसहित होता है, यह बताते हैं। आहाहा! दूसरे कहे भगवान ऐसे थे, भगवान ने ऐसे जन्म दिया। भगवान उसमें अवतरित हुए, अवतारी पुरुष ऐसे होते हैं। वे अवतारी ऐसे होते हैं, कहते हैं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** .... पाँच इन्द्रियाँ और मन है....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... है। भावमन का क्षयोपशम का अभाव है। ... होता है उनको।!

**मुमुक्षु :** भावकर्म....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह और अलग। भावकर्म है ही नहीं। आयुष्य ग्रहण करते हैं। 'भावकर्म निज कल्पना इससे चेतनरूप।' वह जीव... निमित्त है वह तो। ग्रहण करे। ग्रहण क्या करे? परन्तु वह व्यवहार समझाते हैं। यह ग्रहण करने का कहा न इसलिए। कहा जाता है... माता के गर्भ में ग्रहण करे। आहार के परमाणु, शरीर के, इन्द्रिय के बाँधे। वह सब व्यवहार का कथन है। रजकण की पर्याय रजकण से वहाँ होती है। आत्मा तो अज्ञानी का आत्मा, वह कहीं परमाणु को बाँधता नहीं। आहाहा! ओहोहो! कहाँ-कहाँ अवतरे, देखो न!

नहीं था एक बार पीपर डालकर ... उसमें कौने में एक ईयळ पकी थी इतनी बारीक। पीपरमेंट थी। हरा रंग हरापन। कौने में कहीं आगे ऊपर पीपर (मेंट) पड़ी थी सब। उसके कौने में—डिब्बे के कौने में इतनी बारीक ईयळ हुई लाल। वहाँ के रजकण ऐसी इन्द्रियरूप से, शरीररूप से हुए। ओहोहो! ऊपर पीपर (मेंट) का ढ़ेर था। वह श्वास लेती होगी अन्दर से। आहाहा! माता के गर्भ में भी श्वास लेता है न नौ महीने, उल्टे सिर श्वास लेता है। आहाहा! गति कोई अलग प्रकार की है। उसका कर्ता आत्मा नहीं और उसका वह कर्ता कोई दूसरा ईश्वर नहीं। स्वयं ही अपनी शक्ति की योग्यता के कारण यहाँ अवतरित होता है, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार प्राण द्वारा अरहन्त का स्थापन है।** स्थापन अर्थात् है, ऐसा बतलाया ऐसा। ऐसा उन्हें होता है।

★ ★ ★

गाथा - ३६

अब जीवस्थान वर्णन करते हैं। चौदह जीवस्थान है न? चौदह जीवस्थान हैं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्री इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी, इनके पर्याप्त-अपर्याप्त (मिलकर) चौदह भेद। उसमें ऐसा कि जीवस्थान में भगवान किस स्थान में होते हैं? चौदह जीव के स्थान में किस स्थान में होते हैं? भाव की तो यह तो बाहर के जानने की भी खबर नहीं होती।

**मणुयभवे पंचिंदिय जीवट्ठाणेसु हइ चउदसमे।**
**एदे गुमगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो॥३६॥**

भगवान मनुष्यभव में होते हैं। पंचेन्द्रिय नाम के भाव में होते हैं और चौदहवें जीवस्थान में। जीव के चौदह स्थान हैं, उनमें चौदहवाँ जीवस्थान। पंचेन्द्रिय पर्याप्त। पंचेन्द्रिय पर्याप्त है न चौदहवाँ। जानने की बात है।

**अर्थ :- मनुष्यभव में पंचेन्द्रिय नाम के चौदहवें जीवस्थान अर्थात् जीवसमास, उसमें इतने गुणें के समूह से युक्त...** यह सब भाव से और अनन्त गुणों से **तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त अरहन्त होते हैं।** कहो, यह सब बाहर की योग्यता भी ऐसी होती है और अन्तर में अनन्त गुणसहित भगवान हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त गुण सब खिल गये हैं। तेरहवें गुणस्थान में केवली को णमो अरिहंताणं और अनन्त गुण जिन्हें जैसे कली खिल जाती है, वैसे सब खिल गये हैं। ऐसे भगवान अरिहन्त होते हैं। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मगसिर कृष्ण १३, शनिवार, दिनांक-२२-१२-१९७३**
**गाथा - ३६ से ४१, प्रवचन-७४**

अष्टपाहुड़ में ३६वीं गाथा का भावार्थ। अरिहन्त का स्वरूप। उसे जीवसमास चौदह हैं, उनमें से चौदहवें भेद से है, ऐसा बतलाना है। **एकेन्द्रिय सूक्ष्म और बादर २, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, ऐसे विकलत्रय-३, पंचेन्द्रिय असैनी सैनी २, ऐसे सात हुए; ये पर्याप्त अपर्याप्त भेद से चौदह हुए।** उनमें चौदहवाँ भेद है भगवान का। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान। ऐसा कि पाँच में भले कहा नहीं परन्तु मनुष्य भव कहा न। मनुष्य संज्ञी ही होते हैं यहाँ भगवान।

**गाथा में सैनी का नाम न लिया और मनुष्य का नाम लिया तो मनुष्य सैनी ही होते हैं, असैनी नहीं होते हैं। इसलिए मनुष्य कहने से सैनी ही जानना चाहिए।** लो! स्थापना अरिहन्त का वर्णन किया।

★ ★ ★

**गाथा - ३७-३९**

अब द्रव्य अरिहन्त। द्रव्य निक्षेप नहीं, परन्तु यहाँ उनका शरीर अरिहन्त का कैसा होता है, यह बतलाते है। आत्मा से भिन्न जो शरीर अरिहन्त का कैसा होता है? यह बताते हैं। कितने ही कहते हैं न कि अरिहन्त को रोग होते हैं, दवा लेते हैं, फलाना होता है। ऐसा उन्हें होता नहीं।

**जरवाहिदुक्खरहियं, आहारणिहारवज्जियं विमलं।**
**सिंहाण खेल सेओ, णत्थि दुगुंछा य दोसो य॥३७॥**

**दस पाणा पज्जती, अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया।**
**गोखीरसंखधवलं, मंसं रुहिरं च सव्वंगे॥३८॥**

**एरिसगुणेहिं सव्वं, अइसयवंतं सुपरिमलामोयं।**
**ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स॥३९॥**

तेरहवें गुणस्थान का अरिहन्त का वर्णन है इसमें। वरना तो चौदहवें गुणस्थान में भी अरिहन्त कहलाते हैं। इसमें तेरहवें गुणस्थान का पाठ आ गया न पहला? ३२वीं गाथा में आया। तेरहवें गुणस्थान में वर्णन है यह। ३६ गाथा में आ गया पहला बोल। वरना अरिहन्त तो तेरह और चौदह दोनों जगह होते हैं। परन्तु चौदहवें में तो अल्प है, उसकी (स्थिति), तेरहवें गुणस्थान की स्थिति में लम्बा काल होता है न, उसका वर्णन लिखा है।

**अर्थ :- अरहन्त पुरुष के औदारिक काय इस प्रकार होता है :—** भगवान णमो अरिहंताणं तीर्थंकर कहलाते हैं। उनका शरीर औदारिक कैसा होता है? उन्हें जरा नहीं होती। शरीर में जरा—वृद्धावस्था उन्हें नहीं आती। करोड़ पूर्व का आयुष्य हो। एक पूर्व में ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसा एक पूर्व, ऐसा करोड़ पूर्व का (आयुष्य हो), तो शरीर को वृद्धावस्था नहीं होती। सीमन्धर भगवान को करोड़ पूर्व का आयुष्य है। भगवान महाविदेह में विराजते हैं। इतने में उन्हें एक अवस्था न दिखाई दे। अवस्था न हो। यहाँ तो कितनों को ३० वर्ष में सफेद बाल हो और अवस्था दिखाई दे। भगवान को ऐसा पुण्य होता है कि उन्हें होती नहीं अवस्था। आहाहा! है न?

**जरा, व्याधि...** नहीं होती। **व्याधि और रोग...** ऐसा लिखा है। व्याधि अर्थात् रोग नहीं। भगवान अरिहन्त को रोग होते नहीं। यह तो श्रीमद् ने भी मान्य रखा है। भगवान अरिहन्त परमेश्वर के शरीर में रोग ही नहीं होते। ऐसा असाता का उदय उन्हें होता नहीं। **सम्बन्धी दुःख उसमें नहीं है...** वृद्धावस्था का और रोग का दोनों दुःख उन्हें नहीं होते। सदा निरोग अवस्था और जवान जैसी अवस्था दिखती है। ऐसी ही शरीर की स्थिति होती है। **आहार-निहार से रहित है,...** भगवान (को) तेरहवें गुणस्थान में आहार नहीं होता, जंगल—निहार भी नहीं होता।

**मुमुक्षु :** जन्म भी नहीं होता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बाद का प्रश्न है। अभी तो आहार-निहार की इतनी बात

है। आहार नहीं। निहार अर्थात् दिशा (दस्त) जाना। पहले संसार में गृहस्थाश्रम में हो, तब आहार होता है, निहार नहीं होता। केवल (ज्ञान) हो, तब आहार और निहार दोनों नहीं होते। ऐसा का ऐसा शरीर, औदारिकशरीर के रजकण आवे, ऐसा का ऐसा शरीर लगे। यह वास्तविक अरिहन्त की पहिचान बताते हैं। गड़बड़ हो गयी थी न सम्प्रदाय में? अरिहन्त के नाम से बहुत गड़बड़ हो गयी थी। श्वेताम्बर में अरिहन्त का स्वरूप विकृत कर डाला। मोहनभाई! ऐसा है। यह स्पष्टता की है कुन्दकुन्दाचार्य ने बोधपाहुड़ रचकर कि अरिहन्त ऐसे नहीं होते। अरिहन्त तो ऐसे होते हैं, जिनके शरीर में रोग नहीं होता। बुढ़ापा नहीं दिखता, आहार नहीं होता, निहार नहीं होता। **विमल अर्थात् मलमूत्र रहित है....** मल नहीं।

**मुमुक्षु :** .... दिखता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दिखता नहीं, यह सब खोटी बात है। वह आता है श्वेताम्बर में। दूसरे देखते नहीं। परन्तु आहार करे, न देखे, इसका अर्थ क्या? आहार होता ही नहीं। अमृत का आहार जहाँ अन्तर में जगा है। अतीन्द्रिय आत्मा अन्दर पका है। अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अनन्त आनन्द। आहाहा! उस अमृत के अनन्त के घूंट क्षण-क्षण में पीते हैं। उन्हें अरिहन्त कहते हैं। उन्हें आहार कैसा? उन्हें पानी कैसा? उन्हें रोग कैसा? उन्हें पेशाब कैसा? आहाहा! ऐसी अरिहन्त की स्थिति है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा स्वरूप अरिहन्त का है—ऐसा स्पष्ट करते हैं। इससे विरुद्ध माने, वह अरिहन्त का स्वरूप समझता नहीं, ऐसा कहते हैं।

**सिंहाण अर्थात् श्लेष्म,...** नहीं होता उन्हें। श्लेष्म नहीं होता भगवान को, ऐसा कहते हैं। रोग नहीं होता, फिर वह सब कुछ उन्हें नहीं होता। **खेल अर्थात् थूक...** नहीं होता। थूक-थूक। ...लोगों को। उन्हें—भगवान को थूक नहीं होता। **पसेव...** नहीं होता। लो! **दुर्गन्ध अर्थात् जुगुप्सा...** हो ऐसी कोई चीज़ ही उनके पास नहीं होती। **ग्लानि अर्थात् दुर्गन्धादि दोष उसमें नहीं है।** लो! ऐसा शरीर ही उन्हें द्रव्य निक्षेप से कहा जाता है। भगवान का द्रव्य जो आत्मा द्रव्य निक्षेप से, वह यहाँ अभी नहीं। परन्तु शरीर द्रव्य-निक्षेप से। नाम, स्थापना, द्रव्य इस प्रकार से घटित किया है।

**दस तो उसमें प्राण हैं...** भगवान को। पाँच इन्द्रिय, मन, वचन और काया, श्वास और आयुष्य दस प्राण होते हैं। **पूर्ण पर्याप्ति है,...** आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा और मन छहों पर्याप्ति भगवान को पूर्ण होती है। द्रव्यरूप से बाहर की बात है न! शरीर की बात है न यह? **एक हजार आठ लक्षण हैं...** उनके शरीर में विमान, ध्वजा, इत्यादि-इत्यादि एक हजार आठ तो लक्षण शरीर में होते हैं। ऐसा उनका—भगवान का शरीर होता है। परम औदारिक।

**और गौक्षीर...** गाय का दूध **अर्थात् कपूर अथवा चन्दन तथा शंख जैसा उसमें सर्वांग धवल रुधिर और माँस है।** रुधिर और माँस श्वेत-सफेद होता है। जगत का रुधिर दूसरे को लाल होता है, उन्हें सफेद होता है। जगत से अलग चीज़ है न! महापुण्य से आये हैं न! तीर्थंकर प्रकृति। उनके जैसी प्रकृति पुण्य की कोई दूसरी है नहीं जगत में। तीर्थंकर की प्रकृति ४२ ... प्रकृति है। ... ऐसे भगवान के शरीर में कहीं ऐसी दुर्गन्ध आदि होती नहीं। कितनों को श्वास गन्ध मारती है न? क्या कहलाती है वह भाषा आती है न? ... यह .... नहीं कहते गन्ध मारे बहुत उसे। निर्मल, शरीर का श्वास ही सुगन्ध मारे। आत्मा की गन्ध सब प्रगट हुई है तो शरीर में भी सुगन्ध मिलती है। आहाहा!

**सर्वांग धवल...** पूरा सर्वांग उनके पास ऐसा। किसी जगह रुधिर लाल दिखाई दे और किसी जगह सफेद, उन्हें होता नहीं। सर्वांग सुन्दर होता है, लो! धवल रुधिर। सब माँस और हड्डियाँ। माँस देखो तो सर्वत्र सफेद, रुधिर सफेद। उन्हें रोग हो, छह महीने खूनी दस्त। कहाँ से आया? वह वाडा निकला है, वह तो यही है बड़ा सम्प्रदाय है। दो भाग पड़ गये बड़े उसमें भी। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, श्वेताम्बर स्थानकवासी। यह अरिहन्त का स्वरूप विकृत करके उतरे हैं सब।

**मुमुक्षु :** बड़ा अन्तर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़ा अन्तर। पूर्व-पश्चिम का अन्तर। बात अलग है जरा।

**मुमुक्षु :** ....मनुष्य।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** साधारण मनुष्य जैसा बनाया। वे अन्य में कहते हैं न। मनुष्य

से मुझे मनुष्य जैसा ही बनाया। मानव मुझे मानव जैसा बनाओ, यह गायन आता है। सब पढ़ा हुआ बहुत न संसार में भी बहुत। कोई याद रह गया हो। 'मानव मने मानव जेवो बनावे छे।' ऐसी कुछ भाषा बनाते हैं। भाषा भूल गये। ... 'मारी सघळी प्रभुता...' ऐसा है। 'मानव मने मानव जेवो बनाव, मारी सघळी प्रभुता...' आहाहा! लो!

**इस प्रकार गुणों से संयुक्त सर्व ही देह अतिशयसहित निर्मल है,...** भगवान का स्वरूप। **आमोद अर्थात् सुगन्ध जिसमें इस प्रकार औदारिक देह अरहन्त पुरुष के हैं।** लो! है न अन्तिम? '**सुपरिमलामोयं**' ३९ में है। **सुगन्ध जिसमें इस प्रकार औदारिक देह अरहन्त पुरुष के है।**

**भावार्थ :- यहाँ द्रव्यनिक्षेप नहीं समझना।** जो वह द्रव्यनिक्षेप चार में—नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, वह नहीं समझना। यहाँ तो आत्मा से भिन्न देह, उसकी प्रधानता से द्रव्य अरिहन्त का का वर्णन किया है। वह देह ही द्रव्य अरिहन्त है, आत्मा भाव अरिहन्त है। आहाहा! लो! शरीर में ऐसे व्याधि, रोग और दु:ख ऐसा नहीं होता। वे द्रव्य अरिहन्त। भाव अरिहन्त आत्मा अन्दर वस्तु। अनन्त ज्ञान, दर्शन प्रगट हुआ है। तो पाँच नवकार में पहला णमो अरिहंताणं को पहिचाने नहीं, ठिकाना नहीं होता। वाड़ा में पड़ा हो, उसमें जो जन्मे, वे फिर माने। धन्धे में निवृत्ति कहाँ से हो? धन्धा... घण्टे भर निवृत्ति हो कुछ वाँचने की या सुनने की, (तो) मिले ऐसे सब। आहाहा! कठिन, भाई! जगत के साथ खड़े रहना। ऐसा मार्ग वीतराग का है।

★ ★ ★

## गाथा - ४०

**आगे भाव की प्रधानता से वर्णन करते हैं :—** भगवान का भाव आत्मा का कैसा होता है ?

**मयरायदोसरहिओ कसायमलवज्जिओ य सुविसुद्धो।**
**चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो ॥४०॥**

**अर्थ :- केवलभाव अर्थात् केवलज्ञानरूप ही एक भाव होते हुए...** यहाँ से शुरु किया है। केवलज्ञानरूपी एक भाव, एक स्वरूप। केवलभावे है न ? ऐसा करके एक अर्थ किया, वह चार ज्ञान और (तीन अज्ञान) नहीं, ऐसा। केवलज्ञान एक भाव। तीन काल-तीन लोक एक समय में जाने, ऐसा केवलज्ञानरूप से उन्हें एक भाव होता है। आहाहा! **अरहन्त होते हैं, ऐसा जानना। मद अर्थात् मानकषाय से हुआ गर्व,...** गर्वरहित है, उन्हें गर्व-बर्व होता नहीं। वे तो पहले से वीतराग हुए हैं। तेरहवें... **राग-द्वेष अर्थात् कषायों के तीव्र उदय से होनेवाले प्रीति और अप्रीतिरूप...** किसी के प्रति शिष्य गणधर हो तो प्रीति और कोई प्रतिकूल हो तो अप्रीति, ऐसा उन्हें होता नहीं। आहाहा!

**प्रीति और अप्रीतिरूप परिणाम, इनसे रहित हैं। पच्चीस कषायरूप मल उसका द्रव्यकर्म तथा...** उन्हें द्रव्यकर्म भी नहीं और उनका **उदय से हुआ भावमल उससे रहित है,...** पच्चीस कषाय जो जड़कर्म, वह नहीं और यहाँ भाव विकारी परिणाम पच्चीस प्रकार के, वह भी नहीं। कषाय-कषाय। आहाहा! ऐसे वीतराग देव सर्वज्ञ को छोड़कर किसी को माने जगत। आहाहा! जन्मे-जन्मे वे जहाँ-तहाँ भटके।

**मुमुक्षु :** क्या करे ? भगवान कुछ दे नहीं और बाहर सब दे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी देते नहीं। ऐई! भगवान वह सांईंबाबा पुत्र दे, ऐसा होगा ? वह ... उसे मानते हैं। जयचन्द का भाई नहीं छोटा। क्या नाम ? खुशाल। आठ पुत्रियाँ हैं, एक पुत्र है।

**मुमुक्षु :** पुत्र दिया न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दिया। धूल भी देता नहीं। कौन देता था ?

**मुमुक्षु :** आठ पुत्रियों के ऊपर दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या हुआ? उसे नौ पुत्रियों के ऊपर एक उसका साला है। क्या है? वह तो उस समय में होनेवाला हो, वह होता है। ...देते ... पुत्र... आहाहा! भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... जगत की। मिथ्यात्व का पोषक। बनिया होकर जैन में भगवान के ऐसे वाड़ा में जन्मा, उसे तो व्यवहार की भी खबर नहीं होती उसे। पच्चीस कषाय से रहित है, लो।

**अत्यन्त विशुद्ध हैं—निर्मल हैं, चित्तपरिणाम अर्थात् मन के परिणमनरूप विकल्प से रहित हैं...** भगवान को मन के परिणाम होते नहीं हैं। मन का परिणाम विकल्प, वह कहीं उन्हें है नहीं। वे तो निर्विकल्प वीतराग हैं। हिलने, चलने की क्रिया में उन्हें विकृत परिणाम मन के परिणाम उन्हें नहीं हैं। वह तो हिलने की, चलने की क्रिया जड़ के कारण चले। बोलने की क्रिया भाषा की हो। वह चित्त के परिणाम हो तो हिले, चले, बोले—ऐसा नहीं है। चित्त के परिणाम ही उन्हें नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशमरूप मन का विकल्प नहीं है,...** देखो! ज्ञानावरणीय के उघाड़ में किंचित् विकल्प जो हो रागादि, वह उन्हें नहीं होता। **इस प्रकार केवल एक ज्ञानरूप...** लो! केवलभाव का वर्णन है यहाँ तो। **'केवलभावे मुणेयव्वो'** अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु। चैतन्य के तेज जिसके पूर्ण खिल गये हैं। चैतन्य का प्रकाश, वह प्रकाश जिन्हें पूर्ण खिल गया है। अकेला ज्ञान का पुंज प्रभु है। आहाहा! उसे यहाँ अरिहन्त कहा जाता है। **वीतरागस्वरूप भाव अरहन्त जानना।** लो! यह भाव अरिहन्त है। शरीर, वह द्रव्य अरिहन्त है। शरीर में भी व्याधि दु:ख आदि नहीं। निरोग शरीर, निर्मल शरीर, (वह) द्रव्य अरिहन्त। भगवान आत्मा भाव अरिहन्त।

**केवल एक ज्ञानरूप...** भाषा ऐसी है न! एक। **केवल एक ज्ञानरूप...** वापस दूसरा कोई चार ज्ञान से, ऐसा नहीं। फलाना, ढींकणा—ऐसा नहीं। इसलिए केवल के ऊपर जोर दिया है। पाठ में है न अर्थ भी ऐसा किया है। **'केवलभावे मुणेयव्वो'** अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु। सर्वज्ञ केवलज्ञानदशा। आहाहा! यह दशा जो जाने, वह

आत्मा के साथ मिलावे तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? एक समय में ऐसा ज्ञान, तीन काल—तीन लोक को एक रीति से ज्ञान में जाने। ऐसे केवलज्ञान का स्वीकार, अस्ति ऐसी सत्ता है, इतना सामर्थ्य है, ऐसा जिसे स्वीकार हो, उसे आत्मा का स्वीकार हो जाता है। आत्मा ही ऐसा केवलज्ञानस्वभावी है। सर्वज्ञस्वभाव है। भगवान को प्रगट है, यह वस्तुरूप से।

★ ★ ★

**गाथा - ४१**

और **आगे भाव ही का विशेष कहते हैं :—** अरिहन्त के अन्तर आत्मा के भाव का विशेष वर्णन।

**सम्मद्दंसणि पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।**
**सम्मत्तगुणविसुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो॥४१॥**

ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने भी जगत को करुणा करके ऐसी एक-एक की व्याख्या! उन्हें क्या पड़ी थी? समझ में आया? विकल्प और करुणा में आया विकल्प। ... ऐसा है भगवान का स्वरूप, भाई! ... जगत में नाम से अभी सब चलाया है, वह अरिहन्त के स्वरूप को जानते ही नहीं। कहो, समझ में आया?

**अर्थ :- 'भाव अरहन्त' सम्यग्दर्शन से तो अपने को...** भाव अरिहन्त भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर **सम्यग्दर्शन से तो अपने को तथा सबको सत्तामात्र देखते हैं...** देखने की अपेक्षा से बात। **सबको सत्तामात्र देखते हैं...** अपना अस्तित्व जैसा-जितना, दूसरे का अस्तित्व जैसा-जितना, सब सम्यग्दर्शन में प्रतीति में आ गया है। सब देखने में आ गया है। आहाहा! **इस प्रकार जिनको केवलदर्शन है,...** ऐसा। यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या की। केवलदर्शन। उसमें केवलज्ञान आया था न? इसमें दर्शन।

**जिनको केवलदर्शन है,...** ऐसा दर्शन होता है, कहते हैं। अपनी त्रिकाली सत्ता, पर की त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय की सत्ता, उसका अस्तित्व जिसके दर्शन में ज्ञात हो गया-देखा गया है। आहाहा! वह जिस समय में केवलज्ञान... अब वही कहते हैं,

देखो! और **ज्ञान से सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं...** दर्शन में तो सत्तामात्र वस्तु है, उसे देखते हैं, भेद पाड़े बिना। उसी समय में केवलज्ञान की पर्याय से **सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं...** आहाहा! एक पर्याय सबको भेद... भेद करके जाने और एक पर्याय भेद बिना जाने-देखे। तथापि वे दोनों पर्यायें एक साथ होती है। आहाहा! समझ में आया? पहले केवलदर्शन, पश्चात् केवलज्ञान। यह श्वेताम्बर में आता है। ऐसा होता नहीं। इसके लिये यह सब स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा! अरेरे! क्या हो? जिसके देव का ठिकाना ही न हो, उनके कहे हुए शास्त्र का ठिकाना नहीं होता। उसे समकित हो कहाँ से? धर्म हो कहाँ से? ऐसा कहते हैं। यह अष्टपाहुड़ का ही किया था न, नहीं? पहला... इसका किया था, नहीं? ... यह लिया है। उसमें जैसे वस्त्र... नहीं, वस्त्र का धागा रखे... वह उन्हें पसन्द पड़ा न उस प्रकार का। अर्थ बोले दूसरे प्रकार का। परन्तु उसे वह... परन्तु उसे यह पसन्द पड़ा।

**मुमुक्षु :** बोधपाहुड़ पसन्द पड़ा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह अष्टपाहुड़ पूरा। पूरा अष्टपाहुड़ नहीं कहा था? पूरा अष्टपाहुड़। इसलिए उसमें यह बात आयी न! उस प्रकार का प्रेम... तब हुआ न! मान्यता में... उसे पक्ष पक्का। दूसरे को मानता नहीं।

**ज्ञान से सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं...** लो! दर्शन में **सबको सत्तामात्र देखते हैं...** यह ज्ञान में **सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं...** ऐसा कहे। तीन काल—तीन लोक के... सब निश्चित हो गया। यह पर्याय का कार्य उस काल में उस काल में हो, वह जाना है और उस काल में निमित्त वही होता है, यह तो सब व्यवस्थित स्थित है। आहाहा! जिस समय जगत की पर्याय जिस द्रव्य की होनेवाली थी, उस काल की पर्याय का ज्ञान है। उसी काल में होगी और उस पर्याय को वह जो निमित्त हो, उस निमित्त का ज्ञान भी उनके ज्ञान में आ गया कि यह निमित्त होगा। फलाना निमित्त आवे तो ऐसा हो और फलाना निमित्त हो तो ऐसा हो, यह वस्तु में है नहीं। आहाहा! बाहर में इस प्रकार से है न! ऐसा कि द्रव्य में अनेक योग्यता है। वह उपादान है। द्रव्य में अनेक योग्यता हुई, वह उपादान। यह बारम्बार डालते हैं। ...द्रव्य की जो एकता है, वह उपादान कहा,

वह व्यवहार है। वास्तव में वर्तमान पर्याय का उपादान, वही निश्चय है। उसका अर्थ बारम्बार यह करते हैं। क्या कहा, समझ में आया?

आत्मा में, तीनों काल है वह सब पर्याय होने की योग्यता वस्तु में है। परन्तु वह वस्तु तो द्रव्य, वह तो व्यवहार हो गया। वह कहाँ वर्तमान प्रगट का कारण कहाँ है? वह व्यवहार हो गया। वर्तमान जो अवस्था प्रगट हो, वही होनेवाली, उसी प्रकार की, वह उसका वास्तविक उपादान वह है। क्षणिक उपादान वह है। भगवान के ज्ञान में वह भी आ गया है। आहाहा! समझ में आया? **ज्ञान से सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं...** लो, इसमें कोई पर्याय को न जाने, भविष्य की न जाने—ऐसा नहीं आया। **सब द्रव्य...** आकाश व्यापक, अन्तरहित आकाश। कहाँ उसका अन्त, कहाँ परन्तु अन्त हो? अन्त कहाँ हो? क्षेत्र से पृथक् है कि जहाँ ऐसे और ऐसे और ऐसे चले जाते.. जाते... जाते... वह तो वस्तु का स्वभाव ही कोई ऐसा है। ऐसे क्षेत्र जाते-जाते ऐसे जाते कहीं उसका अन्त? आहाहा! ऐसा का ऐसा क्षेत्र का अन्त नहीं, ऐसा चला जाता है। यह वह क्या चीज़ है यह? आहाहा! और साधारण मनुष्य विचार करे न तो उसे ऐसा हो कि यह वस्तु तो ऐसी की ऐसी क्षेत्र... क्षेत्र... क्षेत्र... अब यह जड़ और चैतन्य संग्रहात्मक क्षेत्र थोड़ा हो, परन्तु फिर क्षेत्र तो है न? उस क्षेत्र का फिर छोर कहाँ? यह वह क्या परन्तु चीज़ है अभी यह? ...भाई! न्याय से, लॉजिक से तो समझ में आता है या नहीं? पश्चात्... पश्चात्... कुछ नहीं तो फिर कुछ नहीं परन्तु तो फिर क्या? आहाहा! क्या कहते हैं यह? यह क्षेत्र भी ऐसा का ऐसा अपार-अपार। पार कहीं नहीं होता। ओहोहो! क्षेत्र की भी जहाँ ऐसी स्थिति, तो उसके भाव की स्थिति का क्या कहना? ज्ञान जाने... जाने... जाने... जाने... जाने... जाने... अपार को जाने; अन्त नहीं, उसे जाने; शुरुआत नहीं, उसे जाने। आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति है पूरी।

यह कहा था, एक बार कहा था न! कहाँ वह? जामनगर गये तब। कैसा कहलाये? ... भाई के पुत्र के साथ डॉक्टर। प्राणलाल का पुत्र। प्राणभाई का और वह ...उनका पुत्र आया था। वह आया था। दोनों आये थे वहाँ। ...वाला। बैठे थे। शाम को... तुम नास्ति कहो, कहा। तुम मानो, न मानो, उसका कुछ दोष ... वह तो ... .. की बात है। मगसर महीना था। (संवत्) १९९१। कहा, यह ऐसा का ऐसा है यह। यह पारसी लड़का।

इसका पिता भी ... लड़का नहीं था। कहा ऐसा है। जामनगर भगवानजीभाई! ...दीवान थे। ... बहुत नरम व्यक्ति। दरबार ने वेतन में सौ रुपये बढ़ा दिये। दरबार को कहे, क्यों बढ़ाये सौ रुपये? ऐई! सेठ! राज का कोई काम आवे तो हमको शिक्षा करना है, ऐसा है? राज का कोई काम आवे तो सौ रुपये दे तो फिर राज के काम में तुम आड़ा-टेढ़ा करो। यह हम नहीं कर सकेंगे। निकाल दो यह। ऐई! सेठ! लो ऐसा।

एक महेरबान पारसी थे वहाँ। जामनगर में। ... व्याख्यान में आते थे। दो बार आये थे। बहुत नरम व्यक्ति थे। पारसी थे। नीतिवाले। फिर दरबार ने उनका वेतन था कुछ हजार-बारह सौ का। एक सौ रुपये, दो सौ (रुपये) बढ़ाये, कुछ बहुत खबर नहीं। परन्तु बढ़ा दिये। वह दरबार ने वेतन बढ़ा दिया। इसलिए वहाँ जाकर कहे कि यह वेतन किसने बढ़ाया? दरबार को कहे। तो वह क्या कहे? वेतन बढ़ाकर फिर कोई राज का काम आवे तो ढीला रखना, यह हम नहीं कर सकेंगे। निकाल दो वेतन। मैं तो राज का होगा, प्रजा का होगा, जिस प्रमाण होगा वैसा करूँगा। सेठ! बहुत नरम व्यक्ति था। व्याख्यान में आये। दो बार आये। यह १००वीं गाथा चलती थी न समयसार (की)।

**मुमुक्षु :** सबको वेतन बढ़ाकर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। ... बढ़ाया। नहीं तो हड़ताल कर दे। वे तो नीति के लोग... वह महँगाई। परन्तु उस समय ... नहीं। काम जो राज का पद्धतिसर जो कायदा होगा, तत्प्रमाण राज का काम हो या रानी का हो या प्रजा का। मैं दूसरा करनेवाला नहीं। जिसके लिये वेतन बढ़ाते हो, वह वेतन निकाल दो। नवनीतभाई! ऐसे लोग। उनके पुत्र को ऐसा कहा, देखो! भाई! तू इतना विचार कर शान्ति से। यह बाद में बात। परन्तु यह जो... क्षेत्र है। ऐसा... ऐसा... ऐसा... कहाँ तक जाता है? क्षेत्र कहीं हो रहता है? हो रहता है तो फिर क्या? यह वस्तु ही कोई अलौकिक है। वस्तु के क्षेत्र का स्वभाव भी जहाँ अलौकिक। आहाहा! ऐसा का ऐसा... ऐसा... ऐसा... क्या है यह वह चीज़? समझ में आया? दसों दिशाओं में ऐसे गति मस्तिष्क को लक्ष्य में लेने से अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त और अनन्तगुणे गुणा करके वर्ग आवे। उसके बाद भी क्या? समझे? ...भाई! बाद में क्या? बाद में क्या? ऐसा का ऐसा क्षेत्र चला जाता है। कहीं

पार नहीं। पार हो तो बाद में क्या? आहाहा! ऐसी चीज़ है, बापू! भाई! यह तुम्हारा... काम हो मुझसे...

आत्मा अनन्त ज्ञान, आनन्द परमात्मा है, वह सब बात ही ... परलोक है, एक आत्मा में ऐसा भाव करे तो स्वर्ग में, नरक में जाये। परन्तु यह एक बात याद कर तो तुझे... आवे वस्तु का क्षेत्र का स्वरूप कोई अचिन्त्य कोई स्वभाव। आहाहा! तो उसके ज्ञान का करनेवाला भगवान, उसके स्वभाव की क्या बात करना? समझ में आया? कहाँ मस्तिष्क में कहीं ज्ञान में, लक्ष्य में विचारने से कहीं क्षेत्र का अन्त नहीं। तथापि अन्त नहीं, उसे 'अन्त नहीं' इस प्रकार से भगवान ने जाना। आहाहा! जाना नहीं, ऐसा नहीं। अन्त नहीं, इसलिए उन्होंने नहीं जाना। परन्तु अन्त नहीं, ऐसा उन्होंने जाना। समझ में आया? आहाहा! एक विश्वास के लिये चीज़ तो देखो यह!

अनन्त है, उसे अनन्त से उससे अनन्त बार गुणा करना। उसे वर्ग कहा जाता है। जैसे पाँच को पाँच बार, पाँच बार गुणा करना। जैसे पाँच को ५ × ५ = २५, २५×५... ऐसे पाँच बार गुणा करना, वह वर्ग कहलाता है। ऐसे अनन्त को अनन्त बार अनन्त जितना अनन्त है उतना अनन्त बार गुणा करना। आहाहा! ऐसे इस क्षेत्र का भाग, बापू! अनन्त बार गुणा करो इतना अनन्त... अनन्त.. अनन्त... क्षेत्र चला जाता है। परन्तु उसका कहीं अन्त नहीं। अन्त हे तो कह न तू... क्या कहता है? पश्चात् क्या, कह न तू? परन्तु क्या है वह यह वह? आहाहा! क्षेत्र का जहाँ अलौकिक स्वभाव है, उस क्षेत्र की क्या बात करना, भाई! उस क्षेत्र का जाननेवाला जो सर्वज्ञ प्रभु आत्मा, उनके स्वभाव की मर्यादा और हद की क्या बात करना? नवनीतभाई! यह तो लॉजिक से बात चलती है न! आहाहा! विश्वास ला! विश्वास ला! बेहद आनन्द और ज्ञान के स्वभाव की जिसमें हद नहीं, उसका माप नहीं जिसमें। आहाहा! क्षेत्र का जिसमें माप नहीं भगवान ने ऐसा ज्ञान से जानकर कहा। वह ... ईश्वर सर्वव्यापक है, हो गया मानो जाओ। आहाहा!

ऐसा जो क्षेत्र का भी स्वरूप जहाँ साधारण तर्क में भी जिसका तर्क पहुँच नहीं सके। आहाहा! ऐसा जो क्षेत्र, उसे भगवान ने प्रत्यक्ष देखा है और काल की आदि नहीं।

आदि नहीं तो भी पहला क्या फिर? आहाहा! आदि है काल की? कहे नहीं, वह तो आदि देखी नहीं, इसलिए आदि नहीं कही। परन्तु आदि नहीं उसे 'आदि नहीं' यह देखा। आहाहा! तब ऐसा का ऐसा काल पहला, वह कहे। है... है... है... है... है... है... है... जैसे क्षेत्र है... है... है... है... है... है... है... उसका काल है... है... है... है... है... उसमें कहीं 'नहीं' ऐसा नहीं आता और भविष्य में भी है... है... है... है... है... 'नहीं' ऐसा नहीं। आहाहा! देखो न एक यह सर्वज्ञ की वाणी और सर्वज्ञ का माहात्म्य सब शक्ति का। आहाहा! लो अपने दोपहर में यह चलती है न सर्वज्ञशक्ति। आहाहा! ऐसा जिसका ज्ञान स्वरूप है। केवलभाव। आहाहा! ऐसा ही तेरा केवल भाव स्वभाव है, भगवान! सर्वज्ञ शक्तिरूप से / उसरूप से भले प्रगट न हो, परन्तु शक्ति में इतना सामर्थ्य है कि इससे अनन्तगुणा हो तो भी जाने, अन्त नहीं, उसे अन्तरूप से न जाने, आदि, उसे आदि रीति से जाने। काल का अन्त नहीं... ऐसा तेरा ज्ञानस्वभाव और आनन्द, दर्शन स्वभाव पड़ा ही है। समझ में आया? ऐसे अरिहन्त को पहिचाने उसे आत्मा का ज्ञान हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? यह तो ख्याल में आये, ऐसी बात है। आहाहा!

**ज्ञान से सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं...** लो! देखा! **इस प्रकार जिनको केवलज्ञान है,...** कहो, नटु! समझ में आया या नहीं इसमें? यह तो स्वयं जितने क्षेत्र में रहा, उतना क्षेत्र मेरा। इतना क्षेत्र सब। परन्तु बड़े क्षेत्र में, महा क्षेत्र, महाकाल ऐसे जब काल अर्थात् क्षेत्र के भी जहाँ आदि-अन्त नहीं तो साधारण के ख्याल में न आवे तो यह उसके भाव की क्या बात करना? यह केवलज्ञान... केवलज्ञान... केवलज्ञान... आहाहा! यह ज्ञान से तो सर्व द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं। आहाहा! **इस प्रकार जिनको केवलज्ञान है,...** ऐसा जिन्हें केवलज्ञान है, ऐसा। आहाहा! उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा! अरे! यह तो अभी अस्तित्व। जीव के केवलज्ञान का इतना अस्तित्व है, वह अरिहन्त को प्रगट हुआ है। जगत के जीवों के सामर्थ्य में पड़ा हुआ है। यहाँ तो प्रगट हुआ है ऐसा। इसलिए उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? एक बोल को यदि विचारे, एक बोल को विचारे तो उसका तल हाथ आ जाये चैतन्य का। ओहोहो! समझ में आया?

**इस प्रकार जिनको केवलज्ञान है,...** आहाहा! पहला ही अर्थ किया था न?

'**सम्मद्दंसणि**' यह दर्शन का अर्थ किया था और अब समकित का, अब आता है। वरना ऐसा लगे '**सम्मद्दंसणि**' पश्चात् क्या? यह सम्यग्दर्शन अर्थात् केवलदर्शन। इससे उसकी बात है। केवलदर्शन द्वारा सब... सब... सब... देखते हैं। सत्तामात्र वस्तु को देखते हैं। केवलज्ञान द्वारा द्रव्य को, पर्याय को जानते हैं। और **जिनको सम्यक्त्व गुण से विशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व पाया जाता है...** लो! '**सम्मत्तगुणविसुद्धो**' है न? आहाहा! भगवान केवलज्ञानी को क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है। केवलदर्शन, केवलज्ञान, क्षायिक समकित। आहाहा! ऐसी भाषा करे और ऐसा और ऐसा रट जाये, ऐसा नहीं। इसे भाव को प्रतीति में लेना चाहिए। समझ में आया? इसे भाव का भासन होना चाहिए। '**सम्मत्तगुणविसुद्धो**' भगवान के आत्मा को सम्यक्गुण से निर्मलता अर्थात् क्षायिक प्रगट हुआ है। आहाहा! **इस प्रकार अरहन्त का भाव जानना।** लो! इस प्रकार अरिहन्त भगवान का भाव ऐसा है। आहाहा!

भावार्थ। यह बहुत ऊँची अच्छी बात आयी है। क्षेत्र, काल, भाव, यह भाव की संख्या। भाव अर्थात् गुण। गुण की संख्या कितनी? उनका जैसे अन्त नहीं इतने आकाश के प्रदेश, उससे अनन्तगुणे गुण। क्या कहते हैं यह? एक द्रव्य वस्तु, उसके गुणों की अनन्तता कितनी? क्षेत्र का अन्त नहीं, काल का अन्त नहीं। उसका जिसे ज्ञान वर्तता है, एक समय की पर्याय में। ऐसे-ऐसे तो अनन्त गुण जिनकी संख्या का पार नहीं होता। ओहोहो! जिनके अनन्त... आकाश और काल का अन्त नहीं, उसका जो ज्ञान एक समय का। इतना ही सामर्थ्य अनन्त गुण का प्रत्येक में है। वह आया था न क्या? अक्षेय अमेया। पर्याय की बात है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की पर्याय अक्षय है और मर्यादारहित है। पर्याय में इतना है। होवे न परन्तु, क्यों न हो? आहाहा! जिसके क्षेत्र, काल और भाव, द्रव्य के। द्रव्य का क्षेत्र, ... उसका काल अनादि का, उसके भाव अनन्त। ऐसा जिसमें स्वरूप है, वह स्वरूप जिसने जाना। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन होता ही होता है और होता है। कहो, समझ में आया? भाव कितने? जहाँ क्षेत्र का अन्त नहीं, यह तो ... बात बैठे या नहीं? काल का वहाँ पहला काल कौनसा होगा? तब अब उसके भाव अब अपने चाहिए। वह भाव है न! केवलभाव, एक भाव, एक ही भाव। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण आत्मा में अनन्त भाव हैं। उन अनन्त भाव की कितनी

संख्या? ओहोहो! भाई! तुझे क्षेत्र और काल में बैठता है कि आहाहा! माप नहीं। क्षेत्र बिना खाली न हो कोई जगह। क्षेत्र... क्षेत्र... क्षेत्र... क्षेत्र... क्षेत्र... उसका क्षेत्रज्ञ, उसका जो जाननेवाला, इतना क्षेत्र और इतना काल, उसका जाननेवाला न हो, ऐसा नहीं होता, जगत में। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह परमागम के है न? गीत बहनें-लड़कियाँ नहीं गातीं? अपने यह गीत गाते हैं। आहाहा! अरिहन्त का स्वरूप वर्णन किया है न, शरीर का और आत्मा का। शरीर से ऐसे अरिहन्त है। शरीर में... व्याधि, रोग आदि अरिहन्त को ... कहे। भगवान का आत्मा ... अज्ञान और राग-द्वेष नष्ट कर डाले हैं। जिनकी पूर्ण शक्ति की प्रगटदशा है। अरे! एक बार भी देख तो सही। आहाहा! ऐसा द्रव्य कितना? उसका तो माप है। कम है जरा। सबसे कम द्रव्य और उससे काल, उससे क्षेत्र, उससे भाव। द्रव्य की संख्या जितनी है जगत के पदार्थ की, उसकी अपेक्षा काल की संख्या अनन्तगुणी है। त्रिकाल है न! उसकी अपेक्षा क्षेत्र की संख्या अनन्तगुणी, उसकी अपेक्षा एक द्रव्य में, एक आत्मा के अनन्त गुण की संख्या अनन्तगुणी। आहाहा! एक इतना आत्मा इतना अस्तित्ववाला है, वह अस्तित्व इतना, उसका अस्तित्व इसकी प्रतीति में आवे, तब इसने आत्मा माना कहा जाता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** सब आत्माओं में ऐसी शक्ति है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रत्येक आत्मा। अभव्य में भी ऐसी शक्ति है। आहाहा! एक परमाणु में भी कितने भाव, देखो न भाव! प्रदेश क्षेत्र एक छोटा। परन्तु भाव कितने? कि जितने आकाश के प्रदेश, उससे अनन्तगुने भाव उसके हैं। क्या कहते हैं यह? यह स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... अचिन्त्य स्वभाव, अलौकिक स्वभाव, लोकोत्तर स्वभाव। आहाहा! उसके भाव को भगवान पर्याय में प्राप्त हो गये। समझ में आया? उन्हें यहाँ अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा!

**अरहंतपना...** अर्हंतपना, ऐसा लिया है। **घातिकर्म के नाश से होता है।** निमित्त की बात है। भगवान को अरिहन्तपना जो प्रगट हुआ, णमो अरिहंताणं, वह भगवान को घातिकर्म के नाश से अरिहन्तपना प्रगट हुआ है। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि प्रगट

हुए, वे घाति के नाश से प्रगट हुए हैं। आहाहा! भावघाति का नाश किया तो द्रव्यघाति तो नाश होते हैं। आहाहा! **मोहकर्म के नाश से सम्यक्त्व और कषाय के अभाव से परम वीतरागता...** मोहकर्म के नाश से भगवान को क्षायिक समकित। ओहोहो! ऐसे क्षेत्र, ऐसे काल, ऐसे भाव अनन्त। ऐसे अनन्त भाव को प्रतीति करनेवाला भगवान सम्यग्दर्शन। आहाहा! समझ में आया? वह मोहकर्म के नाश से तो ऐसा सम्यक्त्वदर्शन; सम्यक्त्व अर्थात् जिस प्रकार से जितना है, जैसा है, वैसा दर्शन होकर प्रतीति होना। आहाहा!

**कषाय के अभाव से परम वीतरागता...** भगवान को इच्छा और राग-द्वेष का नाश हुआ है। परम वीतरागता। चौथे, पाँचवें में थोड़ी वीतरागता तो होती है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो (सर्व) कषाय (का नाश) अर्थात् परम वीतरागता। **सर्व प्रकार निर्मलता होती है।** सर्व प्रकार से भी भगवान को भी निर्मलता हो गयी है। आहाहा! **ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म के नाश से अनन्त दर्शन-अनन्त ज्ञान प्रकट होता है,...** पाठ में है, उसका स्पष्टीकरण किया है। अनन्त दर्शन, अनन्त दर्शन; अनन्त दर्शन अर्थात्? आहाहा!

**मुमुक्षु :** सर्वदर्शन नहीं, अनन्त ज्ञान कहना, सर्व ज्ञान नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सर्व शक्तिमान नहीं कहना। सर्व शक्तिमान अपने लिये है। पर की बात भी कहाँ है? सर्व शक्तिमान। कहते हैं न उसमें। आहाहा!

ज्ञानावरणीय के नाश से तो भगवान को अनन्त ज्ञान प्रगट हुआ है और दर्शनावरणीय के नाश से तो अनन्त दर्शन, अनन्त दर्शन। अनन्त दर्शन अर्थात् क्या? अनन्त का देखना। अनन्त का जानना। आहाहा! क्षेत्र अनन्त, काल अनन्त, भाव अनन्त, द्रव्य अनन्त। भगवान सबको देखते और जानते हैं। ऐसी उनकी पर्याय का सामर्थ्य है। वहाँ द्रव्य और गुण के सामर्थ्य की तो बात क्या करना! आहाहा! उस दिव्यशक्ति के धारक, वे देव अरिहन्त हैं। आहाहा! अरे! ऐसे अरिहन्त परमात्मा, णमो अरिहंताणं के वाडा (सम्प्रदाय) में जन्मे और भ्रमणा किया करे जहाँ-तहाँ।

**इनसे सब द्रव्य-पर्यायों को एक समय में प्रत्यक्ष देखते हैं और जानते हैं।** लो! सब आ गये। वह दर्शन और ज्ञान। **सब द्रव्य-पर्यायों को... सब द्रव्य-पर्यायों को...** सब द्रव्य-पर्याय में क्षेत्र-काल-भाव सब आ गया या नहीं? आहाहा! ऐसा गम्भीर

भगवान विराजमान है। गम्भीर मुद्रा। आहाहा! वस्तु सब गम्भीर है। ऐसे गम्भीर को भगवान प्राप्त हो गये। अरे! यह क्या बात है, बापू? क्षेत्र गम्भीर, काल गम्भीर, भाव गम्भीर। एक-एक भाव की अनन्त पर्याय और एक-एक पर्याय की... प्रतीति... उसे अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। वह अनन्त-अनन्त अर्थात् क्या? आहाहा! जहाँ भाग करते... करते... करते... अन्तिम रहे, उसे भी भगवान ने जान लिया है। आहाहा!

**इनसे सब द्रव्य-पर्यायों को एक समय में प्रत्यक्ष देखते हैं और जानते हैं।** लो! वह कहे कि एक समय की पर्याय वर्तमान देखे, ऐसा उड़ गया। यहाँ तो एक समय में प्रत्यक्ष देखते हैं, ऐसा कहते हैं। भविष्य में हो, (उसे) वे शक्तिरूप से देखें, वह तो परोक्ष हो गया। अरेरे! भगवान! जैन के पण्डितों ने भी यह क्या किया? भगवान के विरह में, भगवान के केवलज्ञान (की स्थिति क्या है), उसे भी भुला देना चाहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विद्यमान। यह सब विद्यमान है। भविष्य का विद्यमान, भूत का विद्यमान, विद्यमानरूप से जानते हैं भगवान। आहाहा! और प्रत्यक्ष देखते हैं... यह कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मगसिर कृष्ण १४, रविवार, दिनांक-२३-१२-१९७३**
**गाथा - ४१, प्रवचन-७५**

नोट - इस प्रवचन की आवाज खराब है। समझ में नहीं आता, इसलिए यह प्रवचन नहीं लिया गया है।

**पौष शुक्ल २, बुधवार, दिनांक-२६-१२-१९७३**
**गाथा - ४२ से ४६, प्रवचन-७६**

अरिहन्त का स्वरूप हो गया। पाँच कल्याणक का वर्णन। ११३ पृष्ठ पर है। **आगे ( ११ )-प्रव्रज्या का निरूपण करते हैं,...** ११वें बोल का वर्णन है। **प्रव्रज्या का निरूपण करते हैं,...** है? ११३ पृष्ठ। ११वाँ बोल है। **उसको दीक्षा कहते हैं।** प्रव्रज्या को दीक्षा कहते हैं। दीक्षा किसको कहे? वह ११वें बोल में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। उस समय में श्वेताम्बर पंथ निकल चुका था, कुन्दकुन्दाचार्य के समय में। तो प्रव्रज्या किसको कहते हैं, उसकी खबर नहीं। साधु के भेष पहनकर गाँव में रहना, जंगल में नहीं। आदि-आदि सब फेरफार हो गया। यह कहते हैं।

★ ★ ★

**गाथा - ४२-४४**

**प्रथम ही दीक्षा के योग्य स्थानविशेष को...** दीक्षा के योग्य स्थान। **तथा दीक्षासहित मुनि जहाँ तिष्ठते हैं, उसका स्वरूप कहते हैं :—** गाथा।

**सुण्णहरे तरुहिट्ठे, उज्जाणे तह मसाणवासे वा।**
**गिरिगुह गिरिसिहरे वा, भीमवणे अहव वसिते वा॥४२॥**

**सवसासत्तं तित्थं, वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।**
**जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा विंति॥४३॥**

**पंचमहव्वयजुत्ता, पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।**
**सज्झायझाणजुत्ता, मुणिवरवसहा णिइच्छन्ति॥४४॥**

'**णिइच्छन्ति**' अर्थात् रहते हैं स्थान में... आकाश में...

इसका अर्थ। वह अर्थ है न? **सूना घर,...** मुनि तो सूने घर में रहते हैं। कोई बस्ती न हो, उज्जड़ पड़ा हो।

**मुमुक्षु :** मन्दिर में कोई बस्ती नहीं होती।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मन्दिर में भी किसी समय रहते हैं। सदा मन्दिर में होते हैं? ... कहेंगे। थोड़े समय। मुनि तो जंगल में ही बसते हैं। मन्दिर आदि स्थान हो, वहाँ थोड़े काल बसे।

**सूना घर, वृक्ष का मूल... 'तरुहिट्ठे'** था न। वृक्ष के नीचे जंगल में। मुनि किसको कहे? जिनको नग्नदशा और अन्तर में वीतरागभाव, ऐसी दशा जो हो, उसको यहाँ जैनशासन में मुनि कहते हैं। **कोटर,...** वृक्ष पोले हो बहुत वृक्ष या कोटर—खाली भाग। सूखा हो न सूखे ... **उद्यान, वन, श्मशानभूमि...** उसमें मुनि रहते हैं।

**मुमुक्षु :** सर्दी हो तो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुनि किसको कहते हैं? सर्दी पड़े या न पड़े। मुनि किसको कहते हैं? सर्दी में भी जो आनन्द में रहते हैं। मुनिपना तो कोई... ओहोहो! वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में जहाँ विचरते हैं, उनको सर्दी-बर्दी कैसी?

**पर्वत की गुफा,...** में रहे। **पर्वत के शिखर...** के ऊपर रहे। **भयानक वन...** में रहे, लो। मुनि तो भयानक वन हो, वहाँ आनन्द में रहते हैं। **और वस्तिका...** वस्तिका में आते हैं थोड़े काल। **इनमें दीक्षासहित मुनि ठहरें। ये दीक्षायोग्य स्थान हैं।** लो! वह सभी दीक्षा के योग्य स्थान हैं। बस्ती में और मुम्बई में रहते हैं, वह बस्ती नहीं। नग्नमुनि मुम्बई में क्या, पहले मुम्बई में श्वेताम्बर साधु भी नहीं जाते थे। पहले ऐसा था, हों! श्वेताम्बर साधु मुम्बई नहीं जाते थे। अभी तो सब....

**मुमुक्षु :** अब मुम्बई छोड़ते नहीं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुम्बई छोड़ते नहीं। भाई! पहले तो जाते नहीं थे। श्वेताम्बर साधु। यह तो दिगम्बर साधु... अरे! प्रभु! मार्ग ही सब फेरफार। भाई! भगवान का मार्ग तो... बात ही अलग है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** थे न। नहीं मिला। पहले नहीं जाते थे। पहले लोग मुम्बई न जाये। व्यवहार बिल्कुल नहीं होता। जंगल (दस्त) कहाँ जाये। अभी तेरापंथी स्थानकवासी

वहाँ रहते हैं। तेरापंथी के साधु की क्रिया ... है। व्यवहार। उनमें सभी ... हो गयी। ... मुम्बई।

यहाँ तो उस वस्त्रसहित की बात ही नहीं है। मुनि को वस्त्र होता ही नहीं। परन्तु वस्त्ररहित और अन्तर में निर्ग्रन्थदशा वीतरागभाव होना चाहिए। और वह ऐसे श्मशान आदि में रहते हैं। यह प्रव्रज्या की सच्ची पहिचान कराते हैं। **स्ववशासक्त अर्थात् स्वाधीन मुनियों से आसक्त जो क्षेत्र...** ऐसा क्षेत्र हो कि मुनि को स्वाधीन हो, कोई उसका मालिक न हो, रुकावट न हो, ऐसे स्थान में मुनि रहते हैं। **क्षेत्रों में मुनि ठहरे। तथा जहाँ से मोक्ष पधारे इस प्रकार के तीर्थस्थान...** तीर्थस्थान हो, वहाँ रहे। **वच,...** भगवान की वाणी जहाँ हो, वहाँ रहे। **चैत्य,...** प्रतिमा हो। भगवान की प्रतिमा पाषाण आदि की (हो), वहाँ मुनि रहे।

यह प्रश्न हुआ था ९१ में। पंथ बाहर निकला न? स्थानकवासी। मूर्ति नहीं है... मूर्ति नहीं। तब कल्याणचन्दजी आये थे। हीरालाल के मकान में। कि यह कहते हैं? बिल्कुल झूठी बात है। यह पाठ है। यह पाठ बताया था। ...उसमें जैन प्रतिमा है, रहने के स्थान में यह है। जिनवर, ऐसा कहते हैं। देखो, पाठ आता है। '**जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा विंति**' इसमें तो स्पष्ट बात है। जिनप्रतिमा है, जिनमन्दिर है, उसमें मुनिवर ध्यान में रहते थे। वह सन्तबाल है न। मेरा यहाँ परिवर्तन हुआ, उसने वह निकाला। लेख लिखा है। प्रतिमा नहीं, जिनप्रतिमा नहीं। दिगम्बर में नहीं है। बिल्कुल झूठ बात है। यह रहा, देखो! यह बताया था कल्याणचन्दजी को। '**जिणभवणं**' है न? ४३वीं गाथा। इसमें **वच, चैत्य, आलय,...** उसमें भी यही है। भगवान की वाणी का स्थान हो, भगवान के मन्त्र आदि का स्थान हो। चैत्य-प्रतिमा का हो और उसका मन्दिर आदि हो। उसमें मुनि बसते हैं। आहाहा!

**पर्वत की गुफा, पर्वत का शिखर, भयानक वन और वस्तिका...** वहाँ रहे। **वच, चैत्य, आलय...** ऐसे तीन प्रकार हैं। '**त्तयं**' है न '**त्तयं**'? '**वचचइदालत्तयं**' ४३ में। ४३ गाथा। '**वचचइदालत्तयं**' **वच...** अर्थात् भगवान की वाणी रखी हो वहाँ। उस स्थान में मुनि हैं। दिगम्बर मुनि आत्मध्यानी। जिनको वस्त्र का धागा भी न हो। वह जिनवर के मार्ग में उसको मुनि और प्रव्रज्या कहते हैं। केवल बाहर से नहीं, अन्दर में

ध्यान आनन्द का हो। सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो और स्वरूप में रमणता जिसको हो, उसको जैनधर्म में साधु कहते हैं। **वच...** वाणी, प्रतिमा और आलय—मन्दिर **इस प्रकार त्रिक जो पहिले कहा गया है अर्थात् आयतन आदिक; परमार्थरूप, संयमी मुनि,...** यह आयतन कहा था न पहले? ११ बोल में। आयतन-धर्म के स्थान। **परमार्थरूप संयमी मुनि, अरिहन्त, सिद्ध स्वरूप उनके नाम के अक्षररूप 'मंत्र'...** भगवान के मन्त्र आदि हों। **उनकी आज्ञारूप वाणी को 'वच' कहते हैं...** लो। भगवान की आज्ञा की वाणी को वच अर्थात् वाणी कहते हैं।

**तथा उनके आकार धातु पाषाण की प्रतिमा स्थापन को 'चैत्य' कहते हैं...** कुन्दकुन्दाचार्य सिद्ध करते हैं। स्वयं पाठ में सिद्ध है। जिनभवन है, जिनप्रतिमा है, जिनचैत्य है, जिनवाणी, मकान भी होता है। अपने यहाँ परमागम हुआ स्पष्ट जिनवाणी। आहाहा! **अक्षर मन्त्र वाणी जिसमें स्थापित किये जाते हैं... उनके आकार धातु पाषाण की प्रतिमा स्थापन को 'चैत्य' कहते हैं...** पाठ है न, '**वचचइदालत्तयं**' तीन शब्द हैं। वाणी होती है, प्रतिमा होती है और उसका स्थान होता है मन्दिर। तीन बात कहते हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं पुकार करते हैं। उस समय में तो फेरफार हो गया था। वीतराग की वाणी भी बदल डाली थी श्वेताम्बर ने, वेश बदल डाला, साधुपना सब फेरफार।

तो कहते हैं कि भगवान की प्रतिमा धातु—पाषाण की। है न पाठ में चैत्य है। वह वाणी भिन्न है। वाणी भिन्न, चैत्य भिन्न, आलय भिन्न। तीन बोल हैं। '**वचचइदालत्तयं**' ४३वीं गाथा है। वाणी भगवान की वाणी का स्थान हो, भगवान की प्रतिमा का स्थान हो या भगवान का मन्दिर हो। **और वह प्रतिमा तथा अक्षर मन्त्र वाणी जिसमें स्थापित किये जाते हैं, इस प्रकार आलय ( अर्थात् ) मन्दिर,... अक्षर मन्त्र वाणी जिसमें स्थापित किये जाते हैं,... यन्त्र या पुस्तकरूप ऐसा वच,** यन्त्र स्थापन हो या पुस्तक स्थापन भगवान की वाणी। उसको वच कहते हैं। **चैत्य तथा आलय का त्रिक है...** यह वच, चैत्य, आलय का त्रिक। **अथवा जिनभवन...** लो। **अर्थात् अकृत्रिम चैत्यालय मन्दिर इस प्रकार आयतनादिक उसके समान ही उनका व्यवहार,...** है। अकृत्रिम चैत्यालय। शाश्वत है न! स्वर्ग में शाश्वत् चैत्यालय है। उसमें लिखा है टीका में। कितने करोड़...

भवनपति में तो असंख्य प्रतिमायें हैं वीतरागी। भवनपति, व्यन्तर (में) असंख्य मन्दिर और असंख्य प्रतिमायें।

**मुमुक्षु :** अकृत्रिम।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अकृत्रिम। शाश्वत्। अनादि की है। वह वस्तु कोई नयी नहीं है। अनादि की है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते आये हैं, अनादि की बात है यह। समझ में आया?

वीतराग परमात्मा की वाणी और उनकी प्रतिमा और उनका आलय अनादि से है। यह कोई नया नहीं है। स्थानकवासी तो अभी निकले। तब तो स्थानकवासी थे भी नहीं। अष्टपाहुड़ बनाया, तब स्थानकवासी नहीं थे। श्वेताम्बर थे। मात्र श्वेताम्बर निकला था। १०० वर्ष पहले। कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उसके पहले १०० वर्ष पहले हुए। वे स्पष्ट करते हैं कि वीतराग मार्ग ऐसा है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवर की वाणी का स्थान, प्रतिमा का स्थान और मन्दिर अक्षर मन्त्र आदि का—यह सब मुनियों को रहनेयोग्य है और ध्यान करनेयोग्य है। भाव है न उस प्रकार का। बनाते होंगे तभी होगा न यह? मन्दिर बनाते होंगे तब यह है न? कहाँ से आया मन्दिर? यहाँ लिखा है '**जिणभवणं**' गृहस्थ बनाते होंगे तब है या नहीं? जिनमन्दिर, प्रतिमा, आलय, मन्त्र है न अन्दर? यन्त्र **ऐसा वच, चैत्य तथा आलय का त्रिक है...** आहाहा!

**अकृत्रिम चैत्यालय मन्दिर इस प्रकार आयतनादिक उनके समान ही उनका व्यवहार, उसे जिनमार्ग में जिनवर देव...** लो! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। पाठ में है। '**जिणमग्गे जिणवरा विंति**' जिनमार्ग में जिनवर ने ऐसा कहा है। ४३ गाथा। मूल श्लोक। कुन्दकुन्दाचार्य का मूल श्लोक। समझ में आया? यह तो आज हिन्दी चला थोड़ा-थोड़ा। अमरचन्दजी! यहाँ हिन्दी है तो हिन्दी चला। दोपहर में अभी हिन्दी नहीं चलता। जरा सूक्ष्म है। यह पुस्तक ही हिन्दी है। समझ में आया? परमात्मा जिनवरदेव ने जिनमार्ग के अन्दर अनन्त तीर्थंकरों की प्रतिमा, प्रतिमा की पूजा, मन्दिर, वचन, वाणी की स्थापना, वह अनादि का है। कोई नया नहीं है। कहो, भगवानजीभाई! अपने तो यहाँ परमागम मन्दिर होता है या नहीं? वस्तु है न! मुनियों के रहने के स्थान हैं और मुनियों को ध्यान करनेयोग्य स्थान हैं। ऐसा कहते हैं। इसमें एक भी बोल को उत्थापित करे दे तो अनन्त तीर्थंकर को उत्थापित कर दे।

इसलिए ऐसा कहा न, देखो न। **'जिणमग्गे जिणवरा विंति' जिनमार्ग में जिनवर देव वेद्य अर्थात् दीक्षासहित मुनियों के ध्यान करनेयोग्य, चिन्तन करनेयोग्य कहते हैं।** है? पाठ में है न वह। **'वेज्झं'** भगवान ऐसा कहते हैं। अनन्त तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि ऐसे जिनमार्ग में जिनवरदेव ने ऐसा मार्ग अनादि से कहा है। आहाहा! उसके रहने का स्थान बताया है वह।

**मुमुक्षु :** मन्दिर में रहते थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कोई मन्दिर में रहते थे थोड़ा। थोड़ा। ... यह तो उनके रहने के स्थान ऐसे निवृत्तिवाले हों। बस्तिका भी ली है। बस्तिका... अधिकतर मुनि जंगल में ही रहते थे। जंगल में। मुनि किसको कहे? बापू! मुनि की दशा तो जगत को अभी सुनना मुश्किल हो गयी। आहाहा! किसको मुनि कहना?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पंचम काल। मार्ग यह है। पंचम काल में भी मार्ग तो यह है। न कर सके, वह दूसरी बात है।

**मुमुक्षु :** कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कुन्दकुन्दाचार्य लिखते कब है? पंचम काल में थे या चौथे काल में? भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष के बाद कुन्दकुन्दाचार्य हुए तो स्पष्ट करते हैं। बोधपाहुड़ है। सम्यग्ज्ञान यथार्थ होना चाहिए उसको। समझ में आया? मन्दिर, प्रतिमा, वाणी सब थे। हाँ, उस ओर की भक्ति का भाव, वह शुभभाव है। वह यहाँ सिद्ध नहीं करना। वह धर्म नहीं। उस ओर का लक्ष्य करने से शुभभाव होता है, परन्तु वह स्थान है ध्यान करने के योग्य, इतनी बात सिद्ध करते हैं। प्रव्रज्यावाले को, ऐसा कहते हैं न? समझ में आया? जिनभवन, वीतरागवाणी और प्रतिमा, मन्दिर, यह सब निवृत्तिवाले प्रव्रज्या दीक्षा, एकान्त स्थान है वह। बस इतना बताना। वह धर्म स्थान का अर्थ वह पुण्यभाव उसमें लक्ष्य करने से उसकी भक्ति कर पुण्यभाव होता है। परन्तु ऐसा भाव अनादि से है। धर्म नहीं। भगवान की प्रतिमा, भगवान की वाणी और मन्दिर का बहुमान करना, भक्ति करना, वह शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं। अमरचन्दजी! ऐसी

बात है। पाप से बचने को ऐसा शुभभाव होता है, परन्तु उसको यहाँ धर्मस्थान कहने में आता है। आहाहा!

एक ने निकाल डाला, तब एक ने धर्म स्थापित किया। इसमें धर्म है। संवर और निर्जरा। आस्रवभाव उसमें आता है न, देवचन्दजी में आता है। आस्रवभाव कम हो, संवर बढ़े आता है। देवचन्दजी में आता है। आस्रवभाव ... यह तो स्थान है मुनियों को नग्न दिगम्बर मुनि को रहना, इतनी बात, परन्तु उससे धर्म होता है, आत्मा का कल्याण होता है, (ऐसा नहीं)। उसकी भक्ति से शुभभाव होता है। सेठ! ऐसी बात है। आगे-पीछे कुछ करे तो... समझ में आया कुछ? कोई ऐसा कहे कि भगवान की भक्ति, भगवान की वाणी, उसकी भक्ति, वह धर्म है। ऐसा नहीं है।

**मुमुक्षु :** साधन तो है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। साधन शुद्धभाव। दूसरा साधन-फाधन नहीं। वाणी ऐसी है, भगवान! साधन तो अपना अन्तर स्वरूप राग से भिन्न करके स्वरूप की दृष्टि करना, वह साधन है। सूक्ष्म बात है।

**मुमुक्षु :** साधन का साधन क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह साधन का साधन यह द्रव्य। अन्तर साधन। स्वभाव में करण नाम का गुण है। कारण नाम का कहो, करण नाम का कहो, साधन नाम का गुण आत्मा में है। वह साधन का वह साधन है। ... बाहर के साधन को व्यवहार का साधन कहने में आता है। पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं। उससे जन्म-मरण मिटे और संवर-निर्जरा हो, वह बात नहीं है। और न हो, ऐसी भी बात नहीं है। समझ में आया? ऐसी बात है। देखो, है न? **'वेज्झं' 'जिणमग्गे वेज्झं'** ऐसा कहा न। **'वेज्झं'** है न। **'जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा विंति'** ४३। वेज्झं वह यहाँ कहते हैं। **जिनमार्ग में जिनवर देव वेद्य अर्थात् दीक्षासहित मुनियों के ध्यान करनेयोग्य, चिन्तन करनेयोग्य कहते हैं।** वेज्झं का अर्थ किया है। ऐसे स्थान में एकान्त में आत्मा का ध्यान करनेयोग्य है। अपने आत्मा का ध्यान, हों! उसका ध्यान करे, वह तो शुभभाव है। यह तो ऐसे स्थान में आत्मा का ध्यान करे। अपने आनन्दस्वरूप में लीन होकर आनन्द का

ध्यान करना, उसका स्थान कहने में आया है। समझ में आया? वह स्थान है तो आनन्द का ध्यान होता है, ऐसा नहीं। यह तो निमित्त का कथन है। ध्यान तो अपना आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उस ओर का झुकाव करके अन्दर में लीन होना, वह ध्यान है, वह आनन्द है और वह धर्म है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

**जो मुनिवृषभ अर्थात् मुनियों में प्रधान हैं...** उत्तम आ गया। **उनके कहे हुए शून्यगृहादिक तथा तीर्थ, नाम मन्त्र, स्थापनरूप मूर्ति और उनका आलय...** तीन। **पुस्तक...** है न? **उनका आलय-मन्दिर, पुस्तक और अकृत्रिम जिनमन्दिर उनको 'णिइच्छंति' अर्थात् निश्चय से इष्ट करते हैं। 'णिइच्छंति'** अर्थात् निश्चय से इष्ट करते हैं, ऐसा कहते हैं। **'णइच्छंति'**—ऐसा नहीं। **'णिइच्छंति' निश्चय से इष्ट करते हैं। 'णिइच्छंति'** है न। वहाँ मुनि ध्यान में रहते हैं। आहाहा! अपने स्वरूप के ध्यान में, हों! उसके ध्यान में तो शुभभाव है। जिनप्रतिमा, जिनभवन, वाणी का मन्दिर हो, जिसमें वाणी वाणी, वह सब शुभभाव के निमित्त हैं। आत्मा के ध्यान करने के लिये बाह्य साधन हैं। निमित्त। आहाहा! यहाँ तो आत्मा के ध्यान में पर की कोई अपेक्षा है ही नहीं। परन्तु यह तो रहने के स्थान का वर्णन किया है। जिसमें एकान्त हो, शान्त हो। सामायिक का वर्णन आता है, उसमें ऐसा आता है न! रत्नकरण्ड श्रावकाचार। एकान्त हो, बोल बहुत... न हो, कपड़े का स्पर्श न होता हो। अभी तो सम्यग्दर्शन किसको कहना, उसमें गड़बड़ी है। श्रद्धा की खबर नहीं। पहली बात तो यह है। जिसमें आरम्भ-परिग्रह हो, उसमें मुनि नहीं पड़ते। आरम्भ-परिग्रह करते नहीं, कराते नहीं, करनेवाले का अनुमोदन नहीं करते। वह करे नहीं। उपदेश दे। भगवान ने कहा, वह मार्ग बतावे। समझ में आया कुछ? ऐसे सन्त ऐसे को इष्ट करते हैं, ऐसा कहते हैं। मुनि महा आत्मध्यानी, ज्ञानी, ऐसे स्थान जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर, अकृत्रिम, उनको निश्चय से इष्ट करते हैं। वास्तव में उसको इष्ट करते हैं अर्थात् कि वहाँ रहने की इच्छा करते हैं।

**सूने घर आदि में रहते हैं...** सूना मकान पड़ा हो। कोई मनुष्य न हो। किसी को भूतादि की शंका हो गयी हो और फिर चले जाये मनुष्य। खाली मकान पड़ा हो। **तीर्थ आदि का ध्यान चिन्तवन करते हैं।** तीर्थ आदि का ध्यान चिन्तवन करते हैं। **तथा दूसरों को वहाँ दीक्षा देते हैं।** लो! ऐसे स्थान में दूसरों को दीक्षा देते हैं। ऐसे स्थान में दीक्षा।

आहाहा! **यहाँ 'णिइच्छंति' पाठान्तर 'णइच्छंति' इस प्रकार भी है...** ऐसा कहते हैं। **उसका काकोक्ति द्वारा तो इस प्रकार अर्थ होता है कि जो क्या इष्ट नहीं करते हैं? 'णिइच्छंति'** न इच्छा करे? धर्मात्मा तो ऐसे स्थान को ही इच्छते हैं। वाणी स्थापन की हो, भगवान की प्रतिमा का स्थापन किया हो, भगवान के मन्त्र-तन्त्र जहाँ स्थापन किया हो यन्त्र आदि। उसको क्यों नहीं इच्छे? उसमें ही ध्यान में जाते हैं। ध्यान करने को ऐसे स्थान की ही इच्छा करते हैं। ऐसे स्थान में अपनी ओर ढलने की बात यह है। इस स्थान का लक्ष्य रखकर करे, वह तो शुभभाव है। समझ में आया कुछ? चाहे तो प्रतिमा हो, वाणी हो, मन्दिर हो, या यन्त्र। यन्त्र होता है न? उसका यदि विचार करे, तब तो शुभभाव है। परन्तु ऐसे स्थान में आत्मा के ध्यान के लिये रहे, ऐसा कहते हैं। अपने स्वरूप में लीन होने के लिये ऐसे स्थान में रहे। आहाहा! समझ में आया? मार्ग में बहुत अन्तर हो गया। श्रद्धा में सब अन्तर। प्रव्रज्या ... है। आहाहा!

**जो क्या इष्ट नहीं करते हैं?** धर्मात्मा मुनि आनन्द का ध्यान करनेवाले क्या ऐसे स्थान की इच्छा नहीं करते? इष्ट नहीं करते हैं? करते ही हैं। ऐसा कहे। है न? **जो क्या इष्ट नहीं करते हैं? अर्थात् करते ही हैं।** ऐसे स्थान में ही मुनि रहते हैं। तो ऐसे स्थान थे या नहीं? श्रावक ने बनाया हो तो ऐसे स्थान में मुनि रहते हैं न? बनाये हैं या नहीं? नहीं थे? यह बड़ा प्रश्न उठा था। दीक्षा यहाँ परिवर्तन हुआ... स्थानकवासी साधु। उनको श्रद्धा तो जैन की नहीं। श्रद्धा वेदान्त की... मुँहपत्ती। जैन प्रतिमा नहीं, मूर्ति नहीं... बहुत मार्ग... उस समय उड़ाया बराबर। यह रहा। देखो, यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। यह पाठ इसका मूल पाठ भगवान की वाणी यह है। कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी है यह। दो हजार वर्ष पहले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, उस समय जिनभवन, चैत्यालय, चैत्य और वाणी के स्थान थे, वह यहाँ सिद्ध करते हैं। कहो, पाठ है या नहीं। शब्द किसका? श्रीमद् ने इस पुस्तक को मान्य रखा है। अष्टपाहुड़ को मान्य रखा है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। ...है। आग्रह में बँध जाते हैं न लोग, इसलिए। ऐसा भारी शल्य है। निकलना मुश्किल है।

**एक टिप्पणी में ऐसा अर्थ किया है कि—ऐसे शून्यगृहादिक तथा तीर्थादिक को स्ववशासक्त अर्थात् स्वेच्छाचारी भ्रष्टाचारियों द्वारा आसक्त हो...**

**मुमुक्षु :** उसमें न रहे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, उसमें न रहे। शून्यगृह हो, तीर्थादिक स्थान हो, परन्तु स्वआसक्त स्वेच्छाचारी जति आदि बाबा मुनि साधु भ्रष्टाचारी उसके द्वारा आसक्त हो **( युक्त हो ) तो वे मुनिप्रधान इष्ट न करें,...** तो मुनि वहाँ रहे नहीं। ऐसे स्थान में नहीं रहते। दो-तीन अर्थ किये हैं। **वहाँ न रहें। कैसे हैं वे मुनिप्रधान ?**

अब यह बात आयी। ४४ की। **पाँच महाव्रत संयुक्त हैं,...** जिसको पंच महाव्रत। अहिंसा—किसी एकेन्द्रिय प्राणी की भी हिंसा न करे। उनके लिये बनाया हुआ आहार भी न ले। चौका करके लेते हैं न चौका ? यह सब शास्त्र से विरुद्ध है। अमरचन्दजी ! आहार-पानी दिया है या नहीं कभी ? चौका करते हैं न चौका ? मार्ग नहीं है। लेनेवाले के विरुद्ध है और देनेवाले के भी विरुद्ध है। दोनों के लिये विरुद्ध है। उसके लिये बनाना और बनाया हुआ ले, वह भ्रष्ट है। व्यवहार से भ्रष्ट है। निश्चय तो है ही नहीं। ऐसी बात बहुत कठिन है।

कैसे हैं ? **पाँच महाव्रत संयुक्त हैं,...** अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। **पाँच इन्द्रियों को भले प्रकार जीतनेवाले हैं,...** पाँचों इन्द्रियों को जीता है। सर्दी-बर्दी की दरकार नहीं, ऐसा कहते हैं। ... तो सर्दी पड़े तो क्या करना ? मुनि को कहाँ पड़ी है सर्दी-गर्मी की ? पाँचों इन्द्रियों को जीता है इसमें। आहाहा ! अणीन्द्रिय भगवान आत्मा के आनन्द में लहर करते हैं। मुनि तो उसको कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? **निरपेक्ष हैं—किसी प्रकार की वांछा से मुनि नहीं हुए हैं,...** साधु कोई वांछा से नहीं हुआ है कि यह मैं करूँ तो स्वर्ग में जाऊँ, दुनिया माने, दुनिया में मेरी प्रसिद्धि हो। ऐसे **किसी प्रकार की वांछा से मुनि नहीं हुए हैं,...** एक आत्मा के आनन्द के लिये। आहाहा !

**स्वाध्याय और ध्यानयुक्त हैं,...** मुनि को तो दो काम। अन्तर आनन्द का ध्यान, आनन्द का ध्यान होना, न हो सके तो शास्त्र का स्वाध्याय करे। बस, दो के अतिरिक्त तीसरी चीज़ नहीं। आहाहा ! देखो, यह कुन्दकुन्दाचार्य। आचार्य मुनि थे, दिगम्बर थे,

सन्त थे। दो हजार वर्ष हुए। भगवान के पास गये थे। गये और आठ दिन रहकर, यहाँ आकर बनाया। भगवान जिनवरदेव ने जिनमार्ग में यह कहा है। आहाहा! दर्शनसार है दर्शनसार, नहीं? देवचन्दजी? देवसेनाचार्य। अरे! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास जाकर यदि ऐसा धर्म न लाये होते, नहीं समझाया होता तो हम कैसे मुनि होते? हमें कहाँ से मुनिपना... दर्शनसार पुस्तक है। देवसेनाचार्य। ओहोहो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् परमात्मा तीर्थंकरदेव के पास जाकर, आठ दिन रहकर यदि यह बोध न लाये होते तो मुनि कैसे होते? मुनि ऐसा कहते हैं, ठीक। देवसेनाचार्य। इतनी कुन्दकुन्दाचार्य की प्रतिष्ठा इतनी हुई थी। यह आया न? मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। गौतम के बाद कुन्दकुन्द आये हैं। जैन धर्मोस्तु मंगलं। श्वेताम्बर में स्थुलिभद्र आये हैं। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं स्थुलिभद्र आ गये। बाद में निकले। आहाहा! श्वेताम्बर पंथ तो भगवान के बाद ६०० वर्ष बाद दुष्काल में निकला है। बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा, मुनिपना न रह सका। भ्रष्ट होकर वस्त्रसहित मुनिपना मान लिया। यह मार्ग वीतराग का नहीं। यह जैनमार्ग नहीं। यह जैनदर्शन नहीं। यह आ गया है पहले। जैनदर्शन आया? ...भाई! कहाँ आया है? १४वीं गाथा, दर्शनपाहुड़ की और यह बोध (पाहुड़) की १४वीं। दर्शनपाहुड़ की १४वीं और बोधपाहुड़ की १४वीं। जैनदर्शन उसको कहते हैं। जैनदर्शन आ गया है। कठिन काम है, भाई!

**स्वाध्याय और ध्यानयुक्त है, कई तो शास्त्र पढ़ते-पढ़ाते हैं, कई धर्म-शुक्लध्यान करते हैं।** लो। धर्म और शुक्लध्यान। ध्यान मार्ग है। आनन्दस्वरूप में न रह सके तो कोई शास्त्र पढ़े और पढ़ावे। आहाहा! मुनि को दो बात—ध्यान और स्वाध्याय, बस। दूसरी बात नहीं।

**भावार्थ :- यहाँ दीक्षायोग्य स्थान तथा दीक्षासहित दीक्षा देनेवाले मुनि का तथा उनके चिन्तनयोग्य व्यवहार का स्वरूप कहा है।** लो! ध्यान करनेयोग्य स्थान यह है। व्यवहार की बात है न! ध्यान तो आत्मा का करना है। स्थान कैसे हो और वहाँ दीक्षा आदि दे, वह ऐसे स्थान होते हैं।

★ ★ ★

## गाथा - ४५

**आगे प्रव्रज्या का स्वरूप कहते हैं :—** यह ११वाँ बोल है न? वीतरागमार्ग में दीक्षा इसको कहते हैं। दीक्षा की व्याख्या आती है... तो उसमें यह भी आ गया। प्रतिमा, जिनमन्दिर और वाणी। वाणी की भी पुस्तक है न अपने यहाँ। पुस्तक हो न, मन्दिर बना। शास्त्र हो, भण्डार पड़ा हो, मुनि वहाँ रहे। दोपहर का सूक्ष्म है ... भाई! यह तो अभी आसान है यह तो। बहुत आसान है तो रख दिया। यह तो समझ में आये ऐसा है। ध्यान का स्थान तो आत्मा है, परन्तु व्यवहार स्थान क्या है, उसका अर्थ बताया। इसलिए कहा न, देखो! **चिन्तनयोग्य व्यवहार का स्वरूप कहा है।** ऐसे तो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र, अतीन्द्रिय ज्ञान का समुद्र प्रभु है। उसका ध्यान करना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। आहाहा! स्थान, उसका स्थान व्यवहारस्वरूप ऐसा कहने में आया है।

**आगे प्रव्रज्या का स्वरूप कहते हैं :—**

**गिहगंथमोहमुक्का, बावीसपरीसहा जियकषाया।**
**पावारंभविमुक्का, पव्वज्जा एरिसा भणिया॥४५॥**

कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। भगवान ने तो ऐसी प्रव्रज्या कही है, ऐसी दीक्षा कही है। जो **गृह ( घर ) और ग्रन्थ ( परिग्रह ) इन दोनों से मुनि तो मोह ममत्व, इष्ट-अनिष्ट बुद्धि से रहित ही हैं,...** उसको मकान भी नहीं और परिग्रह अर्थात् वस्त्र आदि कुछ नहीं। परिग्रह ही नहीं। आहाहा! दोनों से मुनि तो मोह और ममत्व ऐसी इष्ट-अनिष्ट बुद्धि से रहित है। **जिसमें बाईस परीषहों को सहना होता है,...** लो यह सर्दी आदि सहन होता है, ऐसा कहते हैं। सेठ! बाईस परीषह सहन करना। है न, बाईस परीषह—क्षुधा, तृषा, नग्नपना, अचेलपने रहना। आनन्द... मुनिपना... आहाहा!

उन लोगों में आता है। स्तुति में आता है। माता के निकट आज्ञा माँगते हैं न तब 'माडी... नहि रे राखुं आ संसारमा,' माता! अब एक क्षण भी मुझे संसार में रुचि नहीं है। ...वैराग्य ... उसमें लेते हैं। सज्झायमाला। सज्झाय आती है न। 'माडी मोरी रे नहीं रे राखुं आ संसारमां।' माता! मुझे संसार में कुछ रुचि—आसक्ति नहीं है। मेरा प्रेम

भगवान के जगा है। वहाँ मैं रहना, निवास करना चाहता हूँ। राजेन्द्र! ऐसा स्वरूप है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या कहा?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... कौन करता है? यह तो आता है। जन्मदुखं, जरा दुखं... अहो! दुखो संसारो... माता! हम तो हमारे ध्यान में... आहाहा! हमारे आनन्द के सागर प्रभु के पास जाना चाहते हैं। आता है न, भाई अपने तीसरे अध्याय में चरणानुयोग। प्रवचनसार। आज्ञा माँगते हैं, वहाँ ऐसा आता है। माता! पिता! शरीर के माता-पिता— ऐसा कहते हैं वहाँ। मेरे माता-पिता आत्मा का तो है ही नहीं कोई। शरीर के पिता आज्ञा दो। हम हमारे पुराने पिता है, उसके पास जाना चाहते हैं। हे शरीर को रमानेवाली स्त्री! ऐसा पाठ है। प्रवचनसार। तीसरे भाग में, है स्त्री! इस शरीर को रमानेवाली। मुझे रमानेवाली तू नहीं। तुम आज्ञा दो। हमारी अनुभूतिरूपी शाश्वत स्त्री—अनुभूति अन्दर में, उसके पास जाना चाहते हैं। आहाहा! वहाँ तो अनुभूतिस्वरूप लिया है, ७३ में, नहीं? ... वह याद आया। ७३ गाथा में आता है। षट्कारक के परिणाम के भेद से रहित अनुभूति अर्थात् वस्तुस्वरूप। त्रिकाल अनुभवस्वरूप आत्मा के पास में जाते हैं। आहाहा! मुनिमार्ग तो... आहाहा! धन्य अवतार है। मुनिपना किसको कहे? आहाहा!

**बाईस परीषहों का सहना...** लो! क्षुधा, तृषा, सर्दी, गर्मी, सब में आनन्द में रहते हैं। सहन करते हैं। **कषायों का जीतते हैं।** क्रोध, मान, माया, लोभ को जीतते हैं। आहाहा! **पापरूप आरम्भ से रहित हैं...** किसी पाप का अनुमोदन करना, कराना, अनुमोदन नहीं है उसको। आहाहा! कुछ मकान बनाना, ऐसा करना, यह करना। आहाहा! ऐसे पाप के आरम्भ से रहित हैं। **इस प्रकार प्रव्रज्या जिनेश्वरदेव ने कही है।** सब जगह यह डालते हैं, देखा न! ऊपर आया था न! **'जिणमग्गे जिणवरा विंति'** भगवान ने ऐसी प्रव्रज्या कही है। आहाहा! जिसकी अभी श्रद्धा करे (कि) चारित्र किसको कहे?

**भावार्थ :- जैनदीक्षा में कुछ भी परिग्रह नहीं,...** उस समय वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मानते थे न श्वेताम्बर। उसका निषेध करते हैं कि ऐसा मार्ग है ही नहीं।

तीर्थंकर परमात्मा जिनेश्वरदेव उसको दीक्षा ही नहीं कहते। आहाहा! **जैनदीक्षा में कुछ भी परिग्रह नहीं,...** वस्त्र का धागा नहीं। आहाहा! **सर्व संसार का मोह नहीं,...** सर्व संसार। उदयभाव का भी मोह नहीं। आहाहा! **जिसमें बाईस परीषहों का सहना तथा कषायों का जीतना पाया जाता है...** उसका नाम प्रव्रज्या मुनिपना है।

**पापारम्भ का अभाव होता है।** पापरूपी आरम्भ जिसमें एकेन्द्रिय जीव, हरिकाय, एक जीव मरे, उसका भी अनुमोदन नहीं। उनके लिये आहार बनाया हो, प्राण जाये तो (भी) ले नहीं। पापारम्भ। चौका बनाते हैं, पानी बनाते (प्रासुक करते) हैं, आहार बनाते हैं, मौसम्बी लाते हैं। सच्चे मुनि प्राण जाये तो भी नहीं लेते। बनाये उनके लिये, और फिर झूठ बोले। कहो, सेठ! क्या झूठ बोले? आहार शुद्ध, वाणी शुद्ध, वचन शुद्ध, मन शुद्ध। सब अशुद्ध है। उनके लिये बनाया, वह अशुद्ध है और बोले कि शुद्ध है। झूठ बोलते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** आहार-पानी शुद्ध....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुद्ध है, ऐसा बोलते हैं न? बनाया है उनके लिये, वह शुद्ध कहाँ से आया? उनके लिये बनाया, वह शुद्ध कहाँ से आया? मकान भी बनाया हो रहने के लिये, वह अशुद्ध है। मकान उनके लिये बनाया हो, उसमें रह ही नहीं सकते। कोई शान्त जंगल में रहते हैं, वनवास में रहते हैं। आहाहा! ऐसा मुनिपना जैनदर्शन में जिनवर ने कहा है।

**इस प्रकार दीक्षा अन्यमत में नहीं है।** लो! ऐसी दीक्षा जैनमत के अतिरिक्त अन्यमत में नहीं है। श्वेताम्बर को भी अन्यमत में डाल दिया है। अन्यमत है, जैनमत में नहीं। आहाहा! और जैन के सम्प्रदाय में दिगम्बर में रहकर भी सच्ची श्रद्धा, ज्ञान नहीं तो उसको प्रव्रज्या नहीं तो वह अन्यमत ही है। आहाहा! ऐसी दीक्षा—प्रव्रज्या, उसको यथार्थ जानना तो चाहिए या नहीं? प्रव्रज्या किसको कहते हैं, मुनिपना किसको कहते हैं, उसका ज्ञान, जैसा है, ऐसा ज्ञान न करे तो उल्टा ज्ञान हो जाये। ऐसी दीक्षा अन्यमत में नहीं। बहुत स्पष्ट किया है।

★ ★ ★

गाथा - ४६

**आगे फिर कहते हैं :—**

**धणधण्णवत्थदाणं, हिरण्णसयणासणाइं छत्ताइं।**
**कुद्दाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया॥४६॥**

मुनि धन का दान दे नहीं, धन रखे नहीं, धन का दान दे नहीं। उनके पास पैसे नहीं। दूसरे के पास पैसे तो इनको दो, ऐसा भी न कहे। आहाहा! समझ में आया? **धान्य...** अनाज। वह अनाज का दान दे नहीं। उनके पास अनाज कहाँ है? **वस्त्र...** का दान। वह कुदान है। आहाहा! भगवान महावीर ने दीक्षा ली तो इन्द्र ने एक वस्त्र दिया था, ऐसा श्वेताम्बर में आता है। उस वस्त्र से आधा फाड़कर उनके मामा का पुत्र ब्राह्मण आया तो उसको दे दिया आधा। दान दिया। अरेरे! ऐसी बातें की है। अमरचन्दजी है न एक आगरा में। उसने तारीफ की, ओहोहो! भगवान की करुणा। यह देखो जैनदर्शन की करुणा। उनको आधा वस्त्र काटकर दिया। परन्तु यह दान ही झूठा है। मुनि को वस्त्र हो सकता ही नहीं तीन काल में। वस्त्र दे कहाँ से? आहाहा! आधा फाड़कर दे। आधा गिर गया। ऐसे के ऐसे अमरचन्दजी है न आगरा। बहुत तारीफ करे। विरायतन... लाखों रुपये का खर्च करके। राजगृह में विरायतन। वीर का आयतन। लड़कियाँ आयीं थी न भाषण करने को। तारीफ करे, वह जाये। मुनि कहे, बहुत अच्छा किया। आहाहा! मार्ग को बिगाड़ डाला।

**वस्त्र इनका दान,...** मुनि को होता नहीं। मुनि वस्त्र रखते नहीं और वस्त्र किसी को दे नहीं। रखे नहीं तो दे कहाँ से? ऐ ... नहीं। ... ऐसा है। ... क्षेत्र में आता है। वस्त्र दिया भगवान ने आधा।

**मुमुक्षु :** वह तो .... क्षेत्र में है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... क्षेत्र में ... हो गया। भगवान के बाद यह श्वेताम्बर निकले (उसके) १०० वर्ष के बाद (कुन्दकुन्दाचार्य) हुए।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चलता है। मान्यता चलती है तो ऐसा दे। भगवान ऐसे दे। आहाहा! अरेरे! वस्त्र कैसा? महा आनन्द में झूलनेवाले प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द लेते हैं। सब इन्द्रियों को जीत लिया है। आहाहा! उनको वस्त्र कैसा और वस्त्र का दान कैसा? वह वस्त्रदान की तारीफ की है। आती है न वाणी, क्या कहते हैं उसको? अमरवाणी। पुस्तक पुस्तक। अमरभारती। आगरा में है न। ... है। यह जैनदर्शन ही नहीं। आहाहा! मार्ग कठिन, भाई! वस्त्रसहित साधुपना माना, वह जैनदर्शन ही नहीं। वह वीतराग का मार्ग है ही नहीं ऐसा।

**हिरण्य अर्थात् रूपा,...** चाँदी, चाँदी का दान, **सोना आदिक...** का दान। **शय्या...** का दान। शैय्या-सोने का। **आसन आदि शब्द से छत्र...** देखो! बहुत धूप लगे तो छत्र का दान दे। **चामरादिक और क्षेत्र आदि कुदानों से रहित...** ऐसे कुदान से रहित **प्रव्रज्या कही है।** ऐसी प्रव्रज्या और ऐसा दान होता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष शुक्ल ३, गुरुवार, दिनांक-२७-१२-१९७३**
**गाथा - ४६ से ४९, प्रवचन-७७**

४६ गाथा। जैनदर्शन में प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा किसे कहना? उसका यह स्वरूप है। ४६ गाथा का भावार्थ है। **अन्यमती,...** जैनदर्शन वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, उसमें **गौ,...** दान गौ। धन था न धन। उसमें से गौ निकाला। गौदान—गाय का दान देना। साधु हो, वह गाय का दान दे। वह प्रव्रज्या नहीं, ऐसा कहते हैं। **धन,...** दे धन-लक्ष्मी। साधु दूसरे को किसी को मदद करे लक्ष्मी से। वह साधु होता नहीं। उसे प्रव्रज्या और दीक्षा कहने में नहीं आती। **धान्य,...** अनाज। **वस्त्र,...** मुनि को वस्त्र होता ही नहीं। जैनमार्ग में अनादि सनातन वीतराग प्रभु में मुनि को वस्त्र होता ही नहीं। वस्त्रसहित जो मुनि मानते हैं, वे जैनदर्शन को मानते नहीं। कहाँ गये तुम्हारे प्रवीणभाई? आते हैं? कहो, समझ में आया?

**वस्त्र...** मुनि को वस्त्र का धागा भी नहीं होता। वस्त्र रखे। अमरचन्दजी! आओ आओ। मुनि (वस्त्र) रखते नहीं। वस्त्र रखे, वे मुनि नहीं। यह जैनदर्शन में अनादि का यह मार्ग है। केशुभाई! श्वेताम्बर पंथ निकला, वह भगवान के बाद ६०० वर्ष में निकला है। वह जैनदर्शन की आज्ञा छोड़कर अपने स्वच्छन्द से वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना माना है, वह जैनदर्शन का साधुपना नहीं। समझ में आया? वह जैनदर्शन का साधुपना होता ही नहीं। नग्न होते हैं। अन्तर में राग-द्वेषरहित सम्यग्दर्शनसहित। अकेले नग्न हों, परन्तु मिथ्यात्व का त्याग न हो तो वह भी साधु नहीं। बाहर से नग्न (वेश) धारण करे, अन्दर में रागादि की क्रिया का प्रेमी है, राग का स्वामी है और राग का कर्ता होता है तो वह मिथ्यादृष्टि है। नग्न साधु होने पर भी मिथ्यादृष्टि है।

**मुमुक्षु :** तो क्या करे, कर्म का बलवानपना हो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्म-बर्म बलवान है ही नहीं। आत्मा बलवान है। कर्म बलवान है ही नहीं। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' आता है भक्ति में आता है।

**मुमुक्षु :** .... याद रहे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** 'भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' अग्नि के ऊपर घन पड़ते हैं, वह अग्नि लोहे में जाती है, तब पड़ते हैं। अकेली अग्नि के ऊपर घन नहीं पड़ते। इसी प्रकार आत्मा कर्म का संग करके विकार करता है तो दुःखी होता है। कर्म से कोई दुःख होता नहीं, कर्म से कोई विकार होता नहीं। समझ में आया? यह सब लिया न? वस्त्र। मुनि को वस्त्र होता ही नहीं। जैनदर्शन सनातन वीतराग परमात्मा के मार्ग में वस्त्रसहित मुनिपना होता ही नहीं। और मुनिपना वस्त्रसहित तो नहीं, परन्तु वस्त्ररहित भी मिथ्यात्वसहित हो तो मुनिपना नहीं होता। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, आदि के परिणाम हैं, वह मेरा कर्तव्य है, वह मेरा कर्तव्य अर्थात् मेरा काम है, अन्तर से दृष्टि से, वह भी नग्न हो तो भी मिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बात है, भाई! जैनदर्शन वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने मार्ग कहा, वह अलग प्रकार का मार्ग है। आहाहा!

**सोना, रूपा ( चाँदी ),...** उसका दान दे। वह कहीं प्रव्रज्या नहीं। साधु दे चाँदी, सोना। **शयन, आसन, छत्र, चंवर और भूमि आदि का दान...** लो! यह भूमि का दान दे, दूसरे से दिलावे। भूमि इसको दो। वह मुनि नहीं है। वह प्रव्रज्या नहीं, वह दीक्षा नहीं। **इसका इस गाथा में निषेध किया है—प्रव्रज्या तो निर्ग्रन्थस्वरूप है,...** निर्ग्रन्थस्वरूप। एकदम माता से जैसा जन्मा, वैसा और आत्मा जैसा निर्विकारी आनन्दकन्द प्रभु, ऐसी अन्तर में दशा हुई हो, उसका नाम मुनिपना निर्ग्रन्थस्वरूप है।

**जो धन्य, धान्य आदि रखकर दान करे, उसके काहे की प्रव्रज्या?** अपने पास लक्ष्मी रखे, वस्त्र रखे और दूसरे को दे, वह **काहे की प्रव्रज्या?** वह साधुपना कहाँ आया उसमें? **यह तो गृहस्थ का धर्म है,...** ऊपर है इस ओर। गृहस्थ का कार्य है। **गृहस्थ के भी इन वस्तुओं के दान से विशेष पुण्य तो होता नहीं है,...** गौदान और धन और लक्ष्मी। **क्योंकि पाप बहुत है और पुण्य अल्प है, वह बहुत पापकार्य तो गृहस्थ को करने में लाभ नहीं है। जिसमें बहुत लाभ हो, वही काम करना योग्य है। दीक्षा तो इन वस्तुओं से रहित है।** जिसमें वस्त्र का धागा नहीं, पात्र का टुकड़ा नहीं। कर—हाथ में आहार ले। जैनदर्शन में सनातन वीतराग मार्ग में ऐसा कहा है। उससे विरुद्ध, वह जैनदर्शन नहीं। चिमनभाई! यह सब वाडा में ऐसा ही डाले सब। हसुभाई स्थानकवासी, चिमनभाई मन्दिरमार्गी।

**मुमुक्षु :** दोनों का संगम हो गया दिगम्बर में।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! दिगम्बर धर्म, वह जैनधर्म है। वह सनातन अनादि का मार्ग है। समझ में आया? उससे विरुद्ध जितना पंथ निकला, श्वेताम्बर, उसमें से स्थानकवासी, सब जैनदर्शन से विरुद्ध है। वीतरागमार्ग से विरुद्ध मार्ग है वह। जैनदर्शन नहीं, ऐसी बात है, भगवान! बहुत कठिन जगत को। सम्प्रदाय में जन्म हुआ।

**मुमुक्षु :** भट्टारक की सत्ता....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भट्टारक कहाँ साधु थे? ... जैसे थे। आहाहा! कान्तिभाई स्थानकवासी? स्थानकवासी। ... क्या आया कान्तिभाई को? वहाँ थे मुम्बई। प्लेन में। ये ब्रह्मचारी। यह भाई है न पीछे। वह ब्रह्मचारी, पन्द्रह सौ वेतन, डेढ़ हजार (वेतन) प्लेन में। छोड़ दिया। नौकरी छोड़ दी। मासिक पन्द्रह सौ नौकरी में। अभी तो लाखोंपति है, गृहस्थ है। यह स्थानकवासी थे। यहाँ याद करे। यह श्वेताम्बर, वह तो दिगम्बर पंथ में से भगवान के बाद ६०० वर्ष में श्वेताम्बर निकले और श्वेताम्बर में से अभी ५०० वर्ष पहले स्थानकवासी निकले। मार्ग ऐसा है। जगत को बैठे, न बैठे स्वतन्त्र है। समझ में आया? आहाहा! वह यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य के समय पहले सौ वर्ष पहले श्वेताम्बर पंथ निकल चुका था। इसलिए यह गाथा बनायी है। वह मार्ग नहीं। मार्ग तो अन्तर में राग की एकता की बुद्धि छूटकर देह की क्रिया भी मेरी नहीं और नग्नदशा हो जाये तो वस्त्र का धागा भी नहीं, उसे यहाँ जैनदर्शन में दीक्षा कहा जाता है। आहाहा! इतनी अन्दर में शान्ति हो। जिसे विकल्प—दया, दान का विकल्प भी करने की भावना नहीं। आ जाये। समझ में आया? ऐसी दीक्षा, वह तो प्रव्रज्या, वह तो अलौकिक बात है, भाई! जिसे गणधर नमस्कार करे णमो लोए सव्व साहूणं। वह साधुपद कोई अलौकिक बात है। आहाहा! अभी इस काल में तो वह बात सब गुम हो गयी। श्रद्धा भी सच्ची रही नहीं और फेरफार... सब फेरफार। यह कहते हैं।

**दीक्षा तो इन वस्तुओं से रहित है।** एकदम नग्नदशा दिगम्बर। और अन्तर में राग का कण भी मेरा नहीं। मैं तो आनन्दकन्द शुद्ध चिदानन्द मूर्ति हूँ। ऐसा अन्तर में आनन्द का अनुभव हो और बाह्य में नग्नदशा हो, उसे जैनदर्शन में प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा कहा

जाता है। यह सब दीक्षायें लेते हैं न अभी? वह दख्या है सब। आहाहा! दीक्षा बहुत लेते हैं अभी स्त्रियाँ-कुँवारियाँ। मुम्बई में बहुत ली गयी अभी। सब मिथ्यादृष्टि गृहीत और जैनशासन से अत्यन्त विरुद्ध दृष्टि है। ऐसा मार्ग है यह। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के समय में श्वेताम्बर पंथ निकल गया था। उसके सामने यह बोधपाहुड़ है। कि भगवान का मार्ग यह नहीं। मानो, न मानो तुम्हारी मर्जी। भगवान का मार्ग तो दिगम्बर धर्म अनादि सनातन। महाविदेह में भी अनादि सनातन धर्म। भगवान के पास भी ऐसा ही पंथ महाविदेह में है। सीमन्धर भगवान विराजते हैं। सुना है? पिताजी को रखा है सब। कि हमने बहुत परिचय-अभ्यास किया नहीं।

महाविदेहक्षेत्र है न महाविदेहक्षेत्र। वहाँ सीमन्धर भगवान विराजते हैं। तीर्थंकर विहरमान २० भगवान हैं। अभी विराजते हैं। केवलज्ञानी। महाविदेह में। पाँच सौ धनुष का देह है। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। जैसे भगवान महावीर यहाँ थे, वैसे वहाँ तीर्थंकर हैं। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। करोड़ पूर्व। एक पूर्व में ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़। अमरचन्दजी! अमर-अमर। बड़ा आयुष्य है। ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ (वर्ष) का एक पूर्व, ऐसे करोड़ पूर्व। भगवान का आयुष्य है। अब अभी कहाँ? यहाँ ऋषभदेव भगवान का भी चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य था। चौरासी लाख पूर्व। १६ लाख कम। करोड़ पूर्व में १६ लाख कम। वे भगवान विराजते हैं। अरबों वर्ष से हैं और अरबों वर्ष अभी रहेंगे महाविदेह में परमात्मा हैं। अरिहन्तपद में है। भगवान महावीर आदि तो सिद्धपद में हो गये। णमो सिद्धाणं। शरीररहित सिद्ध अरिहन्त पद में भगवान विराजते हैं। उन भगवान के निकट गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य। नग्न दिगम्बर मुनि। आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया।

**मुमुक्षु :** किस साक्षी में गये?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** साक्षी क्या? भगवान गये थे, लिखा है न। होशियार व्यक्ति हैं न। यह अपने डाला है उसमें—समयसार में। समयसार। लेख है श्रवणबेलगोला में। वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। समझ में आया? उनकी साक्षी यह अपने चम्पाबहिन बैठी हैं, देखो न! हमारे सेठ स्पष्टीकरण बहुत कराते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **दीक्षा तो इन वस्तुओं से रहित है।** आहाहा! जिसे प्रव्रज्या गणधर नमस्कार करे, वह दीक्षा कैसी होगी! स्त्री को तो दीक्षा होती ही नहीं। जैनदर्शन में स्त्री को साधुपद कभी आता ही नहीं। पाँचवें गुणस्थान तक आता है, सच्चा सम्यग्दर्शनादि हो तो। फिर साधुपद तो जैनदर्शन में स्त्री को कभी होता नहीं।

**मुमुक्षु :** अछेरा में आवे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अछेरा में आवे, उसका अर्थ क्या? ऐई! वह सब कल्पित बनाया हुआ है। कल्पित बनाये शास्त्र। ४५ सूत्र मूल। बनाये हुए ८४ कल्पितवालों में वलभीपुर। उसमें से ४५ रह गये, वह श्वेताम्बर ने माने, उसमें से ३२ स्थानकवासी ने माने। उसमें भी ३२ में एक आवश्यक नहीं माना इन्होंने। नया बनाया। क्योंकि आवश्यक में प्रतिमा बहुत है। तो स्थानकवासी पंथ निकला, उसने प्रतिमा नहीं मानी। तो उसने आवश्यक छोड़ दिया। ३१ रखे। सब ऐसी बात है, भाई! आहाहा! वीतरागमार्ग परमेश्वर, जिनेश्वर ने जो कहा मार्ग, वह तो एकदम अलग चीज़ है। लो!

★ ★ ★

## गाथा - ४७

**आगे फिर कहते हैं :—** प्रव्रज्या। देखो न, आचार्य को—कुन्दकुन्दाचार्य को यह सिद्ध करना था। आहाहा! कितनी गाथा में! ४७। '**पव्वज्जा एरिसा भणिया**' '**पव्वज्जा एरिसा भणिया**' ४५ से शुरु हुआ है। आहाहा! भगवान ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। भगवान ने ऐसा कहा है। मुनि को वस्त्र का एक धागा नहीं होता, अन्तर में राग का कण भी अपना नहीं होता। दया, दान का विकल्प भी अपना नहीं, वह तो विकार है। महाव्रत का भाव भी विकार है। आहाहा! ऐसा मार्ग! इसने अनन्त काल में इस मार्ग की अन्तरदृष्टि की नहीं। वह अन्तर आत्मा भान बिना व्रत पाले, तप करे, सब अज्ञान। चार गति में भटकने की चीज़ है वह। ४७ (गाथा)।

**सत्तूमित्ते य समा, पसंसणिंदा अलद्धिलद्धिसमा।**
**तणकणए समभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया॥४७॥**

**अर्थ :- जिसमें शत्रु-मित्र में समभाव है,...** मुनि को तो शत्रु नहीं, कोई मित्र नहीं। समझ में आया? मुनि तो राजा का परिचय भी न करे। उन्हें क्या पड़ी है? समझ में आया? किसी के साथ स्नेह नहीं, किसी के साथ विरोध नहीं। उन्हें वीतरागभाव होता है। **शत्रु-मित्र में समभाव है, प्रशंसा-निन्दा में...** समभाव। दुनिया प्रशंसा करे तो भी समभाव, निन्दा करो तो भी समभाव। वीतरागभाव। प्रव्रज्या में तो वीतरागभाव होता है उन्हें। आहाहा! दुनिया का दुनिया में हो। चाहे जो हो। सबके प्रति जिसे समभाव है। वैर... किसी के साथ वैर नहीं, किसी के साथ स्नेह नहीं कि यह मेरे भक्त है और यह मेरे विरोधी हैं, ऐसा मुनियों को अन्तर में वीतरागभाव में होता नहीं। आहाहा!

**लाभ-अलाभ में,...** शिष्यों का लाभ हो या अलाभ हो, उसमें समभाव है। इज्जत मिले, न मिले, उसमें समभाव, वीतरागभाव है। आहाहा! जहाँ अमृत का स्वाद अन्तर में आता है। मुनि को तो अमृत के आनन्द का उग्र स्वाद आता है। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव गृहस्थाश्रम में हो, उसे भी आनन्द का स्वाद आता है, अतीन्द्रिय आनन्द।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह दुःख है, उससे विरुद्ध। आहाहा!

भगवान आत्मा तो अमृत की खान है। अमृत, अमृत आनन्द का सागर भरा है। आहाहा! उसमें एकाग्र होने से सम्यग्दर्शन। अभी तो सम्यग्दर्शन चौथा गुणस्थान धर्म श्रावक और मुनि होने से पहले। सम्यग्दर्शन में आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्द, उसके आनन्द का आंशिक-आंशिक स्वाद आता है। सिद्ध जैसा स्वाद है वह। थोड़ा। आहाहा! तो मुनि होते हैं, उन्हें तो अतीन्द्रिय आनन्द बहुत आता है। हसुभाई! लो, अपनी सम्पदा का आनन्द है। धूल का नहीं तुम्हारा पैसा। भगवानजीभाई! यह सब करोड़पति इकट्ठे हुए। इनका सुख नहीं, यह तो दुःख है, कल्पना है।

**मुमुक्षु :** तो क्या करना, डाल देना नदी में?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** डाल दिया हुआ ही है। उसमें कहाँ घुस गया है उसमें? आहाहा! परन्तु जो मेरी चीज़ नहीं, मेरी चीज़ तो मुझमें है, ऐसा भान हो तो तृष्णा घटे बिना रहे ही नहीं। समझ में आया? लक्ष्मी मेरी नहीं, राग मेरा नहीं, मैं तो वीतराग मूर्ति चैतन्य हूँ। ऐसी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि होती है। आहाहा! मेरी सम्पदा और मेरी ऋद्धि मेरे

पास है। मेरा आनन्द और ज्ञान लक्ष्मी से भरपूर... ऐसी जिसे प्रथम धर्म की दशा प्रगट हुई, उसे भी अतीन्द्रिय आनन्द का अल्प स्वाद आता है। आहाहा! उसे भगवान समकिती और धर्मी कहते हैं। इसके बिना वाडा के मानकर बैठे, वह कोई धर्म-बर्म नहीं। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं तो हमको समकिती। वह समकित है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ तो यह कहना है कि मुनि को सम्यग्दृष्टि से विशेष आनन्द तीन कषाय के अभाव में अनाकुलता की दशा बहुत प्रगटी है। समभाव... समभाव... 'समामृत सेईये' आता है न, ए पण्डितजी! 'राग आग दाह दहे सदा तातै समामृत सेईये।' यह छहढाला में आता है। छहढाला। सुना है? कभी छहढाला नहीं सुनी होगी। पिताजी को सौंपा हो। छहढाला में आता है न दौलतरामजी का। 'राग आग दहे सदा...' राग है शुभ और अशुभ दोनों, हों! यह महाव्रत का राग, भगवान की भक्ति का राग, भगवान के स्मरण का राग, वह सब आग है। और कमाने का राग पाप का, वह तो महा आग है। आहाहा! कमाना। रळवुं समझे? कमाना। भगवानजीभाई! आहाहा! 'राग आग दाह दहे सदा।' शान्तिस्वरूप भगवान आत्मा, अकषाय वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा तो है। उससे विरुद्ध जो विकल्प उठे राग दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, भाव, सब राग है, आग है, दहे सदा। आत्मा की शान्ति को जलाता है। आहाहा! जिसे दुनिया धर्म माने। भगवान की भक्ति, पूजा, दान, दया। 'दान शील तप भाव धर्म के चार प्रकार।' ऐई! चेतनजी! आता है या नहीं? यह नहीं। यह शुभभाव है, वह तो पुण्य, राग है। दान देने का भाव, वह राग है। वह आग है। तो तब नहीं देना न? ऐसा रामजीभाई कहते हैं। परन्तु घर के स्त्री-पुत्र को सम्हालने में पाप, वह तो महाराग है। राग की मन्दता करके दानादिक में करना, वह मन्दराग है। है तो राग। परन्तु लड़के के लिये रखना, स्त्री के लिये रखना पैसा (वह तो महाराग-पाप है)।

**मुमुक्षु :** वह तो सेवा करे तो रखना ही न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेवा करते हैं ... धूल में भी नहीं करते। ममता है। आहाहा!

भगवान आत्मा अत्यन्त निराला। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं होता। वह स्वतन्त्र जगत के पदार्थ, उनके कारण से टिककर बदले और उनके कारण से नजदीक

आकर रहे, वे कहीं तेरे कारण से नहीं आये। आहाहा! उस चीज़ को और आत्मा को कोई सम्बन्ध तीन काल में, हद पर-सीमा पर कुछ कहते हैं न क्या? हद पर-सीमा पर। यह सीमा पर कहते हैं न। खेत... खेत। जमीन हो न कि भाई यह सीमा मेरी और यह सीमा तेरी। खेत की हद हो हद। खेत की हद हो न। यह जमीन उसकी और यह जमीन इसकी। ऐसा कहीं सीमा पर सम्बन्ध नहीं पर के साथ। उसकी मर्यादा पर में, इसकी मर्यादा स्व में। आहाहा! उसे तो भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप के सन्मुख इसे देखना है। आहाहा! ऐसी दृष्टि जब हो, तब तो सम्यग्दर्शन होता है। अभी चौथा गुणस्थान। फिर श्रावक तो उसे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन उपरान्त स्वरूप में शान्ति की वृद्धि होकर राग मन्द हो जाये, तब उसे श्रावक कहा जाता है। यह वाड़ा के श्रावक, श्रावक, वे श्रावक नहीं। चिमनभाई! ऐसी बातें हैं यह।

और मुनि। आहाहा! धन्य अवतार! कहते हैं कि उसे प्रव्रज्या कहते हैं। जिसे आनन्द की हिलोरें अन्दर से उठती हों। अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में रमा। आहाहा! स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में अन्दर रम गया है, उसे यहाँ जैनदर्शन में दीक्षा और प्रव्रज्या कहा जाता है। आहाहा! उसे लाभ-अलाभ में भी समभाव... समभाव... आहाहा! **और तृण-कंचन में समभाव है।** यह तिनका... तिनका तुष, छिलका। छिलका हो या कंचन हो। दोनों (में) समभाव। सब जड़ है। **और तृण-कंचन में समभाव है।** आहाहा! मुनि जंगल में गये हों, यह दिशा आदि (के लिए) ऐसा दिखाई दे कलश। कलश। करोड़ों रुपये की मणि हो और ऐसे बड़े कलश पड़े हों। चरू अर्थात्? बर्तन (कलश)। करोड़ों-करोड़ों। देखे तो उन्हें ऐसा नहीं होता कि आहाहा! जंगल में गये हों और पानी जरासा ऐसा हो गया जमीन से दूर। ऐसे देखे, ओहो! यह तो मणिरत्न का कलश है। इसमें करोड़ों भरे हैं, ऐसा जरा करे वहाँ तो ओहोहो! उन्हें ऐसा नहीं होता कि ओहो! धूल और दोनों समान हैं। लाओ, यहाँ है तो किसी को कहूँ तो दान में तो जाये। ऐसा भी उन्हें नहीं होता। समझ में आया? दूसरे को बताऊँ। मैं तो न लूँ। धूल है, उसमें क्या? कहो, सेठ! यह मुनि दूसरे को बतावे नहीं।

**मुमुक्षु :** सेवा करते हैं, उन्हें न बतावे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेवा, किसकी सेवा थी? वह कुछ कीमत हुई तब उसे तो।

दूसरे को बताऊँ। मैं न करूँ और दूसरे को बताऊँ (तो) कुछ कीमत हुई उसके पास। उसकी कीमत कुछ है नहीं जड़ की। आहाहा! मुनि को तो आत्मा आनन्दस्वरूप की कीमत है। आहाहा! आनन्द की खान, परमात्मा स्वयं आत्मा। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर को जो आनन्द है, उसी आनन्द का नमूना सम्यक्त्व से शुरु होकर मुनि को तो बहुत ही आनन्द है। आहाहा! लाभ-अलाभ। किसका लाभ-अलाभ? लाभ तो यह। अन्तर के स्वरूप का लाभ। आहाहा! उसमें यह मुनि तो... यह उसे प्रव्रज्या कहे, बापू! यह तो चल निकले एक जरा। आहाहा! **इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।** इस प्रकार से भगवान ने प्रव्रज्या कही। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने उसे साधु कहा है। आहाहा!

**भावार्थ :- जैनदीक्षा में राग-द्वेष का अभाव है।** पैसा। चन्दा करो, वहाँ प्रयोग करो, चन्दा (करो), ऐसा मुनि नहीं कहते। आरम्भ-परिग्रह की बात मुनि कहते नहीं। आहाहा! उसे चारित्र की दशा को बतलाते हैं। पहिचान कराते हैं पहिचान कि चारित्र उसे कहते हैं। तू जिसे-तिसे मानकर बैठे। नौ तत्त्व में संवर, निर्जरा किसे कहे, उसकी खबर नहीं। और नौ तत्त्व की श्रद्धा है हमारे (-ऐसा माने)। आहाहा! धूल में भी श्रद्धा नहीं। ओहो! **शत्रु-मित्र, निन्दा-प्रशसां, लाभ-अलाभ और तृण-कंचन में समभाव है। जैनमुनियों की दीक्षा इस प्रकार ही होती है।** लो! आहाहा! जो—मुनि तो जंगल में बसते हैं। आहाहा! स्त्री को दीक्षा होती नहीं, इसलिए उसे कहीं जंगल में रहने का नहीं। पुरुष को दीक्षा हो जैनदर्शन में। वह जंगल में बसे। आहाहा! ऐसे जैनमुनि की दीक्षा ऐसी होती है। ऐसी समतावाली वीतराग... वीतराग...

★ ★ ★

## गाथा - ४८

**आगे फिर कहते हैं :—** जिसे आत्मा का आनन्द आया और आनन्द में जिसकी उग्रता आयी, उसका नाम प्रव्रज्या और दीक्षा कहा जाता है। अकेला नग्नपना लिया और दीक्षा हो गयी, वह भी दीक्षा नहीं। ओहोहो!

**उत्तममज्झिमगेहे, दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।**
**सव्वत्थ गिहिदपिंडा, पव्वज्जा एरिसा भणिया॥४८॥**

**अर्थ :- उत्तम गेह अर्थात् शोभा सहित राजभवनादि...** राजभवन हो या दरिद्र के घास के पूले का मकान हो। घास-घास। घास कहते हैं न? घासपूस का मकान होता है न। घास का। गरीब व्यक्ति नहीं रहते घास के मकान में? झोंपड़ी। घास की झोंपड़ी बनाते हैं। मुनि तो वहाँ भी आहार लेने जाये। उन्हें कुछ है नहीं, ऐसा कहते हैं। राजभवन में जाना और यहाँ नहीं जाना, ऐसा है नहीं। भाई! यह करोड़पति है, यहाँ तो बहुत अच्छा भोजन मिलेगा, चलो वहाँ। मुनि को ऐसा नहीं होता। यह कहते हैं, देखो!

**उत्तम गेह अर्थात् शोभासहित राजभवनादि और मध्यमगेह अर्थात् जिसमें अपेक्षा नहीं है। शोभारहित सामान्य लोगों का घर इनमें तथा दरिद्र-धनवान इनमें निरपेक्ष...** मुनि कहे, यह दरिद्र है वहाँ नहीं जाना, धनवान हो वहाँ जाना, ऐसा कुछ है नहीं। उन्हें तो निर्दोष भोजन मिले, वहाँ ले लेवे। उनके लिये बनाया हो, वह भी ले नहीं। मुनि के लिये कोई भी आहार-पानी बनाया हो, उसे ले नहीं। प्राण जाये तो भी न ले। ऐसी दीक्षा और आत्मा के आनन्दसहित रहे, दीक्षा ऐसी होती है। आहाहा! समझ में आया? **अर्थात् इच्छारहित हैं, सब ही योग्य जगह पर आहार ग्रहण किया जाता है।** सब योग्य जगह हो, वहाँ आहार ले लेवे। **इस प्रकार प्रव्रज्या ( भगवान ने ) कही है।** लो! ऐसी भगवान त्रिलोकनाथ ने प्रव्रज्या कही है।

**भावार्थ :- मुनि दीक्षासहित होते हैं और आहार लेने को जाते हैं, तब इस प्रकार विचार नहीं करते हैं कि बड़े घर जाना अथवा छोटे घर वा दरिद्री के घर या धनवान के घर जाना, इस प्रकार वांछारहित...** ऐसी वांछा है नहीं। आहाहा! **निर्दोष आहार की योग्यता हो...** उनके लिये बनाया हो नहीं। गृहस्थ ने अपने लिये बनाया हो तो ले लेवे चाहे जहाँ से। आहाहा! अभी तो साधु के लिये चौका होते हैं। भाई! चौका समझते हो? चौका नहीं समझते? वहाँ अपने... बहुत है उसमें तो। साधु आनेवाले हैं तो बनाओ। चौका बनाओ। पत्रिका में आता है। लाओ, चौका लेकर आओ। अरर! यह मार्ग, वह कहीं! भ्रष्ट मार्ग कर डाला। उनके लिये मौसम्बी लाओ, आहार लाओ, ऐसे पानी लाओ। कुँआ में से खींचकर जल लाओ। वह सब सदोष है। वह चीज मुनि को लेनी नहीं, दुनिया ने उनके लिये करना भी नहीं। ऐसी बात है। ऐई! सेठ!

**मुमुक्षु :** मुनि कहाँ कहते हैं कि ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खबर है या नहीं मुनि को कि यह कहाँ से उसके घर में अध मण पानी? यह केला लाये हैं, मौसम्बी का पानी कहाँ से? यह प्रतिदिन खाता है?

**मुमुक्षु :** मेहमान हो तो बनावे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तो मेहमान हैं वे? अतिथि किसे कहते हैं? अतिथि हैं। जिनकी कोई तिथि नहीं, जिन्हें दिन नहीं, प्रमाण नहीं, आवे। निर्दोष हो तो ले, वरना चले जायें। बापू! जैनदर्शन का साधुपना, वह तो अभी तो देखने को मिलता नहीं। सब गड़बड़ हो गयी है। यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य पहिचान कराते हैं कि ऐसी प्रव्रज्या हो, तब साधु कहा जाता है। वरना साधु है ही नहीं। आहाहा!

**वांछारहित निर्दोष आहार की योग्यता हो...** बिल्कुल निर्दोष आहार। बोले भी ऐसा है न, तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ... आहार शुद्ध, वचन शुद्ध बोलते हैं या नहीं? भाई! बोलते हैं। बनाने के पश्चात् बोलते हैं। बनाया तो उनके लिये है, तथापि बोलते हैं कि यह शुद्ध है। वह तो खोटा है। बनाया हो उनके लिये और वापस वहाँ बोले आहार शुद्ध, पानी शुद्ध। कितना खोटा है?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेठ को दलील आती है। ऐसा कि शुद्ध से बनाया है। गड़बड़ करके नहीं। बनाया है तुम्हारे लिये। सेठ ठीक तर्क करते हैं, परन्तु बनाया उनके लिये, वह शुद्ध कहाँ आया?

**मुमुक्षु :** परन्तु उसमें कहाँ कचरा डाला है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐई! एक पानी की बूँद में असंख्य जीव। एक पानी की बूँद हो, उसमें असंख्य एकेन्द्रिय जीव है पानी के। तो दस-दस सेर पानी, अधमण पानी बनाकर (प्रासुक करके) देना, बिल्कुल जैनदर्शन मार्ग नहीं है। जैनदर्शन का मार्ग नहीं। यह सेठिया भी भूले हैं और लेनेवाले भी भूले हैं। दोनों, दोनों। आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा है। कहा नहीं वहाँ आये थे वे? जयपुर। मनोहरलालजी। मनोहरलालजी जयपुर आये थे न, तब (कहा था)। ऐसा कि यह उद्देशिक आहार का स्पष्टीकरण हो जाये तो बहुत अच्छा। मैंने कहा, उद्देशिक क्या कहना? सब उद्देशिक लेते हैं। सब साधु, क्षुल्लक

सब। मनोहरलालजी है न! जानते हो? वे वर्णीजी के शिष्य। वहाँ आये थे। जयपुर आये। दो वर्ष पहले हम जयपुर थे न, वहाँ आये थे। ...लेकर। यह प्रश्न पूछते थे। दो प्रश्न पूछे। एक, यह रागादि को पुद्गल परिणाम क्यों कहा? पुण्य-पाप के भाव को पुद्गल क्यों कहा? वह तो निश्चय से आत्मा का स्वभाव नहीं। और यह उद्देशिक का स्पष्टीकरण हो जाये। सब उद्देशिक लेते हैं, कहा। हम तो हिन्दुस्तान में द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी मानते नहीं। मैंने तो ऐसा कह दिया। ऐई! सेठ! परन्तु सुनते थे। उस समय बहुत नहीं था। बाद में उन्हें खबर पड़ी। ... में।

**मुमुक्षु :** कोई हल कर दो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हल कर दिया, कहा न?

**मुमुक्षु :** उसको कोई बीच का रास्ता....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उनका वही कहने का आशय था। ऐसा कि गृहस्थ बनाते हैं, इसलिए नहीं, ऐसा कुछ स्पष्टीकरण हो। बोले नहीं थे ऐसा, हों! परन्तु भाषा ऐसी कि कुछ उद्देशिक का स्पष्टीकरण हो जाये तो संगठन बहुत हो जाये। मैंने कहा, भगवान का—परमात्मा का विरह है अभी। त्रिलोकनाथ अभी नहीं और उनका मार्ग यह है कि उनके लिये बनाया, उसे ले,(वह) उद्देशिक है। व्यवहार से भी भ्रष्ट है। दूसरी बात चलती नहीं। उनके लिये बनाया हो, (उसे) ले, वे भ्रष्ट हैं। वह क्षुल्लक भी नहीं और साधु भी नहीं। यहाँ तो यह बात है भाई! परमात्मा नहीं, इसलिए कुछ बचाव करके बाँधछोड़ (चुकता करने के लिए कुछ छोड़ना)नहीं चलती। आहाहा!

यहाँ तो भगवान कहते हैं **सब ही जगह से योग्य आहार ले लेते हैं,...** निर्दोष हो तो कोई भी दरिद्र हो या साधारण हो, ले लेते हैं। **इस प्रकार दीक्षा है।** लो! देखो न! आचार्य को कैसा चौथा पद प्रत्येक में डालना पड़ा है।

★ ★ ★

गाथा - ४९

**णिग्गंथा णिस्संगा, णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।**
**णिम्मम णिरहंकारा, पव्वज्जा एरिसा भणिया॥४९॥**

त्रिलोकनाथ तीर्थंकर प्रव्रज्या उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आड़तिया होकर बताते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा!

**अर्थ :- कैसी है प्रव्रज्या ? निर्ग्रन्थस्वरूप है, परिग्रह से रहित है,...** जिनके पास एक तिल-तुषमात्र भी वस्त्र नहीं। और तिल-तुषमात्र वस्त्र रखकर साधुपना माने तो आचार्य कहते हैं कि निगोद में जाये। 'निगोदं गच्छई' पाठ है इसमें। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो साथ में मोटरें और बहुत घास भरकर साथ में। चौकेवाले साथ में। उनके लिये चौका बनावे। बिल्कुल मार्ग, भ्रष्ट मार्ग है। वीतरागमार्ग से वह मार्ग भ्रष्ट है। समझ में आया? यह तो सच्ची पहिचान कराते हैं। वस्तुस्थिति ऐसी है। केशुभाई! बहुत कठिन बात है। आहाहा! 'वाडा बांधकर बैठे रे अपना पंथ करने को।' स्वयं वाडा बाँधकर बैठे। हम ऐसे हैं और हम यह हैं।

यहाँ परमात्मा तो कहते हैं। ओहो! निर्ग्रन्थस्वरूप मुनिपना। जिन्हें अन्तर में राग की गाँठ टूट गयी है। राग और आत्मा जो एक माना था। वह राग का विकल्प जो महाव्रत का होता है, वह भी राग है। उस राग और स्वभाव की एकता, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! वह जिसे निकल गयी। राग की एकता टूट गयी, तदुपरान्त अस्थिरता छूट गयी। राग, वह ग्रन्थ है, शुभराग। उसकी एकता टूट गयी, वह तो सम्यग्दर्शन है। परन्तु अस्थिरता छूट गयी, उसका नाम निर्ग्रन्थपना है। आहाहा! देव-गुरु-धर्म सच्चे कैसे हैं, उनकी पहिचान करनी पड़ेगी या नहीं? पहिचान करनी पड़ेगी या नहीं? जैसे-तैसे मान लेना? कहो, पण्डितजी! आहाहा!

**निःसंग अर्थात् जिसमें स्त्री आदि परद्रव्य का संग-मिलाप नहीं है,...** प्रव्रज्या... उन्हें स्त्री का परिचय ही नहीं। स्त्रियों के झुण्ड में बैठे और बीच में साधु बैठे और बातें करे, पढ़ावे। वह स्त्री का परिचय मुनि को होता नहीं, भाई! मुनि तो नग्न होते हैं। वे जंगल में रहते हैं। उन्हें स्त्री का परिचय नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह सब खोटी-खोटी। सच्ची बात की। स्थूलिभद्र वैश्या के घर में रहे। वे इनकार करते हैं, झूठी बात। यह श्वेताम्बर में आता है। एक स्थूलिभद्र साधु थे। वैश्या के घर में रहे। विषय नहीं, परन्तु मकान में रहे। गुरु ने आज्ञा दी कि जाओ। आहाहा! वैश्या को प्रतिबोध दो। दिया। आहाहा! भाई! ब्रह्मचारी को भी जहाँ स्त्री का परिचय न हो, संग न हो, बात की मिठास न हो, वार्तालाप में मिठास आती है। वह मिठास तो ब्रह्मचारी को भी छूट जाती है तो साधु की तो बात क्या करना? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ब्रह्मचारी को परिचय नहीं होता?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में हो न ब्रह्मचारी? उसे भी स्त्री का संग, परिचय नहीं है। बचाव करे। वह आता है न। साधु जम्बुकुमार या कोई साधु आता है। शिवभूति मुनि नहीं, एक साधु। जवान स्त्री में रहकर....

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह आता है उसमें। टीका में आता है। उसमें—टीका में आता है। वह तो अन्दर में आनन्द में मस्त है। जिसकी उदासीनता इतनी है कि अग्नि के पास बैठी या स्त्री—दोनों समान लगते हैं। आहाहा! स्त्री का शरीर रूप से जड़ है, वह भी देखते नहीं। वे तो परमाणु, मिट्टी, धूल है। आहाहा! ऐसी जिसकी उदासीन दशा अन्दर में हो गयी, तो भी उसे परिचय तो करना नहीं, परन्तु ऐसा कोई हो। दृष्टान्त आता है। आहाहा! और जगत में उस विषय का मोह, वही प्रधान संसार है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** कंचन, कामिनी, कुटुम्ब।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** काम ... कल किसी ने लेख लिखा है। बालक से ... सब कामना होती है। ऐसा खोटा लिखा है। बालक से लेकर काम होता है। उसे माने ऐसे रमने जाये परन्तु अन्दर में काम होता है राग, ऐसा। ऐसा लिखा है। कल किसी ने लिखा है। जैनप्रकाश में है। बड़ा लेख है। बालक से लेकर ठेठ तक कामना... कामना... राग की कामना। वह काम में घिर गये हैं। आहाहा! मुनि को तो वह परिचय नहीं होता।

**स्त्री आदि परद्रव्य का संग-मिलाप नहीं है,...** परद्रव्य। लक्ष्मी का और नामा

लिखना। कहो, परद्रव्य का संग ही नहीं। आहाहा! जिनकी दशा अन्तर में निर्लेप... निर्लेप वीतराग के आनन्दसहित है, उन्हें ऐसा संग नहीं हो सकता। **जिसमें निर्माना अर्थात् मान कषाय भी नहीं है,...** अभिमान नहीं। मैंने ऐसा किया, मैं ऐसा मुनि हुआ। मान क्या? निर्मान-निर्मान। **मदरहित है,...** मद नहीं। विषय-वासना आदि। **जिसमें आशा नहीं है,...** कोई आशा ही नहीं। 'आशा दासी करे जिननायक।' मुनि ने आशा को दासी बना दिया है। आहाहा! 'आशा दासी करे...' आशा को दासी करे, वे नायक राजा, वे मुनि हैं। आशा के दास हों, वे सब भिखारी हैं। आहाहा! मुनिपने की दशा इसने सुनी नहीं कि कैसी होती है? आहाहा!

**मुमुक्षु :** सुने बिना मार्ग की खबर भी नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खबर नहीं। क्या करे? खबर नहीं।

**संसार भोग की आशारहित है,...** संसार, जिसे उदयभाव की आशा नहीं, कहते हैं। आहाहा! यह रागादि उदयभाव जो दया, दान, व्रत का विकल्प, उसकी भी आशा नहीं। उसकी आशा है नहीं। भावना तो आत्मा के आनन्द की मुनि को भावना होती है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसमें डुबकी मारना, वह उनकी भावना है। ऐसी आशा रखे कि इतने शिष्य बने, इतनी इज्जत हो, इतनी महिमा मिले, वहाँ जाये तो मेरा इतना साधक मिले। स्वागत करे, बड़े शहर में बड़ा स्वागत हो, यह आशा मुनि को नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? दोपहर का सूक्ष्म तत्त्व का, यह प्रव्रज्या का सूक्ष्म। मार्ग ऐसा है। उसके ज्ञान में तो यह बात सत्य है, ऐसी आनी चाहिए न! गड़बड़ करे तो ज्ञान झूठा है।

**राग का अभाव है, संसार-देह-भोगों से प्रीति नहीं है,...** देखो! संसार, देह और भोग। संसार शब्द से उदयभाव विकार। देह और भोग प्रीति नहीं तीनों में। आहाहा! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का भोग है, उसमें यह क्या? ओहो! जिसे दूधपाक का स्वाद आता हो, वह ज्वार की रोटी का स्वाद कहाँ से हो उसे? दूधपाक समझते हो? दूधपाक। खीर-खीर। खीर कहते हैं न वह। हमारे दूधपाक कहते हैं। दूध पक्का करे, बहुत पक्का। एक सेर दूध में एक रुपयाभार चावल, उसका नाम दूधपाक। एक सेर दूध में पाव सेर चावल, उसका नाम खीर। हमारे खीर और दूधपाक काठियावाड़ में बहुत

बनाते हैं। काठियावाड़ में खीर में एक सेर दूध में पाव सेर चावल, उसका नाम खीर। और एक सेर में एक रुपया भार चावल, उसका नाम दूधपाक। उस दूधपाक का स्वाद जिसे आया, आहाहा! उसे लाल ज्वार के छिलके का स्वाद कहाँ से हो? आहाहा!

कहा था न एक बार, नहीं? विठ्ठलगढ़ में लाल ज्वार की रोटियाँ आयीं थीं। विठ्ठलगढ़ है। ज्वार के छिलके जैसा था। ज्वार होगी। परन्तु कहीं फीका सब। (संवत्) १९७६, ७६ के वर्ष की बात है। ७६, भिक्षा को गये हम वीरमगाँव में। वीरम गाँव के पास एक विठ्ठलगढ़ गाँव है। ७६ के वर्ष में। बहुत वर्ष हुए। कितने? ५४। भिक्षा लेने गये तो ऐसी रोटियाँ मिले गरीब के घर से। बनियों के घर नहीं थे वहाँ। आहाहा! वह तो यह होता है। दूसरा कुछ हमारे वह नहीं। वह और पानी, छाछ और रोटी। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मुनि को संसार की इच्छा नहीं। आहाहा! प्रीति नहीं। राग का प्रेम नहीं। आहाहा! संसार उसे कहते हैं। आहाहा! राग आता है शुभादि, परन्तु प्रेम नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देह का प्रेम नहीं। यह तो मिट्टी, धूल है। आहाहा! जिसके ऊपर प्रेम नहीं जिसे। आहाहा! भोग का प्रेम नहीं। **निर्द्वेषा अर्थात् किसी से द्वेष नहीं है, निर्ममा अर्थात् किसी से ममत्वभाव नहीं है, निरहंकारा अर्थात् अहंकाररहित है, जो कुछ कर्म का उदय होता है, वही होता है...** ऐसा माने। कर्म का उदय जिसमें संयोग मिलो, न मिलो, उसे समभाव है।

**कर्म का उदय होता है, वही होता है—इस प्रकार जानने से परद्रव्य में कर्तृत्व का अहंकार नहीं रहता है...** कर्म का उदय जैसा हो, वैसा बने, (ऐसा माने) तो कर्तृत्व का अहंकार छूट जाता है। मैं करता हूँ ऐसा, साधन मैं करता हूँ, ऐसा करता हूँ, वह सब अहंकार छूट जाता है। आहाहा! **और अपने स्वरूप का ही उसमें साधन है,...** लो! भगवान आनन्द का ही साधन है, ऐसा कहते हैं। मुनि को तो आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय का साधन है। **इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।** लो!

**भावार्थ :- अन्यमति वेश पहिनकर उसी मात्र को दीक्षा मानते हैं, वह दीक्षा नहीं है, जैनदीक्षा इस प्रकार कही है।** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनांक-२८-१२-१९७३
गाथा - ५० से ५२, प्रवचन-७८

कैसे स्वरूप से कैसे सहित सम्यग्दर्शनसहित आदि का यह वर्णन है। ५० (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ५०

**णिण्णेहा णिल्लोहा, णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा।**
**णिब्भय णिरासभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५०॥**

भगवान तीर्थंकरदेव ने उसे दीक्षा कही है। **निःस्नेहा अर्थात् जिसमें किसी से स्नेह नहीं,...** राजादि बड़े हो, मन्त्री हो तो उनके प्रति राग—स्नेह करें (तो) वे धर्म का रक्षण करें, ऐसा स्नेह मुनि को नहीं होता, कहते हैं। राजा, महाराजा, सेठियाओं का राग उन्हें नहीं होता कि यह बड़े, इसलिए अपने इनका राग करते हैं और इनके कारण धर्म की शोभा होती है। मुनि को ऐसा राग नहीं होता। वीतरागी है न! **किसी से स्नेह नहीं,...** बड़े राजा हो, मन्त्री हो, दीवान आदि हो—किसी के प्रति उन्हें स्नेह नहीं। शिष्य हो, उनके प्रति मुनि को स्नेह—राग नहीं। आहाहा!

**जिसमें परद्रव्य से रागादिरूप सच्चिक्कणभाव नहीं है,...** इसकी व्याख्या की। इसकी व्याख्या है यह। परद्रव्य में, आत्मा के अतिरिक्त कोई **परद्रव्य से रागादिरूप सच्चिक्कणभाव नहीं है,...** आहाहा! जिसे आनन्द का—वीतरागभाव का अनुभव वर्तता है, उसे ऐसा राग होता नहीं, ऐसा कहते हैं। **सच्चिक्कणभाव नहीं है,...** राग चिकना भाव कहलाता है वह। जहाँ-तहाँ परवस्तु में प्रेम करे और वहाँ चिपट जाये, वह वीतराग मुनि के लिये शोभा नहीं देता। समझ में आया? कि भाई! यह पाठशालायें हमने करायीं, इसलिए वहाँ उन्हें निभाने के लिये राग चाहिए। यह मुनि को नहीं होता।

पाठशालायें करे या धर्मशालाएँ करे, उसमें तुमको यह निभाव करना पड़ेगा, ध्यान रखना पड़ेगा—ऐसा उन्हें राग नहीं होता।

**मुमुक्षु :** धर्म वह आयतन कहा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आयतन यहाँ आत्मा में है या बाहर में है ? सेठ! आयतन तो आत्मा है धर्म का। वह व्यवहार का अर्थ क्या ? ... गृहस्थ को होता है, मुनि को नहीं। यहाँ तो एकदम प्रव्रज्या वीतरागी... यह दूसरे साधु श्वेताम्बर के तो जहाँ-तहाँ राजा के पास जाये, कुमारपाल को सब करते हैं न। बड़े सेठिया के पास जाये। उनकी यहाँ अधिक बात है। अपना धर्म बढ़े। बड़े सेठिया हों, दीवान हो, राजा हों। यह बात—राग ही जहाँ अन्दर नहीं। एक विकल्प तो आता है, वह पंच महाव्रतादि का कि इतना, बाकी कुछ राग ही नहीं। आहाहा! उस राग का भी राग नहीं। राग की प्रीति नहीं उसके ऊपर। ऐसा मुनिपना है। अलौकिक बात है। अधिक लोगों को समझाऊँ और मैं राग करूँ तो यह धर्म शोभे, ऐसा मुनि (को नहीं होता)। वीतरागदशा प्रव्रज्या किसे कहें ? आहाहा! ऐसा कहते हैं। जहाँ वीतरागपना है, वहाँ ऐसे राग उन्हें होते नहीं, ऐसा कहते हैं।

**जिसमें निर्लोभा अर्थात् कुछ परद्रव्य के लेने की वांछा नहीं है,...** परवस्तु लेने की इच्छा, आशा ही नहीं। आहाहा! इतने शिष्य हों, इतनी पुस्तकें हों, प्रकाशित हो तो ठीक, ऐसा लोभ मुनि को नहीं होता। इतनी पुस्तकें बनाऊँ, फिर वे पुस्तकें लोग लें—ऐसी वृत्ति मुनि को नहीं होती। आहाहा! मुनिपना अर्थात् क्या ? जो परमेश्वर पद है। उसके लिये तो यह प्रव्रज्या का वर्णन करते हैं। लोगों ने कुछ फेरफार साधु के वस्त्र पहनकर और ऐई! सब धर्म करते हैं और धर्म कराते हैं। कोई परद्रव्य के प्रति लोभ नहीं।

**जिसमें निर्मोहा अर्थात् किसी परद्रव्य से मोह नहीं है,...** स्नेह नहीं, लोभ नहीं, मोह नहीं—ऐसे तीन शब्द हैं न! **'णिण्णेहा णिल्लोहा, णिम्मोहा' भूलकर भी परद्रव्य में आत्मबुद्धि नहीं होती है,...** रागादि, शरीरादि परद्रव्य में आत्मबुद्धि (कि) ये मेरे हैं, ऐसी बुद्धि धर्मी को नहीं होती। मुनि को नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **भूलकर भी परद्रव्य में आत्मबुद्धि नहीं होती है,...** आत्मा आनन्दस्वरूप का जिसे अनुभव करना है, वह सब शास्त्र का पठन का रहस्य तो यह है। मुनिपना लेकर हेतु तो यह है कि

अन्दर आनन्द में रहना। स्वरूप के आनन्द में ध्यान में रहना, वह मुख्य है। न रह सके (तो) शास्त्र का स्वाध्याय करे, विकल्प से। परन्तु ऐसी गड़बड़ में आत्मबुद्धि न करे (कि) पर के कारण लाभ होगा। पर को लाभ होगा, इसलिए मुझे ऐसा राग करना, मोह। मुनि को वह नहीं होता।

यह करते हैं न देखो न, अभी देखो न यह २५०० वर्ष में वह। साधु पैसा उगाहते हैं। दिगम्बर साधु। यहाँ पैसा भरो, ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो। यह मार्ग मुनि का नहीं है। गृहस्थ करे।

**मुमुक्षु :** मुनि को....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... जैसा है। कहाँ गये शोभालालजी? उनसे झट काम हो। आहाहा! वीतराग... वीतराग... वीतराग... आहाहा! देखो न, आया नहीं? मुनि तो वीतराग... वीतराग... वीतरागभाव कहे। मुहु.. मुहु। आहाहा! वीतराग—पर की अपेक्षा छोड़ दे और स्व की अपेक्षा में अन्दर में जा। आहाहा! जहाँ वीतराग बिम्ब प्रभु पड़ा है, उसके समीप में जा, पर से हट जा। आहाहा! पर से हट जा और स्व में बस जा। आहाहा! ऐसा मार्ग है। वह आया न 'पर से हट, स्व में बस, टुंकूं टच।' 'पर से हट, स्व में बस, यह टुंकूं टच।' (अर्थात् सार संक्षेप।)

**मुमुक्षु :** सबके लिये प्रभु?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सबके लिये यह है। परन्तु मुनि को तो मुख्य है। मुनि की ही प्रव्रज्या चलती है न! अपने में बसना, यह एक ही बात है। विकल्प आवे धर्म के लोभी देखकर। आता है मोक्षमार्गप्रकाशक में। वह शुभभाव आवे, परन्तु उसे जाने (कि) हेय है। आहाहा! वह राग भी बन्धन का कारण है। दूसरे को समझाने के लिये राग आवे, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

देह छूटने के काल में अंतड़ियाँ बदल जाएगी, शरीर बदल जायेगा। श्वास चलेगा नहीं, कफ पकड़ जायेगा और उसमें तू क्या करेगा दूसरे के ऊपर? किसे व्यवस्थित रखेगा? यहाँ तो अन्दर में जा। जहाँ वस्तु है, वहाँ वास कर। तू जहाँ है, वहाँ वास कर। परवस्तु का प्रेम छोड़ दे। आहाहा! देखो! यह दीक्षा और यह शिक्षा। अभी

तो मुनिपने के नाम से कोई साधारण कर दिया सब। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! वीतराग। जिसमें अपना ही लाभ हो। एक ही बात है। ऐसा वीतराग ने ऐसी प्रव्रज्या कही है।

**आत्मबुद्धि नहीं होती है,...** भूलकर भी परद्रव्य में आत्मबुद्धि (नहीं) कि पर को लाभ हो तो मुझे लाभ हो। ऐसी बुद्धि उन्हें होती नहीं। कि भाई! यह दुनिया माने और बहुत समझे, तो अपने को कुछ लाभ होगा। पर में आत्मबुद्धि है वह तो। ऐई! सेठ! यह तो ऐसा मार्ग है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** मुनि कितने प्रकार के होते हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुनि एक ही प्रकार के होते हैं वीतरागी। बहुत प्रकार के हों, ऐसा कहते हैं। ऐसे होते हैं... ऐसे होते हैं... सेठ को आता है अवसर पर। आहाहा! यह ४९ गाथा है उसमें। '**अराय**' ४९ में आ गया न अपने '**अराय**' '**णिग्गंथा णिस्संगा, णिम्माणासा अराय**' यह। उसमें टीकाकार ने अर्थ किया है, वह बहुत। अराग में। अराग में। राजा, मन्त्री का परिचय करना नहीं, नरक में... नरक में जायेगा। फिर और छूट दी थोड़ी। स्वयं ने लिखा। धर्म का कारण हो, मुनि को उपद्रव हो (तो) राजा के पास जाना। यह बात... वह तो... आहाहा!

**भूलकर भी परद्रव्य में आत्मबुद्धि नहीं होती है,...** आहाहा! अर्थात्? कि परवस्तु को कुछ लाभ हो तो मुझे लाभ हो, वह तो परबुद्धि हुई, पर में लाभबुद्धि हुई। आहाहा! पर को कुछ लाभ हो तो मुझे लाभ हो, वह तो पर में आत्मबुद्धि हुई। बहुत बार। वीतरागमार्ग है, मुनि का उसमें, ओहोहो! लोगों ने सुना ही नहीं अभी। आहाहा! अपने स्वरूप में जो डोलते हैं आनन्द... आनन्द... आनन्द... आहाहा! आनन्द की खान खोलते हैं। उन्हें यह बाहर की क्या पड़ी है? आहाहा! ऐसा कहते हैं। ऐसी दीक्षा को दीक्षा कहते हैं। आहाहा!

**निर्विकारा अर्थात् बाह्य-अभ्यन्तर विकाररहित है, जिसमें बाह्य शरीर की चेष्टा तथा वस्त्राभूषणादिक का तथा अंग-उपांग का विकार नहीं है,...** वस्त्र-आभूषण मुनि को नहीं होते। नहीं होते। वह अन्दर आनन्दसहित की अपेक्षा से बात है, हों! मात्र वस्त्र

छोड़कर नग्न घूमे और राग की क्रिया से धर्म माने, यह दया, दान, व्रत के परिणाम, उस धर्म माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागभाव में तो वीतरागभाव से धर्म होता है। राग हो, परन्तु वह धर्म नहीं। वह तो निषेधने योग्य है। आहाहा! समझ में आया?

**बाह्य-आभ्यन्तर विकार से रहित है,...** बाह्य में तो शरीर की चेष्टा भी विकारवाली नहीं होती, आँख की, मुख की, शरीर के अवयव की ऐसी चेष्टा विकारवाली नहीं होती उन्हें। आहाहा! एकत्वबुद्धि तो टूटी है परन्तु अस्थिरता टूट गयी है। ऐसी बात है। सम्यग्दर्शन में राग और विकल्प से लेकर सब उदयभाव से एकत्वबुद्धि टूट गयी है, तब तो उसे धर्म की शुरुआत होती है। अब तो यहाँ अस्थिरता टूट गयी है, उसकी यहाँ बात चलती है। समझ में आया? **निर्विकारा... वस्त्राभूषणादिक...** उन्हें होते नहीं। अंग-उपांग का विकार होता नहीं। अंग और उपांग अँगुली आदि शरीर की।

**जिसमें अन्तरंग काम-क्रोधादिक का विकार नहीं है।** बाह्य में अंग-उपांग में नहीं, अभ्यन्तर राग और काम आदि नहीं। **निःकलुषा अर्थात् मलिनभाव रहित है। आत्मा को कषाय मलिन करते हैं...** क्रोध, मान, माया, लोभ, अरुचि आत्मा के परिणाम मलिन हैं। आत्मा को मलिन करते हैं। वे मलिन परिणाम मुनि को नहीं होते। आहाहा! निर्मल सागर प्रभु में जिसने डुबकी मारी, उसे यह क्या हो? कहते हैं। आहाहा! अकषाय स्वभाव का सागर प्रभु है। उसमें जिसे राग की एकता टूटी, तोड़ी और अस्थिरता तोड़कर स्थिरता की, उसे यह क्या हो? कहते हैं। आहाहा! **अतः कषाय जिसमें नहीं है।** ऐसे मलिनभाव जिसे होते नहीं। अर्थात् कि निर्मल वीतरागभाव होते हैं, ऐसा।

**निर्भया अर्थात् जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं है,...** कोई चीज़ अच्छी हो तो कोई ले जायेगा। समझ में आया? मोरपिच्छी, कमण्डल कोई ले जायेगा? ऐसा उन्हें भय ही नहीं होता। आहाहा! मुनि को तो यह होता है, दूसरा तो होता नहीं। कमण्डल और मोरपिच्छी, पुस्तक। परन्तु उनको ले जाने का भय उन्हें नहीं होता। आहाहा! देखो, यह दीक्षा ऐसी! यहाँ तो अभी सब बहुत दीक्षा ली जाती है दीक्षा। मुम्बई में बहुत ली गयी है। वह सब दख्या है। मिथ्यात्व को पुष्ट करनेवाली दीक्षा है, वह सब। वहाँ ली

गयी या नहीं? अमृतलाल! वहाँ तुम्हारे राजकोट में। राजकोट क्या? मुम्बई! राजकोट में। अन्यत्र कहीं एक थाणा में ली गयी अन्त में। आहाहा! बापू! दीक्षा क्या? मिथ्यात्वभाव की दीक्षा है वह। आहाहा! यह तो प्रव्रज्या दीक्षित पुरुष को होती है। और उसे ऐसी वीतरागता अन्दर होती है। जिसे राग का कण आवे, वह भी जहर लगता है। उपदेश का विकल्प आवे, मुनि को मुनि की सेवा करने का विकल्प आवे, उपदेशक का विकल्प आवे। आहाहा! उससे मुझे क्या लाभ है? ऐसी दशा को यहाँ प्रव्रज्या और वीतरागता कहते हैं। आहाहा! ऐसी वीतरागता हो, वहाँ दीक्षा होती है। आहाहा!

**भय नहीं हैं, अपने स्वरूप को अविनाशी जाने, उसको किसका भय हो,...** भगवान आत्मा तो अविनाशी नित्य वज्रमय मूर्ति है। उसे भय क्या? चिदानन्द भगवान नित्यानन्द प्रभु वह मैं, ऐसे अविनाशी को भय क्या? आहाहा! जंगल में भूतों के बीच बैठे हों, चारों ओर भूत आकर पुकार करे, यह करे। उसका भय क्या? करे तो उसकी दशा में। मुझमें कहाँ है यहाँ? आहाहा! ऐसी प्रव्रज्या, ऐसी दीक्षा। यहाँ कहे, सर्दी टालने के लिये कपड़ा चाहिए। सेठ! आहाहा! सब दीक्षा नहीं। मिथ्यात्वभाव का पोषण है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** भक्त लोग करते हैं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करते हैं। मुनि लोग रखते हैं या नहीं? कौन रखे, देखो? वस्त्र, पात्र और पुस्तकें विक्रय करने को, उसके वापस ग्राहक खोजना पुस्तक बनाकर।

**मुमुक्षु :** दिगम्बर साधु को तम्बू डाल देते हैं न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तम्बू डाल देते हैं न। तम्बू थे न वहाँ। है न। गृहस्थ करे। परन्तु प्रयोग कौन करता है? आहाहा! यहाँ देखा है न यहाँ थे। शान्तिसागर आये थे और दो साधु। यहाँ लगाया। बड़ा लगाया। दीक्षा दी है न यहाँ पालीताणा में। दो आये थे। मोटा बहुत मोटा कपड़ा। नीचे पाट, उसमें सोते थे। यह उनके के लिये साथ ही रखते हैं वे तो। यहाँ कहाँ ऐसा कपड़ा हो? यह सब बहुत फेरफार हो गया। श्वेताम्बर में तो यह है ही नहीं। साधु भी नहीं, गृहीत मिथ्यादृष्टि के अतिरिक्त वे कोई साधु नहीं उसमें। स्थानकवासी या मन्दिरमार्गी। परन्तु दिगम्बर में भी ठिकाना नहीं होता। वे तो बेचारे

कषाय मन्द थी, बहुत वृद्ध थे। ऐसा मोटा कपड़ा प्रयोग करते थे। कपड़े में सोते थे नीचे, लो! इतना। पौष महीना था।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यहाँ अन्दर आये थे। करो बन्द करो बन्द सब। अन्दर से निकले सर्दी। पौष शुक्ल चौदश होगी लगभग चौदश थी। यहाँ पाट नीचे। लोग बैठे थे। आये थे ... जरा। ऐसे नरम व्यक्ति, हों! परन्तु वस्तु की खबर नहीं। शक्ति नहीं। प्रव्रज्या—दीक्षा ले ली। अन्दर निकले यहाँ से। वहाँ सोते शठ में बड़े कपड़े में। बाहर निकले, वहाँ सर्दी... सर्दी... सर्दी... क्या कहलाता है वह? वेंटीलेटर, वह बन्द करो... बन्द करो... बन्द करो... देखा था शोभालालजी! शान्तिसागर को? ऐसे व्यक्ति नरम, हों! ऐसे तूफान नहीं। परन्तु इस वस्तु की खबर नहीं। दूसरे साधु की तरह अभिमान कि ऐसा करे तूफान, वह नहीं। तथा वस्तु की—मार्ग की खबर नहीं। चारित्र चक्रवर्ती कहलाये, लो। यह तो वस्तुस्थिति यह है। किसी व्यक्ति के लिये बात नहीं है। ... वह तो बेचारा कहते कि हम यह नग्न होकर बैठे हैं, परन्तु कर्म हटे तो हो न! ऐसा बोलते थे। वहाँ व्याख्यान में थे। आहाहा! नरम व्यक्ति थे। परन्तु बापू! इसमें—मार्ग में क्या चले? यह तो वीतरागमार्ग है। जिसमें वीतरागता का पोषण हुआ हो, राग का तो भुक्का उड़ा गया हो उसमें। आहाहा!

**अविनाशी जाने, उसको किसका भय हो, जिसमें निराशभावा अर्थात् किसी प्रकार के परद्रव्य की आशा का भाव नहीं है,...** परद्रव्य की आशा ही नहीं कि इतने शिष्य हों या ऐसा जैनधर्म ऐसा हो या फलाना, वह आशा ही नहीं इच्छामात्र। आहाहा! मार्ग तो यह मुनिमार्ग की प्रव्रज्या की बात है न! आशाभाव नहीं। **आशा तो किसी वस्तु की प्राप्ति न हो, उसकी लगी रहती है, परन्तु जहाँ परद्रव्य को अपना जाना ही नहीं और अपने स्वरूप की प्राप्ति हो गई...** लो! स्व-पर का भान हो गया, विवेक हो गया विवेक। आहाहा! आनन्दस्वरूप वह मैं, विकल्पमात्र सब परद्रव्य है, ऐसा जहाँ स्व-पर का विवेक ज्ञान हो गया, उसे आशा क्या? पर से भिन्न हूँ, इसे पर की आशा क्या? जो पर से भिन्न हूँ, उसकी आशा क्या? आहाहा!

**परद्रव्य को अपना जाना ही नहीं और अपने स्वरूप की प्राप्ति हो गई, तब कुछ प्राप्त करना शेष न रहा,...** भगवान आत्मा जो आनन्दस्वरूप है, वह मिल गया अन्दर से। आहाहा! जो मिलने की सम्पदा थी, वह तो मिल गयी। सम्यग्दर्शन में। राग की एकता तोड़कर स्वरूप का अनुभव—दृष्टि हो गयी तो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। और उस सम्यग्दर्शन के पश्चात् स्वरूप में स्थिरता जम गयी, उसे चारित्र कहते हैं। वह तो मिल गया, अब उसे क्या आशा है? आहाहा! समझ में आया? **कुछ प्राप्त करना शेष न रहा, फिर किसकी आशा हो? प्रव्रज्या इस प्रकार कही हैं।** लो! भगवान ने साधुपना—दीक्षा ऐसी कही है।

**भावार्थ :- जैनदीक्षा ऐसी है। अन्यमत में स्व-परद्रव्य का भेदविज्ञान नहीं है,...** स्व और पर दो की भिन्नता का भान नहीं, वहाँ दीक्षा होती नहीं। चाहे तो जैन में रहा हो और दीक्षा ली, परन्तु स्व-पर का भान ही नहीं, तो वह भी दीक्षा नहीं। आहाहा! **उनके इस प्रकार दीक्षा कहाँ से हो।**

★ ★ ★

## गाथा - ५१

**आगे दीक्षा का बाह्यस्वरूप कहते हैं :—**अब बाह्य स्वरूप बताते हैं। अभ्यन्तर यह कहा सब। अब उसका—मुनि का बाह्यस्वरूप। कुन्दकुन्दाचार्य ने खास यह सब प्रकार लिया है। पंचम काल के प्राणी को, गड़बड़ हो गयी है बड़ी, उसे जानने के लिये (यह लिया है)। आहाहा!

**जहजायरूवसरिसा, अवलंबियभुय णिराउहा संता।**
**परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५१॥**

**अर्थ :- कैसी है प्रव्रज्या? यथाजातरूप सदृशी अर्थात् जैसा जन्म होते ही बालक का नग्नरूप होता है, वैसा ही नग्नरूप उसमें है।** यह बाह्य की बात। वह अभ्यन्तर की आ गयी पहले। उस अभ्यन्तरवाले को ऐसा बाह्य होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**अवलंबियभुय**' ऐसे हाथ में कुछ है नहीं। ऐसे लम्बे हाथ करते हैं। **लम्बायमान**

**की है, जिसमें बाहुल्य अपेक्षा कायोत्सर्ग खड़ा रहना होता है,... 'अवलंबियभुय'** कहा न? ऐसे तो आहार करने जाये, मोरपिच्छी ले, वह नहीं। बहुत समय तो उनका ध्यान में ही होता है, ऐसा बतलाना है। ऐसे दो भुजा लटकती और ध्यान में मस्त हों, बस। ऐसी दीक्षा कहलाती है। समझ में आया?

यहाँ तो संसार के काम और बाहर के काम के कारण, शास्त्र के पृष्ठ फिराने में फँस गया हो। यहाँ तो कहते हैं कि जिसे हाथ में मोरपिच्छी और कमण्डल भी नहीं। ऐसा बहुत समय कायोत्सर्ग में ही होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! शास्त्र के पन्ने फिराना, पुस्तक बनाने में चौबीस घण्टे रुके, उसकी महिमा हो अभी। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि मुनि तो **'अवलंबियभुय'** ऐसे हाथ खुल्ले रखकर अन्दर ध्यान में बैठे होते हैं। आहाहा! कहो, चले तब मोरपिच्छी आदि हो, उस समय की बात अपवादित की नहीं। ऐसी दशा जिसकी बस। अन्तर मस्त आत्मा के आनन्द में। आहाहा! और हाथ खाली पड़े हैं। यह आता है न उसमें? हाथ से कुछ करना नहीं, इसलिए हाथ लम्बे हैं। पद्मनन्दि में आता है। पद्मनन्दिपंचविंशति में पहला अधिकार। आहाहा! जीते जी श्मशान में चले गये होते हैं।

दीक्षा किसे कहना, बापू! प्रव्रज्या। आहाहा! जो जंगल में बसते हों, जिन्हें मनुष्य का पदचाप न हो हिलने-चलने में। ऐसे आत्मा के ध्यान में। **'अवलंबियभुय'** कहा है न? भुजा जिसे ऐसे खुली पड़ी है। आहाहा! लिखने का काम और यह काम। लिखने में रुका हुआ है आठ-आठ घण्टे, दस-दस घण्टे पुस्तक बनाने में। आहाहा! तब कहे, यह मुनि ने पुस्तकें बनायी न? यह अमुक समय विकल्प आया तो हुआ। बाकी बहुत समय तो ऐसा होता है उन्हें, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकल्प आया... क्या कहलाता है वह? ताड़पत्र। वहाँ बहुत थे ताड़पत्र, उस और दक्षिण में। अंकलेश्वर भरूच के पास सजोद में बहुत वहाँ। वहाँ सच्चे मुनि हों। षट्खण्डागम। लिख डाला। वे पृष्ठ रखकर चले जाये वापस। ऐसा नहीं कि... आहाहा! ऐसी प्रव्रज्या। उसे मुनि कहते हैं, कहते हैं।

**जैसा जन्म होते ही बालक का नग्नरूप होता है, वैसा ही नग्नरूप इसमें है। अवलम्बितभुजा अर्थात् जिसमें भुजा लम्बायमान की है, जिसमें बाहुल्य अपेक्षा**

**कायोत्सर्ग खड़ा रहना होता है, निरायुधा...** ऐसा। इसलिए कहा है। फिर उसमें दोष करो नहीं। लो, यह तो यह हो तो ही साधु। किसी समय हाथ में मोरपिच्छी वह बाहुल्यरूप से ऐसा होता है। अपवाद में ऐसा आहार-पानी लेने जाये। अपवादिक उपदेश में आवे। वह सब अपवादिक भाव है। आहाहा! मुनि तो अन्तर शोधने के लिये निकले हैं, केवलज्ञान प्राप्त करने (को निकले हैं)। आहाहा! जहाँ अन्दर तल में सब पड़ा है, वहाँ पहुँचकर ध्यान में स्थित होते हैं वे तो। आहाहा! समझ में आया?

**निरायुधा अर्थात् आयुधों से रहित है,...** अन्यमत में तो यह कहते हैं न? बाण और हाथ में बाण रखे। तलवार तो एकओर हो परन्तु बाण ऐसे रखे। धनुषबाण। वह जिन्हें नहीं होता। दीक्षा... मुनि की। आहाहा! राग हो, वहाँ तक वैराग्य नहीं होता। **शान्ता अर्थात् जिसमें अंग-उपांग के विकाररहित शान्तमुद्रा होती है।** शान्त। आहाहा! '**संता**' है न? '**णिराउहा संता**' शान्त... शान्त... शान्त... जिनके शान्तरस में शीतलता दिखती हो। आहाहा! जिनका अकषायस्वभाव पर्याय-पर्याय में प्रस्फुटित हो गया है उन्हें, ऐसा शरीर ही ऐसा शान्त दिखता है। शान्त... शान्त...

**परकृतनिलयनिवासा अर्थात् जिसमें दूसरे का बनाया निलय जो वस्तिका...** लोग कहते हैं न उनके लिये—साधु के लिये बनाना। कमरा बनाना, एक ओरडी बनाना, फलाना बनाना। इनकार करते हैं। पर के बनाये हुए निलय में जिनकी बस्ती आदि निवास हो। उनके लिये बनाया हुआ—साधु के लिये, उसमें रहे नहीं। यह प्रश्न हमारे उठा था पहले ६८। (संवत्) १९६८ में पहले यह। साधु के लिये उपाश्रय बनाया हुआ चलता नहीं। यह सब गुलाबचन्दजी ने कहा। गुलाबचन्दजी (को) देखा था रतिभाई? तुमने नहीं देखा होगा। (संवत्) १९७० में गुजर गये। ७०, भाद्र शुक्ल चौथ, जसाणी के मकान में। जसाणी के भाई वे? अमृतलाल। अभी रास्ता है वहाँ सब वह था। वे वहाँ गुजर गये। अभी बरामदा है, उस ओर देखा है हमने जसाणी का। अमृतलाल हों। लम्बे थे। वे गुलाबचन्दजी ऐसा कहते थे। ६८ में चातुर्मास पाळियाद था हीराजी महाराज का, उसमें तीन महीने मैं साथ में रहा था। फिर वहाँ से पालेज जाना था, वहाँ बोटाद आया। वहाँ उन्होंने ऐसा कहा। साधु के लिये बनाया हुआ उपाश्रय चलता नहीं, ले, वह साधु नहीं। अरे! यह क्या? यह तो अपने सुना नहीं। हीराजी महाराज... यह तो निषेध करे।

साधु के लिये बनाया हुआ मकान, उसमें यदि वह प्रयोग करे तो वह साधु नहीं। यह ६८ में पहली बात। १९६८। तुम्हारे जन्म से पहले की बातें। कितने वर्ष हुए? ६२। ६२-६२ वर्ष हुए। पहले सुना। अरे! यह क्या कहते हैं? चलो। वे कच्छी भाई थे। वे भगवानजी मुळीवाले। कहा, चलो भाई अपने महाराज के पास स्पष्टीकरण करने। यह कहते हैं वह। दीक्षा लेनी थी न। गये वहाँ मूलचन्दजी खीझ गये गुलाबचन्दजी के ऊपर। ऐसा कि यह दीक्षा लेने की तैयारी हुई और यह क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** ....फाड़ डाली।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** फाड़ डाली। गाड़ा लेकर गये थे दोनों। बोटाद से पालियाद। इसलिए बहुत खीझ गये। देखो, यह कहे स्पष्टीकरण करने के लिये। कहते हैं कि साधु को चलता नहीं बनाया हुआ उपाश्रय। यह तो उपाश्रय साधु के लिये होता है।

**मुमुक्षु :** अब तो नाम बदल डाला न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो प्रौषधशाला। नाम बदले तो कुछ... प्रौषधशाला नाम दिया।

यहाँ तो कहा न! नग्नमुनि के लिये भी किसी ने मकान बनाया हो, जंगल में एकान्त रहने के लिये, वह उन्हें नहीं चलता। कहाँ मुनिपना किसे कहना अभी? आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता, उसे मुनिपना कहाँ से आ जाये? आहाहा! हीराजी महाराज ने बेचारों ने फिर थोड़ा स्पष्टीकरण किया। वहाँ नहीं किया। वहाँ तो मूलचन्दजी अधिक बोले। फिर (संवत्) १९६९ में राणपर (में) स्पष्टीकरण किया। कहे, वह मकान उसने स्वयं किया हो, कराया हो और अच्छा मानता हो तो ऐसा कि पाप। बाकी किसी ने बनाया हो, उसे प्रयोग करे, उसमें क्या? ऐसा स्पष्टीकरण ६९। संवत् १९६९ राणपर। अपने को जँचा नहीं। ऐसा कि खुशालभाई का उदाहरण दिया था भाई का। तुम्हारे भाई ने मकान बनाया हो और तुमने किया नहीं, कराया नहीं, अनुमोदन नहीं किया और प्रयोग करो। उसमें क्या हो गया? हीराजी महाराज दीक्षा ली हुई। गाथा मुखाग्र थी कि जो कोई प्रयोग करे, वह उसका अनुमोदन है। अनुमोदन है। अनुमोदन की कोटि टूट जाती है। उसके लिये किया हुआ प्रयोग करे तो नौ कोटि में करण,

करावन, अनुमोदन आते हैं न तीन? अनुमोदन कोटि टूट जाती है। नौ कोटि रहती नहीं।

**मुमुक्षु :** जंगल में गुफाएँ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह भी नहीं प्रयोग करे। प्राकृतिक पड़ी हो, वह प्रयोग करे।

**मुमुक्षु :** कृत्रिम की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कृत्रिम हो, वह अलग। वहाँ खण्डगिरि में है। खण्डगिरि और उदयगिरि है न? पत्थर को ऊँचा किया हुआ हो, ऐसा सब बनाया हुआ। गये थे न खण्डगिरि पहले (संवत्) २०१३ के वर्ष में, नहीं? वह सब बनाया हुआ। साधु को बनाया हुआ चलता नहीं। ऊपर पुस्तक रखने का, नीचे जरा पत्थर ऊँचा इसलिए सहारा रहे। अन्दर पत्थर का था सब। सब बनाया हुआ है। साधु को नहीं चलता। साधु किसे कहे? आहाहा! साधु हुआ तो सिद्ध हुआ। मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय? साधु हुआ तो सिद्ध हो गया फिर। मोक्ष-मोक्ष हो गया उसका। आहाहा! इस बात की पहिचान तो करे वह। आहाहा! ऐसी दीक्षा और ऐसा साधुपना होता है। आहाहा!

है न पाठ है, देखो! '**परकियणिलयणिवासा**' पर ने कराया हुआ, निलय अर्थात् मकान, रहने का स्थान, उसमें उनका निवास होता है। उनके लिये बनाये हुए में निवास नहीं होता। भाई! इनको एक कमरा अलग बना दो, ध्यान में बैठे। ध्यान में बैठे। पूरा मार्ग फेरफार है। वीतराग का सब मार्ग फेरफार... फेरफार... (हो गया)।

**मुमुक्षु :** उपाश्रय खाली पड़ा रहता हो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खाली पड़ा रहे तो क्या हुआ? उनके लिये बनाया हुआ हो न! पण्डितजी यह कहते हैं। ऐसा कि खाली पड़ा रहे उसकी अपेक्षा प्रयोग करे तो क्या? ऐसा। आहाहा! सेठ को ऐसे सब तर्क आते हैं। आहाहा!

**जिसमें अपने को कृत...** देखो! किया नहीं, कराया नहीं और अनुमोदन नहीं। देखा! **मन, वचन, काया द्वारा दोष न लगा हो...** नौ कोटि। आहाहा! यह आता है दशवैकालिक में। गाथा भूल गये परन्तु तब आयी थी। उनके लिये बनाया हुआ प्रयोग करे तो वह उसका अनुमोदी है। आहाहा! उद्देशिक का यह था सब अभी? कि गृहस्थ साधु के लिये बनावे और साधु ले, वह साधु ने कराया नहीं तो उसे उद्देशिक नहीं

कहना। अरे! उद्देशिक का बाप है। सवेरे से आज साधु को (आहार) देना है। पानी लाओ। कुएँ का ताजा पानी खींचो। अधमण-अधमण पानी। एक बिन्दु असंख्य जीव। काला कर्म है। यह कराना... करनेवाले और लेनेवाले दोनों... ऐई!

**मुमुक्षु :** कौन सी कोटि टूटी?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नौ ही कोटि टूट गयी। एक कोटि टूटी तो नौ ही टूट गयी। मार्ग तो ऐसा भगवान, हों! चारित्र किसे कहे? आहाहा! अभी तो समकित का ठिकाना नहीं होता। श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता कि आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञाता, वह दया, दान के विकल्प का कर्ता भी नहीं। शरीर की क्रिया का कर्ता नहीं। आहाहा! वास्तव में तो राग हो, उसका जाननेवाला भी नहीं। जाननेवाला जाननेवाले का है। आहाहा! ऐसी चीज़ को अन्दर अनुभव किये बिना दीक्षा ले। अभी यह कहेंगे आगे, यह। '**सम्मत्तगुण-विसुद्धा**' ५३ में कहेंगे। यह कहने का आशय यह सब है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** बहुत बड़ा फेरफार हो गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो गया। यह काल बदल गया और सब लोगों को यह तैयारी नहीं होती, गृहस्थों का ठिकाना नहीं होता। सब बदल गया पूरा कमठाण। सवेरे जतड़ा आवे तो वह प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। वेश मिले या नहीं दिखाई दे....

**मुमुक्षु :** खबर नहीं होने से त्यागी गिने जायें।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दिखाव ऐसा। भाई कहते थे तुम्हारे सेठ। वनेचन्द सेठ। अब संघ के सेठ, नगर सेठ। छोड़ दिया। जाना कि यह स्थानकवासी धर्म सच्चा नहीं। परन्तु कहे, थोड़े महीने हुए और जहाँ सिद्धपुर में एक ईश्वरचन्दजी को देखा। ईश्वरलालजी दरियापरी। ऐसे देखा वहाँ आहाहा! चरणों में पड़ गये। पश्चात् ... चमत्कार। नगरसेठ थे न। स्थानकवासी के सेठिया थे। और पूरे गाँव के सेठ। नगरसेठ। आहाहा! वे बेचारे बात करते थे कि मेरे संस्कार ऐसे कि... यहाँ तो नग्न साधु हो, वह राग से धर्म माने, क्रिया से धर्म माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? उनके लिये बनाया हुआ प्रयोग करे, वह तो साधु ही नहीं। प्रव्रज्या नहीं।

**कृत, कारित,...** लिखा न? '**परकिय**' शब्द में यह पूरा डाला। **मन, वचन,**

**काय द्वारा...** और करना, कराना, अनुमोदना। **दोष न लगा हो ऐसी दूसरे की बनाई हुई वस्तिका...** लो! इतना तो स्पष्टीकरण किया है। दूसरे ने बनायी हुई बस्ती **आदि में रहना होता है—ऐसी प्रव्रज्या कही है।** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसी प्रव्रज्या कहते हैं। आहाहा!

**भावार्थ :- अन्यमति कई लोग बाह्य में वस्त्रादिक रखते हैं,...** लो! यह श्वेताम्बर वस्त्र, पात्र रखे और साधु हैं—ऐसा माने। वे मिथ्यादृष्टि हैं। कहो, समझ में आया? कहो, राजेन्द्र! तुम्हारा श्वेताम्बर धर्म।

**मुमुक्षु :** अब आत्मा का धर्म हो गया न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो पहले की बात है। भावनगर नहीं? भावनगर न? प्रेमचन्दभाई सब भावनगर न? भावनगर के मूल।

वस्त्र, पात्र रखे, वह साधु नहीं। **आयुध रखते हैं,...** धनुष, लकड़ी रखे बड़ी। डण्डा, डण्डा। मन्दिरमार्गी रखे बड़ा डण्डा। वह तो लकड़ी का डण्डा रखे। वह साधु नहीं, बापू! डण्डी हो, लकड़ी हो, वह नहीं। **कई सुख के लिये आसन चलाचल रखते हैं,...** सेठ! गाड़ी साथ में मोटर में, वह रखे। मोटर में रखे परन्तु वह पाट आदि हो न वह साथ में रखे। **कई उपाश्रय आदि रहने का निवास बनाकर...** लो! सेठ! उपाश्रय आया। खाली पड़ा रहे तो? **कई उपाश्रय आदि...** उपाश्रय, ओरडी, कमरा **निवास बनाकर उसमें रहते हैं और अपने को दीक्षासहित मानते हैं,...** हम साधु हैं। **उनके वेशमात्र है, जैनदीक्षा तो जैसी कही वैसी ही है।** लो! आहाहा! भारी कठिन लगे लोगों को, हों! दीक्षा लेकर बैठे हों तुम्हारे। वह कुन्दकुन्दविजय है न तुम्हारे महाजन? दीक्षा ली है। ...के। यहाँ आये थे रह गये थे। ... वे कुन्दकुन्दविजय सुना है। उनके साथ वे थे शान्तिभाई के भाई। कैसे? सुलोचन। १८ दिन सुना। पहली बार सुना तब नहीं बैठा। दूसरी बार बात सच्ची लगती है, परन्तु इस भव में अपने से हो, ऐसा नहीं। कुन्दकुन्दविजय। वे मार्ग में मिले थे। जाते थे। उनके गुरु साथ में हों, इसलिए बोल सके नहीं। बात तो सच्ची लगती है, परन्तु इस भव में बने, ऐसा नहीं, कहे। लेना नहीं तो फिर खोटा लेकर किसलिए बैठे? ऐसा नहीं कि भाई इस भव में हमारे से मुनिपना हो सके, ऐसी शक्ति हमारी नहीं। वह मार्ग में नहीं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ले ली हो फिर बचाव तो करना पड़े न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** फिर बचाव करना पड़े। आहाहा! जैन दीक्षा अर्थात् यह परमेश्वरपद। जिसे गणधर नमस्कार करे। आहाहा! वजीर—तीर्थंकर के दीवान उन्हें नमस्कार करे, वह यह साधुपद कैसा! यह तो चल निकले। वस्त्र बदलकर और यह वस्त्र दूसरे बदले। उन्होंने वस्त्र निकाल दिये। नहीं होती सम्यग्दर्शन की खबर, नहीं होती सम्यग्ज्ञान की खबर, नहीं होती दीक्षा-चारित्र किसे कहना, उसकी खबर। आहाहा! मार्ग भारी कठिन, भाई! वेशमात्र लेकर दीक्षा मानते हैं, वे सब मूढ़ जीव हैं, कहते हैं। आहाहा! उसे जैन की खबर नहीं। जैन परमेश्वर तीर्थंकर देव ने कहा हुआ मार्ग, उसकी उसे खबर नहीं। आहाहा! और कैसी है दीक्षा?

★ ★ ★

**गाथा - ५२**

**उवसमखमदमजुत्ता, सरीरसंकारवज्जिया रुक्खा।**
**मयरायदोसरहिया, पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५२॥**

लो, ठीक! दीक्षा किसे कहना? **'उपशमक्षमदमयुक्ता' उपशम तो मोहकर्म के उदय का अभावरूप शान्त परिणाम...** शान्त परिणाम। मिथ्यात्व का नाश और राग-द्वेष का नाश। ऐसे जिसे शान्त परिणाम प्रगट हुए हैं। आहाहा! **क्षमा अर्थात् क्रोध का अभावरूप उत्तमक्षमा तथा दम अर्थात् इन्द्रियों को विषयों में नहीं प्रवर्तना...** पाँचों इन्द्रियों की ओर का झुकाव छूट गया है। आहाहा! अणीन्द्रिय आत्मा में जिनकी जमावट जमी है। अतीन्द्रिय आनन्द को चूसने में जिनकी दृष्टि अन्दर पड़ी है। आहाहा!

**इन भावों से युक्त हैं, शरीरसंस्कारवर्जिता...** शरीर के संस्कार नहीं। पानी से साफ शरीर करे, विभुषा करे, बाल धोवे। आहाहा! वह शरीर का संस्कार जिसे नहीं। **स्नानादिक द्वारा शरीर को सजाना...** स्नान करना नहीं। आहाहा! और **तेल आदि का मर्दन शरीर के नहीं है।** लो! रूखा रूखा। यहाँ तो तेल चोपड़े। दो-दो तीन प्रकार के तेल की शीशी रखे। क्षुल्लक भी रखते हैं, ऐसा सुना है। क्षुल्लक रखे, साधु रखे। तेल

चोपड़े शरीर को मसलावे। वस्त्र न पहने, इसलिए यह मसलावे। सब एक का एक है। शरीर को तेल चोपड़े। दो-तीन प्रकार के तेल रखे। ऐसा कोई कहता था। अपने को तेल की खबर नहीं। ऐसे चोपड़ने के तेल होंगे। आहाहा! शीशियाँ रखे। सुखड़ का तेल, गुलाब का तेल, ऐसे दो-तीन प्रकार के कोई कहता था। शरीर को मसलावे रात्रि में। आहाहा! यह वीतराग का मार्ग ही नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** बहुत भूल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो बहुत चला है यह तो अभी। नग्नमुनि भी। यह तो वह रात्रि में महिला से चोपड़वाता था, ऐसा सुना है। आहाहा! तेल। तेल आदि है न? बहुत प्रकार के होते हों चोपड़ने के, वह न रखे, न चोपड़े। उसे हो? आहाहा! अन्यमति के बाबा जब सर्दी सहन न करे तो राख चोपड़े। तब यह तेल चोपड़े। सब एक का एक है। पूरे शरीर को मसलावे। वह प्रव्रज्या—दीक्षा नहीं है। उसे दीक्षा नहीं कहा जाता। आहाहा! **मद, राग, द्वेष, रहित है,...** लो! उसे मद नहीं, राग-द्वेष नहीं। ऐसी प्रव्रज्या वीतरागमार्ग में कही गयी है, लो!

**भावार्थ :- अन्यमत के भेषी क्रोधादिरूप परिणमते हैं,...** यह दूसरे क्रोधादि। **शरीर को सजाकर सुन्दर रखते हैं, इन्द्रियों के विषयों का सेवन करते हैं और अपने को दीक्षासहित मानते हैं, वे तो गृहस्थ के समान हैं, अतीत ( यति ) कहलाकर उलटे मिथ्यात्व को दृढ़ करते हैं....** उल्टे मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। **जैन दीक्षा इस प्रकार है वही सत्यार्थ है, इसको अंगीकार करते हैं वे ही सच्चे अतीत ( यति ) हैं।** सच्चे सन्त, मुनि तो जिन्हें अन्तर वीतरागता प्रगटी है, बाह्य में नग्नदशा है, तेलादि का मर्दन जिन्हें नहीं। उन्हें यहाँ सच्चे यति और अतीत कहा जाता है। उसे दीक्षा दीक्षारूप से कही जाती है। दूसरे को दीक्षा नहीं कही जाती।

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव! )

**पौष शुक्ल ५, शनिवार, दिनांक-२९-१२-१९७३**
**गाथा - ५३ से ५५, प्रवचन-७९**

अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़ चलता है। ५३वीं गाथा। प्रव्रज्या / दीक्षा किसे कहना? उसका सच्चा ज्ञान करना पड़ेगा न? दीक्षा के नाम से तो अभी बहुत चलता है। कुन्दकुन्दाचार्य को, यह प्रव्रज्या कैसी है, वह कितने—बहुत श्लोकों में लेनी पड़ी। यहाँ बड़ी गड़बड़ उठी दीक्षा की। ५३ (गाथा)

★ ★ ★

**गाथा - ५३**

**विवरीयमूढभावा, पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।**
**सम्मत्तगुणविसुद्धा, पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५३॥**

प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा किसे कहना? **कि जिसके मूढ़भाव, अज्ञानभाव विपरीत हुआ है,...** मूढ़भावरहित है, ऐसा। अनेकान्त—जैसा आत्मा का स्वरूप है, वैसा जिसे अनुभव में आता है, वह मूढ़भावरहित है। **दूर हो गया है।** विपरीत जिसमें दूर हुआ है। **अन्यमति आत्मा का स्वरूप सर्वथा एकान्त से अनेक प्रकार भिन्न-भिन्न कहकर वाद करते हैं,...** कोई आत्मा नित्य कहे, कोई अनित्य कहे, कोई अकेला द्रव्य जीव ही है, कोई जड़ ही अकेला है, कोई पूरे लोक प्रमाण व्यापक है—ऐसे अनेक प्रकार के मत, उन सबकी जिसके उलझन नहीं। ऐसा अज्ञानभाव जिसे निकल गया है, ऐसा कहते हैं।

**वाद करते हैं, उनके आत्मा के स्वरूप में मूढ़ भाव है। जैन मुनियों के अनेकान्त से सिद्ध किया हुआ यथार्थ ज्ञान है...** वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने वस्तु नित्य है, पर्याय अनित्य है, एक गुण, गुणरूप से है, एक द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप से है; परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप से नहीं। ऐसा उसका स्वरूप है। ऐसा उसे अनेकान्त ने सिद्ध किया है। दूसरे उसके कर्ता हैं, दूसरे से वह प्राप्त होता है, यह वस्तु अत्यन्त झूठी

है। अनेकान्त अर्थात् स्व से है और पर से नहीं। ऐसा अनेकान्त स्वरूप है और वह नित्य है और वह अनित्य भी है। नित्य है, वह अनित्य है अर्थात् कि पर्याय से अनित्य है और द्रव्य से नित्य है। ऐसा ज्ञान जिसे होता है और मूढ़भाव जिसे होता नहीं।

**जिसमें आठ कर्म और मिथ्यात्वादि प्रणष्ट हो गये हैं,...** लो, ठीक! आठ कर्म ही जिसमें नहीं दीक्षा में। दीक्षा में तो पवित्रता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आठ कर्म और मिथ्यात्व का नाश हुआ है, ऐसा साथ ही कहते हैं। '**णट्ठमिच्छत्ता**' विपरीत मान्यता—राग वह मैं, राग से लाभ होता है, एक समय की पर्याय जितना मैं—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह जिसका नाश हुआ है। इसलिए उसे आठ कर्म हैं नहीं। आठ कर्म आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! ऐसी प्रव्रज्या जैनदर्शन में वीतराग ने कही है। लो! मिथ्यात्वादि है न। '**णट्ठमिच्छत्ता**' आदि कहा।

**जैनदीक्षा में अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप मिथ्यात्व का अभाव है,...** तत्त्वार्थ की श्रद्धा से विपरीत भाव जैनदीक्षा में होता नहीं। जैनदर्शन से विपरीत भाव हो, वह जैनदीक्षा ही नहीं। तत्त्वार्थ से विरुद्ध बात है, वस्त्र रखकर मुनिपना मानना, भगवान को रोग मानना, भगवान को कवलाहार मानना, वस्त्रसहित स्त्री को भी मुनिपना मानना—यह सब मिथ्यात्वभाव—(तत्त्व से) विरुद्धभाव, यह मिथ्यात्वभाव है। इससे (तत्त्व से) विरुद्धभाव अतत्त्वार्थश्रद्धान मिथ्यात्व, उसका अभाव। अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व का अभाव।

**इसलिए सम्यक्त्व नामक गुण द्वारा विशुद्ध है...** सम्यग्दर्शन अर्थात् शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनन्तगुण राशि प्रभु का जिसे अन्तरभान हुआ है। ऐसे समकितगुणसहित साधु होते हैं। समकित न हो और नग्न साधु हो जाये, वह प्रव्रज्या नहीं कहलाती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे वस्तुस्थिति जो पूर्ण आत्मा, वह जहाँ अन्दर दृष्टि में, अनुभव में, ज्ञान में आया नहीं। और उसे प्रव्रज्या तथा दीक्षा हो जाये, ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया? यह मिथ्यात्व क्या, उसकी तो कुछ खबर नहीं होती।

**मुमुक्षु :** व्यवहार क्या कहलाये?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार क्या? सच्ची बात। व्यवहार भी कब था? निश्चय हो तो व्यवहार। आहाहा! आता है न। धर्मबिन्दु आता है। धर्मबिन्दु पढ़ा हुआ है। धर्मबिन्दु

नाम का ग्रन्थ है। वह सम्प्रदाय में पढ़ा हुआ है। उसमें वह है। द्रव्य समकित का आरोप देना। द्रव्य समकित किसे? आहाहा! सब वस्तु बहुत विपरीत। श्वेताम्बर में बहुत विपरीत दृष्टि होने के पश्चात् वह पंथ निकला है। कठिन काम। और उसमें से यह स्थानकवासी तो अभी ५०० वर्ष (पहले) निकले। अत्यन्त विपरीत दृष्टि। तत्त्व से अत्यन्त विपरीत दृष्टि। उसे विपरीत दृष्टि हो, वहाँ चारित्र हो नहीं सकता। यहाँ तो मुनि नग्न हो, उसे विपरीत दृष्टि हो तो चारित्र नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। नग्नपना लिया, पंच महाव्रत हो, परन्तु विपरीत दृष्टि ही है अभी तो अन्दर। वस्तुस्थिति की मर्यादा क्या है? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर नहीं सकता, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्शता नहीं, छूता नहीं, दूसरे द्रव्य से दूसरे द्रव्य को लाभ नहीं होता, दूसरे द्रव्य से दूसरे द्रव्य को नुकसान नहीं होता। ऐसा जो तत्त्वार्थश्रद्धान, उससे विपरीत अतत्त्वश्रद्धान—ऐसा मिथ्यात्वभाव, उसका उसे अभाव होता है।

**सम्यक्त्व नामक गुण द्वारा विशुद्ध है,...** आहाहा! मूल सम्यग्दर्शन और मिथ्यात्व की ही बात में फेरफार पड़ गया पूरा। उसे छोड़कर फिर सब बातें। यह पालना, छह काय की दया ऐसे पालना, व्रत ऐसे पालना। **निर्मल है,...** जैन प्रव्रज्या तो निर्मल है। पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा को जिसने दृष्टि में अनुभव किया, उसे फिर जो स्वरूप में स्थिरता, निर्मलता, पवित्रता में पवित्रता प्रगट की, ऐसी सम्यग्दर्शनसहित प्रव्रज्या निर्मल है। आहाहा!

**सम्यक्त्वसहित दीक्षा में दोष नहीं रहता है...** विशुद्ध का यह अर्थ किया। समकितसहित दीक्षा हो, आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा के अनुभव और आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की भूमिकासहित दीक्षा हो, उसमें दोष नहीं होता। समझ में आया? जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप ऐसा स्वाद आया नहीं, तो वह आत्मा पूरा अनन्त आनन्द है, उसकी उसे प्रतीति नहीं। तो ऐसे प्रतीतिरहित जीव को दीक्षा हो नहीं सकती। समझ में आया? दीक्षा तो विशेष आनन्द की दाता है वह तो। उस आनन्द का अभी भान ही नहीं, वहाँ आनन्ददाता कहाँ से आयी? आहाहा! सेठ! क्या है?

**मुमुक्षु :** आनन्द की प्राप्ति .... दीक्षा लेते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा कि यह दीक्षा लेते हैं। आहाहा! दख्या है, दीक्षा कहाँ थी? आहाहा! बहुत कठिन बात है। जगत के साथ कुन्दकुन्दाचार्य को मिलाना... आहाहा!

यहाँ तो देखो न, कितनी गाथा में प्रव्रज्या का कहा। चारित्र दीक्षा, प्रव्रज्या, वह कोई जाति ही अलग है। अज्ञानी लोग ऐसे के ऐसे मिथ्यादृष्टिसहित व्रत ले लेवे और नग्न हो जाये, वह प्रव्रज्या नहीं। वस्त्रसहितवाले तो मिथ्यादृष्टि हैं, उनकी प्रव्रज्या तो है ही नहीं। परन्तु मिथ्यात्व; वस्त्ररहित हो गये हों, नग्न हुए हों, अन्तर में जिन्हें अभी दृष्टि की खबर ही नहीं। राग का विकल्प उठे, उसका वह आत्मा कर्ता नहीं। ज्ञान से जाने कि है। वस्तु की दृष्टि से उसका कर्ता नहीं, उसका रचनेवाला नहीं। ऐसी जिसे अभी खबर नहीं, वह (माने कि) यह पंच महाव्रत पालता हूँ, रखता हूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

**इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।** लो! इसे भगवान तीर्थंकरदेव ने जैनशासन में महावीर प्रभु ने इसे दीक्षा कहा है। साधु हो गये थे। वह आया था न तुम्हारे नहीं? राजकोट के वे गुजर गये, क्या तुम्हारे? श्रीमद् के। लक्ष्मीचन्दभाई। लक्ष्मीचन्द डाह्या। ...दीक्षा। श्रीमद् को चारित्र था। स्वप्न आया था। खबर है न। दीक्षित हो गये साधु थे। ऐसे के ऐसे गप्प मारे।

**मुमुक्षु :** भक्त तो ऐसी ही भक्ति....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसी भक्ति हो अन्धी? लिखा था। वे कहते थे कोई स्वप्न आया था। वह पुस्तक आयी है। यहाँ आयी है। सब गप्प ही गप्प बातें। आहाहा! एक व्यक्ति और यह कहता कि श्रीमद् को एक अन्तिम भव करना था, वह कर डाला इस भव में। अब भव बाकी नहीं। किस प्रकार किया? ऐसे के ऐसे। जैनदर्शन की खबर नहीं होती। सौभागचन्द सोते-सोते मरने पड़े अन्त में। अम्बालालभाई साथ में बैठे थे। अम्बालाल मुझे यदि केवल (ज्ञान) होगा न तो मैं तुझे कहूँगा। परन्तु सोते-सोते। खाटला में सो रहे हैं और श्रीमद् के परमभक्त कहलाये। उन्हें इतनी खबर? केवलज्ञान होगा न, फिर तुझे पूछेंगे। बहुत लिखा है। पूरी लाईन बहुत फेरफार, भाई! यह तो

वीतरागमार्ग है। मूल पुरुष का कहा हुआ, कुन्दकुन्दाचार्य का। उसमें भी आता है, नहीं? मूलपुरुष नहीं आता? आहाहा! मार्ग तो यह है, भाई! उसे प्रव्रज्या विपरीत मान्यतारहित और शान्तिसहित (कहे)। वीतरागभावसहित ऐसी दशा उसे हो और बाह्य में नग्न और वस्त्ररहित हो, उसे भगवान के शासन में दीक्षा कहा जाता है। दूसरे को दीक्षा नहीं कही जाती। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ५४

५४। और कोई ऐसा कहे कि अभी ऐसा संहनन नहीं, वह प्रव्रज्या ऐसी भी होती है। ढीली भी होती है, इसके लिये स्पष्टीकरण करना पड़ता है।

**जिणमग्गे पव्वज्जा, छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।**
**भावंति भव्वपुरिसा, कम्मक्खयकारणे भणिया॥५४॥**

**अर्थ :- प्रव्रज्या जिनमार्ग में छह संहननवाले जीव के होना कहा है,...** यह हड्डियों की मजबूताई छह प्रकार की होती है। तो अन्तिम नम्बर में भी दीक्षा होती है, ऐसा भगवान कहते हैं। हड्डियों की अन्तिम नम्बर की स्थिति हो छठवें नम्बर की, उसे चारित्र होता है। ऐसा नहीं कि हड्डियों की पहले नम्बर की, दूसरे नम्बर का आदि हो तो ही उसे चारित्र होता है। यह कहने का आशय ऐसा कि भाई! अभी अब हमारा संहनन शिथिल है, पंचम काल ऐसा है। अभी तो अब ऐसा ही साधुपना होता है। यह बात होती थी उस दिन निकले तब। ऐसा नहीं, कहते हैं। संहनन तो अन्तिम में अन्तिम वज्र(वृषभ)नाराच पहला, उससे वज्रनाराच ... यह अन्तिम संहनन हो तो भी दीक्षा हो सकती है। असंप्राप्तसृपाटिका है न अन्तिम? तथापि उसमें चारित्र होता है। हड्डियों की मजबूताई बहुत शिथिल है, इसलिए चारित्र नहीं हो सकता, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। यह बचाव था न, तब वे श्वेताम्बर निकले। अब वज्रनाराचसंहनन नहीं। आहाहा! शरीर शिथिल पड़ा है, पंचम काल है, यह बार-बार दुष्काल पड़ गये बड़े। इसलिए हमारे से तो अब वस्त्र बिना तो साधुपना नहीं रह सकेगा। आहाहा! बहुत फाँटा (भेद)

पड़े। उसमें भी कितने भेद वापस श्वेताम्बर में। उसमें भी और भेद वापस स्थानकवासी निकले। उसमें भी कितने भेद स्थानकवासी में। बहुत ... श्रद्धा है। ... कुछ श्रद्धा। आहाहा! प्रभु का मार्ग तो दिगम्बर सन्त जो मार्ग अनादि सनातन सत्य था, वह कहा। उस मार्ग में अन्तिम संहनन हो तो भी चारित्र हो सकता है। ऐसा नहीं कि संहनन शिथिल है, इसलिए चारित्र नहीं होता।

**छह संहननवाले जीव के होना कहा है, निर्ग्रन्थस्वरूप है,...** वह तो निर्ग्रन्थ कहते हैं। वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। ऐसी शरीर की अन्तिम स्थिति, तथापि निभाने के लिये सर्दी के लिये वस्त्र रखना, ऐसा तीन काल में मार्ग में है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? आत्मा की शक्ति के वर्णन की भी अपूर्वता और उसकी दीक्षा— प्रव्रज्या भगवान की कही हुई, उसकी भी अपूर्वता। आहाहा! समझ में आया? नग्नरूप से विचरते हैं, उन्हें भी अभी सम्यग्दर्शन क्या है, वह न हो तो उन्हें भी चारित्र होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले सच्ची श्रद्धा करनी पड़ेगी न? चारित्र किसे कहना? चारित्र नहीं... उसे धर्म को अधर्म माने, अधर्म को धर्म माने। आता है न। पच्चीस मिथ्यात्व का आता है। जीव को अजीव माने, मार्ग को कुमार्ग माने, कुमार्ग को मार्ग माने। आहाहा! मिथ्यात्व का शल्य पड़ा हो और साधु हो और दीक्षा दे, नग्न हो तो वह साधुपना है ही नहीं। वस्त्र-पात्रवाले तो सीधे ही मिथ्यादृष्टि हैं; इसलिए उन्हें तो दीक्षा होती नहीं। परन्तु नग्न हुए को भी जिसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, वह भी साधु नहीं, प्रव्रज्या नहीं, दीक्षा नहीं। कहो, दीपचन्दजी! यह दीपचन्दजी दीक्षा लेनेवाले थे, फिर रह गये। आहाहा!

**निर्ग्रन्थस्वरूप है, सब परिग्रह से रहित यथाजातस्वरूप है।** जैसा माता से जन्मा, वैसा उसका शरीर। बालक के जैसा और निर्विकारी। आहाहा! राजकुमार हो, पच्चीस-पच्चीस वर्ष के जवान, मणिरत्न के पुतले जैसे शरीर, परन्तु जिसके अन्दर में आत्मा के आनन्द का भान, उससहित स्वरूप की रमणता जिसे हुई है, उसे संहनन भले अन्तिम हो, परन्तु यह दशा हो सकती है। आहाहा! **इसकी भव्यपुरुष ही भावना करते हैं।** आहाहा! ऐसी चारित्र की भावना तो भव्य और योग्य जीव ही कर सकते हैं। सम्यग्दर्शनसहित चारित्र की भावना तो भव्य जीव ही करे, ऐसा कहते हैं। अराग जीव

.... आहाहा! और उस चारित्र बिना मुक्ति नहीं। चारित्र बिना अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से ही मुक्ति हो जाये, ऐसा नहीं है। बाह्य चारित्रदशा आनी ही चाहिए। परन्तु ऐसी आनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**इस प्रकार की प्रव्रज्या कर्म के क्षय का कारण कही है। 'कम्मक्खयकारणे भणिया' 'पव्वज्जा एरिसा भणिया'** ऐसा जो कहते आते थे, उसके बदले यह कहा। **'कम्मक्खयकारणे भणिया'** यह प्रव्रज्या तो चारित्र कर्मक्षय का कारण है, यह तो कहते हैं। आहाहा! जिसमें कर्मबन्धन ही नहीं। राग अल्प हो बन्धन, उसकी गिनती यहाँ गिनने में नहीं आयी। एक तो अबन्धस्वरूपी भगवान जहाँ दृष्टि में और स्थिरता में तैरता है। आहाहा! ऊँचे-ऊँचे ऊपर-ऊपर तैरता है, राग से भिन्न ऊपर तैरता है। ऐसी जिसकी अन्तर दशा... आहाहा! धन्य अवतार है, भाई! जिसे कर्म का बन्धन नहीं। यह दशा आये बिना मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? भाई! आत्मा, ऐसे नारियल से जैसे गोला पृथक् पड़े और पृथक् रहे, इसी प्रकार जिसे राग से भिन्न करके अपना एकत्व भिन्न किया है। आहाहा! वह विकल्प और शरीर की क्रिया, उससे जिसने चैतन्यमूर्ति को अन्तर में भिन्न देखा है। आहाहा! उसमें वह रमता है। वह कर्मक्षय का कारण चारित्र है। कहो, समझ में आया? और यह कितने ही यह कहे श्वेताम्बर में। वह तो दिगम्बर में। हमारे तो पंच महाव्रत को संवर कहा है हमारे तो। वह तो तत्त्वार्थसूत्र माना है, उसमें तत्त्वार्थसूत्र में आस्रव कहा है। कर्मकृशी माने। आहाहा! अरे! मार्ग को बहुत उठा डाला।

भगवान तीर्थंकर परमेश्वर ने जो दीक्षा और चारित्र कहा, उसका सब फेरफार कर डाला है। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे को भगवान ऐसा कहते हैं **'एरिसा'** चारित्र भगवान ने ऐसा कहा, यह कहना पड़े। देखा! **'पव्वज्जा एरिसा भणिया' 'कम्मक्खयकारणे भणिया'** आहाहा! जिसे अबद्धस्पृष्ट आत्मा अन्दर अनुभव में जिसको आया है, उसमें वे स्थिर हुए हैं, वह कर्म के क्षय का कारण है। आहाहा! कहो, हसमुखभाई! यह कहे यह वापस लेंगे तो, हों! ... सहित चारित्र ... नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं। मानते हैं न। करोड़ों रुपये हों, आमदनी बड़ी

पाँच-सात लाख हों। ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न मानो आत्मा ओहोहो! उसमें दीवाली का दहाड़ा हो। क्या करे वह? दहरा। दहरा से २०-२० माने। ऐसे आमदनी का योगफल निकालता हो नामा में। इतने बढ़े, इतने गये। क्या धूल बढ़ी? आहाहा! योगफल बारह महीने का निकालकर शान्ति कितनी बढ़ी? वीतरागता कितनी बढ़ी? यह उसकी आमदनी का कारण है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** यह लाभ है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह लाभ है। बाकी तो सब समझने जैसा है। कहो, डॉक्टर! यह बाहर के बालक के यह किये और ढींकणा यह किये। अधिक पैदा किया।

**मुमुक्षु :** कितनों को निरोग किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी निरोगी किया नहीं। अभिमान किया है। आहाहा!

निरोगी भगवान आत्मा है, उसे निरोगीरूप से अनुभव करना। आहाहा! उसने आत्मा को निरोगी किया। आरोग्यबोहि लाभं आता है न! आहाहा! लोगस्स में आता है। लोगस्स किया था या नहीं कभी? किया था पहले? नहीं किया पहले से? ठीक! तुमने नहीं किया प्रवीणभाई? लोगस्स उज्जोयगरे... बहुत वर्ष से इस ओर आ गये न! लोगस्स आता है भगवान की स्तुति। लोगस्स उज्जोयगरे। चौबीस तीर्थंकर की स्तुति आती है। उसमें आता है। आरोग्ग बोहि लाभं समाहिवर मुत्तमदिंतु। प्रभु! हमारी निरोगदशा हमको प्राप्त होओ। आहाहा! राग और संसार तो रोग है। यह रोगीला प्राणी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी जिसने सम्यग्दर्शनसहित पहले राग की एकता तोड़ी है और पश्चात् राग की अस्थिरता छोड़ी है। आहाहा! ऐसी भव्य पुरुषों को प्रव्रज्या होती है, कहते हैं। समझ में आया?

कर्मक्षय का कारण है। यह सम्यग्दर्शन बिना मात्र व्रत और तप लेकर बैठे, वह तो बालव्रत और बालतप है। आहाहा! अज्ञान से भरपूर व्रत और तप है। समझ में आया? उसकी (प्रव्रज्या की) तो भव्यपुरुष ही भावना करता है। आहाहा! योग्य प्राणी उसकी भावना करता है। **इस प्रकार की प्रव्रज्या कर्म के क्षय का कारण कही है।** ऐसी ही प्रव्रज्या, ऐसी ही दीक्षा, वह कर्मक्षय का कारण है। आहाहा!

**भावार्थ :- वज्रवृषभनाराच आदि, छह शरीर के संहनन...** संहनन अर्थात् हड्डियों की मजबूती के छह प्रकार। **उनमें सबमें ही दीक्षा होना कहा है,...** भगवान ने तो सभी हड्डियों की मजबूताई पतली अन्तिम हो तो भी मुनिपना, निर्ग्रन्थपना, वीतरागपना उसमें कहा है। तीन कषाय का अभाव होकर आनन्द की दशा में झूले, भले संहनन कमजोर हो। संहनन कमजोर, इसलिए ऐसा हमारे अभी करना, पंचम काल है, इसलिए ऐसा। उससे यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** केवलज्ञान न हो और संहनन कमजोर हो तो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** केवलज्ञान संहनन के कारण होता ही नहीं। यह भाई ने सुना नहीं दोपहर का? केवलज्ञान अपने पुरुषार्थ से स्वभाव के कार्य में से होता है। वह तो स्वभाव का कार्य है। संहनन का कार्य नहीं उसमें। आहाहा! संहनन है, इसलिए केवलज्ञान हो, तब तो सबको होना चाहिए। संहनन तो तन्दुलमच्छ को है। तन्दुलमच्छ है इतना। पहला संहनन है। मरकर नरक में जाता है। सातवें नरक में जाता है। आहाहा! ऐसे भव भी अनन्त किये। भूल गया। परन्तु मनुष्य में कुछ आया न बाहर।

**मुमुक्षु :** केवलज्ञान (हो), तक संहनन होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होता है, वह अलग बात है। होता है, इसलिए यहाँ केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं। मनुष्यपना होता है, इसलिए केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं। मनुष्यपना हो, वहाँ केवलज्ञान होता है, यह बराबर है। परन्तु मनुष्यपना है, इसलिए केवलज्ञान होता है—ऐसा नहीं है। केवलज्ञान तो अपने स्वभाव का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? यह तो बहुत आ गया नहीं? अकार्यकारण में बहुत आ गया। संहनन, शरीर, मनुष्यपना कोई कारण ही नहीं। आत्मा को धर्म की दशा प्रगट होने में वह कोई परचीज़ कारण है ही नहीं और उस कारण का कार्य आत्मा में नहीं और उस वस्तु का कारण भी जीव नहीं। जीव है, इसलिए वज्रनाराचसंहनन आया है, केवलज्ञान होने का है, इसलिए वज्र(वृषभ)नाराचसंहनन आया है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मोक्ष का मार्ग बापू! अलौकिक है। जिसे पर की अपेक्षा ही नहीं। क्योंकि अबन्धस्वरूप ही भगवान आत्मा है। अबन्धस्वरूपी को ही आत्मा कहा है। आहाहा! उस आत्मा में मुक्ति अर्थात् पर्याय में मुक्ति होना, वह पर की अपेक्षा कोई है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिसे महाचैतन्य भगवान का सहारा पर्याय को है, उसे दूसरे के कारण की क्या आवश्यकता है? आहाहा! बाह्य सामग्री शोधने का क्या प्रयोजन है? १६वीं गाथा में कहा न प्रवचनसार (में)। तेरा मोक्ष का मार्ग तो तुझसे अन्दर से कर्ताकर्म होकर होता है। छह बोल लिये हैं उसमें। बाह्य सामग्री खोजने में क्यों मूढ़ होता है? बाह्यसामग्री में कहाँ साधन था? आहाहा! भगवान आत्मा... परन्तु बात यह है कि वस्तु (का) माहात्म्य आवे नहीं न, तब तक वह बाहर में झपट्टे मारे। कुछ यह सब सहारा हो और यह ठीक हो तो ऐसा हो और ऐसा हो। शरीर निरोगी हो तो ऐसा हो। शरीर में संहनन मजबूत हो तो ऐसा हो। यह सब बातें कल्पना की हैं। भगवान पूर्णानन्द का नाथ आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ है वह। उसे जिसने जाना और पहिचाना, उसे अपने स्वरूप के साधन के लिये... स्वरूप का साधन अपने पास है। समझ में आया? ऐसी बात है, बापू! बहुतों के आशीर्वाद मिल जाये, इसलिए वहाँ मोक्ष हो जाये—ऐसा नहीं है। बहुतों की दया पाली हो, बहुतों का परोपकार किया हो, आंतरडा दूसरे को ऐसे सुख दिया हो। उसका आशीर्वाद मिल जाये तो इसे मुक्ति हो, ऐसी वह चीज़ नहीं। आहाहा! परोपकार बहुत काम किये हों। जिन्दगी में अकेली सेवा ही की है सेवा। किसकी सेवा? ज्ञान की सेवा या पर की सेवा? आहाहा!

आया है न समयसार में, नहीं? १९वीं गाथा में। आत्मा को ज्ञान तो अनादि से एक ही है। सेवा करता ही है। तो फिर आत्मा की सेवा करना, ऐसा आप कैसे कहते हो? ज्ञान की सेवा करो... ज्ञान की सेवा करो। की ही नहीं इसने। आहाहा! ज्ञान और आत्मा दोनों एकरूप हैं, ऐसी दृष्टि इसने की ही नहीं। आहाहा! इससे इसने ज्ञानस्वरूपी भगवान की इसने सेवा की ही नहीं। वे और कहे न सेवा धर्म का। क्या कहते हैं? परमो धर्मो। ... धूल भी नहीं। यह बहुत कहे। वह जुगलकिशोर थे न, दिल्ली। जुगलकिशोर मुख्त्यार। वे बहुत कहते थे। पर की सेवा करो। धूल भी नहीं। यह पण्डित सब। स्वयं कुछ पैसा दिये हुए हो न, पचास हजार, पिचहत्तर हजार। अपना था वह सब दे दिया वहाँ। क्या कहलाता है अपना अभी है न वहाँ? वीर सेवा मन्दिर। पहले-पहले वहाँ उतरे थे। तब स्वयं आते थे और बहुत प्रेम बतलाते थे। प्रभु! ...बड़े प्रधान आये। तब बड़े प्रधान भाई थे न! ढेबरभाई, दिल्ली। प्रमुख थे, बड़े नहीं। प्रमुख। वहाँ व्याख्यान

में आते थे। रात्रि में वहाँ मकान में आये। प्रसन्न-प्रसन्न हो गये कि आहाहा! ऐसे व्यक्ति अच्छे हों तो आवे, लो! परन्तु क्या? वीर सेवा मन्दिर है न!

**मुमुक्षु :** उसका नाम सेवा हुई?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं हुई। आहाहा! यहाँ तो कहा, यह बड़े राजा और फाजा का सम्पर्क करना नहीं। तुझे निवृत्ति लेनी है, उसमें ऐसी प्रवृत्तिवाले का तुझे क्या काम? आहाहा! अन्दर में जहाँ शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्तरस का भगवान, उसमें जिसे जाना है, उसे ऐसे अशान्त के करनेवाले सब नरकगामी जीवों (के साथ) तुझे परिचय का काम क्या है?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा है। बात सच्ची है। परन्तु वह स्वयं ही अभी ठिकाने बिना का है और मोक्ष कहाँ से पायेगा?

**मुमुक्षु :** अरे! भाई! प्रभावना का तो बड़ा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रभावना अन्दर होती होगी या बाहर? और बाहर हो तो शुभभाव में हो। कहीं बाहर की क्रिया में होती नहीं व्यवहार प्रभावना।

**मुमुक्षु :** व्यवहार से अपनी पर्याय में होती है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार शुभभाव हो, वह व्यवहार प्रभावना। भाई! मार्ग अलग है, प्रभु! सत्य के पंथ में जाना, वह पंथ बहुत अलौकिक मार्ग है। महापुरुष, महाजन वहाँ जा सकते हैं। आता है न! आता है। १७२ गाथा में। १७२ में आता है। कहा था, नहीं? वीरजीभाई ने कहा था। वीरजीभाई ने कहा महाजन। ऐसा कि महाजन... यह महाजन है न तुम्हारे। ऐसे वीरजीभाई कहते हैं। महाजन तो इस पंथ में चले, ऐसा कहे। मोक्ष के मार्ग के पंथ में चले अन्तर। आहाहा! महाजन जिस रास्ते गये, उसी रास्ते जाये। आहाहा! निरालम्बी मार्ग है, उसे कोई आलम्बन नहीं। ऐसा अन्तर में मार्ग प्रभु का, प्रभु अर्थात् आत्मा, उसके मार्ग में जाना, उसे प्रव्रज्या चारित्र होता है। इस मार्ग बिना बाहर की बातें, व्रत और नग्नपना, निर्दोष आहार लेते हैं हम। और एक व्यक्ति ऐसा कहे। निर्दोष आहार लेते हैं, इसलिए हमारा साधुपना नहीं? दडवा में बोलता था

एक। ... यह और महाराज आत्मा... आत्मा करते हैं। हम आहार निर्दोष लें, वह नहीं? (संवत्) १९९१ की बात है। ९१। यहाँ आये न। उससे पहले... और उसके पहले दडवा। तब। आहाहा! फिर तो ... हो गया अन्त में। उमराला का भावसार था।

**वज्रवृषभनाराच आदि, छह शरीर के संहनन कहे हैं, उनमें सबमें ही दीक्षा होना कहा है, जो भव्य पुरुष हैं, वे कर्मक्षय का कारण जानकर...** देखो! **इसको अंगीकार करे।** ओहो! **इस प्रकार नहीं है कि दृढ़ संहनन वज्रवृषभ आदि है, उनमें दीक्षा हो...** ऐसा कुछ नहीं। पहला संहनन और दूसरा संहनन हो हड्डियों का, तो ही दीक्षा हो, ऐसा कुछ नहीं। **असंसृपाटिक संहनन में न हो,...** अन्तिम में न हो, ऐसा कुछ नहीं। **इस प्रकार निर्ग्रन्थरूप दीक्षा तो असंप्राप्तासृपाटिका संहनन में भी होती है।** अन्तिम संहनन में भी दीक्षा होती है, चारित्र होता है, परन्तु ऐसा चारित्र। अन्दर में आत्मा के भानसहित जिसने राग की एकता तोड़ी है और फिर अस्थिरता छोड़ी है, ऐसी जीव की दशा, उसे प्रव्रज्या और चारित्र कहा। आहाहा! कहो, समझ में आया? अभी यह दीक्षा हुई... में। चार दीक्षा हुई स्थानकवासी। दीक्षा क्या वहाँ मुँडाना साधु में। स्थानकवासी साधु, इसलिए लेकर बैठे ... आहार लेने जाना। उसमें है क्या? आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ५५

**आगे फिर कहते हैं :-**

**तिलतुसमत्तणिमित्तसम, बाहिरग्गंथसंगहो णत्थि।**
**पव्वज्ज हवइ एसा, जह भणिया सव्वदरसीहिं॥५५॥**

आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को आधार देना पड़ता है। सर्वदर्शी भगवान ने ऐसा कहा है, भाई! आहाहा!

**अर्थ :- जिस प्रव्रज्या में तिल के तुषमात्र के...** तिल के ऊपर का छिलका, उसका भी **संग्रह का कारण—ऐसे भावरूप इच्छा...** वह जिसे नहीं। पहले संग्रह का कारण जो इच्छा, ऐसा कहा पहले। समझ में आया? **भावरूप इच्छा अन्तरंग परिग्रह...**

वह जिसे नहीं। एक तिल के छिलके को ग्रहण करना, ऐसी जो इच्छा, वह भी जिसे नहीं। आहाहा! वह इच्छा देखो न! **भावरूप इच्छा अन्तरंग परिग्रह...** वह जिसे नहीं, ऐसा। फिर बाह्य की बाहर आयेगी। **तिल के तुषमात्र बाह्य परिग्रह का संग्रह नहीं है...** बाह्य में भी नहीं। अभ्यन्तर में तिल का संग्रह करे, ऐसी इच्छा नहीं, बाह्य में टुकड़ा नहीं बाहर का तिल के छिलके जितनी चीज़। आहाहा! तब यह सब ... रखते हैं न! कहो, पुस्तक रखे, पिच्छी रखे। वह तो धर्म के निमित्त उपकरण हैं। उसे कहीं परिग्रह नहीं। वह अपवादित मार्ग है। समझ में आया? आहाहा!

और बाह्य परिग्रह में तिल के तुष का छिलका भी नहीं। **इस प्रकार की प्रव्रज्या जिस प्रकार सर्वज्ञदेव ने कही है, उसी प्रकार है,...** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने ऐसी दीक्षा कही है। वहाँ वह कहे, परन्तु हमारे शास्त्र में ऐसी दीक्षा कही है। वह कहता है। ... होवे तब ऐसा कहता है। बचाव करता है। हमारे शास्त्र में ऐसा है। परन्तु तेरे शास्त्र सच्चे हैं या नहीं, यह तो निर्णय कर अभी। यह शास्त्र है या नहीं, इसकी खबर नहीं। भगवान के नाम से चढ़ाकर शास्त्र माने। भारी कठिन बातें!

**सर्वज्ञदेव ने जिस प्रकार कही है, उसी प्रकार है, अन्य प्रकार प्रव्रज्या नहीं है...** दूसरे प्रकार से दीक्षा और साधुपना नहीं हो सकता। **ऐसा नियम जानना चाहिए। श्वेताम्बर आदि कहते हैं कि अपवादमार्ग में वस्त्रादिक का संग्रह साधु को कहा है...** लो, यह सर्दी-बर्दी के लिये लेने के लिये। बहुत सर्दी पड़े तो वस्त्र चाहिए। श्रीमद् में भी ऐसा आता है, लो! वर्तमान ऐसे काल में वस्त्रादि से चारित्र का निर्वाह होता है। परन्तु चारित्र ही नहीं वहाँ निर्वाह कहाँ से आया? वस्त्रसहित प्रव्रज्या चारित्र नहीं न और वस्त्रसहित साधु माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। निर्वाह कहाँ से आया? भाई! यह तो मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा पुकारते हैं। सर्वदर्शी परमात्मा ऐसा कहते हैं। जिसे वस्त्र के धागे को लेने की इच्छा भी नहीं और उस धागे का टुकड़ा भी जहाँ बाह्य में नहीं। आहाहा!

**श्वेताम्बर आदि कहते हैं कि...** आदि शब्द से स्थानकवासी आदि। **अपवादमार्ग में वस्त्रादिक का संग्रह साधु को कहा है, वह सर्वज्ञ के सूत्र में तो नहीं कहा है।** भगवान के सूत्र में तो यह कुछ कहा नहीं। तुम्हारे में कहा हो तो कल्पित है। आहाहा!

भारी विवाद उठा है। **उन्होंने कल्पित सूत्र बनाये हैं...** वे जितने ८४, ४५, ३२ श्वेताम्बर ने बनाये, वे सब कल्पित हैं। भगवान के कहे हुए सूत्र वे हैं ही नहीं। परन्तु ऐसे वाडा में पड़े, उन्हें कहाँ परीक्षा करने की (दरकार है)? चिमनभाई! जो उसमें जन्मे वे जन्मे। हो गया जाओ, कहे। आहाहा! कहो, समझ में आया? उन्होंने कल्पित सूत्र बनाये। उसमें साधु को वस्त्र कहे हैं। वह तो कल्पित है। वे भगवान के कहे हुए नहीं। समकिती के बनाये हुए नहीं न, गृहीत मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए हैं। कठिन बातें बहुत! भगवतीसूत्र, वह गृहीत मिथ्यादृष्टि का बनाया हुआ है। वे बेचारे सोना गिरवी रखकर भगवती का सूत्र पढ़े। आहाहा! यहाँ कहते हैं, बापू! शान्ति से... भाई! जिसमें वस्त्र का पोटला रखना, वह सब साधु को (कहा), वह गृहीत मिथ्यादृष्टि के कथन हैं। आहाहा! अरेरे! ऐसा अन्तर कैसे करे?

**उनमें कहा है, वह कालदोष है।** आहाहा! ऐसा करके... काल की बलिहारी है, बापू! आहाहा! ऐसे काल के कारण से ऐसे पंथ निकले। परम पवित्र प्रभु वीतरागमार्ग दिगम्बर सनातन सत्य मार्ग, उसमें से कालदोष के कारण से ऐसे मार्ग निकले। वह सब कल्पित है, कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य को दीक्षा के लिये ऐसी बात करनी पड़ी। अभी तो झुण्ड के झुण्ड दीक्षा के होते हैं। मुम्बई ७० लेकर गयी थी, ३६ लेकर आयेगी। ४१ होगी। कहो, देखो! उनकी विद्वत्ता! देखो, उनका त्याग! ... ऐसे इकट्ठे करना वह तो... आहाहा! स्पष्टीकरण किया है। श्वेताम्बर के पंथ में जो शास्त्र कहे, वे शास्त्र भगवान के नहीं। मुनि ने कहे हुए नहीं, समकिती ने कहे हुए नहीं। आहाहा! इसका अर्थ... हमारे ३२ सूत्र। कहते हैं न? ४५ तुम्हारे हो। ३२ हो। समसूत्र है, ऐसा कहते हैं। ३२ सूत्र समसूत्र है। वह तो भगवान के कहे हुए समयसार आदि जो शास्त्र, वे सन्तों के कहे हुए, वे भगवान के कहे हुए है, आहाहा! समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, लो! आहाहा! वे सब कुन्दकुन्दाचार्य... देखो, अपने यह वाँचन होता है यह अष्टपाहुड़। उसका है न मुहूर्त तुम्हारे। अष्टपाहुड़ वाँचन होता है, देखो! आहाहा! '**भणिया सव्वदरसीहिं**' सर्वदर्शी भगवान ने ऐसा कहा है। यह ५५ (गाथा) हुई, लो। जल्दी किया। देरी लगेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ५, रविवार, दिनांक-३०-१२-१९७३
गाथा - ५६ से ५९, प्रवचन-८०

५६ गाथा। चारित्र और दीक्षा किसे कहना, उसकी व्याख्या है। अभी दीक्षा का पूरा स्वरूप बदल गया है।

★ ★ ★

गाथा - ५६

**उवसग्गपरिसहसहा, णिज्जणदेसे हि णिच्च अत्थइ।**
**सिल कट्ठे भूमितले, सव्वे आरुहइ सव्वत्थ॥५६॥**

**अर्थ :- उपसर्ग अथवा देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत उपद्रव...** चार। उन्हें सहन करे। देव के किये हुए उपसर्ग, तिर्यंच अर्थात् सिंह आदि के उपसर्ग और मनुष्य का उपसर्ग तथा अचेतन कोई दीवार गिरे, वृक्ष गिरे। उसका उपसर्ग सहन करे। जिसे वीतरागता प्रगट हुई है न! आहाहा! **परीषह अर्थात् दैव-कर्मयोग से...** दैव अर्थात् कर्मयोग। **आये हुए बाईस परीषहों को समभावों से सहना, इस प्रकार प्रव्रज्यासहित मुनि है,...** ऐसी दीक्षासहित मुनि हैं। उनकी पहिचान कराते हैं। यह सब गड़बड़ चली है न! वस्त्र और पात्रसहित साधु और साध्वी। वह सब मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। वह प्रव्रज्या नहीं, वह दीक्षा नहीं, वीतराग के मार्ग में वह विधि नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**प्रव्रज्यासहित मुनि है, वे जहाँ अन्य जन नहीं रहते, ऐसे निर्जन वनादि प्रदेशों में सदा रहते हैं,...** लो! आहाहा! है न? '**णिज्जण**' जन न हो, ऐसे जंगल में मुनि रहे। कहो। कहाँ मुनिपना ठहराया है? स्त्रियों को... वस्त्र, बड़े महल मकान में मुम्बई जैसे शहर में रहना, वह मुनिपना है ही नहीं। दीक्षा नहीं, वह तो मिथ्यात्व का मार्ग है। ऐसी बातें कठोर पड़े।

**मुमुक्षु :** मुम्बई परद्रव्य है, उसमें क्या बाधा है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ '**णिज्जण**' जन परद्रव्य है। यहाँ जन परद्रव्य है। परन्तु जिसे वीतरागता अन्दर साधना है, अन्तर्मुख जहाँ, अन्तर्मुख जिसकी दृष्टि है। आहाहा! बहिर्मुख का विकल्प भी जिसे आदरणीय नहीं। आहाहा! भाई! चारित्र अर्थात् दीक्षा कोई अलौकिक बात है। उसकी यहाँ पहिचान कराते हैं। जिसे-तिसे मानकर बैठे कि यह दीक्षा और यह साधु। नग्न होकर भी जिसे अभी अन्दर मिथ्यात्व का त्याग नहीं, वह सब दीक्षा नहीं, प्रव्रज्या नहीं। ऐसा मार्ग है। कुन्दकुन्दाचार्य को प्रव्रज्या का स्वरूप ऐसे प्रसिद्ध करना पड़ा। आहाहा!

**निर्जन वनादि प्रदेशों में...** आहाहा! यह तो बड़े पाँच-पाँच लाख के बँगले, उनके लिये मकान बने... उसमें रहे, वस्त्रसहित। वह मार्ग नहीं, प्रभु कहते हैं। आहाहा! आत्मा का मार्ग जो यह चैतन्यमूर्ति प्रभु आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा तो है। उस आनन्द को साधने की दशा, वह चारित्र है। उस चारित्र में तो निर्जनवन हो उसे रहने का। आहाहा! जहाँ बाघ और भालू रहते हों। आहाहा! 'एकाकी विचरता...' आता है न? 'अरु श्मशान में, अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जो।' ऐसे में रहना एकान्त... एकान्त... एकान्त... मनुष्य का पगरव नहीं वहाँ। मनुष्य का पगरव... पगरव... आना-जाना नहीं। आहाहा! इतना भी अन्दर संयोगी चीज़ में भाव छूट गया है अन्दर। स्वभावभाव की जिसे अन्तर आनन्द की रमणता है, वह तो ऐसे निर्जन वनादि में रहता है। आहाहा! उसे यहाँ दीक्षा भगवान के मार्ग में कही है, भाई! समझ में आया?

**वहाँ भी शिलातल,...** जंगल में भी शिलातल—पत्थर हो, वहाँ रहे, बैठे। आहाहा! सूखी लकड़ियाँ पड़ी हों। **काष्ट,...** वहाँ सोवे। **भूमितल में रहते हैं,...** आहाहा! यह वह कहीं! यह तो वस्त्र की... उन तेरापंथी में तो एक-एक साधु... अधिक दे आचार्य को। ५०-५०, १००-१०० कपड़े की गादी हो, उसमें सोवे। प्रभु! क्या किया मार्ग को? और वह फिर ऊँचे कहलाये। आता है न तुम्हारे नहीं, तुलसी? मुम्बई में आता है मुम्बई में। तेरापंथी। ऐसा सुना है, हों! उसके साधु ने कुछ... अधिक हो और दे। १००-१०० कपड़े की वह हो, उसमें सोवे। अरे! यहाँ तो कपड़े का धागा रखकर मुनि माने, मनावे, मानते हुए को भला जाने, निगोदगामी है। यहाँ भगवान के मार्ग में किसी की सिफारिश

चले, ऐसा नहीं है। निगोदगामी है। आलू, शक्करकन्द में जानेवाले हैं। आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है।

**भूमितल में रहते हैं, इन सब ही प्रदेशों में बैठते हैं,...** जंगल में हो, खेत हो, ढेले हों, वहाँ जाकर सोये। उसे क्या जंगल में? आहाहा! नीचे पृथ्वी और ऊपर आकाश। एकान्त... एकान्त... जंगल में। बाघ, भालू रहते हों वहाँ रहे। आहाहा! कहो, ऐसा मुनिपना होता है। वह मुनिपना तो अभी दिखना कठिन पड़ता है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जैनमार्ग में इसे प्रव्रज्या चारित्र और दीक्षा कही है।

**ऐसे सर्वत्र कहने से वन में रहे और किंचित् काल नगर में रहें...** भिक्षा के लिये आये हों, थोड़ा रहे। **तो ऐसे ही स्थान पर रहें।** वहाँ भी ऐसे स्थान में एकान्त में रहे, ऐसा। गाँव में आवे तो एकान्त स्थान में। पहले तो ऐसा सुना नेमिजी नहीं जाते थे। चेतनजी! कहाँ गये? नेमिजी नहीं थे, नहीं? मुम्बई नहीं जाते थे।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सच्ची बात है। इससे बेचारे को ऐसा कि अपने ऐसा नहीं होता। जंगल में... यद्यपि उनके व्यवहार साधु नहीं, तथापि उसके योग्य कहे, भाई! अपने मुम्बई नहीं। ऐई! ब्रह्मचर्य में वे सख्त थे। वे साधु नहीं थे। आचार्य नहीं, यह तो एक बाहर की बातें। वह वस्त्रसहित मुनि मानते हैं न, वह तो जैनदर्शन ही नहीं। वह जैनदर्शन मार्ग ही नहीं। ऐसी बात है। नोंच डाला है। भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में श्वेताम्बर पंथ निकला। दिगम्बर सनातन मार्ग, सनातन वीतराग आनन्द। उसे भूलकर बाहर पंथ निकाला ऐसे वस्त्रसहित मुनिपना, स्त्री को मोक्ष, स्त्री को भी साधुपना, भगवान को आहार, माता-पिता भगवान को—दो, यह सब बातें अन्यमति जैसी कर डाली। समझ में आया? तीन लोक के नाथ तीर्थंकर के जैसे पवित्र और पुण्य किसका हो? उन्हें दो बाप! आहाहा! दो बाप की तो गाली कहलाती है। उन तीर्थंकर को दो बाप? एक ब्राह्मण बाप और एक सिद्धार्थ। बहुत विरोध, अत्यन्त विरोध। वीतरागमार्ग से जैनदर्शन से अत्यन्त विरुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे माननेवाले को दीक्षा नहीं हो और साधुपना हो नहीं सकता। आहाहा!

**भावार्थ :- जिन दीक्षावाले मुनि उपसर्ग-परीषह से समभाव रखते हैं,...** प्रतिकूल आवे तो समभाव रहे, खेद न करे। आहाहा! वीतराग की गद्दी पर बैठा है न वह तो। मुनि अर्थात्? प्रव्रज्य अर्थात् वीतरागपना अन्दर प्रगट हुआ। वीतरागभाव की जिसे अनन्त शक्तियों की सम्हाल जिसने ली है। आहाहा! प्रतीति और ज्ञान, तदुपरान्त समभाव स्थिरता की है उसमें। आहाहा! ऐसी प्रव्रज्या समभाववाली होती है।

**जहाँ सोते हैं, बैठते हैं, वहाँ निर्जन प्रदेश में...** मनुष्य न हो, ऐसे प्रदेश में रहे। **शिला, काष्ट, भूमि में ही बैठते हैं, सोते हैं, इस प्रकार नहीं है कि अन्यमत के भेषीवत्...** अन्यमत के वेशवाले। **स्वच्छन्दी प्रमादी रहें, इस प्रकार न रहे।** आहाहा! मार्ग ऐसा है। इसे पहिचान तो करनी पड़ेगी न! आहाहा! चौरासी के अवतार कर करके, भाई! उल्टी मान्यता से। आहाहा! माता के गर्भ में, माता के पेट में बारह वर्ष छोड़ रहे। नौ महीने गर्भ रह, परन्तु किसी-किसी को तो बारह वर्ष तक रहे। ऐसा शास्त्र में है। माता के गर्भ में बारह वर्ष, वहाँ से मरकर दूसरी माता के गर्भ में बारह वर्ष। वहाँ उसकी माता के गर्भ में बारह वर्ष। आहाहा! ऐसे अवतार किये हैं। एक मिथ्यात्व के कारण। ऐसा साधुपना अनन्त बार लिया बाहर का। वह तो मिथ्यादृष्टि था। आहाहा! इसने ऐसे भव किये। ओहोहो! रोम-रोम में कीड़े पड़े और शरीर गन्ध मारे। और उस गन्ध में पाँच-दस वर्ष रहना पड़े ऐसा का ऐसा। ऐसे भव भी इसने किये हैं। वहाँ कोई दुनिया की सिफारिश चले, ऐसा नहीं है। ऐसा मुनिपना नहीं और उसमें मुनिपना मानते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि ऐसे फल चौरासी के भटकने में जानेवाले हैं। आहाहा! भारी कठिन बातें, भाई! आहाहा!

यह भावपाहुड़ में आयेगा। बापू! तुझे ऐसे दुःख हुए, तू मर गया, देह छूटने के अवसर में तेरी माँ रोई, उसके बिन्दु इकट्ठे करें तो अनन्त समुद्र भर जायें। आहाहा! अनन्त काल से... अनन्त काल। अनादि काल में, भाई! एक बार तू मरा और यह देह छोड़ी और तेरी माँ रोई या तेरी स्त्री रोई, उसके बिन्दु इकट्ठे कर, अनन्त स्वयंभूरमणसमुद्र भर जायें। अनन्त काल में अनन्त भव की अपेक्षा... आहाहा! अनन्त की गहनता की इसे खबर नहीं। यह बाहर में जरा अनुकूल हो, प्रसन्न होकर यह मैंने त्याग किया और मैंने यह किया और मैंने यह किया। आहाहा! इस मिथ्यात्वभाव से ऐसे भव इसने अनन्त बार किये हैं। उसकी पहिचान कराते हैं कि, भाई! साधुपना तो ऐसा होता है। जिससे

संसार का भटकना रुके और आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा प्राप्त हो, वह प्रव्रज्या तो ऐसी होती है। जंगल में रहे, वस्त्र न हो, नग्न हो। आहाहा! भारी कठिन बातें, भाई! कहो, हसुभाई! सब ऐसा सुना हो कहीं रुपया कमाने के कारण? करोड़ों का ढ़ेर हो, वहाँ दिखाई दे। आहाहा! धूल में भी नहीं तेरे, रुपये तो जड़ हैं, अजीव हैं। आहाहा! तू रागरूप होकर रहा नहीं तो फिर शरीररूप होकर, लक्ष्मीरूप होकर रहे, आहाहा! और वस्त्रसहित होकर साधुपनेरूप रहे, वह वस्तु ही नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य का, भगवान के शासन का पुकार है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ से यह सन्देश लाये हैं। उनके पास तो था भगवान की परम्परा से। परन्तु यह प्रभु का मार्ग, बापू! ऐसा है। समझ में आया? वस्त्र रखकर मुनिपना मनाते हैं, जिसके शास्त्र में वस्त्र रखने का कहा, वह शास्त्र ही नहीं, वह सिद्धान्त नहीं, वह भगवान के कहे हुए नहीं। आहाहा!

अज्ञानी कहते हैं, **अन्यमत के भेषीवत् स्वच्छन्दी प्रमादी रहे...** ऐसा यह नहीं। यह तो आत्मा के ध्यान में जंगल में बसते हैं। आहाहा! 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में।' ऐसी चारित्र की दशा होती है, ऐसी यहाँ श्रद्धा कराते हैं। समझ में आया? ऐसा चारित्र हो, उसे चारित्र मानना, उससे उल्टा मानना, वह तो मिथ्यात्व है। धर्म को अधर्म मानना, अधर्म को धर्म मानना। आहाहा! वह मिथ्यात्व के विपरीत परिणाम, उनका कितना पाप है, उसकी इसे कीमत नहीं। उसकी इसे खबर नहीं। दूसरा जीव घात हो, न घात हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि वह दूसरे को घात सकता ही नहीं। इसी प्रकार दूसरे को बचा नहीं सकता। मिथ्यात्वभावसे अपने को घातता है। आहाहा! उस भाव की इसे खबर पड़ती नहीं। बाहर के हर्ष और उत्साह के भाव से जिन्दगी चली जाती है। आचार्य महाराज जैनशासन को जैसा है, वैसा प्रसिद्ध करते हैं कि ऐसा जैनदर्शन है, बापू! समझ में आया?

★ ★ ★

## गाथा - ५७

**आगे अन्य विशेष कहते हैं :—** ५७ (गाथा)।

**पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।**
**सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५७॥**

आहाहा! **अर्थ :- जिस प्रव्रज्या में पशु-तिर्यंच, महिला ( स्त्री ), पंढ ( नपुंसक ) इनका संग...** नहीं होता। आहाहा! स्त्री का संग नहीं स्त्री का। पशु का। आहाहा! नपुंसक के संगरहित, उनका संग न करे। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा राग के संगरहित प्रभु आत्मा, उसका जिसे भान होकर स्वरूप में रमणता जिसे जमी है, उसे ऐसे पुरुषों का संग नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया? यह स्त्रियों को इकट्ठा करके बातें करे। कहते हैं वह साधुपना नहीं। समझ में आया? स्त्रियों को इकट्ठा करके समझावे, सुनावे, ऐसा करके राग पोषण करे, वह मुनिपना नहीं। नग्नमुनि हो तो भी, हों! यह तो बात ही नहीं। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे कि यह तो साधुपने की निन्दा होती है। वस्तु ऐसी है, भाई! वीतरागमार्ग में ऐसा पंथ है, प्रव्रज्या का, ऐसा कहते हैं। यह सत्य का प्रवाह ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। इससे उल्टा सब हो गया, वह सब मिथ्यात्व के पोषण में जाता है। समझ में आया? आहाहा! भले करोड़ों रुपये छोड़े, दीक्षा ले, परन्तु वस्त्रसहित (साधु है), उसे तो सम्यग्दर्शन भी नहीं। उसे साधुपना तो आवे ही कहाँ से? आहाहा! कठिन मार्ग, भाई!

**कुशील ( व्यभिचारी ) पुरुष का संग नहीं करते हैं;...** आहाहा! पुरुष ऐसे हों कि बहुत व्यभिचारी हों। परस्त्री के लम्पटी, ऐसों का संग धर्मात्मा नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? परस्त्री आदि लम्पटी महाव्यभिचारी। हों बहुत रूपवान, सुन्दर रूप, पैसेवाले। परन्तु उनका परिचय न करे, कहते हैं। आहाहा! संग नहीं करे। **स्त्री कथा...** न करे। ऐसी स्त्री होती है और ऐसे वस्त्र होते हैं और उसकी ऐसी बोलणी (भाषा) होती है और ढींकणा, ऐसी वार्ता वीतरागी मुनि जंगल में बसनेवाले सन्त, उन्हें ऐसा नहीं होता। **राज कथा...** राजा ऐसे होते हैं और राजा ऐसे लड़ते हैं, फिर ऐसे जीतते हैं और ढींकणा हो, ऐसी राजा की कथा। देखो यहाँ तो इनकार किया है। सच्चे सन्त तो

राजा और मन्त्री का परिचय न करे, राजाओं का परिचय न करे।

**मुमुक्षु :** राजा.... हो, उस घर में भोजन न करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ।

**भोजन कथा...** भोजन की कथा न करे। आज ऐसा आहार मिला, और ऐसा उसने अच्छा किया, उसने अच्छा दिया। ढींकणा। सब पापकथा है। आहाहा! जो अमृत का भोजन खाता है। आहाहा! मुनि तो उसे कहते हैं कि अमृत का भोजन खाते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत के घूँट जो पीता है। आहाहा! जैसे तृषा लगी हो और मौसम्बी पीवे; उसी प्रकार जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान का जिसे अन्तर भान होकर जिसे अन्तर में रमणता जमी है, वह तो अतीन्द्रिय अमृत के घूँट पीता है। उसे ऐसे भोजन की बात कैसे सुहावे? भोजन लेने का विकल्प जहाँ कलंक मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? आता है न नित्यभोजी! आनन्द नित्यभोजी। कलश में आता है। बन्ध अधिकार में। आहाहा! सन्त तो नित्य अतीन्द्रिय आनन्द के भोजी होते हैं। आहाहा! इसे तो आनन्द क्या? अभी कहाँ रहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! मुनिपद तो परमेश्वरपद है। उसे यहाँ साधारण कर डाला, लो! आहाहा!

**चोर इत्यादिक की कथा...** यह सब कथायें न करे। ऐसे चोरी करे, उसका ऐसा हो और उसका ऐसा हो। **जो विकथा है, उनको नहीं करते हैं,...** वह विकथा न करे। **तो क्या करते हैं? स्वाध्याय...** करे। भगवान के कहे हुए शास्त्रों का स्वाध्याय। आहाहा! **जिन वचनों का पठन-पाठन...** वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ के कहे हुए सिद्धान्त, उनका पठन-पाठन करे। अज्ञानी के कहे हुए का पठन-पाठन श्रद्धा से न करे। जिनवचनों का, वीतराग वचन। आहाहा! वीतराग वचन तो दिगम्बर सिद्धान्तों में ही रहे हैं। अन्यत्र कहीं वीतराग वचन रहे नहीं। आहाहा! वह ३२, ४५ सूत्र, वे वीतराग के वचन नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! वे तो कल्पित सूत्र बनाये हुए हैं अज्ञानियों ने। उनका स्वाध्याय, पठन, पाठन जिनवचन मानकर मुनि नहीं करे। समझ में आया? मार्ग गजब, भाई! दुनिया से मिलान न खाये, ऐसा है। साधारण मनुष्य को तो ऐसा लगे कि यह सब खोटे होते होंगे? इतने हजारों साधु, हजारों आचार्य कितने, आचार्य भगवन्त—ऐसा कहते हैं, लो! धूल भी नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं, बापू!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... है न। आचार्य को... है। उसमें क्या है? अथाणा को अचार कहते हैं। आहाहा! बापू! वीतरागमार्ग अलग है, भाई! यह वीतरागमार्ग की पहिचान ऐसे सन्त और प्रव्रज्या किसे कहना? उसकी प्रसिद्धि भगवान करते हैं। आहाहा! दुनिया से तो अनमेल हो जाये, ऐसा है। आहाहा! बहुतों को तो बेचारों यह बात बैठे नहीं। पूरी जिन्दगी वह पोषण किया हो, वही सुना हो। अब यह सच्ची बात तो सुनी न हो। आहाहा!

मुनि को स्वाध्याय और ध्यान दो होते हैं। दूसरा कुछ नहीं होता। विकथा भी नहीं होती और ऐसे संग भी नहीं होते। आत्मा का ध्यान करे आनन्द का। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है अन्दर। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है, इसलिए उसका ध्यान करे। आहाहा! उसका स्मरणा करे, उसका ध्यान करे, उसमें रमणता करे। न रह सके तो वीतराग वचनों का स्वाध्याय करे। मुनि को दो बातें होती हैं। तीसरी बात होती नहीं। आहाहा! तुम यह करो, तुम यहाँ मकान बनाओ, यह मन्दिर बनाओ, पैसे इकट्ठे करो, फलाना करो। यह बात मुनि को होती नहीं। समझ में आया? वीतराग मुनि हैं कुन्दकुन्दाचार्य। वीतरागी मुनि स्वयं प्रव्रज्या की व्याख्या भगवान ऐसी कहते हैं, ऐसा कहते हैं, देखो! **'पव्वज्जा एरिसा भणिया'** ऐसा कहा न? भगवान ने इसका नाम प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा कही है कि जो जंगल में बसे, वस्त्ररहित हो, स्वाध्याय, ध्यान में मस्त हो, कुसंग का त्याग हो। आहाहा!

**ध्यान अर्थात् धर्म-शुक्लध्यान इनसे युक्त रहते हैं। इस प्रकार प्रव्रज्या जिनदेव ने कही है।** लो! है! ५७? भगवान तीर्थंकरदेव केवली ने तो इसे दीक्षा कही है। यह सब सम्प्रदाय बाँधकर बैठे, वे सच्चे नहीं होंगे? बड़े-बड़े पण्डित होते हैं। लाखों लोगों को ऐसे रिझावे। प्रसन्न-प्रसन्न कर दे ऐसे। वह सब पाखण्ड है। आहाहा! वीतरागमार्ग अलग, भाई! आहाहा! सम्प्रदायवालों को यह बात नहीं बैठती और उनके माननेवाले वे बेचारे जिन्दगी में यही सुना हो। २५-२५, ५० वर्ष, ६० वर्ष। हो गया। इसलिए यह सब यह क्या कहते हैं? ...दासजी! नहीं सुना होगा। गिरधरभाई ने स्थानकवासी में सुना और ...यह मन्दिरमार्गी में सुना। आहाहा! वह भी तुम्हारे स्थानकवासी का सुना, उन्होंने

मन्दिरमार्गी। सुमनभाई मन्दिरमार्गी हैं, ये स्थानकवासी। थे की बात है। अब कहाँ है? ऐसा मार्ग है। उसे पहले पहिचानना पड़ेगा। आहाहा! उसकी श्रद्धा को चुस्त करना पड़ेगा पहले, ऐसा कहते हैं। जिसे श्रद्धा में ठिकाना नहीं, उसे कोई व्रत, तप और चारित्र होता नहीं। आहाहा! कहो, रतिभाई! ऐसे श्वेताम्बर में यह मार्ग है और ऐसा है। श्रीमद् में ऐसा आता है, लो! ... यह भाई राजेन्द्र। ऐसा कहते हैं कि यह श्रीमद् में ऐसा आता है न श्वेताम्बर का। वह आवे परन्तु वह सब... उस समय की भूल थी। मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा! श्वेताम्बर में भी ऐसा कहे, चारित्र का निर्वाह करने के लिये इस काल के लिये ऐसा होता है। निर्वाहयोग्य... परन्तु चारित्र ही होता नहीं, मिथ्यादृष्टि है। वस्त्रसहित साधुपना माने, वही मिथ्यादृष्टि है। लेने-देने की बात... यहाँ तो भाई! ऐसी बात है। वजुभाई! स्पष्ट बात है। लोग आओ, न आओ, इकट्ठे हों, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ मार्ग तो यह है। फिर भले उनके मार्ग में एक भी व्यक्ति न हो बाहर, परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! परन्तु वे माननेवाले बहुत हों, इसलिए वह सच्चा मार्ग है, ऐसा कुछ नहीं। **प्रव्रज्या जिनदेव ने कही है।** जिनदेव ने अर्थात् जिनदेवे अपने गुजराती भाषा में आवे। ऐसा साधुपना दीक्षा, भगवान के मार्ग में वीतराग परमेश्वर के मार्ग में ऐसी दीक्षा होती है। इसके अतिरिक्त विरुद्ध जो दीक्षा, माने, वह सब वीतरागमार्ग में नहीं। वह जैनमार्ग ही नहीं। वह जैनदर्शन भी नहीं। शान्तिभाई!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मार्ग ऐसा है, भाई! ऐई! दीपचन्दजी! आहाहा! ये दीक्षा लेनेवाले थे। नग्नमुनि। नग्नमुनि होनेवाले थे। अपने दो नमूना है न एक वह दिल्लीवालो शान्तिसागर, वे भी दीक्षा लेनेवाले थे। गृहस्थ व्यक्ति है, लाखोंपति व्यक्ति। स्त्री, पुत्र है। पुत्र है, माँ-पिता है, मकान है। अभी घर में रहते हैं परन्तु शैय्या नीचे। बहुत सादा जीवन। स्त्री आदि का संग नहीं। दीक्षा लेनेवाले थे, उसमें सुना ऐसा। यह तो मार्ग दूसरा है। वे बेचारे रुक गये। बहुत भला व्यक्ति है। शान्तिसागर नाम है।

**भावार्थ :- जिनदीक्षा लेकर कुसंगति करे,...** कुसंगति करे, जिस-तिस का संग

करे। आहाहा! **विकथादिक करे और प्रमादी रहे तो दीक्षा का अभाव हो जाये,...** आहाहा! दीक्षा ही रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसमें दीक्षा की शिक्षा तो आनन्द की अन्दर मिले। भगवान आनन्द के स्वभाव से भरपूर दरबार है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से भरपूर दरबार है। उस दरबार में जो प्रविष्ट हुआ, उसे ऐसे कुसंग किसके हों? आहाहा! जिसे परमात्मा का संग हुआ। आहाहा! परमात्मा स्वयं ही है, उसका जिसे पेट हृदय में—ज्ञान में मिला। आहाहा! उसके—राग के संगरहित चीज़ का जहाँ संग हुआ। आहाहा! उसे ऐसे कुकथा और विकथा के संग कैसे हों? आहाहा!

भाई! चारित्र तो गजब बातें, भाई! एक क्षण चारित्र, क्षण चारित्र मुक्ति को दे। ऐसी चारित्रदशा उसे लोगों ने कुछ का कुछ विकृत कर डाला। वेशधारी इकट्ठे किये और माना कि हमने दीक्षायें दीं। यशोविजय भी कहते हैं उनमें, हों वे! 'ज्यम ज्यम बहुसुत बहु जन परवरियो, बहु शिष्ये परवरियो तेम तेम जैनशासननो वेरी। जो नवी निश्चय दरियो' निश्चय आनन्दस्वरूप भगवान का जिसे ज्ञान नहीं, उसकी जिसे गम्भीरता का भान नहीं, वह तो दीक्षा लेकर जैन के वैरी हैं। आहाहा! छठवें ठाणे में हैं। छठवें ठाणे में है। छह बोल हैं। कहो, यह वस्त्रसहितवाले ऐसा कहते हैं। यहाँ तो वस्त्र न हो, उनके मुनिपने में ऐसी दशा होती है। वस्त्र रखे, उसे मुनिपना हो सके नहीं। यह तो और बेचारे ऐसा कहते कि हम तो भाई संवेगपक्षी नहीं? हम साधु नहीं। दिमागवाला व्यक्ति। लगा कि साधुपना ऐसा नहीं। हम संवेगपक्षी हैं। आहाहा! क्या करे? जाना कहाँ? ऐसी बात सुनी यों ही, हों! कोई कहता था डभोई में। अन्तिम स्थिति में कुछ दूसरा कहने लगा। मार्ग ऐसा... वह तो है नहीं। यहीं का यहीं रह गया अब। होशियार व्यक्ति हो, मस्तिष्क कुछ ऐसा हो, तब यह क्या ऐसा? इसमें कुछ भासता तो नहीं, यह वस्तु शान्त और आनन्द। यह क्या है यह? यह सब घेराव किसका यह सब? अतीन्द्रिय आनन्द की चीज़ तो भासित नहीं होती। वह ज्ञान में आती नहीं और यह क्या चीज़ तब? यह क्या चीज़? आहाहा! ऐसा तो विचार मध्यस्थ होकर आना चाहिए न?

अरे! ऐसा बोले कि कुदेव को देव माने तो मिथ्यात्व; कुगुरु को गुरु माने तो मिथ्यात्व; गुरु को कुगुरु माने तो मिथ्यात्व। परन्तु किसे कहना कुगुरु, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर। कहा न, देखो न जिनदेव

ने यह कहा। '**पव्वज्जा एरिसा भणिया**' भगवान के कथन में ऐसा आया है। आहाहा! भगवान की वाणी में। इससे दूसरा कोई भगवान की वाणी में है ही नहीं। आहाहा!

**दीक्षा का अभाव हो जाये, इसलिए कुसंगति निषिद्ध है। अन्य भेष की तरह यह भेष नहीं है।** आहाहा! **यह मोक्षमार्ग है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागता जिसे प्रगटी है। **अन्य संसारमार्ग है।** देखो भाषा! यह तो मोक्षमार्ग है, प्रभु! चारित्रदीक्षा, वह तो मोक्षमार्ग है। आहाहा! परन्तु यह सुनने को मिला नहीं कितने को तो। सुनने को मिला नहीं। आहाहा! 'विरला जाने तत्त्व को, विरला सुने कोई। विरला धारे कोई।' बात फेरफार हो गया है बेचारे को। संसार के कारण मानो खाना, पीना, कमाने में जाये। साधारण व्यक्ति हो उसे दो-पाँच-दस यह महँगाई। आहाहा! महँगाई, वह महँगाई। जिसके पास है, उसे तो ठीक, परन्तु बेचारे मजदूर हों, उन्हें तो फिर मजदूरी करे, उसे अच्छा मिले। पाँच-पाँच रुपये मिले। परन्तु घर में चार-छह व्यक्ति, एक ही कमानेवाला, दो-ढाई का वेतन। क्या करे उसमें? आहाहा! इस महँगाई का पार नहीं होता। उसमें वह रुके, उसमें यह सुनने का उसे कहाँ मिले? और यह विचार करने का कहाँ मिले उसे? आहाहा! ऐसे के ऐसे भव इसने अनन्त व्यतीत किये। समझ में आया?

यह तो मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहते हैं, देखो न! आहाहा! जिसे राग से भी पृथक् करके जिसने आत्मा की प्राप्ति की है और अस्थिरता छोड़कर शान्ति विशेष प्राप्त की है। वह मोक्षमार्ग है। उसे तो असंग प्रभु का संग होता है। ऐसे कुसंग और विकथा होते नहीं। बाकी तो सब संसारमार्ग है। आहाहा! मिथ्यात्वमार्ग है। जिसकी श्रद्धा में यह वस्त्र और मुनिपना मानते हैं, वे सब मिथ्यात्वमार्ग के संसारमार्गी भटकनेवाले हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई!

★ ★ ★

## गाथा - ५८

**आगे फिर विशेष कहते हैं :—**

**तववयगुणेहिं सुद्धा, संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।**
**सुद्धा गुणेहिं सुद्धा, पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५८॥**

भगवान ने प्रव्रजया तो इसे कहा। आहाहा!

**अर्थ :- जिनदेव ने प्रव्रज्या इस प्रकार कही है कि—तप अर्थात् बाह्य-अभ्यन्तर बारह प्रकार के तप...** जिसे होते हैं। इच्छा निरोध करके अमृत के आनन्द के प्रतपन से जिसे शोभा बढ़ती हो अन्दर। आहाहा! अनन्त गुण से विराजमान प्रभु, उसके अनन्त गुणों की परिणति जहाँ शुद्ध हो गयी। ऐसी इच्छा निरोधरूपी तपस्या जिसे होती है। वह तप, हों! जिस तप में अतीन्द्रिय आनन्द के अन्तर में से ऊफान आवे। आहाहा! वह तप कहलाता है। यह सब अपवासादि तो लंघन है। गिरधरभाई! यह तुम्हारे सत्याग्रही सत्याग्रह करते हैं यह। कार्यकर्ता सत्याग्रह करे। करो यह सत्याग्रह इसका, चलो। आहाहा! सत्याग्रह (अर्थात्) सत्य का आग्रह। आहाहा! उसमें वापस देश की सेवा करते हैं। देश की सेवा यह कार्यकर्ता सब माने इकट्ठे होकर। वह नहीं कहते थे? पहले आत्मा का, फिर दूसरे का, फिर तीसरे का, फिर आत्मा का। ऐसी चार बातें की थीं। ठीक कहा, गप्प मारते हैं यह। आहाहा! कौन दूसरे का करे? अरेरे! ऐसे के ऐसे जगत में भटकनेवाले प्राणी। ऐई!

यह तो सब उघाड़ा हो, ऐसा है। बोलते थे यहाँ। रामजीभाई बैठे थे। रामजीभाई उनके गुरु। पहले तो इनके पास सीखे हैं। रामजीभाई से सीखे हैं ... उस समय रामजीभाई इनके गुरु कहलाते थे। कहते, पहले लोग कहते। यहाँ तो सुनी हुई बात है न। अपने कहाँ देखने गये हैं? ऐई! सेठ! यह पैसे-बैसे का देखने गये हैं? लोग कहे, वह सुनते हैं। वे कहते थे तब। और तब मानते थे भाई, हों! अब जरा फेरफार हो गया। रामजीभाई बैठे और कहा, ऐसा बोलते हैं? रामजीभाई क्या कहते हैं वह देखने का... बोलते हैं इतना। पहले आत्मा का, फिर दूसरा दूसरे का, तीसरा तीसरे का। फिर ऐसा कहे। दो दूसरे का बोले। फिर चौथे नम्बर में अन्त में मरण हो तब अपना। आहाहा!

अरे! कौन पर का करे? आहाहा! ऐसे के ऐसे। भटकाऊ जीव हैं न! गिरधरभाई!

**मुमुक्षु :** .... अभी अनुभव हो गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है न। आहाहा! (संवत्) १९९५ में आते थे तो क्या? वहाँ पीछे बैठते थे। राजकोट चातुर्मास था न ९५ में हमारा। वहाँ उनकी कुछ गिनती नहीं थी ढेबरभाई की। सभा भरे तो पीछे बैठे। अन्त में वे आवें दस मिनिट। वे उनके काम के लिये आवे बेचरभाई का। वह दुकान का था न, क्या कहलाता है? ८० दुकानें कुछ। उनके लिये।

**मुमुक्षु :** ....दुकान के लिये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वे आते थे। ९५ की बात है। चातुर्मास था न। पीछे बैठे अन्त में आकर। कुछ नहीं। बीच में गिनती... हो गया कुछ। ऐसा का ऐसा संसार। अरे! बापू! तेरी पदवी जहाँ आत्मपदवी न मिले, वहाँ तक की सब पदवी निरर्थक है। आहाहा! कहो, धीरुभाई! अभी इसे—लड़के को देरी है, कहते हैं। दो वर्ष। कल पूछा था। चेतन को दो वर्ष की देरी है। आहाहा! किस क्षण में हार्ट बैठ जायेगा और देह का छुटकारा हो जायेगा। तुझे और मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। जा।

कहते हैं कि दीक्षा, उसे तो मोक्ष का कारण जो मोक्षमार्ग है, वह मोक्षमार्ग दीक्षा का होता है। दीक्षा अर्थात् जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की दशा प्रगट हुई है। उसे ऐसे तप, संयम और व्रतादि होते हैं। व्रत—पंच महाव्रत। सम्यक् आत्मा के अनुभवसहित बाह्य नग्नदशा में उसे ऐसे पंच महाव्रत का विकल्प होता है। यह अज्ञानी को पंच महाव्रत जो कहते हैं, वह पंच महाव्रत है ही नहीं। समझ में आया?

**और गुण अर्थात् इनके भेदरूप उत्तरगुणों से शुद्ध हैं।** पंच महाव्रत के भेदों में उत्तरगुण, ऐसे कहते हैं। क्षमादि ऐसे गुण से शुद्ध है। **संयम—इन्द्रिय-मन का निरोध,...** पाँच इन्द्रिय और मन का रुक जाना है वहाँ। आत्मा में आनन्द में जिसकी क्रीड़ा है। आहाहा! इन्द्रिय, मन का निरोध **छह काय के जीवों की रक्षा,...** पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस—छह काय। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। इन किन्हीं प्राणियों को नहीं मारना। एक दाना हरितकाय का भी घात न करे,

एक पानी की बूँद भी उसके लिये की हो तो न ले। आहाहा! पानी की बूँद एक की हो, गर्म पानी महाराज को, आये हैं गाँव में। आहाहा! वह जीव घात होते हैं। पानी की बूँद में असंख्य जीव हैं। उन जीव को वह न मारे। जीव की रक्षा करे। रक्षा का अर्थ न मारे, ऐसा। समकितसहित प्रव्रज्या होती है, ऐसा कहते हैं।

**तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण निश्चय-व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन...** दोनों होते हैं। यह भगवान आत्मा की पूर्णता, शुद्धता के अन्दर सम्यक् अनुभव की दृष्टि होकर जो सम्यक्त्व हुआ हो, वह निश्चय समकित। आहाहा! यह तो मात्र व्यवहार समकित का भी ठिकाना नहीं होता। यह तो निश्चय परमानन्दस्वरूप भगवान पूर्ण पवित्र का पिण्ड आत्मा, उसकी पवित्रता के भान में प्रतीति, उसके भान में अन्तर में प्रतीति, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, उसे यहाँ निश्चय समकित कहते हैं। उस प्रव्रज्या में निश्चय समकित होता है और न हो तो वह प्रव्रज्या नहीं कहलाती, ऐसा कहते हैं। **व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन...** साथ में देव-गुरु-शास्त्र, भगवान के कहे हुए देव, उन्होंने कहे हुए गुरु और उन्होंने कहे हुए सिद्धान्त कि उनका कहा हुआ अहिंसा धर्म—उसकी जिसे श्रद्धा होती है। वह शुभविकल्प है। निश्चय सम्यग्दर्शन, वह पूर्ण स्वरूप की प्रतीति, वह निर्विकल्प है। वह वीतरागदशा है। निश्चय सम्यग्दर्शन, वह वीतरागदशा है। आहाहा! और व्यवहार सम्यग्दर्शन देव, गुरु भगवान ने कहे, वे देव-गुरु-शास्त्र, हों! जिनवचन में जो देव-गुरु-शास्त्र आये, उनकी जिसे श्रद्धा हो उसे शुभराग, उसे व्यवहार समकित कहते हैं। निश्चय-व्यवहार दोनों कहा है न यहाँ तो? '**सम्मत्त**' है न यहाँ? '**संजमसम्मत्तगुण-विसुद्धा**' ऐसे सम्यग्दर्शनसहित होते हैं।

**इनके गुण अर्थात् मूलगुणों से शुद्ध,...** है। लो! यह सब सम्यग्दर्शनादि, उसमें मूलगुण से शुद्ध होते हैं वापस। चारित्र है, उसमें अट्ठाईस मूलगुण होते हैं। उनके लिये (बनाया हुआ) आहार ले नहीं; खड़े-खड़े आहार इत्यादि। अदन्तधोवन, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण होते हैं, ऐसे गुणसहित होते हैं। प्रव्रज्या। **अतिचाररहित निर्मल है...** उसे अतिचार दोष नहीं होते। जिसे आत्मज्ञानसहित निर्मलदशा प्रगटी है, वे सन्त जंगल में नग्नरूप से विचरते हैं, उन्हें अतिचाररहित चारित्र होता है। **प्रव्रज्या के गुण कहे, उनसे शुद्ध है,...** जो प्रव्रज्या के—चारित्र के ऐसे गुण कहे। उनसे वे शुद्ध होते हैं। **वेशमात्र ही**

**नहीं है...** अकेला नग्नपना अंगीकार किया, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। यह वस्त्र का वेश, वह तो वेश ही नहीं। वह तो जैन का वेश ही नहीं। परन्तु नग्नपना जो वेश है, (ऐसा) अकेला वेश नहीं। उसके अन्दर ऐसी दर्शनसहित की चारित्र प्रव्रज्या होती है। आहाहा! यह एक कमाने के लिये देश छोड़कर परदेश में जाये। सगे-सम्बन्धियों को छोड़कर परदेश में जाये। जाते हैं या नहीं यह? वढ़वाण छोड़कर वहाँ मुम्बई। सगे-सम्बन्धी, मौसी, फूफा, बुआ। आहाहा! उसके लिये कुछ... करने की कुछ तैयारी करनी पड़े या नहीं? इन सबका संग छोड़कर कमाने के लिये। वापस वह पुण्य हो तो मिले वहाँ। और यहाँ तो पुरुषार्थ से प्राप्त हो ही। आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र पुरुषार्थ से प्राप्त हो ही। वह अपनी चीज़ है। आहाहा! उस चीज़ की कीमत नहीं और बाहर की चीज़ की (कीमत)।

जिसे आत्मगुण की प्रतीति और भान हुआ, उसे आत्मा की कीमत हुई। उसे पुण्य के परिणाम और बाह्य के नग्नवेश की भी कीमत उड़ गयी है। हो, कीमत नहीं। समझ में आया? सच्चिदानन्द प्रभु निर्विकल्प शान्तसागर आत्मा का जिसे भान होकर प्रव्रज्या हुई है। आहाहा! उसे कहते हैं कि पर के साथ सम्बन्ध नहीं रहता। वेशमात्र अकेला नहीं, ऐसा। अन्दर पवित्रता प्रगट हुई है। आहाहा! **इस प्रकार शुद्ध प्रव्रज्या कही जाती है।** लो! ऐसी प्रव्रज्या को भगवान ने दीक्षा कही है। **इन गुणों के बिना प्रव्रज्या शुद्ध नहीं है।** निश्चय सम्यग्दर्शन, व्यवहार सम्यग्दर्शन और इस प्रकार के गुण न हों तो उसे प्रव्रज्या नहीं कहा जाता। प्रव्रज्या शुद्ध नहीं अर्थात् प्रव्रज्या ही नहीं वह। आहाहा! यह तो दीक्षा ऐसी सस्ती कर डाली। दस-दस वर्ष की लड़किया मूँडकर।... सामने नहीं थी? दस वर्ष की, बारह वर्ष की लड़की थी। यह दीक्षा। आहाहा! प्रभु! उस बेचारी को खबर भी नहीं कि आत्मा कौन कहलाता है और सम्यग्दर्शन क्या कहलाता है। आहाहा!

**भावार्थ :- तप व्रत सम्यक्त्व इन सहित...** देखो! **और जिनमें इनके मूलगुण तथा अतिचारों का शोधना होता है, इस प्रकार दीक्षा शुद्ध है। अन्यवादी तथा श्वेताम्बरादि...** श्वेताम्बर आदि। श्वेताम्बर, स्थानकवासी वे सब। **जैसे कहते हैं, वह दीक्षा शुद्ध नहीं है।** वह दीक्षा सच्ची है नहीं। गिरधरभाई! ऐसा है। तुम्हारी भतीजी पड़ी

है उसमें। पहले तो सुनती थी तब (संवत्) १९९९ में अमरचन्दभाई की। वह पड़ी वापस। आहाहा! दिगम्बर में से श्वेताम्बर निकले। ६०० वर्ष में भगवान के बाद। उसमें से यह स्थानकवासी तो अभी ५०० वर्ष पहले निकले।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं पुराने अब। और उसमें फिर तुलसी तेरापंथी तो अभी निकले २०० वर्ष। वे कहते हैं, वह दीक्षा-बीक्षा सच्ची है नहीं। ऐसे वीतरागमार्ग में ऐसा है। उसकी पहिचान कराने, श्रद्धा करने के लिये यह पहिचान बात की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक-०५-०१-१९७४
गाथा - ६०, प्रवचन-८१

यह बोधपाहुड़ है। अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़। उसकी ६०वीं गाथा। ५९ हो गयी है।

★ ★ ★

गाथा - ६०

**आगे बोधपाहुड़ को संकोचते हुए आचार्य कहते हैं :—**

**रूवत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।**
**भव्वजणबोहणत्थं छक्कायहियंकरं उत्तं ॥६०॥**

ग्यारह बोल कहे उसमें। आयतन— धर्म के स्थान। धर्म का स्थान तो आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम। आहाहा! वह वास्तव में धर्म का आयतन स्थान है। बाहर के आयतन तो वह व्यवहार है। मुनि को ही यहाँ आयतन कहा गया है। निर्ग्रन्थमुनि— दिगम्बर मुनि हैं। इसके अतिरिक्त मुनिपना जैनदर्शन में नहीं कहा जाता। बाह्य में निर्ग्रन्थ हैं, वस्त्र और पात्ररहित हैं, माता से जैसा जन्मा, वैसा उनका रूप है। अन्तर में जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई है। आत्मा का जो वीतरागस्वरूप, उसके आश्रय से जिसे वीतरागता, निर्ग्रन्थता निर्दोष आत्मभूमि में वीतरागदशा प्रगट हुई है, उसे—मुनि को यहाँ आयतन कहा गया है। वह धर्म का स्थान है, ऐसा कहते हैं। बाहर के धर्म के स्थान वह तो सब व्यवहार से कहा जाता है। वास्तविक धर्मस्थान यह आत्मा है। कहो, समझ में आया?

उसमें भी जिनप्रतिमा, जिनमुद्रा, चैत्यगृह, वे सब आत्मज्ञान में, आत्मा आनन्द में गिनने में आये हैं। यह जिनप्रतिमा है, वह तो व्यवहार है। वह तो एक शुभभाव निमित्त है। जिनप्रतिमा तो आत्मा... पुण्य और पाप के रागरहित आत्मा की चीज़ है,

ऐसी चीज़ की दृष्टि करके जिसने वीतराग निर्ग्रन्थदशा अन्तर में प्रगट की है, उसे जिनप्रतिमा कहते हैं। समझ में आया?

**अर्थ :- जिसमें अन्तरंग भावरूप अर्थ शुद्ध है...** अर्थ-अर्थ। ऐसे ११ बोल हैं न! पहले आ गये सब। तीर्थ भी यह आत्मा है। बाह्य के तीर्थ तो व्यवहार गिनने में पुण्यभाव का कारण है। धर्म की पवित्रता का तीर्थ तो भगवान आत्मा स्वयं है। आहाहा! असंख्य प्रदेशी प्रभु, ऐसे अनन्त गुण का धाम, उसकी जिसने खिलावट करके पर्याय में जिसने तिरने का उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसने प्रगट किया है। निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय ज्ञान और निश्चय वीतरागता—ऐसी दशा जिसने प्रगट की है, वह स्वयं तीर्थस्वरूप है। समझ में आया? लोग अकेले बाहर में मानकर बैठे हों, उसे उत्थापित करते हैं। बाहर में जहाँ यह सब तीर्थ और प्रतिमा, वह सब बाहर की चीज़ है। उसमें भी वास्तविक व्यवहार जो होना चाहिए, वह भी नहीं।

इसलिए आचार्य कहते हैं **जिसमें अन्तरंग भावरूप अर्थ शुद्ध...** यह आत्मा। अर्थ अर्थात् आत्मा। शुद्ध आनन्दघन प्रभु, जिसका रूप शुद्ध है। पवित्र है, वीतरागता है। निर्विकल्प आनन्द की अनुभवदशा में जो स्थित है, उन्हें अन्तरंगभावरूप शुद्ध पदार्थ आत्मा कहा जाता है। आहाहा! यह देहादि तो जड़ है। कर्म जड़ है। अन्दर पुण्य और पाप के भाव हों, वह भी कहीं जीव का स्वरूप नहीं। **जिसमें अन्तरंग भावरूप अर्थ...** अन्तर में आत्मा शुद्ध ज्ञानघन, आनन्दकन्द प्रभु, उसकी जिसे अन्तर में निर्मलता, निर्दोषता, वीतरागता, निर्विकल्पता प्रगट हुई है, उसे शुद्ध पदार्थ कहते हैं, उसे शुद्ध मुनिपना कहते हैं। समझ में आया?

**ऐसा ही रूपस्थ...** जैसा अन्तर में राग के विकल्प से रहित चैतन्यबिम्ब प्रभु आत्मा जिसने प्रगट किया, यह तो उन भावलिंगी सन्त की बात है। समझ में आया? भगवान ने ऐसा कहा था, वह यह कहा है, ऐसा कहते हैं। आगे कहेंगे न, देखो न! **'जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं'** जिनमार्ग में जिनवर ने ऐसा कहा है। समझ में आया? **'जिणमग्गे'** जैनमार्ग। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा अरिहन्तदेव ने जैनमार्ग में **'जिणवरेहिं'** जिनवर ने ऐसा आत्मा का स्वरूप और मुनिपना और निर्ग्रन्थदशा कहा है। समझ में आया? **ऐसा ही रूपस्थ अर्थात् बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्ग में**

**जिनदेव ने कहा है...** जिनकी नग्नदशा होती है। समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई!

भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में श्वेताम्बर पंथ निकला। उन्होंने यह वस्त्रसहित मुनिपना मनवाया, शास्त्र कल्पित किये, उससे यह दूसरी बात है, प्रभु! भगवान ने तो ऐसा कहा है। जिसकी अन्तरदशा वीतराग हो और बाह्य दशा माता से जन्मा ऐसा जिसका रूप हो। वीतरागी प्रतिबिम्ब पड़ा हो उसमें से। ऐसा बाह्यस्वरूप जिसकी निर्ग्रन्थ वीतरागदशा। **जैसा जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा है, वैसा छह काय के जीवों का हित करनेवाला...** छह काय के जीव का हित करनेवाला है। छह काय के जीव हैं न पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय नहीं आता? वजुभाई! इच्छामि पडिकम्मा। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिया, पृथ्वीकाय, पानी, अग्नि, वायु के जीव हैं। एक-एक कण में पृथ्वी का एक कण हो इतना तो उसमें असंख्य जीव हैं। वस्तु है। माने, न माने, वह अलग बात है। पानी की एक बूँद लो तो उसमें ऐसे असंख्य जीव हैं। यह आत्मा ऐसे ही वे आत्मा हैं। वस्तुरूप से तो शुद्ध आनन्दकन्द वे भी हैं। पर्याय में अन्तर है। आहाहा!

अग्नि का कण लो तो असंख्य जीव हैं उसमें एकेन्द्रिय। ऐसे वायु, ऐसे वनस्पति यह हरितकाय। नीम आदि। एक कणी में असंख्य जीव हैं। और एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। और काई, आलू, शक्करकन्द (के) एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। वे सब छह काय के जीवों के हित के लिये यह बनाया हुआ है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! छह काय के जीवों का हित करनेवाला मार्ग....

**भव्य जीवों के सम्बोधन के लिये कहा है।** यहाँ तो भव्य जीव लिये हैं। पाठ है न '**भव्वजणबोहणत्थं**' जो लायक प्राणी समझने के, श्रद्धा के योग्य है, उनके लिये यह कहा है। '**भव्वजणबोहणत्थं**' भव्य जीव के बोध के लिये। **इस प्रकार आचार्य ने अपना अभिप्राय प्रगट किया।** कुन्दकुन्दाचार्य महाराज तीसरे नम्बर में जो हैं। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। तीसरे नम्बर में हैं। जो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। मैंने भव्य जीव के सम्बोधन के लिये जिनवर ने जिनमार्ग में निश्चय प्रतिमा, निश्चय मुद्रा, निश्चय निर्ग्रन्थस्वरूप, निश्चय तीर्थ, छह काय के हित

करनेवाला स्वरूप जो मुनिपना, उसे मैंने भगवान के शास्त्र से जानकर जगत को कहा है। परम्परा आचार्य का कथन है, उसमें से यह कहा हुआ है, कहते हैं। सूक्ष्म बात है।

**भावार्थ :- इस बोधपाहुड़ में आयतन आदि से लेकर प्रव्रज्या...** प्रव्रज्या— साधुपना कैसा? पहले आयतन था। धर्म का स्थान तो वह भगवान आत्मा स्वयं है। कहो, समझ में आया? धर्म का स्थान आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसका जिसे भान होकर प्रव्रज्या अर्थात् निर्ग्रन्थदशा प्रगट हुई है। उसे यहाँ धर्म के स्थानकरूप से वर्णन करते हैं कि यह उपाश्रय और यह देरासर और यह मन्दिर और यह सब तो बाह्य की बातें हैं। अन्तर धर्मस्थानक तो यह आत्मा है। समझ में आया? वह भी प्रगट हुई दशावाले को लिया है। आहाहा! उसे ही लिया जाये। वस्तुरूप से तो अनन्त जीव परमात्मा जैसे ही हैं, सब जीव निगोद के एकेन्द्रिय आदि। आत्मा तो परमात्मास्वरूप जैसे ही हैं। यह तो पर्याय में अन्तर है। तो जिसकी पर्याय में, अवस्था में आत्मा आनन्द का उछाला मारता हुआ प्रगट हुआ। आहाहा! मुनिपना अलौकिक बात है, भाई! इस काल में मुनिपना देखना, वह तो मुश्किल; परन्तु मुनिपना कैसा होता है, वह सुनना मुश्किल है। आहाहा! समझ में आया? जिसे जिनवरदेव परम्परा में कहे हुए भद्रबाहुस्वामी पाँचवें (श्रुत) केवली—श्रुतकेवली के नाम आयेंगे अभी। पाँचवें श्रुतकेवली ने कहा हुआ था और उनके शिष्य विशाखाचार्य ने धारण किया था, उनकी परम्परा से कुन्दकुन्दाचार्य को मिला था। आहाहा! समझ में आया? उन्होंने ऐसा कहा है, कहते हैं। प्रव्रज्या की व्याख्या बहुत आयी। बहुत, ओहोहो!

जिसे वस्त्र का दान न हो, वह वस्त्र दूसरे को दे। वस्त्र रखे नहीं तो दे किसे? आहाहा! सोना, हीरा, माणिक चीज़ ही न हो जहाँ। वस्त्र का धागा न हो। आहाहा! वीतराग जैनमार्ग का दर्शन। दर्शन की व्याख्या आयी वहाँ। ११ बोल में दर्शन भी कहा है। १४वीं गाथा में आया। जैनदर्शन उसे कहते हैं। आहाहा! कि जिसकी निर्ग्रन्थदशा। बाह्य में वीतरागमुद्रा और अन्तर में वीतरागदशा प्रगट हुई है। बाह्याभ्यन्तर आया था न १४वीं गाथा में। उसे जैनदर्शन कहते हैं। सूक्ष्म बात, भगवान! बाकी जो बाहर भेद पाड़कर बैठे हैं, उसे जैनदर्शन वीतराग नहीं कहते। है १४वीं गाथा है न, देखो! १४वीं। दर्शन है न! दर्शनपाहुड़ की १४वीं और इस बोधपाहुड़ की १४वीं (गाथा)। दोनों।

'**दुविंह पि गंथचायं**' है १४वीं गाथा ? '**तीसु वि जोएसु संजमो ठादि। णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥**' यह सब भगवान त्रिलोकनाथ के वचन हैं। आहाहा! क्या अर्थ किया ? **जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग...** अभ्यन्तर में राग की एकता का त्याग और बाह्य में वस्त्र का त्याग। ऐसा जो अन्तर-बाह्य मुनिपना। **और मन-वचन-काया, ऐसे तीनों योगों में संयम हो...** जिसे छह काय के किसी भी प्राणी को मारने का विकल्प उठता नहीं। विकल्परहित जिसकी दशा, निर्विकल्पदशा। आहाहा! सूक्ष्म बात है। और **कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों, वह ज्ञान हो,...** आहाहा! सर्वज्ञ भगवान ने जो ज्ञान कहा, उससे विरुद्ध कोई भी ज्ञान हो जगत के प्राणी कहनेवाले, उसकी करण, करावन, अनुमोदन से जिसकी प्रशंसा—खोटे ज्ञान की (प्रशंसा) करता नहीं। जरा सूक्ष्म बात है, हों! श्वेताम्बर पंथ निकला हुआ न, उसकी अपेक्षा से बात है। सूक्ष्म बात, भाई! उनके कहे हुए ज्ञान को अनुमोदे नहीं मन, वचन और काया से।

**निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे ऐसा,...** निर्दोष आहार। उनके लिये बनाया हुआ आहार ले नहीं। और **खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे,...** खड़े-खड़े हाथ में आहार। **इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।** उसे यहाँ जैनदर्शन कहा जाता है। समझ में आया ? इससे विरुद्ध जितने पंथ निकले जैन में उन्हें भी, जैन परमात्मा कहते हैं कि हम जैनदर्शन नहीं कहते। बहुत कठिन बातें। 'वाडा बाँधकर बैठे रे अपना पंथ करने को।' आहाहा! मार्ग अलग है, भाई! परन्तु इतना तो विचार करो कि हमने इतने-इतने वर्ष (के पश्चात्) परिवर्तन किया तो कुछ कारण होगा या नहीं ? ऐई! वजुभाई! यह सब हमारे पुराने हैं। वजुभाई और ये। ८५ में लाभ बहुत लेते थे, नहीं ? कितने वर्ष हुए ? १५ और ३० = ४५ हुए। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

कहते हैं, जिसकी निर्ग्रन्थदशा ऐसी दिखाई दे बाहर में एकदम एक वस्त्र का धागा नहीं। अन्दर में राग का कण नहीं। ऐसी जिसकी मुद्रा उसे परमात्मा त्रिलोकनाथ ने जैनदर्शन कहा है। इसके अतिरिक्त जो कुछ बाह्य से माने, उसे भगवान के शासन में जैनदर्शन कहा नहीं। बात ऐसी है, भाई! श्वेताम्बर पंथ भगवान से ६०० वर्ष में निकला। शास्त्र बनाये। सब कल्पित शास्त्र हैं। भगवान के कहे हुए नहीं। ३२ और ४५ सब,

कल्पित-कल्पित हैं। वस्तु वह यहाँ कहते हैं, भाई हों! कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार यह है। भाई! सत्य चाहिए हो तो यह है। भव्य जीव के सम्बोधन के लिये यह बात है। आहाहा! भूले पड़े प्राणी संसार में, उनकी भूल टालने के लिये यह बातें भगवान ने की हैं। समझ में आया? आहाहा!

**यहाँ दर्शन अर्थात् मत है; वहाँ बाह्य वेश शुद्ध दिखाई दे, वह दर्शन...** शुद्ध निर्दोष। नग्नपना दिगम्बर। कुछ नहीं होता। ऐसी दशा और अन्तर में वीतरागदशा। **अन्तरंग भाव को बतलाता है। वहाँ बाह्य परिग्रह अर्थात् धन्य-धान्यादिक और अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व-कषायादि,...** लो! अन्तरंग परिग्रह। राग, पुण्य के भाव मेरे, यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव हो, वह राग। वह राग मेरा, यह मिथ्यात्वभाव है। यह मिथ्यात्व परिग्रह है, ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! बापू! जैनदर्शन को समझना भारी। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो मार्ग कहा, उसे समझना बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा, उसमें से दो पंथ निकले श्वेताम्बर। उसमें से यह स्थानकवासी अभी निकले ५०० वर्ष पहले। वह श्वेताम्बर में से निकले हुए हैं। समझ में आया? इससे यहाँ भगवान आचार्य कहते हैं, अरे!

दिगम्बर मूर्ति। लो, है न? **यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो,...** आहाहा! राग का कण भी, यह पुण्य का, व्रत का विकल्प उठे, पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह भी राग है, भाई! यह सूक्ष्म बातें, भाई! यह राग मेरी चीज़ है और मुझे लाभदायक है, उसे मिथ्यात्व का महा अनन्त का पाप परिग्रह का लगता है। समझ में आया? रात्रि में बात की, तब तुम याद आये थे। कहा था। एक बात निकली, उसमें याद किया था। मैंने कहा यह कहाँ...

यहाँ तो क्या कहा? आहाहा! कि प्रभु का मार्ग तो यह है, भाई! उन्होंने बिगाड़ा उसे सच्चे मार्ग का विश्वास लाना भी कठिन पड़े, ऐसा है। आहाहा! उसमें से बात थी। एक था साधु बाबा। उसने घोड़ा लिया, बहुत सुल्तानी घोड़ा। बहुत ऊँचा घोड़ा। तो घोड़े के ऊपर उसे बहुत प्रेम। पुत्र की भाँति सम्हाले। उसमें एक डाकू आया डाकू खड्ग सिंह। खड्क अर्थात् तलवार और सिंह, ऐसा नाम दे तो दिया जा सकता है। खड्ग सिंह कहलाये न? बाबा के पैर छुए, दर्शन किये। घोड़ा देखा वहाँ नजर चिपट

गयी। कहे, ओहोहो! यह घोड़ा। था तो डाकू। ठीक! वे तो फिर चले गये। उसमें वह बाबा रात्रि में घोड़े पर बैठकर घूमने निकले बहुत बार। उसमें वह डाकू रास्ते में, जंगल में... निकले भाई बाबा महन्त। वह गरीब होकर बैठा। अरे! माँ-बाप! मुझे ले जाओ यहाँ से। वह डाकू। उसे उठाकर घोड़े के ऊपर रखा। दया आवे न दया ऐसी। था डाकू। उस घोड़े की नजर रह गयी। उसमें ऊपर चढ़ा साथ में सीधा हो गया चढ़ाया वहाँ। उसने चढ़ाया ऊपर कि यह तो बेचारा कोई गरीब व्यक्ति है। लगाम हाथ में पकड़ी। घोड़े को दौड़ाया। वह बाबा समझ गया कि यह डाकू है। भाई! तेरा घोड़ा यह अब, हों! मुझे घोड़ा नहीं चाहिए अब। कौन कहे? वह बाबा। यह घोड़ा मेरा नहीं, घोड़ा तेरा। वह समझ गया। तू घोड़े से उतर जा। तू जा। परन्तु इतना बोला बाबा, अरेरे! गरीब का विश्वास लोग नहीं करेंगे। समझ में आया? ... परन्तु गरीब का विश्वास लोग नहीं करेंगे। क्योंकि वह गरीब सोचकर लिया न ऊपर। गरीब का विश्वास लोग नहीं करेंगे। यह डाकू ने सुना। उसे भी ऐसा विचार आया। आहाहा! बाबाजी तो ऐसा कहते हैं कि यह घोड़ा तुम ले जाओ। परन्तु वेशरूप से... हाथ पकड़कर मुझे चढ़ाया। तो इस वेश का विश्वास लोगों को नहीं रहेगा। ऐसे के ऐसे होंगे सब? नवनीतभाई! वह रात्रि में घोड़ा वापस छोड़ आया। उसका क्या कहलाता है? तबेला में। छोड़कर थोड़ी देर रोया। आहाहा! अरेरे! मैंने गरीब का विश्वास तोड़ा। गरीब का विश्वास नहीं रहने दिया। वहाँ उसका बाबा रात्रि में घूमने निकला तबेले में... वहाँ वह घोड़ा हिनहिनाया। उसका था सही न। ओहोहो! यह कहाँ से आया? वह कहे, अरे! उसे ... आहाहा! अरेरे..! गरीब का विश्वास अब लोग करेंगे। यह बात आयी थी, तब तुमको याद किया था।

यहाँ ऐसा कहना है, अरेरे! वीतराग के मार्ग को दूसरे प्रकार से कल्पित करके साधुपना मनाया, वह सच्चा साधु का विश्वास कौन करेगा अब? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! साधारण वेश पहनकर, वस्त्र पहनकर साधु मनाया और पाँच महाव्रत का ठिकाना नहीं व्यवहार का। निश्चय दृष्टि तो खोटी ही है। जिसका जैनदर्शनपना प्रतीति जिसकी झूठी है। मुनिपना ऐसा होता है, उसकी खबर नहीं, इसलिए उसकी तो दृष्टि मिथ्यात्व है। और मिथ्यादृष्टिसहित ऐसे बाह्य वेश पहनकर साधु मनाये। अरेरे! सच्चे साधु को कौन मानेगा? ऐई! मलूकचन्दभाई! आहाहा! इसके ऊपर से ऐसा आया

था। उसने तो इतना कहा। मुझे ऐसा लगा कि, आहाहा! ऐसे बाहर के त्यागी तपस्यायें करनेवालों को देखकर लोग साधु मानेंगे, परन्तु वीतराग ने कहा हुआ साधुपना जैनदर्शन, उसे कौन पहिचानेगा? कौन मानेगा? समझ में आया? ठगाई हो गयी। भाई!

यहाँ आचार्य यह कहते हैं। **ज्ञान में विकार करना,...** आहाहा! **निर्दोष पाणिपात्र में खड़े रहकर आहार लेना...** वीतराग के साधु तो अनादि से हाथ में आहार लेते हैं, भाई! मार्ग यह था। यह तो श्वेताम्बर पंथ निकलने के बाद सब गड़बड़ी खड़ी हो गयी। आहाहा! यह पक्ष की बात नहीं, प्रभु, हों! यह वीतरागमार्ग की बात है, भाई!

**मुमुक्षु :** भगवान ने कही है यह बात?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह भगवान ने कही हुई बात है, भाई! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव सीमन्धर भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन सुना। थे तो मुनि दिगम्बर। ऐसे वीतराग परमेश्वर महावीर देव ने जिनमार्ग में, आहाहा! ऐसा दर्शन कहा है। दर्शन यह वीतरागदशा और बाह्य में वीतरागदशा हो, उसे नग्नदशा हो जाती है। नग्नदशा न रहे और वस्त्र हो और मुनिपना हो जाये, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं होता... होता है। मानो, न मानो; जँचे, न जँचे, केवली के सन्देश में तो यह सन्देश आया है, भाई! समझ में आया? आहाहा! अच्छे घर की कन्या का सन्देश आवे तब उसका नारियल ले लेना। नारियल आया हो न अच्छे घर की कन्या का। पचास... नारियल आये परन्तु... उसके घर बड़ा है। इकलौती लड़की है। दो करोड़ की पूँजी है। पचास लाख इसमें देंगे। मर जायेंगे तो डेढ़ करोड़ फिर मिलेंगे। इस प्रकार उसके सम्बन्ध को स्वीकारे। प्रभु कहते हैं कि मेरा सन्देश आया, तुम स्वीकार तो करो, भाई! आहाहा!

निर्ग्रन्थपना ऐसा होता है और मुनिपना ऐसा होता है। जिस शास्त्र में ऐसा मुनिपना नहीं कहा और दूसरे प्रकार से कल्पित किया, वह शास्त्र भगवान ने कहे हुए नहीं हैं। भारी कठिन बातें, भाई! कहो, समझ में आया? कहो फूलचन्दजी! ऐसा मार्ग है यह। इसमें दो मिलाकर समान माने... ऐई! फूलचन्दभाई! आहाहा! अरेरे! काल ऐसा आया कि लोगों के मस्तिष्क घूम गये। उपदेश कोई ऐसा मिला और वह शैली हो गयी। क्या हो? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं।

**इस प्रकार दर्शन की मूर्ति है, वह जिनदेव का मत है,...** वीतराग का मत और शासन यह है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से साधुपना कल्पित किया वस्त्रादि, स्त्री को मुक्ति, स्त्री को साधु, वह जैनदर्शन का मत नहीं है।

**मुमुक्षु :** स्त्रियों को मोक्ष न....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दिया जाता होगा? होवे ऐसा हो। वह एक व्यक्ति कहता था। एक व्यक्ति आया था, नहीं? मन्दिरमार्गी नहीं? बड़ा दलाल दलाल। हरिभाई। अहमदाबाद का बड़ा दलाल था। लाखोंपति सबका बड़ा दलाल। यहाँ आया था। ...भाई बीमार पड़े तब। भगुभाई सुतरिया के भाई। आया था ९२ में। भगुभाई सुतरिया ... गृहस्थ। उनका भाई... वहाँ हम रहे और उसमें बराबर बीमार पड़ा, वहाँ आया था। बराबर सुनने। हम आये तो यहाँ सुनने... तुझे। सब सुनते थे, फिर उनका वह दलाल आया था। फिर इतनी बात की कि बापू! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! फिर बोला, यह स्त्रियों को इकट्ठी करके उन्हें मुक्ति मनवायी... यह वाड़ा बाँधा है हमारे। मन्दिरमार्गी। बापू! ऐसा है, हों! किसी व्यक्ति की बात नहीं, परन्तु सत्य ऐसा है। आहाहा! जिसे सत्य चाहिए हो, उसे दृष्टि पलटानी पड़ेगी। बाकी तो मर जायेगा चौरासी के अवतार में। आहाहा! कहीं इसका अन्त नहीं, बापू, भाई!

यहाँ तो दर्शन की मूर्ति जिनदेव का मत है। आहाहा! उसे दर्शन, जैनदर्शन कहते हैं, जिसे आत्मा में शुद्ध चैतन्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागता प्रगटी है, बाह्य में जिसे अट्ठाईस मूलगुण साधुपने के हैं और बाह्य में यथाजात नग्नदशा है, वह जैन देव का मत है। वह जैनदर्शन है। **वही वन्दन-पूजन योग्य है।** साधुरूप से तो वह वन्दन और पूजने के योग्य है। **अन्य पाखण्ड वेश वन्दना-पूजा योग्य नहीं है।** आहाहा! भारी कठिन लगे, हों! यह तो सत्य है, ऐसा कहा है, इसलिए वहाँ। आहाहा! द्वेष नहीं, किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं। सब भगवान है। परन्तु वस्तु की दृष्टि खोटी और खोटा वेश लेकर साधुपना मनवाया, वह वन्दन-पूजन योग्य नहीं। वह जैनदर्शन नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह १४वीं गाथा है। यह बोधपाहुड़ में १४वीं हैं।

.... अपने गाथा यहाँ ६०। **इस बोधपाहुड़ में आयतन आदि से लेकर प्रव्रज्या...**

अर्थात् साधुपना। आहाहा! अरे! साधु! 'मनुष्य होना मुश्किल है, साधु कहाँ से होय; साधु हुआ तो सिद्ध हुआ।' आहाहा! जो साधु जंगल में विचरते हों, जिन्हें नग्नदशा हो, मनुष्य का पगरव भी न हो वहाँ ध्यान में रहते हों। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग अनादि का यह था। उस मार्ग को यह वर्णन करते हैं। **जैसे जिनदेव ने जिनमार्ग में कहा वैसे ही कहा है।** ऐसा जिनमार्ग में भगवान ने कहा था, वैसा मैंने यहाँ कहा है, कहते हैं। मैंने मेरी कल्पना से कहा नहीं। परम्परा सन्तों की वाणी है। आहाहा! सुनना मुश्किल पड़ जाये। जिसमें ५०-५०, ६०-६०, ७० वर्ष व्यतीत किये हों। ऐई, केशुभाई! बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! दुनिया बाहर से मनवाकर... मार्ग नहीं मिलेगा। उसकी श्रद्धा तो सच्ची कर, ऐसा कहते हैं। श्रद्धा का बड़ा फाँका। आहाहा! यह भी सच्चा और यह भी सच्चा। दोनों नहीं होते। फूलचन्दभाई! श्रीमद् ने इन्हें मान्य रखा है। यह स्वयं अर्थ किये हैं न अभी अगास में। किये हैं न। स्पष्ट लिखा है। वस्त्र... स्वयं लिखा है। '**नग्गे मोक्खो भणियो सेसा उमग्गा**' नग्नपना, वह मोक्ष का मार्ग है, बाकी सब उन्मार्ग है। श्रीमद् ने स्वयं लिखा है। उनके अनुयायियों को रास आवे, ऐसा नहीं।

**मुमुक्षु :** अर्थ करना नहीं आता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा!

**कैसा है यह रूप?—छहकाय के जीवों का हित करनेवाला है,...** आहाहा! छह काय में स्वयं भी आया न? अपना आत्मा का हित करनेवाला है। और एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय किसी भी प्राणी को... कारण तो बाद में कहेंगे भाई! यह मन्दिर होगा, यह होगा, इसमें तो एकेन्द्रिय की हिंसा होगी। ... बापू! भगवान जब न हो, तब उनका व्यवहार शुभभाव (होता है)। वह शुभभाव है, हों! धर्म नहीं। मूर्ति पूजा, भक्ति, यात्रा, वह पुण्यभाव है। संवर धर्म नहीं।

**मुमुक्षु :** परम्परा धर्म होगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परम्परा नहीं। करते... करते... राग करते... करते... कहते थे वह तो कल वाडीभाई। वाडीलाल चत्रभुज आये थे न मुम्बईवाले। कल आये थे। दीक्षित हुए थे न यह भोगीलाल। भोगीलाल भावनगर। वाडीलाल चत्रभुज गाँधी। मुम्बई रहते

हैं न करोड़पति। वे कल आये थे। मैंने कहा, मार्ग बापू! कहे, आहिस्ता आहिस्ता। परन्तु आहिस्ता क्या? सच्चा हो तो आहिस्ता आहिस्ता। सच्चा नहीं, वहाँ आहिस्ता आहिस्ता कहाँ से आया? यह सब बेचारे भ्रमित होकर पड़े हैं। भाई बैठे थे न। नवनीतभाई बैठे थे। बाहर में तो सब हो बहुत प्रकार के। परन्तु आहिस्ता आहिस्ता। परन्तु आहिस्ता सच्चा है ही नहीं वहाँ आहिस्ता कहाँ से लाना? सच्ची श्रद्धा करना हो, सच्चा माना हो, उसे धीरे-धीरे अनुभव और स्थिरता हो, वह अलग बात है। वह तो वहाँ भी... परन्तु जहाँ पूरी श्रद्धा ही विपरीत है, बात ही अलग। जैनदर्शन से विपरीत मान्यता है। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि वस्त्र का धागा रखे तो निगोद में जाये। परन्तु यहाँ एक भगवतीसूत्र में एक-एक साधु को कपड़े के बड़े ढ़ेर लिखे हैं। वह भगवान की वाणी है? मुनि की वाणी है वह समकिती है? गृहीत मिथ्यादृष्टि की, गृहीत मिथ्यात्व की है। आहाहा! भारी कठिन।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... होवे, उसमें से बदलना बहुत कठिन है।

**मुमुक्षु :** हमारे बाप-दादा पागल थे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाप-दादा को भान कहाँ था फिर? वह ... कहा नहीं? आहाहा! सवेरे के दातुन करके, पार्श्वनाथ परचा पूरे। ऐसा कुछ बोलते हमारे घर में पिताजी। कुछ खबर नहीं होती। णमोकार बोले। आहाहा! वस्तु तो ऐसी है, भाई! मान्यता बदले बिना सत्य नहीं मिलेगा। बहुत काल से पंथ निकला। दो हजार वर्ष हो गये। श्वेताम्बर पंथ निकले को दो हजार वर्ष हुए। उसे खबर नहीं कि यह क्या है? यह स्थानकवासी तो अभी निकले अभी। ५०० वर्ष हुए होंगे। श्वेताम्बर में से निकले। दोनों वीतरागमार्ग नहीं, भाई! जैनदर्शन तो यह कहता है। देखो, यह शास्त्र, दो हजार वर्ष पहले के, कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र हैं।

**मुमुक्षु :** यह तो दिगम्बर शास्त्रों को यादगिरि....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बात ... आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसा कहते हैं, हों!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहते हैं। बहुत बातें करे। सम्प्रदाय में बहुत सुनी।

यह तो छह काय की रक्षा जीव की जिसमें... उसमें किसी भी प्राणी को दुःख न हो, ऐसा जैनदर्शन है। आहाहा! मुनिपना। उसकी श्रद्धा तो करो, ऐसा कहते हैं। ...यह निर्ग्रन्थ का प्रवचन और निर्ग्रन्थ का मार्ग यह है। और श्रद्धा बदले बिना उसका कल्याण (नहीं)। तीन काल में चाहे जैसे व्रत पाले और तप करे और मर जाये, सूख जाये। सम्यग्दर्शन की श्रद्धा और अनुभव बिना सब बिना एक के रण में शोर मचाने जैसा है। आहाहा! कहो, नवरंगभाई! ऐसा जैनदर्शन, ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा!

यशोविजय की बात आयी थी कल। सुनी है पहले? उनके गुरु थे न यशोविजय के वे ब्राह्मण गुरु काशी के। बात तो सुनी थी, बहुत वर्ष पहले सुनी थी। ब्राह्मण पण्डित थे न काशी में पढ़े हुए। अब उसमें उसे यशोविजय तो इज्जतवाले हो गये। उसमें वह वहाँ आया हुआ, तो उसे खबर पड़ी कि यशोविजय यहाँ है इस गाँव में। उसके गुरु आये। तो खोजते.. खोजते... खोजते... आये। वहाँ वे यशोविजय व्याख्यान वाँचते थे। वे ऐसे खड़े रहे। मैले वस्त्र। साधारण व्यक्ति न। तो दूसरे किसी ने आदर नहीं दिया और स्वयं ने ऐसे देखा। ओहोहो! यह सरस्वती पुत्र। यशोविजय बोले। कहो। ऐसा कि एक अक्षर भी जो दे, उसका बदला नहीं चुकाया जा सकता। परन्तु कौनसा अक्षर? ऐसे लौकिक। यशोविजय जैसे की ऐसी बात। यह तो सुनी हुई है या देखी हुई है? कल आयी यह। जैनप्रकाश में है। अहो! सरस्वती पुत्र। सामने बैठाया। जो साधु नाम धरावे और मिथ्यादृष्टि का आदर करना अर्थात् कुछ ठिकाना नहीं होता। और बहुत महिमा की। इनके पास मैं सीखा हूँ। ऐसा कुछ। ... कुछ ... बहुत। यह तो सरस्वती के पुत्र हैं। सरस्वती के पुत्र मिथ्यादृष्टि हों ऐसे? फिर लोगों ने—एक व्यक्ति ने और (कहा) ओहो! तुम तो हमारे गुरु के गुरु। ... फिर पूरी सभा उछली। गहनों के ढ़ेर किये। जैनप्रकाश में है। कल आया था। कहो, यह मार्ग कहलाये? अन्यमति मिथ्यादृष्टि को... होवे, इससे करके सच्ची श्रद्धा बिना उसका आदर कैसे किया जाये? ऐसा लेख है और ऐसा ही पहले से सुना है।

**मुमुक्षु :** पाट पर बैठाये थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, पाट पर बैठाये थे। आया है न, उसमें आया है। मैंने भी पहले से सुना है, सुना है। पाट पर बैठाये, सामने बैठाये।

यहाँ तो कहते हैं कि वेशधारी जैन हो, परन्तु जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है और मुनिपना नहीं और मुनिपना मानता है, उसे वन्दन-पूजन नहीं। ऐसा कहा न? आहाहा! १४वीं में, दर्शनपाहुड़।

**जिसमें एकेन्द्रिय आदि असैनी पर्यन्त जीवों की रक्षा का अधिकार है,...** भगवान के मार्ग में तो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय किसी जीव को नहीं मारना... यह रक्षा का अर्थ (कि) नहीं मारना। रक्षा तो किसकी करे? यह अधिकार है। **सैनी पंचेन्द्रिय जीवों की रक्षा भी कराता है और मोक्षमार्ग का उपदेश करके संसार का दुःख मेटकर मोक्ष को प्राप्त कराता है,...** ऐसा। संज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये। कहते हैं कि उसे नहीं मारने का भी कहे और संज्ञी पंचेन्द्रिय को मोक्ष के मार्ग का उपदेश करे। मनवाले प्राणी हैं, उसे वीतराग का उपदेश करे। **संसार का दुःख मेटकर मोक्ष को प्राप्त कराता है,...** आहाहा! संसार, दीक्षा से लेकर राग-द्वेष परिणाम सब संसार। इसलिए राग और पुण्य के भाव को धर्म मानना दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या का भाव, वह सब शुभ-पुण्यभाव, उसे धर्म मानना, वह मिथ्यात्व का परिग्रह महापाप है। आहाहा! ऐसा पाप छुड़ाकर उपदेश करने का कहेंगे। संज्ञी पंचेन्द्रिय को ऐसा उपदेश देते हैं, ऐसा कहते हैं।

**संसार का दुःख मेटकर मोक्ष को प्राप्त कराता है,...** लो! **इस प्रकार का मार्ग ( -उपाय ) भव्य जीवों के सम्बोधने के लिये कहा है।** यह सब उपदेश भव्य जीव को समझाने के लिये, समझने के लिये (कहा है)। **जगत के प्राणी अनादि से लगाकर मिथ्यामार्ग में प्रवर्तनकर संसार में भ्रमण करते हैं,...** अनादि काल से मिथ्यामार्ग, झूठा मार्ग है, सच्चा मार्ग नहीं, उस मार्ग में प्रवर्तन करके संसार में भ्रमण करते हैं। **इसलिए दुःख दूर करने के लिये...** वह राग और द्वेष और मिथ्यात्वरूपी दुःख को टालने के लिये **आयतन आदि ग्यारह स्थान धर्म के ठिकाने का आश्रय लेते हैं,...** लो! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसके सन्मुख देख और उसमें रह, वह धर्म का स्थानक है। आहाहा! कहो, समझ में आया? जगत के प्राणी अनादि से दुःखी हैं, कहते हैं। उसे

धर्म के ग्यारह स्थान बतलाये। आयतन, जिनमुद्रा, जिनप्रतिमा, तीर्थ, अरिहंत की पहिचान दी, दर्शन इत्यादि। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा टालने, सत्य श्रद्धा प्रगट करने, दुःख से मुक्त होने के लिये यह उपदेश किया है, कहते हैं।

**अज्ञानी जीव इस स्थान पर अन्यथा स्वरूप स्थापित करके,...** अज्ञानी ऐसा स्वरूप न जानकर दूसरी जगह धर्म के स्थान (मानते हैं)। आत्मा का स्थान धर्म का छोड़कर दूसरे में धर्म के स्थान एकान्त माने। मानो मन्दिर में भगवान विराजते हैं, यह भगवान होंगे। वे तो व्यवहार भगवान हैं। निश्चय भगवान को यहाँ तो जाना नहीं। समझ में आया? अपना भगवान तीर्थ का नायक स्वयं। आहाहा! अरेरे! ऐसे मार्ग को... कौन देता था? मार्ग तो प्रभु का ऐसा है। मिथ्याश्रद्धा ने घेरा डाला है। घेरा डाला है चारों ओर। उसमें से निकलना कठिन है। मूल वस्तु यह है। बाकी तो ठीक अब, व्रत और तप, वह तो सब अभव्य भी अनन्त बार करता है। मिथ्याश्रद्धा, वह आत्मा के सत्य से अत्यन्त विरुद्ध, उसके त्याग के लिये उसे उपदेश किया है, कहते हैं।

**अन्यथा स्वरूप स्थापित करके, उनसे सुख लेना चाहते हैं, किन्तु यथार्थ के बिना सुख कहाँ?** सच्ची दृष्टि और सच्चे ज्ञान बिना सुख कहाँ से मिले? आहाहा! **इसलिए आचार्य दयालु होकर...** आचार्य महाराज दयालु होकर **जैसे सर्वज्ञ ने कहे, वैसे ही आयतन आदि का...** देखा, सर्वज्ञ ने कहा। वीतराग देव ने यह सब ग्यारह स्थान कहे हैं। **संक्षेप से यथार्थ कहा है? इसको वाँचो, पढ़ो, धारण करो और इसकी श्रद्धा करो।** आहाहा! **इनके अनुसार तद्रूप प्रवृत्ति करो।** इस प्रमाण सम्यग्दर्शन करके, पश्चात् चारित्र की दशा भी इस प्रकार से कही, ऐसी अंगीकार करो। **इस प्रकार करने से वर्तमान में सुखी रहो...** आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा के आनन्दस्वरूप का ज्ञान करके, श्रद्धा करके जो स्थिर होता है, वह वर्तमान में सुखी है। यह (अज्ञानी) तो वर्तमान में दुःखी है आकुलता... आकुलता... आकुलता... यह करना और यह करना... यह करना और यह करना... यह करना और यह करना... वर्तमान में भी दुःखी और उसके फल में भी दुःख है। ऐसा होगा? यह सब तुम्हारे ऐसे बड़े वेतनवाले भी दुःखी होंगे? ... मोटर चले। वे छोड़ने आये थे न मुझे मोटर में, नहीं? उनके घर से।

**आगामी संसार दुःख से छूटकर...** देखो, दो बातें। एक तो अन्दर पुण्य और पाप

के भाव दु:ख हैं और शरीर की क्रिया मात्र जड़ की है और वेश जितना नग्नपना, वह सच्चा है। इसके अतिरिक्त सब खोटा है, ऐसा न माने, उसे वर्तमान में भी मिथ्यात्व के राग का दु:ख है। मिथ्यात्व और राग का उसे वर्तमान में दु:ख है। और धर्मी वर्तमान में मिथ्यात्व के दु:ख से रहित है। आहाहा! मार्ग ऐसा लगे लोगों को। एक तो मानो कुछ यह महँगाई। लोग कमाकर पूरा करते हों बेचारे और उसमें फिर ऐसी बातें सुने तो भड़के, हों! भगवान! भड़के, परन्तु प्रभु! मार्ग तो यह है, हों! जब तुझे सत्य चाहिए हो तो यह सत्य मिलकर ही रहेगा। दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा!

**संसार दु:ख से छूटकर परमानन्दस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करो।** मिथ्याश्रद्धा, वह दु:खरूप है। उसे छोड़कर आत्मा वास्तविक तत्त्व भगवान ने कहा हुआ और भगवान ने कहा हुआ समकित, उसकी बराबर पहिचान दृष्टि करके वर्तमान सुखी होओ और भविष्य में परमानन्द की प्राप्ति करो। आहाहा! दयालु होकर बात की है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** एकदम सरल है। न समझ में आये ऐसा नहीं है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं, यह तो सादी बात है। परन्तु सम्प्रदाय की दृष्टि में बात कठोर हो पड़ी है अभी तो। सम्प्रदाय की दृष्टि छोड़कर अब ऐसे-ऐसे बड़े महाराज हो गये होंगे साधु। ... देखो न! आहाहा! 'एकनु भुल्या दोनुं भुल्या भुल्या सकळ संसार, दास कबीरो एक न भुल्यो जेने अलखनो आधार।' ऐसा आता है। मूर्ति के लिये कहा जाता है। यहाँ कहते हैं कि पूरी दुनिया भूल जा, बापू! सच्ची श्रद्धावाला जीव निकलना, आहाहा! और उसका विश्वास आना कठिन है। यह सब ऐसे भेद पड़े न! गरीब का कौन विश्वास करेगा?

आहाहा! **इस प्रकार आचार्य का कहने का अभिप्राय है।** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है। भाई! तुम सच्ची श्रद्धा करो। सच्ची सम्यग्दर्शन की प्रतीति करो, भाई! आहाहा! मुनिपना तो निर्ग्रन्थदशा और नग्नदशा हो, उसे जैनदर्शन कहते हैं। बाकी जैनदर्शन... यह भी जैनदर्शन और यह भी जैनदर्शन, वह वीतरागमार्ग में नहीं है। समझ में आया? बहुत कठिन काम, भाई! जिस-जिस कुल में जन्मा हो, जिसका जिसे वास और परिचय और संग रहा हो, उसमें मेरा है, ऐसा मानकर बैठा हो, उसे यह छोड़ना मुश्किल पड़े।

**मुमुक्षु :** विचार करे तो जल्दी छोड़े।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाग्यशाली बदले। बदल गये। बहुत बदल गये। सत्य है, ऐसा सत्य ही है। परन्तु यह प्रमुख हों, उन्हें बदलना कठिन लगे। आहाहा!

**यहाँ कोई पूछे—इस बोधपाहुड़ में व्यवहारधर्म की प्रवृत्ति के ग्यारह स्थान कहे। इनका विशेषण किया कि—ये छहकाय के जीवों के हित करनेवाले हैं। किन्तु अन्यमती इनको अन्यथा स्थापित कर प्रवृत्ति करते हैं, वह हिंसारूप हैं और जीवों के हित करनेवाले नहीं हैं। ये ग्यारह ही स्थान संयमी मुनि...** संयमी मुनि को स्थान कहा। मुनि को और अरिहन्त तथा सिद्ध। तीन में सब समाहित कर दिया। उसे बराबर पहिचानकर श्रद्धा करके आनन्द को प्राप्त करो। श्रद्धा सम्यग्दर्शान, वही आनन्द का कारण है। और परमार्थ है, उस परमानन्द की मूर्ति को प्राप्त करो, ऐसा आचार्य का कहने का आशय है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष शुक्ल १३, रविवार, दिनांक-०६-०१-१९७४**
**गाथा - ६०-६१, प्रवचन-८२**

६० गाथा का भावार्थ। बोधपाहुड़। ग्यारह स्थान का वर्णन आ गया। आयतन, जिनप्रतिमा, जिनमुद्रा, जिन चैत्यगृह, तीर्थ, दर्शन, अरिहन्त, इनका स्वरूप सब आत्मा के ऊपर आ गया पहले। आत्मा ही स्वयं आनन्दघन, मुनिपने का अंगीकार करे, तब वह आयतन स्वयं ही है। धर्म का स्थान आत्मा है। मुनि का आत्मा, वह धर्म का स्थान है।

**मुमुक्षु :** वह तो मुनि के लिये..

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुनि की यहाँ व्याख्या है न! आयतन अर्थात् मुनि का जो बाह्याभ्यन्तर त्यागस्वरूप, राग के त्यागस्वरूप और बाह्य में नग्नपने की दशा, ऐसी जो अन्तरदशा, उसे यहाँ मुनिपना, उसे यहाँ मोक्षमार्ग, उसे यहाँ धर्म का स्थान कहा गया है। यह व्यवहार स्थान है, मन्दिर आदि है, वह तो व्यवहार है।

**इस बोधपाहुड़ में व्यवहारधर्म की प्रवृत्ति के ग्यारह स्थान कहे।** है तो वह निश्चय की बात। परन्तु ऐसे ही सामने आयतन आदि होते हैं न, व्यवहार धर्म के कारण। जिनप्रतिमा... आदि। **इनका विशेषण किया है कि—ये छह काय के जीवों के हित करनेवाले हैं।** ये ग्यारह स्थान छह काय के जीव को हित करनेवाले हैं। ऐसा उसमें कहा था। **किन्तु अन्यमति इनको अन्यथा स्थापित कर प्रवृत्ति करते हैं...** दूसरे प्रकार से स्थापित करके मूर्ति इत्यादि। तत्त्व से विरुद्ध व्यवहार स्थापित करके छह काय की हिंसादि करते हैं। है न? **वे हिंसारूप हैं और जीवों के हित करनेवाले नहीं हैं। ये ग्यारह ही स्थान संयमी मुनि...** ग्यारह स्थान संयमी मुनि के हैं। आत्मा के दर्शनपूर्वक स्वरूप के स्थिरता जिसे हुई है, वे धर्म के आयतन मुनि को कहा गया है। बाह्य मन्दिर आदि तो व्यवहार है। इसके लिये यह स्पष्टीकरण करना पड़ता है। अरिहन्त और सिद्ध। तीन में बात ली है। अरिहन्तपना, सिद्धपना और मुनि। इन तीन में ग्यारह अंग—ग्यारह स्थान समाहित हो गये हैं। आयतन आदि, जिनप्रतिमा, जिनमुद्रा।

**ये तो छह काय के जीवों के हित करनेवाले ही हैं, इसलिए पूज्य हैं।** कौन? मुनि भावलिंगी सन्त, अरिहन्त और सिद्ध, वे तो पूज्य हैं और छह काय का हित करनेवाले हैं। **यह तो सत्य है,...** यह बात बराबर है। **और जहाँ रहते हैं इस प्रकार आकाश के प्रदेशरूप क्षेत्र...** मुनि या अरिहन्त जहाँ रहे वह। **तथा पर्वत की गुफा वनादिक...** वन-वन आदि। **अकृत्रिम चैत्यालय ये स्वयमेव बने हुए हैं, उनको भी प्रयोजन और निमित्त विचारकर उपचारमात्र से छह काय के जीवों के हित करनेवाले कहें तो विरोध नहीं है,...** समझ में आया? जिसमें मुनि बसते हैं, अरिहन्त बसते हैं, ऐसे स्थान को भी छह काय का हित करनेवाला (कहा)। क्योंकि वहाँ उपदेश यही चलता है। उपदेश छह काय के हित का उपदेश चलता है। छह काय का हित करनेवाला कहा जाता है।

**विरोध नहीं है, क्योंकि ये प्रदेश जड़ हैं, ये बुद्धिपूर्वक किसी का बुरा-भला नहीं करते हैं तथा जड़ को सुख-दुःख आदि फल का अनुभव नहीं है, इसलिए ये भी व्यवहार से पूज्य हैं,...** मुनि जिस स्थान में रहें, अरिहन्त जिस स्थान में रहें, वह क्षेत्र भी व्यवहार से पूज्य है। निश्चय जहाँ आत्मा का स्वरूप ही मोक्षमार्गी जीव और मोक्ष... अरिहन्त, सिद्ध मोक्षस्वरूप हैं और साधु मोक्ष के मार्ग स्वरूप हैं। दोनों वास्तविक रीति से तो पूज्य हैं। मोक्ष के मार्ग के साधनेवाले मुनि और मोक्षप्राप्त अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त, वे अरिहन्त और सिद्ध हैं। दोनों वन्दनीक और पूजनीक हैं। आपकी यह बात तो सत्य है प्रभु! परन्तु जिस स्थान में रहे, उसे भी छह काय का हित करनेवाला कहा (जाता है) व्यवहार से।

**क्योंकि अरिहंतादिक जहाँ रहते हैं, वे क्षेत्र-निवास आदिक प्रशस्त हैं...** वे सब क्षेत्र व्यवहार से प्रशस्त कहलाते हैं। **इसलिए उन अरहन्तादिक के आश्रय से ये क्षेत्रादिक भी पूज्य हैं...** वह अरिहन्त और सिद्ध और मुनि के आश्रय से रहा हुआ क्षेत्र भी उन पाँच पद की अपेक्षा से वह भी पूज्य है। पाँचों ही पद आ गये न उसमें? मुनि में आचार्य, उपाध्याय और साधु; अरिहन्त और सिद्ध आये—ऐसे पाँचों पद आ गये। पाँच पद की पूज्यता के कारण जिस स्थान में वे हों, वह स्थान भी पूजनिक कहा जाता है। आहाहा! यह व्यवहार का विवाद उठा है न!

**मुमुक्षु :** उसमें धर्म मान लिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसने उसमें धर्म माना है। वह धर्म नहीं। वह पुण्य शुभभाव का कारण है। बाह्य तीर्थ, बाह्य पूजा—भक्ति, वह शुभभाव, वह पुण्यभाव का कारण है। ऐसा जब तक वीतरागता पूर्ण न हो, तब तक सम्यग्दृष्टि को भी, स्वभाव के आश्रय में स्थित हैं, ऐसे धर्मी को भी पूर्णता न हो, तब ऐसा भाव—शुभभाव आये बिना नहीं रहता। निश्चय और व्यवहार की यह स्थिति है।

**प्रश्न :- गृहस्थ जिनमन्दिर बनावे, वस्तिका,...** अर्थात् रहने का घर। ब्रह्मचारी आदि धर्मात्मा के लिये, हों! मुनि के लिये वस्तिका नहीं। उसमें कितने ही ऐसा निकालते हैं। मुनि के लिये वस्तिका बनावे, देखो! इसमें कहा है। मुनि के लिये वस्तिकायें बनावे, वह मुनि को चलती ही नहीं। **प्रतिमा बनावे...** गृहस्थ। **प्रतिष्ठा पूजा करे...** गृहस्थ **उसमें तो छह काय के जीवों की विराधना होती है, यह उपदेश और प्रवृत्ति की बाहुल्यता कैसे है ?** तो यह उपदेश और इस शैली की बाहुल्यता दिखाई दे, वह क्या है ? ऐसा पूछते हैं। छह काय के... दिखते हैं, पानी, पृथ्वी आदि और तुम ऐसा कहते हो कि छह काय का हित करनेवाले। क्या है इसका स्पष्टीकरण ?

**गृहस्थ अरहन्त, सिद्ध, मुनियों का उपासक है...** सम्यग्दृष्टि गृहस्थ जो है, वह मुनि के—सच्चे सन्त के और अरिहन्त, सिद्ध के उपासक हैं। सेवक हैं। उपासक कहा न ? **जहाँ साक्षात् हों...** जहाँ वे मुनि और अरिहन्त साक्षात् विराजमान हों, **वहाँ तो उनकी वन्दना, पूजन करता ही है।** वन्दन-पूजन करे, वह भी एक शुभभाव है। समझ में आया ? साक्षात् अरिहन्त, सिद्ध और मुनि। उनका वह समकिती सेवक है। इसलिए उनकी वन्दन, पूजन करता है। परन्तु वह भी एक शुभभाव है। **जहाँ ये साक्षात् न हों, वहाँ परोक्ष संकल्प कर...** भगवान है, यह प्रतिमा, जिन प्रतिमा है—ऐसा संकल्प करके **वन्दना-पूजन करता है...** वन्दन-पूजन करे। ऐसा व्यवहार आता है। पुण्यादि का यह प्रचार है। यह कोई नया नहीं है।

**मुमुक्षु :** ऐसा आये बिना रहता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आये बिना रहता ही नहीं। परमात्मा साक्षात् न हो और स्वयं

परमात्मा का भक्त है। इसलिए परमात्मा की प्रतिमा में संकल्प करके वन्दन-पूजन करे। पुण्य का कारण है। आहाहा!

**उनके रहने का क्षेत्र तथा ये मुक्त हुए...** जिस क्षेत्र में मुक्ति हुई **अकृत्रिम चैत्यालय में उनका संकल्प कर...** शाश्वत् प्रतिमायें हैं न! शाश्वत् प्रतिमायें हैं। शास्त्र में (कहा)। है सर्वत्र। स्थानकवासी में है, श्वेताम्बर में है। पाठ में ३२ सूत्र में है, ४५ में (है)। शाश्वत् प्रतिमा है। मन्दिर... तीर्थंकर की प्रतिमायें हैं। तीर्थंकर जब साक्षात् तीन काल-तीन लोक के जाननेवाले ऐसे भगवान का विरह जगत में नहीं होता, इससे उनकी स्थापना का भी विरह जगत में नहीं होता। शाश्वत् प्रतिमायें भी अनादि से चली आती हैं। जैसे अनादि से तीर्थंकर तीन काल में, तीन काल के जाननेवाले का तीन काल में विरह नहीं होता। क्या कहा, समझ में आया? तीन काल में तीन काल के जाननेवाले का विरह कभी नहीं होता। तीनों काल में।

**मुमुक्षु :** अपूर्ण जाननेवाला है तो पूर्ण जाननेवाला हो ही....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो ही। समझ में आया? और इससे उनका प्रतिबिम्ब, प्रतिमा चैत्यालय अनादि के हैं। जैसे यह अनादि का है, वैसा वह अनादि का है। समझ में आया? यह आ गया है अपने उसमें बोधपाहुड़ में। जिनभवन में ध्यान करे। चैत्यालय हो। शब्द भगवान की वाणी स्थापित हो, ऐसे मन्दिरों में ध्यान करे। वे थे तो ध्यान करे या नहीं थे, तब ध्यान करे? ध्यान करे अपना, परन्तु ऐसे स्थान में ध्यान करे। पहले आ गया है। जिनभवन में। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने ग्यारह स्थान निश्चय से वर्णन किये हैं। वापस अन्दर पाठ लिया है। जिनभवन लिया है। चैत्यालय लिया है। वीतराग की वाणी जिसमें स्थापित हो, उसे भी लिया है। वीतराग के महामन्त्र जिसमें स्थापित हों, वह भी ध्यान करने के स्थान हैं। वह कुछ नया नहीं है।

कहा था तब वह परिवर्तन हुआ, सन्त बाल ने उठाया। स्थानकवासी सन्तबाल है न! कहे प्रतिमा नहीं... प्रतिमा नहीं... कहो वह तो उसे तो श्रद्धा जैन की है ही नहीं। उसे तो वेदान्त की बस। ...करके पड़े हैं। परन्तु उस समय मौके से यहाँ से छूटा और वहाँ ऐसा कहा (उसने)। कल्याण... कल्याणचन्दजी थे न यहाँ। वे आये थे तब। ...तब नहीं थे। कहे, यह सन्तबाल क्या कहता है? यह ...मूर्ति ही नहीं शास्त्र में। कुन्दकुन्दाचार्य

ने मूर्ति कही ही नहीं, ऐसा कहता है। कहा, यह रही। यह पाठ बताया था। यह पाठ बताया था, देखो न! ...में।

**मुमुक्षु :** पृष्ठ ११३। गाथा ४३

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ११३ देखो पृष्ठ है न! ४३वीं गाथा, देखो!

**सवसासत्तं तित्थं, वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।**
**जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा विंति॥४३॥**

जिनमार्ग में जिनवरदेव जिनभवन में एकान्त में ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। तब कहा, यह जिनभवन थे, तब कहा या नहीं थे, इसलिए कहा? यह जिनभवन उसे कहा जाता है। जिनभवन, जिसमें वीतराग की मूर्ति हो, उसे जिनभवन कहा जाता है। (संवत्) १९९१ में एक बार बहुत चला था। वह यह क्या कहते हैं यह? फिर तो वह ढीला पड़ गया। मूर्ति ४२... ८२ वर्ष। भगवान के बाद ८२ वर्ष में एक शिलालेख निकला बड़ा पत्थर। ... के पास से। भगवान के पश्चात् ८२ वर्ष से तो प्रतिमा चली आती है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं, यह नहीं। कहीं... मिल गयी। पत्थर में कुछ। बाबा के मठ में कुछ करते होंगे। पत्थर होगा। वह जिनप्रतिमा के शिलालेख का पत्थर था। ८२ वर्ष, भगवान के बाद ८२ वर्ष। यह आया न, तब की बात है यह तो (संवत्) १९९१ में। फिर तो उसने माना था। यह ८२ वर्ष से तो... तब चौदह पूर्व के करनेवाले थे। बारह अंग के पढ़नेवाले थे, तब भी जिनभवन तो थे। यह लेख है। बड़ा पत्थर निकला था। कहाँ, यह भूल गये। ३९ वर्ष हुए। यों भी शाश्वत् वस्तु त्रिकाल है। जिनप्रतिमा कृत्रिम और अकृत्रिम तीनों काल में है। कभी उनका विरह हो नहीं सकता। लोगों ने बिना समझ के उत्थापित की। और एक व्यक्ति ने वापस उसमें धर्म माना। दोनों खोटी बात हैं। धर्म नहीं। धर्म तो आत्मा के आश्रय से होता है। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध अखण्ड आनन्द का आश्रय करने से धर्म; बाकी पर के आश्रय से धर्म तीन काल में नहीं होता, तथापि पर का आश्रय आये बिना रहता नहीं। जब तक बन्धभाव है, तब तक आता है। देखो सेठ! चन्दुभाई!

'**जिणभवणं अह वेज्झं**' ध्यान करनेयोग्य है। '**जिणमग्गे जिणवरा विंति**' जिनमार्ग में जिनवर ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह प्रश्न उसे उठा था। कल्याणजी। तब कहा था यह। (संवत्) १९९१ की बात है। यहाँ आये न तब फाल्गुन महीने में। पश्चात् तुरन्त ही आये थे चैत्र। तब यह गाथा बतायी थी। ९१। ३९ वर्ष हुए। यह क्या कहते हैं? '**जिणवरा जिणमग्गे**' जिनवर कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, लो। जिनमार्ग में जैनमार्ग में वीतरागमार्ग में जिनवरदेवों ने जिनभवन में ध्यान करना कहा है। जिनभवन थे, तब करते हैं या जिन (भवन) नहीं थे तब? चन्दुभाई! ऐसा कहा। पक्षपात किये बिना बात समझनी चाहिए, भाई! खींचतान, यह नहीं कहे। जैसे वस्तु है, वैसे उसे जाननी चाहिए। तथा उसे कोई ऐसा ही मान लेता है कि उसमें धर्म है, उससे संवर-निर्जरा होती है। भगवान की पूजा—भक्ति.... ऐई! चेतनजी! आस्रव चार घटे, आता है न? यह खोटी बात है। शुभास्रव है, पुण्यास्रव है। वह होता है। उसका निषेध करे तो तत्त्व का यथार्थ निषेध हो जाता है। और उसमें धर्म माने तो भी तत्त्व का विरोध हो जाता है। आहाहा! ऐसी बातें भारी कठिन काम! अनेकान्त वीतरागमार्ग।

उसमें तो चैत्यालय भगवान की वाणी का तो आया है न! अर्थ में आया था। भगवान की वाणी पधराई हो। '**वचचइदालत्तयं**' तीन शब्द हैं अन्दर देखो। **वच, चैत्य, आलय,...** टीका में है। दूसरी लाईन, दूसरे पेरेग्राफ की।

**मुमुक्षु :** प्रतिमा, अक्षर, मन्त्र, वाणी जिसमें स्थापित किये जाते हैं, इस प्रकार आलय-मन्दिर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। परन्तु यह तो पहले शब्द आये न खुल्ले? दूसरे बोल में है। **तीर्थस्थान और वच, चैत्य, आलय, इस प्रकार त्रिक जो पहिले कहा गया है अर्थात् आयतन आदिक; परमार्थरूप, संयमी मुनि, अरहन्त, सिद्ध स्वरूप उनके नाम के अक्षररूप मन्त्र तथा उनकी आज्ञारूप वाणी को वच कहते हैं...** लो! वाणी का मन्दिर भी होता है, ऐसा कहते हैं। फिर चैत्य कहते हैं।

**मुमुक्षु : धातु पाषाण की प्रतिमा स्थापन को चैत्य कहते हैं...**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चैत्य कहा है। बाद में कहा। सब बात हो गयी अपने। आहाहा!

व्यवहार व्यवहार के स्थान में आता है। परन्तु वह व्यवहार धर्म नहीं है। तब कहे कि धर्म नहीं, तो करना किसलिए? भाई! जब तक वीतरागता प्रगट न हो, तब तक धर्मी को भी ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं।

यहाँ आया न अपने चलता है वहाँ। **संकल्प कर वन्दना व पूजन करता है।** चलता है उसमें। क्षेत्र हो, मन्दिर हो, पूजा हो, यात्रा के स्थान हों, वहाँ वन्दन-पूजन... समकिती को भी जो राग के विकल्प का त्याग दृष्टि में है। जिसका—राग का आदर नहीं। आदर अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसका जिसे अन्तर आदर है, ऐसे समकिती भी ऐसे क्षेत्र में संकल्प करके पूजन करे, गजब भाई! ना और हाँ, हाँ और ना। ऐई! वीतरागमार्ग ऐसा सूक्ष्म है।

**इसमें अनुरागविशेष सूचित होता है...** भगवान की प्रतिमा, भगवान के रहने के स्थान तीर्थयात्रा आदि या मोक्ष गये, उन स्थान में वन्दन, पूजन, संकल्प जो करे तो वह धर्म का अनुरागी विशेष है, ऐसा बताते हैं। **फिर उनकी मुद्रा, प्रतिमा तदाकार बनावे...** तदाकार बनावे। **उसको मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा कर स्थापित करे तथा नित्य पूजन करे, इसमें अत्यन्त अनुराग सूचित होता है,...** प्रेम बताता है भगवान के प्रति का। जिसे आत्मा का प्रेम हुआ है, वीतराग मूर्ति आत्मा की वीतरागता जहाँ दशा पूरी नहीं हुई, उसे ऐसे वीतराग भगवान की मूर्ति आदि का प्रेम आये बिना नहीं रहता। ऐसा गजब! तथापि वह प्रेम राग है। वास्तव में वह धर्म नहीं। वह अधर्म है। पुण्यरूपी भाव भी एक अधर्म है। पंच महाव्रत के परिणाम लो न, वह पुण्य है, अधर्म है। भारी कठिन बात!

(संवत्) १९८५ में पौष महीना था, लो! बोटाद की बात है। ४५ हुए। ४५ वर्ष। बड़ी सभा भरी थी। सभा वहाँ बोटाद में तो... पौष महीने का... व्याख्यान चलता था। उसमें यह बात आयी थी। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। कहो, जयन्तीभाई! बोटाद उपाश्रय में पौष महीना था। ८५ का पौष। १५ और ३० = ४५ (वर्ष) हुए। और पंच महाव्रत के परिणाम, वे भी आस्रव और पुण्य है। दो बातें की थी। खलबलाहट... खलबलाहट... सुननेवालों को खलबलाहट नहीं होती। सुननेवाले तो बैठे थे सब। रायचन्द गाँधी आदि। सब बैठे। शिवलाल गोपाणी सब बुद्धिवाले बैठे

थे। बड़ी सभा। ३०० घर तो व्याख्यान में बहुत लोग। उसमें एक जगजीवनजी थे। मूलचन्दजी से छोटे। वजुभाई पहिचानते हैं। वजुभाई! मूलचन्दजी से नहीं छोटे जगजीवनजी? हाँ, जगजीवनजी। वे बैठे थे। उन्हें यह नहीं सुहाया। वे कहे वोसरे... वोसरे... ऐसा कहे, (अर्थात्) यह श्रद्धा हमें नहीं चाहिए। ४५ वर्ष की बात है। परन्तु उनका... कुछ नहीं था। व्यर्थ में बोले थे। किसी ने कुछ सुना नहीं और किसी को खबर भी नहीं पड़ी। मैं समझ गया। वे व्याख्यान में से उठ गये। उठ गये। सभा में साथ में बैठे थे। पाट में, दूसरे पाट में। व्याख्यान पूरा होने के पश्चात् कहा, किसलिए उठ जाना था? तुम्हारा किसी ने माना है? यह किसी को तुमने क्या कहा, वह खबर नहीं। तुमको न रुचे तो बैठे रहना था। आहाहा! यह उसे बताना था, मूलचन्दजी को बताने को।

अरे, भगवान! भाई! महाव्रत के परिणाम जो हैं मुनि को। सम्यग्दृष्टि को भी होते हैं, परन्तु वे महाव्रत हैं, वह परसन्मुख के लक्ष्यवाला राग है। वह पुण्यास्रव है। आहाहा! ऐसा कठिन काम, बापू! और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, तो जिस भाव से बँधे, वह भाव धर्म नहीं हो सकता। धर्म के कारण से तो बन्ध नहीं हो सकता। धर्म से बंध हो? तब वह बंध का कारण, कहा भाई! धर्म नहीं है। वास्तव में तो अधर्म है। ऐई! अधर्म कहो, यह क्या हुआ? बापू! आहाहा! लोगों को सत्य रुचता नहीं। पक्ष में बँध जाते हैं न!

यहाँ कहते हैं, ऐसे मन्दिर बनाकर **इसमें अत्यन्त अनुराग सूचित होता है, उस अनुराग से विशिष्ट पुण्यबन्ध होता है...** देखा! विशिष्ट पुण्यबन्ध होता है। सम्यग्दृष्टि को भी, श्रावक को भी, अरे! मुनि को लो, वे भी परमेष्ठी वन्दन आदि करते हैं। उन्हें भी शुभभाव पुण्य बँधता है। समझ में आया? **और उस मन्दिर में छह काय के जीवों के हित की रक्षा का उपदेश होता है...** उपदेश तो यह दिया जाता है या नहीं? किसी प्राणी को अपने आत्मा को भी घात नहीं करना, राग से नहीं घातना, दूसरे का भी नहीं घात करना, ऐसा उपदेश है। छह काय के हित का उपदेश है। आहाहा! क्योंकि वास्तव में तो पर की दया करने का भाव, वह राग है और वही हिंसा है, सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग ऐसा सूक्ष्म है। क्योंकि यह पर की दया पालन करूँ। तो पाल तो सकता नहीं। क्योंकि वह तो जड़ की, पर की अवस्था है। पर की अवस्था करे कौन? परन्तु

जो दया का भाव आवे, वह राग है। भगवान तो उसे हिंसा कहते हैं। आहाहा!

उस राग की उत्पत्ति न होना और आत्मा के आनन्द की उत्पत्ति होना, उसे भगवान अहिंसा कहते हैं। गजब अन्तर! वह अहिंसा परमो धर्म है। आहाहा! वीतरागभाव की उत्पत्ति होना, उसमें संकल्प—विकल्प का अभाव होना और वीतरागता अन्दर में से उत्पन्न होना, उसे परमात्मा अहिंसा कहते हैं। वीतराग का मार्ग जगत से भिन्न है।

**निरन्तर सुननेवाले और धारण करनेवाले के अहिंसा धर्म की श्रद्धा दृढ़ होती है,...** ऐसा जहाँ उपदेश हो, उस स्थान में सुननेवाले और धारण करनेवाले की श्रद्धा दृढ़ होती है। यहाँ तो सुननेवाले और धारण करनेवाले को... निमित्त से बात होती है न! समझ में आया? वह पर के आश्रय से होती नहीं। होती है तो अपने आश्रय से वहाँ। परन्तु ऐसा जहाँ उपदेश चलता है, उसे माननेवाले, उसे अहिंसा की (श्रद्धा) दृढ़ होती है। आहाहा! भारी अटपटी बातें!

**तथा उनकी तदाकार प्रतिमा देखनेवाले के शान्त भाव होते हैं,...** लो! वीतराग मुद्रा। स्थिर हो गये जहाँ! ऐसी जिसे... आता है न? समयसार में आता है। पण्डित जयचन्दजी ने डाला है भावार्थ में। यह भी पण्डित जयचन्दजी का ही है न, भाषा उनकी ही है। **ध्यान की मुद्रा का स्वरूप जाना जाता है...** शान्त... शान्त... जागत को मानो कुछ करने का नहीं। स्थिर हो गये ऐसा दिखाई दे प्रतिमा में। उसे देखनेवाले को... शान्तता उत्पन्न होती है, (स्वयं) करे तो। यहाँ तो **देखनेवाले के शान्त भाव होते हैं,...** प्रतिमा को देखनेवाले को ... शान्तभाव होते हैं, ऐसा लिखा है। प्रतिमा तो परद्रव्य है। उसमें भी वह है समयसार भावार्थ में। पहली गाथाओं में। उसका अर्थ यह (कि) स्वयं अन्दर से विचार करे कि ओहोहो! यह तो रागरहित चीज़। भगवान सर्वज्ञ प्रतिमा ऐसी होती है। ऐसे सर्वज्ञ भगवान। उसका अन्तर विचार करने से उसे शान्ति उत्पन्न होती है स्वयं के आश्रय से, तब ऐसा कहा जाता है कि उसके आश्रय से शान्ति प्रगट हुई। आहाहा!

**वीतराग धर्म से अनुराग विशेष होने से पुण्यबन्ध होता है,...** लो! **इसलिए इनको भी छह काय के जीवों का हित करनेवाले उपचार से कहते हैं।** व्यवहार।

**जिनमन्दिर वस्तिका प्रतिमा बनाने में तथा पूजा-प्रतिष्ठा करने में आरम्भ होता है, उसमें कुछ हिंसा भी होती है। ऐसा आरम्भ तो गृहस्थ का कार्य है,...** गृहस्थ तो करता है न, कहते हैं, अपने घर के लिये? घर के लिये करता है या नहीं? **गृहस्थ को अल्प पाप कहा, पुण्य बहुत कहा है...** 'सावध्य लेशो बहु पुण्य राशो।' आता है समन्तभद्र में। आहाहा!

**गृहस्थ के पद में न्यायकार्य करके न्यायपूर्वक धन उपार्जन करना, रहने के लिये मकान बनवाना...** बनाता है या नहीं वह स्वयं? अपने घर के लिये बनाता है या नहीं? कहो, भगवानजीभाई! पाँच-पाँच लाख के, दस-दस लाख के। यह चालीस लाख के शान्तिलाल खुशाल गोवा में। चालीस लाख का मकान। बनाता है न गृहस्थ स्वयं के लिये? **मकान बनवाना, विवाहादिक करना...** पुत्री का विवाह करे, पुत्र का विवाह करे। करते हैं या नहीं? **और यत्नपूर्वक आरम्भ कर आहारादिक स्वयं बनाना...** आहार बनाता है न स्वयं घर में? **खाना इत्यादिक कार्यों में यद्यपि हिंसा होती है तो भी गृहस्थ को इनका महापाप नहीं कहा जाता है।** महापाप नहीं, अल्प पाप है। **गृहस्थ के तो महापाप मिथ्यात्व का सेवन करना,...** आहाहा! राग जो पुण्यभाव, उससे धर्म होता है, देह की क्रिया करने से धर्म होता है, पापभाव में मजा है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह महापापी है। आहाहा! मिथ्यादर्शन शल्य।

**महापाप मिथ्यात्व का सेवन करना,...** मिथ्यात्व किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। वस्तु की स्थिति से विपरीत मान्यता—पुण्य को पाप मानना, पुण्य को धर्म मानना, आत्मा के ज्ञायकभाव को रागवाला, कर्म के सम्बन्धवाला मानना, यह सब मिथ्यात्व का सेवन करना, वह महापाप है। **अन्याय,...** अन्याय करना। **चोरी आदि से धन उपार्जन करना, त्रस जीवों को मारकर माँस आदि अभक्ष्य खाना और परस्त्री-सेवन करना, ये महापाप हैं।** परस्त्री आदि का सेवन, वह महापाप है, ऐसा कहते हैं। ऐसा तो होता है, ऐसा कहते हैं जिनमन्दिर आदि। स्पष्टीकरण ठीक किया है।

**गृहस्थाचार छोड़कर मुनि हो जावे, तब गृहस्थ के न्यायकार्य भी अन्याय ही हैं।** गृहस्थ का न्यायकार्य तो उसे अन्याय है। मुनि को तो ऐसी दशा। आहाहा! एक एकेन्द्रिय जीव को भी नहीं मारने का भाव... एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया...

ऐसी अलौकिक दशा! **मुनि के आहार आदि की प्रवृत्ति में कुछ हिंसा होती है...** आ गया न यह? **गृहस्थाचार छोड़कर मुनि हो जावे, तब गृहस्थ के न्यायकार्य भी अन्याय ही हैं। मुनि के भी आहार आदि की प्रवृत्ति में...** मुनि हैं धर्मात्मा गणधर जैसे लो न! सन्त भावलिंगी आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले। उन्हें भी **आहार आदि की प्रवृत्ति में कुछ हिंसा होती है...** आहार लेने जाये, वहाँ हिले, चले... **उससे मुनि को हिंसक नहीं कहा जाता है,...** तथापि ऐसी स्थितिवाले को हिंसा करनेवाला नहीं कहा जाता। **वैसे ही गृहस्थ के न्यायपूर्वक अपने पद के योग्य आरम्भ के कार्यों में अल्प पाप ही कहा जाता है,...** उसके पद के योग्य करे जिनमन्दिर आदि सब। अल्प पाप है।

**जिनमन्दिर, वस्तिका और पूजा प्रतिष्ठा के कार्यों में आरम्भ का अल्प पाप है; मोक्षमार्ग में प्रवर्तनेवालों से अति अनुराग होता है और उनकी प्रभावना करते हैं, उनको आहारदानादिक देते हैं...** मुनि को। **उनका वैयावृत्यादि करते हैं। ये सम्यक्त्व के अंग हैं...** समकित की भूमिका में यह भाव होता है, अंग अर्थात्। समझ में आया? **महान पुण्य के कारण हैं,...** पुण्य है न। धर्म नहीं भले। ऐसे वे तीव्र पाप के परिणाम भी नहीं। उसके ... सब बहुत कठोर बात! **इसलिए गृहस्थ को सदा ही करना योग्य हैं और गृहस्थ होकर ये कार्य न करे तो ज्ञात होता है कि इसके धर्मानुराग विशेष नहीं है।** उसे धर्म का प्रेम है नहीं। इसका अर्थ कि उसके प्रमाण में जो चाहिए, वह नहीं, ऐसा। धर्मानुराग विशेष नहीं। प्रेम ही नहीं, ऐसा इसका अर्थ हुआ। जिसे ऐसा भाव हो, उसे तो ऐसा प्रेम आये बिना रहता नहीं। वीतरागी, केवलज्ञान होने के पश्चात् समाप्त। उन्हें कुछ नहीं होता।

**प्रश्न :- गृहस्थ को जिसके बिना चले नहीं, इस प्रकार के कार्य तो करना ही पड़े और धर्मपद्धति में आरम्भ का कार्य करके पाप क्यों मिलावे...** ऐसा कि उसमें सामायिक और प्रौषध न करें हम? यह कहता है। सुन तो सही अब! आहाहा! **सामायिक...** करें, **प्रतिक्रमण...** करें, **प्रौषध...** करें, **करके पुण्य उपजावे।** पुण्य उपजावे, ऐसा कहा है, हों! **उसको कहते हैं—यदि तुम इस प्रकार कहो तो तुम्हारे परिणाम तो इस जाति के हैं नहीं,...** तुझे खबर नहीं सामायिक और प्रौषधवाले के परिणाम कैसे होते हैं। आहाहा! वह तो आत्मा के आनन्द में लवलीन होता है। सामायिक उसे कहते हैं।

सामायिक में णमो अरिहंताणं करके दो घड़ी बैठे, वह सामायिक कहाँ है ? वह तो राग है। आहाहा! निर्विकारी चिदानन्दस्वरूप भगवान में समता का लाभ मिले, वीतरागताभाव का लाभ मिले, उसे सामायिक कहते हैं। अभी वस्तु कौन है, इसकी खबर नहीं होती और हम इसमें पाप लगता है, यह हम करें तो तुझे तेरे परिणाम की खबर नहीं है। आहाहा! सामायिक और प्रौषध करे। तो भी उसने तो किया पुण्य उपार्जित।

**केवल बाह्यक्रिया मात्र में ही पुण्य समझते हो।** तो बाह्य क्रिया में तुम पुण्य मानते हो। **बाह्य में बहु आरम्भी परिग्रही का मन,...** न्याय देते हैं जरा। बाह्य में बहुत आरम्भी और परिग्रह का मन **सामायिक प्रतिक्रमण आदि निरारम्भ कार्यों में विशेषरूप से लगता नहीं है...** स्थिर नहीं हो सकता वह, महा आरम्भ और परिग्रह के भाव के समय। सामायिक में वह स्थिर नहीं हो सकता। आनन्द में स्थिर होना, शुद्ध उपयोग में आना, उसका नाम सामायिक है। भगवान का स्मरण करना, वह सब शुभराग है वह तो। सामायिक नहीं। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई!

**अनुभवगम्य है,...** देखा! **निरारम्भ कार्यों में विशेषरूप से लगता नहीं है, यह अनुभवगम्य है,...** स्वरूप में शुद्ध उपयोग जमता नहीं, वह तो खबर पड़ती नहीं तुझे ? कहते हैं, वह तो शुभराग है क्रिया जितना। सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण, वह तो विकल्प, राग है। अन्दर में आत्मा में जम जाना, वह तो सम्यग्दर्शन बिना, अन्तर दृष्टि बिना अन्तर में शुद्ध उपयोग आ सकता ही नहीं उसे। समझ में आया ? बहुत स्पष्टीकरण किया है। **केवल बाह्य सामायिकादि निरारम्भ कार्य का वेश धारणकर बैठो तो कुछ विशिष्ट पुण्य नहीं है...** खास पुण्य नहीं। साधारण (पुण्य) बाँधे। **शरीरादिक बाह्य वस्तु तो जड़ हैं, केवल जड़ की क्रिया का फल तो आत्मा को मिलता नहीं है।** ... पड़ा उसमें क्या हुआ ? तेरा भाव तो संकल्प-विकल्प में चलता है अन्दर। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... का आनुपूर्वी गिने यह। आनुपूर्वी आता है न। ...यह है। वह तो विकल्प है, शुभराग है।

**जितने अंश में बाह्यक्रिया में लगें...** अपना भाव। **उतने अंश में शुभाशुभ फल अपने को लगता है...** लो! जैसे परिणाम हों, वैसा उसे बन्ध होता है। कहीं शरीर की क्रिया के आश्रय से बन्ध नहीं है। **इस प्रकार विशिष्ट पुण्य तो भावों के अनुसार है।**

लो! **आरम्भी-परिग्रही के भाव तो पूजा, प्रतिष्ठादिक बड़े आरम्भ में ही विशेष अनुरागसहित लगते हैं।** इसमें ३४ गाथा। ऐसा कि **प्रतिष्ठादिक बड़े आरम्भ में ही विशेष अनुरागसहित लगते हैं। गृहस्थाचार के बड़े आरम्भ से विरक्त होगा, सो उसे त्यागकर अपना पद बढ़ावेगा, जब गृहस्थाचार के बड़े आरम्भ छोड़ेगा, तब उसी तरह धर्म प्रवृत्ति के बड़े आरम्भ भी पद के अनुसार घटावेगा।** प्रतिमा में घटावे। आगे घटे।

**मुनि होगा, तब आरम्भ क्यों करेगा?** नग्न मुनि दिगम्बर जंगल में बसे, आत्मा के आनन्द में, उसे तो कुछ आरम्भ होता नहीं। वह तो फिर प्रतिमा बनाना, यह करना, वह कुछ है नहीं, कहते हैं। **इसलिए मिथ्यादृष्टि बाह्यबुद्धि जो बाह्य कार्यमात्र ही को पुण्य-पाप-मोक्षमार्ग समझते हैं...** बाहर की क्रिया में ही पुण्य-पाप और मोक्षमार्ग समझे **उनका उपदेश सुनकर अपने को अज्ञानी नहीं होना चाहिए। पुण्य-पाप के बन्ध में शुभाशुभ भाव ही प्रधान है...** देखा! पुण्य-पाप के भाव में शुभाशुभभाव मुख्य है। क्रिया नहीं। **पुण्य-पापरहित मोक्षमार्ग है,...** मोक्ष का मार्ग तो यह पुण्य-पापरहित आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता, वह है। आहाहा! दया, दान, व्रत, परिणाम, वे सब तो पुण्यभाव हैं। वह आता है। परन्तु वह कहीं संवर-निर्जरा नहीं। संवर-निर्जरा तो अन्दर आनन्दस्वरूप में रमणता, शुद्ध उपयोग है। पुण्य परिणाम, वह अशुद्ध उपयोग है। भगवान का स्मरण करना, नाम जाप करना, वह सब अशुद्ध उपयोग है, पुण्य। अन्दर में, परन्तु अभी अन्दर चीज़ अन्तर्मुख क्या है, उसकी तो दृष्टि हुई नहीं, उसकी खबर नहीं। वह अन्तर में किस प्रकार जाये? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....धर्म माना है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि से ऐसा ही भटका है न!

**शुभाशुभभाव ही प्रधान है और पुण्य-पापरहित मोक्षमार्ग है, उसमें सम्यग्दर्शनादिकरूप आत्मपरिणाम प्रधान है।** देखो! यह मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मुख्य है। भगवान आत्मा ध्रुव परिपूर्ण परमात्मा की अन्तर दृष्टि निर्विकल्प होना, उसका स्वसंवेदन होना, उसमें रमणता होना, वह मोक्षमार्ग में यह प्रधान है। आहाहा! अब उसे तो सम्यग्दर्शन क्या? सम्यग्दर्शन का विषय क्या? उसकी खबर नहीं होती और बाह्य क्रिया से माने। आहाहा! 'बाह्य क्रियामां राचता...' आता है

न श्रीमद् में ? 'अंतर भेद न कांई, माने मार्ग मोक्षनो करुणा उपजे जोई' 'माने मार्ग मोक्षनो...' पश्चात् ? चौथा पद कौनसा ? 'करुणा उपजे...' 'बाह्य क्रियामां राचता अंतर भेद न कांई, ज्ञान मार्ग निषेधता... ज्ञानमार्ग निषेधता, ऐ क्रियाजड़ आहीं।' मिलान खाना चाहिए न वापस। आहाहा! बाह्य क्रिया में राचता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप।

**मुमुक्षु :** यह उसके शरीर की क्रिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शरीर की क्रिया से माने यह। 'अंतर भेद न कांई।' देह और राग से आत्मा भिन्न, उसकी तो खबर भी नहीं होती। उसे सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ धर्म कहाँ से हो ? भारी कठिन काम है जगत को।

**सम्यग्दर्शनादिरूप आत्मपरिणाम...** भाषा देखो! वह दया, दान, व्रत के परिणाम, वह आत्म परिणाम नहीं। वह पुण्य परिणाम है। आहाहा! भगवान की भक्ति, पूजा आदि वह आत्मपरिणाम नहीं, शुभभाव है। शुभभाव तो राग है। आहाहा! गजब! **( हेयबुद्धि सहित ) धर्मानुराग मोक्षमार्ग का सहकारी है...** लो! ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के आश्रय से हुए परिणाम मुख्य है धर्म में। और उसमें उसके साथ सहकारी... हेयबुद्धिसहित है न ? वह तो आश्रय से कहा है। **धर्मानुराग मोक्षमार्ग का सहकारी है और ( आंशिक वीतरागभावसहित ) धर्मानुराग के तीव्र-मन्द के भेद बहुत हैं, इसलिए अपने भावों को यथार्थ पहचानकर अपनी पदवी, सामर्थ्य पहिचान-समझकर श्रद्धान-ज्ञान और उसमें प्रवृत्ति करना; अपना भला-बुरा अपने भावों के आधीन है, बाह्य परद्रव्य तो निमित्तमात्र है,...** लो! **उपादान कारण हो तो निमित्त भी सहकारी हो...**

**मुमुक्षु :** उपादान में भी निमित्त....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है ही न! परन्तु किया नहीं।

**उपादान न हो तो निमित्त कुछ भी नहीं करता है,...** उसमें निमित्त कर्ता कहाँ से आया ? उपादान नहीं, वहाँ निमित्त भी किसका ? **इस प्रकार इस बोधपाहुड़ का आशय जानना चाहिए।** लो! **इसको अच्छी तरह समझकर आयतनादिक जैसे कहे वैसे और उनका व्यवहार भी बाह्य वैसा ही तथा चैत्यगृह,...** जिनप्रतिमा का घर **प्रतिमा, जिनबिम्ब,...** यह व्यवहार। **जिनमुद्रा आदि धातु-पाषाणादिक का भी व्यवहार वैसा**

**ही जानकर श्रद्धान और प्रवृत्ति करना। अन्यमती अनेक प्रकार स्वरूप बिगाड़कर प्रवृत्ति करते हैं, उनकी बुद्धि कल्पित जानकर उपासना नहीं करनी।** अज्ञानी अपनी कल्पित बुद्धि से देव-गुरु-शास्त्र को दूसरे प्रकार से कहते हैं, उसे माने, वह बात खोटी है। **इस द्रव्य व्यवहार का प्ररूपण प्रव्रज्या के स्थल में आदि से दूसरी गाथा में बिम्ब चैत्यालयत्रिक...** देखो! **जिनभवन...** आया न कहा था अभी यह। **बिम्ब चैत्यालयत्रिक और जिनभवन ये भी मुनियों के ध्यान करनेयोग्य हैं, इस प्रकार कहा है...** गाथा कही थी पहले। इन्होंने डाला इसमें देखो। **इसलिए जो जिनमन्दिर, प्रतिमा, पूजा, प्रतिष्ठा आदिक के सर्वथा निषेध करनेवाले, वह सर्वथा एकान्ती की तरह मिथ्यादृष्टि हैं,...** उसका निषेध करनेवाले एकान्तिक मिथ्यादृष्टि हैं। **इनकी संगति नहीं करना।**

**( मूलाचार पृष्ठ ४९२, अध्याय १०, गाथा ९६ में कहा है कि श्रद्धाभ्रष्टों के सम्पर्क की अपेक्षा... )** क्या कहते हैं? जिसकी श्रद्धा निश्चय-व्यवहार की सच्ची ही नहीं। ऐसे का सम्पर्क **श्रद्धाभ्रष्टों के सम्पर्क की अपेक्षा ( गृह में ) प्रवेश करना अच्छा है...** इसकी अपेक्षा, कहते हैं कि विवाह करना, वह ठीक है। क्योंकि विवाह करने में चारित्रदोष है। और ऐसे श्रद्धा भ्रष्ट के परिचय में रहेगा तो मिथ्यात्वी हो जायेगा, कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है हों! मूलाचार का। मूलाचार का है। आहाहा! **श्रद्धाभ्रष्टों के सम्पर्क की अपेक्षा ( गृह में ) प्रवेश करना अच्छा है क्योंकि विवाह में मिथ्यात्व नहीं होगा,...** विवाह करे, उसमें कहीं मिथ्यात्व नहीं है। वह तो राग का दोष है। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! इसे—श्रद्धाभ्रष्ट का परिचय करेगा, महामिथ्यात्व का पाप लगेगा। आहाहा! आचार्य ने कहा है। आहाहा! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का परिचय छोड़ दे। तुझसे न रहा जाता हो तो, कहते हैं कि विवाह करना। एक का दो होना। उसका संग करना, परन्तु यह संग नहीं करना। ऐसा करके तीव्र संग का निषेध करते हैं, हों! कहीं विवाह करने का नहीं कहते। इसके (विवाह के) पाप की अपेक्षा वह (मिथ्यात्व) महापाप है। विवाह करना, लगन करना, वह तो छियानवें हजार स्त्रियाँ चक्रवर्ती को होती हैं। क्षायिक समकिती तीर्थंकर। १६वें, १७वें, १८वें तीर्थंकर चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं। वह पाप कहीं मिथ्यात्व नहीं है। वह तो शरीर का विषय का भाग है, इसलिए पाप है। परन्तु जिससे धर्म मनावे, पुण्य से धर्म मनावे, पर

की पूजा, भक्ति नहीं, व्यवहार को झूठा ठहरावे—ऐसे भ्रष्टाचारियों का संग करना नहीं। लो!

**विवाह में मिथ्यात्व नहीं होगा, परन्तु ऐसे गण...** ऐसे जो साधु के झुण्ड मिथ्यादृष्टि **तो सर्व दोषों के आकर हैं...** सर्व पाप की खान हैं वे तो। आहाहा! **सर्व दोषों के आकर हैं...** समुद्र है। **उसमें मिथ्यात्वादि दोष उत्पन्न होते हैं...** खोटी श्रद्धावाले ऐसे कुतर्क डालेंगे कि तुझे उल्टी श्रद्धा हो जायेगी। आहाहा! **मिथ्यात्वादि दोष उत्पन्न होते हैं। अतः इनसे अलग रहना ही अच्छा है।** ऐसी श्रद्धाभ्रष्ट साधु के झुण्ड से अलग रहना, वह सार्थिक है, ऐसा कहते हैं। जरा भारी सूक्ष्म बात, भाई! लोक को मिथ्यात्व के पाप की महानता-नीचता कितनी है, इसकी खबर नहीं। वह राग का भाग अंश भी हो तो उससे धर्म होता है, ऐसी मान्यता जो है, वह महामिथ्यात्व पाप है। और राग चारित्रदोष का राग हो तो वह अल्पदोष है। 'चरित भट्ठा सिज्झंती।' दर्शनपाहुड़ में आ गया है। चारित्रदोष होगा तो वह ... ख्याल है कि यह दोष है। परन्तु दर्शन भट्ठा न सिज्झंती। परन्तु श्रद्धा से जो भ्रष्ट है, उसकी मुक्ति कभी नहीं होगी। **ऐसा उपदेश है।** लो! लम्बा लेख आया।

★ ★ ★

## गाथा - ६१

**आगे आचार्य इस बोधपाहुड़ का वर्णन अपनी बुद्धिकल्पित नहीं है,...** यह मैंने मेरी कल्पना से नहीं कहा यह सब, ऐसा कहते हैं। ग्यारह बोल कहे न? आयतन, जिनप्रतिमा, जिनमुद्रा सब आत्मा। आत्मा वह जिनप्रतिमा; आत्मा वह जिनमुद्रा; आत्मा वह जिनधर्म का स्थान निश्चय से। व्यवहार, व्यवहार के स्थान में। वह मेरी बुद्धि से नहीं कहा। **किन्तु पूर्वाचार्य के अनुसार कहा है...** पूर्व के आचार्यों ने कहा है, वह मैंने कहा है।

**सद्वियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।**
**सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥६१॥**

**अर्थ :- शब्द के विकार से उत्पन्न हुए इस प्रकार अक्षररूप परिणमे...** यह भाषा है, वह शब्द का विकार है। आहाहा! वह कहीं आत्मा की कहाँ अवस्था है? वीतराग की वाणी भी शब्द का विकार है। आहाहा! जड़ की पर्याय है। आहाहा! देखो न स्पष्टीकरण तो देखो! **शब्द के विकार से उत्पन्न हुए इस प्रकार अक्षररूप परिणमे भाषासूत्रों में जिनदेव ने कहा,...** निमित्त से वचन है न! **वही श्रवण में अक्षररूप आया...** वही श्रवण में अक्षररूप आया। **जैसे जिनदेव ने कहा, वैसा ही परम्परा से भद्रबाहु नामक पंचम श्रुतकेवली ने जाना और अपने शिष्य विशाखाचार्य आदि को कहा।** वह परम्परा से यह चली आयी हुई बात है, ऐसा कहते हैं। मैंने नयी की है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? जिनमार्ग में यह बात परम्परा से चली आती है। आहाहा!

**वह उन्होंने जाना वही अर्थरूप विशाखाचार्य को परम्परा से चला आया। वही अर्थ आचार्य कहते हैं, हमने कहा है, वह हमारी बुद्धि से कल्पित करके नहीं कहा गया है, इस प्रकार अभिप्राय है।** लो! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि यह सब बात ग्यारह स्थान की कही, वह मेरी कल्पना से नहीं। भगवान ने कहा हुआ, भद्रबाहु ने कहा हुआ, विशाखाचार्य ने धारा हुआ परम्परा से चला आया है, ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक-०७-०१-१९७४
गाथा - ६२ ( भावपाहुड़ ) गाथा - १, प्रवचन-८३

अन्तिम गाथा ६२।

★★★

## गाथा - ६२

**आगे भद्रबाहुस्वामी की स्तुतिरूप वचन कहते हैं :—**

**बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।**
**सुयणाणि भद्दबाहु गमयगुरु भयवओ जयउ॥६२॥**

पाँचवें श्रुतकेवली हैं ये, भद्रबाहुस्वामी, भगवान के पश्चात्। उनके स्मरण में स्तुति की।

**अर्थ :- भद्रबाहु नाम आचार्य जयवन्त होवें, कैसे हैं ? जिनको बारह अंगों का विशेष ज्ञान है,...** बारह अंग का पूर्ण ज्ञान था। कहना ऐसा चाहते हैं कि यह सब अधिकार उन्होंने कहे हुए, मैंने कहे हैं। मेरे घर के कहे नहीं। घर के कहे नहीं कल्पित। पाँचवें श्रुतकेवली ने अपने शिष्य को कहा था, उस शिष्य की परम्परा से हमारे तक आया, यह हम कहते हैं यहाँ। **जिनको चौदह पूर्वों का विपुल विस्तार है...** चौदह पूर्व का ज्ञान। बारह अंग के अन्दर अन्तरभेद। **इसलिए श्रुतज्ञानी हैं,...** भावश्रुतज्ञानी और द्रव्यश्रुतज्ञानी दोनों।

**पूर्ण भावज्ञान सहित अक्षरात्मक श्रुतज्ञान उनके था,...** लो! भावश्रुतज्ञान अर्थात् आत्मा के आनन्द का सम्यक्भावश्रुतज्ञान वेदनसहित जो ज्ञान, उसे भावश्रुतज्ञान कहते हैं। विकल्पवाला जो अक्षरात्मक ज्ञान, उसे द्रव्यश्रुत कहते हैं। अन्तर आत्मा अपनी ज्ञानपर्याय से त्रिकाली ज्ञायकभाव को पर्याय में वेदे भावश्रुतज्ञान द्वारा, उसे यहाँ भावश्रुतज्ञान की निर्मल निरपेक्ष पर्याय कहा जाता है। यह उनको थी, ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य

ऐसा कहते हैं। वर्तमान काल में भद्रबाहुस्वामी नहीं थे, कुन्दकुन्दाचार्य के समय में नहीं थे, तथापि उनका जो भाव रहा हुआ, उसे जानकर कहा कि यह भावश्रुतज्ञानी थे। अनन्त काल में जिसने भावश्रुतज्ञान प्रगट नहीं किया। शास्त्र का पठन किया, परन्तु यह आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य का जो भाव ज्ञान-आनन्दरूप होकर उसे प्रगट नहीं किया, वह इन्होंने प्रगट किया था। देखो! छद्मस्थ मुनि, छद्मस्थ भद्रबाहुस्वामी की परीक्षा करके बैठे हैं। कोई कहे कि ऐसा कुछ ... दूसरे आत्मा कैसे हों, उसकी क्या खबर पड़े? इसमें तो ऐसा लिखा है। चेतनजी!

श्रुतज्ञानी थे। **गमक गुरु हैं, जो सूत्र के अर्थ को प्राप्त कर उसी प्रकार वाक्यार्थ करे...** वाक्यार्थ अर्थात् जो कहना है, उसका भावार्थ बताते हैं। शब्दशः **उसको गमक कहते हैं, उनके भी गुरुओं में प्रधान हैं,...** शास्त्रार्थ समझावे, उसका क्या परमार्थ है? उसके ऊपर वे गुरु प्रधान थे। **भगवान हैं...** पाठ में है न। **'भयवओ जयउ'** कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं। आहाहा! भद्रबाहुस्वामी को भगवानरूप से सम्बोधन करते हैं। समझ में आया? वे भगवान थे। **सुरासुरों से पूज्य हैं,...** देव, दानव और मनुष्य से वे पूज्य थे। यह पंचम काल के साधु की बात है, हों! **वे जयवन्त होवें।** यह मांगलिक किया और स्तुति की।

**इस प्रकार कहने में उनको स्तुतिरूप नमस्कार सूचित है।** ऐसा कहना से स्तुतिरूप वचन को नमस्कार है। जयवन्त हो। भद्रबाहुस्वामी बारह अंग के जाननेवाले, चौदह पूर्व के विस्तार इत्यादि ज्ञानवाले आत्मज्ञानी और अक्षरात्मक ज्ञान को समझनेवाले। वे जयवन्त हों। ऐसा कहकर उत्कृष्ट मांगलिक किया है। नमस्कार किया है। **इस प्रकार कहने में उनको स्तुतिरूप नमस्कार सूचित है। 'जयति' धातु सर्वोत्कृष्ट अर्थ में है...** जय हो। यह सर्वोत्कृष्ट। भगवान आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन का जो भावश्रुतज्ञान और उससे केवलज्ञान प्राप्त हो, वह जयवन्त रहो। नमस्कार किया है। **सर्वोत्कृष्ट कहने से नमस्कार ही आता है।**

**भावार्थ :- भद्रबाहुस्वामी पंचम श्रुतकेवली हुए।** ऐसा कहने का अर्थ क्या है? कि श्वेताम्बर पंथ पहले निकल गया, कुन्दकुन्दाचार्य होने से पहले। अनादि सनातन दिगम्बर जैनदर्शन परम जैन सत्यदर्शन। उसमें से श्वेताम्बर भगवान के पश्चात् छह सौ वर्ष में निकले। इससे कहा कि वह मार्ग वीतराग का नहीं। वीतराग ने जो कहा हुआ

मार्ग सर्वज्ञ का यह मार्ग है। समझ में आया? यह भारी विवाद उठे न बड़े। ... और श्वेताम्बर में से स्थानकवासी तो अभी पाँच सौ वर्ष (पहले) निकले। स्थानकवासी, श्वेताम्बर में से निकले हुए और उसमें से यह तुलसी तेरापंथी तो अभी निकले। यह वीतराग मार्ग—सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग से विरुद्ध है। भारी कठिन। अनादि सनातन सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग, वह भद्रबाहुस्वामी पाँचवें श्रुतकेवली ने कहा, वही मार्ग मैंने इसमें कहा है, ऐसा कहते हैं। 'वाडा बाँधकर बैठे...' ...लालजीभाई! भारी कठिन काम।

**भद्रबाहुस्वामी पंचम श्रुतकेवली हुए।** नग्न दिगम्बर मुनि थे। जैनदर्शन में दिगम्बर ही मुनि होते हैं। दूसरे मुनि को जैनदर्शन मुनि नहीं कहता। वह जो कहते हैं, वह सब अन्यमत है। जैनमत नहीं। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? **उनकी परम्परा से शास्त्र का अर्थ जानकर...** भगवान भद्रबाहुस्वामी पाँचवें श्रुतकेवली हुए। उनकी परम्परा में **शास्त्र का अर्थ जानकर यह बोधपाहुड़ ग्रन्थ रचा गया है, इसलिए उनको अन्तिम मंगल के लिये आचार्य ने स्तुतिरूप नमस्कार किया है। इस प्रकार बोधपाहुड़ समाप्त किया है।** लो! ६२ गाथा।

अब अन्तिम छप्पय।

**छप्पय**

**प्रथम आयतन दुतिय चैत्यगृह तीजी प्रतिमा।**
**दर्शन अर जिनबिंब छठो जिनमुद्रा यतिमा॥**
**ज्ञान सातमूं देव आठमू नवमूं तीरथ।**
**दसमूं है अरहंत ग्यारमूं दीक्षा श्रीपथ॥**
**इस परमारथ मुनिरूप सति अन्य भेष सब निंद्य है।**
**व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है॥१॥**

ऐसा मार्ग भगवान का है, भाई! दिगम्बर मुद्रा के अतिरिक्त जैन साधुपना तीन काल में नहीं होता। अन्य वेश जैनमार्ग में तो निन्दनीय कहा है। यह वस्त्रसहित मुनिपना, वह जैनदर्शन नहीं। ऐसी बात है, बापू! ... मार्ग तो यह था अनादि का। अनादि तीर्थंकर केवली परमात्मा ऐसा कहते ही आये हैं। यह जैन दिगम्बरदशा हो साधु की। और वे

वन में ही होते हैं। वे आत्मा के अन्तर आनन्द के ध्यान में मस्त हों। उन्हें यहाँ जैनदर्शन में मुनि गिनने में आया है। बाकी अन्य वेश को मुनि गिनने में आया नहीं। क्या कहते हैं, देखो न!

**व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है।** इसका अर्थ पहला। प्रथम आयतन वह मुनि आनन्दस्वरूप की दशा में जो लीन है, उन्हें धर्म का स्थान कहा जाता है। यह बाहर के धर्म के स्थान तो बाह्य रहे। अन्तर आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें से जिसने निर्मल आनन्द आदि शक्ति की व्यक्तता प्रगट की है। ऐसा जो आनन्द का धाम, वह आत्मा स्वयं धर्म का स्थान है। मुनि का आत्मा धर्म का स्थान है, ऐसा कहते हैं। यह उपाश्रय और मन्दिर, वह तो बाह्य की बातें। वह कहीं वस्तुस्थिति नहीं। आहाहा! उसके घर में से, भगवान अनन्त आनन्द का—ज्ञान का सागर प्रभु, उसकी अन्तर दृष्टि करने से और अन्तर स्थिर होने से उसकी वीतरागीदशा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र वीतरागी निर्दोष दशा जहाँ उत्पन्न हुई है, उसे यहाँ धर्म का स्थान कहा जाता है। निश्चय तो यह धर्मस्थान आत्मा है। समझ में आया? कठिन बातें, भाई!

और वह मुनिपना प्रगट करे उसे। भावलिंग सम्यग्दर्शनसहित। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा का अनुभव आनन्द का। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसमें प्रतीति होना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। बहुत अन्तर, भाई! वर्तमान में बहुत फेरफार हो गया है। वह कहते हैं आयतन। धर्म का आयतन तो आत्मा, मुनि है। जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकारी आनन्द प्रगट हुए हैं, उसे धर्म का स्थान कहा जाता है। नित्य चैत्यगृह-प्रतिमा का मकान, वह भी आत्मा। बाहर का प्रतिमा का (मकान) वह तो व्यवहार है। अन्दर का भगवान आत्मा चैत्य आत्मा आनन्द का धाम, अनन्त गुण का स्वरूप, वह चैत्यगृह, वह आत्मा का ... है। आहाहा! जिसमें अनन्त ज्ञान बसता है, अनन्त आनन्द बसता है, ऐसा जो आत्मा, जिसे मोक्षमार्ग की दशा में प्रगट हुआ, उसे यहाँ चैत्यगृह कहा जाता है। भगवान आत्मा चैत्यगृह है। आहाहा! समझ में आया?

**तीजी प्रतिमा...** यह जिनप्रतिमा भी... राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं, वे राग हैं। उस रागरहित जिसने चैतन्यबिम्ब अन्दर प्रगट किया है, उसे यहाँ जिनप्रतिमा कहा जाता है। वह तो व्यवहार प्रतिमा है। निश्चय तो जिनप्रतिमा परमात्मा ने उसे कहा

है। आहाहा! **दर्शन...** चौथा दर्शन। जैनदर्शन उसे तीर्थंकरदेव केवलियों ने, श्रुतकेवली ने, भद्रबाहुस्वामी ने उसे कहा है कि जिसे बाह्याभ्यन्तर रागादि का त्याग अन्तर में राग का त्याग, बाह्य में वस्त्र का त्याग और अभ्यन्तर में आनन्द के भावसहित का आहार लेने का खड़े-खड़े आहार। हाथ में आहार खड़े-खड़े—उसे जैनदर्शन कहा जाता है। कठिन बातें, भाई! समझ में आया? खड़े-खड़े आहार, मुनि को नग्नदशा हो। जिसे वस्त्र का तिल का तुष जितना छिलका भी न हो। ऐसी दशा अनन्त तीर्थंकरों ने वर्णन की थी। ऐसी जिसे अन्तर में प्रगट हुई है, उसे यहाँ जैनदर्शन कहा जाता है। उसे जैनमार्ग कहा जाता है। वस्त्रसहित को मुनिपना माने, वह जैनदर्शन नहीं। वह जैनमार्ग नहीं। वह अन्य मार्ग है। समझ में आया? भारी कठिन बात है। नये लोगों को... मार्ग तो यह है। अभी पूरा फेरफार हो गया।

भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में बारह (वर्ष का) दुष्काल पड़ा। बारह दुष्काल लगातार बारह। वस्त्र बिना निभ नहीं सके। वस्त्र का टुकड़ा रखा। पहले तो वस्त्र का टुकड़ा रखा। सनातन दिगम्बर मुनि का धर्म तो अनादि से चला आता है। बारह दुष्काल में एक फालक टुकड़ा रखा था। उसमें से फिर पूरा पंथ निकाला और फिर श्वेताम्बर के साधु ने रचे हुए सब ८४, ४५, यह ३२ श्वेताम्बर के साधु ने... रचे हुए थे। वे सब कल्पित रचे हुए हैं। वे भगवान के कहे हुए नहीं हैं।

**मुमुक्षु :** .... वे विचार क्यों नहीं करते?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तुमने क्यों नहीं किया अभी तक? ...बापू! आहाहा! परिवर्तन किया है तो कुछ कारण होगा या नहीं? वरना पहले स्थानकवासी में ... चार महीने ४५ वर्ष रहे। हमारे पिताजी का धर्म वह था। ...गृहस्थ थे, ... थे पिताजी के पिताजी। बड़े इज्जतवाले थे। गढडा में प्रमुख थे। लक्ष्मीचन्द कामदार ने कहा न भाई एक बार। लक्ष्मीचन्द। पिताजी ... बाप लक्ष्मीचन्दभाई थे। ... गढडा आये। तुम्हारे पिता के पिता लक्ष्मीचन्द थे न, एक बार उन्होंने कहा था कि गीगा कुरा तो गाँव में प्रमुख घर था भाई, ऐसा कहते। यह लक्ष्मीभाई कहते। लक्ष्मीभाई छोटी उम्र के थे तब देखे हुए। हमारे पिताजी के पिताजी राजकुमार जैसे। सुन्दर शरीर और प्रमुख और पूरे गढडा में पक्का मकान पहला-पहला उनका। लक्ष्मीचन्दभाई एकबार कहते थे कि अपने

स्थानकवासी में प्रमुख घर गीगा कुरा का है। ऐसा कहते थे। (संवत्) १९७८ में गुजर गये न? मैं वहाँ था। ... तब मैं वहाँ था। सवेरे मैं दर्शन देने गया था सवेरे। शाम को गुजर गये। ...भाई के मकान में। बहुत वर्ष हो गये। ५२ वर्ष हुए। ७८ .... २२।

यहाँ भगवान दर्शन उसे कहा। यह तो कल आ गयी है बात। कि जिसकी दशा अन्तर में आत्म अनुभव होकर सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो। वह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? वजुभाई! बहुत सूक्ष्म बातें। सम्यग्दर्शन तो परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव उसे कहते हैं कि आत्मा अनन्त आनन्द का धाम, अनन्त गुण का स्वरूप, उसकी जिसे अन्तर दृष्टि हुई और राग से भिन्न पड़कर, मन के राग से भिन्न पड़कर स्वरूप के अनुभव में प्रतीति हो, तब उसे सम्यग्दर्शन और चौथा गुणस्थान कहा जाता है, लो! आहाहा! यह पाँचवाँ श्रावक का तो बाद में। सच्चे श्रावक। वाड़ा के वे श्रावक नहीं। यह तो सब वाड़ा के माने हुए हैं। भगवान के कहे हुए, वे श्रावक नहीं। कपूरभाई! आहाहा!

कहते हैं, सम्यग्दर्शन आत्मा के अनुभव की दृष्टि और तदुपरान्त स्वरूप में वीतरागता की दशा चारित्र और बाह्य में जिसकी नग्नमुद्रा माता से जन्मा ऐसी और खड़े-खड़े आहार और जिसके ज्ञान में नौ-नौ कोटि से शुद्धता। कोई ज्ञान में कमी— न्यून, अधिक, विपरीत नहीं। ऐसा जिसे अन्तर सम्यग्ज्ञान हो और सम्यक्चारित्र हो और नग्नमुद्रा हो, उसे भगवान ने जैनदर्शन कहा है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की आवाज दिव्यध्वनि में यह आयी है। महाविदेह में परमात्मा सीमन्धर भगवान विराजते हैं। उनके मुख से यह सुनकर अनुभवकर आये हुए आचार्य जगत को कहते हैं। कहो, समझ में आया? भारी कठिन, भाई! अभी के लोगों को बेचारों को... लो, यह और महँगाई और उसमें यह... आहाहा! धर्म महँगा और अनाज महँगा। आहाहा!

**मुमुक्षु :** सब आवश्यकता .... तो महँगी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** महँगी। सब आवश्यकतावाली महँगी। यहाँ विवाद है और यहाँ दिक्कत उठी। सूरत में, बारडोली। आहाहा! अरे! ऐसी अनाज जैसी चीज़ जहाँ साधारण कुत्ते को भी मिले, ऐसी चीज़ जहाँ महँगी, वहाँ धर्म बापू... आहाहा! उस धर्म की श्रद्धा सम्यग्दर्शन तो अतिदुर्लभ वस्तु है। जिसके अन्त पटल खुल जाये। आहाहा!

अनन्त गुण का समुद्र प्रभु, ऐसे अनन्ता-अनन्तगुण का समुद्र, उसके सब अंश प्रगट हो गये हैं, कहते हैं। अनन्त गुण, शक्तिरूप अनन्त गुण जो आत्मा में हैं। जितने सिद्ध की पर्याय में प्रगट हुए, वे सब ही गुण आत्मा में अनन्त पड़े हैं। वे अन्दर में से अनुभव करके जिसने अनन्त गुण के अंश निर्मल शुद्ध आनन्दसहित प्रगट किये, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! तदुपरान्त पश्चात् जिसे थोड़ी शान्ति बढ़े, वीतरागदशा में आनन्द की झलक बढ़े, उसे पाँचवें गुणस्थानवाला श्रावक कहा जाता है। उसमें से जिसे शान्ति और आनन्द विशेष बढ़े और जिसकी नग्नमुद्रा हो जाये, उसे जैनदर्शन, उत्कृष्ट दर्शन कहते हैं। आहाहा! यह दर्शन की व्याख्या है। अपने सब आ गयी है। दर्शनपाहुड़ में आ गयी हैं, इसमें आ गयी है। दोनों में १४वीं गाथा में आ गयी है।

तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर अरिहन्तदेवों ने यह कहा है, वह यह कहा जाता है। समझ में आया? **जिनबिम्ब...** जिनबिम्ब भी आत्मा वीतरागमूर्ति होकर प्रगट हो, उसका नाम जिनबिम्ब। यह जिनबिम्ब तो व्यवहार है। इसकी भक्ति आदि करने से पुण्य और शुभभाव है; धर्म नहीं। आहाहा! भारी कठिन। समझ में आया? यह आत्मा वीतरागमूर्तिरूप परिणमे। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे तो राग हैं। उनसे रहित होकर अन्तर में वीतराग की धारा के अंकुर फूटे, ऐसी दशा को जिनबिम्ब कहा जाता है। आहाहा! चैतन्य प्रतिमा स्थाप, यह तो आता है न श्रीमद् में? श्रीमद् में आता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** आत्मा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... चैतन्य प्रतिमा। आहाहा! विकल्प जिसे शुभराग भी जहाँ नहीं। ऐसी आत्मा की अन्तर शक्ति जो वीतरागस्वरूप प्रभु है। ऐसी पर्याय में वीतरागता प्रगट हुई, उसे जिनबिम्ब कहा जाता है। आहाहा! वीतराग का मार्ग सुनना जहाँ बहुत मुश्किल पड़ा है। वह समझे और प्रगट तो कब करे? आहाहा! बहुत दुर्लभ हो पड़ा है। जगत के अवतार व्यर्थ चले जाते हैं ऐसे के ऐसे। तत्त्व के वास्तविक सत्य के स्वीकार बिना। चिमनभाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मार्ग तो यह है, बापू! अनादि का मार्ग। महाविदेहक्षेत्र में यही मार्ग चलता है। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ यह मार्ग चलता है। मुनि नग्न दिगम्बर आत्मध्यानी मस्त। कोई दूसरा वहाँ वेश भी नहीं। यहाँ तो यह वाड़ा के बहुत वेश पड़ गये। श्वेताम्बर और दिगम्बर तथा श्वेताम्बर में स्थानकवासी और स्थानकवासी में तेरापंथी। वहाँ (विदेहक्षेत्र में) दूसरा पंथ है नहीं। एक ही वीतराग एक ही पंथ है। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। वजुभाई! बहुत सूक्ष्म पड़े वाड़ा में से निकलना। ...खबर नहीं, बापू! ३९ वर्ष हुए हैं। वरना उसमें... अपने यह पुराने... ७० वर्ष की उम्र है।

**मुमुक्षु :** बहुत ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, है न। चारों भाई। मगनभाई और बड़े भाई। ... थे न तब बैंगलोर। इस वस्तु बिना धूल और धाणी है, बापू! ऐसा है। आहाहा! तीन लोक के नाथ अरिहन्त देव परमेश्वर ने यह मार्ग कहा। भाई! तुझे अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव उठें, वह भी राग है, प्रभु! हमारे मार्ग में तो। उस रागरहित अन्तर आत्मा की दृष्टि अनुभव होकर स्थिरता जम जाये अन्दर। आहाहा! इसका नाम यहाँ जिनबिम्ब और जिनप्रतिमा कहा जाता है।

'**छठो जिनमुद्रा यतिमा**' जिनमुद्रा यह है नग्नमुनि। यतिमा कहा है न? यतिमा। यति। मुनि हैं, वे यतना—स्वरूप की जतना करनेवाले अन्दर। जिनकी मुद्रा माता से जन्मा ऐसी जिनकी देह होती है। वस्त्र का धागा भी रखे और मुनि माने, मनावे और माननेवाले को भला जाने, भगवान का फरमान है कि निगोद में जायेगा। गाथा में आ गया है, भाई! निगोदगामी है। एकेन्द्रिय आलू, शक्करकन्द में अवतरित होनेवाला है। आहाहा! भारी कठिन बातें, भाई! कहो, वीरचन्दभाई! अफ्रीका में ऐसा मिले वहाँ? आहाहा!

**ज्ञान...** ज्ञान उसे कहते हैं कि जिसमें आत्मा प्रधानरूप से मुख्य प्रगट हुआ हो। शास्त्र का ज्ञान, वह यहाँ ज्ञान नहीं। जैनदर्शन में ज्ञान उसे कहते हैं कि जिसमें आत्मा आनन्द का नाथ, वह ज्ञान में मुख्य है और प्रगट हुआ है। आहाहा! आत्मा का ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं, ऐसा है। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान और जगत के समझाने का, संस्कृत का,

व्याकरण का, उसे भगवान के ज्ञान में वह ज्ञान नहीं, यह कहा है। आहाहा! जिसमें भगवान आत्मा 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' उसे सिद्ध स्वरूप परमात्मा अपना आत्मा का है। उसका जिसे अन्तर ज्ञान हो, और उस ज्ञान में प्रयोजन आत्मा है। आहाहा! जिस ज्ञान में हितरूप से आत्मा में झुकाव है, आत्मा की श्रद्धा है, आत्मा का ज्ञान है, आत्मा में... है, उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! जो ज्ञान अन्तर में ढले, उसे ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! राजेन्द्रभाई! ऐसा तो सुना नहीं था। आहाहा! जो ज्ञान आत्मा प्रभु स्वयं परमात्मस्वरूप से विराजमान है। वस्तु का स्वभाव ही परमात्मा और वीतरागमूर्ति ही आत्मा है। वह उसका ज्ञान करे और उसकी ओर ढले, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान सातवाँ।

**देव आठमू...** देव-देव की व्याख्या आ गयी है। ददाति इति देव। अरिहन्त भगवान त्रिलोकनाथ, वे देव। वे आत्मा को दे। क्या दे? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। निमित्त है न, निमित्त? निमित्त की अपेक्षा से (बात है)। यह आ गया है। भगवान अरिहन्त देव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा, वे आत्मा का ज्ञान बताते हैं, आत्मा का आनन्द बताते हैं, आत्मा का चारित्र बताते हैं, तो उन्होंने दिया—ऐसा कहा जाता है। देव—ददाति इति देव। सुदेव हैं ऐसा। लो!

**नवमूं तीरथ।** यह सब बाह्य में तीर्थ जो हैं, वह तो व्यवहारतीर्थ हैं। अन्तर भगवान आत्मा अपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र वीतरागीदशा जो तिरने का उपाय (है, इसलिए) वह तीर्थ है। तीर्थ आत्मा की वीतरागदशा में तीर्थ है। समझ में आया? यह तीर्थ जाये, यह तीर्थ जाये, वह तिरने का उपाय वहाँ नहीं। तिरने का उपाय तो यहाँ अन्दर है। शुद्ध आनन्दघन प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सनाथ आत्मा, उसकी अन्तर में निर्विकल्प श्रद्धा, निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान और वीतराग चारित्र, उसे यहाँ तीर्थ कहा जाता है। जिसमें स्नान करने से संसार का नाश होता है। बाहर में स्नान करने से, मछलियाँ भी स्नान करती हैं बाहर तो। समझ में आया? आहाहा! **आत्मा...** आता है न। ... आता है। ... कहते सम्प्रदाय में। तीर्थ।

**दसमूं है अरिहन्त...** अरिहन्त किसे कहना? नाम से, स्थापना से, द्रव्य से और भाव से; यह स्थापना से नहीं। यह स्थापना व्यवहार स्थापना है। अन्दर मार्ग में भगवान

अरिहन्त किस गुणस्थान में हैं, किस गति में हैं ? किस स्थिति में हैं ? कितने ज्ञान में हैं, दर्शन में हैं—उसकी जो स्थापना, उसे अरिहन्त की स्थापना अन्तर में कहा जाता है। आहाहा! यह दसवीं व्याख्या की। सभी व्याख्या आ गयी है।

**ग्यारमूं दीक्षा श्रीपथ...** मोक्षरूपी लक्ष्मी का पंथ प्रव्रज्या। आहाहा! वह यह। जिसे अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान अनुभव में जिसे आया है और तदुपरान्त जिसे प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा, वीतरागदशा जिसकी रमणता प्रगट हुई है और बाहर में जिसकी नग्नदशा है, उसे वीतरागमार्ग में प्रव्रज्या कहा जाता है। यह दीक्षा उसे कहा जाता है। बाकी सब दख्याओं है ... दुःख का ... है। समझ में आया ? मुँडाते हैं मुम्बई में। सब सुना है। सब मिथ्यादृष्टि गृहीत मिथ्यात्व के पोषक हैं। आहाहा! दुःख की पुष्टि के लिये वह दीक्षा है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह तो सब बात निश्चय की ही पहले आयी। व्यवहार कहाँ आया ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार कहा यह। सामने प्रतिमा, वह सब व्यवहार। यह कहते हैं इसमें, देखो!

**इम परमारथ मुनिरूप सति...** यह ग्यारहवाँ ... **अन्य भेष सब निन्द्य है...** वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा के मार्ग में ऐसे नग्नमुनि की दशा के अतिरिक्त जितने वेश, वे सब निन्दनीक हैं। ऐसा है, भाई! गले उतरना बहुत कठिन। ऐई! शान्तिभाई! यह तो ऐसा आया। **अन्य भेष सब निन्द्य है,...** वस्त्र का रखकर, पात्रा रखकर, लाल कपड़े पहनकर, पीले कपड़े पहनकर हम साधु हैं—ऐसा मानते हैं, मनाते हैं और उसे जो साधु मानते हैं, वे सब वेश निन्दनीक हैं। वीतरागमार्ग में वे प्रशंसक नहीं हैं। आज माने, कल माने, परन्तु यह मानना ही पड़ेगा। समझ में आया ?

**व्यवहार धातुपाषाणमय...** इसमें ऐसा है। यह भगवान की धातु की प्रतिमा, पूजा, भक्ति, सब आकृति, वह व्यवहार है, शुभभाव है। भगवान की पूजा, भक्ति, बहुमान, विनय, प्रतिमा का, वह शुभभाव है। वह धर्म नहीं। परन्तु वह शुभभाव आये बिना रहता नहीं। भगवान का स्मरण करना, णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... वह भी एक शुभभाव राग है; धर्म नहीं। आहाहा! जगत को भी पानी उतर जाये ऐसा है। भाई! इसने

कभी वीतराग मार्ग सुना नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर अनन्त हो गये, वर्तमान परमात्मा विराजते हैं। महाविदेह में तो लाखों केवली विराजते हैं और दिगम्बर सन्त, केवली विराजते हैं। आहाहा! समझ में आया? सबका मार्ग एक यह। ऐसा मार्ग था, है और रहेगा। बाकी जितने वर्तमान नये निकले, वे सब पंथ... आहाहा! पूरी जिन्दगी ... हो, उसमें अवतार हुए हों, वह उसका पोषण मिला हो ऊपर। अब उसे यह बात...। ...भाई!

**व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनकी वन्द्य है।** व्यवहार से वन्द्य, ऐसे को वन्द्य। यह भी उसे प्रतिमा में वस्त्र, गहने, वह प्रतिमा भी वन्द्य नहीं। भगवान की मूर्ति तो ऐसे एकदम वीतराग... वीतराग... ऊपर वस्त्र नहीं, गहना नहीं, मुकुट नहीं यह ... वह सब विकृत मार्ग, व्यवहार से विकृत मार्ग है। आहाहा! व्यवहार से जिनप्रतिमा जैसे भगवान थे, वैसा बिम्ब सामने होता है। वह शुभभाव में निमित्त है। ओहोहो! ...होकर मार्ग को नोंच डाला। यद्यपि बेचारे साधारण मनुष्य को तो क्या मानना? एक कुछ कहे... एक कुछ कहे... एक कुछ कहे... आहाहा! तेरापंथी कुछ कहे, स्थानकवासी ... वाले कुछ कहे। श्वेताम्बर में भी मन्दिरमार्गी कुछ कहे। कहे कुछ और उसका दूसरा कुछ कहे। आहाहा! ...देवी की स्तुति करना। ... तीन ... तीन थोई, चार थोई, ऐसा आता है न। देवी की स्तुति भी, परन्तु देवी-देवला। भगवान को तो... तीन लोक के नाथ को ऐसे देव कहना... यह कुलदेव कैसा? इसकी कुलदेवी... रखते हैं। पद्मावती। सब भ्रष्ट है, बापू! तीन लोक के नाथ देव, उनके पास दूसरा कौन देव? समझ में आया? आहाहा!

**भयो वीर जिनबोध यहु गोतमगणधर धारि।**
**बरतायो पंचमगुरु नमूं तिनहिं मद छारि॥२॥**

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज प्रमोद में भद्रबाहुस्वामी को नमन करते हैं। ओहोहो! **भयो वीर...** महावीर परमात्मा चौबीसवें तीर्थंकर। **जिनबोध...** जिन्होंने बोध दिया। परमात्मा जिनवर तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान के पश्चात् बोध दिया। **यहु गोतमगणधर धारि,...** गौतम गणधर चार ज्ञान के धनी। उन्होंने यह... भगवान ने कहा हुआ धारा हुआ। उसमें **बरतायो पंचमगुरु...** यह पंचम केवली भद्रबाहुस्वामी, उन्होंने इस पंथ को

बाहर प्रकाशित किया। जैसा भगवान ने कहा था, गणधर ने धारण किया था, वैसा श्रुतकेवली ने कहा। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**बरतायो पंचमगुरु...** भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवली नग्न दिगम्बर मुनि जिनके हजारों शिष्य थे। आहाहा! उन्होंने इस पंथ को बाहर प्रकाशित किया। **नमूं तिनहिं मद छारि।** देशवचनिका है। मद को टालकर हम भद्रबाहुस्वामी को नमन करते हैं, कि जो ऐसा मार्ग सत्य को बाहर लाये। पंचम काल में भी वीतराग का मार्ग भी ऐसा है, ऐसा उन्होंने प्रकाशित किया। समझ में आया? दुनिया और समाज... हो या न हो, ऐसी जिन्होंने दरकार की नहीं। ऐसे मार्ग में कौन मानेगा? कितने मानेंगे? मानेंगे या नहीं मानेंगे, मार्ग यह है। समझ में आया? यह चौथा अधिकार पूरा हुआ, लो!

**इति श्री कुन्दकुन्दस्वामी विरचित बोधपाहुड़ की जयपुरनिवासी पंडित जयचन्द्र छाबड़ा कृत देशभाषामयवचनिका समाप्त।** प्रचलित भाषा में कथन किया।

## —५—
## भावपाहुड़

अब पाँचवाँ भावपाहुड़। बड़ा ग्रन्थ १०५ गाथायें। १०५ है न भाई? १०५। बड़े में बड़ा यह। आठ पाहुड़ में पाहुड़ अर्थात् सार, सार अर्थात् प्राभृत अकेला। आहाहा! भावपाहुड़। अथ भावप्राभृत, प्राभृत अर्थात् सार। भावसार। भाव में सार। शुभ, अशुभ और शुद्धभाव, उसमें शुद्धभाव सार है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोगवासना, वह अशुभभाव। दया, दान, व्रत, तपस्या, उपवास, वह शुभभाव राग और उस रागरहित आत्मा का शुद्धभाव-पवित्रभाव प्रगट करना, उसे सारभाव कहा जाता है। आहाहा! भावसार। यह भावसार कहा न! भावसार नहीं ... आता अपने? ... था न तब? ... भूल गये। सुन्दरजी। सुन्दरजी भावसार हमारे साथ पढ़ता था। यह तो ७०-७२ वर्ष पहले की बातें हैं। १२ वर्ष की उम्र थी न जब, तब ७२ वर्ष पहले भावसार था। सुन्दररूपा। उमराला का स्थानकवासी। भावसार है न स्थानकवासी। विद्यालय में पढ़ने साथ बैठें। तो उसे ऐसी आदत पड़ गयी कि नाक में से एक गूंगा निकाले। निकालकर दाँत के बीच में दबाये। दाँत के बीच में दबाये, इतना नहीं, परन्तु वापस जीभ का सिरा छुआवे। अरे! यह सुन्दरजी तू क्या करता है यह? निकाल डाले। फिर पाव घण्टे (पन्द्रह मिनिट) आड़ी-टेढ़ी नजर हमारी, वहाँ वापस दूसरा निकाले। अरे! सुन्दरजी! यह क्या करता है? भाई! मुझे आदत पड़ गयी, ऐसा कहे बेचारा। सुन्दरजी रूपा था। मुझे आदत पड़ गयी है।

इसी प्रकार भगवान कहते हैं, हे सुन्दररूपा! ज्ञानरूपी चैतन्यघन है तू, भाई! ... अशुभभाव के ढ़ेर हैं सब। ... परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव भी वह शुभराग गूंगा है। वह गूंगा (नाक का मैल)। उस गूंगा का स्वाद लेनेवाला मिथ्यादृष्टि है। ...वह नहीं परन्तु शुद्धभाव। आहाहा! मुनि के—सच्चे मुनि के पंच महाव्रत, सच्चे मुनि के, वह भी राग, शुभराग है। आहाहा! भाव में सार नहीं। समझ में आया? कायर जैसा जिसका कलेजा, अब उसे ऐसी बातें माप में लेना। कभी सुना नहीं। उसके साधु को खबर नहीं। उसके कहनेवाले साधु को कि सच्चा मार्ग क्या है? उस साधु को, समकित किसे कहना, इसकी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह उसके पास सब बातें सुनी हो। भाई! आहाहा!

पाँचवाँ है, देखो! आठ पाहुड़ है न? उसमें पाँचवाँ है। **आगे भावपाहुड़ की वचनिका लिखते हैं:**—यह सब उत्कीर्ण हो गये हैं अन्दर। स्वर्ण के... उसमें... अष्टपाहुड़ सोने के अक्षर में लिखा गया है। वह बराबर... न करे। व्यवस्थित नहीं पढ़े जाते थे पंचास्तिकाय का संस्कृत। धीरुभाई कहते थे। ... धीरुभाई ... यह तो भगवान की वाणी है। सेठ! मशीन से उत्कीर्ण हुई है। यह हिन्दुस्तान में पहली है। आहाहा! क्योंकि मशीन ही पहले नहीं थी। हिन्दुस्तान में पहली मशीन यहाँ दी इटली वालों ने। यह पोपटभाई का पुत्र गया था न वहाँ। हसमुखभाई। अभी रह गया है। आयेगा वापस। वढवाण के हैं। अपने दशाश्रीमाली। करोड़पति। दस करोड़ रुपये। ... एक ... लाये। पौने चार लाख अक्षर पाँच महीने में उत्कीर्ण हो गये हैं। यह हिन्दुस्तान में पहला। वरना ऐसा करे टांकी से, नहीं? परन्तु ऐसे अक्षर नहीं। यह तो एकधारा अक्षर। ओहोहो! सीतारामभाई कहे, ओहोहो! ऐसे अक्षर कहाँ से आये? ... हों! बहुत अक्षर लिखे होंगे परन्तु ऐसे देखे नहीं हों। थे नहीं तो कहाँ से देखे? वह यह अष्टपाहुड़ वहाँ (परमागममन्दिर में) लिखा जाता है। ...उत्कीर्ण हुआ है।

**परमात्मकूं वंदिकरि शुद्धभावकरतार।**
**करूँ भावपाहुडतणीं देशवचनिका सार॥१॥**

मैं प्रचलित भाषा में अर्थ करता हूँ। भगवान ने कहे हुए भाव को, कुन्दकुन्दाचार्य ने कहे हुए भाव को प्रचलित भाषा में मैं (अर्थ करता हूँ।) पण्डित जयचन्द्रजी हुए जयपुर में। **परमात्मकूं वंदिकरि...** सर्वज्ञ परमात्मा को वन्दन करके... त्रिलोकनाथ अरिहन्त को... **शुद्धभाव-करतार...** यह शुद्धभाव के करनेवाले वे थे। आहाहा! शुद्ध अर्थात् शुभ और अशुभभाव से रहित। मुनि शुद्ध उपयोगी ही होते हैं, उन्हें मुनि कहते हैं। समझ में आया? और शुद्ध उपयोग अर्थात् क्या, वह सुना न हो बेचारे ने। आहाहा! यह व्रत और अव्रत के भाव, दोनों अशुद्ध हैं। उनसे रहित आत्मा के पवित्र स्वरूप में एकाग्र होकर जिसने निर्विकल्प शुद्ध उपयोग प्रगट किया है। यहाँ तो घात न करो, घात न करो जीव को। अरे! भगवान! सुन न अब! ऐसी बातें तो कुम्हार भी करे ... सबको ऐसी ही है। आहाहा!

भगवान ने तो शुद्धभाव कहा है। आहाहा! तेरा स्वरूप ही शुद्ध चिद्घन है। उसमें अन्दर में पुण्य और पाप के विकल्प से रहित होकर अन्तर में शुद्ध निर्मल आनन्द की धारा बहे, उसे यहाँ शुद्ध उपयोग, शुद्धभाव, उसका यह अधिकार है। आहाहा! यह शुभभाव धर्म नहीं। चाहे तो व्रत का परिणाम हो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह सब शुभभाव है। वह धर्म नहीं, वह शुद्धभाव नहीं, वह वीतराग के कहे हुए सत्य का सत्त्व नहीं। कठिन काम, भाई! शुद्धभाव कर्ता। **करूँ भावपाहुडतणीं...** भगवान ने कहे हुए कुन्दकुन्दाचार्य ने, उनके भावतणी **देशवचनिका सार।** प्रचलती भाषा में मैं अर्थ करूँगा, कहते हैं।

**इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके...** वचनिकाकार, मुनि **श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत भावपाहुड़ की गाथाबद्ध देशभाषामय वचनिका लिखते हैं। प्रथम आचार्य इष्ट के नमस्काररूप मंगल करके...** इष्ट को। अरिहन्त परमात्मा सर्वज्ञ वीतरागदेव, वे इष्ट हैं। परम इष्ट से इष्ट हैं। परमपद में प्राप्त भगवान केवलज्ञान... जिन्हें इच्छा बिना वाणी निकलती है। भगवान अरिहन्त को इच्छा होती नहीं। इच्छा हो, वहाँ तक वीतराग नहीं। आहाहा! वीतराग होने के पश्चात् केवलज्ञान हो। केवलज्ञान होने के पश्चात् दिव्यध्वनि खिरती है। इच्छा बिना ध्वनि निकलती है। **इष्ट के नमस्काररूप मंगल करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा का सूत्र कहते हैं :—** लो!

★ ★ ★

**गाथा - १**

**णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।**
**वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा॥१॥**

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज... मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य आये। श्वेताम्बर में तीसरे नम्बर में स्थूलिभद्र डाले। फिर पंथ निकला न उनका। उसके पश्चात् निकला हुआ। वह मूल मार्ग नहीं है। मूल वीतराग का मार्ग अनादि का यह है। अरिहन्त कथित और गणधर ने झेला हुआ,

उसमें से कुन्दकुन्दाचार्य ने... यह आया न तीसरे नम्बर में ? मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मास्तु मंगलं। बापू! जैनधर्म कोई बातें नहीं। जैनधर्म तो देवों को भी दुर्लभ है। वह जैनधर्म अर्थात् कोई वाड़ा मिलना, वह कोई जैन नहीं। आहाहा! अपने भगवान आत्मा को स्मरण करके, उसके ध्यान में आकर जिसने राग को, द्वेष को, अज्ञान को जीता, ऐसा जो जैनधर्म, ऐसे जैनधर्म के अन्दर '**जिणवरिंदे**' हुए अरिहन्त। ऐसे '**णरसुरभवणिंदवंदिए**' मनुष्य को वन्दनीक है न ?

**पहिले क्या करके ? जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकर परमदेव तथा सिद्ध अर्थात् अष्टकर्म का नाश करके सिद्धपद को प्राप्त हुए...** उन्हें मैं पहले नमस्कार करता हूँ। यह भी है शुभभाव। भगवान को नमस्कार करना, वह धर्म नहीं। परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। आहाहा! गजब बातें, भाई! आनुपूर्वी है न आनुपूर्वी! ... सामायिक करके बैठे। सामायिक नाम धारकर। सामायिक थी कब ? सम्यग्दर्शन की खबर नहीं, वहाँ सामायिक कहाँ से ? णमो अरिहंताणं, णमो लोए सव्व साहूणं, णमो उवज्झायाणं। आड़े-टेढ़े आते हैं न पाठ ? हो गया धर्म... लो! सुन न अब। ऐसे भंगभेद तो अनन्त बार किये। वह तो एक विकल्प-शुभराग है, राग की मन्दता। धर्म-बर्म जरा भी नहीं। भगवानजीभाई!

ऐसे सिद्ध को, अरिहन्त को नमस्कार करके **अवशेष संयत...** संयत शब्द पड़ा हे न। **आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु इस प्रकार पंच परमेष्ठी को मस्तक से वन्दना करके कहूँगा।** मस्तक से वन्दन अर्थात् सब आ जाये। आठों अंग नम गये अन्दर। परन्तु अरिहन्त जिसने सच्चे जाने हैं, उसे वन्दन करता है। अभी अरिहन्त की खबर नहीं होती। आहाहा! ऐसे पंच परमेष्ठी को वन्दन करते हैं। **कैसे हैं पंच परमेष्ठी ? नर अर्थात् मनुष्य, सुर अर्थात् स्वर्गवासी देव, भवनेन्द्र अर्थात् पातालवासी देव, इनके इन्द्रों के द्वारा वन्दनेयोग्य है।** तीन लोक के इन्द्रों को वे वन्दनयोग्य हैं। भगवान पूज्य हैं। ऐसे पंच परमेष्ठी को वन्दन करके मैं भावपाहुड़ कहूँगा, ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष कृष्ण १, बुधवार, दिनांक-०९-०१-१९७४**
**गाथा - १, २, प्रवचन-८४**

यह अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। पहली गाथा। उसमें भावार्थ है। **आचार्य भावपाहुड़ ग्रन्थ बनाते हैं; वह भावप्रधान पंच परमेष्ठी हैं,...** भावपाहुड़ लिखते हैं, उसमें भाव प्रधान / मुख्य तो पंच परमेष्ठी हैं। **उनको आदि में नमस्कार युक्त है,...** भावपाहुड़ की शुरुआत में शुद्धभाव प्रधान पंच परमेष्ठी हैं, इससे उन्हें पहले नमस्कार किया है। **क्योंकि जिनवरेन्द्र तो इस प्रकार हैं—जिन अर्थात् गुणश्रेणी निर्जरायुक्त इस प्रकार के...** शुद्धता की धारा बहे, वह सम्यग्दर्शन से होता है। आत्मा पवित्र की शुद्ध किरण है। उसकी दृष्टि होने से शुद्धता में गुणश्रेणी निर्जरा होती है। शुद्धता बढ़ती है। वह वर, उसमें अविरत सम्यग्दृष्टि में भी प्रधान—श्रेष्ठ गणधर हैं। उसमें भी **इन्द्र तीर्थंकर परमदेव हैं,...** जिनवर इन्द्र-जिनवरेन्द्र। **वह गुणश्रेणी निर्जरा शुद्धभाव से ही होती है।** यह गुणश्रेणी निर्जरा शुद्धभाव से होती है। शुभ और अशुभभाव से धर्म-निर्जरा नहीं होती। धर्म नहीं होता अर्थात् कि अशुद्धता नहीं टलती।

**शुद्धभाव से ही होती है।** इसमें अधिकार यह है, शुद्धभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वासना का भाव अशुभ; अशुभ अशुद्ध। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव शुभ अशुद्ध। दोनों बन्ध का कारण है। आत्मा पवित्र शुद्ध चैतन्यदल का आश्रय करके जो दृष्टि हो, वह शुद्धभाव है। सम्यग्दर्शन, वह शुद्धभाव है। सम्यग्ज्ञान, वह भी शुद्धभाव है और सम्यक्चारित्र, वह भी शुद्धभाव है। उस शुद्धभाव से **गुणश्रेणी निर्जरा शुद्धभाव से ही होती है। वे तीर्थंकरभाव के फल को प्राप्त हुए,...** भगवान तीर्थंकर का भाव जो बँधा था, उसका फल प्राप्त हुआ। **घातिकर्म का नाश कर...** केवलज्ञान जिसने उपार्जित किया। **केवलज्ञान को प्राप्त किया, उसी प्रकार सर्व कर्मों का नाश कर,...** यह ऐसा कहा है पहले।....

शुद्धभाव एक... **उसी प्रकार सर्व कर्मों का नाश कर,...** सब कर्मों का नाश करके परम परमेश्वर सिद्ध भगवान **परम शुद्धभाव को प्राप्त कर सिद्ध हुए,...** आहाहा!

यह शुद्धभाव, वह धर्म वीतराग है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **आचार्य, उपाध्याय शुद्धभाव के एकदेश को प्राप्त कर पूर्णता को स्वयं साधते हैं...** लो! आचार्य, उपाध्याय भी उसे कहते हैं कि जो शुद्धभाव के एकदेश को प्राप्त करके पूर्ण आनन्द और पूर्ण शुद्ध चैतन्य वस्तु का एक अंश शुद्धभाव प्रगट करके... आहाहा! **पूर्णता को स्वयं साधते हैं...** पूर्ण शुद्धता को साधते हैं, इसलिए उन्हें आचार्य और उपाध्याय कहा जाता है। आहाहा! **तथा अन्य को शुद्धभाव की दीक्षा-शिक्षा देते हैं,...** आचार्य-उपाध्याय दूसरे को दीक्षा दे तो शुद्धभाव की, शिक्षा दे तो शुद्धभाव की, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो कहे शुभभाव वह पूरा धर्म और चारित्र और व्रत।

**मुमुक्षु :** .... लिखा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लिखा है वह ... होता नहीं। बड़ा आस्रव है। आहाहा! अनास्रवी भगवान परमात्मस्वरूप अपना, उसके आश्रय से जो शुद्धभाव प्रगट हो, वह एक ही शुद्धभाव मोक्ष का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो क्या लिया? कि **शुद्धभाव की दीक्षा-शिक्षा देते हैं,...** आचार्य, उपाध्याय उसे कहते हैं कि एकदेश शुद्धभाव को साधे और पूर्ण भाव को साधते हैं। एकदेश शुद्धभाव प्रगट किया है और उसके द्वारा पूर्ण शुद्ध को प्राप्त करते हैं और दीक्षा तथा शिक्षा भी शुद्धभाव की देते हैं। देखो न, यह गृहस्थ भी पुण्य... अब यह लोगों को बैठता नहीं। साधु ऐसा उपदेश दे, व्यवहार का दे, फलाना का दे, ढींकणा का दे।

**मुमुक्षु :** शुभभाव में थोड़ा अन्तर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं। राग में जहर है। वहाँ शुभभाव अमृत कहाँ से आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** किसी को अमृत ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो वजन क्या है कि आचार्य और उपाध्याय अपने एकदेश शुद्धभाव को प्रगट किया है। शुद्धभाव को प्रगट किया है। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और पूर्ण शुद्धभाव की प्राप्ति के प्रयत्न में हैं। आहाहा! और वे दीक्षा दें तो शुद्धभाव की देते हैं, ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत की, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। शुद्धभाव, वह दीक्षा

और वह चारित्र है। पंच महाव्रत के परिणाम, वे कोई चारित्र नहीं, आहाहा! ऐसी बात कितनी... पण्डित जयचन्द्रजी ने कितना स्पष्ट किया है। अभी के पण्डितों को बैठता नहीं।

**मुमुक्षु :** पुराने जमाने का है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पुराने जमाने का क्या? यह नये जमाने का। यह नये जमाने का... मार्ग तो यही त्रिकाल एक ही है। आहाहा! आहाहा! शुद्धभाव। प्रभु आत्मा स्वयं शुद्ध उपयोगस्वरूपी ही त्रिकाल है। वीतरागस्वरूप है, ... है। उसके अवलम्बन से जो कुछ पर्याय प्रगट हो, वह शुद्धभाव और वह शुद्ध ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अभी तो यह व्यवहार का उपदेश। व्यवहार का उपदेश करो। आचार्य, उपाध्याय, व्यवहार सुधारो, यह सुधारो। यहाँ तो कहे दीक्षा-शिक्षा शुद्धभाव की दे, ऐसा कहा है।

**मुमुक्षु :** इसका नाम ही .... कहलाता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निर्मल शुद्धभाव। यह तो व्यवहार तो यह ... संसार का। कोयले को सफेद करते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** सातवें-आठवें में शुभभाव होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, सातवें में शुभभाव होता है। यहाँ तो कहे, चौथे गुणस्थान से शुद्धभाव होता है। आया या नहीं? **गुणश्रेणी निर्जरा शुद्धभाव से ही होती है।** अविरत सम्यग्दृष्टि से। आहाहा! ज्ञान, आनन्दस्वरूप परमात्मा स्वयं ही स्वरूप है, उसके सन्मुख होकर जो पर्याय हो, वह तो शुद्ध ही होती है। आहाहा! और वह शुद्धभाव, वही गुणश्रेणी निर्जरा का कारण है। अशुद्धता पड़े और शुद्धता की श्रेणी बढ़े। आहाहा! यहाँ तो वजन यहाँ जोर आता है। दीक्षा-शिक्षा शुद्धभाव की देते हैं।

**मुमुक्षु :** व्यवहार के प्राण पोसते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार के प्राण पोसते हैं।... किया है न! आहाहा! प्राण देते हैं। यहाँ की बात सुनकर ... यह तो सब साधु-बाधु भक्ति ... है। यह तो कहे महाव्रत और परिणाम, वह आस्रव है, धर्म नहीं। फिर कहे, व्यवहारनय का प्राण पोषो। यह कायदा निकाला। अरेरे! भगवान! आचार्य और उपाध्याय तो उसे कहते हैं कि जो

अपना वीतरागभाव शुद्ध है, उसे साधते हैं, प्रगट किया है। जिन्होंने शुद्ध उपयोग प्रगट किया है। शुद्ध उपयोग, वह साधु है। आहाहा! और उस शुद्ध उपयोग द्वारा पूर्ण परमात्मदशा को साधते हैं। भावपाहुड़ है न! इसलिए इस शुद्धभाव से मुक्ति को साधते हैं और शुद्धभाव की दीक्षा देते हैं, ऐसा कहा है। और शिक्षा उपदेश भी शुद्धभाव का देते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उसमें कहा है न, मुहु... मुहु—वीतरागभाव दे। मुनि तो वीतराग... वीतराग... पर से हटकर स्वभाव में झुकाव करे, ऐसा जो भाव, ऐसा वीतरागभाव का उपदेश दे। दीपचन्दजी ने वहाँ कहा। वह यह जयचन्दजी ने यहाँ कहा है। आहाहा! दिगम्बर के गृहस्थ भी पके हैं न! आहाहा! यह देखो न कितना... डाला है। कि दीक्षा, शुद्धभाव की दीक्षा। आहाहा! भाई! तेरा भगवान तो पूर्ण आनन्द और शुद्ध पवित्र है। ऐसे पवित्र आत्मा की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, ऐसा शुद्धभाव, वह तेरी दीक्षा है। आहाहा! नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प और वह कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा! देखो न, गृहस्थ भी इतनी स्पष्ट बात करते हैं जगत के समक्ष।

आचार्य और उपाध्याय उन्हें कहते हैं कि जो आत्मा के शुद्ध पवित्र निर्मल वीतराग मूर्ति के भाव को साधकर प्रगट किया है वीतरागभाव और वीतरागभाव की पूर्णता को वे साधते हैं। आहाहा! और उस वीतरागभाव की ही दीक्षा देते हैं, ऐसा कहते हैं। शुद्धभाव कहो या वीतरागभाव कहो। कहो, भगवानजीभाई! यह तो यह सुधारो और यह सुधारो। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! कहाँ जाना है तुझे? सुधारा किया। आहाहा! यह वहाँ दुनिया के लोगों को रंजन किया होगा, वे प्रसन्न होकर यह सहायक नहीं होंगे वहाँ।

आत्मा का पुण्य और पाप के भाव से रहित... यह आगे कहेंगे न इसमें ८३ गाथा। जैनधर्म, वह व्रत और तप, वह कहीं जैनधर्म नहीं। ... नाम देंगे। आहाहा! अन्तर ज्ञायकभाव से भरपूर प्रभु, उसे अवलम्बकर जो शुद्धभाव प्रगट हो, उस शुद्धभाव की ही दीक्षा सन्त देते हैं, कहते हैं। आहाहा! अब यह दीक्षा बाहर। चारित्र निश्चय न हो, तब तक अपने व्यवहार पालना, व्यवहार करते-करते चारित्र होगा। अरे! प्रभु! ऐसा आत्मा नहीं। आत्मा तो महा आनन्द का नाथ है। चाहे उसके सामर्थ्य की तुझे प्रतीति नहीं

आयी। उसके सामर्थ्य की प्रतीति आयी नहीं। उसके अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानादि गुण का महाप्रभु है, उसका उसे माहात्म्य आया नहीं। इसलिए यह सब दया, दान, व्रत के परिणाम के माहात्म्य में चढ़ गये हैं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त शक्तियों की खान भगवान है। अनन्त सामर्थ्य जिसका है—ज्ञान का, आनन्द का, शान्ति का, वीतरागता, स्वच्छता, प्रभुता। एक-एक शक्ति का अनन्त सामर्थ्य है। उस सामर्थ्य का इसे भरोसा नहीं आता और उस भरोसे बिना शुद्धभाव प्रगट नहीं होता। आहाहा! कहो, समझ में आया?

आचार्य और उपाध्याय तो शुद्धभाव की दीक्षा देते हैं और शुद्धभाव का उपदेश देते हैं। ऐसा कहा न? शिक्षा अर्थात् उपदेश। आहाहा! यह तो व्यवहार की बात आवे। चरणानुयोग में आवे... आचार्य (दोनों) भाव देते हैं। वस्तु तो यह है। आहाहा! देखो न... है न। प्रवचनसार में ऐसा कहा, द्रव्य और भावलिंग दो। वहाँ तो ऐसा कहा। वह टीका विरुद्ध है। वह तो अन्दर व्यवहार विकल्प इस प्रकार का होता है, ऐसा बतलाने के लिये उसे व्यवहारनय से कहा है। परन्तु वस्तु तो यह है। आहाहा! आचार्य और उपाध्याय उसे कहते हैं... आहाहा! अभी पंच परमेष्ठी की पहिचान नहीं होती। पहाड़ा बोले जाये णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं। उसके साथ। यहाँ तो कहते हैं कि णमो अरिहंताणं तब होगा कि शुद्धस्वरूप की अन्तर दृष्टि की धारा बहे और तब वह केवलज्ञान को प्राप्त करे और सब कर्म का नाश हो, तब सिद्धपद को पावे। यह दो बात तो पहले कह गये। अब पाँच पद में रहे तीन। आचार्य और उपाध्याय, वे भी शुद्धभाव को ही साधते हैं। आहाहा! पंच महाव्रत को और निमित्त को, नग्नपने को साधते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! तब वे लोग कहते हैं, देखो! कुन्दकुन्दाचार्य ने पंच महाव्रत पालन किये। उन्होंने भी (यह) किया। अरे! भाई! वह तो मुनिपना व्यवहार का कथन है भाई! वस्तु की निश्चय दृष्टि निश्चय बिना व्यवहार की कुछ कीमत है नहीं। यों भी व्यवहार की कीमत नहीं। आहाहा! व्यवहार ... निश्चय वस्तु की दृष्टि न हो तो। आहाहा! मूल पड़ा रहा और सब बाहर का रह गया। आहाहा! भारी कठिन! पहली ही गाथा के अर्थ में यह पड़ा है, लो! उसे ज्ञान में तो लो पहले, भाई! प्रभु महाप्रभु है चैतन्य। आहाहा! उसकी पर्याय अरिहन्त की। आहाहा! सर्वज्ञ पर्याय।

इसका विवाद देखो न! यह सब पण्डितों में यह सब खींचड़ा निकालते हैं अन्दर

से। केवलज्ञान की पर्याय वर्तमान पर्याय है, उसे जाने। भूत-भविष्य की हो तब जाने। हुई तब जाने। आहाहा! भाई! तेरे ज्ञान की पर्याय की महिमा, तेरे गुण की महिमा, तुझे बैठी नहीं। और ज्ञानगुण भगवान आत्मा का, वही उसका स्वभाव है। वस्तु तो द्रव्यरूप से है। परन्तु उसका स्वभावरूप से तो सर्वज्ञस्वभाव ही है उसका। आहाहा! परन्तु भाव होना चाहिए या नहीं? या भाव बिना की भाववान चीज़ होगी? भाववान ऐसा द्रव्य, उसका भाव वह तो ज्ञानस्वभाव। आहाहा! और ज्ञानस्वभाव, वह परिपूर्ण स्वभाव। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा का सर्वज्ञपना, वह पर्याय में प्रगट हुआ, वह शुद्धभाव के आश्रय से प्रगट हुआ है। तो पंच महाव्रत की क्रिया या उसकी क्रिया द्वारा वह हुआ नहीं है। और सिद्ध भगवान भी पूर्ण शुद्धता को प्राप्त हुए, वे शुद्धभाव से ही प्राप्त हुए हैं। आचार्य, उपाध्याय जो प्राप्त हुए हैं, वे भी शुद्धभाव से ही प्राप्त हुए हैं, ऐसा कहते हैं। देखो! यह पंच परमेष्ठी को वन्दन कैसे किया भावपाहुड़ में। यह भाव में प्रधान पाँच पद हैं और उनकी यह व्याख्या है। आहाहा! समझ में आया? तब ऐसा कहते हैं कि ऋषभदेव भगवान ने तो यह सब उपदेश दिया था पहले। तब वे कहाँ? वह तो विकल्प गृहस्थाश्रम है, विकल्प उठा उस प्रकार की बात समझायी है। परन्तु वह हेय है। उसकी दृष्टि में वह हेय है। आहाहा! जितना शुद्धभाव प्रगट हुआ है, उतना ही उपादेय है और उस शुद्धभाव का ही उपदेश करनेवाले मुख्यरूप से हैं। वह तो उस प्रकार का विकल्प आया और उस प्रकार की... उसका वजन देते हैं। तीर्थंकर ने भी पहले ऐसा कहा, भाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** तीर्थंकर करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करे क्या? वह तो विकल्प था उस प्रकार का तो ऐसा निकल गया वाणी के कारण से। आहाहा!

**तथा अन्य को शुद्धभाव की दीक्षा-शिक्षा देते हैं,...** आहाहा! यह दीक्षा। **इसी प्रकार साधु हैं...** पाँचवें पद की। चार पद की व्याख्या हुई है। **वे भी शुद्धभाव को स्वयं साधते हैं...** लो! साधु पंच महाव्रत साधते हैं और आस्रव साधते हैं, ऐसा नहीं लिखा। आहाहा! अपना पवित्र शुद्धभाव, उसे **स्वयं साधते हैं...** वापस। है न? साध्यति ईति साधु। आप स्वयं साधते हैं। राग की, निमित्त की सहायता है तो साधते हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! भाई! आत्मा के अन्दर क्या सामर्थ्य है, उसकी उसे खबर नहीं। उसे ऐसा कि

मानो साधारण आत्मा इसलिए मान लिया, लो। आहाहा! वह आत्मा तो अनन्त एक-एक शक्ति में परमेश्वरता लेकर पड़ा है। आहाहा! ऐसी अनन्त प्रभुत्व शक्तियाँ हैं। आहाहा! ऐसी अनन्त प्रभुत्व शक्तियों का पिण्ड प्रभु ऐसा जो आत्मा, (उसकी) जिसे महिमा दृष्टि में और ज्ञान में जिसकी महिमा आयी, उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान, चारित्र होता है। स्वरूप स्वयं साधे, साधु। साधु नग्न हो गये और पंच महाव्रत पालन किये, वे साधु—ऐसा नहीं। आहाहा! यह मूल बात पड़ी रही और अकेली बात ऊपर की थोथा रह गयी।

**शुद्धभाव को स्वयं साधते हैं...** आहाहा! अब अभी शुद्धभाव होता नहीं, ऐसा (वे) कहते हैं। लो! हो गया तब शुद्धभाव होता नहीं, समकिती होता नहीं, साधु (होते) नहीं। आहाहा! ...शुद्धभाव होता नहीं अर्थात् अभी होता नहीं सातवें तक। बाद में होता है, ऐसा। सातवें तक लाये हैं अब। महावीर के पास... आहाहा! केवलज्ञानी परमात्मा की बातें करना, बापू! यह बहुत... आहाहा! अरबपति की दुकान में कोई तेली को बैठावे, पच्चीस (रुपये) का वेतन हो। दुकान चला सके वह? आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, उसकी पूर्ण पर्याय, उसके जो उपदेश और कथन, बापू! वह बनाये रखना कठिन पड़े। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं कि वे स्वयं शुद्ध को साधे। ऐसा आचार्य, उपाध्याय ने भी उपदेश दिया। यहाँ कहा है न प्रवचनसार में? आचार्य, उपाध्याय, साधु तो शुद्ध उपयोगस्वरूप हैं। आहाहा! परम शुद्ध उपयोग है। यह बात... निकल गयी। शास्त्र में भले न हो, समझ में आया? ऐसा जो शुद्ध उपयोग हो, वही वस्तु है, ऐसी श्रद्धा निकल गयी। राग, पुण्य और व्यवहार यह और यह।

... का छोड़ हो गया वड। ... होवे उसमें उगे तो कितना उगे? मूल उगे तो कहाँ जाये? वह तो सूख जाये। हो गया। 'भींडा भादव मास का कहे जरूरी। भिण्डी होती है न भाद्र का महीना वहाँ फले, इतनी हो जाये। दो महीने हो तो इतना हो। वड को कहे अब हट। हम दो महीने में इतने हैं तो छह महीने में तो तुझे तोड़ डालेंगे। शान्त हो... शान्त हो... यह पन्द्रह दिन में तेरे पत्ते सूख जायेंगे। तेरा मूल सूख जायेगा, सुन ना अब। आहाहा! यह एकदम पोला बढ़ा है, वह लम्बा काल नहीं चलता। समझ में आया? आहाहा! ऐसे शुभभाव और पुण्य के कारण बाहर फला हो, उस फले का छिलका है

सब। आहाहा! भाई! तेरी शोभा वह शुद्धभाव की, उसे तूने प्रगट नहीं की और उससे तू शोभा को मानता नहीं। आहाहा!

वे **शुद्धभाव को स्वयं साधते हैं और शुद्धभाव की ही महिमा से...** देखो! साधु भी शुद्धभाव की ही महिमा करते हैं। व्यवहार महाव्रत और विकल्प तथा निमित्त की महिमा से नहीं। आहाहा! **तीन लोक के प्राणियों द्वारा पूजनेयोग्य वन्दनेयोग्य हैं,...** आहाहा! आत्मा क्या चीज़ है और उसमें कितना सामर्थ्य है एक-एक गुण का और ऐसे अनन्त सामर्थ्य से भरपूर भगवान। आहाहा! उसके विरले की बातें चैतन्य की क्या करना, कहते हैं? आहाहा! ऐसे हीरा को जिसने पकड़ा और जाना और अनुभव किया, उसकी शुद्धता वह उसे परमात्मा होने का साधन है। कोई बाह्य बाह्य साधन है नहीं। वह तो व्यवहार का लोप हो जाये, ऐसा कहते हैं। भाई! व्यवहार का लोप, व्यवहार है सही, परन्तु उसका लोप करे तब निश्चय होता है। आहाहा!

**शुद्धभाव की ही महिमा से...** भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु का जो पवित्र श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, ऐसा शुद्धभाव, उससे उसकी महिमा है। आहाहा! उसे जो पंच महाव्रत के परिणाम और नग्नपना, उसकी महिमा नहीं। आहाहा! **महिमा से तीन लोक के प्राणियों द्वारा पूजने योग्य वन्दने योग्य हैं,...** लो! ऐसी महिमा के कारण वे वन्दनीक, पूजनीक हैं। कोई बाह्य नग्नपना और पंच महाव्रत हैं, इसलिए वन्दनीक-पूजनीक हैं? आहाहा! बहुत सरस वर्णन किया है। ओहोहो! पहली गाथा में पण्डित जयचन्द्रजी ने जयकारा बुलवाया है। गृहस्थाश्रम में हों तो भी... मुनिपना हो, चारित्र हो। आहाहा! जिसमें तत्त्व ही नहीं आया, उसे टिके कहाँ से और वह रहे कहाँ से? यह सत्य प्रभु आत्मा एक ही जहाँ दृष्टि में आया नहीं और दृष्टि के विषय में पर्याय, राग और माहात्म्य बाहर का, वह कहाँ टिकेगा, बापू! आहाहा! चौरासी के अवतार में घुसा है। अरेरे! कहाँ अवतार... यह कीड़ी और कौवे को... आहाहा! चिड़िया का... अवतार होगा, ऊपर से ... पड़े नीचे। धगधगते रेत के खड्डे में... होकर मर जाये। नहीं कोई शरण। शरण का नाथ अन्दर है, उसके सामने देखना नहीं। आहाहा!

**इसलिए भावप्राभृत की आदि में इनको नमस्कार युक्त है।** पाँच पद को नमस्कार क्यों किया? उसकी पद्धति यह है। **मस्तक द्वारा नमस्कार करने में...** यह मस्तक लिया

है न? इसका स्पष्टीकरण करते हैं। **मस्तक द्वारा नमस्कार करने में सब अंग आ गये,...** मस्तक से नमस्कार करने पर हाथ-पैर सब आ गया अन्दर। **क्योंकि मस्तक सब अंगों में उत्तम है।** पाठ में है न **'सिरसा'?** इसलिए कहा। **'संजदे सिरसा' स्वयं नमस्कार किया, तब अपने भावपूर्वक ही हुआ,... स्वयं नमस्कार किया...** वह देह के सब अंग आ गये और भाव में अब यह भाव आया। **स्वयं नमस्कार किया, तब अपने भावपूर्वक ही हुआ, तब मन-वचन-काया तीनों ही आ गये, इस प्रकार जानना चाहिए।** लो! मन, वचन और काया तीन। द्रव्य, भाव नमस्कार पंच परमेष्ठी को। लो, यह मांगलिक शुरु किया। भावपाहुड़ की शुरुआत में मांगलिक किया।

★ ★ ★

## गाथा - २

**आगे कहते हैं कि लिंग द्रव्य-भाव के भेद से दो प्रकार का है, इनमें भावलिंग परमार्थ हैं :—**

**भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।**
**भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिणा बेन्ति॥२॥**

आहाहा! त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर गुण-दोष के कारण भाव को कहते हैं। आहाहा!

**अर्थ :- भाव प्रथम लिंग है,...** यह आत्मा का लिंग अर्थात् भावचिह्न शुद्ध आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह उसका भावलिंग प्रथम है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत का नाथ। आहाहा! उसकी जो श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी रमणता—ऐसा जो भाव, वह प्रथम लिंग और चिह्न है। धर्म का भावलिंग वह मुख्य चिह्न है। **इसलिए हे भव्य! तू द्रव्यलिंग है, उसको परमार्थरूप मत जान,...** नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प को परमार्थ न जान। आहाहा! समझ में आया? **तू द्रव्यलिंग...** अर्थात् नग्नदशा। मुनि को नग्नदशा होती है। पंच महाव्रत के विकल्प भी होते हैं। वह उसे परमार्थ न जान। वह मूल चीज़ नहीं, वह तो ऊपर का छिलका है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली रचना गजब है।

**क्योंकि गुण और दोषों का कारणभूत भाव ही है,...** कोई द्रव्यलिंग बाहर के कारण एक भी गुण-दोष का कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? **गुण और दोषों का कारणभूत भाव ही है,...** इतना तो जोर दिया है, देखो। **इस प्रकार जिन भगवान कहते हैं।** ऐसा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर इन्द्र और गणधर की सभा में ऐसा भगवान कहते थे। ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! देह की क्रियायें दया, दान, व्रत की और नग्नपना, वह कहीं नयी वस्तु नहीं है। ऐसा तो अभव्य भी अनन्त बार करता है। जिसमें भव का अभाव हो, ऐसा स्वभाव ऐसा शुद्धभाव है। और उस भाव का परमार्थपना है। द्रव्यलिंग को परमार्थपना नहीं है। जिन भगवान कहते हैं। '**जिणा बेन्ति**' वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं।

**भावार्थ :- गुण जो स्वर्ग-मोक्ष का होना...** स्वर्ग-मोक्ष दो आते हैं न? शुद्धभाव होने पर मोक्ष होता है, परन्तु बीच में जरा राग भी बाकी होता है तो स्वर्गादि मिलते हैं। 'कामदं मोक्षदं चेव।' **स्वर्ग-मोक्ष का होना और दोष अर्थात् नरकादिक संसार का होना...** आहाहा! **इनका कारण भगवान ने भावों को ही कहा है,...** क्रिया जड़ की फेरनी, उसे कुछ भगवान ने नरकगति का कारण, मोक्ष का कारण कहा नहीं। आहाहा! उसमें भी विवाद। कैलाशचन्दजी ने रखा था। भाव प्रधान है। द्रव्यक्रिया नहीं। उसका विवाद उठा। नहीं,... समाज को समतौल रखना। आहाहा!

**क्योंकि कारण कार्य के पहिले होता है।** क्या कहा? मोक्ष का कार्य, उसका कारण पहले होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो शुद्धभाव, उस मोक्ष का कार्य से पहले वह कारण होता है और नरकगति आदि निगोद में जाना। आहाहा! एक शरीर में अनन्त जीव। अंगुल के असंख्य भाग का क्षेत्र। भगवान तो अनन्त अनन्त गुण का पिण्डभाव शक्ति... शक्ति... शक्ति... परन्तु पर्याय में इतना हीन होकर निगोद के भाव में रहे, वह भी भाव के कारण से रहे। वह ... का ही कारण है, वह। आहाहा! मिथ्यात्वरूपी दोष के सेवन से वह नरक और निगोद में जाता है।

**कारण कार्य के पहिले होता है। यहाँ मुनि-श्रावक के द्रव्यलिंग के पहिले...** देखा! मुनि और श्रावक के पंच महाव्रत और बारह अणुव्रत (आदि), उनके पहले **समकिती, मुनि हो तो...** देखा! सम्यग्दर्शन होवे तो। ऐसा। **सच्चा मुनि-श्रावक होता**

**है,...** आहाहा! उसको द्रव्यसमकित का आरोप देकर। आहाहा! कहाँ परन्तु कहीं चले गये। विचार भी नहीं आता कि बापू! इसका क्या परिणाम आयेगा? दुनिया इसके साथ नहीं आयेगी। आहाहा! उसका योगफल... उसका योगफल क्या आयेगा? वह मिथ्यात्वभाव का योगफल तो निगोद है। फिर भले बाह्य से कहे कि पंच महाव्रत की क्रिया हो, परन्तु अन्दर में मिथ्यात्वभाव है कि राग से धर्म होता है और स्वभाव का आश्रय है नहीं। भगवान आत्मा पूर्ण अमृत का पिण्ड आत्मा। आहाहा!

ऐसे समकिती, मुनि **सच्चा मुनि-श्रावक होता है,...** देखो! श्रावक के बारह व्रत और मुनि के पाँच व्रत पहले सम्यग्दृष्टि हो तो वह सच्चा श्रावक और मुनि होता है। वरना तो सब थोथा है। अब उसकी तो कुछ कीमत नहीं होती। व्रत लो, त्याग करो, तपस्या करो, ऐसा निमित्तपने में भी चारित्र होता है। परन्तु कौनसा चारित्र? वह तो आत्मा के आनन्द के अनुभव की दृष्टिपूर्वक में रमणता। वह चारित्र। यह चारित्र कहाँ था? आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम की क्रिया, वह जहर की क्रिया, राग की क्रिया है। आहाहा! अमृत का नाथ अमर स्वरूप, उसके ऊपर तो यह राग का जहर है। आहाहा! वह कहीं मूल चीज़ नहीं। तब और ऐसा कहे कि वह कुछ पालना नहीं न, इसलिए महाव्रत और राग... आहाहा! पालने की बात कहाँ, बापू? किसे पाले? भाई! सुन न अब। आहाहा!

**मुनि-श्रावक के द्रव्यलिंग के पहिले...** मुनि और श्रावक के व्रत के परिणाम से पहले। समकिती मुनि हो तो। देखो! आहाहा! अखण्ड आत्मा आनन्दस्वरूप और परमात्मस्वरूप ऐसा निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होवे तो। आहाहा! अरे! संसार। अल्प काल, यह सब दिखाव, यह सब अदृश्य हो जायेगा। आहाहा! जिसने अदृश्य को दृश्य नहीं किया। अन्दर भगवान अगम्य वस्तु को जिसने ज्ञान में गम्य और भान नहीं किया, उसे यह सब दृश्य बिखर जायेगा। बाहर में आचार्य हों न बड़े लाखों-करोड़ों लोग मानते हों, करोड़ों रुपये के ढ़ेर होते हों, हाथी बड़े हों, झूलते हों स्वागत में। क्या हुआ उसमें? आहाहा! समझ में आया? वस्तु आत्मा की जो अन्तर शुद्धभाव की प्रतीति... त्रिकाली भाव शुद्ध, उसकी प्रतीति निर्विकल्प। ऐसी सम्यक्स्थिति से हो तो वह मुनि और श्रावक सच्चा कहलाता है। यह न हो तो सब तेरे व्रत, तप और द्रव्यलिंग सब बिना एक

के शून्य हैं। ऐसा भावलिंग में यह भावपाहुड़ में कहना है।

**मुमुक्षु :** आज तो शुरुआत से ही माल आ गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** माल आया न? आहाहा!

**इसलिए भावलिंग ही प्रधान है।** राग के विकल्प से रहित भगवान परमानन्दस्वरूप अनन्त गुण का निधान, खान, उसकी अन्दर में प्रतीति और भान बिना कोई द्रव्यलिंग से साधुपना नहीं कहलाता, कहते हैं। नग्न होओ, स्त्री-पुत्र छोड़ो। वह कोई वस्तु की कीमत नहीं उसमें। आहाहा! **प्रधान है, वही परमार्थ है,... 'दव्वलिंगं च जाण परमत्थं'** ऐसा कहा है न इसमें? द्रव्यलिंग प्रधान न जान। आहाहा! **इसलिए द्रव्यलिंग को परमार्थ न जानना,...** महाव्रत के परिणाम और नग्नपने के परिणाम और अपवासादि किये महीने के, दो महीने के, तपस्यायें की, रस छोड़े, उस द्रव्यलिंग को मुख्यता नहीं दे। उसे परमार्थ न जान। वह परमार्थ वस्तु नहीं है। आहाहा! **इस प्रकार उपदेश किया है।** लो! इस प्रकार से भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने उपदेश किया है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुख्य किया। यहाँ नहीं उसे मुख्य किया। यह है। वह भूल गया। वर को भूला और बारात को शृंगारित किया। अच्छे वस्त्र पहनाये और अच्छे... आहाहा! और चैतन्य बादशाह प्रभु अनन्त आनन्द के सागर से अनन्त आनन्द का सागर प्रभु है। उसकी तो जिसे दृष्टि और ज्ञान हुए नहीं और अकेले व्रत के खोखा लेकर बैठे, नग्न साधु हो। यह तो कहते हैं कि वह वस्तु ही नहीं। आहाहा! वस्त्रसहितवाले तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। **ऐसे परिणाम को भाव कहते हैं।** आहाहा!

**जीव का स्वभाव-परिणामरूप भाव तो...** जीव का स्वभाव परिणामरूप भाव तो **दर्शन-ज्ञान है...** देखना और जानना, वह उसके परिणाम हैं। स्वभावरूप परिणाम कहा न? स्वभावरूप परिणाम तो जानने-देखने के भाव। पर्याय, पर्याय लेनी है न? उसका वह भाव है। स्वभावरूप परिणाम जानना-देखना है। **और पुद्गल कर्म के निमित्त से ज्ञान में...** आत्मा की ज्ञानदशा में **मोह-राग-द्वेष होना विभावभाव है।** मिथ्यात्व और राग-द्वेष की पर्याय होना, वह विभावभाव है। आहाहा! यह तो दोनों भाव की व्याख्या की।

**पुद्गल के स्पर्श से स्पर्शान्तर, रस से रसान्तर इत्यादि गुणों से गुणान्तर होना स्वभावभाव है...** स्पर्श का बदलना, रंग का बदलना, रस का बदलना, वह गुण से गुणान्तर अर्थात् पर्याय, वह स्वभावभाव है। वह परमाणु का स्वतन्त्र अपना स्वभाव से होना, वह स्वभावभाव। **और परमाणु से स्कन्ध होना...** एक रजकण से बहुत पिण्डरूप हो। आहाहा! **स्कन्ध में अन्य स्कन्ध होना...** एक पिण्ड से दूसरे स्कन्ध में जाना और स्कन्ध हो ... **जीव के भाव के निमित्त से कर्मरूप होना, ये विभावभाव है।** लो! यह स्कन्धरूप होना विभावभाव, स्कन्ध से पिण्ड से दूसरे में जाना विभावभाव और आत्मा के परिणाम से निमित्त में ... कर्म **कर्मरूप होना ये विभावभाव।** कर्म भी विभावभाव है। परमाणुओं की विभाविक पर्याय है वह। कर्म, वह परमाणु की विभाविक पर्याय है। स्वाभाविक पर्याय तो अकेला परमाणु पृथक् रंग, गन्ध, रस की पर्यायवाला ऐसा कहा। **इस प्रकार इनके परस्पर निमित्त-नैमित्तिकभाव होते हैं।** परस्पर हुआ न? कर्म निमित्त और मोह-राग-द्वेष परिणाम। जीव का परिणाम निमित्त और कर्मरूपी परिणाम का होना।

**निमित्त-नैमित्तिकभाव होते हैं।** क्या कहा, समझ में आया? स्कन्ध में (एक) स्कन्ध का (दूसरे) स्कन्धरूप होना, परमाणु का स्कन्धरूप होना और कर्म के परिणाम आत्मा के परिणम से कर्मरूप होना, वह पुद्गल के परिणाम हैं। उसमें जीव निमित्त और परिणाम उसमें। तथा आत्मा में मोह-राग-द्वेष नैमित्तिक उसमें कर्म निमित्त। निमित्त का अर्थ वह कुछ करता है, ऐसा नहीं। वस्तु को सिद्ध करना है। उपादान बिना निमित्त से कुछ होता नहीं। **उपादान के बिना निमित्त कुछ करता नहीं है।** नीचे आता है। बीच के अर्थ में। यह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध किया। आहाहा! समझ में आया? कितनी छनावट गृहस्थाश्रम में पण्डित...! और यह पण्डितों को ऐसा कहे, हमने बहुत सुना। पण्डित सब पण्डितों को वाँचनेवाले। भाई! (पण्डिताई) अलग चीज़ है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा कि भगवान में... भगवान का रहस्य है... ऐसा कहते हैं। अरे भगवान!

**मुमुक्षु :** धवल और जयधवल और महाधवल....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह कुछ दूसरी चीज़ थी धवल... उससे अलग निकला, ऐसा कहे। आहाहा! और यहाँ यही कहते हैं। कर्म के निमित्त से होते परिणाम विकार के और विकार के परिणाम निमित्त हों, कर्म का। .... स्वभावभाव नहीं। वहाँ भी उसे शुद्धभाव से धर्म कहा है और पुण्य से धर्म कहा, ऐसा नहीं। वहाँ भी पुण्यभाव से धर्म कहा है।

अब यहाँ तो कहते हैं कि जीव में कर्म के निमित्त से होते मोह-राग-द्वेष दुःखरूप है, विभाव है। और आत्मा के परिणाम के निमित्त से कर्म में परिणाम हों, उन्हें कुछ दुःख नहीं। उसका विभावरूप यह विभावसहित... वह विभावरूप अवस्था है, वह कहीं उसे दुःख नहीं। परमाणु को दुःख नहीं। परन्तु स्वाभाविक अवस्था हो परमाणु की, इससे सुख नहीं। जीव में सुख-दुःख की बात है। जीव के शुद्धस्वभाव का परिणमन हो, वह सुखरूप है और कर्म के निमित्त से विभाव का परिणमन हो, वह दुःखरूप है। स्वभाव-विभाव सुख-दुःख, वह जीव के लिये है। परमाणु में स्वाभाविक पर्याय, वह तो सुखी है और विभाविक अवस्था हो, वह दुःखी है, ऐसा जड़ में नहीं।

**पुद्गल तो जड़ है, इसके ( निमित्त- ) नैमित्तिकभाव से कुछ सुख-दुःख आदि नहीं है...** निमित्त से नैमित्तिकभाव जो हुआ, परमाणु में, उसमें सुख-दुःख नहीं। **जीव चेतन है, इसके निमित्त से भाव होते हैं—उनसे सुख-दुःख आदि होते हैं...** जीव में कल्पना से जो परिणाम, उसमें सुख-दुःख होता है। विशेष कहेंगे....

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव! )

**पौष कृष्ण २, गुरुवार, दिनांक-१०-०१-१९७४**
**गाथा - २, प्रवचन-८५**

दूसरी गाथा चलती है। १३१ पृष्ठ। दूसरा पेराग्राफ है। भाव का... है न भाव। भाव किसे कहना? और कौनसा भाव दुःखरूप और सुखरूप है, यह बात है। **पुद्गल तो जड़ है,...** यहाँ भाव का वर्णन करना है न कि भाव, कौनसा भाव दुःखरूप और कौनसा भाव सुखरूप? द्रव्य जो आत्मा है, उसकी प्रवृत्तिरूप भाव, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो प्रवृत्तिरूपभाव, वह सुखरूप है। और मिथ्यादर्शन-ज्ञान आदि जो भाव, वह जीव को दुःखरूप है। कहा न अन्दर? '**भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं**' गुण-दोष का कारण तो भाव है। नरकादि गति में जाने का कारण भी भाव है और मोक्ष में जाने का कारण भी भाव है।

तो कहते हैं कि **पुद्गल तो जड़ है, इसके नैमित्तिकभाव से कुछ सुख-दुःख आदि नहीं है...** पुद्गल में कोई निमित्त से होते मिथ्यात्वादि भाव, वे कहीं सुख-दुःखादि (करते) नहीं पुद्गल को, विभावभाव होने पर भी। **और जीव चेतन है, इसके निमित्त से भाव होते हैं...** जीव में जो भाव होते हैं। **उनसे सुख-दुःख आदि होते हैं...** जीव में भाव हों, वे सुख-दुःख का कारण है। **अतः जीव को स्वभावभावरूप रहने का...** भाव दो प्रकार के होते हैं। एक सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि स्वभावभाव और एक मिथ्यादर्शन आदि राग-द्वेषभाव। तो **स्वभावभावरूप रहने का...** आत्मा के आनन्द और ज्ञानस्वभाव की दृष्टि-ज्ञान करके, उस भाव में रहना **और नैमित्तिकभावरूप न प्रवर्तने का उपदेश है।** निमित्त से उत्पन्न होते पुण्य और पाप मिथ्यादर्शन, अज्ञान आदि ऐसे भाव में न प्रवर्तना, यह उपदेश है। समझ में आया?

**जीव के पुद्गल कर्म के संयोग से देहादिक द्रव्य का सम्बन्ध है,...** यह जीव को पुद्गल कर्म के सम्बन्ध से देह, वाणी आदि का सम्बन्ध है। **इस बाह्यरूप को द्रव्य कहते हैं,...** वह तो बाह्य चीज़-द्रव्य है। **और भाव से द्रव्य की प्रवृत्ति होती है,...** उस द्रव्य में भाव की प्रवृत्ति होती है। **इस प्रकार द्रव्य की प्रवृत्ति होती है।** जड़कर्म जड़

पुद्गल में भाव, चैतन्य के द्रव्य में भाव। चैतन्य द्रव्य में भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि या मिथ्यादर्शन, अज्ञान आदि, वह सुख-दुःख का कारण है। जड़ का भाव कहीं सुख-दुःख का कारण नहीं। जड़ की तो प्रवृत्ति, द्रव्य की प्रवृत्ति है, परन्तु जीव की प्रवृत्ति, जीवद्रव्य की जो प्रवृत्ति, मिथ्यादर्शन आदि की प्रवृत्ति या सम्यग्दर्शनादि की प्रवृत्ति, वह सुख-दुःख का कारण है। समझ में आया इसमें कुछ?

बाह्य चीज़—द्रव्य है, वह तो कहीं उसके साथ सम्बन्ध नहीं। **भाव से द्रव्य की प्रवृत्ति होती है,...** आत्मा चैतन्य... और शरीरादि जड़द्रव्य, उस द्रव्य में भाव से प्रवृत्ति हो उसे। पुद्गल के भाव वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श भाव, वह उसकी प्रवृत्ति। चैतन्य का भाव, स्वभावभाव शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह भाव उस द्रव्य की प्रवृत्ति। वह मोक्ष का कारण और सुख का कारण। और द्रव्य का मिथ्याश्रद्धा, ज्ञान और राग-द्वेष के परिणाम, वह द्रव्य की प्रवृत्ति और मिथ्याप्रवृत्ति, दुःखरूप प्रवृत्ति। समझ में आया इसमें कुछ? वस्तु है, उसमें कहीं सुख-दुःख (होते नहीं)। वह तो द्रव्य कायम चीज़ है। उसकी प्रवृत्ति में होते भाव, वे सुख-दुःख का कारण है। उसमें भी जड़द्रव्य और जड़ के भाव, वे कहीं जड़ को सुख-दुःख का कारण नहीं है। चैतन्यद्रव्य के भाव, शुद्धभाव या अशुद्धभाव की प्रवृत्ति, उसे सुख-दुःख का कारण है। द्रव्य बाह्य चीज़ सुख-दुःख का कारण नहीं। वस्तु स्वयं द्रव्य है, वह सुख-दुःख का कारण नहीं, वह प्रवृत्ति ही नहीं द्रव्य की। समझ में आया? आहाहा!

**द्रव्य-भाव का स्वरूप जानकर स्वभाव में प्रवर्ते, विभाव में न प्रवर्ते...** भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव, शुद्धभाव में प्रवर्ते, विभाव में न प्रवर्ते, यह भावपाहुड़ का उपदेश है। आहाहा! **उसके परमानन्द सुख होता है;...** लो! भगवान आत्मा द्रव्य जो वस्तु, उसका जो स्वभावभाव में प्रवर्तना, वह परमानन्द मुक्ति का कारण है। और विभाव में प्रवर्तना, वह नरकादि दुःख का कारण है। भाव की बात है न। यह भावपाहुड़ की बात है। पाठ में कहा है न '**भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिणा बेन्ति**' वीतराग परमेश्वर भाव को गुण-दोष का कारण कहते हैं। वस्तु को नहीं, तथा दूसरी चीज़ जड़ादि वस्तु को नहीं, इसी प्रकार उसके नैमित्तिक से होते भाव जड़ में, वह उसकी—जड़ की प्रवृत्ति है सही, परन्तु वह कहीं सुख-दुःख का कारण नहीं। भगवान आत्मा द्रव्य जो है,

वह तो वस्तु है, वह उसका भाव नहीं। द्रव्य में होती अवस्था स्वभावभावरूप या विभावभावरूप, वह भाव सुख-दुःख का कारण है। उसमें आत्मा आनन्दस्वरूप परमानन्द की मूर्ति चैतन्य रत्नाकर स्वयंभू में से प्रगट हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भाव, उसमें प्रवर्तना, वह परमानन्द का सार यह भाव है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

**विभाव राग-द्वेष-मोहरूप प्रवर्ते...** भ्रमणा... पर में सुख है, पैसे में, शरीर में, परिवार में, कीर्ति में सुख है—ऐसी भ्रमणा, वह दुःख का कारण है। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! भगवान जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ समवसरण में ऐसे '**जिणा बेन्ति**' जिनेश्वर ऐसा कहते हैं। भाई! तेरा आत्मा द्रव्य जो वस्तु है, वह तो है और उसमें जो त्रिकाली गुण हैं, वे भी हैं। वह तो द्रव्य में जाते हैं। समझ में आया? अब यहाँ तो भाव की प्रवृत्ति की बात लेनी है। तो भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य की जो परिणति स्वभाव की—उस स्वभाव की श्रद्धा, स्वभाव का ज्ञान और स्वभाव की स्थिरता की प्रवृत्ति, वह परमानन्द और मुक्ति का कार्य सुख का कारण है। और मिथ्याभ्रम तथा राग-द्वेष के भाव, चाहे तो पुण्य का भाव हो तो भी वह दुःख का और विभाव का कारण है। है न, उसमें यह आया न?

**विभाव राग-द्वेष-मोहरूप प्रवर्ते...** चाहे तो शुभरागरूप प्रवर्ते या अशुभरागरूप प्रवर्ते। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म। भावपाहुड़ है न अभी तो। भाव का अर्थ यहाँ पर्याय लेनी है स्वभाव। स्वभाव या विभावरूपी पर्याय लेनी है। यह त्रिकाल भाव है, वह तो गुण ध्रुव है। वह कहीं प्रवृत्ति में नहीं आया। त्रिकाल वस्तु और त्रिकाली गुण, उसमें कोई प्रवृत्ति नहीं। वह तो कूटस्थ ध्रुवरूप भाव है। आहाहा! गजब बात है। कहते हैं कि प्रभु... ऐसा परमाणु जो मिट्टी जड़ जगत के पैसे जड़, वह द्रव्य है और उस द्रव्य में विभावरूप दशा हो, चन्द्र का होना, सूर्य का होना, वह कहीं उसे दुःखरूप नहीं है। जड़ को दुःख क्या हो? आहाहा! जिसमें आनन्द नहीं, उसे उल्टी दशा उसमें क्या हो?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का चैतन्यरत्नाकर प्रभु है। आहाहा! वह चैतन्यरत्नाकर—रत्न का आकर—महासमुद्र है। उसकी प्रवृत्ति के जो परिणाम। आहाहा! वस्तु के अवलम्बन से होते जो परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावदशा, वह सुखरूप और परमानन्द का कारण है। वर्तमान सुखरूप और परमानन्द का कारण है।

समझ में आया? और मिथ्याश्रद्धा तथा राग और द्वेष, पुण्य और पाप का भाव वर्तमान दुःखरूप है और भविष्य के दुःख का वह कारण है। समझ में आया? लो, यह पैसे मेरे ऐसा भाव वर्तमान दुःखरूप है और भविष्य में दुःख का कारण है। कठिन बात, भाई!

**मुमुक्षु :** उसमें क्या हुआ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मौज-शौक, परन्तु दुःख हुआ, वहाँ मौज-शौक कहाँ आया वापस? आहाहा! कहो, चिमनभाई! यहाँ... मकान बनाया है और मौज-शौक होती है न वहाँ? और फिर चाहे जैसे होता हो। धूल में भी नहीं मौज-शौक। आहाहा! उसका भाव क्या है, इसके ऊपर तो यहाँ अभी बात चलती है। आहाहा! प्रवृत्ति की बात है न यहाँ तो, परिणमन, परिणमन की (बात है)। वस्तु तो वस्तु है जड़ और चैतन्य दोनों। आहाहा! उसकी जो द्रव्य की परिणति, दशा, भावरूप प्रवर्तन, उसमें जिसे राग और द्वेष और पुण्य और पाप तथा भ्रमणा की प्रवृत्ति है, वह तो वर्तमान दुःखरूप है। वह प्राणी वर्तमान दुःखी है और भविष्य में दुःख के पर्वत पर जानेवाले हैं वे। आहाहा! समझ में आया? और भगवान आत्मा... सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ ने जो आत्मा कहा, ऐसा चैतन्यरत्नाकर प्रभु, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता में प्रवृत्तिरूप भाव, वह वर्तमान सुखरूप है, भविष्य में परम आनन्द, वह पूर्ण आनन्द का कारण है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

वह **विभाव राग-द्वेष-मोहरूप प्रवर्ते, उसके संसार सम्बन्धी दुःख होता है।** आहाहा! उसे वर्तमान दुःखी, भविष्य में नरक और निगोद में जायेगा, वहाँ भी दुःखी। बाहर में भले रूपवान सफेद और बँगला पचास-पचास लाख के हों। उसमें झूले में झूलता हो, सोना के कड़े। सोना के क्या कहलाते हैं वे? समझे? मकोड़े। बैठा हो न ऊपर... झूले ऐसे। ऐसा मानो अन्दर से होता है। आहाहा! आहाहा!

**मुमुक्षु :** .... दुःख हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुःख हो। दुःखी है बेचारा। और वह दुःख वर्तमान दुःख है और भविष्य के दुःख को ओढ़ता है। भविष्य के दुःख के सामने जाता है वह। आहाहा! ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** खबर नहीं थी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खबर कहाँ? भान ही नहीं। भान ही नहीं। निमित्त क्या? ... इसके लिये तो बात है। उसे भान नहीं कि दुःख-सुख किसे कहना? यह शरीर, वाणी, पैसा, धूल लक्ष्मी, कीर्ति, वह सुख है? वह तो जड़ चीज़ है। और जड़ की प्रवृत्ति है, वह सुख है? वे तो उसके—जड़ के परिणाम हैं। उसमें सुख-दुःख कहाँ आया? आहाहा! कारण द्रव्य जो वस्तु है अनादि भगवान आत्मा नित्य प्रभु है, अविनाशी है, कुछ नया उत्पन्न हुआ नहीं। नाश हो, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा द्रव्यरूप से—वस्तुरूप से है, उसकी प्रवृत्ति के परिणाम दो प्रकार के। भाव लेना है न, प्रवर्तन लेना है न अभी? प्र—विशेष वर्तना। वर्तना। वह वस्तु स्वभाव चैतन्य भगवान में पर्याय प्रवर्ते, शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति में प्रवर्ते, उस परिणाम का भाव, वह वर्तमान सुखरूप, भविष्य में सुख का कारण। पूर्ण सुख। आहाहा! कहो, समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....पर्याय की बहुत बात।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! पर्याय यह है न। कहा है न! पर्याय में संसार, पर्याय में मोक्षमार्ग, पर्याय में सिद्ध। पर्याय में संसार और पर्याय में निगोद। वस्तु तो वस्तु है। इसके लिये तो बात करते हैं। द्रव्यलिंग है, वह तो द्रव्यरूप से वस्तु है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ध्रुव का वजन क्यों नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ध्रुव का वजन सही, परन्तु है वह तो पर्याय, वह पर्याय हुई।

**मुमुक्षु :** उसका क्या काम है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... पर्याय प्रवर्तन है और प्रवर्तन का सुख-दुःख का काम है। वह नहीं तो हुआ कुछ नहीं उसे। आहाहा! भटकने का भाव कहाँ रहा फिर प्रवर्तन न हो तो? आहाहा!

वस्तु भगवान आत्मा नित्य ध्रुव है। उसकी प्रवृत्ति के वर्तमान परिणाम जो हैं दशा। शरीर, वाणी, मन, कर्म, पैसा, वह तो परचीज़ जड़-धूल है, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। वह कहीं जीव का भाव नहीं कि जीव का सुख-दुःख का कारण हो। शरीर, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश, पैसा, वह कहीं जीव का भाव नहीं, वह कहीं जीव की वह

कोई पर्याय नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब! पहले से डाला है। '**भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं**' तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव, अरिहन्तदेव, परमेश्वर ने सौ इन्द्र के मध्य में भगवान का ऐसा कथन है कि, भाई! तेरा जीव द्रव्य वस्तु है, उसमें जो परिणाम हों शुद्ध और अशुद्ध, वह गुणदोष का कारण है। शुद्ध परिणाम, वह गुण है; अशुद्ध परिणाम, वह दोष है। शुद्ध परिणाम, वह परम आनन्द का कारण है और अशुद्ध परिणाम, वह परम दुःख का कारण है। आहाहा!

**द्रव्यरूप पुद्गल का विभाव है,...** द्रव्य अर्थात् शरीरादि, कर्म आदि, वह तो पुद्गल की विभावपर्याय है। जड़ की वैभाविक पर्याय है यह पैसा, यह सोना-मोहर, हीरा-माणेक, जवाहरात, जवाहरात। ऐई! ...भाई! यह सब पुद्गल की विभाव पर्याय है। जड़ की विभाविक अवस्था। परन्तु वह कहीं उसे सुख-दुःख नहीं। है? **इस सम्बन्धी जीव को दुःख-सुख नहीं होता...** इससे कहीं जीव को सुख-दुःख नहीं होता उसके कारण से। आहाहा! लक्ष्मी की पर्यायें, लक्ष्मी की अवस्था, वह कहीं जीव को सुख-दुःख का कारण नहीं। समझ में आया? स्त्री का शरीर, वह तो जड़ है, मिट्टी, धूल। उस जड़ का भाव, उसकी पर्याय, वह कहीं जीव को सुख-दुःख का कारण नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह शरीर, लक्ष्मी, कुटुम्ब, मकान, जवाहरात, नोट जड़ के, वह कहीं सुख-दुःख का कारण नहीं। वह तो जड़ की दशा है। उसे सुख-दुःख का कारण नहीं और जीव को भी वह कहीं सुख-दुःख का कारण नहीं। समझ में आया?

**अतः भाव ही प्रधान है,...** आहाहा! **और ऐसा न हो तो केवली भगवान को भी सांसारिक सुख-दुःख की प्राप्ति हो...** केवली भगवान को शरीर है, वाणी निकलती है, वह सब है, परन्तु वह कहीं सुख-दुःख का कारण नहीं। चार कर्म भी है अन्दर। समझ में आया? वह परद्रव्य, वे कहीं सुख-दुःख का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **परन्तु ऐसा नहीं है। इस प्रकार जीव के ज्ञान-दर्शन तो स्वभाव है...** लो! भगवान आत्मा का जानना-देखना तो उसकी स्वभावपर्याय है। उसमें उपाधि मिलाना राग और द्वेष और मोह, वह स्वभावविभाव है। देखा! स्वभावविभाव है। है तो उसका पर्यायस्वभाव। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान का दर्शन के स्वभाव से त्रिकाल भरपूर है। उसकी प्रवृत्ति के परिणाम—भाव जानने—देखने के परिणाम का भाव, वह

तो स्वभाव है। वह तो सुखरूप है। समझ में आया? सुखरूप क्या और दुःखरूप क्या? सुख का कारण क्या? दुःख का कारण क्या? कुछ खबर नहीं होती और ऐसा का ऐसा हाँक रखे धर्म हो गया। धर्म करो.. धर्म करो... परन्तु धर्म कहाँ होता होगा? धर्मी ऐसा भगवान आत्मा, जिसमें अनन्त धर्म भरे हैं। उसकी परिणति के भाव, उसका स्वभावभाव, उसके ज्ञान का, दर्शन का जानने-देखने के भाव, वह स्वभावभाव है और वह धर्म है। आहाहा! अब यह किसे समझना? यह बाहर की सिरपच्ची, उसमें कुछ पैसा हो थोड़ा-बहुत, पाँच, दस, बीस लाख, पचास लाख, करोड़, दो करोड़, वहाँ हो गया मैं चौड़ा और गली सकड़ी। बातें करना आवे नहीं सामनेवाले के साथ। सज्जनता से बात किस प्रकार करना, वह आवे नहीं उसे। पावर फट गया हो अन्दर। ओहोहो! पाँच-पाँच लाख की आमदनी महीने की। ... चले हैं। क्या है परन्तु अब सुन न! वह तो जड़ की पर्याय और जड़ का स्वरूप है, वह तुझे कहाँ सुख का और दुःख का कारण है? सुख का कारण तो तेरे जानने-देखने के परिणाम वे सुखरूप हैं। और दुःखरूप वह तेरा मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष के भाव, वे दुःखरूप हैं। समझ में आया? वह जड़ और जड़ की पर्याय सुखयप भी नहीं और दुःखरूप भी नहीं। आहाहा! ज्ञेयरूप है।

भगवान आत्मा का द्रव्य और गुण, वह सुख और दुःख की प्रवृत्तिरूप नहीं। वह तो ध्रुव है। समझ में आया? उस चैतन्य भगवान के जानने-देखने के परिणाम—ज्ञाता-दृष्टा के भाव। जिसमें मोह और राग-द्वेष की मिलावट नहीं। ऐसा जो जानने-देखने का स्वभावभाव, वह स्वभावभाव सुखरूप है। वह स्वभाव प्रवृत्ति है, वह द्रव्य की स्वभाव प्रवृत्ति है। भाव लेना है न! समझ में आया? अरे! उसे जानने की भी दरकार की नहीं, हों! भाई! आहाहा! सवेरे नहीं लिया था भाई ने? सवेरे भाई ने लिया था जरा, बाहर निकलकर। अरेरे! मैं कर्म की प्रभुत्वशक्ति से घाता-मारा गया हूँ। आता है न! आहाहा! नियमसार में। प्रायश्चित्त (अधिकार) पहली ही गाथा। वह प्रायश्चित्त है न, इसलिए ऐसा आया है। प्रायश्चित्त करते हैं। आहाहा! अरेरे! मैं विकारीपर्यायरूपी प्रभुता से मैं मारा गया हूँ। प्रायश्चित्त... सवेरे निकाला था। चेतनजी!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रायश्चित्त हेतु। यह इसमें प्रायश्चित्त का हेतु है। निमित्त ...

अरेरे! आहाहा! मैंने मेरे स्वभाव की प्रवृत्ति बिना, पर्याय में विकारी प्रवृत्ति के कारण से मैं घाता गया हूँ। वह दुःखरूप है। दुःखरूप कोई बाह्य चीज़ है नहीं। आहाहा! ऐसा कहकर प्रायश्चित्त में यह बात ली। बहुत गजब काम!

प्रीतिभोज करते हैं न, प्रीतिभोज। लाना तुम्हारे लाना हो उतने, कहे। आज प्रीतिभोज मेरे है। अरे! प्रभु! कहाँ जीमण तेरा? जहाँ अकेली भ्रमणा की खुराक है, वहाँ प्रीतिभोज कहाँ आया? चिमनभाई! ऐसी बातें हैं यहाँ तो। आहाहा! चैतन्यरत्नाकर भगवान स्वयंभू प्रभु की प्रतीति, श्रद्धा, ज्ञान के परिणाम, वे सुखरूप स्वभाव है। उनसे विरुद्ध परिणाम पर में सुख है, पर में दुःख है, पर के कारण से दुःखी हूँ, पर के कारण से सुखी हूँ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और इष्ट-अनिष्ट को देखकर राग और द्वेष होना, वह दुःखरूप है। आहाहा! वाह! यह पैसा देखकर सुखी मानना, कहते हैं, वह दुःखरूप की दशा है। शशीभाई! आहाहा! लड़का आया पचास वर्ष में, साठ वर्ष में एक। बाँझपन का लांछन टाला। उसके... दो-पाँच करोड़ की पूँजी रहेगी, वरना ले जायेगा छोटा भाई। ऐसा उसका सुख का आस्वाद। धूल भी नहीं, सुन न अब! मूर्खाई का प्रदर्शन है। भगवान जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं '**जिणा बेन्ति**' भाव में प्रधानता सुख-दुःख की है, कहते हैं। बाहर में कुछ है नहीं। आहाहा! क्या अधिकार है परन्तु गजब अधिकार है!

**इस प्रकार जीव के ज्ञान-दर्शन तो स्वभाव है और राग-द्वेष मोह ये स्वभाव-विभाव हैं...** देखा! स्वभाव-विभाव। पर्याय में होता है। उसका स्वभाव है न, वह कहाँ जड़ है? वह कहीं जड़ का भाव नहीं, ऐसा बतलाना है। आहाहा! शुभ और अशुभराग, वह स्वभाव-विभाव है। आहाहा! पर की दया पालने का भाव, वह स्वभाव-विभाव है। वह दुःखरूप है। वह भाव प्रवर्ते, वह दुःखरूप है। गजब बात है। यह पैसा पाँच लाख खर्च किये और दान में दिये, उसमें से राग की मन्दता की हो, अभिमान के लिये न हो कदाचित्। राग की मन्दता की हो तो कहते हैं कि वह दुःखरूप भाव है। आहाहा! वह स्वभाव-विभाव है। वह पर्याय की प्रवृत्ति स्वभाव की है, वह विभाव है। कहो, मूलचन्दभाई! इसमें कहाँ सुनने का मिले ऐसा है तुम्हारे पिता को, पुत्र को? पिता यह झीणाभाई!

**मुमुक्षु :** ....सुनने आते थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वे तो अधिक कहते... अभी परिस्थिति... वहाँ तो लड़के के लड़के का ठिकाना नहीं। आहाहा! नाथ! तेरी बातें सुनने को मिलती नहीं। आहाहा!

जिनेश्वरदेव का ऐसा वचन और वाणी में आया है। भगवान! तेरा पुण्य का-पाप का, राग-द्वेष का भाव, वह स्वभाव-विभाव, तेरी पर्याय का वह स्वभाव है, वह विभाव है। आहाहा! यह बात लोगों को—साधारण को तो पकड़ में नहीं आती। बेचारे बाहर में चले जाये ऐसे के ऐसे जिन्दगी पूरी हो। यह दया पालन की, व्रत पालन किये, तपस्या की, यह किया, वह किया। वह तो राग है, वह राग स्वभाव-विभाव है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो ज्ञान-दर्शन के स्वभाव से विरुद्ध भाव की बात है न? ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम, वह स्वभावभाव है। स्वभाव स्वभावरूप है। इसके अतिरिक्त विकल्प की वृत्तियाँ उठती हैं चाहे तो शुभ-अशुभराग जो विभाव, वह पर्याय का स्वभाव है, वह पर्याय का स्व-भाव है, वह स्वभाव का विभाव है। आहाहा! ऐसा उपदेश ऐसा किस प्रकार का? पकड़ में आये नहीं और समझ में आये नहीं। वह तो पकड़ में आये कि यह व्रत पालन करो, यह नहीं खाना, रात्रिभोजन नहीं करना, रात्रि में कन्दमूल नहीं खाना, दिन में नहीं खाना। ऐई! भगवानजीभाई! बापू! वह तो सब क्रिया की बातें राग की है, भाई! तुझे खबर नहीं। वह सब विभाव-स्वभाव है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसा तो अनादि से सुनते आये हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें क्या है, बापू? जिसमें से जन्म-मरण के अन्त का भाव न हो, वह वस्तु क्या? आहाहा! चौरासी की लात... क्षेत्र, अनन्त काल के असंख्य क्षेत्र, उसमें भटकता प्राणी, वह मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष के भाव में भटक रहा है। आहाहा!

कहते हैं **और पुद्गल के स्पर्शादिक...** अब पुद्गल की बात ली। वह जीव की बात ली थी। **पुद्गल के स्पर्शादिक तथा स्कन्धादिक स्वभाव-विभाव हैं।** पुद्गल के स्पर्शादिक और उसे स्कन्धादिक स्वभाव-विभाव है। अकेले परमाणु का स्पर्शादि है, वह स्वभाव है और बहुत परमाणु इकट्ठे होकर जो स्पर्शादि का परिणमन होता है, वह स्वभाव-विभाव है। आहाहा! **उनमें जीव का हित-अहितभाव प्रधान है,...** जीव का

हित और अहित एक मुख्य है। **पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी प्रधान नहीं है।** पुद्गलसम्बन्धी के भाव का यहाँ कुछ काम नहीं।

**बाह्य द्रव्य निमित्तमात्र है,...** वह तो बाह्य लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, शरीर, वाणी, मन, जड़, वे तो बाह्य निमित्तमात्र हैं। **उपादान के बिना निमित्त कुछ करता नहीं है।** उपादान अर्थात् शुद्ध-अशुद्धभाव बिना निमित्त कुछ नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उपादान हो, तब तो निमित्त कुछ करे न? करे क्या? होता है, इतना। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि शुद्धभाव न हो तो देव-गुरु-शास्त्र, वे निमित्त होकर शुद्धभाव करावे, ऐसा कुछ नहीं। वह तो शुभभाव तो स्वयं करे तो होता है। वह कहीं देव-गुरु-शास्त्र से नहीं होता। आहाहा!

**उपादान के बिना निमित्त कुछ करता नहीं है।** आहाहा! इसमें शुद्धभाव का भाव न हो तो कोई निमित्त इसे शुद्धभाव करावे, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार इसमें अशुद्धभाव हो और दूसरा अशुद्धभाव करावे, ऐसा नहीं। अशुद्धभाव का कर्ता उपादान उसका जीव है, शुद्धभाव का उपादान कर्ता भी उसका जीव है। दूसरी चीज़ तो निमित्तमात्र है। आहाहा! इसका सब विवाद। उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार और क्रमबद्ध। अरेरे! झगड़ा। सोनगढ़ के नाम से पाँच झगड़े। आहाहा! बापू! तेरी चीज़ में, तेरे भाव होने में तेरा भाव प्रधान है। बाहर की चीज़ के कारण से भाव की मुख्यता नहीं। आहाहा!

**उपादान के बिना...** उपादान अर्थात् जिसमें कार्य हो, ऐसे कारण बिना, निमित्त कारण से कुछ होता नहीं। **यह तो सामान्यरूप से स्वभाव का स्वरूप है और इसी का विशेष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र...** अब, लो! **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो जीव का स्वभाव-भाव है,...** विशेष है। वह साधारण सामान्य ज्ञान जानना-देखना, ऐसा लिया था। जानने-देखने के जीव के स्वभावभाव परिणाम लिये थे, परन्तु उसका अब विशेष प्रकार करें तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। आहाहा! जानने-देखने के सामान्य परिणाम में त्रिकाली भगवान आत्मा के श्रद्धा के परिणाम, ज्ञान के और चारित्र के परिणाम वीतरागीभाव, वह जीव का स्वभावभाव है। मोक्ष का मार्ग, वह स्वभावभाव है। स्वभाव की पर्याय की प्रवृत्ति है वह। कितना याद रखना? एक घण्टे में सब पद्धति। आहाहा!

**मुमुक्षु :** मूल बात समझ में आयी तो सभी बात समझ में आयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसमें याद कहाँ? वस्तुस्थिति ही ऐसी है वहाँ। भाव तेरा वह सुख-दु:ख का कारण। अब यह प्रश्न सीधा है। उसमें यह भाव तेरा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। सामान्य जानना-देखना, वह सामान्य रीति से बात की। परन्तु अब उसमें विशेष भेद करने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र आत्मा के वीतरागी परिणाम हैं। यह देव, गुरु और शास्त्र को मानना, नौ तत्त्व को मानना, वह नहीं। वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! भारी कठिन बात! देव-गुरु-शास्त्र को माने, वह जो राग, वह विभावस्वभाव है वह तो। दु:ख का कारण है। भारी कठिन बात! बापू! तेरा स्वभाव है, वह पर में छुए, स्पर्शे, वहाँ तो विभाव होता है। आहाहा!

कहते हैं कि **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो जीव का स्वभाव-भाव है, इसमें सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है।** आहाहा! यह ज्ञान और चारित्र से पहले सम्यग्दर्शन न हो तो वह ज्ञान और चारित्र होता नहीं। पूरा भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसे श्रद्धा, ज्ञान में प्रतीति में आया, वह सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में भी मुख्यता तो सम्यग्दर्शन की है। कहो, समझ में आया? पण्डित जयचन्द्रजी ने भी... गृहस्थ भी कैसी सरस बात करते हैं! वस्तु ऐसी है, ऐसा करे। सामान्यरूप से तो जानना-देखना तेरा स्वभाव। वह पर्याय स्वभाव की। राग-द्वेष-मोह, वह विभाव पर्याय। अब उसमें भेद करें तो... उसे आत्मा पूरा परमात्मस्वरूप से जहाँ भरोसा में आया, भगवान का भरोसा आये बिना कहते हैं कि सब चीज़ निरर्थक है। ऐसा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, वह ध्रुव की श्रद्धा, हों! ऐसा पूर्ण प्रभु आत्मा, उसकी श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शन। वह भी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीन में मुख्यता तो सम्यग्दर्शन की है। सम्यग्दर्शनरहित ज्ञान और सम्यग्दर्शनरहित व्रत, तप आदि करके मर जाये, वह सब खोटा-खोटा, भटकने का है। आहाहा!

आठ-आठ वर्ष के बालक यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करके चल निकले। हमारा आत्मा हमको पोषाण में आया, माता! आहाहा! इस सम्यग्दर्शन ने तो हमारी पूरी दिशा बदला दी। हमारी दिशा जो पर के ऊपर थी, वह बदलकर अब स्व के ऊपर आयी। ऐसी दृष्टि और सम्यक्त्व बिना ज्ञान और चारित्र सच्चे नहीं हो सकते। यह तो सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं और करो व्रत और करो तप। अपवास करो और मरो। भगवानजीभाई!

आहाहा! बापू! यह तेरा जन्म-मरण का अन्त ऐसे नहीं आयेगा, भाई! जिसमें जन्म-मरण नहीं, जिसमें जन्म-मरण के भाव नहीं, ऐसे भाववाला भगवान, उसकी अन्तर में प्रतीति निश्चय, निर्णय, अनुभव बिना सब निरर्थक है। उसका पढ़ा-गुना ज्ञान भी निरर्थक, उसके व्रत और तप किये हुए भाव सब निरर्थक हैं। वह दोष का कारण है। आहाहा! अरेरे! ऐसी बातें भी कान में न पड़े, वह बेचारा कहाँ जाये? क्या करे? आहाहा! अनादि से चौरासी में भटकता प्राणी दु:खी है वह। दुखिया है। प्रतिकूल संयोग है, इसलिए दु:खी है, ऐसा इनकार किया इन्होंने। आहार नहीं मिलता, पानी नहीं मिलता, रहने के स्थान नहीं, इसलिए दु:खी। नहीं, दु:खी यह नहीं, बापू! तुझे खबर नहीं। ऐसी मिथ्या प्रवृत्ति परिणाम उठाये उसमें से, इसका नाम भगवान दु:ख कहते हैं। आहाहा! वह तो उपादान होवे तो उसको निमित्त कहा जाता है। परन्तु उपादान में दु:खरूप दशा नहीं तो निमित्त किसका? आहाहा!

आत्मा ज्ञान और दर्शनस्वरूपी प्रभु है। इसलिए उसके ज्ञान-दर्शन के परिणाम-पर्याय, उसका स्वभावभाव है। उसमें विशेष भेद करते ... ज्ञान ... ज्ञानस्वरूपी भगवान की प्रतीति, ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान की रमणता, उसमें तीन भेद विशेष पड़ते हैं। उसमें भी सम्यग्दर्शन मुख्य प्रधान है। आहाहा! यह उसकी पद्धति है और यह उसकी विधि है। आहाहा!

**इनके बिना सब बाह्यक्रिया मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं...** आहाहा! भगवान ज्ञाता-दृष्टा, ऐसे स्वभाव की प्रतीति के सम्यग्दर्शन बिना जितनी व्रत और तप की क्रियायें करे, संथारा करे दो-दो महीने का, सब संसार में भटकने के लिये हैं। आहाहा! वह तो सब मिथ्यादर्शन है। आहाहा! राग की क्रियायें, वह धर्म की क्रिया, ऐसा उसने—अज्ञानी ने माना है, वह तो राग की क्रिया सब है। उसमें तो मिथ्यादर्शन का पोषण है। आहाहा! कहो, यह साधु होते हैं न दीक्षा लेकर। कहते हैं कि मिथ्यादर्शन को पोषते हैं वहाँ। आहाहा! गजब काम! भारी कठिन पड़े। बेचारे स्त्री, पुत्र छोड़े, बालब्रह्मचारी लड़कियाँ हों। बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! अभी तो तेरे देव-गुरु-शास्त्र सच्चे कहना किसे, इसकी तुझे खबर नहीं होती। और उनका तू सेवक। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह सम्यग्दर्शन बिना अर्थात् कि आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर में अनुभव ज्ञान का करके प्रतीति बिना, उसके अन्तर में स्वभाव के श्रद्धा के भाव बिना बाह्य क्रियायें जितनी करे व्रत, तप, संथारा, कन्दमूल का त्याग और प्रत्येक का त्याग तथा छह परबी ब्रह्मचर्य, फलाना, ढींकणा करे और कुछ फिर मारवाड में वे। चार स्कन्ध हों। चार स्कन्ध होते हैं। ऐसा कुछ है। चार वह फल आवे। नाम भूल गये। यह मूल भगवान आत्मा पड़ा रहा। जिसे विश्वास में लेना चाहिए और विश्वास करनेयोग्य ही वह चीज़ है। दूसरी कोई विश्वास करनेयोग्य चीज़ है नहीं। आहाहा!

**ये विभाव हैं...** आहाहा! वस्तुस्वभाव की दृष्टि और सम्यग्दर्शन बिना जितना क्रियाकाण्ड करे, वह सब विभाव दुःखरूप है। आहाहा! यह यात्रायें करे सम्मेदशिखर की, शत्रुंजय की ९९ यात्रा, वह सब दुःखरूप है। ऐई! भगवान! तुझे तेरी जाति की खबर नहीं। आहाहा! तेरी जाति में उस विकल्प का अवकाश नहीं। ऐसी तेरी चीज़ अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! उसकी दृष्टि के भान बिना, अर्थात् कि ऐसा परमसत्य चैतन्यरत्नाकर है, उसके स्वीकार बिना, दूसरी क्रिया का स्वीकार होता है, वह सब मिथ्यात्व और विभाव है। आहाहा! **और संसार के कारण हैं,...** चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप की जिसे अन्तर में स्वसन्मुख की दृष्टि नहीं। उसकी सब क्रिया बालव्रत और बालतप, संसार का कारण है। आहाहा! **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो! बहुत अच्छा अर्थ किया है। भाव का लेना है न यहाँ! '**भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिणा बेन्ति**' इसका स्पष्टीकरण है। तेरा द्रव्यलिंग क्या काम करता है? वस्त्र छोड़कर नग्न हुआ और पंच महाव्रत के भाव पालन करे, वह सब द्रव्यलिंग है।

भाव अन्दर में आत्मा के आनन्द के स्वरूप का अन्तर अनुभव और प्रतीति के भान बिना, यह सब द्रव्यलिंग कोई सच्ची वस्तु नहीं है। इससे तो जरा भी कल्याण नहीं है। आहाहा! '**भावो हि पढमलिंगं**' ऐसा है न पहला आया। आहाहा! '**ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं**' यह द्रव्यलिंग शरीर की नग्नता, पंच महाव्रत के भाव, अहिंसा, सत्य, अचौर्य के विकल्प, वह कोई परमार्थ वस्तु नहीं, वह तो राग है। आहाहा! '**भावो कारणभूदो**' शुभ और अशुभ तथा शुद्धभाव, वही गुण-दोष का कारण है। शुद्धभाव

वह गुण का कारण और अशुद्ध, वह दोष का कारण है। अर्थात् परचीज़ कुछ गुण-दोष का कारण है ही नहीं, ऐसा कहना है। यह द्रव्यलिंग है, वह गुण-दोष का कारण नहीं। वह तो वस्तु है इतना। परन्तु वह मेरा है, उसे मैंने धारण किया, इसलिए कल्याण होगा, वह दोष का कारण है। आहाहा! भावलिंग हो, वहाँ द्रव्यलिंग हो भले, होता ही है। जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हो, उसे शरीर में नग्नदशा हो जाये और पंच महाव्रत के विकल्प उसे हो, परन्तु वह परमार्थरूप नहीं। भावलिंग हो, वहाँ द्रव्यलिंग होता अवश्य है और द्रव्यलिंग हो, वहाँ भावलिंग न हो, और हो दोनों (बातें सम्भव हैं)। उसके कारण से नहीं। आहाहा! यह एक गाथा हुई।

**आगे कहते हैं कि बाह्यद्रव्य तो निमित्तमात्र है, इसका अभाव जीव के भाव की विशुद्धता का निमित्त जान बाह्यद्रव्य का त्याग करते हैं:—**दूसरी गाथा में कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ३, शुक्रवार, दिनांक-११-०१-१९७४
गाथा - ३, ४, ५ प्रवचन-८६

गाथा - ३

भावपाहुड़ दो गाथायें पूरी हुईं, तीसरी गाथा।

**आगे कहते हैं कि बाह्यद्रव्य निमित्तमात्र है...** १३१ पृष्ठ पर है ? **इसका 'अभाव' जीव के भाव की विशुद्धता का निमित्त जान बाह्यद्रव्य का त्याग करते हैं—** अर्थ में (स्पष्ट) करेंगे। तीसरी गाथा।

**भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।**
**बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स॥३॥**

कहते हैं कि बाह्य स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा छोड़ दे और साधु हो परन्तु अभ्यन्तर में मिथ्यात्व न छोड़े और सम्यग्दर्शन न हो तो वह सब निष्फल है। समझ में आया ?

**अर्थ :- बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है,...** निमित्त। **परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह रागादिक हैं, उनसे युक्त के...** अन्तर में राग के परिणाम, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति ऐसे शुभभाव, वे मेरे हैं और मुझे उनसे लाभ है, ऐसी जब तक दृष्टि है, तब तक उसे बाह्य का त्याग कुछ लाभदायक नहीं है। आहाहा! भाव का अधिकार है न यह ? भाव में भी आत्मा... परद्रव्य के त्याग में तो निमित्तपना है। उसमें कोई आत्मा का लाभ नहीं। वह तो भाव राग के त्याग के लिये निमित्त का त्याग करता है। परन्तु जिसे अन्दर में राग का त्याग नहीं, (उसे वह त्याग कुछ लाभदायक नहीं)। आहाहा! यहाँ वीतरागभाव है न ? चाहे तो वह दया, दान, भक्ति, भगवान की पूजा आदि का भाव हो, उस राग की जब तक अन्दर एकताबुद्धि है, तब तक का सब बाह्य त्याग उसे निष्फल है। कहो, समझ में आया ? भगवान की भक्ति करो और खूब करो तो कल्याण हो जायेगा। यह बात एकदम झूठ है।

**मुमुक्षु :** भावयुक्त पूजा करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाव क्या है? राग है। अशुद्ध राग है, अशुद्ध राग है। अशुद्ध राग में लाभ मानता है तो मिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग जगत से अलग प्रकार का है। ... दया, दान, व्रत, तप में धर्म मनावे, वह भी शुभभाव है। कहीं दान में और भक्ति (करने में), यह मन्दिर बनाने के और भक्ति करना, बहुत धुन लगाना भगवान की, यह सब रागभाव है।

चैतन्य वस्तु भगवान आत्मा जो पुण्य और पाप के भाव से रहित और शुद्धभाव का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसकी दृष्टि में रागरहितपना जहाँ न आवे और सम्यग्दर्शन की शुद्धि चैतन्य के आश्रय से न हो, तब तक का सब त्याग, भक्ति, वह सब संसार खाते हैं। समझ में आया? स्त्री, पुत्र छोड़े, साधु हुए, जंगल में रहे, इससे क्या हुआ? जो छोड़ने का है, वह तो छोड़ा नहीं। अन्दर में जो शुभभाव है, उसकी एकता छोड़नी है, वह तो छोड़ी नहीं। बाह्य त्याग में क्या रहा? उसमें उसे क्या लाभ हुआ? जन्म-मरण का अन्त उसमें कुछ आनेवाला नहीं है। भाव...

कहते हैं कि **रागादिक हैं, उनसे युक्त के बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है।** अन्दर में राग का प्रेम है। चाहे तो भगवान की भक्ति हो, नामस्मरण हो, भगवान की धुन लगावे। धुन लगाओ, धुन लगाओ। भूल जाओ। क्या भूल जाये? भगवान को—अपने को। अपने को भूलकर भगवान की भक्ति की धुन। ऐसी राग की जब तक बुद्धि-प्रेम है, (तब तक तो संसार है)। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, प्रभु! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग तो दुनिया से अलग प्रकार का है।

कहते हैं कि **बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है, परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह रागादिक हैं,...** जिसे अन्दर राग के भाव की रुचि है, प्रेम है... आहाहा! वह तो मिथ्यात्व परिग्रह है। भारी सूक्ष्म बातें, भाई! भगवान की भक्ति और पंच महाव्रत के परिणाम, वह सब राग है। और राग का जब तक प्रेम है, तब उसे आत्मा के शुद्ध स्वभाव का प्रेम नहीं। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। आहाहा! जिसे राग का प्रेम है, उसे प्रभु का—स्वयं का प्रेम नहीं है। आहाहा! और जिसे अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा, उसकी जिसे दृष्टि और प्रेम हुआ, उसे राग का प्रेम नहीं

रहता। राग होता अवश्य है। समझ में आया? आहाहा!

दृष्टि फेर से शुद्धि नहीं हुई, ऐसा कहते हैं। बाह्य त्याग किया, भक्ति की, व्रत पालन किये। आहाहा! परन्तु अन्तर वस्तु की शुद्धि भूतार्थ, सत्यार्थ प्रभु त्रिकाल, उसका आश्रय लेकर शुद्धि करना चाहिए, वह शुद्धि नहीं की। आहाहा! समझ में आया? भगवानजीभाई! मुश्किल से बेचारा करता हो भक्ति, पूजा, दान, व्रत और तप, उसमें मानता हो कि यह करते-करते उसमें धर्म हो जायेगा। धीरे-धीरे होगा। अभी कहते थे न! आहिस्ता-आहिस्ता। परन्तु किसका आहिस्ता-आहिस्ता? राग करते-करते आहिस्ता-आहिस्ता सम्यग्दर्शन होगा? समझ में बात? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो वीतराग का मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर। ऐसा तो बहुत बार मंगलिक में बोलते हैं। केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं। नहीं आता? बोलते हैं न? मांगलिक में बोले, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं। परन्तु कहना किसे? जिसे जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नाम स्मरणादि का भाव राग है वह, उस राग की जिसे रुचि है, उसे मिथ्यात्व का परिग्रह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन बातें हैं।

भगवान चैतन्यस्वरूप राग—पुण्य के विकल्प से रहित प्रभु का स्वरूप है पूरा। प्रभु स्वयं, हों! भगवान है, वे तो दूसरे रहे, बाहर रह गये। ऐसे भगवान आत्मा के प्रति शुद्धि की रुचि की दृष्टि के बिना राग की एकता की बुद्धि हो, वहाँ सर्व त्याग करे, मुनिपना ले, भगवान की भक्ति करे, शरीर अर्पण कर दे। सब निष्फल है। निष्फल अर्थात्? धर्म के लिये निष्फल है। भटकने के लिये सफल है। आहाहा!

यह आया है न? प्रवचनसार में। ... जो कोई महापुरुषार्थ भक्ति का, व्रत का, तप का, दान का, दया का भाव पुरुषार्थ करता है। अबुद्धा। परन्तु सम्यग्दर्शन बिना का। क्योंकि राग की क्रिया, वह मेरा धर्म है और राग करते-करते मुझे धर्म होगा। यह व्यवहार करते-करते शुद्धि होगी, ऐसे जो अबुद्धा, महाभागा पुण्यवन्त हो, दुनिया करोड़ों माने। आहाहा! .... वीर हो परन्तु मिथ्यादर्शन सहित है। ... पराक्रम सफल है। जो चार गति फलती है, वह उसे फलेगी। ...

उसके सामने जिसे तत्त्वदृष्टि हुई है, सम्यग्दर्शन की शुद्धि हुई है... आहाहा! राग हो, परन्तु राग से पृथक् जिसे आत्मा चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द का सागर जहाँ

अन्दर डोल रहा है, ऐसे परमात्मस्वरूप की जिसे अन्तर्मुख होकर दृष्टि, अनुभव होकर ज्ञान हुआ है, वह बुद्धा है, ज्ञानी है, महाभाग है। पुण्यवन्त भी हो, जिसे लाखों लोग नमन करे परन्तु वास्तविक... वह वीर है। अपने आनन्द के स्वभाव में पुरुषार्थ करने को वीर है। आहाहा! भारी कठिन, भाई!... उसका जो स्वभावसन्मुख का पराक्रम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का। ... उस परिणाम का फल अब संसार नहीं आयेगा। आहाहा! उसे भवभ्रमण रुक गया है। और मिथ्यादृष्टि अबुद्धा (जिसे) राग की रुचि है, यह तो भावपाहुड़ है न? इसे शुद्धभाव जो आत्मा का, चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसमें अशुद्धभाव का जो प्रेम है, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब मार्ग, भाई!

शुद्ध चैतन्यघन पवित्र पिण्ड प्रभु है। उसकी जिसे अन्तर्दृष्टि हुई है, उसे राग की एकता टूट गयी है। एकत्व निश्चयगत समय। स्वयं अपना स्वरूप अन्दर शक्ति पूरा सत्त्व है, आनन्द का नाथ है। ज्ञान का तो भण्डार है। श्रद्धा की शक्ति का सागर है। आनन्द से भरपूर तत्त्व है। वीतरागमूर्ति आत्मा है। आहाहा! उसकी जिसे दृष्टि और शुद्धि प्रगट हुई है, उसका सब सफल है। सफल अर्थात् धर्म के लिये सफल, संसार के लिये अफल है। आहाहा! मार्ग बहुत भाई ऐसा। लोगों को ऐसा दिया है न, जैन के नाम से अजैनपना दिया है। अजैन अर्थात् राग। राग को परोसा है। राग करो... यह राग करो... यह राग करो और राग करने से होगा। वह तो अजैनपना है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, अहो! जो रागादि से युक्त है। **बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है।** भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु, ऐसी सिद्धि जिसे सम्यग्दर्शन नहीं और राग की एकताबुद्धि पड़ी है, उन सबका त्याग, भक्ति और पूजा रण में चिल्लाने जैसा है। आहाहा! समझ में आया? उसका त्याग निष्फल है।

**भावार्थ :- अन्तरंग भाव बिना...** अन्तर-अंग। शुद्ध चैतन्यघन का अंग अर्थात् निर्मल दृष्टि-ज्ञान और चारित्र। ऐसे **अन्तरंग भाव बिना बाह्य त्यागादिक की प्रवृत्ति निष्फल है,...** अर्थात् कि उसका फल संसार है। उसका फल कहीं मोक्ष और धर्म नहीं है। आहाहा! **यह प्रसिद्ध है।** यह तो प्रसिद्ध है, कहते हैं ऐसा। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ४

चौथी गाथा।

**आगे कहते हैं कि करोड़ों भवों में तप करे तो भी भाव बिना सिद्धि नहीं है–** करोड़ों भव में मुनिपना ले, तपस्या करे, महीने-महीने के अपवास करे। शरीर को जीर्ण कर डाले, अपवास करके, आहार का त्याग करके, रस का त्याग करके। परन्तु शुद्धभाव सम्यग्दर्शन बिना इन सबकी सिद्धि नहीं है। उसे धर्म नहीं और उसे मुक्ति नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।**
**जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो।।४।।**

आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भगवान वीतरागदेव का सन्देश देते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का सन्देश देते हैं कि परमात्मा ऐसा कहते हैं, भाई!

**अर्थ – यदि कई जन्मान्तरों तक...** जन्मान्तरों अर्थात् जन्म से जन्म... जन्म से जन्म... करोड़ों। यद्यपि मनुष्यभव तो एक साथ करोड़ नहीं होते। क्योंकि बीच में-बीच में पशु आवे, और कोई मनुष्य हो। लगातार आठ भव भी मनुष्य हो और आठों भव में मुनिपना लेकर क्रिया, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करे। **जन्मान्तरों तक कोडाकोडि संख्या काल तक...** क्रोड़ाक्रोड़। ओहोहो! करोड़ को करोड़ गुणा गुणे इतने काल तक वह अपवास करे, व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, तपस्या करे और **हाथ लम्बे लटकाकर,...** अर्थात् कुछ परिग्रह हाथ में नहीं और **वस्त्रादिक का त्याग करके...** वस्त्र का धागा न रखे। नग्न मुनि हो। करोड़ों भव तक, करोड़ों वर्ष तक। आहाहा! **तो भी भावरहित को सिद्धि नहीं होती है।** परन्तु अन्तर में चैतन्यमूर्ति भगवान का सम्यग्दर्शन, परमात्मा स्वयं शुद्ध का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—ये तीन भाव। उसमें भी सम्यग्दर्शन मुख्य। आहाहा! ऐसे भाव बिना ऐसे करोड़ों भव करते-करते होगा, क्या होगा? धूल? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। उसी प्रकार यह राग की क्रिया करते-करते सम्यग्दर्शन होगा। मूढ है। भगवानजीभाई!

**मुमुक्षु :** बहुत कठिन बात पड़ेगी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें आगे तो अनन्त भव किये। आगे आयेगा अभी। आगे आयेगा। ऐसे निर्ग्रन्थरूप तो अनन्त बार तूने ग्रहण किये और छोड़े। द्रव्यलिंगी। सातवीं गाथा में है। **'गहिरउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं'** अनन्त संसार में क्या किया? आहाहा! अनन्त नग्नमुनि, हों! यह वस्त्रसहितवाले तो द्रव्यलिंगी भी नहीं हैं। जो वस्त्रसहित मुनिपना मानते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं, तो वे द्रव्यलिंगी भी नहीं हैं। आहाहा! गजब बात है, बापू! मार्ग वीतराग का झेलना...

परन्तु कोई नग्नमुनि होकर, वस्त्र को छोड़कर नग्न हो, ऐसा भी यदि जंगल में नग्नरूप से करोड़ों भव रहे, परन्तु जिसे आत्मद्रव्य चिदानन्द प्रभु का आश्रय और सिद्धि प्रगट नहीं, **'भूदत्थम'** भूतार्थ ऐसा भगवान सत्यार्थ ऐसा नित्यानन्द प्रभु, उसे जिसने ज्ञान की पर्याय में पकड़ा नहीं, उसकी सम्यग्दर्शन शुद्धि हुई नहीं, उसकी मुक्ति नहीं। आहाहा! लोगों को ... ऐसा चढ़ा दिया है न। ऐसी बात सुनते हुए उसे ऐसा लगे। अरर! व्यवहार का तो नाश कर डालते हैं। वे व्रत और तप में धर्म मनावे। तब वे और भगवान की भक्ति में धर्म मनावे। गुरु की भक्ति करो। गुरु की भक्ति, देव की भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण होगा। दोनों झूठे हैं। नवनीतभाई! शरीर के बलवान वे उपवास आदि में उतर गये। मन के बलवान जरा विचार में, इन बातों में उतर गये कि ऐसा आत्मा। समझे बिना... आहाहा! और कोई दान में और दया में उतर गये। क्योंकि नाम आवे न उसमें। धर्म के चार प्रकार। दान सेवत ... भावना। ऐई! चेतनजी कहते नहीं चार बोल? दान सेवत तद्भाव। यह दान और सेवा और सद्भाव चारों राग है। व्यवहार की बातें हैं। आहाहा! दान करे करोड़ों के, अरबों के, परन्तु वह शुभराग है। शरीर से शील पालन करे, वह भी शुभराग है। आहाहा! दान, शील, तप। अपवासादि करे, वह भी शुभराग है। भाव, वह शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? बापू! तेरे जन्म-मरण के चक्र। चौरासी के अवतार में डोल रहा है, भाई! एक अवतार के बाद एक... एक अवतार के बाद एक... अनन्त काल में इस आत्मा की दृष्टि और सिद्धि बिना। ऐसा अनन्त बार किया है परन्तु जन्म-मरण मिटे नहीं। आहाहा!

**भावार्थ – भाव में मिथ्यादर्शन,...** देखो! ... लिया है न। मिथ्यादर्शन अर्थात्? यह शुभराग का कण भी मुझे धर्म है और यह धर्म का कारण है, ऐसा मिथ्यादर्शन।

आहाहा! **मिथ्याज्ञान,...** स्वस्वरूप का ज्ञान छोड़कर इस राग का और पर का, शास्त्र का ज्ञान, वह सब मिथ्याज्ञान है। आहाहा! भगवान आत्मा...

**मुमुक्षु :** शास्त्र का ज्ञान 'समयसारजी' का जो ज्ञान हो...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समयसार का ज्ञान हो, वह भी परलक्ष्यी ज्ञान। बापू! यह तो मार्ग अलग, बापू! भाई! आहाहा! पर-सन्मुख के लक्ष्यवाला शास्त्र का पठन, अरे! भगवान की वाणी सुने। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर समवसरण में विराजते हों और उनकी दिव्यध्वनि सुने तो वह सुनने में राग है और उस ओर का जो क्षयोपशम होता है, वह परलक्ष्यी ज्ञान है। वह स्वलक्ष्यी ज्ञान नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा कठिन, बापू! दुनिया को, सम्प्रदायवालों को तो यह ऐसा कठिन लगे। सम्प्रदाय में होवे, तब तो रहने न दे। निकाल डाले। यहाँ जंगल में हैं। यहाँ कहाँ सम्प्रदाय है। नवनीतभाई! आहाहा!

यह देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य तो पुकार करके कहते हैं, कुछ गुप्त नहीं रखते। करोड़ों-करोड़ों वर्ष तक अपवास कर, करोड़ों-करोड़ों वर्ष तक तेरे ब्रह्मचर्य-शील पालन कर और महाव्रत आदि पालन कर, तथापि भगवान आत्मा का शुद्धभाव जो चैतन्यमूर्ति की प्रतीति और सम्यग्दर्शन शुद्धभाव, इसके बिना सब निरर्थक है। दुनिया को पचे, न पचे, समाज समतौल रहे, न रहे, इसकी कुछ दरकार इसमें नहीं है कि यह समाज को ठीक नहीं पड़ेगा, समाज बिखर जायेगी। बिखरे तो बिखरे, रहो तो रहो। मार्ग तो यह है। कहो, जादवजीभाई! यह सब वहाँ स्थानकवासी के प्रमुख। कलकत्ता में। यह लड़का जगा एक इनमें।

**मुमुक्षु :** भारी जगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भारी जगा। अभी तो पन्द्रह वर्ष हुए हैं। अन्दर का जोर है। अव्यक्तरूप से भी... मार्ग यह है, बापू! उसे आत्मा में से इसकी पुकार आना चाहिए। समझ में आया? जितनी पराश्रित क्रियायें, जितना पर व्यवहार, वह अनन्त काल करे तो भी करोड़ों भव में उसमें जन्म-मरण मिटे, ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा, देखो! **भाव में मिथ्यादर्शन,...** राग की एकताबुद्धि, राग शुभभाव भक्ति करते-करते कल्याण होगा, व्रत पालते-पालते कल्याण होगा, ऐसा जो

भाव, उसे मिथ्यादर्शन कहते हैं। आहाहा! 'हरि का मारग है शूरों का, कायर का नहीं काम जोने; प्रथम पहला मस्तक रखकर, फिर हरि...' हरि अर्थात् आत्मा। हरि— आत्मा। हरि कहा है न उसमें—पंचाध्यायी में। आत्मा स्वयं हरि है। राग-द्वेष और अज्ञान को हरनेवाला ऐसा प्रभु चैतन्य हरि है। राग, द्वेष और अज्ञान का रक्षक, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह आत्मा नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि, **मिथ्यादर्शन,...** जिसे यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव— परमात्मा की भक्ति, हों! तीर्थंकर त्रिलोकनाथ देव की भक्ति का भाव, उसमें प्रेम है कि यह मुझे धर्म होगा तो वह मिथ्यादर्शन है। ऐसी बात सुनते हुए पसीना उतर जाये ऐसा है। वे सब अभी (ऐसा कहते हैं), धुन कराओ भगवान की भक्ति की। क्या कहलाता है वह? तबला। तबला नहीं, झांझर। लाख कर न झांझर तेरी। सुन न! वह तो परसन्मुख का विकल्प है, राग है। समझ में आया? भगवान ऐसा स्वयं कहते हैं। यह भगवान का सन्देश है न? किसका है यह?

**मिथ्याज्ञान,...** आत्मा का ज्ञान छोड़कर राग को जानना, पुण्य को जानना, भगवान को अकेला जानना, उस ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं। अपना भगवान उसमें रह गया। आहाहा! और **मिथ्याचारित्ररूप...** अर्थात् मिथ्यादर्शन-ज्ञान सहित राग में एकाकार होना, राग में लीनता, वह मिथ्याचारित्र। वह **विभाव...** वह विभावभाव। उससे **रहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप स्वभाव में...** यह तीन है, वह विभावभाव, विपरीतभाव है। उनसे रहित **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप स्वभाव में प्रवृत्ति न हो...** आहाहा! ऐसे तीन भाव से रहित और भगवान चैतन्य ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप स्वभाव जिसका स्व-भाव, चिद् चैतन्यघन, उसमें जिसकी प्रवृत्ति न हो **तो कोड़ाकोड़ि भव तक कायोत्सर्गपूर्वक नग्नमुद्रा धारणकर...** कायोत्सर्ग लगावे ऐसे। बाहुबलीजी ऐसे बारह महीने रहे न! राग की थोड़ी अस्थिरता थी तो केवल (ज्ञान) नहीं हुआ। सम्यग्दृष्टि थे, मुनि थे। जरा सी खटक रह गयी। यह भूमि भरत की है, भरत को बुरा लगा होगा। इस खटक से केवलज्ञान अटक गया। आहाहा! वह तो चारित्रदोष, हों! यहाँ तो मिथ्यात्व का दोष है। आहाहा!

**कोड़ाकोड़ि भव तक कायोत्सर्गपूर्वक...** है न पाठ में? **'गलियवत्थो'** हाथ

खुले रखकर, शरीर नग्नपना, वस्त्र का धागा नहीं। आहाहा! नग्नमुद्रा। माता से जन्मा ऐसा देह **धारणकर तपश्चरण करे तो भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है,...** नहाया उतना पुण्य, लोग नहीं कहते? ....भाई! नहाया उतना पुण्य। नहाया नहीं, वह तो मैला किया है। आहाहा! राग की क्रिया को अपनी मानी तो आत्मा को मैला किया है। आहाहा! नहाया कब है? परन्तु ऐसे दृष्टान्त लगा दे कि नहाया उतना पुण्य।

**इस प्रकार भावों में...** भाव अर्थात् निर्मल पर्याय शुद्ध में **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भाव प्रधान हैं...** आहाहा! यह सब भक्ति के, व्रत के, तप के भाव में भी शुद्धता नहीं है। उसमें आत्मा का सम्यग्दर्शन, शुद्ध चैतन्य के—भगवान आत्मा के पवित्र दर्शन—प्रतीति ज्ञान और रमणता, वह भाव की प्रधानता है। **और इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है,...** मुख्य तो यह है। चारित्र बाद में और ज्ञान बाद में। परन्तु सम्यग्दर्शन का ही जहाँ ठिकाना नहीं (वहाँ चारित्र कैसा?) आहाहा! दुनिया को मजदूरी में चढ़ा दिया बेचारे को। गुरु की भक्तिवाले को गुरु की भक्ति में चढ़ा दिया। व्रत और तप करनेवाले को क्रियाकाण्ड में चढ़ा दिया, पैसेवाले को दया-दान में चढ़ा दिया। करो दान इसमें, धर्म होगा। धूल भी धर्म नहीं, सुन न। तेरे पुण्य का भी ठिकाना नहीं। आहाहा! अभी तो इसे शुद्ध सम्यग्दर्शन की खबर नहीं।

अभी यह भगवान को २५०० वर्ष (हुए)। बीस लाख का जम्बुद्वीप बनाते हैं, अमुक कोई ऐसा करते हैं और कोई ऐसा करते हैं। मानो ओहोहो! क्या करते हैं मानो! कौन करे? बापू! बाहर की चीज़ कौन करे? भाई! तुझे खबर नहीं। राग का कर्ता हो तो जहाँ मूढ है, उसके बदले इस बाह्य वस्तु को कौन करे? यह तो उसके कारण से होता है। आहाहा! हम यह कराते हैं, हम यह करते हैं। कहते हैं कि भाई! तेरे सम्यग्दर्शन की शुद्धि बिना, यह सब शुभभाव है और सब बाहर की क्रिया तो स्वतन्त्र जड़ की हुई है। वह शुभभाव कहीं संसार से (छुड़ावे), ऐसी चीज़ नहीं है। सम्यग्दर्शन मुख्य है।

**क्योंकि इसके बिना ज्ञान-चारित्र मिथ्या कहे हैं,...** जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की प्रतीति / सम्यग्दर्शन नहीं, उसके शास्त्र के पठन भी सब अज्ञान है। समझ में आया? **सम्यग्दर्शन प्रधान है, क्योंकि इसके बिना ज्ञान...** सम्यक् चैतन्यमूर्ति की

अन्तर प्रतीति सम्यक् शुद्धता के लक्ष्य के भानसहित, इसके बिना ज्ञान, वह ज्ञान ही नहीं। भले हजारों-लाखों लोगों को समझाना आता हो। ऐसी भाषा हो, क्षयोपशम हो, परन्तु वह ज्ञान नहीं। आहाहा! कहो, रसिकभाई! ऐसी बातें बहुत भारी कठिन। ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़ की बात है। यह सोनगढ़ की है या भगवान के घर की है? आहाहा!

**मुमुक्षु :** भगवान के घर की है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जा आये? ठीक! करते हैं? कोई कहता था कि दो कड़ी ऐसी और दो कड़ी ऐसी ... है ऐसा कहते थे। बीच में ऐसा सोने का हो और बीच में दो कड़ी निश्चित की न? ... कहते थे। वह होने के काल में होता है, बापू! ऐसी बातें हैं, भाई!

यहाँ तो आत्मा को उत्कीर्ण कर देने की बात है। जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से आत्मा को उत्कीर्ण किया, वह लेखे लगा। हो गया, समाप्त। बाकी सब बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन। भगवान आत्मा जिसे व्यवहार के राग की अपेक्षा बिना एक चैतन्यवस्तु में भगवान आत्मा की अपेक्षावाली दृष्टि अन्तर शुद्ध, उस बिना के ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। उस बिना के चारित्र के वर्तन को चारित्र नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? यह लोग ऐसा कहते हैं, आहाहा! अमुक बालब्रह्मचारी है। बापू! उसमें क्या हुआ? शरीर से कुछ विषय नहीं लिया तो वह शुभभाव है। वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा!

ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उस ब्रह्मानन्द का-आनन्द का सेवन (होना), उसका नाम यथार्थ में तो ब्रह्मचर्य है। आहाहा! समझ में आया? काया द्वारा शील पालन करे, तथापि वह शुभभाव है, धर्म नहीं। आत्मा के आनन्द द्वारा जिसने ब्रह्म को सेवन किया... आहाहा! उसने ब्रह्मचर्य पालन किया। आहाहा! भाई! ऐसी बातें हैं, भगवान! और वह ब्रह्मचर्य उसे मुक्ति का कारण होता है। समझ में आया? वे देखो न! स्त्री के सामने देखे नहीं तो ऐसे बड़े ब्रह्मचारी कहलाये। स्वामी नारायण में ऐसा बहुत होता है। ... ऐसे देखे नहीं। आहाहा! हमारे वहाँ घर के पास स्वामी नारायण का मन्दिर था।

**मुमुक्षु :** पर्दा आड़े डाले।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्दा नहीं, वह बाहर खड़ा रहे। स्त्री हो तो साधु अन्दर हो तो ऐसे देखकर चला आवे। घर के आगे साथ में ही है। अरे! बापू! उसमें क्या हुआ? वस्तु की खबर बिना तेरे... आहाहा! और सम्यक् वृत्ति तो कदाचित् राग की आसक्ति उसे हो, परन्तु उसे सुखबुद्धि अन्दर से उड़ गयी है। उसे छियानवें हजार स्त्रियों का विषय भी हो, परन्तु उसे जहर जैसा देखता है। आहाहा! यह छियानवें हजार स्त्रियों का भोग हो। चक्रवर्ती तीर्थंकर को छद्मस्थ में, हों! गृहस्थाश्रम में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, परन्तु उस राग को जहर देखते हैं। आहाहा! काला नाग। स्त्री का प्रेम और आसक्ति के भाव को काला नाग देखते हैं। वह जहर के घूँट हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि आत्मा के आनन्द के समक्ष उसे जहर जानता है। मिथ्यादृष्टि उस शुभभाव को अमृत जानता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** जहर को अमृत जानता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुभभाव जहर है। आहाहा! बातों में बहुत अन्तर, बापू! दृष्टि और ज्ञान के कारण में बड़ा अन्तर। आहाहा! हमारे हीराजी महाराज बेचारे... गये। छोड़कर चले गये फिर, (संवत्) १९७२ के वर्ष। बहुत नरम। इस 'पालियाद' में। दशाश्रीमाली। वीतराग का मार्ग है, वह केवलज्ञान जिसे जँचे, उसे भव नहीं होते। मैंने कहा ऐसी बातें करे, वह अपने को जँचती नहीं। सम्प्रदाय छोड़ दिया। १९७२, फाल्गुन महीना था। फाल्गुन शुक्ल १३। ५८ वर्ष। कितना हुए? ५८ वर्ष हुए। बहुत नरम। महाराज! मैं तो इसमें रह नहीं सकूँगा। मुझे यह बात अन्दर जँचती नहीं, उसका क्या करना? इतना बोले। कषाय मन्द, नरम बहुत थे। यह दृष्टि नहीं थी। वस्तु तो थी ही कहाँ। कानजी! उतावला होता है। यह भूल अब बाधक नहीं है। इतना कहा। यह भूल अवरोधक नहीं है। मैंने कहा, महाराज! यह मूर्ति-बूर्ति की पूजा वह भूल नहीं, यह तो बड़ी भूल है। आहाहा! यह तो १९७२ की बात है, हों! यह बड़ी भूल है, कहा। इसका शल्य है। आहाहा!

भगवान का ज्ञान जिसे जँचे और उसे मिथ्यात्व रहे, और संसार रहे—ऐसा नहीं होता, कहा। अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा जिसके ज्ञान में बैठे, उन्हें भव हो तो इसे भव हो। और तुम तो ऐसा कहते हो, केवली ने देखा तब भव घटेंगे, अभी कुछ नहीं होगा। यह

वाणी ही नहीं तुम्हारी। वीतराग की यह वाणी नहीं। आगम की यह वाणी नहीं, कहा। तब तो वे शास्त्र मानते थे न। तब कहाँ यह दिगम्बर था। श्वेताम्बर शास्त्र को... परन्तु वह अन्दर का था न। परन्तु सब ... भाई! यह भूल बाधक नहीं। मूर्ति को मानते हों तो वह तो भूल सही। बहुत नरम व्यक्ति थे। अरे! इस वस्तु की तो खबर नहीं थी। आहाहा! उनकी कषाय की मन्दता हीराजी महाराज... यह नहीं। महाराज! नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। वह शल्य दूसरी रह गयी है। अनन्त बार जैन साधु होकर गया, भाई! तब तो नग्न की खबर भी कहाँ थी? १९७२ की बात है। १९७० में दीक्षा। दो वर्ष की दीक्षा। २५ वर्ष की उम्र। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वैसा होगा। परन्तु यह सर्वज्ञ परमेश्वर जगत में है, ऐसी जिनकी सत्ता का स्वीकार जिसे हो... आहाहा! बापू! उसे भव नहीं होते। समझ में आया? उसे जगत में भगवान है, ऐसा जँचा कहलाये। उनकी बातें माने, भगवान है, उसमें क्या हुआ?

यह दृष्टान्त देखो न! सम्यग्दर्शन बिना का ज्ञान और चारित्र मिथ्यात्व है, भाई! जिसमें सत् सत्रूप से रहकर टिके नहीं, वह धर्म क्या? सच्चिदानन्द प्रभु, उसके सत् के प्रतीति भाव को जिसने पकड़ा, उसका ज्ञान और स्थिरता, वह मोक्ष का मार्ग है। बाकी यह सब दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव सब असत्... असत्... असत्... झूठे हैं। समझ में आया? ऐसा। यह तो अजर प्याला है, भाई! इसलिए बेचारे ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वालों ने तो ऐसा कर दिया। एकान्त निश्चय है। उन्हें व्यवहार है नहीं। अरे! भगवान! सुन न, भाई! व्यवहार आता अवश्य है, होता अवश्य है। परन्तु वह धर्म नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन—ध्रुव का दर्शन। ज्ञायकभाव, ऐसा प्रभु, उसे जिसने ज्ञान की वर्तमान पर्याय द्वारा ज्ञायक को पकड़ा नहीं, ऐसे सम्यग्दर्शन बिना सब ज्ञान, चारित्र और व्रत और सब मिथ्यात्व। उसकी भक्ति कर-करके धुन में चढ़े और मर जाये। भगवानजीभाई! ऐसी भक्ति लगाओ, धुन लगाओ, धुन लगाओ। हमारे वे कहते, मोतीलाल। बोटाद। मौन में से धुन और धुन में से... ऐसा ऐसा कहते। शब्द उठा और उसमें से यह जगत (हुआ)। ऐसे जैन थे परन्तु... मौन था पहले। उसमें से उठी धुन, धुन में से यह सब हुआ। ऐसी गप्प मारे। और ऐसे वे श्रीमद् के भगत कहलाये। आहाहा!

भगवान तो अन्दर मौनस्वरूप विराजता है। उसमें विकल्प, शुभराग, दया, दान का राग भी नहीं। ऐसी चीज़ की दृष्टि बिना, ऐसी चीज़ के भान बिना ज्ञान और चारित्र सच्चे नहीं हो सकते। **इस प्रकार जानना चाहिए।** आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ५

**आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं –**

**परिणामम्मि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहिरे य जई।**
**बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ।।५।।**

**अर्थ – यदि मुनि बनकर परिणाम अशुद्ध होते हुए...** मुनि हुआ, नग्न मुनि हुआ, वस्त्र छोड़ दिये। दिगम्बर मुनि में तो नग्नमुनि को ही मुनि कहते हैं। दूसरे मुनि तीन काल में नहीं होते। यह सब श्वेताम्बरादि जो वस्त्रसहित मानते हैं, वह जैनदर्शन नहीं है, वह जैनधर्म नहीं है, वह जैनदर्शन नहीं है। माने, न माने, जगत की स्वतन्त्रता है। समझ में आया? यह चौदहवीं गाथा वहाँ पढ़ी गयी थी कल। नहीं? यह दर्शनपाहुड़ की। चौदहवीं। नीचे थी न, वहाँ नजर गयी। वहाँ लिखी है न वहाँ? दर्शनपाहुड़ की। ... ओहोहो!

**मुनि बनकर...** मुनि की व्याख्या यह। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार छोड़े, वस्त्र भी छूट जाये, पात्र भी छूट जाये, उसे बाह्य मुनि-व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? जो यह वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मानते हैं, वह तो जैनदर्शन से अत्यन्त विरुद्ध बात है। मिथ्यादर्शन के पोषक हैं। ग्राह्य बात यह है। यह तो नग्नमुनि जो हो, वस्त्र छोड़कर। वह **अशुद्ध होते हुए...** परन्तु उसे यदि अन्दर राग का प्रेम है, यह व्रत पालने का राग होता है, उसका उसे प्रेम और रुचि है, वह अशुद्ध है। आहाहा! मिथ्यात्वभाव है। यह तो अव्वलदोम की बातें हैं, भाई! आहाहा! यह कहेंगे, तुरन्त ही कहेंगे। भान बिना के प्रभु, शुद्ध बिना के तूने नग्नपना अनन्त बार लिया और अनन्त बार छोड़ा, उसमें क्या हुआ? भाई! जो सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए, मिथ्यात्व छोड़ना चाहिए, जो था वह तो

किया नहीं मूल में। आहाहा! समझ में आया? अभी बेचारे को देखो न! महिलाओं को उलझन में (डाले)। तुम बालब्रह्मचारी होओ, तुम्हें बहुत लाभ होगा। वहाँ अकेले की कौन सेवा करेगा। तुम्हारे ... मर जाये तो विधवा होओगी। तब यह किसी के सामने देखने की अपेक्षा यहाँ आओ तो हमारी आर्यिकायें सेवा करेंगी, अमुक करेंगी। यह मुंडाओ सिर। यहाँ ध्यान रखनेवाले बहुत होते हैं, वहाँ कौन होगा? अर र! मार डाले बेचारे को।

कहते हैं कि यहाँ तो नग्नपना लेकर बैठे। जो जैनदर्शन में व्यवहार कहलाता है। परन्तु उसे यदि अशुद्ध हो—पाँच महाव्रत पालता हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, उसके लिये बनाया हुआ आहार प्राण जाये तो भी न लेता हो। आहाहा! ऐसी सर्दी में बर्फ गिरे तो वस्त्र का टुकड़ा नहीं रखे। तापणी तापे नहीं। कोई तापणी (अग्नि) करके बैठा हो, वहाँ जाकर तापे नहीं, बैठे नहीं। उससे क्या हुआ? कहते हैं। अन्तर में शुद्ध चैतन्य भगवान की सम्यग्दृष्टि प्रगट नहीं की और राग की एकताबुद्धि में पड़ा, वह तो अशुद्धता के भाव में पड़ा है। आहाहा! हजारों रानी छोड़े, हजारों दुकान के धन्धे छोड़े, अरबों रुपये के पैसे (धन) छोड़े, परन्तु उस राग की एकता छोड़े नहीं, तब तक अशुद्धता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**अशुद्ध होते हुए बाह्य परिग्रह को छोड़े...** अशुद्ध का अर्थ राग, शरीर है, वही मैं हूँ। पुण्य के परिणाम है, वह मैं और वे मुझे कल्याण का कारण। उस राग से **अशुद्ध होते हुए...** बहिर् दृष्टिवाला बाह्यत्याग चाहे जितना करे **तो बाह्य परिग्रह का त्याग उस भावरहित मुनि को क्या करे?** आहाहा! शुद्धभाव की दृष्टि तो हुई नहीं। आहाहा! **बाह्य परिग्रह का त्याग उस भावरहित मुनि को क्या करे? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं करता है।** जरा भी लाभ नहीं। स्वर्ग में तो जायेगा न बेचारा, वह नरक में न जाकर। स्वर्ग और नरक दोनों में दुःख के अंगारे सुलगते हैं। स्वर्ग में भी धूल में अग्नि है वहाँ। समझ में आया? पुण्य के फल भोगता है, वह राग और कषाय अग्नि है। स्वर्ग में सुख नहीं। स्वर्ग में राग का दुःख है। समझ में आया? आत्मा के आनन्द में सुख है, उसकी तो खबर नहीं होती। **कुछ भी लाभ नहीं करता है।** धर्म में।

**भावार्थ – जो बाह्य परिग्रह को छोड़कर मुनि बन जावे और परिणाम परिग्रहरूप अशुद्ध हों,...** परिग्रह अर्थात् अन्दर राग की पकड़ हो। शुभराग मेरा। राग के ऊपर दृष्टि है। तत्त्व के ऊपर दृष्टि है नहीं, उसकी खबर नहीं। पुण्य की क्रिया के दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, व्रतादि के भाव में प्रेम है। आहाहा! **अभ्यन्तर परिग्रह न छोड़े...** वह राग की एकता नहीं छोड़ता, **तो बाह्यत्याग कुछ कल्याणरूप फल नहीं कर सकता। सम्यग्दर्शनादि भाव बिना कर्मनिर्जरारूप कार्य नहीं होता है।** लो! सम्यग्दर्शन बिना उसे कर्म की निर्जरा नहीं होती। मिथ्यादर्शन में तो बन्ध है। राग की एकताबुद्धि में तो मिथ्यात्व का बन्ध और संसार का बन्धन है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष कृष्ण ४, शनिवार, दिनांक-१२-०१-१९७४**
**गाथा - ६, ७, ८ प्रवचन-८७**

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। गाथा-५ हुई। गाथा पहले रखी न... साधु हुए परन्तु जिन भावना, द्रव्यस्वभाव के प्रयत्न की भावना न हो तो वह साधुपना कुछ लाभदायक नहीं है। जिनभावना। वस्तु स्वभाव है, वह वीतरागस्वरूप है और उसकी भावना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह जिनभावना है। उसमें भी सम्यग्दर्शन जिनभावना है। जिसे स्वद्रव्य के आश्रय की भावना नहीं, वह सब पुण्य और दया, दान और व्रत के परिणाम की भावनावाले, यह कहते हैं कि वे मिथ्यादृष्टि और संसार को ... नहीं।

★ ★ ★

**गाथा - ६**

**आगे उपदेश करते हैं कि भाव को परमार्थ जानकर इसी को अंगीकार करो-** भाव का अर्थ यहाँ शुद्धभाव।

**जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।**
**पंथिय सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण।।६।।**

इसका अर्थ किया... किया। ...यह किया है न? अर्थ नहीं। उसमें किया है, पुराने में।

**अर्थ - हे शिवपुरी के पथिक !** आहाहा! आत्मा के परमानन्द के स्वरूप को प्राप्त करनेवाला पथिक। परमानन्द पूर्ण स्वरूप ऐसी जो मोक्षदशा, वह शिवपुरी। जिसमें कोई उपद्रव नहीं। परमानन्द की मूर्ति आत्मा प्रगट हो, ऐसे शिवपुरी के पथिक। आहाहा! सम्बोधन देखो! हे मोक्षपुरी के पथिक! आहाहा! तेरा पन्थ तो शिवपुरी का पन्थ है, भाई! **प्रथम भाव को जान,...** पहले में पहला चैतन्यद्रव्य ज्ञायकभाव,

शुद्धभाव, पवित्र भाव को जान। पहले में पहले यह जान, ऐसा कहते हैं। प्रथम कहा न? **'पढमं'** आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्ण वीतरागस्वरूप से विराजमान प्रभु है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति अथवा सम्यग्दर्शन, वह प्रथम भावना है, वह प्रथम भाव है। आहाहा! लो! यह कहते हैं न कि पहले व्यवहार करना, व्यवहार (करने से) पश्चात् सम्यग्दर्शन होगा। व्यवहार तो राग है, विकल्प है, पराश्रित प्रवृत्ति है, हेय है। यहाँ तो प्रभु आत्मा शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानन्द के अन्तर सन्मुख होकर जो श्रद्धा-ज्ञान हो, वह प्रथम **'पढमं'** लिंग है। आहाहा! धर्म का चिह्न, लिंग और निशान, यह है पहला।

**प्रथम भाव को जान,...** शुद्ध भाव त्रिकाली चैतन्यमूर्ति प्रभु, वस्तु स्वभाव, उसे जान। आहाहा! **भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है?** अन्तर चैतन्य द्रव्य जो वस्तु है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान की भावना बिना वह वीतरागस्वरूपी प्रभु, उसकी वीतरागी पर्याय बिना बाह्य लिंग से प्रयोजन क्या है? देखो! वीतरागमार्ग। आहाहा! यह पंच महाव्रत और नग्नपना, यह व्यवहार समिति, गुप्ति। वह क्या है? वह चीज़ क्या है? आहाहा! वे कहते हैं न कि निवृत्तिवाले को प्रवृत्ति भी करना। आहाहा! निवृत्तिवाले को प्रवृत्ति करने का अर्थ क्या? राग करना? और दूसरे को सुख-दुःख में मदद करना। साधक को इतना तो होना चाहिए न। दूसरे को भी कुछ करना। कौन करे? भाई! आहाहा! राग का होना और करना, वह ही जहाँ स्वरूप को विघ्नकारक है। आहाहा! पर का करना तो जीव में नहीं, राग का करना नहीं। और द्रव्य में पर्याय का करना भी नहीं। ऐसा शिवपुर का पन्थ है। आहाहा!

कहते हैं कि **भावरहित...** भाव का अर्थ, यह द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध चैतन्य, उसकी श्रद्धा और भाव। जिनभाव। आहाहा! त्रिकाली वस्तु के आश्रयवाला भाव। उसे यहाँ भाव कहते हैं। उस **भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है? शिवपुरी का पंथ...** शिवपुरी, मोक्षदशा, पूर्ण मोक्षदशारूपी शिवपुरी, उसका पन्थ तो **जिनभगवन्तों ने प्रयत्नसाध्य कहा है।** त्रिकाली शुद्ध स्वभाव में प्रयत्न करना, उस प्रयत्न से स्वभाव साध्य होता है। समझ में आया? यह तो प्रयत्न... वस्तु जो त्रिकाली ज्ञायकभाव

द्रव्यस्वभाव, अकेला अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु, उसमें स्वभाव के प्रति प्रयत्न, जिनवर ने तो यह कहा है।

त्रिकाली चैतन्य ज्ञायकपिण्ड प्रभु द्रव्यस्वभाव, उसे **शिवपुरी का पंथ जिनभगवन्तों ने प्रयत्नसाध्य कहा है।** स्वरूप में प्रयत्न करना, उससे वह साध्य होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? जो प्रयत्न अनादि से पुण्य और पाप में भ्रान्ति में वर्त रहा है, उस प्रयत्न को स्वभाव में जोड़ दे। आहाहा! यहाँ तो मोक्षमार्गीरूप से ही उसे सम्बोधित किया है। हे मोक्षमार्ग के पथिक! शिवनगरी में जानेवाला तू। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कितनी करुणा से उसका उपदेश कहते हैं। शिवपुरी के पथिक प्रभु! तेरा नित्यानन्द भगवान स्वभाव है, उसे तू प्रयत्न से साध। अपने आप कोई पुरुषार्थ बिना मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**शिवपुरी का पंथ...** मोक्ष का पन्थ परमात्मा ने, जिनेश्वरदेव ने, वीतरागी पर्याय में सर्वज्ञ होकर प्रगट हुई दशावाले प्रभु ने तो यह कहा है। आहाहा! जिसकी दशा में वीतराग और सर्वज्ञता प्रगट हुई है, उसे शिवपुरी का पन्थ अन्तर स्वभाव में प्रयत्न करना, यह भगवान ने कहा है। समझ में आया इसमें? अन्तर्मुख प्रयत्न करना, वह भगवान ने कहा है, ऐसा कहते हैं। **हे शिवपुरी के पथिक !** वीतराग देवों ने, केवलियों ने, परमात्मा ने... आहाहा! उस पन्थ को प्रयत्न-साध्य किया है। ऐसा कहा न? **'जिणउवइट्ठं पयत्तेण'** आहाहा! ऐसा तेरा जो झुकाव परसन्मुख है... ऐसा कहते हैं, उसे त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ, उसकी ओर का प्रयत्न बदल डाल। आहाहा! और प्रयत्न से ही साध्य है। परमात्मा स्वयं प्रयत्न से साध्य होता है। समझ में आया? लो! इसमें तो काललब्धि और सब निकाल डाला और प्रयत्नसाध्य कहा। आहाहा! काललब्धि का अर्थ? यह जिस समय स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करे, उसका भान हुआ, तब यह काललब्धि है, ऐसा ज्ञान हुआ। ... काललब्धि लेकर पन्थ का... वह यह... आनन्द... ऐ जिनजी जाणजो। कोई जिज्ञासु है, वह काललब्धि की आशा से पड़े हैं। तब जिन को मार्ग प्राप्त करूँगा।

कोई कहते हैं न काललब्धि। परन्तु काललब्धि,... उसे करना है, उस पर्याय पर

देखना है? उसे देखना तो अन्तर चैतन्यमूर्ति वीतरागबिम्ब प्रभु, अकषायस्वभाव का अकेला रस, वह आत्मा। उसमें प्रयत्न करना, ऐसा जिनवरदेव ने कहा है। ऐसा कहकर पुण्य-पाप में प्रयत्न करना या पर में प्रयत्न करना, वह कहीं वस्तु का स्वरूप नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह वीतराग मार्ग भारी अलग, भाई! दुनिया के साथ मिलान नहीं खाता। नुस्क निकाले, विवाद करे।

यहाँ तो (कहते हैं), पथिक। आहाहा! शिवपुरी का पन्थ। पथिक। शिवपुरी का पन्थ। ऐसा दो बार लिया। शिवपुरी के पन्थ में चलनेवाला, परन्तु तेरा पन्थ कैसा है? **'जिणउवइट्ठं पयत्तेण'** त्रिलोकनाथ परमात्मा ने तो पुरुषार्थ से साध्य होता है, ऐसा कहा है। होना होगा वह होगा, बनना होगा वह बनेगा। अपने क्या काम? ऐसा यहाँ नहीं कहा। आहाहा! भगवान ने देखा है, उसका प्रयत्न क्या? तेरे स्वभाव में उसका बहुमान आवे। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागरस से रेलमछेल हो गयी जिनकी दशा। आहाहा! जिनकी वीतरागी पर्याय और सर्वज्ञ पर्याय अर्थात् ज्ञान और चारित्र की पर्याय वहाँ पूरी हो गयी। दर्शन तो है ही।

ऐसे भगवान ने शिवपुरी का पन्थ, शिवपुरी के पथिक को। ऐसा। शिवपुरी का पन्थ। नमोत्थुणं में आता है न, शिवमयम, नमोत्थुणं में आता है शिवमयम। आहाहा! **हे शिवपुरी के पथिक!** शिवपुर का पन्थ तो जिनेश्वरदेव ने प्रयत्न साध्य कहा। देखो! ऐसे... आहाहा! इसका अर्थ कि जिनेश्वरदेव ने स्वभावसन्मुख के प्रयत्न की बात की है। समझ में आया? शिवपुरी के पथिक को शिवपुरी का पन्थ स्वभाव-सन्मुख के प्रयत्न परमात्मा ने बात की है। आहाहा! कहो, समझ में आया? भगवान ने देखा होगा, तब होगा। ऐसा वेदन कर-करके भूल गया है।

**मुमुक्षु :** भगवान ने जाना...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भगवान ने तो यह कहा। तेरा परमात्मा अन्दर चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द है, वह प्रयत्न से साध्य है। स्वभाव के पुरुषार्थ से साध्य है। वह राग के पुरुषार्थ से, निमित्त के पुरुषार्थ से साध्य नहीं है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें कि व्यवहार के पुरुषार्थ से वह प्राप्त नहीं है। आहाहा! क्या हो? लोगों ने बाहर के व्यवहार को इतनी महिमा दे दी है कि जो वस्तु का माहात्म्य ही नहीं इतना।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय शान्तरस का सागर आत्मा, उसका पन्थ तो अन्दर प्रयत्न साध्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? उसमें नहीं कहा? उसमें आता है या नहीं? 'अध्यात्मपंचसंग्रह', ज्ञानदर्पण में। उसमें लिखा है कि तू होनहार... होनहार... कहता है, परन्तु भगवान ने उपदेश पुरुषार्थ का किया, वह क्या है? भगवान ने कहा है, यह पुरुषार्थ कर। यह बात कहाँ रही तेरी? भले तू होनहार को... परन्तु उसका अर्थ उस पर्याय में पुरुषार्थ, वह व्यवहार है। त्रिकाल द्रव्य पर जाना ... द्रव्य, वह निश्चय है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त बात और बहुत मजबूत बात। मजबूत दृढ़ ऐसा भगवान आत्मा, दृढ़ नित्य ध्रुव, ऐसा प्रभु आत्मा, उसका पंथ तो प्रयत्न साध्य है, कहते हैं। आता है... ज्ञानी की भूमिका पुरुषार्थ साध्य है। आहाहा! यह पुरुषार्थ कौन सा? पुण्य-पाप का नहीं। आहाा! जिनवर ने कहा हुआ उपदेश अर्थात् कि जिनभावना, त्रिकाली जिनस्वरूप जो है, उसकी भावना, उसका नाम प्रयत्न और पुरुषार्थ है। व्यवहार-ब्यवहार का पुरुषार्थ, वह सब भटकने का पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का पुरुषार्थ भी राग है, नपुंसकता है, कहते हैं। आहाहा! प्रयत्न तो उसे (कहते हैं), प्र-यत्न। प्र-विशेष, यत्न-यत्न। जुड़ जाये चैतन्य के स्वरूप में, उसे हम प्रयत्न कहते हैं। आहाहा! ऐसा जिनवरदेव ने समवसरण में परमात्मा ने ऐसा कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि परमात्मा तो ऐसा कहते हैं। शिवपुरी का पन्थ। पहले पथिक कहा। परन्तु हे शिवुपरी के पथिक! तेरी नगरी तो शिवपुरी है, बापू! वहाँ तुझे तो बसना है। तेरा नगर और तेरा राज तो वहाँ है। आहाहा!

शिवपुरी का पन्थ... गजब गाथा आयी, भाई! जिनेश्वरदेव ने प्रयत्न साध्य कहा है। इसका अर्थ कि स्वसन्मुख होने का पुरुषार्थ उसमें से प्राप्त होता है। आहाहा! परसन्मुख के प्रयत्न से वह प्राप्त नहीं होता। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है तो भी गड़बड़ करते हैं। आहाहा! अभी इसकी श्रद्धा में यह बात बैठती नहीं। आहाहा! भाई! तेरे जन्म-मरण के उद्धार का पन्थ तो यह है। आहाहा!

देखा और कल सुना। यह उमेदभाई ने कहा। अनोपचन्द के पुत्र का पुत्र। ओहोहो! कुण्डलावाले अनोपचन्द का। ... किया है। ... सोलह दिन से हाथ नहीं आता। मुम्बई में। आहाहा! ... ... एकदम युवा है। अभी यहाँ आया था महीने पहले।

पहले... गिर गया। फिर ऐसा हुआ कि सोलह दिन हुए हाथ नहीं आता यह। सत्रह दिन हुए। ओहोहो! यह संसार! ... ले गये हैं। ... उसे ही देखे, ऐसा कहते हैं। यह ... गया न... पीछे-पीछे जाये, उसकी बात है यह तो। आहाहा! बापू! भगवान है अन्दर। उसके पीछे जा न, उसके सन्मुख देख न। आहाहा! भाई! तुझे जिनवर का मार्ग वहाँ प्राप्त होगा। वह कहीं बाहर नहीं कि बाहर से मिले ऐसा है। परन्तु जिसे चार गति के दुःख का दुःख लगा हो, उसके लिये यह है। स्वर्ग में भी जिसे सुख लगता हो तो उसे इस प्रकार से नहीं होगा। चार गति... आता है न? चार गति दुःख से डरी। योगसार में।

चारों गति में उपजना, वह दुःखी-दुःखी होना है। शिवपुरी में उपजना, वह सुखी होना है। आहाहा! वह शिवपुरी का पन्थ ऊपर हे पथिक! जिनवरदेव ने वह तो अन्तर स्वभावसन्मुख के प्रयत्न से साध्य कहा है। आहाहा! अपने आप मार्ग मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। पुरुषार्थ साध्य है। आहाहा! भारी कठिन पड़े जगत को। व्रत पालन किये, तपस्या की इसलिए.... अनन्तबार द्रव्यलिंगी हुआ। भगवान! वह तेरा आत्मा एक-एक शक्ति-वीतरागी शक्ति से भरपूर तत्त्व है। ऐसी अनन्त शक्ति का सागर प्रभु अन्दर उछलता है। आहाहा! उसकी ओर के प्रयत्न साध्य से उसे प्राप्त होता है। प्रभु! तेरा पन्थ तो अन्तर में जाने का प्रयत्न साध्य है, वह पन्थ है। आहाहा! अब यह कहता है कि बीच में व्यवहार चाहिए, व्यवहार भी वहाँ... अपना साधना? वह तो निष्क्रिय जड़ हो गया, ऐसा कहते हैं। अरर! प्रभु! आहाहा! अन्तर में साधन करता है वह तो... क्रियावाला राग की अपेक्षा से कहो, परन्तु स्वभाव की परिणति अपेक्षा से सक्रिय और चैतन्य जागृत है वह तो। जड़ नहीं। आहाहा! बहुत बदल डाला, चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा किया। ओहोहो! प्रभु! मार्ग तो ऐसा है, भाई! दूसरे प्रकार से कुछ भी बदलेगा, बापू! तू बदल जायेगा - चार गति के फेरे में पड़ेगा। आहाहा! देखा न, ऐसा काल, कलकत्ता में ले जाते हैं, देखो न! लोगों को उठा ले जाये, उनके हाथ और पैर काट डाले और भीख मँगाये। नजरों से देखा है कलकत्ता में। वह रेकड़ी होती है न? ... हॉस्पिटल में... आहाहा! ऐसे पराधीन मिथ्या और राग-द्वेष में दुःखी...

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... डॉक्टर और उनके लोग ऐसा करे कि हमें तो कुछ... आहाहा! सौ रपये हों। वह फिर उसे... सब बेच डाले। अरर्र! तूने क्या किया प्रभु? कहाँ जाना है? तेरा पन्थ तो यह है, भाई! रेकड़ी में डाले, देखा है। वड़ोदरा की। माँ-पुत्री मुम्बई में जाते थे। थोड़ी दूर पड़ी, थोड़ी आगे... आयी। उठाकर ले गयी। उसने लेकर आँख फोड़ डाली। ... माँगने। वहाँ उसकी माँ चली आयी वापस फिरकर। वहाँ उसे माँगते देखा। अरे! यह तो मेरी पुत्री है। ऐसा कहा तो वह... भाग गया। अरर! ऐसे... क्या करता है, प्रभु! तू यह? कहाँ जाना है भाई! तुझे? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, तू प्रभु भव्यजीव है। शिवपुर का पथिक है। आहाहा! तुझे तो इस पन्थ में जाने की बात है। और यह पन्थ तो वीतराग सर्वज्ञदेवों ने गणधरों और इन्द्रों के बीच तो यह कहा है। अन्तर्मुख के प्रयत्न साधने से अन्तर भगवान मिले, ऐसा है। समझ में आया? लोगों को भारी कठिन (पड़ता है)। भाई! मार्ग तो यह है। कहा है न यह **'पुरिपंथं'** हे पथिक! तेरा पन्थ तो यह है, प्रभु! दूसरा खोजने जायेगा तो नहीं मिलेगा। यह आत्मा वहाँ नहीं मिलेगा। व्यवहार के दया, दान, व्रत, तपस्या के भाव, भक्ति, यात्रा के भाव, बापू! वहाँ उसमें आत्मा नहीं मिलेगा। उसमें तो गति मिलेगी। भटकने के दुःख की गति बहुत की। आहाहा!

**भावार्थ – मोक्षमार्ग जिनेश्वरदेव ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मभावस्वरूप परमार्थ से कहा है,...** आहाहा! भगवान आत्मा, जिसका स्वभाव चैतन्य आनन्दादि स्वभाव, ऐसा आत्मभावस्वरूप, उसकी दृष्टि-ज्ञान और शान्ति वह आत्मस्वभावस्वरूप मोक्षमार्ग है। यह रागादि कोई मोक्षमार्ग नहीं है, आत्मस्वरूप भाव नहीं है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग जिनेश्वरदेव ने... हिन्दी भाषा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् आत्मभावस्वरूप। ऐसा। वह आत्मभावस्वरूप है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य भगवान की सम्यक्दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, वह आत्मभावरूप है। व्यवहार का शुभभाव आदि, वह आत्मभावरूप नहीं। आहाहा! वह नहीं ... में नहीं आता? ... का... उसके लड़के को डाकू ले गये थे। डाकू ले गये। इसलिए लड़के से ऐसा कहलवाया, बापूजी! दस हजार रुपये दो। मैं रहूँगा... नहीं दिये। उन डाकुओं ने मारकर गाँव के बाहर छोड़ गये। आहाहा! ... आता है न। बात आती है।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पन्द्रह-बीस ? आता है। ... दस हजार का कहा। फिर बड़ी... रखी, हों! इसलिए डाकू ने कहा कि दस हजार तेरा पिता दे तो छोड़ दूँगा। उसने लिखा, बापू! दस हजार दो। मैं आऊँगा तो कमाऊँगा। नहीं दिये। मारकर छोड़कर गये। आहाहा! क्या यह दशायें जन्म-मरण की! बापू! इससे छूटना हो तो यह पन्थ है।

भगवान अन्दर में पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मभावस्वरूप है। परमार्थ से इसे मोक्षमार्ग कहा है। है न ? **आत्मभावस्वरूप परमार्थ से कहा है,...** आहाहा! वस्तु त्रिकाली भगवान की श्रद्धा अन्तर सन्मुख की निर्विकल्प श्रद्धा। निर्विकल्प अर्थात् वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी वेदन का ज्ञान। आहाहा! और वीतरागी रमणतारूप चारित्र, वह आत्मभावस्वरूप भगवान ने कहा है। वह आत्मभावरूप है। आहाहा! पच्चीस वर्ष का जवान लड़का, दो वर्ष का विवाहित मर गया। ... पर में दिखाई दे। लड़का... आहाहा! उस समय देखो काणो झगड़ा करे अन्दर। परन्तु उसे खबर नहीं, बापू! वह तो संयोगी चीज़ है। इसलिए ऐसा ही हो वहाँ। आहाहा! वह तेरी स्वाभाविक चीज़ (नहीं है)

**मुमुक्षु:** दस हजार रुपये उसके पिता नहीं दिये और उसने (डाकू ने) मार डाला, इन दोनों में कठोर परिणाम किसके ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो कुछ... उसे बेचारे को ऐसा कि... ऐसा कि दस हजार बिना ऐसे का ऐसा ले जाये ? मार डालेगा, उसे खबर नहीं। संसार में तो ऐसा बनता है, बापू! आहाहा! जीते जी आँख में मिर्च भरे, जीते जी तेजाब छिड़के शरीर में। आहाहा! नरक में ऐसे दुःख तूने भोगे, बापू! भाई! तुझे खबर नहीं। यहाँ आया, जहाँ जन्मा, पच्चीस-पचास वर्ष की उम्र और शरीर कुछ ठीक और स्त्री-पुत्र और पाँच-पचास लाख पैसे हुए... वहाँ आहाहा! भाई! यह सब चीज़ें भूतावळ की जाल है सब, भाई! यह सब भूतावळ है। आहाहा! यह तेरी चीज़ नहीं। प्रभु! तेरी चीज़ तो अन्तर आत्मस्वभाव पूर्णानन्द है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, उसे आत्मभावस्वरूप कहा। पर्याय की बात है, हों!

**इसलिए इसी को परमार्थ जानकर सर्व उद्यम से अंगीकार करो,...** पहला यह भगवान आत्मा कितना और कैसे है, उसका ज्ञान करके उसमें स्थिर होओ। आहाहा! वहाँ जाओ... वहाँ जाओ... भाई! आहाहा! भारी मार्ग। दुनिया से। आहाहा! एक तो ऐसे साधु नाम धराकर जगत को कहे, प्रवृत्ति करना, वह साधु जीव का कर्तव्य है। वह भी एक मार्ग है। अरे! भगवान! प्रभु! यह क्या कहता है? भाई! जिनवरदेव ने यह कहा है। त्रिलोकनाथ परमात्मा की इच्छा बिना की वाणी में यह आया। प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति करने योग्य यह कार्य है। यह परमार्थ है। परमार्थ में पर की मददगिरी होना परमार्थ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें, बापू!

कहा न? **इसी को परमार्थ जानकर सर्व उद्यम से अंगीकार करो,...** आहाहा! यह परमार्थ। वह परमार्थ दूसरे को दुःखी देखकर दुःख टालना, पैसा देना, अनाज देना... बापू! वह तो पर की चीज़ है। उस लेने-देने की क्रिया में तेरा अधिकार नहीं है। तेरे परिणाम हों, वहाँ शुभ। दूसरे को आहार-पानी देना और... वह शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान अबन्धस्वरूप में तो बन्ध का कारण हुआ वह तो। आहाहा! वह कहीं परमात्ममार्ग नहीं। आहाहा!

**केवल द्रव्यमात्र लिंग से क्या साध्य है?** भगवान! अकेला द्रव्यपना, पंच महाव्रत और नग्नपना, बारह व्रत और लंगोटी और क्षुल्लक आदि... आहाहा! उससे क्या साध्य है? उसमें तुझे साध्य क्या? प्राप्त क्या होगा? **इस प्रकार उपदेश है।** भगवान तीर्थंकरों का सर्वज्ञदेवों का यह उपदेश है। बाहर के सुख के साधन देखकर न ललचा, प्रभु! यह सुख का साधन तो प्रभु! तेरे अन्दर में है। आहाहा! रसिकभाई! दो-पाँच-दस लाख की पूँजी हो, लड़का अच्छा हुआ हो। सुख के साधन में खिंच जाए। आहाहा! भाई! वहाँ सुख नहीं। वह सुख के साधन नहीं। भाई! तेरे सुख का साधन तो अन्तर्मुख में परिणति होना, वह है। आहाहा! ऐसा मार्ग भारी कठिन पड़े। फिर कहे, सोनगढ़वाले यह निश्चय-निश्चय... व्यवहार। हम तो दोनों बातें करते हैं। यह पूनमभाई कहते थे कि अपने में और उनमें अन्तर क्या? अकेली निश्चय की बातें करते हैं। बातें नहीं,

बापू! निश्चय के भाव की बात है। आहाहा! यहाँ तो निश्चय और व्यवहार दोनों हम कहते हैं। अर्थात् क्या? आहाहा! व्यवहार, व्यवहार के स्थान में होता है, परन्तु वह कोई मार्ग नहीं है।

★ ★ ★

## गाथा - ७

**आगे कहते हैं कि द्रव्यलिंग आदि तूने बहुत धारण किये, परन्तु उससे कुछ भी सिद्धि नहीं हुई –**

**भावरहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारे।**
**गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं।।७।।**

**अर्थ – हे सत्पुरुष!** आहाहा! पाठ में है। **'सपुरिस'** आहाहा! उसमें पथिक लिखा। **हे सत्पुरुष!** उसे कहते हैं। आहाहा! **अनादिकाल से लगाकर...** बापू! अनादि से होकर अनन्त संसार में, अनन्त काल में पूर्व **तूने भावरहित...** सम्यग्दर्शन ऐसा जो शुद्धभाव, स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ जो शुद्धभाव, उसके बिना **निर्ग्रन्थरूप बहुत बार ग्रहण किये...** अकेले वस्त्रवाले की तो यहाँ बात भी नहीं। वस्त्रसहित, वह तो द्रव्य निर्ग्रन्थ भी नहीं है। यह तो निर्ग्रन्थ नग्न मुनिपना तूने अनन्त बार लिया। आहाहा! हजारों रानियाँ छोड़कर, राज को छोड़ा, दुकानें छोड़ीं, व्यापार छोड़ा और नग्नपना, माता से जन्मा ऐसा मुनिपने का वेश अनन्त बार लिया। आहाहा! **और छोड़े।** ऐसे द्रव्यलिंग अनन्त बार आये और गये। उसमें कहीं आत्मा की वीतरागी दृष्टि बिना उसे द्रव्यलिंग भी व्यवहार से कहने में नहीं आता। आहाहा! है न पाठ? **'गहिउज्झियाइं'** वह मुनिपना जिसने... कहा न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' नग्नमुनि, दिगम्बर, पंच महाव्रत का पालनेवाला अनन्त बार (हुआ)। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी डिगाने आवे तो रूवांटा चलित नहीं हो। ऐसी जिसकी शरीर की क्रिया और ब्रह्मचर्य की क्रिया। परन्तु वह सब सम्यग्दर्शन बिना व्यर्थ है। समझ में आया? जैनमार्ग अर्थात् वीतरागभाव जहाँ न आया, उसके बिना यह सब राग की क्रियाएँ अनन्त बार ग्रहण की और छोड़ी, उससे कहीं जीव को संसार का अन्त नहीं आता।

**तूने भावरहित...** भाव अर्थात् यह शुद्धभाव। चैतन्य जिनभावना। वीतरागी स्वरूप की अन्तर में चैतन्य द्रव्य को स्पर्श करके होती एकाग्रता। आहाहा! ऐसे भाव बिना तूने ऐसे मुनिपना अनन्त बार लिये और छूट गये। उससे तुझे क्या लाभ है? भाई!

**भावार्थ – भाव जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र...** यह व्याख्या की। स्वरूप भगवान आत्मा का, उसकी दृष्टि और ज्ञान और उसकी रमणता, ऐसा जो परमार्थ उसका स्वरूप। निश्चय। '**उसके बिना बाह्य निर्ग्रन्थरूप द्रव्यलिंग संसार में अनन्त काल से लगाकर बहुत बार धारण किये...**' ओहोहो! अनन्त बार जैन दिगम्बर साधु हुआ और छूट गया। वीतरागमूर्ति प्रभु को तूने पकड़ा नहीं। ऐसे क्रियाकाण्ड में राग को पकड़कर अनन्त काल व्यतीत किया। आहाहा! ऐसे **निर्ग्रन्थरूप द्रव्यलिंग संसार में अनन्तकाल से लगाकर बहुत बार धारण किये...** अनन्त बार धारण किये। आहाहा! **और छोड़े...** छूट गया। वस्तु कुछ थी नहीं। वीतरागभाव प्रगट नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन जिनभावना, वह तो आयी नहीं। वह की नहीं—प्रगट की नहीं। ऐसे भाव में रहकर भटक मरा। उसमें फिर ऐसे भी भव होते हैं। कोई उठा ले जाये और मार डाले और.... आहाहा! वे नहीं ले गये थे तीन-चार व्यक्ति? दिगम्बर। छूट गये। चार व्यक्ति यात्रा में जाते थे। पकड़ गये। ... आहाहा! पकड़कर ले जाये वहाँ... आहाहा! गृहस्थ के लड़के हों पैसेवाले, टाईमसर चाय, टाईमसर टीकड़ी, टाईमसर रोटी, टाईमसर सोना। यह वे डॉक्टर-वैद्य वहाँ क्या करे? नींद भी कहाँ आवे। इस आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना ऐसे भव अनन्त बार किये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसके ... पणा जब अनन्त बार हुए बाह्य, ऐसे भव तो अनन्त बार हुए। उससे अनन्तगुणा।

**चारों गतियों में भ्रमण ही करता रहा।** आहाहा! चार गति में भटका। यहाँ बड़ा सेठिया अरबोंपति कहलाये। बड़े डॉक्टर खड़े हों, ऐसे... खम्मा-खम्मा पलंग में, वह मरकर नरक में जाये। आहाहा! यह बात करते हैं। तूने चार गति में भ्रमण किया, भाई! बाहर की चीज़ में बहिरात्मपने का साधन अर्थात् चार गति प्राप्त हुई है। बाह्य निर्ग्रन्थपना है, वह राग है। बाहर की क्रिया है। उसके प्रेम में तो बहिरात्मपना है। वह आत्मा में नहीं आ सकता। बाहर में भटकेगा चार गति में। आहाहा! अरे! ऐसा वीतराग मार्ग अरिहन्त सर्वज्ञ ने कहा, वह सुनने को नहीं मिलता। आहाहा! उसका क्या होगा?

श्रीमद् ने कहा न? 'बाह्य क्रिया में राचते, अन्तर भेद न कोई, ज्ञानमार्ग निषेधते, वही क्रियाजड़ यहाँ।' करुणा उपजे जोई। 'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई; माने मारग मोक्ष का, करुणा उपजे जोई।' तेरा योगफल क्या आयेगा? प्रभु! यहाँ से कहाँ जायेगा? बापू! जहाँ अनन्त काल रहना है। वह राग के प्रेम में पड़कर जायेगा कहाँ? भाई! चार गति में अनन्त काल रहेगा। आहाहा! वीतराग... वीतराग... वीतराग... वह वीतराग आत्मा, हों! उस वीतराग आत्मा की श्रद्धा, उसका ज्ञान और चारित्र यह परमार्थ मोक्षमार्ग है। उसके बिना ऐसे द्रव्यलिंग ग्रहण किये और छूटे। चार गति में भटका। यह अब दु:ख की व्याख्या करते हैं।

★ ★ ★

## गाथा - ८

वही कहते हैं—

**भीसणणरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।**
**पत्तो सि तिव्वदुक्खं भावहि जिणभावणा जीव।।८।।**

जिनभावना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह जिनभावना। हे जीव!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है न अन्तिम।

**तूने भीषण (भयंकर) नरकगति...** भगवान! नरकगति भयंकर, बापू! सुनना कठिन पड़े। हजारों बिच्छू का डंक, उसकी अपेक्षा अनन्तगुणी पीड़ा जहाँ होती है। आहाहा! एक बिच्छू काटे वहाँ चिल्लाहट मचाता है। उस लड़की को बिच्छू ने काटा नहीं था तुम्हारे? गोकलशीभाई।... छोटी लड़की को। चिल्लाहट-चिल्लाहट (मचावे)। आहाहा! कहते हैं कि भीषण नरकगति। आहाहा! **(भयंकर)...** बापू! नरक में तू अनन्त बार गया, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! वह भूतकाल की बातें तू भूल गया प्रभु! वर्तमान में मोहित हुआ। भूतकाल में तू कहाँ रहा? प्रभु! भयंकर-भयंकर नरक गति। ओहो! ऐसा शब्द प्रयोग किया है।

**तथा तिर्यंचगति में...** पशु। आहाहा! चकला-चकली। मार डाले। मोर को मारे। आहाहा! रास्ते... समाप्त। आहाहा! भावनगर में मोर बहुत उड़ नहीं सकते। पंख बहुत। आहाहा! ऐसे तिर्यंच में, बापू! तूने दुःख अनन्त बार भोगे। तुझे किसमें विश्राम लगा? आहाहा! तिर्यंचगति। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक। निगोद में... आहाहा! तेरी अस्ति स्वीकार करना कठिन पड़े। ऐसे निगोद में, बापू! अनन्त बार गया, भाई! **कुदेव...** व्यन्तर और भूत ऐसे कुदेव हुआ। दूसरे को... यहाँ अपना नौकर हो, वह वहाँ उससे बड़ा देव हुआ हो। स्वयं फिर व्यन्तर-भूतड़ा हुआ हो। आहाहा! यहाँ उसका नौकर हो। गरीब व्यक्ति। अब... स्वर्ग का बड़ा देव हुआ। और यह मरकर व्यन्तर भूतड़ा हुआ। देखकर हाय... हाय..! श्वेताम्बर में एक आता है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा वह... भूल गया। ... लोग साधारण था... और उसका जो सेठ था, वह... इन्द्र है, वह बड़ी ऋद्धि लेकर भगवान के दर्शन करने जाता है। वहाँ उसने देखा कि यह तो.... है। ऐसा आता है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा का है यह।... आहाहा!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह। यह तो ऊपर का देव। ऊपर का है। ...बड़ा ऐसे नीचे उतरता है। दूसरा देव बीच में आवे सही न। बात तो सब पढ़ी है। सत्रह बार तो भगवतीसूत्र सोलह हजार श्लोक और लाख श्लोक प्रमाण टीका। सत्रह बार पढ़ा है। परन्तु यह वस्तु नहीं। यह तो एक घड़ाके ग्यारहवीं गाथा **'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवा'** आहाहा! ...फाड़ डाला अन्दर से। एक शब्द ने! भूतार्थ भगवान आत्मा सत्यार्थ प्रभु सत्य वस्तु ध्रुव त्रिकाल। आहाहा! उसका आश्रय कर, तुझे समकित होगा। ऐसी बात है कहाँ? समझ में आया?

**कुदेव कुमनुष्यगति में...** कुमनुष्य में हल्का मनुष्य हो, ..., वाघरी... **तीव्र दुःख पाये हैं, अतः अब तू जिनभावना...** प्रभु! अब तू कुछ नया कर। **शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना...** शुद्धभाव की व्याख्या की। जिनभावना बहुत जगह आता है। इसमें आता है। आहाहा! वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा की भावना कर, उसकी एकाग्रता कर। उससे जन्म-मरण के अन्त आवे ऐसा है। आहाहा!

**जिनभावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना...** भाव। अन्तर द्रव्यस्वभाव की एकाग्रता की भावना कर। भावना शब्द से विकल्प नहीं। अन्तर में एकाग्र हो। जहाँ प्रभु पूर्ण विराजता है, वहाँ एकाग्र हो। आहाहा! **इससे तेरे संसार का भ्रमण मिटेगा।** उससे चार गति का भटकना मिटेगा। देखो! चार गति ली थी न? आहाहा! चार गति, वह संसार परिभ्रमण, दु:ख है। आहाहा!

**भावार्थ – आत्मा की भावना बिना चार गति के दु:ख अनादि काल से संसार में प्राप्त किये, इसलिए अब हे जीव!** आत्मा की भावना, ऐसा कहा न? श्रीमद् में आता है, 'आतम भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान।' **तू जिनेश्वरदेव का शरण ले और शुद्धस्वरूप का बारबार भावनारूप अभ्यास कर; इससे संसार के भ्रमण से रहित मोक्ष को प्राप्त करेगा, यह उपदेश है।** लो! विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ६, रविवार, दिनांक-१३-०१-१९७४
गाथा - ९ से १२ प्रवचन-८८

## गाथा - ९

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़ है। नौवीं गाथा।

**आगे चार गति के दुःखों को विशेषरूप से कहते हैं, पहिले नरकगति के दुःखों को कहते हैं –** छहढाला में आता है पहले। पहली ढाल में आता है।

**सत्तसु णरयावासे दारुणभीमाइं असहणीयाइं।**
**भुत्ताइं सुइरकालं दुःक्खाइं णिरंतरं अहियं।।९।।**

**अर्थ – हे जीव ! तूने सात नरकभूमियों के...** नीचे सात नरक हैं। उनमें **नरक आवास बिलों में...** उनमें नारकी को रहने के बिल हैं। आहाहा! **दारुण...** तीव्र दुःख सहन किये। यह जिनभावना, सम्यग्दर्शन की भावना बिना। उसने ऐसी पुण्य-पाप की भावना अनन्त बार की। जिसके फल में नरकगति में पाप के फलरूप से चला जाये। **दारुण...** कठोर दुःख, भाई! ....भूल गया। वर्तमान देखकर भूत को भूल गया। वर्तमान में यह सब देखे। भूत-गत काल में क्या हुआ, उसे भूल गया। कहते हैं कि ऐसे दुःख तूने सहन किये। कैसे ? कठोर। एक बात।

**भयानक...** दारुण और दुःखादि। भयानक दुःख। ओहोहो! नरक की पीड़ा करोड़ों बिच्छू डंक मारे उसकी अपेक्षा अनन्तगुणी भयानक पीड़ा तुझे थी, भाई! यहाँ जरा ठीक अनुकूल पड़े वहाँ... हो गया। दुनिया की देखा-देखी कि इसे इतना मिला, यह इतना सुखी है। धूल भी नहीं, भाई! वीतरागस्वभाव भगवान आत्मा की अन्तर में भावना बिना, उसकी भिन्न भावना अर्थात् वीतरागी पर्याय बिना ऐसे दुःख तूने अनन्त बार नरक में सहन किये। दो। तीव्र और भयानक—दो।

तीन। **असहनीय...** भाई! तुझसे सहन न हों, ऐसे अनन्त दुःख सहन किये हैं। सहन न हों, तथापि सहन किये। आहाहा! **सहे न जावें – इस प्रकार के दुःखों को...**

बाहर से बात करते हैं। मूल तो अन्दर मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष भाव का दुःख है। जिनभावना आत्मा स्वभाव चैतन्यप्रभु वीतरागमूर्ति ऐसा भगवान स्वयं आत्मा, उसकी श्रद्धा की भावना, निर्विकल्प दृष्टि की भावना किये बिना ऐसी स्थिति में मिथ्यात्व और राग-द्वेष से दुःखी हुआ। निमित्त से समझाते हैं।

**इस प्रकार के दुःखों को बहुत दीर्घ काल...** यह शब्द प्रयोग किया है। एक तो तीव्र, कठोर, भयानक, असहनीय, दीर्घ काल। ओहो! क्षण, दो क्षण या वर्ष दो वर्ष नहीं, असंख्य-असंख्य अरब वर्ष। और वह भी **निरन्तर...** यह शब्द प्रयोग किया है। असंख्य अरब वर्ष तक ऐसे दुःख, भाई! तूने तीव्र, भयानक और सहन न हो ऐसे (सहन किये)। क्या करे? कहाँ जाये? जहाँ जाने की चीज़ है, उसकी तो इसे खबर नहीं। बाहर की जगत की मिठास, उसमें पड़ा, उसे ऐसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष के दुःख सहन करना पड़ेंगे।

**भोगे... निरन्तर ही भोगे...** अन्तर पड़े बिना कठोर, भयानक, सहन न हों ऐसे, दीर्घ काल, निरन्तर (भोगे)। आहाहा! इसके ख्याल में तो यह बात ले। तूने ऐसे दुःख, प्रभु! अनन्त बार सहन किये। तेरी प्रभुता को भूलकर। तेरी प्रभुता अनन्तगुणी अन्दर है, महाप्रभु है। चैतन्य आनन्द है। ज्ञानस्वभाव और शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतराग स्वभाव... ऐसी उसकी महिमा है। उसे न जानकर, उसे बाहर से ही इसने महिमा दी। इसलिए इसने ऐसे अनन्त बार दुःख सहन किये। उसके रोने से भी दुःख न गये, इतने तो दुःख इसे। देखनेवाले को रुदन आवे। भाई! तूने ऐसे दुःख सहन किये हैं। तू भूल गया है। भुलभुलैया आता है न? वडोदरा में। दूसरी बहुत जगह होता है। वडोदरा में गये थे।

**मुमुक्षु :** गोंडल में ... पास में है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गोंडल? वडोदरा में... भुलभुलैया है और घुसे अन्दर। निकलना किस प्रकार? व्यक्ति खड़ा है। ले, यह दो आने। ...

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो भूल निकाले तो जाये, ऐसा है। आहाहा!

चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु, उसके अन्तर रास्ते जाना चाहिए। उसके बदले यह

पुण्य और पाप, बाह्य सामग्री के अधिकपना के माहात्म्य के समक्ष दौड़ गया। इसलिए इसे ऐसे नरक के असहनीय, निरन्तर, बहुत काल सहन किये। आहाहा! आचार्यदेव कहते हैं। भाई! अभी तेरी नींद उड़ती नहीं? आहाहा!

**भावार्थ – नरक की पृथ्वी सात हैं, उनमें बिल बहुत हैं,...** रहने के स्थान बहुत हैं। आहाहा! **उनमें दस हजार वर्ष से लगाकर...** उसकी स्थिति छोटी में छोटी दस हजार वर्ष की। **एक सागर से लगाकर तेतीस सागर तक...** यह एक तेज सिरदर्द करे तो इसे रात बड़ी पड़े। ऐसे सिर का दर्द आवे। सहन नहीं किये जायें। रात्रि में नींद नहीं आवे, करवट बदला करे। यह तो एक अनन्तवें भाग की व्याधि है। इससे अनन्तगुणी नरक में सागरोपम तक (सहन की है)। ओहोहो! एक सागर के दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम, एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। भाई! निरन्तर ऐसे काल में तू रहा, प्रभु! आहाहा! तुझे किसकी महिमा चाहिए? तुझे किसमें अधिकपने दूसरे में दिखाना है? अधिकपना तो चैतन्यमूर्ति का अन्दर पृथक् है। आहाहा! **'णाणसहावाधियं मुणदि आदं'।**

भगवान आत्मा ज्ञान के, आनन्द के स्वभाव से (एकत्व है), राग से और संयोग से और एक समय की पर्याय से भिन्न है। उसकी महिमा भासित न होकर जगत की बाहर की चीज़ में, एक समय की दशा में, राग में या संयोग में अधिकपना भासित होने से वहाँ मिथ्यात्व का महा दुःख है। संयोग से तो बात की है। जिनभावना ऐसी नहीं की; इसलिए मिथ्यात्वभावना भायी है। आहाहा! अजिनभावना। आहाहा! आचार्य भी भूले हुए को भान कराते हैं। प्रभु! तू भूल गया, कहाँ था, कैसे दुःख सहन किये, यह तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह बताकर जिनभावना कराने की बात बतानी है। बापू! प्रभु! परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ है न। तेरी एक समय की पर्याय वहाँ (पर में) झुक गयी है। वह महामिथ्यात्व और राग-द्वेष है और उसके कारण से बाह्य के प्रतिकूल संयोग आते हैं। उस प्रतिकूल संयोग में कुछ दुःख नहीं है। शरीर में दुःख नहीं है। उन प्रतिकूल संयोगों की ओर की दृष्टि और राग-द्वेष का भाव, वह दुःख है।

ऐसे सागरोपम तक **तीव्र दुःख यह जीव अनन्त काल से सहता आया है।**

★ ★ ★

## गाथा - १०

**आगे तिर्यंचगति के दुःखों को कहते हैं –**

**खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च।**
**पत्तो सि भावरहिओ तिरियगईए चिरं कालं।।१०।।**

**अर्थ – हे जीव ! तूने तिर्यंचगति में...** एकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में अनन्त बार गया। आहाहा! **तिर्यंचगति में खनन,...** पृथ्वीकाय को खोद डाला। एकेन्द्रिय है न पृथ्वीकाय? भाई! वह जीव है। यह सफाई करने के लिये धूल खोदकर बाहर लाते हैं न? दीवाली में बाहर से भर-भरकर (लाते हैं)। एक कण में-कण में असंख्य जीव हैं। आहाहा! दिखता है, वह तो उनका शरीर दिखता है। उसमें जीव शरीर से भिन्न है। उसे यह खोदने के लिये चरसा मारे, खनन एकेन्द्रिय जीव। आहाहा! बापू! ऐसे खनन की पीड़ा तूने अनन्त बार सहन की।

**उत्तापन,...** सूर्य की धूप ऐसी गिरी। पानी गर्म हो गया। समुद्र गर्म हो जाता है। मछलियाँ अन्दर मर जाती हैं, ऐसी धूप की गर्मी। समुद्र गर्म हो जाता है। मछलियाँ मरती हैं और समुद्र गन्ध मारता है। उत्तापन अर्थात् पानी गर्म हो गया। आहाहा! सचेत एकेन्द्रिय जीव है। उसने अग्नि का निमित्त और फिर उष्णता (सहन की)। आहाहा! अरे रे! वह जीव है और उसे दुःख है, यह कौन माने? उस पानी के जीव को **उत्तापन,...** सूर्य की धूप के ताप में गर्म पानी होकर जले, दुःखी हो। भाई! ऐसी बात... आहाहा! इन्द्रिय से दिखे नहीं, ऐसी चीज़ों में आत्मा है कहाँ? भाई! और उसके शरीर की यह तो शरीर से बात की है, उसे धूप लगकर सुखाया है, भाई! उसका दुःख तो उसे भ्रमणा और राग-द्वेष का है। परन्तु संयोग से कथन करके समझाते हैं।

नीचे लिखा है। नीचे नोट (फुटनोट)। **देहादि में या बाह्य संयोगों से दुःख नहीं है,...** नीचे है न? देहादि तो जड़ है। उनमें क्या दुःख होगा? **बाह्य संयोगों से दुःख नहीं है,...** यह ताप पड़ा, वह दुःख नहीं। **किन्तु अपनी भूलरूप मिथ्यात्वरागादि दोष से ही दुःख होता है,...** मूल तो भ्रमणा... आहाहा! आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय रस का कन्द प्रभु, वह पर में सुख है और पर में ठीक है, ऐसी मान्यता से दुःखी हुआ

है। उस दुःख की ज्वाला में सुलग रहा है। समझ में आया? ऐसा कहकर प्रभु! तू अब वापस मुड़, ऐसा कहते हैं। यह आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, इसकी ओर जा न, आ न! इसके बिना तेरे दुःख नहीं मिटेंगे, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो जरा पाँच-पचास लाख पैसे हों, शरीर ठीक हो, लड़के ठीक हों और कुछ धन्धा चलता हो, पाँच-पच्चीस नौकर बड़े हैं। हजार-हजार, दो-दो हजार के वेतनदार। बड़ा कारखाना चलता हो पाँच करोड़ का और... आहाहा! भूल गया है। तू वहाँ दुःखी है। मन की संकल्प-विकल्प की ज्वाला से सुलग रहा है। तुझे उसका भान नहीं। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई!

यह बाहर की मिठास... शरीर ठीक हो और यह हो। आहाहा! डॉक्टर बेचारे कहते थे न। बहुत वैराग्य से कहते थे। लड़की तो बीस वर्ष की थी। कुएँ में डाल दी। ... तीन दिन में तो बाहर निकले। ...कोई सगा नहीं, प्रिय नहीं। कोई सगा-प्रिय हुआ नहीं। कोई निकालने आया नहीं... इस ओर कहे, तीन दिन का सड़ा हुआ शरीर। यह देखने से ऐसा हो जाये कि... आहाहा! इस शरीर के भोग लेना और इसमें प्रसन्नता (लगना), वह दुःख है। आहाहा! ...यहाँ कहते हैं... आहाहा! ऐसे दुःख कितनी बार सहे होंगे? लड़के हैं न सब? ऐसे अनन्तबार दुःख सहन किये। तो भी तुझे हर्ष आता है, प्रभु! ऐसा कहते हैं। जहाँ हर्ष करने जैसी चीज़ है, वहाँ आता नहीं और जहाँ हर्ष नहीं है, जहर का प्याला है, वहाँ... आहाहा! उसे तू गले में ऐसे गटक-गटक कर पीता है, भाई! यह राग और द्वेष और मिथ्याभ्रान्ति के प्याले दुःख हैं परन्तु तुझे सुख लगते हैं। अरे! इसने भगवान आत्मा की भावना (भायी नहीं)। जिनभावना। भावपाहुड़ है न? अर्थात् वीतरागी प्रभु की वीतरागी पर्याय की भावना इसने कभी नहीं की। यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप इसने भाये हैं। यह तो आस्रव की भावना, संसार की भावना, भटकने की भावना है। आहाहा!

**उत्तापन, ज्वलन,...** अग्नि से सुलगे। अग्नि से। पहलू बदले, जलाये, अग्नि... पानी छिड़के अग्नि को। आहाहा! .... वे अग्नि के जीव हैं, प्रभु! इसमें तू अनन्त बार था। दीर्घ दृष्टि से भी अभी तक कहाँ रहा तब? तू तो त्रिकाली चीज़ है। तो कहाँ रहा? कि ऐसी जगह रहा। अब तुझे ऐसा मनुष्यपना मिला, प्रभु! जो करने का है, वहाँ आ न, वहाँ आ। चैतन्यप्रभु आनन्द का धाम, वहाँ बसने योग्य है। वहाँ दृष्टि करके स्थिर होने

योग्य है। आहाहा! दृष्टि नहीं की, इसलिए यह दृष्टि करके वहाँ स्थिर हुआ। भ्रमणा और राग-द्वेष में पड़ा। आहाहा! यह बाह्य से दु:खों का वर्णन करते हैं।

**वेदन,...** वेदना। ...आदि का दु:ख। इस शरीर का काट डाले। **व्युच्छेदन,...** छेद डाले। यह वनस्पति देखो न! आहाहा! वनस्पति। हरितकाय, दूधी, करेला, सब्जी। इस घीसोडा के ऊपर की रग निकालते हैं न? सम्हार कर फिर टुकड़े करके खाते हैं। आहाहा! रग निकालने जाते हैं, वहाँ रग में अनन्त असंख्य जीव हैं, उनका घात हो जाता है। विच्छेद हो जाता है। आहाहा! वनस्पति आदि।

**निरोधन...** रोकना। आगे जाये, उसे रोकना। आहाहा! लोहे की बड़ी कोठी हो, एक व्यक्ति रहे उतनी। पच्चीस हाथ की लम्बी। उसमें ... डालकर अन्दर रखे। तिर्यंच की बात है। अलमारी हो। दीवार को अलमारी की जरूरत नहीं। चूहा आवे, अन्दर जहाँ घुसे वहाँ... न हो ऊँचा, पैर लटके। निरोधन। वहीं का वहीं मरे। आहाहा! आहार नहीं, पानी नहीं, हवा नहीं। अलमारी में। ... अन्दर घुसने जाये। घुसने जाये, वहाँ हो गया। वहाँ फँसे और मर जाये। भाई कहते थे न। सूकर को सूकर। सूकर के हाथ-पैर सरिया द्वारा बाँधकर, जैसे शक्करकन्द को सेंकते हैं, वैसे अग्नि में डालता था। नारणभाई कहते थे। एक पारसी। आहाहा! सूकर के पैर सरिया द्वारा बाँधकर जैसे अग्नि में शक्करकन्द डालते हैं, वैसे अन्दर डाल दिया। आहाहा! ऐसे तो नरक और तिर्यंच में बहुत दु:ख सहे हैं। उस दु:ख को मिटाने का अवसर है न, प्रभु तेरा। आहाहा! जिसमें नजर डालने से भव न रहे, ऐसी चीज़ में नजर डाल न, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**इत्यादि दु:ख सम्यग्दर्शन आदि भावरहित...** देखा! भावरहित अर्थात् यह। सम्यग्दर्शन—चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि और उसकी भावना। उसके बिना **बहुत कालपर्यन्त प्राप्त किये।** बहुत काल प्राप्त (हुआ)। यह तिर्यंच की बात है। पशु में। आहाहा!

**भावार्थ – इस जीव ने सम्यग्दर्शनादि भाव बिना...** आत्मा निर्मलानन्द प्रभु निश्चय सम्यग्दर्शन। उसका आत्मज्ञान और आत्मा की रमणता, ऐसे भाव अर्थात् पर्याय बिना **तिर्यंच गति में चिरकाल तक दु:ख पाये–** देखो! यह स्पष्टीकरण करते हैं।

**पृथ्वीकाय में कुदाल आदि खोदने द्वारा...** दुःख। पृथ्वी में खोदे-खोदे। हाथ से यह करे... यह करे... खोदते-खोदते गहरा जाये और ऊपर गिरे तो वह बाई मर जाये। यहाँ मर गयी थी बाई। पृथ्वी में गहरा-गहरा सफेदा लेने जाये वहाँ। ऊपर बहुत भार हो तो नीचे पड़े और मर जाये। यहाँ बाई मर गयी थी। आहाहा!

**जलकाय में अग्नि से तपना,...** देखा! यह सब उसके साथ लेना। अग्नि से पानी गर्म हो। धगधगता पानी। उसमें जीव अन्दर मरते हैं। **ढोलना...** पानी ढोले। आहाहा! गर्मी के दिन में सेठिया बैठा हो, रात्रि में पानी ऐसे हवा के लिये डाले। आहाहा! ऐसा करता हो। **अग्निकाय में जलाना,...** देखा! एक के बाद एक शब्द लिया है वापस इसका। अग्निकाय से जलाये। **बुझाना...** अग्नि को बुझावे। वह उसे दुःख है। **पवनकाय में भारे से हलका चलना,...** लो! वायु। **फटना आदि द्वारा दुःख पाये, वनस्पतिकाय में फाड़ना,...** विच्छेद आया था न? वनस्पतिकाय को फाड़ना, टुकड़े करना, **छेदना, राँधना आदि द्वारा दुःख पाये,...** आहाहा! **विकलत्रय में दूसरे से रुकना,...** रुंधन आया था न? निरोधन। ओहोहो ! ... लिया है। **दूसरे से रुकना,...** सामने आवे, उसे मारे। लोहे का... आहाहा!

**मनुष्यादि द्वारा वेदना,...** वेदन... मनुष्यादि मारे, काटे। चूहे को पिंजरे में भरकर गर्म-गर्म धगधगता पानी ऊपर डाले। एक बार पालेज में निकला था। .... पिंजरे में चूहे, धगधगता पानी डाले। अरे! यह तू क्या करता है भाई? आहाहा! यह तो चूहे मारने की। पिंजरे में चूहे थे। पिंजरा आता है न लोहे का? अनाज की दुकान हो, बहुत बड़ी दुकान हो... वह समाप्त हो जाये। पिंजरे में चूहे बहुत थे तो उसमें ऊपर गर्म-गर्म पानी सिर पर डाले, धगधगता। आहाहा! यहाँ जरा गाली दे, वहाँ इसे हो जाये, हमारा अपमान! अरे! बापू! तूने क्या किया? किसमें अपमान? भाई! ऐसे दुःख तो तूने अनन्त बार सहन किये हैं। उसमें अनन्त काल गया है। आहाहा!

**अल्प आयु से मरना...** एकेन्द्रिय, यह दो इन्द्रिय। ... मरे, दुःख पाये। **पंचेन्द्रिय पशु-पक्षी-जलचर आदि में परस्पर घात...** मच्छ... बड़ा मगरमच्छ, छोटे मगरमच्छ को पूरा निगले। आहाहा! पूरे चूहे को निगले, नेवला। **मनुष्यादि द्वारा वेदना, भूख,**

**क्षुधा,...** पानी मिले नहीं, आहार मिले नहीं। **तृषा, रोकना, वध-बन्धन इत्यादि द्वारा दुःख पाये। इस प्रकार तिर्यंचगति में असंख्यात अनन्तकालपर्यन्त दुःख पाये।** इसका स्पष्टीकरण किया है। दुःख तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष का है।

★ ★ ★

## गाथा - ११

**आगे मनुष्यगति के दुःखों को कहते हैं –**

**आगंतुक माणसियं सहजं सारीरियं च चत्तारि।**
**दुक्खाइं मणुयजम्मे पत्तो सि अणंतयं कालं।।११।।**

**अर्थ – हे जीव ! तूने मनुष्यगति में अनन्त काल तक आगन्तुक अर्थात् अकस्मात् वज्रपातादिक का आ गिरना,...** आहाहा! बैठा हो, वहाँ गिरे बड़ा वज्र सिर पर। ऊपर से गिरे बड़ा टोकरा। आहाहा! यह देखो न अमरेली में स्लेब गिरा ऊपर। अशेषभाई मर गये। अशेषभाई काम करते थे और उनके दो मिस्त्री थे। स्लेब थे तो स्लेब में बैठे। स्लेब गिरा ऊपर। दो-तीन मण का सीमेंट का। दोनों मर गये। ऐसा तो अनन्त बार है, एक बार नहीं, भाई! काल अनन्त गया है। अनन्त काल में कौन सी बात अनन्त बार नहीं हुई? आदिरहित काल में जिसकी आदि नहीं, ऐसे अनन्त काल में ऐसे दुःख मनुष्यपने के अनन्त बार हुए। उसे याद करे तो बाहर में अभिमान करने का अवसर नहीं रहता। यह मेरे, इसका गुमान रहता नहीं। आहाहा! यह अकस्मात्।

**मानसिक अर्थात् मन में ही होनेवाले विषयों की वांछा का होना...** विषय की वांछा हो और मिले नहीं और फिर जले। इच्छा प्रमाण इच्छा हो और इच्छा प्रमाण मिले नहीं। आहाहा! उसकी कल्पना की दाह में सुलगता है। आहाहा! दो भाई में इस भाई को ऐसा और मेरे नहीं। दोनों अलग हुए तब समान थे। छोटा बढ़ गया और मैं घट गया। है न? ... पाँच पदार्थ की। **वांछा का होना और तदनुसार न मिलना,...** वांछा प्रमाण नहीं मिले, इसलिए कल्पना (करे)। आहाहा!

**सहज अर्थात् माता, पितादि द्वारा सहज से ही उत्पन्न हुआ...** ... दुःख दे।

माता-पिता ऐसे मिले हों। **रागद्वेषादिक से वस्तु के इष्ट-अनिष्ट मानने से दुःख का होना,...** यह दो सहज में डाला। इष्ट-अनिष्ट मानने से दुःख होना। आहाहा! अनुकूलता में राग और प्रतिकूलता में द्वेष, ऐसे इष्ट-अनिष्ट में दुःखी होना। आहाहा! चौथा। **शारीरिक अर्थात् व्याधि, रोगादिक तथा परकृत छेदन,...** शरीर में कठोर व्याधि आना। आहाहा! देखो न! यह क्या कहलाता है? ... ...

**मुमुक्षु :** ... काय है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... बहुत पीड़ा। यहाँ पड़ा हो। छोटे-छोटे लड़कों को है तुम्हारे। आहाहा!

**परकृत छेदन,...** अँगुली काटे, हाथ काटे। आहाहा! यह कलकत्ता में देखा हुआ है न एक। अँगुली को। व्यवस्थित एक मण्डली है। आहाहा! मनुष्य को उठाकर लावे। जवान लड़के को कहीं से। उसे दो हाथ काट डाले यहाँ से। पैर काट डाले यहाँ से। वह (भीख) मँगावे। आहाहा! प्रभु... प्रभु! उसकी वेदना, उसकी कल्पना में ऐसा हो। यह मक्खियाँ बैठे। हाथ-पैर तो न मिले कुछ। आहाहा! ऐसे दुःख सम्यग्दर्शन बिना, वीतरागी प्रभु की भावना बिना ऐसे दुःख सहन किये।

**छेदन, भेदन आदि से हुए दुःख - ये चार प्रकार के और चकार से इनको आदि लेकर अनेक प्रकार के दुःख पाये।** मनुष्यपने में ऐसे दुःख प्राप्त हुए। दिखता है न प्रत्यक्ष। विषय लेने गया हो और उसे कुछ खबर न पड़े कि यह तो धनी आया, उसे डाले पाखाने में। आहाहा! यहाँ से कब वापस निकलने के अवसर की खबर न हो। उलझन... उलझन में मर जाये उसमें। आहाहा! जगत में क्या नहीं होता? प्रतिकूलता के संयोग अपार। उसकी भीड़ में भिडाये जाये। ऐसे दुःख तूने मनुष्यपने में सहन किये। उसे याद न करे। यह पैसे मिले, स्त्री मिली, यह हुआ... यह हुआ... हम सुखी हैं न। एक व्यक्ति कहता था, हम सुखी हैं न। महाराज कहते हैं, दुःखी है परन्तु हम तो सुखी हैं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वड़ोद में। उमराला के पास वड़ोद है न! रूपल सेठ, गाँव के

नगरसेठ। आहाहा! हम सुखी हैं। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! पाँच हजार-दस हजार महीने में पैदा हो, लड़के ठीक हों, पैसा-पूँजी हो। ...बापू! तुझे खबर नहीं। उस दुःखी की ज्वाला में तू सुलग रहा है। आहाहा! आमदनी हो लाख की, दो लाख की। एक लाख रुपये पैदा किये। दो लाख किये, पाँच लाख किये। उसका हर्ष आता है। वह कषाय अग्नि है। आहाहा! कषाय में कीड़ा सुलगता है, वहाँ कषाय का।

शान्ति का नाथ, शान्तिनाथ आत्मा है। आहाहा! ऐसा अकषायस्वभावी भगवान, उसकी तूने भावना नहीं की और यह सब भावना करके ऐसे दुःख वेदन किये। इसी प्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि हैं, आचार्य हैं। शास्त्र का पुकार है। जगत को ऐसा प्रसिद्ध करते हैं। परसन्मुख का वीर्य शिथिल कर, भाई! ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष और पुण्य-पाप के भाव के प्रति की रुचि का भाव ढीला कर, भाई! नहीं तो ऐसे दुःख सहन किये। सुनने में तुझे त्रास होगा। यह तूने जीते-जी सहन किये हैं। परन्तु यह दुःख .... आहाहा! कहाँ माने इसमें? अभी दो कारखाना है। दो-पाँच लाख के कारखाने चलते हैं। पचास-पचास हजार, लाख पैदा हो। आहाहा! अब इसमें दुःखी था भूतकाल में, कौन याद करे इसमें?

**मुमुक्षु :** वर्तमान दुःखी है...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वर्तमान भी दुःखी है, इसका तो भान ही कहाँ है। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - १२

**आगे देवगति के दुःखों को कहते हैं –** नरक का कहा, तिर्यंच का कहा, मनुष्य का कहा। (अब) देव।

**सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिव्वं।**
**संपत्तो सि महाजस दुःखं सुहभावणारहिओ।।१२।।**

लो! शुभभावना, देखा! दो बार। शुभभावना ही यह है। सम्यग्दर्शन की भावना, वही शुभभावना है। वह शुभभाव तो अशुभभाव है-अशुद्धभाव है। आहाहा!

**अर्थ – हे महायश!** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, हों! **हे महायश!** है न पाठ? ऐसा कहते हैं, तूने मुनिपना लिया, स्त्री, कुटुम्ब छोड़ा, महात्याग किया परन्तु प्रभु! तू द्रव्यलिंग में प्रसन्न हो गया। **तूने सुरनिलयेषु अर्थात् देवलोक में सुराप्सरा अर्थात् प्यारे देव...** बापू! जब तू स्वर्ग में गया वहाँ उस पुण्यभाव अर्थात् अशुद्धभाव से स्वर्ग मिला, उसमें तेरे प्रिय देव और प्रिय अप्सरा, उनके वियोग काल में असह्य दुःख तुझे आया, भाई! प्रिय में प्रिय अप्सरा, प्रिय में प्रिय देव, वे देव जाये, क्षण में उड़ जाये। फू... जाओ। उनके वियोग काल में तुझे बहुत दुःख हुए, बापू!

**उसके वियोग सम्बन्धी दुःख तथा इन्द्रादिक बड़े ऋद्धिधारियों को देखकर अपने को हीन मानने के मानसिक तीव्र दुःख...** ओहोहो! अपने से अधिक बाहर के इन्द्रादि, महाऋद्धिवाले देव दुःखी, स्वयं हल्का देव हो। आहाहा! अपमान... अपमान, अनादर... अनादर। इसके दुःख तुझे हुए, भाई! समझ में आया? स्वर्ग में भी तेरे पुण्य हीन-न्यून में मिथ्यादृष्टिरूप से द्रव्यलिंग धारण करके सम्यग्दर्शन की भावना बिना ऐसा मुनिपने का क्रियाकाण्ड करके स्वर्ग में गया। परन्तु वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव सब बहुत, इन्द्रपद को प्राप्त, यह देखकर तुझे अन्दर जलन हुई। आहाहा! वहाँ मैं मनुष्यरूप से साधारण जीव की अपेक्षा अधिक गिना जाता था, यहाँ मैं अधिक नहीं, मैं हीन हो गया। ... देव में जाये नहीं, शास्त्र में ऐसा लेख है। सभा में बैठा हो और बोलना चाहे। ... देवा! मा भाष—बोलना नहीं। बापू! तुझे। आहाहा! ... ... ... ... यह तो कितने तीन लाख, चार लाख जितने खर्च किये थे। यह जाने कि ... सब राजा इकट्ठे हुए और कुछ बोलने लगा। ... बैठ जाओ। आहाहा! ... बैठ जाओ। उसे ऐसा कि ऐसा वहाँ तो पाखाना बनाया था। कितने खर्च किये थे? लाखों, करोड़ रुपये। ऐसा कि मुझे राज में ... मान्य हुआ। बोलने लगा, बैठ जाओ। ...

**मुमुक्षु :** मेहरबानी करके बैठ जाओ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मेहरबानी करके बैठ जाओ। आहाहा! मेहरवानी करके बैठ जाओ। गजब है न! अपमान-अपमान। करोड़ों का तालुका। ... अंग्रेज सरकार ने। .... इस जगत के देखो न! उसे कहने गये बेचारे साधारण। ऐसा पाप करना रहने दो। हम इस हाथ से करेंगे और इस हाथ से भोगेंगे। हम राजा हैं। ... अभी नरक में रंक होकर

रोता होगा।... आहाहा! उसकी पीड़ा-रुदन का पार नहीं होता। ऐसी पीड़ा में अभी पड़े होंगे। यहाँ का पर्दा बन्द हो गया और वह पर्दा खुल गया बाहर नरक का। भाई! अवसर आये और तूने किया नहीं कुछ और की तो यह उल्टी सब राग-द्वेष की भावना, ऐसा कहते हैं। उसके फल में स्वर्ग में गया तो वहाँ अपमान के दुःख तूने सहन किये। आहाहा!

**मानसिक तीव्र दुःखों को शुभभावना से रहित होकर पाये हैं।** शुभ अर्थात् वह शुभ ही यह शुद्ध है। पुण्य-पाप में आता है न? समयसार में। उसे ही शुद्ध कहा। आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु की दृष्टि, ज्ञान और रमणता तथा विकल्परहित की निर्विकल्प दशा, उसे यहाँ शुभ कहा जाता है। बाकी तो व्रत, नियम और तप के विकल्प, वे सब अशुद्ध हैं। आहाहा! जिसके फल में गति मिले, वह भाव अशुद्ध है। जिसके फल में मुक्ति मिले, वह भाव शुद्ध है। बाहर की इस सब जंजाल में यह कहाँ... निवृत्ति कहाँ है इसे? मुझे निवृत्ति नहीं। मरने की फुरसत नहीं हमें। ऐसा धन्धा हमारे (चलता है)। आहाहा! मरने पड़ेगा तो पड़ेगा पैरों से नीचे, भाई! हाय... हाय... रे... मुझे नहीं कराना... चले जाओ। कहाँ जाकर उतारा करेगा? रोता था। व्यक्ति नहीं खुशालभाई का दामनगर का बनिया ... उसके बापू। होशियार व्यक्ति। इस संसार का... है। मरते समय लोग देखने आवे और आँख में से आँसू बहते जायें। सब लोग देखने आवे और आँख में से आँसू बहते जाये। क्या है? भाई! मैंने कुछ किया नहीं, मेरा सब काल इसमें गया। आँख में से आँसू की धारा। ... खुशाल प्रेमचन्द, दामनगर। आहाहा! ढीला किये बिना यह आगे नहीं जा सकेगा। आहाहा! बाहर की अधिकाई और मान-अपमान छोड़ न। आहाहा!

**भावार्थ – यहाँ 'महायश' इस प्रकार सम्बोधन किया। उसका आशय यह है कि जो मुनि निर्ग्रन्थलिंग धारण करे...** ऐसा कहते हैं। तू नग्नमुनि हुआ-दिगम्बर मुनि (हुआ)। यह वस्त्रवाले तो मुनि नहीं, व्यवहार से मुनि नहीं। जैनदर्शन में तो निर्ग्रन्थ मुनि, नग्न मुनि को द्रव्यलिंग कहा जाता है। ऐसा तूने धारण किया। **समस्त क्रिया करे,...** है तू। द्रव्यलिंगी की। पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, निर्दोष आहार, पानी... आहाहा! **परन्तु आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख न हो...** आहाहा!

परन्तु उस शुभ की क्रिया का रस तो राग है। भगवान आत्मा की ओर का भाव जो शुद्ध उपयोग है, उसके तो सन्मुख हुआ नहीं, उसकी भावना की नहीं। आहाहा! यह धर्म तो शुद्ध उपयोग है। यह पंच महाव्रत और यह सब शुभ उपयोग है, यह सब धर्म नहीं। आहाहा! यह तो अधर्म है।

**आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख...** शुद्धोपयोग, वह आत्मा के सन्मुख का भाव है। शुभभाव, वह परसन्मुख का भाव है। शुभ उपयोग दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, पूजा वह तो परलक्ष्यीभाव है। यह तो **आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख न हो, उसको प्रधानतया उपदेश है...** उसे यहाँ उपदेश कहते हैं। द्रव्यलिंगी साधु हुआ। हजारों रानियाँ छोड़ी, राजपाट छोड़े, पंच महाव्रत पालन किये परन्तु वह सब बाह्य लक्ष्यवाली क्रियाएँ परन्तु प्रभु! अन्तर सन्मुख होने का जो उपयोग उसकी तो तूने दृष्टि की नहीं। आहाहा! बहिर्मुख की जो यह सब शुभक्रियाएँ, वे तो संसार खाते की है।

**आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख न हो, उसको प्रधानतया उपदेश है...** मुख्य उसे कहा जाता है। इसलिए महायश कहा है न। महाशय। तेरी इज्जत तो बढ़ी बाहर में। उसमें भला क्या हुआ? आहाहा! ऐसा नग्नमुनि, दिगम्बर मुनि हो, पंच महाव्रत पाले, समिति, गुप्ति पालन करे। उसमें क्या हुआ? वह तो संसार है। वह तो संसार की दिशा की ओर का भाव है। आत्मा का स्वरूप सन्मुख का भाव तो शुद्धोपयोग है। वह संसारपन्थ है, यह मोक्षपन्थ है। आहाहा! जगत का जँचा नहीं। मूल चीज़ और उसका भाव और उसकी भावना। मूल चीज़ आत्मा और उसका भाव शुद्ध त्रिकाल और उसकी भावना वीतरागी निर्मल पर्याय। उसके सामने तो तूने कभी देखा नहीं। आहाहा! क्या किया तूने?

**मुनि हुआ वह तो बड़ा कार्य किया,...** यह व्यवहार से बात की। **तेरा यश लोक में प्रसिद्ध हुआ,...** महायश कहा न? **परन्तु भली भावना अर्थात् शुद्धात्मतत्त्व के अभ्यास...** आहाहा! भगवान पवित्र विकल्प राग, दया, दान के विकल्प से रहित प्रभु आत्मा, ऐसा जो आत्मा, उसकी **भली भावना अर्थात् शुद्धात्मतत्त्व के अभ्यास बिना...** अन्तर चैतन्यद्रव्य की दृष्टि और अनुभव बिना... आहाहा! **तपश्चरणादिक**

**करके स्वर्ग में देव भी हुआ...** तपस्या की, व्रत पालन किये। आहाहा! और उसके फल में स्वर्ग गया। **वहाँ भी विषयों का लोभी होकर...** क्योंकि शुभभाव, वह तो विषय है। उसके प्रेम में, महाव्रत के प्रेम में पड़ा विषय का लोलुपी है, कहते हैं। आहाहा! इसने स्वविषय नहीं किया। अपने अभ्यास बिना वस्तु जो चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ, उसके सन्मुख की दृष्टि और अभ्यास बिना। **तपश्चरणादिक करके स्वर्ग में देव भी हुआ तो वहाँ भी विषयों का लोभी होकर मानसिक दुःख से ही तप्तायमान हुआ।** वहाँ मानसिक दुःख में तपते हुए दाह-जलन (भोगी)। आहाहा! अरे! यह सब मुझसे बड़े। वहाँ मुझसे छोटे थे। यहाँ तो बड़े हो गये। मैं हीन रहा, ऐसी मानसिक कल्पना से दुःखी हुआ। स्वर्ग में भी दुःख को भोगा। एक सम्यक् चैतन्य की दृष्टि और भावना बिना। इसलिए किसी भी प्रकार से प्रभु! तू आत्मद्रव्य की ओर आ। आहाहा! अन्तर में जा... अन्तर में जा... अन्तर में देख कि जिससे तुझे निधान प्राप्त होंगे। आहाहा! और उसके कारण तुझे मुक्ति, शरीर का नाश हो जायेगा। स्वर्गादि गति का नाश और मुक्ति होगी। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ८, मंगलवार, दिनांक-१५-०१-१९७४
गाथा - १३ से १८ प्रवचन-८९

## गाथा - १३

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। गाथा १३। यह भावपाहुड़ है अर्थात् आत्मा चैतन्य शुद्ध वीतरागस्वरूप है, ऐसी दृष्टि और ऐसा शुद्धभाव कभी किया नहीं। और इस शुद्धभाव बिना अनन्त बार नरक में गया, पशु की योनि में रहा, मनुष्य में रहा और देव में रहा। सर्वत्र यह दु:खी था। देव में भी हीन देव हो। यह बात अब लेते हैं। देव होता है। अब यहाँ साधु तक की बात है कि जैन का साधु हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ है तो भी इसने कुभावना छोड़ी नहीं और आत्मतत्त्व जो शुद्ध चैतन्य भगवान, ऐसे पवित्र परमात्मा का स्वरूप उसकी इसने भावना—जिनभावना की नहीं। चार गति में तो भटका। देव हुआ और साधु भी ऐसा अनन्त बार हुआ, ऐसा कहते हैं। ऐसा यहाँ कहना है।

**कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणाई य।**
**भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ।।१३।।**

सम्यग्दर्शन की भावना बिना दूसरे भव तो अंगीकार किये। जिनभावना (की नहीं)। परन्तु कहते हैं कि ऐसे साधुपना लिया, परन्तु उसने जिनभावना नहीं भायी, कुभावना भायी। संसार में तो स्त्री, पुत्र, परिवार में, धन्धे में तो पाप किये और वीतराग भावना भायी नहीं। और पुण्य भी किये परन्तु वीतरागभाव की भावना बिना, वह स्वर्गादि में भी दु:खी है। यहाँ तो वहाँ तक लेना है अब कि ऐसे तो भव किये, परन्तु जैन साधु के भव में भी तूने जिनभावना भायी नहीं। आहाहा!

**अर्थ – हे जीव! तू द्रव्यलिंगी मुनि होकर...** बाह्य से नग्नदिम्बर सन्त हुआ। ओहो! गृहस्थाश्रम में पड़े हैं, उन्हें तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष की भावना थी, इसलिए भटके, परन्तु मुनि होकर भी जिसने आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, जिसमें राग का अंश नहीं, ऐसी चीज़ की दृष्टि नहीं की, इसलिए हे **जीव! तू द्रव्यलिंगी मुनि होकर कान्दर्पी**

**आदि पाँच अशुभ भावना भाकर...** पाठ में **'असुहादि'** है। यहाँ **अशुभ भावना भाकर...** अर्थात् किसी समय अशुभ भावना में शुभ भी हो। देव होते हैं न? परन्तु वह सब जिनभावना बिना की। पुण्य और पाप के भाव, वह रागभाव है। राग है, भाई! राग की भावना तो मिथ्यात्वभाव है।

मुनि होकर **अशुभ भावना भाकर प्रहीणदेव अर्थात् नीचदेव...** हुआ। उसमें हीन देव में भी अपमान आदि में दुःख को सेवन किया। अपने से अधिक पुण्यवन्त प्राणी देखकर शुभभाव के वश स्वर्ग में गया, उसे देखकर अन्दर द्वेष होता है। सहन नहीं होता। अरे! यह क्या? बापू! ऐसी भावना साधु होकर भी मिथ्यात्व की भावना और राग की भावना भाने से, स्वर्ग में गया कोई शुभभाव था इसलिए। परन्तु वह शुभ भी अशुभ ही है। समझ में आया? वह जीव **नीचदेव होकर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ।** यह इसका इतिहास कहते हैं। जीव का इतिहास। आहाहा! चार गति में किस प्रकार भटका? भाई! तुझे आत्मा, निर्विकल्प आनन्द का नाथ कन्द प्रभु, उसे छोड़कर तूने शुभाशुभ भावना अनन्त बार की। आहाहा!

चैतन्यद्रव्य वस्तु परमानन्द और ज्ञान की मूर्ति है, ऐसी तूने दृष्टि की भावना कभी नहीं की। इसलिए इसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आया। संसार में पाप किये और नरक में गया, पशु में गया, वह तो एक ओर रहो, कहते हैं। परन्तु यह तो गृहस्थाश्रम छोड़कर साधु हुआ तो भी जिनभावना नहीं भायी। वहाँ भी अशुभ-शुभभाव में रहा। आहाहा! यह तो वीतराग परम स्वभावी, वीतराग मार्ग है। यह रागरहित अन्तर चीज़ प्रभु, उसका माहात्म्य लाकर उसकी एकाग्रता करना, ऐसी दृष्टि इसने अनन्त काल में नहीं की। साधु हुआ तो भी (नहीं की)।

**भावार्थ - कान्दर्पी,...** कान्दर्पी अर्थात् कुचेष्टायें ऐसी करे और साधु होकर विकथाएँ करे। त्यागी न हो उसे तो कहते हैं भले वह पाप किये और नरक में गया और पशु में गया। परन्तु यह तो साधु होकर भी ऐसी विकथाएँ करता है। **किल्विषिकी,...** हल्का देव हो। ढेढ़। उसमें भी हल्के जीव होते हैं न? ऐसे देव में किल्विषिकी ढेढ़ जैसे, हरिजन-हल्के देव होते हैं। उनमें अनन्त बार गया। **संमोही,...** मोह। राग और

द्वेष के मोह में साधु होकर भी उस मोह की ही भावना भायी। आहाहा! इससे वहाँ देव हुआ। **दानवी...** असुर जैसा हुआ। दानवी अर्थात् असुर। असुर जैसी प्रकृति रखी। कौतूहल की, मस्करी की, राग की... उसके कारण असुर में गया। यह इसका अनादि का इतिहास है। कहो, समझ में आया?

**और अभियोगिकी –...** वहाँ स्वर्ग में सेवक हुआ। अभियोग अर्थात् सेवक। यहाँ साधु हुआ परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! बारह के व्रतादि पालन किये, परन्तु उसमें विकथा आदि का अशुभभाव भी आया। स्वर्ग में सेवक हुआ। देव का सेवक हुआ। वे सब दुःखी हैं। आहाहा! देव में आये तो भी उनके ऊपर के वापस सेवक। इन्द्र और बड़े देवों की सेवा करना। **ये पाँच अशुभ भावना हैं। निर्ग्रन्थ मुनि होकर...** ऐसा कहते हैं, देखो! **सम्यक्त्व भावना बिना...** हेतु तो यह है। आहाहा! संसार की पिंजड़ में पड़ा और आत्मा को भूला, इसीलिए तो भटका, परन्तु यह संसार, स्त्री, पुत्र, परिवार तूने छोड़ दिया। ऐसे नग्नरूप से भी निर्ग्रन्थदशा में अनन्त बार आया, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना... आहाहा! पूर्ण परमात्मस्वरूप, शुद्ध चैतन्यघन आत्मा, उसे इसने विश्वास में, प्रतीति में, भरोसे में न लेकर, अकेले विकल्प की भावनायें भायीं। आहाहा!

**अशुभ भावनाओं को भावे, तब किल्विष आदि नीच देव होकर...** हल्के देव हो, हल्के। **मानसिक दुःख को प्राप्त होता है।** मन में दुःख... दुःख... दुःख... ओहोहो! देव में आये, वे तो ढेढ़ जैसे... सभा में जाये तो बोलने न दे। आहाहा! वीतरागी आत्मा प्रभु, ऐसे जिनभावना; सम्यग्दर्शन कहो या जिनभावना कहो। सम्यग्दर्शन कहो या त्रिकाली चीज़ की एकाग्रता अन्दर में-श्रद्धा में, ऐसी चीज़ बिना ऐसी भावना की, मरकर स्वर्ग में गया। अपमान के दुःख सहन किये। मन में मानसिक दुःख (सहन किये)। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - १४

**आगे द्रव्यलिंगी पार्श्वस्थ आदि होते हैं, उनको कहते हैं –** पार्श्वस्थ आदि साधु होते हैं। कहते हैं कि साधु में भी बहुत भेद हैं। वे भी मिथ्यादृष्टि होवे न... आहाहा! गृहस्थाश्रम में नरक में जाने के भाव किये, पशु के किये, स्वर्ग के किये और मनुष्यपने के किये। परन्तु यह तो साधु होकर भी चार गति के भटकने के भाव किये, ऐसा कहते हैं। यह तो देव का भाव है। आहाहा!

**पासत्थभावणाओ अणाइकालं अणेयवाराओ।**
**भाऊण दुहं पत्तो कुभावणाभावबीएहिं।।१४।।**

**अर्थ – हे जीव!** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत को सम्बोधन कर कहते हैं, हे आत्मा! आहाहा! **तू पार्श्वस्थ भावना से अनादि काल से लेकर अनन्त बार भाकर...** पार्श्वस्थ साधु। साधु के पास रहे अवश्य परन्तु क्रिया सब कलुषित। अशुभभावना, राजा को प्रसन्न करना, राजा बड़े करोड़पति, अरबोंपति हों, उनके साथ सम्पर्क करना, उनकी महिमा करना, यह सब पार्श्वस्थ साधु कहलाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

**अनन्त बार भाकर दुःख को प्राप्त हुआ। किससे दुःख पाया? कुभावना अर्थात् खोटी भावना,...** राग की भावना, अशुभ की भावना, कुतुहल की भावना। आहाहा! राजा आदि बड़े सभा में आवे। ... कथा में। तो उन्हें मक्खन लगाये, गुणगान करे, सम्पर्क करे। आहाहा! उसमें तो मर गया, कहते हैं। कहो, समझ में आया? यहाँ कहा न साधु राजा को वश करके राज का मान प्राप्त करे। वहाँ क्या राज का मान चाहिए था। अनन्त बार भावना भायी। **दुःख के बीज,...** इस वीतराग दृष्टि बिना सब राग की भावनायें दुःख का बीज है। **उनसे दुःख पाया।**

**भावार्थ – जो मुनि कहलावे और वस्तिका बाँधकर...** मकान बाँधकर रहे। **उसे पार्श्वस्थ वेषधारी कहते हैं।** साधु के पास रहने पर भी वेशधारी कहते हैं। **और कषायी होकर व्रतादिक से भ्रष्ट रहे,...** कषाय मान... मान... मान... लोभ और राग और माया में कुटिलता, कपटता के रस में पड़ा व्रतादिक से भ्रष्ट हो जाता है। होवे नग्न मुनि दिगम्बर। आहाहा! उसमें भी तूने भावना नहीं भायी, ऐसा कहते हैं। जो करनेयोग्य

था, वह वहाँ भी नहीं किया। साधु होकर, मुनि होकर। आहाहा! आचार्य महाराज तो ऐसा ... गृहस्थाश्रम में तो मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष की सेवा की और चार गति में भटका... आहाहा! परन्तु त्यागी होकर भी तूने वह की वही जाति सेवन की। अशुभभावना आदि की भावना करके मरकर अन्त में देवादि हुआ।

**संघ का अविनय करे,...** कोई ऐसी शक्ति पुण्य की हो, राजा आदि मानते हों, अरबोंपति मानते हों, मन्त्र-तन्त्र दिये हों। संघ का अविनय करे। कौन संघ? सच्चे सन्त, सच्चे साधु को गिने नहीं। आहाहा! **इस प्रकार के वेषधारी को कुशील कहते हैं।** पाँच है, उनकी व्याख्या। पार्श्वस्थ, ... इस कोटि की। **जो वैद्यक ज्योतिषविद्या मंत्र की आजीविका करे,...** वैद्यक करे, दवायें बताये, ज्योतिष बतावे। मन्त्र दे। इस मन्त्र से तुम्हारा ऐसा होगा। पद्मावती का मन्त्र। आहाहा! चक्रेश्वरी का मन्त्र। चक्रेश्वरी है न? कहाँ? पालिताणा है न? नीचे नहीं? चक्रेश्वरी देवी है। भोंयरा में है। ऐसे मन्त्र दे। यह क्या है? वे उसे माने। उसके नाम से पैसा खर्च करे और प्रसन्न हो। आहाहा! **वैद्यक ज्योतिषविद्या मंत्र की आजीविका करे,...** लो! आहाहा! पैसा उगाहे। भण्डार भरे अपने नाम के। गृहस्थ के यहाँ... क्या कहलाता है वह? थापण रखे। लाख, दो लाख, पाँच लाख। उसके नाम के रहे। आहाहा! ऐ! साधु होकर भी तूने यह किया! ऐसा अनन्त बार किया है। एक बार नहीं किया। आदिरहित काल। अनन्त काल का यह इसका इतिहास है। आहाहा!

**राजादिक का सेवक होवे...** देखा! मक्खन चुपड़े, राजा के गुणगान करे, करोड़पति, अरबपति को भी खुशामद करे। ओहो! तुम तो भारी धर्मी, तुम तो ऐसे। राजा-लक्ष्मीवाले का सेवक होकर। **इस प्रकार के वेषधारी को संसक्त कहते हैं।** परिचय करनेवाले। बड़े राजा हों और करोड़पति का परिचय करनेवाले। भाई! उनका परिचय है क्या? भगवान आत्मा अन्दर छोड़कर यह क्या? आहाहा! धर्मी का परिचय नहीं तो ऐसे सब फटे प्याला (अभिमानी) राजा। आहाहा! माँस खाते हों, लम्पटी हों, अरबों की उपज हो। ऐसे राजाओं को प्रसन्न रखे। मरकर पशु में जायेगा। देव में जायेगा तो हल्का देव होगा। आहाहा! यहाँ तो चैतन्य भगवान आत्मा का जिसे माहात्म्य नहीं

आता, उसे इन दूसरे बाह्य पदार्थों का माहात्म्य नहीं छूटता। वह भी वहीं का वहीं भटककर मरता है चार गति में। आहाहा! साधु होकर भी ढेढ़ जैसे देव में जाता है।

**जो जिनसूत्र से प्रतिकूल,...** है। वीतरागदृष्टि। आहाहा! वीतरागभाव जिनसूत्र बताते हैं, उससे प्रतिकूल। उसे तो व्यवहार की रुचि, पुण्य और पाप की। उसके प्रेम में फँसे, वे जिनसूत्र की आज्ञा का अविनय करते हैं। भगवान की आज्ञा तो वीतरागभाव करने की है। जिनसूत्र में वीतरागभाव का पोषण है। वह वीतरागभाव तो निकाला नहीं और राग के पोषण की बातें निकाली, वह जिनसूत्र से प्रतिकूल है। आहाहा! **चारित्र से भ्रष्ट आलसी...** स्वरूप की चारित्रदशा नहीं और व्यवहार के व्रत का ठिकाना नहीं, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार वेषधारी को 'अवसन्न' कहते हैं।** अवसन्न कहा जाता है।

**गुरु का आश्रय छोड़कर एकाकी स्वच्छन्द प्रवर्ते,...** गुरु के साथ रहे तो विनय करना पड़े, निर्मान रहना पड़े। छोड़कर अकेले स्वच्छन्द से प्रवर्तन करे। **जिन आज्ञा का लोप करे...** आहाहा! **ऐसे वेषधारी को 'मृगचारी' कहते हैं।** जैसे हिरण चलते हैं, वैसे वे सब चलनेवाले। आहाहा! **इनकी भावना भार्वे, वह दुःख ही को प्राप्त होता है।** लो! ऐसी राग की भावना इस प्रकार की, वह दुःख को ही प्राप्त होता है।

★ ★ ★

## गाथा - १५

**ऐसे देव होकर मानसिक दुःख पाये इस प्रकार कहते हैं –** ऐसा देव होता है और मानसिक पीड़ा का पार नहीं होता। आहाहा! मेरा हृदय जलता है। अन्दर हळाहळ सुलगता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**देवाण गुण विहूई इड्ढी माहप्प बहुविहं दट्ठुं।**
**होऊण हीणदेवो पत्तो बहु माणसं दुक्खं।।१५।।**

**अर्थ – हे जीव ! तू हीन देव होकर...** हल्का देव हुआ। **अन्य महर्द्धिक देवों के...** बड़ा महर्द्धिक देवों के गुण, पुण्य और इज्जत बड़ी देखकर। **विभूति...** बड़े देव की विभूति देखकर मन में जला। मानसिक चिन्ता में सुलग गया। ऐसे-ऐसे बड़े देव।

हम जैन साधु थे। यह और ऐसे बड़े हुए। मानसिक पीड़ा (भोगता है)। बहुमान दे नहीं। अपमान जहाँ हो, वहाँ हो। **और ऋद्धि रूप अनेक प्रकार का माहात्म्य देखकर...** देव की बाहर की ऋद्धि, गुण, विभूति का माहात्म्य देखकर **बहुत मानसिक दुःख को प्राप्त हुआ।** आहाहा!

**भावार्थ – स्वर्ग में हीन देव होकर बड़े ऋद्धिधारी देव के...** बहुत बड़ी ऋद्धिवाले देव देखकर **अणिमादि गुण की विभूति...** गुण की। अणिमा अर्थात् छोटा रूप करना हो तो हो, बड़ा रूप करना हो तो हो। छोटा-बड़ा। अणिमा, महिमा आती है न? **देवांगना आदि का बहुत परिवार देखे...** अपनी अपेक्षा देव को बहुत इन्द्राणियाँ, देवियाँ देखे तो दुःख हो। आहाहा! मानसिक ज्वाला से सुलगता है। यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं, कि भाई! तूने आत्मा की दृष्टि नहीं की और ऐसे साधुपने में भी जब गया, उसमें देव में भी तुझे मानसिक दुःख हुआ। मन में चिन्ता के दुःख का पार नहीं रहता। मरे वहाँ तक उसका कोई भव बदले, ऐसा नहीं। आहाहा! अब तो यह अवसर आया, बापू! ऐसा कहते हैं। अब तो दृष्टि बदल। यह राग का प्रेम और राग की रुचि, जैनदर्शन में उसे मिथ्यात्व कहते हैं। चाहे तो शुभराग हो, उसका भी प्रेम और रुचि को मिथ्यात्व कहते हैं। वह अजैनभावना है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** हमारे लिये तो नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जिसे हो उसके लिये है।

**मुमुक्षु :** साधु के लिये है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** साधु की बात की, तब वह आ गया बीच में। यह तो साधु ऐसा हुआ तो भी उसने राग की भावना भायी और मरकर दुःखी हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और उसमें गृहस्थाश्रम में रचा-पचा, वह स्त्री, पुत्र, इज्जत, कीर्ति और भोग में मर गया ऐसा का ऐसा। चला गया। उसका पशु जैसा अवतार। आहाहा! समझ में आया? अरे! अपना जो करना है, वह किया नहीं। और बाहर से लगायी सब। आहाहा! लड़के पढ़े, होशियार हों, हमारे जैसे हों, हजार-हजार, दो हजार के वेतनवाले हों, अच्छे घर की बहू मिले। सुखी हो। मर गया अब, सुन न। धूल में भी नहीं। वहाँ तो

अकेले राग और विकार का पोषण है। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! भाई! यह तो तूने सब दुःख के साधन खड़े किये हैं। तेरी जिन्दगी स्वयं से व्यतीत की। लड़कों को पढ़ावे। स्वयं डॉक्टर हो, दो लड़कों को डॉक्टर बनावे तो प्रसन्न हो और उसकी बहू भी डॉक्टर हुई हो, उसे रखे। लड़कियाँ डॉक्टर होती हैं न अभी? लड़के की बहू अर्थात् दोनों डॉक्टर हों तो प्रसन्न हो कि अपने लड़के....

**मुमुक्षु :** एक घर में दोनों कमाये न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दोनों जनें कमायें। अरे रे! स्वरूपचन्दभाई! कल कहा था, नहीं? वे डॉक्टर, महेता डॉक्टर कल आये थे बेचारे। नरम व्यक्ति। फोटो लिया न? उसने कहा, महाराज आवे तो मुझे बुलाना। बहुत बड़ा डॉक्टर। महेता। क्या आफिस... आया था मिलने। ऐसे नरम है। स्वयं से यह सब किया है। ... नहीं होता। क्या होता है महाराज को? मैंने कहा बुखार आता है। दूसरा कुछ नहीं। बुखार नहीं मिटता, दूसरा कुछ नहीं। ...अब उसका सुना तो एक लड़का २९ वर्ष का केंसर में मर गया। डॉक्टर होकर। देखो! इस जगत के सख-केंसर। स्वरूपचन्दभाई! चार लड़के हैं। एक डॉक्टर है। और यह बेचारा डॉक्टर था। केंसर हुआ। कौन कहता था? अपने कान्तिभाई कुण्डलावाले, वे आये थे। कुण्डलावाले हैं न दो व्यक्ति? वे आये थे। ... आहाहा! देखो! यह धूल में है नहीं। पुनर्जन्म की थोड़ी बात की। राजुल की। पुनर्जन्म है कहाँ? यह निर्णय (करने का) ठिकाना नहीं होता। कहाँ गये तुम? आहाहा!

कहा न यह तुम्हारा जेठाभाई! कौन तुम्हारा वह? शिवलाल। शिवलाल पानाचन्द कलेक्टर है। आई.पी.एस.। साढ़े तीन हजार का वेतन है। ...जवान। वीसाश्रीमाली बनिया था। आया एक बार। (संवत्) १९७७ के वर्ष में बोटाद।.. नौकरी की। सात सौ का वेतन। फिर तो साढ़े तीन हजार बढ़ गया। मैंने कहा, भाई! शिवलालभाई, यह आत्मा है, इसका कुछ पढ़ा है आत्मा का? कहे, हाँ, पढ़ा है। बहुत मस्तिष्क! बहुत मस्तिष्क! पूरे अलमारी के अलमारी (पुस्तकें) पढ़े और याद रहे, ऐसा व्यक्ति। ... साथ में पढ़े हुए। पहला नम्बर उसका आया था। दूसरा नम्बर... का आया था। इसलिए सरकार देती है न नम्बर? उसे दूसरा नम्बर दिया था, कक्षा में। वह उसे पूछा, वह कहे,

पढ़ा है, परन्तु आत्मा है या नहीं, मैंने निर्णय नहीं किया। आहाहा! तुम्हारे बापू साथ में थे। ...वहाँ उसका ननिहाल था न। शिवलालभाई का ननिहाल वहाँ। नागरभाई साथ में थे। व्याख्यान पूरा हुआ। (संवत्) १९७७ की बात है। बराबर आये और बैठे। मैंने पूछा। कहा, अभी निर्णय नहीं किया। ओय! यह पढ़े सब। अभी आत्मा है या नहीं, यह निर्णय नहीं किया। कैसा है और कैसे है, उसे और एक ओर रखो। अरर्र! क्या किया परन्तु तूने यह? वह ४८ वर्ष की उम्र में मर गया। साढ़े तीन हजार का मासिक वेतन। कलेक्टर और वहाँ का दीवान। यहाँ कोहनी में कुछ दर्द हुआ। ... ४८ वर्ष की उम्र में समाप्त। अभी ४८। जाओ दुनिया में... जाओ। आहाहा! उसका उतारा कहाँ होगा, बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे भव तो अनन्त किये परन्तु यह साधुपना लेकर तूने घोटाला किया। आहाहा! घोटाले के धन्धे में पड़ा, वह तो वहाँ घोटाला ही था। परन्तु त्यागी होकर भी तूने क्या किया? आहाहा! यह शुभरस और राग करके उसमें और उसमें जिन्दगी व्यतीत की। रागरहित मेरा नाथ चैतन्य प्रभु कौन है? मैं जो कहलाता हूँ, चीज़ क्या है? उसकी इसे दृष्टि और ज्ञान किये बिना ऐसे पार्श्वस्थ आदि साधु होकर स्वर्ग में अपमान सहन किये, मानसिक दुःख सहन किये। आहाहा! अरबों वर्ष रहे। और उस देव को बड़ी ऋद्धि। देखी जाये नहीं, सहन की जाये नहीं। आहाहा! मरण नजदीक में हो नहीं। देव का तो आयुष्य छूटे नहीं। देव तो जितना आयुष्य लेकर आया, उतना रहनेवाला है। आहाहा! प्रभु! अनादि-अनन्त तेरा नाथ आत्मा... आहाहा! जिसमें संसार की कला का, विकल्प का भी जिसमें अवकाश नहीं है। आहाहा! ऐसा विज्ञानघन वीतरागस्वरूपी प्रभु, उसके सन्मुख तूने देखा नहीं और उससे विमुख, सन्मुख को छोड़कर विमुख तूने सब काम किये। साधु होकर भी ऐसे किये, भाई! आहाहा! देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य को। उसे ... साधु हुआ तो भी तूने ऐसा किया। आहाहा!

**स्वर्ग में हीन देव होकर बड़े ऋद्धिधारी देव के अणिमादि गुण की विभूति देखे तथा देवांगना आदि का बहुत परिवार देखे...** ओहोहो! इसकी इतनी-इतनी देवियाँ, मुझे तो एक भी देवी नहीं मिलती। देवी होवे तो साधारण हो। आहाहा! **आज्ञा,...** करे तो, हुक्म करे तो हजार देव हाजिर हों। यहाँ आज्ञा करे तो कोई सुने

नहीं। देव होवे तो भी। आहाहा! और अज्ञा करने जाये तो वह ... ऐसा सुनकर दु:खी हो बेचारा। आहाहा!

**आज्ञा, ऐश्वर्य...** महत्ता देखकर। आहाहा! इसकी महत्ता, इसका शरीर, इसकी इज्जत, इसकी देवांगना, इसके देव, इसके सामान्य देव। ओहोहो! अपने तो देव हुए तो वापस ढेढ़ जैसे हल्के। आहाहा! **माहात्म्य देखे तब मन में इस प्रकार विचारे कि मैं पुण्यरहित हूँ,...** देव-देव विचार करे। अरे! मैं पुण्यरहित। **ये बड़े पुण्यवान् हैं,...** बड़े पुण्यवान हैं। आहाहा! **इनके ऐसी विभूतिमाहात्म्य ऋद्धि है, इस प्रकार विचार करने से मानसिक दु:ख होता है।** मन में कल्पना के दु:ख का पार नहीं होता। आहाहा!

तुम्हारा लड़का... मगनभाई को वह नहीं? राणपुर। वे रहते न वहाँ जयचन्दभाई और वे। जयचन्दभाई... उसमें उसे... लेते उसका उसे नाम निश्चित हुआ तो वह नहीं सुहाया। मैंने कहा यह मूलचन्दजी बड़े हैं, इन्हें ठहराओ नाम। फिर जले... जले... जले... कहते थे। ...ज्वाला सुलगती है। परन्तु क्या है? यह सब तीनों शिष्यों में मेरा नाम भी नहीं। यह सब मूलचन्दजी के नाम के। अब क्या होली है? (संवत्) १९७४ की बात है। १९७५ की। आहाहा! माघ कृष्ण, ओहोहो! कितने वर्ष हो गये? लो, ५५ वर्ष हुए। वे कहते थे, हों! जलन होती है... जलन होती है... मुझे बहुत होती है। परन्तु है क्या? यह सब मूलचन्दजी का नाम लेते हैं, मेरा नाम (नहीं)। उसे ऐसा कि कुमार है न रायचन्दकुमार, 'खस' का। उसका नाम ... ... मूलचन्द का नाम रखे। मैंने कहा, ... यह जलन। इसी प्रकार देव में जलन का पार नहीं होता। बड़े पुण्यवन्त ऋद्धिवाले देखकर, बापू! जल गया, सुलग गया, तू वहाँ। भाई! तुझे आत्मा के वीतरागभाव की खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? इस रागरहित प्रभु, उसकी श्रद्धा-ज्ञान की महिमा का पार नहीं होता। वह महिमा तूने की नहीं और राग के फल और राग की महिमा में तू रच-पच गया। आहाहा!

**मानसिक दु:ख होता है।** आहाहा! आचार्य की कैसी शैली है! साधु हुआ तो भी ऐसी भावना भायी, स्वर्ग में गया, वहाँ भी दु:खी हुआ प्रभु तू। आहाहा! तेरी अपेक्षा अधिक भाववाले, वीतरागी वृत्तिवाले, शुभभाववाले, पुण्यवाले स्वर्ग में जाते हैं तो वे तो बड़ी ऋद्धि को पाते हैं। आहाहा! और तू वहाँ जाकर हल्का देव होगा। दु:खी होगा।

तू देख नहीं सकेगा। उसकी विभूति, उसकी ईश्वरता, उसकी आज्ञा, उसकी इन्द्राणी का परिवार... आहाहा! इसलिए कहते हैं कि अवसर आया, भाई! अब तो कर। ऐसा कहते हैं। आहाहा! छोड़ न सब होली। प्रभु स्वयं चैतन्यस्वभाव, भगवान वीतरागमूर्ति है, उसके सन्मुख देख न। आहाहा! वहाँ तेरे कल्याण का पन्थ पड़ा है। आहाहा! जन्म-जरा-मरण के उद्धार का पन्थ वहाँ है। **ऐसी विभूतिमाहात्म्य ऋद्धि है, इस प्रकार विचार करने से मानसिक दुःख होता है।**

★ ★ ★

**गाथा - १६**

**आगे कहते हैं कि अशुभ भावना से नीच देव होकर ऐसे दुःख पाते हैं, ऐसे कहकर इस कथन का संकोच करते हैं –**

**चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो।**
**होऊण कुदेवत्तं पत्तो सि अणेयवाराओ।।१६।।**

**अर्थ – हे जीव ! तू चार प्रकार की विकथा में आसक्त होकर,...** आहाहा! **स्त्रीकथा,...** स्त्री ऐसी होती है... स्त्री ऐसी होती है... स्त्री ऐसी होती है... यह विकथा-पापकथा है। उसमें तू लवलीन रहा। आहाहा! **भोजनकथा,...** भोजन ऐसा होता है, लापसी ऐसी होती है, लड्डू ऐसे होते हैं, अमुक ऐसा होता है, अमुक ऐसा। उसमें वह प्रसन्न-प्रसन्न हो। आहाहा! यह **स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा...** देश में ऐसा हुआ, इस देश में ऐसा... इस देश में ऐसा। अब वह देश में (रहा), तुझे क्या काम? और **राजकथा...** इन चार विकथा में पड़ा।

**तू चार प्रकार की विकथा (विपरीत कथा) में आसक्त होकर, मद से मत्त...** हमको यह कथा करना आता है, हमको यह आता है। इन सब निर्बलों को बोलना भी नहीं आता। इसे क्या आता है? कितने ही होते हैं न? ऐसी बातें करना आवे... ऐसी आवे... ऐसे मानो, ओहोहो! **मद से मत्त और जिसके अशुभ भावना का ही प्रकट प्रयोजन है,...** उसे तो अशुभ भावना का ही प्रयोजन है, कहते हैं। **इस प्रकार होकर**

**अनेक बार कुदेवपने को प्राप्त हुआ।** ऐसे भाव से कुदेव हुआ सही। अन्दर थोड़ा शुभभाव हो। आहाहा! मिथ्यादृष्टि विराधक होकर स्वर्ग में गया, वह मानसिक दुःख से पीड़ित है। एक वीतराग दृष्टि बिना, सम्यग्दर्शन बिना, जिनभावना बिना।

**भावार्थ – स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा और राजकथा इन चार विकथाओं में आसक्त होकर वहाँ परिणाम को लगाया...** लवलीन... बातें करे... आहाहा! स्त्री की बातें, भोजन की बातें, मानो देव का पुत्र उतरा। ऐई! सब बातें करे। इसका ऐसा होगा... इसका ऐसा होगा... परन्तु क्या है अब? ऐसे आनन्द के भोजन छोड़कर यह बातें तूने किसकी लगायी है यह सब? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन, प्रभु तेरी चीज़ है। आहाहा! वह जिनभावना है। अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा नाथ आत्मा है, उसका अनुभव वह आनन्द का भोजन है। उसे छोड़कर ऐसी सब बातें (करे), स्त्री और भोजन और राग-द्वेष की।

**लगाया तथा जाति आदि आठ मदों से उन्मत्त हुआ...** बड़े घर के हैं। हमारी माता बड़े घर की लड़के की लड़की, उसके हम पुत्र? क्या है परन्तु अब? आहाहा! हम बड़े राजा के कुँवर हैं। हम गर्भश्रीमन्त हैं। हम गर्भ में आये, तब से हमारे पिताजी पैसेवाले-करोड़ोंपति, अरबोंपति थे। तो क्या हुआ परन्तु अब तुझे? तुझे क्या हुआ? आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसे जाति, कुल, मद, ऐश्वर्य **मदों से उन्मत्त हुआ...** अपनी जानी हुई विद्या के पठन के मद में पागल हो गया है, उन्मत्त हो गया है। आहाहा! **ऐसी अशुभ भावना ही का प्रयोजन धारण कर अनेक बार नीच देवपने को प्राप्त हुआ, वहाँ मानसिक दुःख पाया।** मानसिक दुःख। यहाँ की पोल वहाँ खुल्ली हो गयी, कहते हैं। हल्का देव होकर बड़े देव को देखकर मानसिक दुःखी हुआ। आहाहा!

**यहाँ यह विशेष जानने योग्य है कि विकथादिक से तो नीच देव भी नहीं होता है,...** यहाँ तो विकथा पाकर देव हुए, ऐसा कहा न? **परन्तु यहाँ मुनि को उपदेश है, वह मुनिपद धारण कर कुछ तपश्चरणादिक भी करे...** कुछ व्रत पाले, थोड़ी तपस्या, अपवास आदि करे। **और वेष में विकथादिक में रक्त हो...** अकेली विकथा

से कहीं स्वर्ग में नहीं जाया जाता। परन्तु उस वेश में वर्तन कुछ ब्रह्मचर्य हो, उसकी तपस्या हो और उसके साथ यह सब विकथा हो।

**और वेष में विकथादिक में रक्त हो, तब नीच देव होता है, इस प्रकार जानना चाहिए।** लो! आहाहा! यह जीव का इतिहास सब अज्ञान का। आहाहा! तेरे घर में ऋद्धि, समृद्धि पड़ी है, उसकी तो तुझे खबर नहीं होती। उसका ज्ञान नहीं, उसकी रुचि नहीं, उसका आश्रय नहीं, उसका आदर नहीं। और ऐसा मुनिपना लेकर भी ऐसी विकथा में पड़ा है, भले देव हो, किंचित् शुभभाव हो तो सही। आहाहा! वहाँ दुःखी होगा, प्रभु! इसलिए सम्यग्दर्शन को प्रगट कर। आहाहा! उसके संस्कार तो कर कि यह चिदानन्द भगवान वीतरागी मूर्ति प्रभु, वह मैं हूँ। मुझमें राग और संसार की कोई चीज़ है ही नहीं। आहाहा! ऐसी प्रतीति के संस्कार तो डाल कि जिससे तुझे सम्यग्दर्शन, अनुभव होकर मुक्ति होगी। करने का तो यह है। कहो, समझ में आया? यह पैसे खर्च किये, यह किया और वह किया सब बातें, बापू! किसका अभिमान? **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो!

★ ★ ★

**गाथा - १७**

**आगे कहते हैं कि ऐसी कुदेवयोनि पाकर...** कुदेव की योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ। **वहाँ से चय कर जो मनुष्य-तिर्यंच होवे,...** वहाँ से आकर मनुष्य और तिर्यंच होवे, **वहाँ गर्भ में आवे, उसकी इस प्रकार व्यवस्था है -** लो! ऐसा देव हुआ और मरकर वापस मनुष्य में आया। आहाहा!

**हे मुनिप्रवर!** ऐसा कहा न? देखो!

**असुईबीहत्थेहि य कलिमलबहुलाहि गब्भवसहीहि।**
**वसिओ सि चिरं कालं अणेयजणणीण मुणिपवर।।१७।।**

आहाहा! **अर्थ - हे मुनिप्रवर!** सम्बोधकर (कहते हैं)। द्रव्यलिंगी है न? **तू कुदेवयोनि से चयकर...** ऐसे कुदेव में अपमान में रहा। वहाँ से चयकर आया। **अनेक**

**माताओं की गर्भ की बस्ती में बहुत काल रहा।** आहाहा! माता के पेट में उल्टे सिर... आहाहा! परन्तु भूल गया। बाहर जहाँ आवे, वहाँ हो गया। उसमें और अवयव बड़े हों, शरीर पाँच इन्द्रियाँ कुछ... हो, हो गया... भूला। आहाहा!

**गर्भ की बस्ती में...** गर्भ की बस्ती अर्थात् पेट में अन्दर। **बहुत काल रहा।** शास्त्र तो यहाँ तक कहते हैं कि किसी-किसी समय तो बारह-बारह वर्ष तक गर्भ में रहे। उसे (गुजराती में) छोड-छोड कहते हैं। सवा नौ महीने में जन्मे, वह तो और.... कोई दो वर्ष, तीन वर्ष, बारह वर्ष तक गर्भ में, गर्भ में छोड रहे, ऐसा पाठ है। तथा वहाँ मरकर और फिर से वहाँ जाये बारह वर्ष। चौबीस वर्ष की बात है कायस्थिति की। गर्भ में रहने की चौबीस वर्ष की (स्थिति है)। दो भव होकर। आहाहा! ऐसा तुझे अनन्त बार हुआ है। यहाँ जरा सुविधा बाहर की देखी, बस! हो गया। ओहोहो! मानो मैं तो क्या फला? बापू! हार गया है, भाई!

भगवान आत्मा के अनन्त गुण की महिमा की तुझे खबर नहीं होती। उसकी प्रभुता की पर्याय के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तृणवत् लगे, ऐसा तेरा नाथ आत्मा। आहाहा! जिसकी एक क्षण की शान्ति और श्रद्धा के समक्ष इन्द्र के हजारों, करोड़ों इन्द्राणी के भोग सड़े हुए बिल्ली, कुत्ते जैसे हों, वैसे देखे। आहाहा! ऐसा तेरा नाथ भगवान पूर्णानन्द स्वरूप महिमा करनेयोग्य है, उसकी तो तूने महिमा की नहीं और बाहर की महिमा में रच-पच गया।

**कैसी है वह बस्ती?** यह तो बहुत काल रहा, ऐसा कहा है न? सवा नौ महीने तो बराबर है। कोई सात महीने में जन्मता है। **अशुचि अर्थात् अपवित्र है,...** यहाँ तो अकेला अपवित्र स्थान है, वहाँ रहा। आहाहा! **बीभत्स (घिनावनी) है...** जिसमें घृणा उपजे, ऐसी पूरी स्थिति है। जिसमें रहा, वह तो घृणा उपजे ऐसी। आहाहा! उसमें सवा नौ महीने रहा। उस देव में से आया था तो यहाँ आया वापस। **और उसमें कलिमल बहुत है अर्थात् पापरूप मलिन मल की अधिकता है।** आहाहा! वहाँ परिणाम भी मलिन है और मलिनता के घेराव में शरीर पड़ा रहा।

**भावार्थ - यहाँ 'मुनिप्रवर' ऐसा सम्बोधन है, सो प्रधानरूप से मुनियों को**

**उपदेश है।** मुनि हो, उसे उपदेश है। मुख्यता यह है। **जो मुनिपद लेकर मुनियों में प्रधान कहलावे... 'मुनिप्रवर'** शब्द है न? बड़े मुनि कहलावे, लाखों लोग जिनकी सभा में आवे, उससे क्या हुआ? भाई! आहाहा! **मुनियों में प्रधान कहलावे और शुद्धात्मरूप निश्चय चारित्र के सन्मुख न हो,...** लो! शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा के सन्मुख तो हुआ नहीं। आहाहा! शुद्ध भगवान चिदानन्दमूर्ति प्रभु, ऐसा उसके निश्चयचारित्र के सन्मुख तो है नहीं। आहाहा! अन्तर के सन्मुख से तो विमुख है बाहर में।

**उसको कहते हैं कि बाह्य द्रव्यलिंग तो बहुत बार धारण कर चार गतियों में ही भ्रमण किया,...** देखा! **बाह्य द्रव्यलिंग...** जैन मुनिपना। **बहुत बार...** अनन्त बार **धारण कर...** 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' वहाँ और दूसरा अर्थ करते हैं, यह तो अभव्य के लिये कहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब करते हैं न! यह तो अभव्य के लिये कहा है, भव्य नहीं। भव्य को तो चारित्र होता है, उसके परिणाम होते ही हैं। कौन सा चारित्र? अणुव्रत और महाव्रत। आहाहा! अणुव्रत और महाव्रत तो सब विकल्प-राग है। अन्दर में सन्मुख होकर दृष्टि में स्थिर हुआ है। स्वभाव की चैतन्य दृष्टि हुई है, उसमें लीनता हुई है। उसे चारित्र कहा जाता है। वह कहीं बाह्य वेश और व्रत, वह चारित्र नहीं है। आहाहा! यह तो चारित्र लेकर भी मुंझाणो है। आहाहा!

**देव भी हुआ... द्रव्यलिंग तो बहुत बार धारण कर चार गतियों में ही भ्रमण किया,...** लो! देखा! उसमें चार गति ली है। क्योंकि स्वर्ग में गया परन्तु वापस मनुष्य होकर, पशु होकर चार गति में भटकता है। **देव भी हुआ तो वहाँ से चयकर इस प्रकार के मलिन गर्भवास में आया, वहाँ भी बहुत बार रहा।** गर्भ में भी बहुत बार रहा, अनन्त बार रहा। तिर्यंच और मनुष्यरूप से जब अवतार धारण किया, तब गर्भ में अनन्त बार तू रहा है। आहाहा! यह तेरा इतिहास है। आहाहा! एक सम्यग्दर्शन और जिनभावना बिना कुछ भी गहरे... गहरे... गहरे... राग का प्रेम और राग का रस (रह गया)। आहाहा! राग में कुछ ठीक है और उससे मुझे कल्याण होगा, ऐसी जो मिथ्यात्व रुचि, उसके कारण मुनिपना लिया तो भी चार गति के दुःख रहे। 'मलिन गर्भवास में आया, वहाँ भी बहुत बार रहा।' आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - १८

**आगे फिर कहते हैं कि इस प्रकार के गर्भवास से निकलकर जन्म लेकर अनेक माताओं का दूध पिया –** लो! आहाहा!

**पीओ सि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं।**
**अण्णाण्णाण महाजस सायरसलिलादु अहिययरं।।१८।।**

**अर्थ – हे महायश ! उस पूर्वोक्त गर्भवास में अन्य-अन्य जन्म में, अन्य-अन्य माता के स्तन का दूध तूने समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिक पिया है।** तूने माता का दूध पिया, उसके अनन्त समुद्र भर जायें। आहाहा! ऐसी अनन्त मातायें, (उनके गर्भ में) जन्मकर तूने दूध पिया। आहाहा! भाई! तुझे तेरी खबर नहीं होती। उस दूध के अनन्त समुद्र भर जायें। इतनी बार तूने माता का दूध पिया। आहाहा!

**मुमुक्षु :** लम्बा काल ऐसा गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गया न, अनन्त काल गया। अनन्त-अनन्त काल। आहाहा! अनन्त को अनन्तगुणा गुणे वर्ग से ऐसा अनन्त काल गया। अनन्त वर्ष का एक भव गिनो तो भी अनन्त भव होते हैं। अनन्त वर्ष का एक भव गिनो तो ऐसे अनन्त भव। यह तो २५-५० वर्ष और ६० वर्ष। आहाहा! माता के गर्भ में भी तूने इस प्रकार... अर्थात् दूध पीया। उस जननी का-माता का दूध तूने पिया। वह अनन्त समुद्र भर जाये। प्रभु! अब तू बस कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न? अतिशयकर-अधिकतर। समुद्र से भी अधिकतर पिया। आहाहा!

**भावार्थ – जन्म-जन्म में, अन्य-अन्य माता के स्तन का दूध इतना पिया कि उसको एकत्र करें तो समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिक हो जावे। यहाँ अतिशय का अर्थ अनन्त गुणा जानना,...** देखो! यह तो अतिशय शब्द (कहा है, बाकी तो) अनन्त गुणा-अनन्त गुणा, बापू! आहाहा! माता का एक समय का दूध पिया, ऐसे-ऐसे अनन्त भव के दूध, अनन्त समुद्र भर जायें। आहाहा! **अनन्त काल का एकत्र किया हुआ दूध अनन्त गुणा हो जाता है।** लो! ऐसा तेरा इतिहास है। प्रभु! अब तो मुड़ जा न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब तो तेरे घर में आ। बाहर घर तो ऐसे अनन्त बार फिरा दुःखी होकर। शुद्ध भावना की प्रतीति और रुचि और अनुभव कराने के लिये यह बात की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष कृष्ण ९, बुधवार, दिनांक-१६-०१-१९७४**
**गाथा - १९ से २७ प्रवचन-९०**

## गाथा - १९

यह अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। १९वीं गाथा है न? आचार्य महाराज अनन्त संसार में अभी तक ऐसा दु:खी (हुआ) और किस प्रकार यह भवभ्रमण किया, इसे समझाते हैं। भाई! तू अनन्त काल का है। तू तेरी चीज़ की यादगिरी और स्मरण बिना अनन्त ऐसे भव तूने किये, उनका पार नहीं, ...

**तुह मरणे दुक्खेण अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं।**
**रुण्णाण णयणणीर सायरसलिलादु अहिययरं।।१९।।**

**अर्थ – हे मुने!** यहाँ मुनि कहा है। मुनि को सम्बोधकर है न। द्रव्यलिंगी साधु हुआ तो भी आत्मा क्या चीज़ है, उस पर इसने दृष्टि नहीं की। तो कहते हैं, **हे मुने! तूने माता के गर्भ में रहकर...** माता के पेट में-गर्भ में रहकर **जन्म लेकर...** और जन्म लिया। तथा **मरण किया, वह तेरे मरण से अन्य-अन्य जन्म में...** तेरे मरण से अन्य-अन्य जन्म में **अन्य-अन्य माता के रुदन के...** अन्य-अन्य माता के रुदन हुए। आहाहा! पाँच-पाँच वर्ष, आठ-आठ, दस-दस वर्ष का लड़का होकर मर गया। अन्य-अन्य माता के ... भाई! तेरी माता के रुदन इतने हुए कि वह नीर इकट्ठा करे, उस **रुदन के नयनों का नीर एकत्र करें, तब समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिकगुणा हो जावे...** अनन्त जन्म-मरण में भूल गया। युवा २५-२५ वर्ष का लड़का विवाह कर मरे। फिर जन्मे और मरे। उस अन्य-अन्य माता के रुदन-रुदन... आहाहा! आँख में (आँसू की) धारा बहे। उस नीर के अनन्त समुद्र भर जायें, इतना तो रुदन के आँसू का नीर हुआ। आहाहा! किसमें तुझे पर में होश और उत्साह आता है? ऐसे अनन्त बार जन्म-मरण कर चुका है। और उसकी आँख के पानी से अनन्त समुद्र भर जायें, इतने (आँसू बहाये)। आहाहा!

तूने यह सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मदर्शन। अभेद सत्यार्थ वस्तु। अपनी अपेक्षा से तो यह सब—बाह्य चीज़ें असत्य है। और अपनी त्रिकाल अपेक्षा से तो पर्याय भी अभूतार्थ और असत्यार्थ है। अपने त्रिकाल अभेद अपेक्षा से तो उसमें गुण का भेद भी असत्यार्थ है। आहाहा! ऐसे सत्यार्थ भगवान आत्मा में तू दृष्टि दे। ऐसे जन्म-मरण करके दुःखी-दुःखी (हो गया)। किसका तुझे हर्ष आता है? भाई! ... अनुकूलता में सुख और हर्ष आता है। प्रतिकूलता में किसका तुझे द्वेष आता है? भगवान आत्मा सत्यार्थ प्रभु, चैतन्य सत्यसाहेब पूर्णानन्द प्रभु, उसे तो तूने नजर में किया नहीं, दृष्टि में लिया नहीं, आश्रय किया नहीं, मेरेरूप से उसे सत्यार्थ माना नहीं। समझ में आया? और जो चीज़ उसकी नहीं, उसे मेरेरूप से मानकर भटका है।

★ ★ ★

## गाथा - २०

**आगे फिर कहते हैं कि जितने संसार में जन्म लिए...** प्रभु! तूने इतने शरीररूप से जन्म लिये और **उनके केश, नख, नाल...** नाल-नाल। नाभि में नाल काटते हैं न? **नाल कटे...** उसका टुकड़ा करके एक-एक नाल का, केश का, नख का **उनका पुंज करें तो मेरु से अधिक राशि हो जाय –**

**भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणहरणालट्ठी।**
**पुञ्जइ जइ को वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी।।२०।।**

**अर्थ – हे मुने ! इस अनन्त संसार सागर में तूने जन्म लिये,...** ऐसे जन्म धारण किये, नाथ! मुनि को सम्बोधकर कहते हैं, देखो न! आहाहा! **उनमें केश, नख, नाल...** जन्मे तब यह नाभि और नाल काटते हैं न अन्दर? उसका एक टुकड़ा करके करे तो अनन्त मेरु भर जायें, भाई! आहाहा! इतने तो तूने जन्म-मरण किये। उसमें एक शरीर कुछ ठीक मिले तो उसी और उसी में पूरा दिन रचा रहे। आहाहा! शरीर की सम्हाल करते-करते तेरी अनन्त जिन्दगियाँ चली गयीं, भाई! यह ऐसा कहते हैं। ऐसे अनन्त भव किये। अपना भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, वह अस्ति, शाश्वत चैतन्य विराजता

है, उस पर नजर करने का अवसर भी नहीं लिया। आहाहा! ऐसा कहते हैं। ऐसे-ऐसे अवतार प्रभु! तूने किये हैं।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव देखो! भावपाहुड़ में (कहते हैं), अशुद्ध भाव पुण्य और पाप करके उनके फलरूप से तूने अनन्त जन्म-मरण किये। तूने तेरी दया नहीं की। जितना और जैसा आता है, वैसा उसे श्रद्धा में लेना, तब उसे दया कहा जाता है। पूर्ण आनन्द और अभेद सत्यार्थ प्रभु, वह सत्यार्थ वस्तु त्रिकाल, उसे श्रद्धा में-ज्ञान में ले, तब उसे जो जीवन जीव पूर्ण था, उसकी उसे श्रद्धा और स्वीकार हुआ, तब उसने अपनी दया पालन की। यह इतना है, ऐसा उसने माना। इसके अतिरिक्त रागवाला, पुण्यवाला, शरीरवाला... आहाहा! इस शरीर के अवयव जरा ठीक हों तो उसे ऐसा माने कि हमारे (सब ठीक है)। अरे! भगवान! तू यह क्या करता है? आहाहा! यह असंख्य प्रदेश अवयव में तो अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति तेरे धाम में पड़ी है न! उसके सामने देखने को, उसे मानने को, ऐसी महाप्रभु तेरी चीज़, उसे अनुभव करने का तुझे समय नहीं मिलता? ऐसा कहना चाहते हैं। ऐसा सब समय तूने व्यतीत किया है, नाथ! परन्तु तुझे तेरी दया नहीं आयी। आहाहा! पर की दया करने निकल गया। विकल्प है।

**मुमुक्षु :** पालन तो नहीं कर सकता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर की दया कहाँ पाल सकता है? आहाहा! आचार्य तो देखो न! वर्णन करते हैं भावपाहुड़ में!

तेरे एक-एक जन्म-मरण का एक-एक टुकड़ा लें, इतना तो अनन्त मेरु भर जायें इतने ढ़ेर हुए, प्रभु! किसमें तुझे प्रसन्नता आती है? किस चीज़ में तेरा वीर्य उल्लसित होता है? यह पर में तेरा वीर्य उल्लसित होता है, उसमें प्रभु! तूने ऐसे अनन्त भव किये हैं न! आहाहा! एक का छोटी उम्र का लड़का मर गया। पैर में.... गया था। पैर की वह क्या कहलाती है? पैर की नाळ। उसमें क्षय हुआ, क्षय। पैर की होती है न हड्डी ऊपर की? पैर में ऊपर नहीं यह? उसमें क्षय हुआ, क्षय। समझे या नहीं? 'सास' जैसा है, नजर से देखा है। आहार लेने गये थे। जवान लड़का। उसके पिता का पिता था। उसका पिता मर गया। आहाहा! दामनगर में है। वह लड़का मर गया और मुर्दा निकाला बाहर। उसके पीछे उसकी माँ (रोवे)। हम उपाश्रय में बैठे हुए थे। उपाश्रया

था उस ओर। धड़ाक... धड़ाक... फिर गिरे। आहाहा! छाती कूटे। अरे! भाई! थोड़े दो कदम उठे ऐसे चले, वहाँ वापस गिरे... धड़ाक। ऐसे मरण भी अनन्त बार किये, भाई! आहाहा! तेरी माँ ऐसे पछाड़ खाकर मरी। आहाहा! दामोदर सेठ का पुत्र। जवान लड़का था। पैसेवाले व्यक्ति। तब दस लाख इसलिए पैसेवाले। अब तुम्हारे पाँच-दस-लाख की, बीस लाख की कुछ कीमत नहीं। तब तो... ऐई! चिमनभाई! तुम्हारे सगे की कीमत थी तब। पैसेवाले। दस लाख।

जवान लड़का, छह महीने के विवाह में मर गया। छह महीने का विवाह। पंजादार लड़का। पूना में पढ़ा हुआ। गृहस्थ व्यक्ति, इसलिए पैसा तो महीने के खर्च के दे। पुस्तकें दे। देते थे बेचारे। महीने में जेब खर्च कुछ कम देते थे। इसलिए एक बार... बहुत होशियार लड़का था। बापूजी! महीने में दो सौ रुपये तो मुझे खर्च के चाहिए। हम गृहस्थ के घर में अवतरित हुए हैं, हों! महीने में दो सौ रुपय जेबखर्च के चाहिए। काका को चले तो दो, नहीं तो तुम्हारे नाम से लिखो। दिये दो सौ-दो सौ खर्च के। परन्तु विवाह किया। दो महीने से तैयारी। उसका मकान, उसका पलंग, उसके ... नयी बनायी। दो-दो महीने। यह नहीं अपने कलकत्ता लाड का लाडु करते हैं? यह बातें चलते हैं। वह सब वहाँ किया।

**मुमुक्षु :** सीधुं...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ! ... सुना था। दो-दो महीने की तैयारी थी, भाई! विवाह किया। पैसा... आसोज महीने में उड़ गया। आहाहा! दामोदर सेठ कहते बेचारे, मर गया तब हमें बहुत नहीं लगता था परन्तु फिर उसके ननिहालवाले आये गृहस्थ लींबड़ी से। कैसे? कोठारी? चन्दुलाल दीवान थे। वे .... लेकर आये। महिलायें... की। रुलावे। ओहोहो! और बाजार में कुकर्म में निकली और ऐसे पुकार लावे। दामोदर सेठ तब मुझे... थे। ... मर गया। परन्तु वह बाई ऐसी सेवा करे। आहाहा! अरे! बापू! किसका मरण? भाई! ऐसे मरण तो तूने अनन्त बार किये। उसकी माँ, भाई! रात्रि में रोती... रोती...। एक तो वीर्यवाला व्यक्ति था। रात्रि में जरा बाहर ... देखे। पलंग में रोती हो। पैसा, हों! दस लाख। तब साठ वर्ष पहले। मर गयी। झूर-झूरकर मरी बेचारी। बापू! किसका तुझे चैन है? आहाहा! यह तो नजर से देखी हुई बातें हैं। (संवत्)

१९७५ की बात है, लो! ७५, १९७५ के वैशाख में विवाह, १९७५ के आसोज महीने में आयुष्य पूरा। एकदम जवान पंजादार। उसे महीने के दो सौ रुपये तो जेब का खर्च। बाबूभाई! पुस्तक के और अन्य के अलग, वे नहीं। आहाहा! ऐसे मरण के पीछे उसकी... मोदी की लड़की। तुम्हारा सुखलाल नहीं? तुम्हारे रिश्तेदार के भाई सुखलाल। उसका घर पास में था। पहला सुखलालभाई का था। ... खबर है।

**मुमुक्षु :** उस समय विवाह हुआ तब....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह विधवा बाई अभी जीवित है।

अरे! तूने ऐसे दु:ख सहन किये, प्रभु! मनुष्यपना पाकर भी तेरे ऐसे अनन्त अवतार हुए, नाथ! आहाहा! परन्तु तेरे स्वभाव की रक्षा करने को निवृत्त नहीं हुआ। आहाहा! वह यहाँ आचार्य महाराज कहना चाहते हैं। भाई! तेरे ऐसे अवतार में ऐसे अनन्त हुए। अनन्त मेरु भर जायें। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - २१

**आगे कहते हैं कि हे आत्मन्! तू जल थल आदि स्थानों में सब जगह रहा है –** आहाहा! भाई! तूने कोई स्थान बाकी नहीं रखा। कहीं जन्मा न हो और कहीं मरा न हो, ऐसा कोई स्थान चौदह ब्रह्माण्ड में नहीं है, भाई! चौदह ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजन में है। एक-एक क्षेत्र में तू अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार मरा। आहाहा! यह उसका इतिहास बताते हैं।

**जलथलसिहिपवणंवरगिरिसरिदरितरुवणाइ सव्वत्थ।**
**वसिओ सि चिरं कालं तिहुवणमज्झे अणप्पवसो।।२१।।**

**अर्थ – हे जीव ! तू जल में,...** अनन्त बार रहा। आहाहा! उस जल में जल के जीव होकर अनन्त बार रहा। उस नदी का पानी, समुद्र का पानी, पीने का पानी, वर्षा का पानी ऊपर से गिरे। उसमें जीव है। वह एकेन्द्रिय जीव है। आहाहा! ऐसे जल में अनन्त बार जन्मा। आहाहा! **थल अर्थात् भूमि में,...** पृथ्वी में। यह सचेत कण यह

पत्थर निकालते हैं न चिनने के लिये? उस एक-एक कण में असंख्य जीव हैं। एक कुदाली ऐसे मारे और चूरा (हो जाये)। आहाहा! उसमें जन्मा। **शिखि अर्थात् अग्नि में,...** यह दियासलाई ऐसे घिसे और उसमें जो आग हो, उसमें असंख्य जीव हैं। एकेन्द्रिय असंख्य जीव। भाई! उसमें मर गया। अनन्त बार जन्मा वहाँ जाकर। आहाहा!

और **पवन में,...** यह वायु है, वह जीव है। उसमें अनन्त बार तूने जन्म धारण किये। **अम्बर अर्थात् आकाश में, गिरि अर्थात् पर्वत में, सरित् अर्थात् नदी में, दरी अर्थात् पर्वत की गुफा में, तरु अर्थात् वृक्षों में, वनों में और अधिक क्या कहें सब ही स्थानों में,...** प्रभु! तूने अनन्त बार जन्म और मरण किये हैं, भाई! आहाहा! पहले मरण होता था न तो अपने ऐसा रिवाज था। अब किसी को नहीं है। शाम को महिलाएँ रोने के लिये इकट्ठी हों। चार बजे। पकाने से पहले... हमारे घर में यह सब हुआ था न। हमारे दीपचन्दभाई बड़े भाई गुजर गये थे। छोटी उम्र में, हों! आठ वर्ष के विवाहित। एक ही लड़का। बहुत रूपवान थे। बहुत होशियार थे। खुशालभाई से बड़े। गुजर गये। हम लड़के छोटे। तब तो ग्यारह वर्ष की उम्र। निकाल दिया, यहाँ बैठना नहीं। ... चार बजे पकाने से पहले। और दोपहर में फुरसत हो, तब सब सगे-सम्बन्धी इकट्ठे हों।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तिथि अमुक न हो तब तक। अब तो सब घट गया। तब था। सात-सात, दस-दस, बारह-बारह दिन तक सब इकट्ठे हों और रोवे... रोवे... रोवे। आहाहा! मैं बैठा होऊँ। हमारी उम्र छोटी न। ग्यारह वर्ष की उम्र। १९५७ के वर्ष की बात है। ५७, संवत् १९५७। सब सुना हुआ हों, भाई! घर के लोग हों, वे पीछे से रोवे। सब रोते-रोते बन्द होते जायें। अन्त में उसकी माँ हो या उसकी बहू हो, वह अन्त में बन्द करे। भगवानजीभाई! तुम्हारे गाँव में रिवाज होगा ऐसा। था, यह तो सब नजरों से देखा हुआ है। गाँवों में अधिक है। उस समय के वे रुदन। ऐसे सब आवे बहुत। कहा, यह क्या करते हैं?

ऐसे मरण के पीछे, तेरे पीछे ऐसे मो अनन्त बार वाळया भाई! परन्तु तूने सन्मुख नहीं देखा। तेरा मुँह उसके सन्मुख नहीं किया। आहाहा! जहाँ प्रभु विराजता है। पूर्ण आनन्द का नाथ (विराजता है), वहाँ उसके सामने तूने नहीं देखा। आहाहा! ऐसे सब

अवतार कर-करके ..... पाँच-पचास लाख रुपये हों, इज्जत हो, लड़के हों तो आहाहा! देखो यह तुम्हारे। आहाहा! उसकी चाल और उसके कपड़े के पहनावे में... ओहोहो! क्या है? भाई! कहाँ जाना है तुझे? आहाहा! ऐसा कहकर चैतन्य में उन्मुख करना चाहते हैं, हों! बाद में यह है। यहाँ जा। प्रभु! तू यहाँ जा। ऐसे-ऐसे अवतार ... सामने देखकर बहिरात्मपने तूने ऐसे अवस्तार किये हैं न, नाथ! वह तुझे शोभा देता है? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे भव में **तीन लोक में अनात्मवश अर्थात् पराधीनवश होकर...** आहाहा! कर्म के आधीन होकर। स्वयं आधीन होता है, हों! आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन का नाथ प्रभु स्वयं को भूलकर राग के, कर्म के वश होता है और चार गति में भटकता है। आहाहा! **पराधीनवश होकर बहुत काल तक रहा अर्थात् निवास किया।** बहुत निवास किया तूने नाथ! ऐसे-ऐसे भवों में निवास किया। छोटी-छोटी उम्र के लड़के मरते हैं न। एक दिन का जन्मकर मरे, दो दिन का जन्मकर मरे। आहाहा! गर्भ में निकालते हुए मरकर निकाले। काटकर निकाले। आहाहा! भाई! क्या तेरे अवतार। 'चार भव के दुःख से डरी...' ऐसा आता है न? चार गति के दुःख से डरकर, प्रभु! अब अन्दर जा। चारों गति के दुःख, हों! देव में भी दुःख है, भाई! आहाहा! उसमें भी मानवपने में कुछ दो-पाँच लाख की आमदनी हो, उसे ऐसी की ऐसी अच्छी चली जाती हो। आहाहा! घर में और कुटुम्ब की आमदनी अच्छी चलती हो, मकान अच्छा हो और कपड़े-गहने अच्छे हों। ऐई! मजा मानता हो। दुःख का कीड़ा दुःख में दुःखी होकर होंश करता है। आहाहा! भाई! तुझे तेरी खबर नहीं है।

अतीन्द्रिय आनन्द का चौसला प्रभु तू है। आहाहा! और ऐसे भव में भटकना, वह तेरी चीज़ है, प्रभु? ऐसा कहते हैं। वह तेरा स्वभाव कहलाये? भाई! शर्मजनक भव, नहीं आता? शर्मजनक जन्मों टले, पीवे न जननी क्षीर। आहाहा! ...भव करना वह तो कलंक और शर्म है, शर्म है। और वह कलंक टाले, तब उसे जन्म का दुःख, जननी का... अथवा जननी के गर्भ में अवतरित नहीं होना पड़े।

**भावार्थ – निज शुद्धात्मा की...** देखो! लेखन देखा! **निज शुद्धात्मा की भावना बिना...** मेरा भगवान निज स्वरूप शुद्ध चैतन्य। अकेला आनन्द का नाथ पूर्ण परमात्मस्वरूप मेरा स्वरूप है। ऐसे **निज शुद्धात्मा की भावना बिना...** उसकी ओर

की एकाग्रता नहीं, लक्ष्य नहीं, सन्मुखता नहीं। आहाहा! **कर्म के आधीन होकर...** जड़कर्म के आधीन तू हुआ है। उसने तुझे आधीन नहीं किया। आहाहा! क्योंकि यहाँ स्वभाव के साधन में स्वभाव में आधीन नहीं हुआ। यहाँ आधीन हो गया।

**कर्म के आधीन होकर तीन लोक में सर्व दुःखसहित सर्वत्र निवास किया।** सर्व दुःखसहित निवास किया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सर्व दुःखसहित सर्वत्र...** सर्व दुःख और सर्वत्र। सर्व दुःख और सर्वत्र। आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

## गाथा - २२

**आगे फिर कहते हैं कि हे जीव! तूने इस लोक में सर्व पुद्गल भक्षण किये तो भी तृप्त नहीं हुआ –** आहाहा!

**गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं।**
**पत्तो सि तो ण तित्तिं पुणरुत्तं ताइं भुञ्जंतो।।२२।।**

**अर्थ – हे जीव ! तूने इस लोक के उदर में वर्तते...** लोक के उदर।... चौदह ब्रह्माण्ड में अन्दर वर्तता हुआ। जैसे माता के पेट में-गर्भ में वर्ते न? उसी प्रकार यह तीन लोक के गर्भ में अन्दर में वर्तता है। आहाहा! तीन लोक के उदर में **वर्तते जो पुद्गल स्कन्ध, उन सबको ग्रसे अर्थात् भक्षण किये...** आहाहा! दुनिया के पुद्गल बाकी नहीं रखे। ऐसे तो कितने ही बाकी हैं, परन्तु इसकी शक्ति में अनन्त बार ग्रहण किये, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? **उन सबको ग्रसे अर्थात् भक्षण किये और उन ही को पुनरुक्त अर्थात् बारबार भोगता हुआ...** आहाहा! दाल, भात, सब्जी, मौसम्बी का पानी, ऐसे पुद्गल प्रभु! तुझमें नहीं है। उस चीज़ के संयोग में तू अनन्त बार आ गया है, ऐसा कहते हैं। उन्हें भक्षण किया परन्तु तृप्ति नहीं हुई। आहाहा! **बारबार भोगता हुआ भी तृप्ति को प्राप्त न हुआ।** किसकी तृप्ति हो? बाहर के कारण अग्नि की लकड़ियाँ डाले तो तृप्ति हो अग्नि को? आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - २३

**फिर कहते हैं –**

**तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाए पीडिएण तुमे।**
**तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चिंतेह भवमहणं।।२३।।**

यह पुद्गल का था, अब पानी का कहते हैं। आहाहा!

**अर्थ – हे जीव ! तूने इस लोक में तृष्णा से पीड़ित होकर तीन लोक का समस्त जल पिया...** तृषा-तृषा। इतनी तृषा। आहाहा! नरक में, सातवें नरक में तृषा... पहले नरक में जल का बिन्दु मिलता नहीं और अनन्त समुद्र पानी के दे तो तृप्ति हो नहीं, ऐसी तृषा, भाई! आहाहा! यहाँ जरा गला सूखे और जरा पानी लाने में देरी लगे वहाँ भाई शोर मचाते हैं। पानी लाओ! देर क्यों लगती है? कोई मरा है या नहीं? मर गया है? मर गया अर्थात्? .... ऐसा कि कोई है घर में या मर गया? आहाहा! प्याला फटता है न। मर गया है या नहीं? क्यों नहीं लाते? सुन, सुन, बापू!

ऐसी तृषा... ऐसी तृषा... **तीन लोक का समस्त जल पिया तो भी तृषा का व्युच्छेद न हुआ...** आहाहा! ... अनन्त... अनन्त... नरक की पीड़ा में तृषा। आहाहा! ३३-३३ सागर तक, हों! एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं और एक पल्योपम में असंख्य अरब वर्ष असंख्यवें भाग में जाते हैं। भगवान! तूने वहाँ अनन्त बार ऐसी तृषा सहन की है। परन्तु तूने आत्मा का निर्विकल्प जल पीया नहीं। आहाहा! चैतन्य भगवान निर्विकल्प आनन्द का रस है। 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे।' आत्मा आनन्द का नाथ निर्विकल्परस से भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसका पेय पीये बिना, ऐसा पेय तूने अनन्त बार लिया, परन्तु तृप्ति नहीं हुई। आहाहा!

**इसलिए तू इस संसार का मंथन अर्थात् तेरे संसार का नाश हो,...** देखो! **प्यास न बुझी, इसलिए तू इस संसार का...** निश्चयरत्नत्रय का चिन्तवन कर। आहाहा! **'चिंतेह'** आया न? क्या चिन्तवन करना? **'भवमहणं'** जिससे भव का नाश हो। आहाहा! ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा, उसके रत्नत्रय दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना कर। आहाहा! ऐसा तो मार डाले। आहाहा! एक तो निवृत्त (हो नहीं)। बालक

हो तब पढ़े, पढ़ने के पश्चात् नौकरी खोजे। उसमें डॉक्टर हो या वकील, वकील और डॉक्टर का चला कुछ। उसमें और कुछ आमदनी-बामदनी ठीक से हो और लड़का अच्छा पका हो, वह वापस दो-दो हजार की नौकरी में लगा हो। नवलचन्दभाई! यह कहा था, उस डॉक्टर का, नहीं? वह डॉक्टर। बड़ा डॉक्टर था। परसों। उसके एक लड़की और चार लड़के। एक लड़का २९ वर्ष की उम्र का। केंसर, केंसर में मर गया। वह तो डॉक्टर है। लड़का स्वयं डॉक्टर है। डॉक्टर क्या करे? आहाहा! वह लड़का डॉक्टर था। २९ वर्ष का। केंसर हुआ। बहुत आघात लगा। शान्तिभाई कहते थे। उस समय हम देखने गये थे। कुण्डलावाले। ... है न ... ऊपर। प्रेम है, आते हैं। अरेरे!

कहते हैं कि भाई! ऐसे पानी अनन्त बार पीये, तो भी तृप्ति नहीं हुई। अब जलनिधि भगवान निर्विकल्प आनन्दरस, उसकी चिन्तवना कर न, नाथ! आहाहा! चिन्तवना अर्थात्? उसकी एकाग्रता। आनन्दस्वरूप भगवान की एकाग्रता कर। करने का तो यह है। बाकी सब बिना एक के शून्य रण में चिल्लाने जैसा है। आहाहा! **'चिंतेह भवमहणं'** ऐसा कहते हैं न? भव का नाश हो और भव का मन्थन हो, ऐसा कर, नाथ! ऐसा कहते हैं। जिसमें भव का अभाव हो, ऐसा कर। ऐसे भव तो तूने अनन्त बार किये, भाई! आहाहा! महिलायें गाती हैं न? विवाह करे तब गाती हैं न? वर के पिता या वर का भाई सामने देखता नहीं। ऐसा नहीं गाते? ऐसा कुछ गाते हैं।

**मुमुक्षु :** लळी, लळी...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लळी, लळी सामने देखे। विवाह करे तब महिलायें गाती हैं। फुरसत में होवे न! उससे बड़े भाई लळी लळी सामने देखे और उसका ऐसा और... आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! यह तो सब देखा है न। आहाहा! बापू! किसके सामने देखे? भाई! सामने तो अन्दर चैतन्य है, उसके सामने देख न। लळी लळी कर वहाँ देख। आहाहा! देखो न! आचार्य। **'चिंतेह भवमहणं'** ऐसे भव अनन्त बार किये। अब उस भव के नाश के लिये प्रभु! तू तेरी चीज़ को चिन्तवन कर। आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव नहीं, ऐसा तीन लोक का नाथ तू परमात्मा स्वयं। आहाहा! उसका माहात्म्य लाकर प्रभु! तू वहाँ एकाग्र हो। तो भव का नाश होगा। बाकी कोई दूसरा उपाय नहीं है। आहाहा!

**भावार्थ – संसार में किसी भी तरह तृप्ति नहीं है, जैसे अपने संसार का अभाव हो, वैसे चिन्तन करना...** आहाहा! देखो! यहाँ तो यह निश्चय डाला, देखा? निश्चयरत्नत्रय। व्यवहाररत्नत्रय भव मन्थन का-नाश का कारण नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय स्वयं संसार है। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे कि व्यवहार से ऐसा होता है और व्यवहार से ऐसा होता है। भाई! स्वरूप आनन्द का नाथ निर्विकल्प रस से भरपूर है न, भाई! जिसके एक क्षण के आनन्द के समक्ष दुनिया के इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तृणवत् लगते हैं, ऐसा तू ऐसा आत्मा! उसकी चिन्तवना कर न! उसका कुछ कर न, उसका कुछ कर न! आहाहा!

**संसार का अभाव हो, वैसे चिन्तन करना...** अर्थात् कि चैतन्य भगवान का **निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय ज्ञान,...** अन्तर आत्मा का। और आत्मा का वेदन स्थिरता, वह कर। करनेयोग्य होवे तो यह है। निश्चय चिन्तवन कर। **निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण करना, सेवन करना यह उपदेश है।** भगवान का। कुन्दकुन्दाचार्य का यह उपदेश जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं।

★ ★ ★

## गाथा - २४

**आगे फिर कहते हैं –**

**गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं।**
**ताणं णत्थि पमाणं अणंतभवसायरे धीर।।२४।।**

**अर्थ – हे धीर! हे मुनिवर!** आहाहा! धीर कहा न? और मुनिवर दोनों (शब्द) डाले। मुनिवर शब्द भी है। **'गहिउज्झियाइं मुणिवर'** आहाहा! और **'धीर'** तू नग्न दिगम्बर मुनि हुआ, इससे तुझे धीर कहते हैं। हे मुनिवर! आहाहा! भाई! अब तू तेरे आत्मा की सम्हाल कर। यह पाँच महाव्रत को पालते हैं, ऐसा करते हैं, (ईर्या) समिति—देखकर चलते हैं। बापू! यह तो सब राग है, सुन! आहाहा!

**हे मुनिवर!** और **हे धीर!** दो लिये हैं न? **तूने इस अनन्त भवसागर में कलेवर**

**अर्थात् शरीर अनेक ग्रहण किये...** यह हड्डियों के शरीर अनन्त ग्रहण किये। और अनन्त बार ऐसे शरीर ग्रहण किये **और छोड़े,...** नाथ! परन्तु तूने तेरा नाथ नहीं किया तुझे। आहाहा! **और छोड़े, उनका परिमाण नहीं है।** माप नहीं, माप नहीं। अनन्त बार शरीर धारण करके अनन्त बार शरीर छोड़े। आहाहा!

**भावार्थ – हे मुनिप्रधान ! तू इस शरीर से कुछ स्नेह करना चाहता है...** इस शरीर की सम्हाल, यह करो... यह करो... खाने के समय यह और पीने के समय यह, अमुक के समय ऐसा। साधु को तो तेल चोपड़े, यह करे, वह करे। यह सर्दी होती है न। वस्त्र न रखे तो तेल चोपड़े। अब वह तो वस्त्र का बाप हुआ। तेल लगावे। वे अन्यमति के बाबा रख लपेटते हैं। साधु होकर तेल चिकना चोपड़े। कितने प्रकार के तेल आते हैं, ऐसा सुना है। अपने को तो कहाँ चोपड़ा हैं। तीन प्रकार के तेल हैं, उनके पास। सवेरे यह चोपड़े, दोपहर में यह चोपड़े, शाम को यह चोपड़े, अरे रे! तो वस्त्र किसलिए छोड़े तूने? आहाहा! मूल चीज़ दृष्टि में आये बिना उसका माहात्म्य आता नहीं और पर का माहात्म्य हटता नहीं। आहाहा!

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का नाथ अन्दर स्वयं विराजता है। उसकी इसे खबर नहीं होती। आहाहा! और बाहर में मोहित होकर उलझा है। आहाहा! इतने शरीर लिये कि जिसका माप नहीं। आहाहा! ऐसे शरीर में अनन्त बार अवतरित हुआ। अब तो कलेवर न मिले, ऐसा कर न!—ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस शरीर में स्नेह करना (रहने दे) भाई! यह तो माँस, हड्डियाँ, चमड़ा है। तू इसका प्रेम करके शाम-सवेरे चौबीस घण्टे ध्यान रखता है। सवेरे चाय (पीवे)। साधु होकर दो-दो, चार-चार बार (पीवे)। दिगम्बर को तो ... होता नहीं। श्वेताम्बर में तो सवेरे उठकर चाय, दस बजे आहार, दोपहर में और कुछ ऐसे काजू-द्राक्ष हो (तो) नाश्ता, शाम को फिर खिचड़ी, कढ़ी और पापड़। अरे रे! कितनी सम्हाल, बापू! तेरी।

अभी एक साधु गुजर गये न? अमृतविजय गुजर गये न। आठ दिन असाध्य। आठ दिन असाध्य नहीं, क्या कहा? सन्निपात। आठ दिन सन्निपात और तीन दिन असाध्य। बोटाद के थे। आहाहा! क्या यह योगफल प्रभु तेरा। सन्निपात। यह शरीर की दशा, भाई! तूने शरीर की सम्हाल बहुत की। अन्त में निकली पोल। आहाहा! हाथ

न रहे, इसलिए सन्निपात हो। लवारो करे। यह लाओ... यह करो... यह करो... भान भूल जाये। आहाहा! कहते हैं कि ऐसे कलेवर इतने किये कि जिसका माप नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

**गाथा - २५-२७**

**आगे कहते हैं कि जो पर्याय स्थिर नहीं है,...** यह शरीर कहीं स्थिर नहीं है। नित्य तो प्रभु आत्मा है। **आयुकर्म के आधीन है, वह अनेक प्रकार से क्षीण हो जाती है** – शरीर तो नाश हो जायेगा अनेक प्रकार के ... भगवान अविनाशी है, उसकी सम्हाल कर न। इसकी लाख सम्हाल करेगा तो भी छूटेगा ही। आहाहा! दवायें रखेगा, यह करे, अवसर-अवसर में दवायें, अलमारी तैयार दवा की। बिच्छू काटे तो यह, अमुक काटे तो यह। ऐसा सुना है... फोनोग्राम* नहीं आता फोनोग्राम? खाली फोनोग्राम। उसके टुकड़े रखते हैं। ... ऐसा सुना है। अपने को कहाँ खबर है? वह सब रखते हैं अलमारी में। यह सम्हाल करना रहने दे। मर जायेगा। वहाँ टुकड़े काम नहीं आयेंगे। आहाहा! अनन्त का चैतन्य नाथ भगवान सच्चिदानन्द प्रभु तू है न, नाथ! उसकी सम्हाल कर न। सत्यार्थ को देख न, भूतार्थ को देख न! आहाहा! ११वीं गाथा कही है न? **'भूदत्थम' 'ववहारोऽभूदत्थो'** व्यवहार अभूतार्थ है। आहाहा! परवस्तु तो अभूतार्थ है, अपनी अपेक्षा से वह परवस्तु है ही नहीं। वापस निर्मल पर्याय अपेक्षा से राग पर्याय भी है नहीं। असद्भूत में जाती है। अपनी अपेक्षा से दूसरे द्रव्य असद्भूत हैं और अपनी निर्मल पर्याय की अपेक्षा से राग असद्भूत है। आहाहा! और त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय का भेद है, वह त्रिकाल में नहीं, इस अपेक्षा से असद्भूत में जाता है। आहाहा! सद्भूत में तो एक नाथ आत्मा रहता है।

जिसकी नजर करने से संसार का नाश हो, जिसके सामने देखने से संसार का अभाव हो। ऐसा तेरा प्रभु अन्दर है, उसके सामने देख न, भाई! आहाहा! यह तो दुनिया हमें कैसे गिनती है? दुनिया में कुछ गिनती में आये या नहीं? दुनिया हमें कुछ बड़े में खतौनी करती है या नहीं? मर जायेगा अब, सुन न। आहाहा! दुनिया में बाहर तो

प्रसिद्ध हुए। बाहर प्रसिद्ध हुआ वह तो दुनिया में।

**मुमुक्षु :** पड़ा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। पड़ा कूदकर। आहाहा! यहाँ तेरा नाथ अन्दर पूर्णानन्द प्रभु, वह तेरी पूँजी और वह तेरी मूडी है। ऐसे सत्यार्थ को लक्ष्य में और दृष्टि में ले न। आहाहा! कि जिससे ऐसे शरीर धारण न करना पड़े। अब इस शरीर की अस्थिरता बतलाते हैं।

**विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेणं।**
**आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ।।२५।।**
**हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं।**
**रसविज्जजोयधारण अणयपसंगेहिं विविहेहिं।।२६।।**
**इय तिरियमणुयजम्मे सुइरं उववज्झिऊण बहुवारं।**
**अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तो सि तं मित्त।।२७।।**

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य मुनि को मित्ररूप से बुलाते हैं। द्रव्यलिंगी साधु। हे मित्र! आहाहा! हमारी जाति के नग्नपने में तो तू आया परन्तु हमारा अन्दर स्वरूप जो निर्विकल्प नग्नदशा है, उसमें तू नहीं आया। आहाहा! हे मित्र! है न? यह जहर खाने से शरीर का नाश हुआ। आयुष्य का नाश हुआ, कहते हैं। जहर-जहर। वेदना की पीड़ा के निमित्त थे। ऐसी वेदना... ऐसी वेदना... कि देह छूट जाये, आयुष्य समाप्त हो जाये।

**मुमुक्षु :** ऐसा पहले कभी सुना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सुना अनन्त बार परन्तु अन्दर मेरा करके सुना नहीं। एक वेशरूप से सुनना चाहिए अपने। आहाहा!

**रक्त अर्थात् रुधिर के क्षय से, भय से,...** रुधिर का क्षय हो जाये। यह रक्त। देह छूट जाये। रक्त सूख जाये। यह क्या कहलाता है तुम्हारे? शरीर पीला पड़ जाये? पीलिया-पीलिया रोग। उसे पानी नहीं पीने दे। नहीं? ऐसा रोग होता है। ध्रांगध्रा में एक जवान लड़का। गोपाणी का दामाद। (संवत्) १९७६ की बात है। ५४ वर्ष हुए।

**मुमुक्षु :** जलन्धर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जलन्धर नहीं। शरीर का पानी... पूरा शरीर पीला। गोपाणी के दामाद थे। हरगोविन्द गोपाणी, नहीं वह? हरगोविन्द के पिता उजमशी। ... यह तो १९७६ की बात है। एकदम जवान, जवान लड़का था। ध्रांगध्रा में। पीला हो गया और पानी के लिये चिल्लाहट करे। पानी दे नहीं। जंगल (दस्त) का पानी उसे न दे। उसे ... होवे ऐसा। हम वहाँ थे। मर गया। १९७६ की बात है, ७६। जवान लड़का था। खून का पानी हो गया। और तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा... ध्रांगध्रा... ध्रांगध्रा, कोई ध्रांगध्रावाले नहीं? दरवाजा है, उस ओर बाहर और... आहाहा! पूरा सब परिवार आया था। काणे आये थे तब हम वहाँ थे। आहाहा! विशाश्रीमाली। यह रक्त क्षय हो जाये। ... आवे एकदम। देह छूट जाये।

**शस्त्र के घात से,...** तलवार। **संक्लेश परिणाम से,...** देह छूट जाये। ऐसे परिणाम ... नाश हो जाये। **आहार...** रोकने से नाश हो जाये। **श्वास के निरोध से इन कारणों से आयु का क्षय होता है।** लो! आयु का क्षय का अर्थ? कि उस समय वह... होना है। ऐसा नहीं कि यह हुआ, इसलिए हुआ। आहाहा! **हिम अर्थात् शीत पाले से,...** बर्फ गिरे बर्फ? उसमें आकर देह छूट जाये। बर्फ में। आहाहा! शरीर पिघले पूरा सब। **अग्नि से,...** जलकर मरे अग्नि में। ओहोहो! लींबडी में नहीं हुआ था? बड़ी आग लगी थी। गाँठे बड़ी गाँठें रुई की। उस दरवाजे में जाया जाये नहीं। फिर बेचारे भागे। चारों ओर अग्नि सुलगी। कितने लोग मर गये, एकसाथ अर्थी निकाली थी। ३८-३९। एक मनुष्य बेचारा जवान निकलने गया। यह गाँठ है न, उसके ऊपर पैर रखकर बाहर निकलूँ। वहाँ गाँठ में अन्दर अग्नि थी। जहाँ पैर रखा वहाँ अन्दर गिर गया। गाँठ, बड़ी गाँठ। धोकड़ा समझ में आता है न? रुई के सुलगे थे। लींबडी की बात है। जिन में। खबर है? जेठाभाई! ऐसे बेचारा बाहर निकलने जाता है, वहाँ गाँठ के ऊपर, रुई अन्दर सुलगती होगी। ऊपर पैर रखे तो गिर गया अन्दर। वहाँ जल गया। आहाहा! आयुष्य की पूर्णता इस प्रकार से भी तेरी हुई, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**जल से,...** पानी में बहा। पानी में गिरते हैं न? हिरण, कीड़े हो, पानी की बरसात बहुत खिंचे और मर जाये। इस प्रकार से भी तेरा आयुष्य अनन्त बार पूरा हुआ। **पर्वत पर चढ़कर पड़ने से, बड़े वृक्ष पर चढ़कर गिरने से,...** बड़े-बड़े वृक्ष पर

चढ़कर गिरा। **शरीर का भंग होने से,...** शरीर के टुकड़े हुए। **पारा आदि की विद्या उसके संयोग से धारण करके भक्षण करे,...** ऐसा पारा आदि मरने के लिये पीया। पारा आता है न, पारा? पीवे तो मर जाये। आहाहा! यह चैतन्य रसायन कर अब। ऐसे पारा करके मर गया अनन्त बार। आहाहा!

**इससे और अन्याय कार्य, चोरी, व्यभिचार आदि के निमित्त से इस प्रकार अनेकप्रकार के कारणों का आयु का व्युच्छेद (नाश)...** हुआ, लो! अन्याय के कारण जलकर मर जाये, चोरी करके मर जाये, व्यभिचार करके मार डाले। आहाहा! वह ऐसा कुमरण तुझे हुआ। **इसलिए कहते हैं कि हे मित्र! इस प्रकार तिर्यंच, मनुष्य जन्म में...** इसकी बात है न? **बहुत काल बहुत बार उत्पन्न होकर अपमृत्यु अर्थात् कुमरण सम्बन्धी तीव्र महादुःख को प्राप्त हुआ।** आहाहा! २५-२६-२७। ऐसे मरण अनन्त बार तेरे हुए। उसमें कितने ही कहते हैं कि देखो! इसमें कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि आयुष्य का इस कारण से नाश होता है। पाठ है सही न वह। **'खिज्जए आऊ'** आयुष्य वहाँ पूर्ण होता है, ऐसा कहते हैं। उससे आयुष्य छूट जाये, नहीं तो नहीं छूटता और रहता। उसकी बात है ही नहीं। ऐसे-ऐसे मरण में तेरा आयुष्य पूर्ण हुआ, प्रभु अब तू चेत। यह करने के लिये यह बात है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष कृष्ण १०, गुरुवार, दिनांक-१७-०१-१९७४**
**गाथा - २५ से ३१, प्रवचन-९१**

२५ हुई। २७ का भावार्थ है।

**भावार्थ – इस लोक में प्राणी की आयु (जहाँ सोपक्रम आयु बँधी है, उसी नियम के अनुसार)**... यह अपने यहाँ से लिया। **तिर्यंच–मनुष्य पर्याय में अनेक कारणों से छिदती है,..** इसके अर्थ में डाला है, देखो! कितने ही कहते हैं कि केवलज्ञानी ... अकाल मरण है। ... अर्थात् आयुष्य है, वह इस प्रकार से बँधा हुआ था। इस प्रकार से उस काल में ही छूटता है। इससे उसे अकाल कहा जाता है। बाकी उसका समय है, वह बदलता है, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! यहाँ की टीका (आलोचना) की है।

**मनुष्य पर्याय में अनेक कारणों से छिदती है,...** छिदे अर्थात् क्षय होती है। **इससे कुमरण होता है। इससे मरते समय तीव्र दुःख होता है तथा खोटे परिणामों से मरण कर फिर दुर्गति ही में पड़ता है, इस प्रकार यह जीव संसार में महादुःख पाता है। इसलिए आचार्य दयालु होकर उन दुःखों को बारबार दिखाते हैं और संसार से मुक्त होने का उपदेश करते हैं,...** भाई! संसार से छूट, संसार में दुःख ही है। कुछ थोड़ी सी सुविधा देखकर माने कि हम सुखी हैं, वह दुःख के अंगारों में सुलग रहा है। भगवान आत्मा का शान्तरस, वीतरागरस, आनन्दरस के वेदन बिना अर्थात् कि सम्यग्दर्शन बिना इसने ऐसे अनन्त जन्म-मरण किये। आचार्य बारम्बार ... कहकर उपदेश करते हैं। 'इस प्रकार जानना चाहिए।'

★ ★ ★

**गाथा - २८**

**आगे निगोद के दुःख को कहते हैं –** निगोद के दुःख कहते हैं।

**छत्तीस तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि।**
**अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तो सि निगोयवासम्मि।।२८।।**

**अर्थ – हे आत्मन् ! तू निगोद के वास में एक अन्तर्मुहूर्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार मरण को प्राप्त हुआ।**

**भावार्थ – निगोद में एक श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण आयु पाता है।** एक श्वास के अठारहवें भाग का आयुष्य। आहाहा! एक श्वास में तो अठारह भव करे। भूल गया सब। अपना आनन्द भूलकर, स्वयं आनन्दस्वरूप परमानन्द की मूर्ति प्रभु है, उसे भूलकर मिथ्यात्वभाव का सेवन किया, उसके फल में एक श्वास में अठारह-अठारह भव करता है। आहाहा! यहाँ थोड़ा आयुष्य लम्बा मिले, पच्चीस-पचास-सौ वर्ष, वहाँ ऐसा हो जाये... ओहोहो!

**वहाँ एक मुहूर्त्त के सैंतीससौ तिहत्तर श्वासोच्छ्वास गिनते हैं।** ३६८५ श्वासोच्छ्वास और **एक श्वास के तीसरे भाग के छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार निगोद में जन्म मरण होता है।** भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने इसके परिभ्रमण के दुःख देखे हैं। यह आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना अर्थात् कि आत्मा की जो सम्पत्ति, ऋद्धि पूर्ण आनन्द, उसकी दृष्टि नहीं, उसकी ऋद्धि नहीं, उसका पोषाण नहीं और राग वह मैं, पुण्य वह मैं। आहाहा! पुण्य के फल बाहर आवे, वह मैं, ऐसे मिथ्यात्वभाव में यह कुचला गया। इसके दुःख वहाँ इसे नहीं लगे। परन्तु है तो दुःख।

**इसका दुःख यह प्राणी सम्यग्दर्शनभाव पाये बिना...** लो! ओहोहो! चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप की सन्मुख की दृष्टि बिना, उससे विमुख के भाव को सेवन कर ऐसे जन्म-मरण में दुःखी हुआ, प्रभु! आहाहा! आचार्य करुणा से जगत को सम्बोधन करते हैं। भाई! तेरे प्रसन्नता का स्थान तो अन्तर आनन्द है। तेरी प्रसन्नता, हर्ष और हर्ष के स्थान तो प्रभु स्वयं है। अरे! तुझे बाहर में किसका हर्ष और प्रसन्नता आती है। आहाहा! मिथ्यात्वभाव के कारण स्वस्वरूप में वास की दृष्टि छोड़कर पर के वास का भाव किया।

**सम्यग्दर्शनभाव पाये बिना...** पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान निवासस्थान अपना है, ऐसी दृष्टि के अभाव में **मिथ्यात्व के उदय के वशीभूत होकर...** विपरीत मान्यता। राग, वह मैं; शरीर, वह मैं; वाणी, वह मैं। बाहर की अनेक चीज़ें, वे मेरी और अल्पज्ञपना, उतना मैं—ऐसे मिथ्यात्व के वश होकर.... आहाहा! ऐसे दुःख सहन किये। **अन्तर्मुहूर्त्त**

**में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्म-मरण कहा, वह अठ्यासी श्वास कम मुहूर्त इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में जानना चाहिए।** लो! एक अन्तर्मुहूर्त में इतने भव। आहाहा! देखो न! यहाँ लड़का खो जाये तो हाथ नहीं आता। और यह दूसरा लड़का खो गया। अनूपचन्द का। दूसरा लड़का इंजीनियर है। दोनों को उठा ले गये कोई। ...

**मुमुक्षु :** दूसरा एक लड़का...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... ऐसे अनन्त बार... आहाहा! जीते जी गाड़ दिये, जीवित निकाले। आत्मा की जो दृष्टि चाहिए, उसके अभाव में, उसे दृष्टि करने का अवसर भी नहीं मिलता। आहाहा! २५-२५ वर्ष के जवान मनुष्य २२-२२ दिन से हाथ नहीं आते। लोगों... को बहुत रोते। क्या हो? यह तो अनन्त बार... आहाहा!

'धन्धुका' में नहीं हुआ था एक बार? मुसलमान ने एक गाय को पकड़कर शृंगार कराकर गाँव में घुमाया। पूरे गाँव में। गाय को घुमाकर लड़के ऐसे ले गये उसकी मस्जिद में। फिर उसे बाँधा और गाय के बारीक-बारीक टुकड़े किये। यह धन्धुका में हुआ। आहाहा! हिन्दुओं को दुःख कराने के लिये। यह तुम्हारी गाय, देखो! गाँव में घुमाकर फिर काट दी। टुकड़े बारीक... बारीक... बारीक और अपनी जाति में बाँट दिये। अरे! यह क्या करता है तू? आहाहा! ... नरक में जाने की तैयारी, भाई! तुझे कठोर दुःख पड़ेगा और उत्साह-उत्साह से ऐसे भाव करता है, भाई! तुझे कठोर दुःख पड़ेगा। आहाहा! परन्तु कौन सुने? वर्तमान में कुछ पाँच इन्द्रिय और कुछ... आयुष्य और निरोगता और परिवार और उसमें यह बात करे। ...बापू! ऐसे दुःख तूने अनन्त बार सहन किये, भाई! अभी भी उस ओर के झुकाववाले दुःख भाव से तू दुःखी है। परन्तु प्रतिकूल संयोग आवे, तब वह दुःखी है, ऐसा यह मानता है। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु का स्वरूप, उससे विरुद्ध भाव, वही प्रतिकूल है, वही दुःख है और वही आकुलता है। आहाहा! बीस वर्ष का लड़का मर गया हो और रात्रि के आठ बज गये हों, घर में मुर्दा हो, सवेरे निकालना हो। नींद आती है इसे? आहाहा! यह तृषा, पानी पीने के भाव भूल जाये, सब भूल जाये। आहाहा! आठ-नौ बजे मर जाये तो उस समय तो निकाला नहीं जाता। सवेरे तक जगे उसके माँ और बाप झूरे। भाई! किसके लिये यह? क्या है यह? तेरी दृष्टि में प्रभु! तुझे तेरा

तत्त्व नहीं आया। यह तत्त्व तो इस रीति से संयोग आवे और वियोग से जाये, ऐसा तो अनन्त बार हुआ है। असंयोगी चीज़ ऐसा आत्मा, उसे राग का भी संयोग सम्बन्ध नहीं है। यह पर के सम्बन्ध की तो बात भी क्या करना? चैतन्यमूर्ति को राग के साथ सम्बन्ध, सं-बन्ध। संसर्गरूप से वह वस्तु नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान को ऐसे मिथ्या भ्रम सेवन कर-करके ऐसे दुःख किये। अवसर आवे तब कहे, नहीं हम ऐसे हैं, हम ऐसे हैं।

**गाथा में आये हुए 'निगोद वासम्मि' शब्द की संस्कृत छाया में 'निगोत वासे' है। निगोद शब्द एकेन्द्रिय वनस्पति कायिक जीवों के साधारण भेद में रूढ़ है,...** यह निगोद तो, **जबकि निगोत शब्द पाँचों इन्द्रियों के सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न होनेवाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के लिए प्रयुक्त होता है।** दूसरे प्रकार से भी वहाँ निगोद कहा जाता है। **अतः यहाँ जो ६६३३६ बार मरण की संख्या है, वह पाँचों इन्द्रियों को सम्मिलित समझना चाहिए।** पाँचों इन्द्रिय की सब होकर इतनी। आहाहा! जिसे भव प्रिय है, इसलिए बारम्बार भव किया ही करता है। महिलाओं की साड़ियाँ होती हैं न पच्चीस प्रकार की, तो सवेरे से शाम तक उन्हें बदला ही करती है। दिशा को जाये तब दूसरी, महिलाओं के साथ बैठने और बात करने के समय दूसरी, रास्ते में चलते समय दूसरी। बदला-बदली। क्योंकि उनके प्रति प्रेम हैं। ऐसी जो यह विविध प्रकार भिन्न-भिन्न साड़ियाँ होती हैं न? साडला समझते हैं? साड़ी। आहाहा! बदला-बदल करे। आदमी क्या? दरबार थे न भावनगर? उनके मर जाने के बाद तीन सौ जोड़ी जूते निकले। तीन सौ जोड़ी जूते।

**मुमुक्षु :** धोती जोड़ा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जूते। राजा धोती नहीं पहनता। बनिया हो, वह ढीलाढब जैसी धोतियाँ पहनता है। तीन सौ जूते निकले। रात्रि को घूमने जाए तब दूसरे, दिन में दूसरे, शाम को दूसरे। इतने-इतने। बहुत प्रेम हो, वह वस्तु भिन्न-भिन्न में जाता है। इसी प्रकार जिसे भव का प्रेम है, वह भव बदला ही करता है। आहाहा! तीव्र प्रेम हैं।

यह भगवान आत्मा का प्रेम भूल गया। 'प्रति...' वहाँ रात्रि में आया था न? २०६। प्रभु! तू आत्मा में प्रेम कर न, नाथ! आहाहा! तेरी प्रेमी चीज़ तो यह है। उसमें

रति कर, उसमें सन्तोष पा और उसमें तृप्त रह, भाई! यह तेरी चीज़ है। आहाहा! उसे भूलकर भगवान को भूला। आहाहा! यह राग हुआ शुभ और पुण्य (हो), वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। पूर्व के कोई पुण्य के बाहर गंज दिखायी दे। एकदम करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ की आमदनी दिखायी दे, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। क्या है, भगवान! तुझे? आहाहा! तेरा निधान खो गया और बाहर के निधान में प्रसन्न! ऐसे भव के प्रेमी भव बदला ही करते हैं, कहते हैं।

जिसे आत्मा का प्रेम लगा, उसे निर्मल परिणति बदला करती है। आहाहा! क्योंकि यह दरकार नहीं की। अवसर आया तब कुछ न कुछ... कुछ न कुछ... कुछ न कुछ... ऐसी शल्य रखी। अन्दर जाने के लिये दरकार ही नहीं की। आहाहा! यह पर्दे में भगवान पड़ा है अन्दर। वह ६६३३६ बार मरण किये।

★ ★ ★

## गाथा - २९

**इस ही अन्तर्मुहूर्त के जन्म-मरण में क्षुद्रभव का विशेष कहते हैं -** अब दूसरी इन्द्रिय। दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय।

**वियलिंदए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह।**
**पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स।।२९।।**

**अर्थ - इस अन्तर्मुहूर्त के भवों में दो इन्द्रिय के क्षुद्रभव अस्सी,...** यह ईयल आदि के अन्तर्मुहूर्त में ८० भव। आहाहा! वह मरे, उसकी काण कौन मांडे? आहाहा! इसने मांडी अपनी काण दु:ख में। कहते हैं कि ८० भव तो दो इन्द्रिय के करे, एक अन्तर्मुहूर्त में। **तेइन्द्रिय के साठ,...** भव करे। चींटी, मकोड़ा यह तीन इन्द्रिय है। अन्तर्मुहूर्त में ६० भव करते हैं। आहाहा! **चौइन्द्रिय के चालीस और पंचेन्द्रिय के चौबीस,...** पंचेन्द्रिय के एक अन्तर्मुहूर्त में चौबीस भव करे। **इस प्रकार हे आत्मन्! तू क्षुद्रभव जान।** आहाहा! **'जाणेह'** है न? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? **'जाणेह'** दूसरे पद का अन्तिम शब्द है। उसे भाई! तू जान। तूने ऐसे-ऐसे भव किये। भव के

अभाव का स्वभाव क्या है, उसे तूने नहीं जाना। आहाहा! 'तो भी अरे! भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला।' बहुत अपूर्व बात है अन्दर में, बापू! यह अपूर्व स्वभाव सन्मुख देखा नहीं और पूर्वापर जो अनन्त बार वर्तन... इस भाव को तूने सेवन किया। सेवनयोग्य चीज़ थी, उसे सेवन नहीं किया। आहाहा!

**भावार्थ – क्षुद्रभव अन्य शास्त्रों में इस प्रकार गिने हैं। पृथ्वी,...** काय। एकेन्द्रिय पृथ्वी। **अप्,...** अर्थात् पानी। **तेज (अग्नि), वायु और साधारण निगोद के सूक्ष्म बादर से दस और सप्रतिष्ठित वनस्पति एक, इस प्रकार ग्यारह स्थानों के भव तो एक-एक के छह हजार बार, उसके छयासठ हजार एक सौ बत्तीस हुए और इस गाथा में कहे वे भव दो इन्द्रिय आदि के दो सौ चार, ऐसे ६६३३६ एक अन्तर्मुहूर्त में क्षुद्रभव कहे हैं।** इतने भव किये। भगवान केवलज्ञान के अतिरिक्त यह कौन जाने? आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ३०

**आगे कहते हैं कि हे आत्मन्! तूने इस दीर्घसंसार में...** दीर्घ संसार। आहाहा! चौरासी की अटवी अनन्त-अनन्त भव का संसार... **पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्राप्ति बिना भ्रमण किया, इसलिए अब रत्नत्रय धारण कर –** लो, आहाहा!

**रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओ सि दीहसंसारे।**
**इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तय समायरह।।३०।।**

**अर्थ – हे जीव ! तूने सम्यग्दर्शन...** आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मरमणता, इस **रत्नत्रय को नहीं पाया,...** आहाहा! तुझे भगवान पूर्णानन्द का विश्वास नहीं आया, भाई! अनन्त गुण का निधान, उसका तूने ज्ञान नहीं किया। पर की सब लगायी और अपना घर पड़ा रहा। पूर्णानन्द स्वरूप भगवान की तुझे रमणता नहीं हुई। दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं तो फिर रमणता कहाँ से हो? करने योग्य हो तो यह था, वह तो तूने नहीं किया। आहाहा!

**इसलिए इस दीर्घकाल से-अनादि संसार में पहिले कहे अनुसार भ्रमण**

**किया,...** भव, यह कहे न सब भव? **इस प्रकार जानकर अब तू उस रत्नत्रय का आचरण कर,...** लो, यह बात की। आहाहा! निश्चयरत्नत्रय की बात है, हों! व्यवहाररत्नत्रय तो ऐसे भाव भी अनन्त बार किये। आहाहा! यहाँ अर्थ में भी ऐसा लिखा है। परन्तु इसमें गड़बड़ की। व्यवहाररत्नत्रय के भाव, वे तो शुभभाव हैं। वह तो अनन्त बार किया है। जो कहनेमात्र रत्नत्रय, ऐसे तो व्यवहार अनन्त बार किये। नियमसार में आता है। आहाहा! यह तो आत्मा अखण्ड पूर्ण आनन्द, उसकी रुचि का परिणमन जो निश्चय सम्यग्दर्शन, वह नहीं किया - यह कहते हैं। वह नहीं भाया, उसे भा। आहाहा!

**उस रत्नत्रय का आचरण कर,...** यह भी आचरण है। ठीक! **'रयणत्तय समायरह'** है न? **'समायरह'** आहाहा! परमात्मा अनन्त गुण का नाथ प्रभु स्वयं अनन्त शान्ति से विराजमान बादशाह है। यह उसका सम्यग्दर्शन का आचरण कर, ऐसा कहते हैं। यह आचरण नहीं? बाहर के आचरण, वे तो जड़ के हैं। राग की क्रिया के आचरण, वे तो विभाव के हैं। आहाहा! जगत को बहुत कठिन। बाह्य नग्नपना अनन्त बार लिया और पंच महाव्रत के भाव भी अनन्त बार लिये। वह कोई नयी चीज़ नहीं।

पूर्ण अनाकुल शान्तरस का कन्द प्रभु, दल है, आनन्द का दल है, वह चैतन्य का अकेला कन्द है। उसका सम्यग्दर्शन, उसकी अन्तर की रुचि और दृष्टि का होना, वह आचरण कर। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत को करुणा करके कहते हैं, भाई! तू यह कर न! आहाहा! यह वन में चल निकले राजकुमार। जिनके आहार के समय सीधी गर्म रोटी तवे में से सीधी उनकी थाली में पड़ती और उन्हें खाने-पीने की सामग्री का तो पार न हो। चक्रवर्ती लो न, चक्रवर्ती। आहाहा! जिसके बत्तीस ग्रास का एक ग्रास छियानवें करोड़ (सैनिक) पचा नहीं सकते। आहाहा! ऐसी भस्मों से बनाया हुआ अनाज होता है। हीरा, माणेक, मोती की भस्में। आहाहा! घी में हीरा से तले और ऐसी औषधि उसमें डाले कि हीरा उसमें गल जाये। उस घी में तले हुए गेहूँ, उसमें आटे से बनायी हुई रोटी। आहाहा! और ताजी-ताजी गर्म जो (खाते थे), वे चक्रवर्ती चल निकले। आहाहा! यह स्व का आचरण करने चल निकले। आहाहा!

**'रयणत्तय समायरह'** आहाहा! **'जिणवरेहिं भणियं'** त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव, सौ इन्द्रों के पूजनिकता यह पुकार है। शरीर की जरा अनुकूलता देखे, वहाँ पूरा अरखाई

गया, मर गया। आहाहा! मानो क्या करूँ इस शरीर का। आहाहा! श्मशान की राख होकर उड़ जायेगा, भाई! चैतन्य नित्यानन्द प्रभु है, उसका आचरण कर न। आहाहा! यह... यह घड़ी-पल चले जाते हैं। ऐसे पल और घड़ियाँ फिर से मिलना मुश्किल है। 'समय वर्ते सावधान' नहीं कहते तुम्हारे? विवाह करे, तब विवाह के समय बोलते हैं। है न तुम्हारे वहाँ लिखा होगा न? समय हो गया। लाओ कन्या को। समय वर्ते सावधान। धूल में भी नहीं कुछ। ... आहाहा! ... घुसने जाये तो नीचे सर्प डसा और वहीं का वहीं मर जाये। यह हुआ है न। ऐसा अनन्त बार होता है। अनन्त बार हुआ है। आहाहा! उत्साह हर्ष में नीचे पैर और हाथ में ... नीचे बड़ा नाग आया तो एकदम डसा। ऐसे घड़ीक में... क्या हुआ? उड़ गया शरीर। आहाहा! जिनेश्वरदेव कहते हैं कि तूने ऐसे संसार में ऐसे भव किये, प्रभु! आहाहा! अब तो यह रत्नत्रय का आचरण कर, ऐसा कहते हैं। ऐसा जिनेश्वरदेव ने कहा है। आहाहा!

**भावार्थ – निश्चयरत्नत्रय पाये बिना...** देखा! स्पष्टीकरण किया है। **यह जीव मिथ्यात्व के उदय से संसार में भ्रमण करता है, इसलिए रत्नत्रय के आचरण का उपदेश है।** यह रत्नत्रय यह निश्चय, हों! यहाँ व्यवहार की बात नहीं है। आहाहा! **'जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तय समायरह' इसलिए रत्नत्रय के आचरण का उपदेश है।** देखा! ... आहाहा! पूर्ण अनाकुल शान्तरस का कन्द-दल प्रभु चैतन्य। आहाहा! उसके सन्मुख की दृष्टि, उसके सन्मुख का ज्ञान, उसकी सन्मुख में रमणता-ऐसे **'रयणत्तय'** को आचर न! उसे आचरण में ले न, ऐसा कहते हैं। दूसरे आचरण तो अनन्त बार किये हैं।

छोटी उम्र में 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या।' जवान शरीर लट्ठ जैसा। स्त्री जरा सुन्दर और रूपवान हो। हो गया। मर गया उसमें। 'वृद्धपन देखकर रोया।' वृद्धापन आवे तब हाय... हाय... बैठा नहीं जाता। सहारे बिना बैठा नहीं जाता, शरीर में ऐसा होता है। पैर काँपते हैं, पैर में दुःख होता है, सुन्न चढ़ जाती है, चला नहीं जाता। चले वहाँ अन्दर चिल्लाहट मचाता है। ऐसे में अनादि से लगा है। परन्तु प्रभु! तेरी चीज़ निधान है, वहाँ तू आया नहीं। आहाहा! तेरी सम्पदा की सम्हाल करने तो आ अब। **इसलिए रत्नत्रय के आचरण का उपदेश है।** लो!

★ ★ ★

## गाथा - ३१

**आगे शिष्य पूछता है कि वह रत्नत्रय कैसा है? उसका समाधान करते हैं कि रत्नत्रय इस प्रकार है –** यहाँ तो रत्नत्रय आचरण किया न? परन्तु रत्नत्रय क्या चीज़ है। आहाहा!

**अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।**
**जाणइ तं सण्णाणं चरदिहं चारित्त मग्गो त्ति।।३१।।**

**अर्थ – जो आत्मा आत्मा में रत होकर...** भगवान आत्मा जो अनादि से राग में रत है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। राग में रंगे हुए जीव को देखकर उसमें लीन हो वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! **आत्मा आत्मा में रत होकर...** आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप है। ऐसे आत्मा में, निर्मल स्वभाव में रत हो। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की व्याख्या की। कोई और ऐसा कहता है कि इसमें रत्नत्रय आचरण व्यवहार कहा होगा तो? वह व्यवहार तो अनन्त बार किया, उसकी यह बात है नहीं। आहाहा! **'अप्पा अप्पम्मि रओ' यथार्थ (स्व) रूप का अनुभव कर...** भगवान पूर्ण गुण का नाथ, उसका प्रेम करके, उसमें लीन हो। तेरी प्रिय चीज़ तो वह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कल आया था, नहीं? विद्यमान। भाव में विद्यमान अवस्थारूप। आहाहा! प्रभु! तेरे गुण तुझे प्रिय लगे। उस प्रिय के वियोग और विरह अब तुझे नहीं रहेगा। आहाहा! उसकी विद्यमान अवस्था आनन्द की कायम हुआ ही करेगी तुझे। आहाहा! भाव नाम का गुण है न? उस गुण का धारक गुणी प्रभु है न? ऐसे आत्मा के प्रति प्रेम और प्रियता यदि तूने की... आहाहा! भगवान! तुझे उस प्रियता का विरह नहीं रहेगा। तूने अनादि काल का उसका विरह सेवन किया। उसकी प्रियता को प्रियतारूप से जाना नहीं।

भावशक्ति। भावशक्ति आयी थी न? उसके कारण निर्मल अवस्था विद्यमान-विद्यमान होती ही है। आहाहा! जिसने ऐसा आत्मा भावसम्पन्न शक्तिवाला अनन्त, उसे जिसने लीन करके सेवन किया... आहाहा! उसे उसकी आनन्द की दशा की अवस्था कभी मिटे, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसकी आनन्द और शान्ति की अवस्था भाव की,

विद्यमान पर्याय में हमेशा हुआ करेगी। आहाहा! यह जिनेश्वरदेव ने कहा हुआ आत्मा ऐसा है। ऐसा आत्मा अन्यत्र कहीं हुआ नहीं, जाना नहीं। आहाहा!

जिसकी प्रियता की, उस प्रिय की निर्मल दशा, उसका विरह और दु:ख तुझे अब नहीं रहेगा। आहाहा! उसकी सेवा कर न, कहते हैं। एक राजा की सेवा करे तो कुछ दे। ... प्रसन्न हो। यह तो भगवान तीन लोक का नाथ, इसकी सेवा करने से तुझे क्या नहीं मिलेगा? आहाहा! बात ऐसी है। यह अन्तर की बातें बाहर से कुछ दिखायी नहीं देती, मिलती नहीं। अब उसे ऐसे निरालम्ब तत्त्व की बातें (करना)। आहाहा! भगवान! परन्तु यह ही करने से छुटकारा है, हों! ऐई! ...भाई! पृथक् वस्तु को दृष्टि में, अनुभव में लिये बिना तेरा छुटकारा हो, ऐसा नहीं है, भाई! देखो! आहाहा!

**यथार्थरूप का अनुभव कर...** यह पूर्ण गुण का नाथ, इसका अनुभव कर, इसे अनुसरकर अनुभव कर। राग और पुण्य के परिणाम को अनुसरकर ऐसे तो अनन्त बार वेदन किये। वह सब दु:ख के समुद्र में डुबकी मारी। अब यह आनन्द का नाथ सरोवर, उसमें तो डुबकी मार एकबार। आहाहा! भाई! तुझे उसमें आनन्द आयेगा। उसमें आता है न? फिर दूसरे को नहीं पूछना पड़ेगा। निर्जरा (अधिकार)। यह २०६ में है। (गाथा) २०६ में। तृप्त हो... तृप्त हो। आहाहा! यह तृप्ति वहाँ होगी। बाहर के विषय, भोग और धूल में कहीं तृप्ति नहीं होगी। आहाहा! विषय सेवन कर लें फिर तृप्ति होगी। बापू! वहाँ कहाँ तृप्ति थी। आहाहा! तृप्ति हुआ नाथ तो प्रभु तेरा स्वरूप है। उसका अनुभव कर।

**तद्रूप होकर श्रद्धान करे...** भाषा देखी! भगवान आत्मा जैसा है, वैसी अन्तर्दृष्टि करके, तद्रूप होकर श्रद्धा कर। आहाहा! समझ में आया? इस मार्ग को सुननेवाले ही थोड़े होते हैं, हों! आहाहा! 'विरला जाणे तत्त्व को विरला सुने कोई...' नहीं आता? स्वामी कार्तिक। 'विरला श्रद्धे कोई, विरला धारे कोई।' आहाहा! बाहर में उसका कोई दिखाव नहीं होता, बाहर का पुण्य न हो, इसलिए लोग कहे, यह क्या? यहाँ तो वीतराग परमेश्वर की बातें, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! ... इनकार करे? **'जिणवरेहिं भणिय'** जिनवरदेव कहते हैं, भाई! अब रत्नत्रय को आचर न।!आहाहा!

**वह प्रगट सम्यग्दृष्टि होता है,...** आहाहा! चैतन्य परमात्मा स्वयं भगवान

पूर्णानन्दस्वरूप, पूर्ण ज्ञानस्वरूप, पूर्ण शान्तस्वरूप, पूर्ण स्वच्छस्वरूप, पूर्ण प्रभुत्वस्वरूप में तद्रूप होने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा। यह करनेयोग्य है, इसकी हाँ तो कर। डॉक्टर गये ? आहाहा ! लोगों को ऐसा लगे... ऐसा करो, यह व्रत करो, तप करो। यह करो। यह तो बापू ! राग है। अनन्त बार किया। जन्म के, मरण के चक्र मिटे, वह तो यह एक चीज़ आत्मा है। आहाहा ! देखो ! है न ?

**'अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु'** ऐसा है न पाठ ? **'अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।'** जीव प्रगट है। आहाहा ! यह सब दुःख का वर्णन किया। अभी भी कितना ही करेंगे। परन्तु उनका कहने का आशय इसमें तो (यह है कि) इस आत्मा में एकाग्र हो। इसके लिये यह सब कहते हैं। समझ में आया ? इसका सार क्या ? आहाहा ! जगत को भूल जा और भगवान में मिल जा। आहाहा ! रागादि, भगवान यह सब तो जगत है। विकल्प पुण्य, दया, दान, व्रतादि वह सब जगत है। जगत को भूल जा। आहाहा ! और भगवान में मिल जा। चाहे जिस शरीर में हो, वह उसके कारण से हो। बाहर के संयोग प्रतिकूल हो, अनुकूल हो। दुनिया प्रशंसा करे, निन्दा करे, उसके साथ तुझे क्या काम है। पर के सम्बन्ध बिना की चीज़ और स्वभाव के सम्बन्धवाली चीज़... आहाहा ! उसमें मिल जा। ऐसा कहा न ? एकाग्र-तद्रूप हो। आहाहा ! तद्रूप हो। यह रागरूप है, वह तद्रूप हो। वह तेरा स्वरूप है। आहाहा !

यह वे रोजा के दिन होते हैं न ? रोजा के नहीं ? लोटियावोरा बहुत रोती हैं उनकी महिलायें। राणपुर में उपाश्रय साथ में है न ? मैंने कहा कि रोती क्यों हैं ? लोटिया की सामने है। सामने है न ? वे उसके .... अन्दर वांचे तो रोवे। वहाँ तो सामने का घर... उस ओर बैठे थे। ... दरवाजा बन्द कर दिया। विरह में रोवे। रोजा के दिन।

यहाँ कहते हैं कि प्रभु ! तूने दुःख के आँसू नहीं डाले। अरे रे ! मैंने ऐसे दुःख सहन किये। अब मुझे नहीं चाहिए। मेरा भगवान भूलकर, मैं बाहर में भटका। बहिरात्मा-बहिरचला। यह भगवान भी दे, ऐसा नहीं और कोई गुरु भी दे, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। तेरा भगवान तेरे पास पड़ा है न, नाथ। उसकी रक्षा कर न, भाई ! आहाहा ! **'सम्माइट्ठी हवेइ'** प्रगट। आहाहा ! निश्चय सम्यग्दर्शन, हों ! वह। व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह सम्यग्दर्शन

ही कहाँ है, बापू! नहीं। दो नय का कथन है। दोनों नय सच्चे हैं। सच्चे हैं अर्थात् वे हैं, उस रूप से सच्चे। परन्तु सम्यग्दर्शन व्यवहार, वह सच्चा है? आहाहा!

देखो न! कितनी अधिक बात (की है)! **'अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो। जाणइ तं सण्णाणं' उस आत्मा को जानना सम्यग्ज्ञान है,...** भाषा देखो! जो भगवान पूर्णानन्द ज्ञानस्वरूपी वस्तु, उसका ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञानी ऐसा आत्मा, उसका ज्ञान। संयोग और राग और उसका ज्ञान नहीं। समझ में आया? **उस आत्मा को जानना... 'तं'** है न? **'जाणइ तं सण्णाणं'** भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, भाई! तुझे तेरे भरोसे तुझे दिखता नहीं। भरोसा अन्यत्र ढल गया है। आहाहा! ऐसा जो भगवान चैतन्यमूर्ति, उसका ज्ञान। ऐसा कहा न? **आत्मा को जानना... 'तं सण्णाणं'** वह ज्ञान। यह निश्चयरत्नत्रय की व्याख्या करते हैं।

**उस आत्मा में आचरण करके... 'चरदिहं चारित्त मग्गो त्ति'** उस आत्मा में अन्दर चरना। आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं, उसमें स्थिर होना, रमना, जमना। ऐसी चीज़ में जम जाना। आहाहा! **उस आत्मा में आचरण करके रागद्वेषरूप न परिणमना सम्यक्चारित्र है।** पाँच महाव्रत के भाव और बापू! वह तो राग है, भाई! वह चारित्र नहीं। परन्तु लोगों को ऐसा लगे, निश्चय और व्यवहार दोनों लाभदायक हैं। लाभदायक क्या, ज्ञान करने के लिये है। यह कहाँ लिखा है? उसमें। (समयसार) बारहवीं गाथा में आया? व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आाहा! और फिर ऐसे देखा, '...' जवाब दिया था। व्यवहार को बीच में जानने के लिये कहा है। है, ऐसा जान। ऐसा कहाँ लिखा है? आहाहा! निमित्त है और व्यवहार है, वह जानने के लिये उसका ज्ञान कराया। परन्तु तू स्व-परप्रकाशक चैतन्य है और स्व को प्रकाशे, वह तो निश्चय परन्तु व्यवहार को जाने, वह व्यवहार। उसे जाने। इसका नाम स्व-परप्रकाशक का ज्ञान और उसका नाम पर को जाने, ऐसा बतलाने के लिये बात की है। उसमें यह राग कहाँ है?

**रागद्वेषरूप न परिणमना...** न परिणमना, न होना। यहाँ तो यह बात है न? पुण्य और पाप के भावरूप, व्रत के भावरूप तो न होना, वह **सम्यक्चारित्र है। 'चारित्त मग्गो त्ति'** चारित्र मार्ग है। चारित्र मार्ग है। आहाहा! मार्ग है। आहाहा! बाहर से

समेटकर अन्दर में समा, ऐसा कहते हैं। यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय की बातें। भगवान! निश्चय अर्थात् सच्चा, सत्यस्वरूपी है। ऐसा चैतन्यघन भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, पूर्ण ज्ञानस्वरूप, पूर्ण बलस्वरूप, पूर्ण प्रभुतास्वरूप। उस प्रभुता में एकाग्र होना, वह चारित्र है। आहाहा! तब वे कहे कि परन्तु उसका कुछ साधन होगा या नहीं? अगास में मारवाड़ी रात्रि में आया। व्याख्यान सुना। हम लोग यह भक्ति करते हैं, वह सब साधन। अगास गये थे न एक बार, अगास। ... सुनने, सब बैठे हुए। एक मारवाड़ी रात्रि में आया। बात बराबर है, परन्तु उसका कोई साधन होगा या नहीं? कहो, यह दिक्कत थी। तेरा स्वरूप साधना, वही साधन है। आहाहा! प्रज्ञा द्वारा एकाग्र होना, आनन्द द्वारा एकाग्र होना, वही उसका साधन है। यह भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, वह साधन होगा। वह साधन ही कहाँ है? आता है, होता है (यह) अलग बात है। परन्तु वह कोई अन्तर में जाने की एकाग्रता के मददगार हैं, ऐसा नहीं। यह भक्तिवाले के यह सब विवाद। शिवलालभाई!

**मुमुक्षु :** साधक और बाधक...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाधक ही है। आहाहा!

भगवान स्वयं यहाँ तो कहते हैं कि तू तेरी श्रद्धा-ज्ञान और तुझमें रमणता कर। हमारे सामने देखना रहने दे, वे तो ऐसा कहते हैं। स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! भाई! तुझे तेरे सामने देखने का कहते हैं, और वह तुझे रुचता नहीं? यहाँ कुछ बाहर सामने देखे तो ठीक पड़े, यह तेरी क्या बात है? सबका दिन बदला। आहाहा! तुझे अन्तर में जाने का जब कहते हैं, तब तुझे रुचता नहीं और उसके साधनरूप से बाहर में जाता है, वे उसके साधन। बापू! तुझे ... वस्तु में वास करना, उसका लक्ष्य नहीं किया। वाद-विवाद से पार नहीं पड़ता, बापू! यह साधन कहे हैं, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। द्रव्यसंग्रह में आता है। द्रव्यसंग्रह में कहा है न? एक बार कहीं डाला था। आहाहा! वे कहे, नहीं। ऐसा है। इसका अर्थ ऐसा है, भूल है न ऐसी....

**इस प्रकार यह निश्चयरत्नत्रय है, मोक्षमार्ग है।** लो! बहुत अच्छी बात है।

**भावार्थ – आत्मा का श्रद्धान ज्ञान आचरण...** आत्मा का श्रद्धान, आत्मा का

ज्ञान, आत्मा का आचरण, यह **निश्चयरत्नत्रय है और बाह्य में इसका व्यवहार जीव-अजीवादि तत्त्वों का श्रद्धान...** ठीक! बाह्य में। **तथा जानना और परद्रव्य-परभाव का त्याग करना, इस प्रकार निश्चय-व्यवहारस्वरूप रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। वहाँ निश्चय तो प्रधान है,...** मुख्य यह है। **इसके बिना व्यवहार संसारस्वरूप ही है।** देखो! व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान, वह सब संसारस्वरूप है। **व्यवहार है, वह निश्चय का साधनस्वरूप है,...** यह देखा वापस? **यहाँ ऐसा नहीं समझना कि प्रथम व्यवहार हो और पश्चात् निश्चय हो, किन्तु भूमिकानुसार प्रारम्भ से ही निश्चय-व्यवहार साथ में होता है। निमित्त के बिना अर्थ शास्त्र में जो कहा है, उससे विरुद्ध निमित्त नहीं होता ऐसा समझना।** यह बताने के लिये कहा है। ऐसा उसे निमित्त हो, यह बताने के लिये (कहा है)। इससे दूसरा विरुद्ध निमित्त नहीं होता। इसलिए हमने व्यवहार कहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र में व्यवहार ऐसा होता है, यह क्यों कहा? कि उस समय उस प्रकार का ही व्यवहार होता है, ऐसा ही उसका निमित्त, उस प्रकार का निमित्त होता है। यह बतलाने के लिये उसे व्यवहार कहा है। आहाहा! **इसके बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं है...** वापस डाला। **और निश्चय की प्राप्ति हो जाने के बाद व्यवहार कुछ नहीं है,...** अर्थात् व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है।

**मुमुक्षु :** इसका अर्थ व्यवहार का अभाव हुआ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभाव करते हैं। ... भाषा आती है। 'व्यवहार, वह निश्चय को साधनस्वरूप' आता है न शास्त्र में? व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। यह तो वहाँ होता है, उसे उस प्रकार का साधन कहा जाता है। आरोप से कहा जाता है। वास्तविक तो वह साधन-फाधन है ही नहीं। आहाहा! लोगों को यह एकान्त लगता है, हों! व्यवहार मिथ्यात्व नहीं। व्यवहार, वह कहीं मिथ्यात्व नहीं। राग की मन्दता से ऐसा रागभाव (आवे), उसे व्यवहार कहते हैं। उसे व्यवहार से साधन कहा जाता है। वास्तव में वह साधन है नहीं। वह व्यवहार कहीं मिथ्यात्व नहीं। मिथ्यात्व नहीं। उस व्यवहार को धर्म मानना, परमार्थ धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है।

**मुमुक्षु :** मिथ्यादर्शन की बात है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिथ्यादृष्टि की यहाँ कहाँ बात है ? अभी तो निश्चयवाले का व्यवहार, उसकी बात चलती है।

**निश्चय की प्राप्ति हो जाने के बाद व्यवहार कुछ नहीं है,...** पहले होता है, उसका ज्ञान कराया। हो गया, फिर व्यवहार रहता नहीं।

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

**पौष कृष्ण ११, शुक्रवार, दिनांक-१८-०१-१९७४**
**गाथा - ३२ से ३४, प्रवचन-९२**

**गाथा - ३२**

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ३२वीं गाथा है।

**आगे इस संसार में इस जीव ने जन्म-मरण किये हैं, वे कुमरण किये, अब सुमरण का उपदेश करते हैं -**

**अण्णे कुमरणमरणं अणेयजम्मंतराइं मरिओ सि।**
**भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव! ।।३२।।**

**अर्थ - हे जीव ! इस संसार में अनेक जन्मान्तरों में...** अनेक भवों में, जन्मान्तरों में अन्य-अन्य जन्म में **अन्य कुमरण मरण जैसे होते हैं, वैसे तू मरा।** अनेक बार। **अब तू जिस मरण से जन्म-मरण का नाश हो जाय,...** आहाहा! जिसमें से आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इनसहित मृत्यु हो, वह जन्म-मरण के अन्त लाने की मृत्यु है। आहाहा! **जिस मरण से जन्म-मरण का नाश हो जाय,...** सम्यग्दर्शन मरण, सम्यग्ज्ञान मरण, सम्यक्चारित्र मरण, उससे जन्म-मरण का नाश है।

**इस प्रकार सुमरण भा अर्थात् समाधिमरण की भावना कर।** आत्मा की शान्ति। पुण्य-पाप के राग के वश होकर देह छूटे, वह तो सब कुमरण है। अपना स्वभाव जो वीतराग चैतन्यज्योत, उसका भान और प्रतीति और रमणता से देह छूटे, वह सुमरण है, वह जन्म-मरण के नाश का वह मरण है। आहाहा! ऐसी व्याख्या करेंगे। मरण के कितने प्रकार वर्णन किये हैं। जाननेयोग्य बात है। सत्रह नाम... नाम हैं। अब उनका स्वरूप।

**इनका स्वरूप इस प्रकार है - आयुकर्म का उदय समय-समय में घटता है,...** जो आयुष्य लेकर आया, वह समय-समय में घटता है। **वह समय-समय मरण**

**है,...** वह समय-समय में मृत्यु ... **आवीचि...** कल्लोल। पानी के कल्लोल जैसे उठे, वैसे समय-समय में उसके आयुष्य के परमाणु छूट जाते हैं। उसे आवीचि मरण कहा जाता है। **वर्तमान पर्याय का अभाव तद्भवमरण है।** इस भव का अभाव, इतना। वह तद्भवमरण। **जैसा मरण वर्तमान पर्याय का हो, वैसा ही अगली पर्याय का होगा, वह अवधिमरण है।** यह तो वस्तु की स्थिति बतलाते हैं कि ऐसे जिस भाव से देह छूटे, ऐसे और उस भाव में भविष्य में देह छूटे, वह अवधिमरण। **इसके दो भेद हैं – जैसा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग वर्तमान का उदय आया,...** कर्म की प्रकृति, ... रस, वर्तमान में आया, मान, माया **वैसा ही अगली का उदय आवे वह (१) सर्वावधिमरण है और एकदेश बंध-उदय हो तो (२) देशावधि मरण कहलाता है।** यह वर्णन किया है।

**वर्तमान पर्याय का स्थिति आदि जैसा उदय था, वैसा अगली का सर्वतो वा देशतो...** उसमें आया था न सर्वावधिदेश? ऐसे यह स्थितिमरण है। **देशतो बन्ध-उदय न हो, वह आद्यन्तमरण है।** यह तो एक जानने की बात है। **पाँचवाँ बालमरण है, यह पाँच प्रकार का है – १. अव्यक्तबाल, २. व्यवहारबाल, ३. ज्ञानबाल, ४. दर्शनबाल, ५. चारित्रबाल। जो धर्म, अर्थ, काम इन कामों को न जाने,...** न जाने पुण्य, न जाने लक्ष्मी, न जाने भोग। **जिसका शरीर इनके आचरण के लिए समर्थ न हो...** पुण्य, लक्ष्मी और भोग के लिये जिसका शरीर आचरण के योग्य न हो, उसे अव्यक्तबाल बालकमरण (कहते हैं)। मरते हैं न बालक बेचारे। पुण्य की खबर नहीं होती, लक्ष्मी की खबर नहीं होती। काम-भोग की खबर नहीं होती। ऐसे बालक मरे। आहाहा! उसे यहाँ अव्यक्तबाल अर्थात् भान बिना के।

**जो लोक के और शास्त्र के व्यवहार को न जाने...** लोक का व्यवहार और शास्त्र का... **तथा बालक अवस्था हो...** और बालक की अवस्था हो। **वह 'व्यवहारबाल' है। वस्तु के यथार्थ ज्ञानरहित 'ज्ञानबाल' है।** तत्त्वज्ञान का भान न हो, वह बाल, ज्ञानबाल है। **तत्त्वश्रद्धानरहित मिथ्यादृष्टि 'दर्शनबाल' है।** मिथ्यादर्शनसहित मरना, वह दर्शनबाल। आहाहा! **चारित्ररहित प्राणी 'चारित्रबाल' है।** दर्शन-ज्ञान हो परन्तु चारित्र न हो, इस अपेक्षा से भी चारित्रबाल (कहलाता है)। समकित होने पर भी। समकित की अपेक्षा से पण्डित है। परन्तु चारित्र न हो, इस

अपेक्षा से वह बाल है। आहा! ऐसे अनन्त-अनन्त आत्मज्ञान बिना, आत्म-अनुभव बिना, आत्मा के आचरण बिना ऐसे अनन्त कुमरण किये। अब तो छोड़ न, ऐसा कहते हैं। ऐसा मरण कर कि जिससे भविष्य में भव न रहे। देह तो छोड़ेगी परन्तु तू उसे—राग को छोड़। आहाहा! वीतरागमूर्ति प्रभु चैतन्य का-उसका आदर कर। उसे ज्ञान पण्डितमरण, समकित पण्डितमरण कहते हैं।

**इनका मरना सो बालमरण है।** है न? **यहाँ प्रधानरूप से दर्शनबाल का ही ग्रहण है,...** मिथ्यादृष्टि। आहाहा! जिसे आत्मा आनन्दघन के साथ... राग की एकता से देह छूटे, वह बालमरण है। चाहे तो बाह्य से संथारा किया हो। दो-दो महीने के। बाहर की... परन्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसे दृष्टि में नहीं आया, और उससे विरुद्ध राग की एकता छूटी नहीं, वे सब मरनेवाले बालमरण हैं। आहाहा!

**क्योंकि सम्यग्दृष्टि को अन्य बालपना होते हुए भी...** आत्मदर्शन-अनुभव होने पर भी, **अन्य बालपना होते हुए भी दर्शन पण्डितता के सद्भाव से पण्डितमरण में ही गिनते हैं।** कहते हैं कि चारित्र न हो। सम्यग्दर्शन अकेला हो, चारित्र न हो तो इस अपेक्षा से उसे बाल कहा जाता है। परन्तु समकितसहित को दर्शनपण्डित कहा जाता है। वह ... भाव से पण्डितमरण में गिनने में आता है। आहाहा! श्रेणिक राजा। वैसे तो देह छोड़ा हीरा चूसकर। इस अपेक्षा से तो बाल है। परन्तु सम्यग्दर्शन होता है, इस अपेक्षा से वे पण्डित हैं। आहाहा! और अज्ञानी ऐसे दो-दो महीने का संथारा करे और शुभभाव और शुक्ललेश्या करे, परन्तु जिसे उस लेश्यारहित भगवान दृष्टि में नहीं आया, उसके सब मरण बालमरण हैं। आहाहा! सब णमो अरिहन्ताणं ऐसा करते हुए देह छोड़े। भगवान का स्मरण करते हुए देह छोड़े परन्तु है बालमरण। क्योंकि 'एकत्वनिश्चयगतो' स्वभाव से एकत्व है और राग से पृथक् है, उसका अन्तर में भान नहीं, वे सब बालमरण से मरनेवाले हैं। साधु-दिगम्बर हो। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।' वह बालमरण था। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ऐसे मुनिपने के पंच महाव्रत लेकर देह छोड़े, वह भी बालमरण है। आहाहा! जहाँ आत्मदर्शन, आत्मज्ञान नहीं, वहाँ उस सब क्रियाकाण्ड में देह छोड़े, वह सब बालमरण है।

**दर्शनज्ञान का मरण संक्षेप से दो प्रकार का कहा है – इच्छाप्रवृत्त और अनिच्छाप्रवृत्त।** मिथ्यादृष्टि। **अग्नि से, धूम से, शस्त्र से, विष से, जल से, पर्वत के किनारे पर से गिरने से,...** पर्वत के ऊपर से गिरना। **अति शीत-ऊष्ण की बाधा से,...** ऐसी सर्दी होती है न? वह क्या कहलाता है ये? सीर-सीर। सीर नहीं निकालते? बाहर खेत में जाये तब। सीर में बैठा बैठा एक ...ठण्ड में मर जाये ऐसे। और वह भी इतनी सर्दी पड़ी कि दरवाजे तक आया। दरवाजा बन्द। उसमें, हों! सान्ती में। ऐसे मरण। गाँव को ... कठोर गर्मी में मरे। ... और भावनगर के बीच बहुत कठोर गर्मी का समय। एक साधु उसमें मर गये। ऐसी गर्मी, पानी साथ में नहीं और चला नहीं जाये। ... एक जगह बैठ गये। ... भावनगर से चमारडी। ... अधिक है वहाँ। ... भावनगर से... (संवत्) २०१७ के वर्ष। भावनगर चातुर्मास... ... ऐकला वृक्ष नहीं, पान नहीं, समुद्र इस ओर। खारी जमीन और धूप। गला सूख गया। पानी नहीं मिलता... वह बालमरण है।

**शीत ऊष्ण की बाधा से,...** शीत-उष्ण की क्रिया। **बन्धन से,...** ऐसा कोई बन्धन बाँधे। गले में फाँसी (खाये), उसमें उलझकर मरते हैं। **क्षुधा तृषा के रोकने से,...** क्षुधा-तृषा रोकने से देह छूट जाये। **जीभ उखाड़ने से...** जीभ खेंचे। **और विरुद्ध आहार करने से...** जहर आदि या आहार विरुद्ध हो। यह दूधपाक ... हों और उसमें पड़ा हो न वह, क्या कहलाता है? जहर-जहर। दूधपाक हो और उसमें ... आकर जहर डाल दे, किसी को खबर न हो। वे सब बालमरण। आहाहा! **(अज्ञानी) इच्छा-पूर्वक मरे...** इस प्रकार इच्छा करके मरे। सो **'इच्छाप्रवृत्त' है तथा जीने का इच्छुक...** परन्तु वह मर जाये, उसे अनिच्छाप्रवृत्त कहते हैं। है दोनों बालमरण।

**पण्डितमरण चार प्रकार का है – १. व्यवहारपण्डित, २. सम्यक्त्वपण्डित, ३. ज्ञानपण्डित, ४. चारित्रपण्डित। लोकशास्त्र के व्यवहार में प्रवीण हो, वह 'व्यवहारपण्डित' है।** दुनिया के चतुर। भगवानजीभाई! दुनिया के चतुर मरे जब....

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह लौकिक लाईन। ... यह सब बाहर का आवे। मकान का

आवे, घोड़े को परखने की जानकारी और पशु को परखने की जानकारी और... होते हैं न ऐसे बहुत होशियार? हमारे दामोदर सेठ बहुत होशियार थे। घोड़े की परख में... ... घोड़ा खड़ा हो और बाजार में देखे तो... वे होते हैं संसार के चतुर होते हैं न, प्रत्येक बात में। चिमनभाई! आहाहा!

**लोकशास्त्र के व्यवहार में प्रवीण...** दुनिया की जो सब कलायें, उसमें जाननेवाले होशियार, वे व्यवहारपण्डित। परमार्थ से अज्ञानी हैं, मूढ़ है। **सम्यक्त्वसहित हो 'सम्यक्त्वपण्डित' है।** यह सही। जिसे भगवान आत्मा राग के विकल्प से भिन्न तत्त्व जहाँ प्राप्त हुआ है, ऐसे जीव को समकितमरण होता है। आहाहा! वह मरण अनन्त काल में कभी किया नहीं। इसलिए यह कहते हैं। मरण तो आयेगा ही। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित देह छूटे, वह सम्यक्त्व पण्डितमरण गिनने में आया है। **सम्यग्ज्ञान सहित हो 'ज्ञानपण्डित' है।** वह दर्शन की प्रधानता से बात थी। यह ज्ञान—सम्यग्ज्ञान—स्वसंवेदन। ज्ञान का अन्तर वेदनसहित मरण। आहाहा! राग और द्वेष का वेदन नहीं। आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसका स्वसंवेदन। यह देह छूटे, उसे ज्ञान पण्डितमरण कहा जाता है। लोक का व्यवहारपण्डित है, यह अज्ञानपण्डित है। आहाहा! संसार में होते हैं न ऐसे? पंचों में पूछे जाते हैं। भाई क्या कहते हैं उसके लिये? मकान हो कोई, ... करे सब। क्या कहा जाता है उसे? ... होवे न? ... है। ... मूढ़ है। आहाहा! भगवान! तेरा आत्मा कौन है? कहाँ है? कैसे है उसे जाना, उसका ज्ञान पण्डितमरण है। दूसरा भले न आता हो, ऐसा कहते हैं। लौकिकशास्त्र और लौकिक के ज्ञान न हो।

**सम्यक्चारित्रसहित हो 'चारित्रपण्डित' है।** सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप की अन्तर रमणता में लवलीन (हो), उसे देह छूटे, वह चारित्रपण्डित है। आहाहा! **यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित पण्डित का ग्रहण है,...** सब में इस मरण को गिनने में आया है। **क्योंकि व्यवहारपण्डित मिथ्यादृष्टि बालमरण में आ गया।** ऊपर आया था न? **लोकशास्त्र के व्यवहार में प्रवीण...** वे तो सब (बालमरण में गये)।

**मोक्षमार्ग में प्रवर्तनेवाला साधु संघ से छूटा उसको 'आसन्न' कहते हैं।** साधु कहलाये। आसन्न ... कहा। **इसमें पार्श्वस्थ...** पार्श्वतता हो। मुनि के निकट रहे परन्तु ठिकाने बिना की श्रद्धा और ज्ञान आदि हो। **स्वच्छन्द,...** हो। वे सब बालमरण।

**कुशील,...** हो। अकेला कषाय का सेवन है—कुशील। कषाय का सेवन, वह कुशील। कषायरहित भगवान आत्मा का सेवन न हो। **संसक्त भी लेने,...** आसक्त हो। बड़े राजा करोड़ोंपति, अरबोंपति में परिचय धारण करता हो, उसमें अर्पित हो गया हो, उसके मान में, उसकी महत्ता में। वे सब भ्रष्ट साधु हैं। आहाहा! जिन्हें अपने आनन्द का स्वरूप साधना है, उसमें ऐसे राजा बड़े अरबोंपति (हों), उसमें वह दब जाये। कहते हैं कि वह साधु नहीं है। वह संसक्त-भ्रष्ट है। आया न? **इस प्रकार के पंच प्रकार भ्रष्ट साधुओं का मरण 'आसन्नमरण' है। सम्यग्दृष्टि श्रावक का मरण 'बालपण्डितमरण' है।** क्योंकि चारित्र नहीं है इस अपेक्षा से बाल, परन्तु सम्यग्दर्शन है, इस अपेक्षा से पण्डित। आहाहा!

**सशल्यमरण दो प्रकार का है – मिथ्यादर्शन, माया, निदान ये तीन शल्य तो 'भावशल्य' हैं और पंच स्थावर तथा त्रस में असैनी ये 'द्रव्यशल्य'...** क्योंकि उसे तो कुछ भान है नहीं, ऐसा कहते हैं। **पंच स्थावर तथा त्रस में असैनी ये 'द्रव्यशल्य' सहित हैं, इस प्रकार 'सशल्यमरण' है।** असंज्ञी, मनरहित प्राणी मरे, वह सब सशल्यमरण है। द्रव्यसशल्य है, भावशल्य तो पड़ा ही है।

**जो प्रशस्तक्रिया में आलसी हो, व्रतादिक में शक्ति को छिपावे, ध्यानादिक से दूर भागे...** अन्तर के आनन्दस्वरूप में ध्यान करना हो, तो वह मेरा काम नहीं, वह मेरा काम नहीं। मेरा काम तो यह सब बाहर के। आहाहा! वह पलायमरण। स्वरूप से पलायन हो गया। आहाहा! अपना भगवान शुद्ध आनन्द का नाथ, वहाँ से पलायन हो गया। राग में रुक गया, ऐसा कहते हैं। **वशार्त्तमरण चार प्रकार का है – वह आर्त-रौद्र ध्यानसहित मरण है,...** लो! आर्तध्यान और रौद्रध्यानसहित देह छूटे। **पाँच इन्द्रियों के विषयों में राग-द्वेषसहित मरण 'इन्द्रियवशार्त्तमरण' है।** इन्द्रिय के वश होकर। आहाहा! **साता-असाता की वेदनासहित मरे 'वेदनावशार्त्तमरण' है।** साता के अनुकूल साता का (वेदन) हो। ऐसे बराबर चाय पीते-पीते मरे। कहीं दुःख नहीं, वहाँ देह छूटे। इससे कोई ऐसा माने कि यह समाधिमरण है। आहाहा! कहीं और मरने में देरी लगी? देखो न! आहाहा! संसार में नहीं कहा जाता? रात्रि में वृद्ध इस प्रकार से मरा हो ... शाम का भोजन न किया हो, दोपहर का आहार न किया हो, अवसर में इस

प्रकार मरा कि... सेठियाओ! वृद्ध जीवित गये नहीं और मरते गये नहीं। उसे तकलीफ नहीं दी न! आहार-पानी करने के बाद मरे तो फिर शाम से पहले ... पहले निवृत्त हो जाये नहाकर वापस। आहाहा! कहते हैं कि ऐसी बाते, हों! एक पावडु (थोड़ा) पानी भी माँगा नहीं, ऐसा कहे। हमसे कुछ सेवा भी नहीं माँगी। आँख बन्द हो गयी। परन्तु उसमें क्या हुआ? आहाहा! वह तो इन्द्रियवशार्तमरण। ऐसा साता-असाता के वश होकर मरे। महारोग के वश तड़पते हुए मरे और एक साता की अनुकूलता में मरे। ऐसी अनुकूलता कि जिसे सिर पर सोंठ चुपड़ने की भी आवश्यकता न पड़ी हो। ऐसी निरोगता। परन्तु उसमें क्या हुआ? आत्मा की निरोगता को सम्हाला नहीं और बाहर की निरोगता कुछ... आहाहा! कहते हैं न कि भाई! यह अस्सी वर्ष हुए परन्तु कभी सोंठ चुपड़ी नहीं। सिर का दर्द आया नहीं। परन्तु उसमें क्या हुआ अब?

**मुमुक्षु :** सम्यग्दर्शन बिना खाली है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह सब थोथे थोथा। यहाँ वश होकर मरा, भगवान के वश होकर मरा नहीं। ऐसी साता... ऐसी साता कि मरते हुए भी एक जरा पानी का बूँद ऐसी गयी, वहाँ देह छूट गयी। उससे क्या? मरकर नरक में जाये वहाँ। ऐसी स्थिति में मरकर सातवें नरक में जाये। असाता का उदय न हो तो क्या हुआ उसमें?

धर्मात्मा मुनि को सियाल खाता हो, टुकड़े करता हो, तथापि आनन्द के मरण में देह छूट जाती है, वह पण्डितमरण। आहाहा! साता-असाता के वश हुआ नहीं। आहाहा! आरोग्य बोधि लाभम्। अपनी निरोगदशा के लाभ में वह तो पड़ा है। आहाहा! लो, यह पैसे की कमाई यह। **क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय के वश से मरे...** ऐसा क्रोध हो... मर जाये, देह छूट जाये। मान में-ऐसे मान में चढ़े... मान के रस में मर जाये। माया के रस में मर जाये। कपट, कुटिलता। और लोभ के उसमें मरे। वह कषायवशातमरण। कुमरण है। आहाहा!

**हास्य विनोद कषाय के वश से मरे...** विनोद करते-करते देह छूट जाये। कितने ही ऐसे होते हैं न कि दाँत निकाले (हँसे) और विनोद करे और देह छूट जाये। कुमरण है, बालमरण है। अनन्त जन्म-मरण में भटकेगा, ऐसा वह मरण है। वह **'नोकषायवशार्त्तमरण' है।**

**जो अपने व्रत क्रिया चारित्र में उपसर्ग आवे, वह सहा भी न जावे और भ्रष्ट होने का भय आवे, तब अशक्त होकर अन्नपानी का त्यागकर मरे 'विप्राणसमरण' है।** झेला जाये नहीं और भ्रष्ट होने का भय हो, अशक्त हो और फिर पानी और आहार छोड़ दिया हो। आहार-पानी लिये नहीं जायेंगे, छोड़ दे। वह तो पराधीनमरण है। **शस्त्र ग्रहण कर मरण हो...** तलवार से मरे, ... से मरे। **'गृधपृष्ठमरण' है।**

अनुक्रम से अन्न-पानी का यथाविधि त्याग कर मरे वह समकितमरण **'भक्तप्रत्याख्यानमरण' है।** भक्त—आहार और पानी का त्यागकरके आत्मा की शान्ति से छेह छोड़े। **संन्यास करे और अन्य से वैयावृत्त्य करावे 'इंगिनीमरण' है।** यह पण्डितमरण में जाता है, हों! यह। **प्रायोपगमन संन्यास करे और किसी से वैयावृत्त्य न करावे तथा अपने आप भी न करे, प्रतिमायोग रहे 'प्रायोपगमनमरण' है।** वृक्ष की डाली पड़े, वैसे पड़े रहें, अन्दर आनन्दस्वरूप में। **केवली मुक्तिप्राप्त हो 'केवलीमरण' है।** लो! केवलज्ञानी भगवान का देह छूटे, वह केवलीमरण।

**इस प्रकार सत्तरह प्रकार कहे। इनका संक्षेप इस प्रकार है – मरण पाँच प्रकार के हैं – १. पण्डित-पण्डित, २. पण्डित, ३. बालपण्डित, ४. बाल, ५. बालबाल। जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अतिशयसहित हो...** जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र सहित हो, वह तो पण्डितपण्डित है। **इनकी प्रकर्षता जिसके न हो पण्डित है,** चारित्रादि न हो। **सम्यग्दृष्टि श्रावक, वह बालपण्डित और पहिले चार प्रकार के पण्डित कहे उनमें से एक भी भाव जिसके नहीं हो, वह बाल है तथा जो सबसे न्यून हो वह बालबाल है। इनमें पण्डितपण्डितमरण, पण्डितमरण और बालपण्डितमरण – ये तीन प्रशस्त सुमरण कहे हैं, अन्यरीति होवे कुमरण है। इस प्रकार जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एकदेश सहित मरे...** एकदेश आंशिक, पूर्ण हो तो केवल हो जाये। **वह 'सुमरण' है, इस प्रकार सुमरण करने का उपदेश है।** लो!

★ ★ ★

## गाथा - ३३

**आगे यह जीव संसार में भ्रमण करता है, उस भ्रमण के परावर्तन का स्वरूप मन में धारण कर निरूपण करते हैं। प्रथम ही सामान्यरूप से लोक के प्रदेशों की अपेक्षा से कहते हैं –**

**सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।**
**जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो।।३३।।**

**अर्थ – यह जीव द्रव्यलिंग का धारक मुनिपना होते हुए...** सम्यग्दर्शन बिना, सम्यग्ज्ञान बिना जिसमें दिगम्बर द्रव्यलिंग को अनन्त बार धारण किया। **तीन लोक प्रमाण सर्वस्थान हैं, उनमें एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है...** आहाहा! दूसरे प्रकार से तो भले जन्म-मरण किये और मरा, परन्तु जैन का साधु होकर इतनी बार मरा। आहाहा! दिगम्बर मुनि होकर। **तीन लोक प्रमाण सर्वस्थान हैं, उनमें एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है कि जहाँ जन्म-मरण न किया हो।** पाँच महाव्रतधारी साधु हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु कहते हैं कि सम्यग्दर्शन बिना ऐसे जो मरण (किये), उसके प्रदेश का एक प्रदेश भी खाली नहीं कि जहाँ वह जन्मा न हो और जहाँ मरा न हो। ओहोहो! एक तो ऐसा साधु और वह वापस ऐसे कुमरण से लोक के ३४३ राजू के प्रदेश खाली नहीं कि जहाँ अनन्त बार जन्मा-मरा न हो। ओहोहो!

दूसरे प्रकार से मरा एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अज्ञानपर्याय से, वह अलग वस्तु है। यह तो द्रव्यसाधु होकर ३४३ राजू में एक प्रदेश खाली नहीं, जिसमें अनन्त बार यह जन्मा और मरा न हो। आहाहा! आत्मा के सम्यक् भान बिना, अनुभव बिना ऐसा द्रव्यलिंगीपना धारण किया। ३४३ राजू... है न? आहाहा! **तीन लोक प्रमाण...** एक प्रदेश खाली नहीं कि जिसमें अनन्त बार जन्मा और मरा न हो। ओहोहो! यह सुमरण करने के लिये बात करते हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य जगत को करुणा से कहते हैं, भाई!

**सर्व लोक में अनन्त बार जन्म और मरण किये, किन्तु ऐसा कोई प्रदेश शेष न रहा...** इसने कोई प्रदेश बाकी नहीं रखा। **जिसमें जन्म और मरण न किये हों। इस प्रकार भावलिंग के बिना...** अहो! आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह भावलिंग है। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव, उसका ज्ञान और उसकी रमणता के बिना इसने द्रव्यलिंग में... यह तो द्रव्यलिंगी पंच महाव्रत पालन करे, अट्ठाईस मूलगुण पाले, तो भी ऐसे मरण उसने तो अनन्त बार किये है, भाई! **(निज परमात्मदशा की) प्राप्ति नहीं हुई...** द्रव्यलिंग से कोई मोक्ष नहीं मिलता। परन्तु पालन करे तो द्रव्यलिंग, वे महिमा करे। परन्तु अब अभव्य द्रव्यलिंग पालन करे तो भी नौवें ग्रैवेयक में सुख तो पावे। लो! आहाहा! ... ... अरे! भाई! यह नौवें ग्रैवेयक सुख कहाँ था? बापू! आत्मा के आनन्द के स्वाद की तो खबर नहीं होती। आहाहा! आनन्द का रसीला तो हुआ नहीं, और राग के रसीला में मरण (हो), वह दुःख है। नौवें ग्रैवेयक जाये तो वह तो वहाँ दुःखी है। ऐसा नहीं कहा, नौवे ग्रैवेयक? 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' वहाँ सुखी नहीं है। जिसमें भगवान आत्मा मिला नहीं, वे सब मरण सब दुःख के और कुमरण हैं। दुनिया में प्रसिद्धि हो, न हो। दुनिया महिमा करे, न करे ... उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! दुनिया में बाहर में वह गिनने में नहीं आया। परन्तु बाह्य में से निकलकर अन्दर में गया है, वह सामने पड़ गया वह। समझ में आया? आहाहा! वह तो मरण महोत्सव है। आहाहा!

जिसे आत्मा आनन्द के भानवाली मृत्यु (हो)... आहाहा! अतीन्द्रिय सुख का सागर जिसने खोला है, उसके मरण का महोत्सव तो ज्ञानी जिसकी महिमा करे। आहाहा! भले वह जंगल में पड़ा हो और कोई साधु ऐसा हो। गिरिगुफा में जाकर ध्यान में रहकर देह छोड़े। मरते कोई पीछे न हो जाननेवाला। आहाहा! परन्तु वह पण्डितमरण से मरता है। आहाहा! बाद की देह को सियाल खाते हों और यहाँ बड़ा अरबोंपति या साधु बाहर का द्रव्यलिंगी हो, पालकी में निकाले। बड़ी। धमधमाट। पाँच-पाँच हजार लोग, हजार-हजार लोगों के बीच एक-एक बैण्ड।

**मुमुक्षु :** वह सब बाहर की धमाल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाहर की धमाल। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसी बाते हैं। बापू! तुझे तेरा स्पर्श नहीं हुआ। तेरा तुझे स्पर्श नहीं हुआ और ऐसे द्रव्यलिंग के स्पर्श में अनन्त बार आया और दुनिया ने कदाचित् महिमा की... ओहो! ऐसे पुरुष पके, कोई सिद्धपुरुष हैं। उसमें क्या हुआ?

कहते हैं, जिसमें भावलिंग बिना जिन परमात्मा दशा की प्राप्ति न हुई... आहाहा! बाहर में प्रत्याख्यान करे कि मुझे खाने का त्याग है, निकलने का त्याग है, चलने का त्याग है परन्तु अन्दर में राग में एकता में पड़ा। सब तेरे पास है। आहाहा! मिथ्यात्व है।

★ ★ ★

## गाथा - ३४

**आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए भावलिंग को प्रधान कर कहते हैं –**

**कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं।**
**जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण।।३४।।**

देखो! यहाँ तो अभी आचार्य यह कहते हैं, जिनलिंग धारण किया परन्तु जिनभाव प्रतीति में आया नहीं। आहाहा!

**अर्थ – यह जीव इस संसार में जिसमें परम्परा भावलिंग न होने से...** जिसमें भावलिंग प्रगट ही नहीं किया। ऐसे द्रव्यलिंग धारण किये। आहाहा! इसलिए कहते हैं न, भाई! पहला द्रव्यलिंग आवे। पंच महाव्रत ले, यह करे, यह करे। उसमें फिर यह ले, आया उसमें तूने किया क्या? ऐसा कहते हैं। ऐसा कि पहले द्रव्यलिंग ही आता है। नहीं तो पहले भावलिंग आवे सातवाँ (गुणस्थान) और फिर वस्त्रादि छूटे। ऐसा तर्क करे। देखो! उसमें पहले द्रव्यलिंग आया या नहीं? वस्त्र छोड़े... ध्यान में आत्मा आया नहीं।

कहते हैं, परम्परा से बात करते हैं न? इसका अर्थ यह कि द्रव्यलिंग ऐसा धारण किया, उसके पश्चात् जो भावलिंग आना चाहिए, वह आया नहीं। आहाहा! जिनलिंग धारण किया, तथापि **'परंपराभावरहिएण' अनन्त कालपर्यन्त जन्म–जरा–मरण से**

**पीड़ित दुःख को ही प्राप्त हुआ।** ओहोहो! भगवान आत्मा निर्विकल्प चैतन्यबिम्ब प्रभु, उसका स्पर्श और आदर बिना ऐसे द्रव्यलिंग में परम्परा से भी वस्तु तो तूने प्राप्त नहीं की। यह सब तेरे द्रव्यलिंग निरर्थक गये, भव के अभाव के लिये (निरर्थक)। भव में भटकने के लिये सार्थक हुए। आहाहा! देखो! आचार्य महाराज जिनलिंग को डालकर... ऐसे जिनलिंग धारण किये। जिनलिंग अर्थात् द्रव्यलिंग, मुनिपना, हों! नग्नपना, पंच महाव्रत वह सब द्रव्यलिंग। आहाहा! तथापि उससे रहित अन्तर आनन्दस्वरूप को स्पर्शा नहीं। द्रव्यलिंग ग्रहण किये और पश्चात् यह आया नहीं तो तेरा सब व्यर्थ गया। आहाहा!

**भावार्थ – द्रव्यलिंग धारण किया और उसमें परम्परा से भी भावलिंग की प्राप्ति न हुई...** अब ऐसी बात करते हैं। परम्परा अर्थात् महाव्रत आदि धारण किये परन्तु फिर उन्हें छोड़कर आत्मा के आनन्द में आना चाहिए, वह तो आया नहीं। परम्परा शब्द रखा है न यहाँ? ऐसा कि पहले द्रव्यलिंग आवे, पश्चात् भावलिंग आवे। परन्तु यह द्रव्यलिंग आया और फिर भावलिंग ग्रहण नहीं किया, अन्तर आनन्द में आया नहीं तो तेरे द्रव्यलिंग का थोथा निकला। आहाहा! परम्परा शब्द प्रयोग किया है न? **इसलिए द्रव्यलिंग निष्फल गया, मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई, संसार में ही भ्रमण किया।** लो!

**यहाँ आशय इस प्रकार है कि–द्रव्यलिंग है, वह भावलिंग का साधन है,...** द्रव्यलिंग पहले आता है, ऐसा कहते हैं। **परन्तु काललब्धि बिना द्रव्यलिंग धारण करने पर भी भावलिंग की प्राप्ति नहीं होती है...** अन्तर के स्वभाव के पुरुषार्थ की जागृति बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान भावलिंग प्रगट नहीं किया। नीचे कहा है न काललब्धि का? **काललब्धि =स्व समय–निजस्वरूप परिणाम की प्राप्ति...** यह काललब्धि की व्याख्या। काल अर्थात् स्वसमय स्वयं आत्मा। ऐसे निज स्वरूप के परिणमन की प्राप्ति, वह काललब्धि। आत्मावलोकन में गाथा दी है।

क्या कहा यह? पंच महाव्रत द्रव्यलिंग धारण किये परन्तु उसमें निज समय की लब्धि प्राप्त नहीं की तो उसकी काललब्धि नहीं पकी। नहीं पकी अर्थात् निज स्वरूप

की प्राप्ति में नहीं आया। **काललब्धि का अर्थ स्वकाल की प्राप्ति है। (३) ''यदायं जीवः आगमभाषया कालादि लब्धिरूपमध्यात्मभाषया शुद्धात्माभिमुखं परिणामरूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते... अर्थ – जब यह जीव आगमभाषा से कालादि लब्धि को प्राप्त करता है तथा अध्यात्मभाषा से शुद्धात्मा के सन्मुख परिणामरूप...** पूरी दिशा को गुलांट खा गया। जो पर्याय के ऊपर लक्ष्य राग के ऊपर निमित्त था, उस लक्ष्य से सब बदल गया। शुद्धात्म भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके सन्मुख परिणाम अर्थात् 'स्वसंवेदन ज्ञान को प्राप्त करता है।' यह काललब्धि है।

... राणपुर में चातुर्मास था न ... राणपुर। (संवत्) १९८४ का वर्ष। १९८४ के ज्येष्ठ महीने में दामनगर में। उनके साथ बात हुई थी दामनगर। देखो! यह काललब्धि ऐसी है। उस समय मेरा 'द्रव्यसंग्रह' पढ़ता था बराबर। उसमें यह आया। काल कोई वस्तु निमित्त है, वह हेय है। आता है न? भाई! द्रव्यसंग्रह में। काल हेय है। आहाहा! तब वह बराबर था। १९८४ की बात है। ४३ वर्ष हुए।

**मुमुक्षु :** अपनी आराधना से होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आराधना से होता है। निमित्त काल को आराधना है? काल हेय है, ऐसा वहाँ लिया है। आवे, वह कालरूप से, परन्तु है हेयपना। उपादेयपना तो भगवान आत्मा आनन्द के स्वकाल को प्राप्त करे, वह प्राप्ति है। आहाहा! भले दूसरे प्रकार से कहें कि काललब्धि भले है परन्तु उसका ज्ञान कब होगा? इस चैतन्य के आनन्द के अनुभव को पकड़े, तब यह पर्याय हुई, उसका ज्ञान होता है। तब ज्ञान होता है। इसके बिना काललब्धि का ज्ञान कहाँ से था? आहाहा! श्रीमद् में भी कहा है न? 'भवस्थिति आदि नाम ले छेदो नहीं आत्मार्थ।' आता है न? पहले क्या आया?

**मुमुक्षु :** 'जो इच्छो परमार्थ तो...'

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह। 'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ। भवस्थिति आदि नाम ले, छेदो नहीं आत्मार्थ।' आहाहा!

**मुमुक्षु :** काललब्धि...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** काललब्धि-आत्मा के अनुभव की पर्याय प्राप्त करना, वह काललब्धि।

**मुमुक्षु :** क्रमबद्ध...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्रमबद्ध ही आया इसमें। काललब्धि में ही क्रमबद्ध आया। स्वकाल में उसकी प्राप्ति होती है, दूसरी पर्याय के स्वकाल में, तीसरी पर्याय के स्वकाल में (उसकी प्राप्ति होती है)। यह क्रमबद्ध हो गया। इसमें ही क्रमबद्ध सिद्ध हुआ। आहाहा! पंचास्तिकाय की १५० गाथा है न?

**भावलिंग की प्राप्ति नहीं होती है, इसलिए द्रव्यलिंग निष्फल जाता है। इस प्रकार मोक्षमार्ग में प्रधान भावलिंग ही है।** पंच महाव्रत पालन किये और नग्न हुआ, वह क्या हुआ? ऐसा तो अनन्त बार किया है। आहाहा! **यहाँ कोई कहे कि इस प्रकार है तो द्रव्यलिंग पहिले क्यों धारण करें?** यह परम्परा सिद्ध करते हैं न? तो पहले क्यों पंच महाव्रत लेना? भावलिंग आने के बाद लेंगे। **उसको कहते हैं कि इस प्रकार माने तो व्यवहार का लोप होता है,...** सम्यग्दृष्टि आत्मा का अनुभव होने पर भी उसे प्रथम तो भावलिंग चारित्र नहीं होता। तथापि पंच महाव्रत आदि तो पहले अंगीकार करे। चौथे गुणस्थान में है, पाँचवें गुणस्थान में है और मुनिव्रत धारण करे तो पहले तो पंच महाव्रत धारण करे, ... उस समय तो छठा गुणस्थान है नहीं, चारित्र है नहीं। इसलिए वह आवे पहला।

**इसलिए इस प्रकार मानना जो द्रव्यलिंग पहिले धारण करना,...** इसका अर्थ कि पहले महाव्रत के परिणाम आवे। भारी अटपटी बात। मुनिपना अंगीकार करे, तब चारित्र अन्दर प्रगट नहीं हुआ और पंच महाव्रत आदि द्रव्यलिंग पहले धारण करे। **इस प्रकार न जानना कि इसी से सिद्धि है।** उसे छोड़कर अन्दर में आत्मा के ध्यान में जाना चाहिए। **भावलिंग को प्रधान मानकर...** देखा! मुझे तो अन्तर के अनुभव में जाना है। उसमें यह पंच महाव्रत द्रव्यलिंग की क्रियाएँ पहले आयेंगी। **उसके सन्मुख उपयोग रखना,...** आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान के प्रति उपयोग रखना। अरे! ऐसी बातें! कोई ऐसा कहे कि भावलिंग पहले आवे, पश्चात् द्रव्यलिंग। ऐसा कभी नहीं

होता। भावलिंग सातवाँ (गुणस्थान) आया और फिर छठवें वस्त्र, पात्र उतारे और पंच महाव्रत ले, ऐसा होगा? समझ में आया? पहले वह छूट जाते हैं। नौ-नौ कोटि से। अभी उसे व्यवहार कहने के योग्य निश्चय आया नहीं परन्तु द्रव्यलिंग ऐसा आवे, किन्तु उससे ऐसा नहीं मानना कि इससे लाभ होगा। ऐसा कहते हैं।

**इस प्रकार न जानना कि इसी से सिद्धि है।** इतनी बात है। आहाहा! पंच महाव्रत, नग्नपना पहले आवे, परन्तु उससे सिद्धि है, ऐसा मानना नहीं। आहाहा! **भावलिंग को प्रधान मानकर उसके सन्मुख उपयोग रखना, द्रव्यलिंग को यत्नपूर्वक साधना,...** लो! तब उसे पंच महाव्रत आदि होते हैं। उसे यत्नपूर्वक व्यवहार होता है। **इस प्रकार का श्रद्धान भला है।** समझ में आया? इसमें ऐसा सिद्ध हुआ कि द्रव्यलिंग पहले नहीं होता और सीधे भावलिंग हो, ऐसा नहीं होता। परन्तु द्रव्यलिंग धारण किया, इसलिए उससे सिद्धि होगी, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! गजब बातें, भाई! श्वेताम्बर में तो भले समकित धारते हो, जाओ। ऐसा है न? क्या है?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आरोपण करना द्रव्यलिंग का। वह पढ़ा है। आहाहा! भारी मार्ग, बापू! अनेकान्त मार्ग।

सम्यग्दृष्टि को भी पहले सातवाँ (गुणस्थान) भावलिंग आवे और फिर द्रव्यलिंग हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसे भी पहले तो द्रव्यलिंग आता है, परन्तु आवे उसमें ऐसा नहीं मानना कि यह आया, इसलिए मुझे भावलिंग इसके कारण से होगा। यह आता है, होता है परन्तु उपयोग वहाँ रखने की बात है। अन्दर जाने के लिये मैंने यह तो बाहर का व्यवहार धारण किया है। आहाहा! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' आहाहा! पूरा संसार जहाँ उथेल डालना है। आहाहा!

यहाँ तो परम्परा शब्द पड़ा है न, इसलिए स्पष्टीकरण करते हैं। अर्थात् कि द्रव्यलिंग आया तथापि यदि भावलिंग न आया तो वह सब निष्फल है। इससे कोई ऐसा माने कि द्रव्यलिंग पहले धारण नहीं करना, ऐसा भी नहीं है।

**मुमुक्षु :** स्पष्टीकरण बहुत आया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह नहीं। ध्यान रखते हो समझने में तो भी ... कहो, समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्यग्दृष्टि को भी स्थिरता उसे होती है। यह वापस तुम बोल-बोल करो, उसमें कुछ माल नहीं है। सम्यग्दृष्टि भी द्रव्यलिंग धारण करता है और यदि भावलिंग न आवे तो वह द्रव्यलिंगी कहलाता है। और क्या कहा? सम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यलिंग पहले धारण करे और फिर ध्यान में यदि भावलिंग न आवे तो उसे द्रव्यलिंगी कहा जाता है। ऐसी गजब बातें, भाई! विशेष पुद्गल की व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**आषाढ़ शुक्ल २, शनिवार, दिनांक-२२-०६-१९७४**
**गाथा - १६२ से १६४, ३५ से ३७, प्रवचन-१८०**

चैतन्य के परिणमन से हुआ भाव ऐसा जो **भावित जीव हैं, वे ही सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को पाते हैं। कैसा है सिद्धिसुख ?** यहाँ तो कहते हैं कि शुद्ध चैतन्यस्वभाव के सन्मुख की जो एकता, ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, उससे सिद्ध के सुख को पाते हैं। भावपाहुड़ है न ? दोपहर में तो आता है कि व्रतादि के विकल्प, वह सब बन्ध का कारण है। बन्धरूप है, बन्ध का कारण है। यह मोक्षरूप है और मोक्ष का कारण है। शुद्ध चैतन्य आनन्ददल की एकाग्रता, शुद्ध परिणति, शुद्ध परिणति में तीनों आये—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। वह जीव सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता द्वारा मोक्ष को पाता है।

**कैसा है सिद्धिसुख ? शिव है, कल्याणरूप है,...** मोक्ष का सुख उपद्रवरहित है, ऐसा कहते हैं। आत्मा के आनन्द से उत्पन्न हुआ सुख है, कल्याणस्वरूप है। 'शिवमयं' आता है न। **किसी प्रकार उपद्रवसहित नहीं है,...** नकार से बात करते हैं। आनन्दस्वरूप मोक्ष का सुख कल्याणरूप, उपद्रवरहित, उसमें किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है। ऐसे सुख को शुद्ध चैतन्य के परिणमन द्वारा पाते हैं, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय बीच में आवे, वह बन्ध का कारण है। बन्धस्वरूप ही वह है। यह भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है। अबन्धस्वरूप है कहो या मुक्तस्वरूप कहो। उसकी परिणति, वह मुक्तस्वरूप है। इससे उससे मुक्ति का सुख पाते हैं।

**अजरामरलिंग है अर्थात् जिसका चिह्न वृद्ध होना और मरना, इन दोनों से रहित है,...** सिद्ध का सुख, मोक्ष का सुख जरा—वृद्धावस्थारहित, मरण-अन्त आवे, उससे रहित ऐसा उनका सुख है। है न ! **जिसका चिह्न वृद्ध होना और मरना, इन दोनों से रहित है,...** सिद्ध का सुख, उन्हें जीर्ण क्या हो ? ताजा, ताजा आनन्द है, उन्हें मरण नहीं, अन्त नहीं। ऐसे सिद्ध के सुख को शुद्ध चैतन्य की परिणति द्वारा पाया जाता है। **अनुपम है, जिसको संसार के सुख की उपमा नहीं लगती है,...** संसार का सुख तो जहर है। आत्मा का सुख तो अतीन्द्रिय आनन्द है, उसे जगत के सुख के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

**उत्तम ( सर्वोत्तम ) है,...** किसी के सुख की उपमा उसे नहीं दी जाती। सर्वोत्तम है। **परम ( सर्वोत्कृष्ट ) है,...** आहाहा! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, ध्रुवरूप से। उसकी परिणमनदशा होकर सुख का पूर्ण परिणमन होना, वह सर्वोत्कृष्ट है। ऐसा सुख कोई अन्यत्र है नहीं। **महार्घ्य है अर्थात् महान अर्घ्य-पूज्य प्रशंसा के योग्य है,...** वह मोक्ष का सुख ही प्रशंसनीय है। महिमायोग्य हो तो वह है। यह दुनिया अरबोंपति और करोड़ोंपति और बाहर की सुविधा हो तो ओहोहो! बादशाही है उसे, सुखी है। वह सुखी नहीं, वह तो दु:खी है। वह प्रशंसायोग्य नहीं। आत्मा का परमानन्द सुख, वह मोक्षमार्ग से प्राप्त हो, वह प्रशंसायोग्य है, कहते हैं। वह महिमायोग्य है, पूजनेयोग्य है।

**विमल है, कर्म के मल तथा रागादिकमल से रहित है।** मोक्षमार्ग से प्रगट हुआ मोक्ष, मोक्ष के मार्ग से प्रगट हुआ मोक्ष, वह कर्ममलरहित है। रागादिरहित है। राग भी नहीं। **अतुल है, इसके बराबर संसार का सुख नहीं है,...** अनुपम आया था (अर्थात्) उपमा नहीं। यहाँ अतुल है। उसके साथ में—बराबर संसार के सुख का कोई मिलान है नहीं। **ऐसे सुख को जिन-भक्त पाता है,...** जिनभक्त अर्थात् वीतरागी स्वरूप भगवान आत्मा का, उसका भक्त जिनभक्त, वह जिनभक्त। आहाहा! वीतरागस्वरूप से भगवान परमात्मस्वरूप, वह जिनस्वरूप है। उसका भक्त उसकी एकाग्रतावाला ऐसे सुख को पाता है। ऐसा सुख अन्यत्र हो नहीं सकता। **जिन-भक्त पाता है, अन्य का भक्त नहीं पाता है।** क्योंकि दूसरों में तो राग के विकल्प के भाव में धर्म मनावे, ऐसे को माननेवालों को ऐसा सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

★ ★ ★

## गाथा - १६३

अब **आगे आचार्य प्रार्थना करते हैं कि जो ऐसे सिद्धसुख को प्राप्त हुए...** ऐसा जो सिद्ध के सुख को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान **वे मुझे भावों की शुद्धता देवे :—** आहाहा! भावना स्वयं की है न? ऐसे भगवान मुझे सिद्धसुख दें। शुद्धता दें। अर्थात् कि मेरा स्वरूप जो पवित्र शुद्ध है, उसकी भावना में आगे बढ़ जाऊँ। वे मुझे सुख दे—ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

**ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा।**
**दिंतु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य॥१६३॥**

**अर्थ :- सिद्ध भगवान...** लोगस्स में भी आता है न 'सिद्धा सिद्धिं ममं दिसंतु।' सिद्धा सिद्धिं ममं दिसंतु। आता है लोगस्स में। आता है? किया था या नहीं लोगस्स? उसमें आता है सिद्धा सिद्धिं। हे सिद्ध भगवान! हे परमात्मा! मुझे सिद्धपना बताओ। दिसंतु-दिखाओ। इसका अर्थ कि मुझे केवलज्ञान होओ और मैं सिद्धपद को जानूँ, ऐसा। आहाहा! **सिद्ध भगवान मुझे दर्शन, ज्ञान में...** सिद्ध भगवान मेरे दर्शन में आत्मा की श्रद्धा सम्यग्दर्शन में, आत्मा का ज्ञान उस स्वसंवेदनज्ञान में और आत्मा का चारित्र, उस स्वरूप शुद्ध चैतन्य में, आनन्द में रमणता **श्रेष्ठ उत्तमभाव की शुद्धता देवें।** ऐसे मेरे दर्शन-ज्ञान-चारित्र में श्रेष्ठ उत्तमभाव की शुद्धता दो, भगवान! ऐसा कहते हैं। यह तो भावना का बोल है। भगवान कहाँ देते हैं? देते हैं किसी को? तब ऐसी माँग किसलिए करे? यह विनय के वाक्य हैं।

अन्तर का भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द से भरपूर प्रभु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में मुझे शुद्धता दो। इन तीन की मेरी शुद्धता बढ़ो, ऐसा कहते हैं। स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जो है, उसकी शुद्धता मुझे बढ़ो, ऐसा सिद्ध को कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

**श्रेष्ठ उत्तमभाव की शुद्धता देवें। कैसे हैं सिद्ध भगवान? तीन भुवन से पूज्य हैं... 'तिहुवणमहिया'** उसमें भी आता है न, एवं मये अभिथुआ... वंदिये महिया। लोगस्स में आता है। कित्तियवंदिय महिया। लोगस्स किया है? किया तो हो न। उसमें आता है। किंतियवंदिय महिया, जो ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा, आरुग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु। यह महिया में से वहाँ गारियाधार में थे न बहुत वर्ष पहले। एक साधु कहते कि देखो इसमें भगवान की पूजा कही है, महिया अर्थात्। उसे तो बतलना हो न! मन्दिरमार्गी साधु थे। वे और वे मणिसागर। सागरानन्द के भाई। बड़े भाई और तब गाँव में मोहनलालजी थे। मोहनविजय, प्रतापविजय और धर्मविजय। ये तीनों थे वहाँ। फिर आये थे। वहाँ इकट्ठे न उतरे। ... सेठ के कमरे में वहाँ उतरे थे। गये थे सुनने दोपहर को। वे अलग वाँचे। फिर यह लाये। ऐसा मानो कि यह साधु की दीक्षा लेनेवाले

हैं। महिया जिनपूजा वीतराग। देखो लोगस्स में कही है। महिया आता है न? महिया का अर्थ पूजा आता है न, देखो! है? '**तिहुवणमहिया**' तीन लोक में, तीन भुवन में महिया अर्थात् पूज्य है। पूजनेयोग्य भगवान हैं। आहाहा! यहाँ भी महिया कहा है, इसलिए उन्हें। परन्तु वह तो पूजनेयोग्य है, ऐसा। स्थानकवासी के सामने उसका अर्थ उसमें से निकालते थे। (संवत्) १९६८ के वर्ष की बात है।

**मुमुक्षु :** .... ऐसा कहाँ आया?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु उसे तो महिया शब्द आया न। वे कहते थे। निकालते हैं बहुत मन्दिरमार्गी उसमें से। साधारण लोगों को... देखो, उसमें महिया आता है पूजने में। भगवान की पूजा आती है उसमें। तुम मानते नहीं। तब गारियाधार की बात है। (संवत्) १९६९ का वर्ष है। संवत् ६९।

यहाँ कहे '**तिहुवणमहिया सिद्धा**' तीन लोक में पूज्य हैं। आहाहा! सबको पूज्य है? बड़े पुरुष को पूज्य है, उसमें यहाँ तीन भुवन में सब जीव आ गये। कितने तो सिद्ध को इनकार करते हैं। यहाँ तो कहे '**तिहुवणमहिया**' तीन लोक में उत्तम पुरुषों को पूज्य हैं। वे उत्तम पुरुष ही तीन भुवन में आ जाते हैं। **शुद्ध हैं,... 'सिद्धा' 'तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा'** शुद्ध हैं भगवान परमात्मा। जिन्हें द्रव्यकर्म नहीं, जड़कर्म नहीं, भावकर्म नहीं। पुण्य-पाप का विकल्प जो है, वह नहीं, ऐसे वे निर्मल हैं, शुद्ध हैं। **नोकर्मरूप मल से रहित हैं, निरंजन हैं...** कर्म का जिन्हें अंजन अर्थात् मैल नहीं, ऐसे सिद्धभगवान। **रागादि कर्म से रहित हैं, जिनके कर्म की उत्पत्ति नहीं है,... 'णिरंजणा'** १०८ कलश में (समयसार में) है।

'यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप आचरणरूप चारित्र है, वह करनेयोग्य तो नहीं। तथा वर्जनयोग्य भी नहीं।' १०८ कलश है। 'उत्तर इस प्रकार है कि वर्जनयोग्य है।' यह पंच महाव्रत के परिणाम, शुभभाव भक्ति आदि का भाव, व्यवहारचारित्र, व्यवहारचारित्र वर्जनयोग्य है। 'क्योंकि व्यवहार चारित्र होता हुआ दुष्ट है।' व्यवहारचारित्र, पंच महाव्रत के परिणाम होते हुए दुष्ट हैं, अनिष्ट हैं। व्यवहारचारित्र अनिष्ट है। और तीसरा बोल है—घातक है। व्यवहारचारित्र, हों! निश्चयचारित्र के सहित। जिसे स्वरूप

की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति वर्तती है, उसे जो पंच महाव्रत के परिणाम उत्पन्न होते हैं, व्यवहार समिति-गुप्ति का विकल्प आवे, भगवान की भक्ति आदि बहुमान विनय आदि का आवे, ऐसा जो व्यवहारचारित्र, (वह) वर्जनीय है, ऐसा कहे। करनेयोग्य नहीं, ऐसे वर्जनयोग्य नहीं—ऐसा नहीं है। करनेयोग्य नहीं और वर्जनयोग्य है। आहाहा!

और वह 'व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्टा है...' आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम हों। होता हुआ है न? होते तो अवश्य हैं। है दुष्ट। आहाहा! अब यह पंच महाव्रत के परिणाम से निश्चयचारित्र पावे, ऐसा लोग कहते हैं। अभी यहाँ पुस्तक प्रकाशित हुई, उसमें ऐसा लिखा है। व्यवहारचारित्र पालते-पालते निश्चयचारित्र आवे। यहाँ कहते हैं कि व्यवहारचारित्र निश्चयचारित्रवाले को भी दुष्ट है। आहाहा! पक्ष में, दृष्टि में बहुत अन्तर! बात यह कि अन्दर पहुँच सके नहीं, इसलिए राग की क्रिया करते-करते अन्दर पहुँचूँगा। यह बड़ा शल्य है। व्यवहार के व्रत, तपादि की क्रियायें, वे सब दुष्ट हैं, अनिष्ट हैं। दुष्ट-अनिष्ट-घातक।

'यह विषय-कषाय की भाँति क्रियारूप चारित्र निषेध है।' लो! विषय-कषाय की भाँति। कठोर लगे न यह लोगों को। उनका लगा—रतनचन्दजी को। गये वे कहाँ गये? देवचन्दजी गये? जूनागढ़ गये। जूनागढ़ गये देवचन्दजी? जैसे विषय-कषाय का भाव अशुभ है, वह वर्जनयोग्य है। वैसे क्रियारूप चारित्र भी निषेध है, ऐसा कहते हैं। 'तत् निषिध्यते'। आहाहा! त्यजनीय है। पाठ है न यह। अर्थ तो पहले किया। परन्तु वह तत् निषिध्यते। निषेध करनेयोग्य है। करनेयोग्य तो नहीं, परन्तु निषेधनेयोग्य है। मूल पाठ है।

**मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।**
**मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते॥१०८॥**

आहाहा! कठोर बात लगे। यह लोगों को भारी कठिन।

**मुमुक्षु :** व्यवहार शब्द न कहो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** न कहो। आहाहा! इसमें कहा हुआ है इसमें। भाषा। राग है न! अमृतस्वरूप को लूटनेवाला है। यह भगवान आत्मा का स्वरूप तो अतीन्द्रिय अमृत

है। उसमें राग की उत्पत्ति, वह तो जहर है। विष का घड़ा है, ऐसा कहा है। आचार्य ने कहा है, भाई!

**मुमुक्षु :** यह कहो, ऐसा हो वह न कहो तो फिर दोनों कहते हों तो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो विष का घड़ा कहा न? विष का घड़ा है तो दुष्ट है।

**मुमुक्षु :** शुद्ध भी कहा जाता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह भी शुद्ध क्यों कहा? वह तो शुद्ध है यहाँ, उसका निमित्तपना राग का है और उसका आरोप देकर शुद्ध कहा। आहाहा! वास्तविक शुद्ध नहीं, परन्तु शुद्ध के साथ है, जैसे सम्यग्दर्शन निश्चय आत्मा के अवलम्बन से होता है, वहाँ व्यवहार समकित जो है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है, वह समकित है नहीं, परन्तु निश्चय समकित के साथ राग का ऐसा निमित्त है, उसे आरोप करके व्यवहार समकित कहा है। उस बन्ध के कारण को व्यवहार समकित कहा। आहाहा! ऐसा है। भारी कठिन लोगों को! इसी प्रकार व्यवहार ज्ञान है, वह बन्ध का कारण है। तथापि सम्यग्ज्ञान जो स्वसंवेदन निश्चय हुआ, वहाँ शास्त्र का व्यवहार ज्ञान वर्तता है, उसे ज्ञान का आरोप देकर कहा। वरना वह ज्ञान नहीं, वह तो बन्ध का कारण है। निमित्त को देखकर, सहचर देखकर (कहा है)। शुद्ध समकित, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चारित्र, उसके सहचर— साथ में देखकर उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आरोप कहा। आहाहा! ऐसी बात है।

इसी प्रकार यहाँ शुद्धभाव के साथ शुभभाव देखकर शुद्धभाव का आरोप किया। आहाहा! प्रमाणज्ञान कराया। ऐसा व्यवहार साथ में होता है। आहाहा! परन्तु वह शुद्धभाव प्रमाणज्ञान कब सच्चा कहा? कि शुद्धभाव जो है, वह सत्य और शुद्ध का— धर्म का कारण है, वह बात प्रमाण में रखकर, निमित्त को सहचर देखकर, उसे भी व्यवहार समकित आदि कहा। परन्तु वह निश्चय रखकर इसे कहा। प्रमाण ने इसका निषेध करके नहीं कहा। समझ में आया? आहाहा! शुद्धभाव, वह शुद्ध यथार्थ है, उसे ऐसे रखकर निश्चय में फिर व्यवहार मिलाया कि साथ में शुभ है, उसे व्यवहार से शुद्ध कहते हैं। प्रमाण मिलाने को। यह शुद्ध और वह शुद्ध, ऐसा करके प्रमाणज्ञान कराया। परन्तु उस प्रमाणज्ञान में जो शुद्धदशा है, वह प्रमाण में तो निश्चय रखा ही है। उसे

रखकर उपरान्त व्यवहार शुभ को शुद्ध कहकर मिलाया—ऐसा है, ऐसी बात है। बहुत झगड़ा बेचारे को। यह बड़ा देखो न यह। किसी ने कितना लिखा है। कोई प्रेमचन्द है। आया है कल। किसी ने उत्तर दिया है। अब यहाँ तो किसी ने उत्तर दिया नहीं। उसने लिखा है उसमें या नहीं? दो-तीन पत्र आये हैं। यह कार्ड और दो लिफाफे। ऐसा लिखा। यहाँ कौन जवाब देता है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दिया होगा उसे, किसी ने पढ़कर।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें लिखा है। यहाँ तो किसी को जवाब भी नहीं देते। पत्र आवे। चाहे जो कहे नहीं, चाहे जो माने उसमें क्या? सच्चे प्रश्न पूछे तो उसका जवाब देते नहीं। यह तो सब शिक्षा देने के हैं। तुम निश्चय के साथ व्यवहार की प्ररूपणा करो, व्यवहार करो, वरना तो लोग ऐसे होंगे। उसे शुद्धता की श्रद्धा की खबर नहीं। मूल चीज़ है, उसकी खबर नहीं और यह उपचारिक चीज़ के ऊपर बातें निश्चय बिना की करना है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** निश्चय बिना उपचार तो आता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उपचार आता नहीं। और यह बात करनी है, अब क्या करना? सत्य को दूसरे प्रकार से कहे, ऐसे लोप होगा। आहाहा! देखो न, यहाँ कितना कहा है! पाठ है, हों! '**निषिध्यते**' '**मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।**' बन्धस्वरूप है। मोक्ष का घातक है। '**मोक्षहेतुतिरोधायि**' मोक्ष के कारण को नाश करनेवाला। '**तत्तन्निषिध्यते**' इसलिए व्यवहारचारित्र निषेध है। लो! व्यवहारचारित्र निषेध है। आहाहा! अब अपने अभी प्रश्न बाकी है। १०८ है न? **सब ही शुद्धभाव में समस्तरूप से स्थित है।** लो! देखा! मन्त्र, यन्त्र ऊँचा अच्छा साध्य हो तो कहते हैं कि शुद्धभाव से होता है। वह तो शुद्धभाव अपना है, अपने आश्रय से उस समय का उसे ऐसे जीव को जो शुभ विकल्प हो तो उसे ऐसा हो, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! शुद्धभावरहित प्राणी को कुछ सफल होता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा!

**भावार्थ :- पुरुष के चार प्रयोजन प्रधान हैं...** मुख्य प्रयोजन चार है। गौण में बहुत सब। **धर्म,...** अर्थात् पुण्य। **अर्थ...** अर्थात् पैसा। **काम...** अर्थात् भोग। **मोक्ष...** सिद्धपद। चार लो। **अन्य जो...** यह वर्ग लिया और यह अपवर्ग आता है न उसमें— समयसार में। अपवर्ग है, मोक्ष अपवर्ग है। धर्म, अर्थ और काम, वह वर्ग है। यह संसार का वर्ग। वह—मोक्ष अपवर्ग है। **अन्य भी जो कुछ मन्त्रसाधनादिक व्यापार हैं, वे आत्मा के शुद्ध चैतन्यपरिणामस्वरूप भाव में स्थित हैं।** लो! ऐसा शुद्धभाव जहाँ है, वहाँ सहज ऐसा कोई विकल्प आया और उसका मन्त्र आदि सिद्ध हो जाता है, ऐसा कहते हैं। **मन्त्रसाधनादिक...** आहाहा!

**आत्मा के शुद्ध चैतन्यपरिणामस्वरूप...** आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वरूप, परिणाम अर्थात् पर्याय, ऐसा जो भाव, उसमें यह सब स्थित है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी उसमें मन्त्रसाधना के लिये ऊँची मन्त्रसाधना आदि हो, वह सब शुद्धभाव के आधीन है। अर्थात् शुद्धभाव की भूमिका में उसे ऐसे विकल्प आ जाते हैं। यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! पाठ ऐसा है। '**अण्णे वि य वावारा**' यह चार के अतिरिक्त अनेक भी व्यापार, ऐसा। धर्म-पुण्य, अर्थ-लक्ष्मी और काम-भोग और मोक्ष। इसके अतिरिक्त '**अण्णे वि य वावारा**' दूसरे भी ऊँचे मन्त्र आदि के साधन, वे सब '**भावम्मि परिट्ठिया**' उस शुद्धभाव में रहे हुए हैं। कथन की शैली क्या है, उसे जानना चाहिए न! ऐसा का ऐसा पकड़ रखे।

**चैतन्यपरिणामस्वरूप भाव में स्थित हैं। शुद्धभाव से सब सिद्धि है,...** लो! भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव का आश्रय लेकर जो शुद्धभाव प्रगट हुआ, उसमें सब अरिहन्तपद, सिद्धपद, तीर्थंकरपद, चक्रवर्तीपद, बलदेवपद—ऐसे सब पद उसमें प्राप्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शनरहित प्राणी को ऐसे ऊँचे पद के साधन नहीं होते अर्थात् प्राप्ति नहीं होती। **शुद्धभाव से सब सिद्धि है, इस प्रकार संक्षेप से कहना जानो,...** संक्षिप्त में जानो। **अधिक क्या कहें ?** अब कहाँ से पड़ी रही है गाथा ? अन्तिम बाद में।

**मुमुक्षु :** ३४।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ३४ चलनी है ? ३४ हो गयी। ३४ चल गयी है पहले। ३५वीं गाथा। पहले पड़ी रही है यह। कहाँ तक ? ५०। बाकी है, ऐसा न ? ली है। '**भावसमणो य धीरो जुवईजणवेढिओ विसुद्धमइ। परीत्तसंसारिओ जादो**'

★ ★ ★

## गाथा - ३५

३५ गाथा। **आगे पुद्गल द्रव्य को प्रधानकर भ्रमण कहते हैं:**—कहते हैं कि (तूने) वह द्रव्यलिंग साधुपद का अनन्त बार धारण किया। आत्मदर्शन और सम्यग्दर्शन बिना जैन साधु अनन्त बार हुआ। उसमें अनन्त बार परिभ्रमण किया। कोई स्थल बाकी नहीं कि वह द्रव्यश्रवणपना धारण करके भटका न हो। ऐसा कहते हैं। है न यह बात है मूल।

**पडिदेससमयपुग्गलआउगपरिणामणामकालट्ठं।**
**गहिउज्झियाइं बहुसो अणंतभवसायरे जीव ॥३५॥**

'**जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण**' ३४ में यह है। ३३ में भी यह है।

**सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।**
**जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो ॥३३॥**

अरे! इस आत्मदर्शन बिना, सम्यग्दर्शन बिना अनन्त बार जैन द्रव्यलिंगी धारण करके कोई क्षेत्र बाकी नहीं कि जहाँ जन्मा और मरा न हो। आहाहा! द्रव्यलिंग धारण करके भी, पंच महाव्रत पालन करके भी, ऐसा कहते हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन चैतन्य के आनन्द का आश्रय लेकर प्रतीति हो, उसे स्पर्शकर प्रतीति हो, ऐसा तूने कभी किया नहीं। साधुपना अनन्त बार पालन किया, द्रव्यलिंग धारण किये। नग्नमुनि, हों! द्रव्यलिंगी अर्थात्। वस्त्रवाले को द्रव्यलिंग भी नहीं कहा जाता। जो वस्त्रसहित साधु कहलाते हैं, वे तो द्रव्यलिंगी साधु भी नहीं। आहाहा! यह तो नग्नमुनि द्रव्यलिंगी, जिसने पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार पालन किये, तथापि सम्यग्दर्शन बिना उसने कोई क्षेत्र जन्म-मरण से बाकी नहीं रखा। आहाहा! वह अब पुद्गलद्रव्य को प्रधान करके कहते हैं।

**पडिदेससमयपुग्गलआउगपरिणामणामकालट्ठं।**
**गहिउज्झियाइं बहुसो अणंतभवसायरे जीव॥३५॥**

आहाहा! **अर्थ :- इस जीव ने इस अनन्त अपार भवसमुद्र में लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उन प्रति समय समय और पर्याय के आयुप्रमाण काल...** शरीर का। **अपने जैसा योगकषाय के परिणमनस्वरूप परिणाम और जैसा गति जाति आदि नामकर्म के उदय से हुआ नाम और काल जैसा उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी उनमें पुद्गल के परमाणुरूप स्कन्ध, उनको बहुत बार अनन्त बार ग्रहण किये और छोड़े।** आहाहा! भवसमुद्र के चौरासी के अवतार में। आहाहा! सम्यग्दर्शन जिनलिंग जो भावलिंग, उसके बिना जितने लोक के प्रदेश, वहाँ अनन्त बार जन्मा, मरा। प्रत्येक समय-समय में जन्मा, मरा। आयुप्रमाण काल वह समय-समय में। **जैसा योगकषाय के परिणमनस्वरूप परिणाम...** यह भी मरा, जन्मा।

**गति जाति आदि नामकर्म के उदय से हुआ नाम और काल जैसा उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी उनमें पुद्गल के परमाणुरूप स्कन्ध, उनको बहुत बार अनन्त बार ग्रहण किये और छोड़े।** परन्तु सम्यग्दर्शन पाया नहीं। तो उसे परिभ्रमण करना पड़ा।

★ ★ ★

## गाथा - ३६

**आगे क्षेत्र को प्रधान कर कहते हैं :—**

**तेयाला तिण्णि सया रज्जूणं लोयखेत्तपरिमाणं।**
**मुत्तूणट्ठ पएसा जत्थ ण दुरुढुल्लिओ जीवो॥३६॥**

**अर्थ :- यह लोक तीन सौ तैतालीस राजू परिमाण क्षेत्र है,...** यह चौदह ब्रह्माण्ड। ३४३ राजू। एक राजू में असंख्ययोजन। एक राजू में असंख्ययोजन। ऐसे-ऐसे चौदह राजू (ब्रह्माण्ड)। यह ३४३ राजू परिमाण क्षेत्र। **उसके बीच मेरु के नीचे गोस्तनाकार आठ प्रदेश हैं,...** मेरुपर्वत है न वहाँ आठ प्रदेश है आकाश। **उनको छोड़कर अन्य प्रदेश ऐसा न रहा, जिसमें यह जीव नहीं जन्मा-मरा हो।** प्रत्येक प्रदेश में अनन्त बार

जन्मा और अनन्त बार मरा। आहाहा! वह द्रव्यश्रमणपना पाकर, आत्मा के सम्यग्दर्शन अनुभव बिना ऐसे अनन्त प्रदेश के ऊपर भव किये।

**भावार्थ :- 'ढुरुढुल्लिआ' इस प्रकार प्राकृत में भ्रमण अर्थ के धातु का आदेश है और क्षेत्रपरावर्तन में मेरु के नीचे आठ लोक के मध्य में हैं...** लोक के मध्य में है। उसे छोड़कर **उनको जीव अपने शरीर के अष्टमध्य प्रदेश बनाकर मध्यदेश उपजता है, वहाँ से क्षेत्रपरावर्तन का प्रारम्भ किया जाता है।** वहाँ से शुरु किया, ऐसा। आठ प्रदेश छोड़कर अनन्त-अनन्त बार वहाँ भटका। **इसलिए उनको पुनरुक्त भ्रमण में नहीं गिनते हैं।** उन आठ को नहीं गिना। आठ रोचक हैं, उन्हें नहीं गिना। उनसे सभी प्रदेश में अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार मरा। आहाहा! अपार-अपार क्षेत्र और परिभ्रमण का अपार। वह सम्यग्दर्शन बिना मिथ्यात्व के कारण से ऐसे भव किये। **उनको पुनरुक्त भ्रमण में नहीं गिनते हैं।**

★ ★ ★

## गाथा - ३७

**आगे यह जीव शरीरसहित उत्पन्न होता है और मरता है, उस शरीर में रोग होते हैं, उनकी संख्या दिखाते हैं :—** एक शरीर में कितने रोग?

**एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।**
**अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया॥३७॥**

**अर्थ :- इस मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छयानवे-छयानवे रोग होते हैं,...** एक अंगुल इतना। एक अंगुल इतना रखे, उसमें ९६ रोग। ऐसे पूरे शरीर प्रमाण में रोग है। भगवान आत्मा अमृत से भरा है। शरीर अकेला रोग से भरा है, ऐसा कहते हैं। ... रोग दिखता नहीं ऐसे शरीर में। परन्तु रोग की शक्ति अन्दर है। जब रोग प्रस्फुटित हो। एक (अंगुल) में ९६ रोग। एक अंगुल में ९६ रोग। ९६ समझते हो? सौ में चार कम। ९६। आहाहा! इतना एक अंगुल। ९६ रोग। आहाहा! यह मरते हुए प्रस्फुटित होते हैं न कितने ही, लो! कितने रोग होते हैं? आहाहा!

**मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छयानवे-छयानवे रोग होते हैं, तब कहो, अवशेष समस्त शरीर में कितने रोग कहें।** आहाहा! इतने प्रमाण में पूरे शरीर में। रोग वेदना की मूर्ति है शरीर। आत्मा वेदना की—आनन्द की मूर्ति है। यह (शरीर) रोग की मूर्ति है। आहाहा! इस शरीर को मेरा मानकर, शरीर के लिये चौबीस घण्टे खिलाना, पिलाना, सुलाना, नहलाना, पिलाना। जगत के रजकण हैं यह। और इन रजकणों में ऐसी स्थिति है कि अँगुल (के पोर में) ९६ रोग भरे हैं। आहाहा! बहुत रोग हो तब। साधारण रोग तो अन्दर हों थोड़े-थोड़े। उनकी गिनती गिनते नहीं। बहुत रोग आवे तब दिखाई दे बाहर। चारों ओर प्रस्फुटित हो। कहीं चैन नहीं। आहाहा!

यह तो वह शीतला की बात नहीं की थी? शीतला निकली तो एक-एक दाने में एक-एक ईयळ। शीतला। क्या कहे उसे? माता। माता कहते हैं। कीड़े झरें। ऐसे फिरे वहाँ कीड़े ऐसे झरें। ऐसे फिरे तो ऐसे। आहाहा! बाई कहे, माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। छोटी उम्र की महिला थी। मुश्किल से १८-२० की होगी। दो वर्ष की विवाहित। एकदम शीतला के दाने-दाने में कीड़े। कहीं गद्दे में सोवे तो कीड़े बटका भरे। कीड़ा-कीड़ा समझते हो? कीड़ा। बारीक कीड़ा। ईयळ, लट। आहाहा! उस समय कितने रोग होंगे अन्दर? कहो। आहाहा! लाठी में (लाठी गाँव की महिला की बात है)। वह सुखलाल नहीं? वहाँ सुखलाल रहता है। वह क्या कहलाता है? डेला के अन्दर। फिर महिला मर गयी। परन्तु ऐसा बोलती थी बेचारी, हों! ऐ माँ! ऐसे पाप मैंने इस भव में किये नहीं। सहा नहीं जाता, बैठा नहीं जाता, सोया नहीं जाता। हवा नहीं डाली जाती, पानी नहीं पिया जाता। ऐसे तड़पन... तड़पन... तड़पन... करे। ऐसे दुःख। ऐसे तो अनन्त बार प्रत्येक जीव ने सहन किये हैं। आहाहा! यह आत्मज्ञान बिना (सहन किये हैं)। आत्मा के सम्यग्दर्शन के भान बिना ऐसे क्रियाकाण्ड भी किये, परन्तु उस क्रियाकाण्ड के फल में चार गति है, कहते हैं। आहाहा! पंच महाव्रत और व्यवहारचारित्र न! कहते हैं कि ऐसे अनन्त बार पालन किये। उसके फलरूप से चार गति भटकने की है। आहाहा! कहो, व्यवहार पाँच महाव्रत, समिति, गुप्ति, उन सब भाव का फल संसार है, वह राग है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। आहाहा! उस राग की क्रियारहित भगवान के स्वरूप के अनुभव बिना, उसके स्वरूप की प्रतीति बिना, वह ऐसा स्वरूप है, उसका

इसे निर्विकल्प भरोसा नहीं आया। इसके बिना ऐसी क्रियायें अनन्त बार कीं। कहते हैं कि ऐसे रोग प्रस्फुटित होकर मरकर अनन्त बार मरा है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** .... भरोसा नहीं आया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भरोसा नहीं आया, निर्विकल्प। विकल्प से भरोसा आया, वह नहीं। अन्दर स्पर्शकर नहीं आया। आहाहा! उसकी जाति का भरोसा नहीं आया। राग से किया और यह किया, वह तो धारणा है। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के सागर को इसने नहीं देखा, उसको नहीं जाना। इसके बिना क्रियायें पंच महाव्रत की, साधु की अनन्त बार की। मर गया उसमें। उसमें कुछ एक भी भव घटा नहीं। अनन्त भव उसमें हुए। आहाहा! ऐसा कहते हैं। परन्तु चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति से भरपूर चैतन्यपिण्ड का स्पर्श, उसका वेदन, उसका भान अन्तर में किया नहीं। आहाहा! आचार्यपद नाम धराया, गुरुपद नाम धराया, उपाध्यायपद नाम धराया, गणीपद और गणावच्छेदक न, यह सब आत्मा के ज्ञान बिना चार गति में भटकने के हैं। आहाहा! देखो, एक शरीर। आहाहा! वेदना की मूर्ति। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति। तब यह शरीर तो एक-एक अँगुल में ९६ रोग। वेदना की... ऐसे रोग भी अनन्त बार तूने सहन किये। आत्मज्ञान बिना। इसलिए सम्यग्दर्शन की प्रगट प्राप्ति के लिये यह बात कही जाती है। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**आषाढ़ शुक्ल ४, रविवार, दिनांक-२३-०६-१९७४**
**गाथा - ३७ से ४१, प्रवचन-१८१**

३७ में ऐसा कहा है कि यह शरीर जो है यह शरीर, उसमें एक-एक (अँगुल) में ९६-९६ रोग। यह शरीर। एक अँगुल में ९६ रोग। ऐसा पूरा शरीर वेदना की-रोग की मूर्ति है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं वहाँ सड़कर सब। चमड़ा सड़ा हुआ पड़ा है अन्दर। आहाहा! माँस और हड्डियाँ, वीर्य और पेशाब और दस्त भरी है अन्दर। वह यह शरीर है। ऊपर की थोड़ी चमड़ी निकाल डाले तो खबर पड़े। यह चमड़ी ऊपर की जरा गन्ने का छिलका निकाले, वैसा जरा निकाले तो खबर पड़े। माँस और हड्डियाँ, पेशाब और विष्टा से भरा हुआ है। भगवान आत्मा आनन्द से भरपूर है। उसके लिये बात करते हैं। भाई! तू शरीर की ममता छोड़। ऐसे शरीर में ऐसे रोग तूने अनन्त बार सहन किये हैं। एक-एक अँगुल में ९६ रोग, ऐसे पूरे शरीर में ऐसे रोग भगवान कुन्दकुन्दाचार्य करुणा से कहते हैं। भाई! तूने ऐसे रोग अनन्त बार सहन किये। एक बार उस आत्मा की भावना नहीं की। आत्मा आनन्द शुद्ध चैतन्य परम पवित्र, पुण्य-पाप के विकल्प के मलिन से भी रहित ऐसी चेतन की श्रद्धा, ज्ञान और भावना नहीं की। इससे ऐसे चार गति के दुःख सहन करना पड़े। आवे तब....

कहते हैं, अरे! तुझे ऐसा शरीर। मुनि को लक्ष्य कर कहते हैं, हों! तूने द्रव्यलिंग धारण किये, नग्नपना धारण किया, पंच महाव्रत के विकल्प भी धारण किये। परन्तु वह तो सब द्रव्यलिंग है। आत्मा के स्वरूप की... आनन्दस्वरूप जिसका शरीर है, ज्ञान जिसका शरीर है, आनन्द जिसका रूप है—ऐसे आत्मा के अन्तर वेदन—सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया। उस आत्मा के आनन्दस्वरूप का वेदन, उसके भान बिना ऐसे द्रव्यलिंग तो अनन्तबार धारण किये हैं। इससे तुझे कुछ जन्म-मरण मिटे नहीं। यह कहते हैं।

**हे महायश!** देखो! ऐसा बुलाते हैं। बाह्य त्याग किया है, नग्न साधु हुआ है, द्रव्यलिंग धारण किया है, उसे सम्बोधन करते हैं। **हे मुने! तूने पूर्वोक्त रोगों को पूर्वभवों में तो परवश सहे,...** अनन्त बार शरीर के रोग सहन किये। आहाहा! एक-एक अँगुल में ९६ रोग, ऐसे पूरे शरीर में रोग प्रस्फुटित हों, ऐसी वेदना में तूने अनन्त काल व्यतीत किया, भाई! मुनि! उन्हें लक्ष्यकर कहते हैं। **परवश सहे, इस प्रकार ही फिर सहेगा,...** आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, वह ज्ञानस्वभावी चीज़, उस ज्ञान की भावना, स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप की भावना की नहीं तो फिर ऐसे रोग के दुःख सहन करना पड़ेंगे। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

**बहुत कहने से क्या?** आचार्य कहते हैं, बहुत क्या कहें भाई! तेरी शरीर की वेदना के दुःख तूने सहन किये, भगवान ने देखे और जाने। अब ऐसा अवसर मिला तो आत्मा की भावना कर न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अकेला ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द के स्वभाव का जिसका स्वरूप है, जिसका शरीर ज्ञानविग्रह है। समझण— ज्ञान, वही उसका शरीर; यह (जड़) शरीर नहीं। ऐसे आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा की अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन करके भावना कर न, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! बाह्य महाव्रत आदि अनन्त बार धारण किये। यह नग्नपना, हों! वस्त्रसहित साधु, वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं उसे तो। उसे तो द्रव्यलिंग भी नहीं। परन्तु नग्नपना धारण किया, महाव्रत पालन किये, पाँच समिति, गुप्ति, हजारों रानियों का त्याग किया, परन्तु अन्दर में स्वभाव की भावना बिना मिथ्यात्व का त्याग नहीं हुआ। वह मिथ्यात्व की गन्ध रह गयी है। अभी आगे कहेंगे। (गाथा) ४३ में कहेंगे। '**भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण**' अभ्यन्तर की गन्ध छोड़ प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न ४३? राग और पुण्य के परिणाम का प्रेम, वह चैतन्यमूर्ति का अप्रेम, ऐसी जो गन्ध तुझे बैठी है। आहाहा! राग—शुभराग और (कर्म) दोनों भावकर्म और द्रव्यकर्म और उनका फल शरीर, तीनों की तुझे गहरे-गहरे गन्ध बैठी है। आहाहा! उसकी तुझे एकता है, प्रभु आत्मा आनन्दस्वरूप की एकता तूने तोड़ डाली है अनादि से। आहाहा! ऐसे शरीर के रोग सहन किये।

**भावार्थ :- यह जीव पराधीन होकर सब दुःख सहता है।** पराधीन होकर ऐसे-

ऐसे दुःख सहन करे। **यदि ज्ञानभावना करे...** देखा! आहाहा! मैं एक चैतन्यस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसी ज्ञान की एकाग्रता करे। भावना शब्द से (आशय) एकाग्रता। जो राग में पुण्य, दया, दान में एकाग्रता है, वह मिथ्यादृष्टि की एकाग्रता है। आहाहा! एकबार चैतन्यमूर्ति भगवान ज्ञानस्वरूपी आत्मा, अन्दर अमृत का सागर भरा हुआ है, उसकी भावना कर न, कहते हैं। आहाहा! वह आनन्द और निर्विकल्पदशा पी न एकबार। आहाहा! यह शुभ और अशुभराग का पेय जहर का अनन्त बार पिया और ऐसे परवश दुःख भी तूने सहन किये, भाई! वहाँ कोई मददगार था नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** अभिमान है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभिमान-अभिमान। मान चढ़ गया। मुनि हो गये, ऐसा करे भगवान! बापू! भाई! मुनिपना किसे कहना? अभी आनन्दस्वरूप को खोजकर, शोधकर साधा नहीं। शुद्ध ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें राग, पुण्य-पाप का विकल्प भी नहीं, ऐसे ज्ञान को शोधकर ज्ञान की रमणता की नहीं, वह सम्यग्दर्शन (हुआ नहीं)। उसमें तेरे क्रियाकाण्ड के भाव संसार के कारणरूप हैं। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह सब संसार है। राग है, संसार है। परवशरूप से प्रभु! तूने बहुत दुःख सहन किये। आहाहा! जरा कुछ अनुकूलता मिले यहाँ। शरीर ठीक मिले, पैसा कुछ पाँच-दस लाख, कीर्ति देखे, यह हो जाये कि मैं यह। अरे! प्रभु! क्या है तुझे? भाई! तेरी चीज़ खो गयी तुझे। आहाहा! जहाँ खो गयी है, वहाँ शोध न! राग की क्रीड़ा में चैतन्यमूर्ति भगवान खो गया है। पुण्य और पाप के विकल्प की कलुषितता, आहाहा! उसकी क्रीड़ा में राम खो गया है। चैतन्य भगवान आत्मा सिद्धस्वरूपी तेरा स्वरूप है। आहाहा! ऐसे ज्ञान की भावना कर न, कहते हैं। आहाहा!

आचार्य देखो! इसमें से निकाला। भाई! ऐसे शरीर के रोग तो बहुत सहन किये, उसके भोग लिये शरीर के—माँस, हड्डियाँ, चमड़े के। आहाहा! यह चमड़ी, हड्डियाँ, माँस, रुधिर, वीर्य से भरपूर शरीर के भोग तूने लिये तो उसका तो—जड़ का तो भोग कोई कर नहीं सकता। यह ठीक है, ऐसा मानकर तूने राग का भोग किया। आहाहा! राग का अनुभव किया, राग का वेदन किया, राग को तूने जाना। आहाहा! परन्तु तेरा स्वरूप उस रागरहित आनन्दस्वरूप प्रभु, वह ज्ञान का सागर, ज्ञान का भण्डार, उसकी

तूने भावना नहीं की। आहाहा! भावना अर्थात्? उस ज्ञानस्वभाव में एकाग्र नहीं हुआ। और एकाग्र हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! यह अनुभूति चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा। अनुभूतिविहितं, अपने आया न, दोपहर में आया। बारह अंग में भगवान ने आत्मा के आनन्द का अनुभव करना, यह कहा गया है। शास्त्र ने यह कहा है। आहाहा! राग करना... दो बात... हेतु। विहितं। ज्ञानशिव हेतु विहितं। पश्चात् अनुभूति विहितं परम आगम में। आहाहा! गजब बात है। भाई! भगवान के आगम में वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के शास्त्र में आत्मा राग से रहित है। पुण्य की, दया, दान की क्रिया से रहित, उसकी अनुभूति कर, ऐसा कहा है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा उपदेश भगवान ने आगम में दिया है।

कहो, गृहस्थ हो या मुनि हो, उसे अनुभूति करना, यह आदेश, यह उपदेश, ऐसा भगवान का है। आहाहा! राग दया, दान, व्रत को करना, वह भगवान की आज्ञा नहीं। वह तो बन्धन का कारण है। आहाहा! कठिन बात है। समझ में आया? यह द्रव्यलिंग धारण किया तूने। यह तो द्रव्यलिंग का भी कहाँ ठिकाना है? आहाहा! वह तो द्रव्यलिंग महाव्रत ऐसे चुस्त निरतिचार पालन करे। परन्तु वह सब द्रव्यलिंग है, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! ऐसे शरीर के रोग पीड़ित हो गया... पीड़ित हो गया... पिल गया। अनन्त बार ऐसी पीड़ा में पिल गया, प्रभु! अरे! तूने आत्मा आनन्दमूर्ति निरोग चैतन्य-शरीर, निरोग चैतन्य-शरीर ऐसा जो अभ्यन्तर चैतन्यपिण्ड, उसकी तूने श्रद्धा, ज्ञान, अनुभव नहीं किया। उसका तुझे विश्वास नहीं आया कि मैं पूर्णानन्द प्रभु हूँ। मेरे साधन के लिये मेरा स्वभाव ही साधन है। आहाहा!

रागादि क्रिया जिसे साधन कहा था, वह बाधक है। आहाहा! ऐसा ज्ञान भगवान आत्मा चैतन्यब्रह्म, उसकी भावना नहीं की। ऐसा कहा न, देखो! **यदि ज्ञानभावना करे और दुःख आने पर...** चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं ज्ञान का भण्डार जाननेवाला-देखनेवाला। ऐसी जो अन्तर भावना करे तो दुःख आवे, **उससे चलायमान न हो,...** दुःख तो प्रतिकूल संयोग शरीर का है। वह तो ज्ञेय है। शरीर में सब रोग प्रस्फुटित हो परन्तु वे तो ज्ञेय हैं। ज्ञान में जाननेयोग्य ज्ञेय हैं। वह कहीं मेरी चीज़ में नहीं, तथा वह मेरी चीज़ में रोग आ जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा! चैतन्यस्वरूप भगवान को ज्ञानविग्रह कहा है। ज्ञान

उसका शरीर है। समझण का पिण्ड, वह उसका शरीर है। उस शरीर की सम्हाल कर। आहाहा! ऐसे धूल की सम्हाल तो बहुत की। शरीर से यत्न दया आदि भी पालन किये। वह कुछ चीज़ नहीं। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! ऐसा बहुत सूक्ष्म मार्ग। परमागम में भगवान का फरमान आत्मा के आनन्द का अनुभव करना, आत्मा की शान्ति को वेदना, ऐसी अनुभूति की व्याख्या परमागम में की है। आहाहा! समझ में आया? उससे जन्म-मरणरहित हो सकेगा। ... नहीं।

**इस तरह स्ववश होकर... स्ववश होकर...** परवश तो अनन्त बार दुःख सहन किये रोग के। आहाहा! परन्तु परवश छोड़कर स्ववश... मैं एक आत्मा आनन्द का सागर हूँ। मेरी अनुभूति में मुझे आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! मेरे सम्यग्दर्शन में मेरी शान्ति का नमूना वेदन में आता है। उसे वेद न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ओहोहो! मार्ग सुना नहीं और कुछ का कुछ मानकर बैठे हैं। क्या हो? **इस तरह स्ववश होकर सहे...** अपने आनन्दस्वरूप में ज्ञानस्वरूप के अस्तित्व में रहकर शान्ति को वेदे, तो (जो) दुःख परवशरूप से सहन किये, वह अभी स्ववश सहन करे। सहन करने का अर्थ जाने-देखे। आहाहा! **तो कर्म का नाश कर मुक्त हो जावे,...** फिर तो उसे शरीर मिले ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! आनन्दसरोवर में निर्विकल्प पानी पी न, कहते हैं। आहाहा! **इस प्रकार जानना चाहिए।** इस प्रकार से आत्मा का शुद्ध पूर्ण आनन्दस्वरूप, सिद्धस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान की भावना करे, कर्म का नाश होकर मुक्ति मिले। आहाहा! यह क्रियाकाण्ड से कुछ मुक्ति मिलती नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। पुण्य हो, स्वर्ग-बर्ग मिले। उसके साथ अंगारा से सिंके, सुख-दुःख से।

★ ★ ★

## गाथा - ३९

**आगे कहते हैं कि अपवित्र गर्भवास में भी रहा :—** भाई! मुनि को लक्ष्य करके मुख्य बात है। द्रव्यलिंग धारण किया, परन्तु समकित किया नहीं। आहाहा! अपने घर को नहीं देखा। वह कहा था न, भाई! व्यभिचार का। पद्मनन्दि में शास्त्र का व्यभिचार कहा था। यह अपने निर्जरा में कहा था। व्यभिचार शुभराग। निर्जरा अधिकार २०३, ६। व्यभिचार है। आहाहा! शास्त्रश्रवण का विकल्प... गजब बात है। दया, दान का राग, भगवान कहते हैं, भाई! वह तो व्यभिचार है। चैतन्यमूर्ति आनन्द का नाथ, उसके साथ संयोगीभाव का वेदन व्यभिचार है।... ... तीर्थंकर प्रकृति बँधी, जहर का वृक्ष है। १४८ प्रकृति, इसलिए उसका मोक्ष होगा? उसे तो संसार बढ़ता है। पाँचों पाण्डव शत्रुंजय पर ध्यान में थे, दुर्योधन ... लोहे के गहने गर्म धगधगते करके, लोहे के गहने गर्म पहनाये। कड़े पहनाये, यहाँ पहनाये, पैर में पहनाये। आहाहा! मुनि तो आनन्द के ध्यान में थे। आनन्द का वेदन करते थे। उन्हें दुःख का वेदन ही नहीं। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द में गहरे उतर गये हैं। द्रव्य के तल में दृष्टि गयी है। आहाहा! जहाँ पूर्ण शक्तियाँ पूर्ण पड़ी हैं द्रव्य में, वह शुद्धता, वहाँ गहरी दृष्टि तल में गयी है। आहाहा! ऐसे आनन्द के वेदन में तीन मुनि तो मोक्ष पधारे। धर्म (राजा), भीम और अर्जुन। धर्मराजा, भीम और अर्जुन। सहदेव और नकुल दो ध्यान में छोटे भाई। एक तो सहोदर, साधर्मी और तीन बड़े। कैसे हुआ होगा? इतना विकल्प आया। मुनियों को कैसे होगा? इतना विकल्प आया, वहाँ दो भव हो गये। आहाहा!

**मुमुक्षु :** विकल्प का काल कितना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विकल्प का काल एक अन्तर्मुहूर्त। फल तैंतीस सागर का आयुष्य सर्वार्थसिद्धि का बँध गया। लो, यह शुभभाव साधर्मी के प्रति का शुभभाव। यह मुनि को कैसे होगा? ऐसा विकल्प एक शुभराग, हों! वह पुण्य शुभराग है। कैसे होगा? ओहोहो!... है, बड़े के रूप में है, सहोदर रूप से है, साधर्मी रूप से है। आहाहा! यह वृत्ति उठी जरा-सी कि कैसे होगा? आयुष्य बँध गया। तैंतीस सागर आयुष्य। केवल(ज्ञान) तैंतीस सागर दूर हो गया।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** फिर वापस मनुष्य का भव। वह और कितना हो करोड़ पूर्व का आयुष्य हो वहाँ। आहाहा! मोक्ष जानेवाले हैं, परन्तु इतने अन्तराल से जानेवाले हैं। आहाहा! देखो, यह शुभभाव समकिती का, मुनि का। भावलिंगी की भूमिका में ऐसा एक विकल्प उठा, वहाँ इतने सागरोपम संसार में रहना पड़ा। आहाहा!

तो यहाँ कहते हैं कि मुनि तेरे आनन्द के ध्यान में रह न, भाई! आहाहा! उस आनन्द को कभी ध्येय बनाया ही नहीं। तुझे सब क्रियायें दया, दान की ध्येयरूप से थी। मिथ्यात्व की श्रद्धा में वह ध्येयरूप से थी, वह करनेयोग्य थी, ऐसा माना। आहाहा! आनन्दसागर भगवान का ध्येय तूने किया नहीं, भाई! आहाहा! और उसके ध्येय के ध्यान बिना जन्म-मरण मिटे, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

**आगे कहते हैं कि अपवित्र गर्भवास में भी रहा :—** आहाहा!

**पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले।**
**उयरे वसिओ सि चिरं णवदसमासेहिं पत्तेहिं॥३९॥**

**अर्थ :- हे मुने!** यह पहली शैली ऐसी वर्णन करते हैं। वह छहढाला में भी पहला वर्णन ऐसा है न! संसार का वर्णन है, फिर मोक्ष का वर्णन है। संसार में... यह पहला वर्णन है। यह भावपाहुड़ में यह पहला वर्णन है, पश्चात् दूसरा वर्णन कहेंगे। आहाहा! जिस भूमिका में अनन्त काल व्यतीत किया, उसके वेदन की बात पहले करते हैं। भाई! तू दुःखी हुआ। वह कहीं सेठाई या स्वर्ग में कहीं सुख नहीं। वह कषाय की अग्नि से जल गये हैं सब। आहाहा! ये करोड़ोंपति, अरबोंपति राग की अग्नि से सिंक गये है ये। ये सुखी नहीं। आहाहा! देव के सुख भी सुख नहीं। वह कषाय की अग्नि से जलहल सुलग रहे हैं। आहाहा!

अभी मुम्बई में निकले थे न एक। चार मंजिल का मकान। दूसरे मंजिल से अग्नि निकलती थी भड़का। चौथी मंजिल भड़का, वह बड़ा। ओहोहो! व्याख्यान वाँचकर आये थे। दिशा को, नहीं? सवेरे। चार मंजिल का मकान। दूसरे मंजिल से अग्नि सुलगी हुई। पहली मंजिल... चौथी मंजिल में ऐसे भड़का, वह ऐसे बड़े निकलें। पानीवाले

आये वह क्या करे वहाँ पानी ? वह बंबवाला। नीचे ऐसे-ऐसे करते थे। धूल वहाँ क्या हुआ ? धक.... धक.... धक.... धक.... अग्नि थी। ओहोहो ! फिर तो खाली खोखा ही देखा था जला हुआ। नीचे का। नीचे अग्नि नहीं थी। दूसरे से। दूसरे से। फिर सामग्री-बामग्री एकदम सुलगने लगी। भड़का (ज्वाला) बाहर। अग्नि की इतनी-इतनी बड़ी ज्वाला बाहर निकलती थी बाहर ऊपर। आहाहा ! उसमें भी वह तब ही उस स्थान की बात है। उसमें तेरह आदमी जल गये, लो ! तब ही वे कहीं दूसरी जगह, नहीं ? यह तो रास्ते के ऊपर था। दूसरी जगह तब शाम को अग्नि लगी थी वहाँ। निकाल सके नहीं। कहीं कहा सही। जल गये। कितने आदमी निकलते थे, जल गये। आहहा ! यह ऐसे वेदन ! परन्तु भूल गया...। जरा सा शरीर को ठीक रहे, वहाँ बाहर में कहीं भूल गया। आहाहा !

यहाँ कहते हैं। **हे मुने ! तूने इस प्रकार के मलिन अपवित्र उदर में नव मास तथा दस मास प्राप्त कर रहा।** सवा नौ महीने है न। गर्भ में माता के गर्भ में सवा नौ महीने रहा, भाई ! आहाहा ! **कैसा है उदर ? जिसमें पित्त और आँतों से वेष्टित,...** है। आहाहा ! पित्त भरा है सब और आँतें ऊपर भरी हैं। आहाहा ! ऐसे गर्भ में सवा नौ महीने रहा। **मूत्र का स्त्रवण,...** पेशाब में भी रहा, भाई ! तुझे खबर नहीं। आहाहा ! **फेफस अर्थात् जो रुधिर बिना मेद फूल जावे,...** मेद फले, फूले। उसमें अन्दर में नौ महीने, सवा नौ (महीने)। उल्टे सिर (रहा)। आहाहा ! यहाँ तो ऐसा वेदन शरीर में तूने किया, इसलिए अब तू आत्मा का ध्यान कर। यह बात है। भाई ! तू अब आत्मा की ओर ढल अब। आहाहा ! भगवान तीन लोक का नाथ चैतन्यमूर्ति विराजता है, भाई ! तू तेरा स्वरूप ही, 'अप्पा सो परमअप्पा' आत्मा, वह परमात्मस्वरूप ही है, प्रभु ! तुझे खबर नहीं। आहाहा ! ऐसे परमात्मस्वरूप पर आ। तुझे आनन्द होगा और जन्म-मरण मिट जायेंगे। आहाहा ! उसमें कोई सिफारिश काम नहीं आवे कि मैंने इतना तो किया था और ऐसा तो किया था। दया, दान और व्रत पालन किये थे। जगत को भी पालन करवाये थे। वह तो तूने संसार किया था और संसार पालता आया है। सुन न ! आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

**कालिज्ज अर्थात् कलेजा,...** कलेजा यह, कलेजा यह। कलेजे में अन्दर रहा नौ महीने माता के गर्भ में। आहाहा ! स्त्री का शरीर, वह बच्चों को-मनुष्यों को उपजने की

एक मशीन है। आहाहा! ऐसा आया है पत्रिका में। एक व्यक्ति ने लिखा है। आहाहा! बच्चों को उत्पन्न होकर बड़े होने का नौ-नौ महीने की उसकी यह मशीन है। आहाहा! हड्डियाँ, माँस और रुधिर भरा हुआ है यह। आहाहा! खून-रक्त भरा है। **खरिस अर्थात् अपक्व मल से मिला हुआ रुधिर श्लेष्म...** श्लेष्म आदि यह। **और कृमिजाल अर्थात् लट आदि ( बारीक ) जीवों...** पड़े अन्दर। आहाहा! ऐसे **जीवों के समूह ये सब पाये जाते हैं—इस प्रकार स्त्री के उदर में बहुत बार रहा।** स्त्री के गर्भ में माँस और हड्डियाँ उसमें। आहाहा! अरे! कलंक है न, प्रभु! तुझे यह, कहते हैं। निष्कलंकी चीज़ ऐसे कलंक में रहा। छोड़ न अब, आहाहा! शरीर।

नहीं कहा उसमें? शरीर जन्मे कलंक है। योगसार। योगसार में है। कर्मजनित जन्मो टले। आता है न? जन्मो टले। आहाहा! 'पिये न जननी क्षीर' माता का दूध न पीवे फिर। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द की लहर लगी, जगत के प्रेम से उठ गया है वह। आहाहा! और जिसे प्रेम में परमात्मा स्वयं आ गया प्रेम में, अपना आत्मा। उसे अब फिर से जन्म-मरण नहीं होते अब। एकाध भव हो, वह भी वह तो ज्ञातारूप से, ज्ञेयरूप से जाने। आहाहा! जं दुखं, जरा दुःखं रोगाय मरणानीय। ...सूत्र में आता है। उत्तराध्ययन। ओहो! दुःखो संसारो... जहाँ क्लेश को जीव अनन्त बार पावे। जिसमें जन्म के दुःख, मरण के दुःख। आहाहा! मरण के समय उसे त्रास होता है। क्योंकि वहाँ से वापस कहीं जन्मना पड़ेगा। आहाहा!

आत्मा की शान्तिसहित देह छूटे, तब तो मरणरहित हो सके। आहाहा! 'जगत को मरण का भय है, ज्ञानी को आनन्द की लहर।' आहाहा! देह छोड़ने के समय आत्मा के आनन्द में निर्विकल्प में मस्त है। आहाहा! कदाचित् विकल्प उठता है तो भी शान्ति से देह छोड़ता है। समझ में आया? जिसे आनन्द की बर्फी के ऊपर दृष्टि पड़ी है, आहाहा! वह आनन्द के वेदन में देह छोड़ता है। आहाहा! श्रीमद् ने कहा न अन्तिम? मनसुख! माँ को खेद होने नहीं देना। मैं मेरे स्वरूप में समाता हूँ। आहाहा! सत्य सच्ची बात है, हों! मैं मेरे स्वरूप में जाता हूँ। आहाहा! लोग तत्त्व की वस्तु नहीं जानते। वे तो कहे, वे सो रहे थे तो चिल्लाहट मचाते थे। झबेरभाई थे न भाई उनके बहनोई। सायलावाले बहनोई। कहे, हमको तो कुछ बैठा था, श्रद्धा कुछ नहीं थी हमको तो।

चिल्लाहट मचाये। घण्टे, डेढ़ घण्टे तक चिल्लाहट। वह तो देह की क्रिया है। श्वास रुंधे और अल्प काल शरीर छूटने में देर लगती हो। होता है, उसमें आत्मा को क्या है? कहे, मैं आत्मा में समाता हूँ, वह ऐसा ही है यह। आहाहा! चेतनजी!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह वस्तु ही ऐसी है। वह तो उस समय मुझे सुनाओ, ऐसा विकल्प भी नहीं। देखो न! आहाहा! अब मैं मेरी चीज़ में समाता हूँ। उसमें मैं जाता हूँ। अब मेरा उपयोग पर में से फिरता है। आहाहा! देह छूट गयी। शान्ति से, समाधि से देह छूट गयी। समझ में आया? उन्होंने जन्म-मरण का अन्त किया। एकाध भव हो तो भी वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा!

कहते हैं, ऐसी कृमिजाल में तू स्त्री के उदर में बसा, भाई! अब कहाँ तक तुझे ऐसे दुःख सहन करना है? आहाहा! आठ-आठ वर्ष के बालक सम्यक्त्व पाते थे। आठ वर्ष की उम्र के। आत्मज्ञान पाकर केवल (ज्ञान) लेते थे। अन्तर्मुहूर्त में केवल(ज्ञान)। आहाहा! भरा भण्डार पड़ा है, उसमें खाने में तुझे देरी लगे इतनी देर है। आहाहा! आनन्दसागर से भरपूर प्रभु है न! जितने खाजा निकालना हो, उतने निकाल खाने के। आहाहा! उसकी श्रद्धा और उसकी भावना कर न, भाई! आहाहा! तो यह तेरे स्त्री के पेट में जन्मना मिट जायेगा। आहाहा!

★ ★ ★

**गाथा - ४०**

**फिर इसी को कहते हैं :—** विशेष।

**दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णांते।**
**छद्दिखरिसाण मज्झे जढरे वसिओ सि जणणीए॥४०॥**

**अर्थ :- हे जीव! तू जननी ( माता ) के उदर ( गर्भ ) में रहा,...** यह तो मनुष्य की बात करते हैं, लो! उन एकेन्द्रिय के दुःख, वह तो एकओर रखो, कहते हैं। यह तो प्रत्यक्ष हो, ऐसे दुःख का वर्णन करते हैं। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय के

दु:ख, नरक के दु:ख, वे तो एक ओर (रखो)। यह तो प्रत्यक्ष दिखते हैं, उसकी बातें करते हैं। देखो! आहाहा! **हे जीव! तू जननी ( माता ) के उदर ( गर्भ ) में रहा,...** माता के गर्भ में तू रहा। **वहाँ माता के और पिता के... 'दियसंग'** दोनों के भोग का अन्त। **'ट्ठियमसणं'** दोनों के खाये हुए वमन जैसी चीज़ें अन्दर पड़ी। जूठन पड़े खाये हुए का अन्दर। उसमें नौ महीने रहा, भाई! आहाहा! यहाँ जरा प्रतिकूलता जरा हो, वहाँ तो चिल्लाहट मचा जाये। आहाहा! व्यवस्थित दाल उड़द की एकरस व्यवस्थित न हुई हो, छाछ को साबूत उबाला जैसा हुआ हो तो ढींचणीयुं (पुराने जमाने में भोजन करते समय घुटने के सहारे के लिए बायीं ओर रखा जानेवाला लकड़ी का छोटा टुकड़ा) फैंके। किसने किया ऐसा? धूल। धान का धूल कर डालते हैं। माँगे तब तो लाकर देते हैं। पकाना आता नहीं? कौन है (पकानेवाला) ऐसा बोले, लो! अरे! भाई! आहाहा! पुरुष और महिलायें... क्रोधित हो जाए। आहाहा! उसकी बहू को साथ में रांड कह दे। कौन रांड थी यह पकाने में? अरे! क्या हुआ भगवान तुझे? आहाहा! क्रोधित। रांड कहकर तेरी बहू को रांडी रांड किया? आहाहा!

अरे! तुझे जरा सी प्रतिकूलता सहन न हुई, नाथ! ऐसी अनन्त प्रतिकूलता तूने सहन की न। आहाहा! अब एक बार तो देख न सामने। यह चैतन्य का नाथ अन्दर विराजता है। आहाहा! एक समय की अवस्था के पीछे महाप्रभु विराजता है। आहाहा! पर्यायबुद्धि में रहकर प्रभु! तूने ऐसे दु:ख सहन किये। तूने तेरी द्रव्यबुद्धि, तत्त्वबुद्धि, स्वभावबुद्धि नहीं की। आहाहा! ऐसा आचार्य संसार के दु:ख का वर्णन बताकर आनन्द के धाम में ले जाना चाहते हैं। आहाहा! भाई! कहीं सुख नहीं संसार में। यह संसार के भोग, पैसा, इज्जत और बँगला। पाँच-पाँच, दस लाख के मकान। सब अग्नि सुलगती है तुझे, भाई! यह मेरे। यह मेरे, यह मोह और मिथ्यात्व है। आहाहा! कहो। यह पैसे मेरे, लक्ष्मी मेरी, स्त्री मेरी। यह परवस्तु है। परवस्तु तेरी कहाँ से हुई वह? तेरी हो तो तुझसे भिन्न कैसे रहे? यह तो भिन्न रहते हैं। घर में इकट्ठे रहते हैं न परन्तु दस व्यक्ति अभी। घर में भी इकट्ठे नहीं कोई, भिन्न के भिन्न हैं, भाई! आहाहा!

एक व्यक्ति को देखा था (संवत्) १९७६ के वर्ष में। ध्रांगध्रा। उपाश्रय के साथ एक संघवी थे संघवी। ७६ के वर्ष, परन्तु कितने वर्ष हुए? ५४ वर्ष। ५४। दशाश्रीमाली

थे। वीरचन्द संघवी नहीं आये थे? वे नहीं, वह सूरचन्द सूरचन्द संघवी। उनके परिवारी सामने थे। यह ७६ की बात है। उन्हें बहुत पीड़ा उठी। देह छूटने का प्रसंग। बुलाओ महाराज को। परन्तु इतनी पीड़ा... इतनी पीड़ा... खाट पर तो सुलाया नहीं जाये। नीचे बिस्तर किये। वहाँ बिस्तर में रह सके नहीं। घाणी की भाँति ऐसे से ऐसे। ५०, ५५, ६० वर्ष की उम्र होगी। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... मांगलिक सुनने का अवसर न मिले। इतना कोई अन्दर से। बिस्तर से नीचे गिरे, यहाँ पड़े, यहाँ पड़े। आहाहा! देखो, वह दुःख सहन होते नहीं वहाँ... आहाहा! ऐसे साता शोधने, ऐसे साता मिलेगी, मानो यहाँ से दुःख कम होगा, यहाँ से दुःख कम होगा। परन्तु दुःख तो तूने एकत्व से माना, वहाँ है। आहाहा! यहाँ दुःख वहाँ कहाँ था? आहाहा! यह शरीर और राग की एकता के मिथ्यात्व के दुःख हैं, वे सब, भाई! उन्हें कम कैसे करना? यह तो यहाँ कुछ कम हो। दवा लाओ। परन्तु उसे दवा का था नहीं। इतनी पीड़ा। बहुत पीड़ा, गजब पीड़ा। सिर तो ऐसे से ऐसे हुआ करे। भाषा बोल सके नहीं। मांगलिक सुनने को भी स्थिरता न मिले इतनी पीड़ा। उपाश्रय आये, देह छूट गयी।

**मुमुक्षु :** मांगलिक तो सुना न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मांगलिक सुनाया परन्तु वह मुश्किल-मुश्किल से। पीड़ा बहुत पीड़ा... बहुत पीड़ा। बिस्तर पर बैठ सके नहीं। बैठ सके नहीं। सो सके नहीं। बिस्तर में सो सके नहीं। ऐसे घाणी की भाँति अन्दर में कुछ होती होगी पीड़ा। ऐसी।

अरे... भाई! तूने ऐसे दुःख सहन किये, प्रभु! उसके नहीं। तूने ऐसे सहन किये। यह मानो कि वे उसे हैं। परन्तु ऐसे तो अनन्त बार तूने सहन किये हैं। तूने स्वयं किये हैं, भाई! आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। माता के गर्भ में माता और पिता के खाये हुए **छर्दि ( वमन ) का अन्न, खरिस ( रुधिर से मिला हुआ अपक्व मल ) के बीच में रहा, कैसा रहा?** आहाहा! **माता के दाँतों से चबाया हुआ और उन दाँतों के लगा हुआ ( रुका हुआ ) जूठा भोजन माता के खाने के पीछे जो उदर में गया, उसके रसरूपी आहार से रहा।** उसके रस का आहार लिया तूने। आहाहा! जूठन। उसका शरीर बँधा और वह आहार लिया। आहाहा! ऐसे दुःख तूने अनन्त बार सहन किये। यह आत्मज्ञान बिना और सम्यग्दर्शन बिना। द्रव्यलिंग धारण किया, तथापि आत्मज्ञान नहीं लिया।

जन्म-मरण नहीं मिटे। आहाहा! **उदर में गया, उसके रसरूपी आहार से रहा।** आहाहा!

अब बाहर की बात लाते हैं। तूने रोग के दुःख सहन किये, फिर गर्भ के, अब शिशुकाल के। अब जन्म के बाद की बात करते हैं आचार्य। आहाहा! यह इतिहास माँडा है इसका। यह कुन्दकुन्दाचार्य बारोट हैं, दुनिया का इतिहास बतानेवाले। वह बारोट बतावे या नहीं तुम्हारे पिता ऐसे थे? यह बारोट नहीं आता? क्या कहलाता है? बारोट को क्या कहते हैं? ... बतावे। उसे बारोट कहे, तुम्हारे क्या कहते हैं? वह बतावे इसे। दसवीं पीढ़ी में पाटण में तुम्हारे पिता ने सवा लाख की एक प्याऊ बनाई थी, तुम्हारे पिता ने ऐसा किया था, बारहवीं पीढ़ी में तुम्हारा पिता इस जगह था, वहाँ सेठिया था और सेठाई की हुई, बहुत गाँव में प्याऊ बँधवाई। आहाहा! उनके तुम पुत्र हो। दो कुछ भाई को। आहाहा! यहाँ भगवान कहते हैं परन्तु तू ऐसा भटकता, रुलता हुआ दुःखी होकर ... तेरे इतिहास की हम बात करते हैं। अब तू वह बात छोड़ दे अब। यह भटकना छोड़ दे, प्रभु! वहाँ तुझे शान्ति नहीं। आहाहा! किसी भव में शान्ति नहीं। चार गतियाँ। कही नहीं? पंचास्तिकाय में नहीं? पराधीन। पहली गाथाओं में। पहली गाथायें। पराधीन। परतन्त्र चार गतियाँ हैं, भाई! एक सिद्धगति ही एक वह (स्वाधीन) है। आहाहा!

परन्तु जिसने आत्मा के शुद्ध ध्रुवस्वभाव का जहाँ आश्रय लिया, उसे तो कहते हैं, सिद्धगति की पर्याय की दरकार नहीं। वह पर्याय आनेवाली ही है, होनेवाली ही है, उसमें प्रश्न क्या? आहाहा! जिसने ध्रुव का किया, नित्यानन्द प्रभु को जिसने पकड़ा है। आहाहा! उसमें ऐसी सिद्धदशायें तो पड़ी ही हैं। वह अन्दर में अनुभव होने पर वे आये बिना रहेंगी नहीं। आहाहा! उसे जन्म-मरण का अन्त लाने की कला यह है। आहाहा! बाकी सब बातें हैं, कहते हैं।

★ ★ ★

## गाथा - ४१

**आगे कहते हैं कि गर्भ से निकलकर इस प्रकार बालकपना भोगा :—**

**सिसुकाले य अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओ सि तुमं।**
**असुई असिया बहुसो मुणिवर बालत्तपत्तेण।।४१।।**

आहाहा! '**बालत्वप्राप्तेन**' ऐसा। '**बालत्तपत्तेण**' ऐसा '**बालत्वप्राप्तेन**' बालपने को प्राप्त तूने अज्ञानरूप से राग और पुण्य को धर्म माना। शरीर की क्रिया मुझसे (होती है ऐसा) माना, दया, दान, व्रत के परिणाम को तूने कल्याण का कारण अज्ञानरूप से माना। आहाहा! बाह्य का बाल और अन्दर का बाल दोनों की बात है इसमें। अर्थ में करेंगे।

**अर्थ :- हे मुनिवर!** यह तो द्रव्यलिंग धारण किया है न, उसे लक्ष्यकर बात है। नग्नमुनि है, पंच महाव्रत है। परन्तु तूने यह किया नहीं। सम्यग्दर्शन आत्मा का आश्रय तो लिया नहीं। आहाहा! और पर के आश्रय से ऐसी क्रियाओं में रहा, उसे **हे मुनिवर!** ऐसा कहते हैं। **तू बचपन के समय में अज्ञान अवस्था में अशुचि ( अपवित्र ) स्थानों में अशुचि के बीच लेटा....** आहाहा! छोटी उम्र में अज्ञान अवस्था में भान बिना, अपवित्र स्थान में स्वयं ही ... कहते हैं, उस अशुचि में लोटा। **बहुत बार अशुचि वस्तु ही खाई,...** आहाहा! पेशाब, विष्टा, मिट्टी खाते हैं न लोग? आहाहा! **बचपन को पाकर इस प्रकार चेष्टायें की।** आहाहा! बालकपना पाकर, भाई! तू भूल गया। जरा जवान अवस्था जहाँ शरीर कुछ ठीक हुआ, जवान अवस्था (हुई), भूल गया, हो गया। आहाहा! यह हाथ नहीं चले, यह पक्षघात हो जायेगा, बापू! यह शरीर मजबूत देखकर क्या करूँ मानो? शरीर द्वारा क्या करूँ? क्या भोगूँ? और किस प्रकार भोगना? ऐसे खेल के घनघनाहट अज्ञानरूप से बालपने में तूने किये प्रभु! आहाहा!

**भावार्थ :- यहाँ मुनिवर इस प्रकार सम्बोधन है कि वह पहिले के समान जानना....** अर्थात् कि बाह्य त्याग किया है इस अपेक्षा से, ऐसा है। **बाह्य आचरण सहित मुनि हो, उसी को यहाँ प्रधानरूप से उपदेश है....** ऐसा। बाह्य नग्नपना धारण किया है, पंच महाव्रत धारण किये हैं, कुटुम्ब छोड़ा है। वह आयेगा। वास्तविक कुटुम्ब छोड़ा

नहीं, यह कहते हैं। यह आयेगा ४३ में। '**मुत्तो बंधवाइमित्तेण**' अन्दर से राग से मुक्त हो तो मुक्त है। ४३ में है। आहाहा! बाँधव, मित्र और कुटुम्ब को छोड़ा, परन्तु राग की एकता छोड़ी नहीं। आहाहा! अभ्यन्तर गन्ध नहीं छोड़ी तो बाहर से वह छोड़ा, (ऐसा) नहीं कहा जाता। आहाहा! वजन अन्दर में है।

**उपदेश है कि बाह्य आचरण किया, वह तो बड़ा कार्य किया,...** यह ठीक है, ऐसा कि व्यवहार से ऐसा। **परन्तु भावों के बिना...** भाव अर्थात् सम्यग्दर्शन और ज्ञान। जिनभावना—वीतरागस्वभाव आत्मा का, उसकी भावना अर्थात् चैतन्य सम्यग्दर्शन की भावना, वह एकाग्रता। वह जिनभावना। राग की भावना, वह मिथ्यात्वभावना। भले दया, दान, व्रत हो, परन्तु भावना करना कि यह हो तो ठीक, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! **भावों के बिना...** भाव शब्द से (आशय) जिनभावना। पर से हटकर स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन में एकाग्रता करना, उसका नाम यहाँ जिनभावना और उस भावना के बिना ऐसे बालपने में दुःख तूने सहन किये। आहाहा!

**इसलिए भाव के सन्मुख रहना,...** देखो! देखा! भाव अर्थात् चैतन्य आनन्द और ज्ञान समुद्र प्रभु, स्वच्छता का सागर है, आनन्द का रूप है, ज्ञान जिसका शरीर है, शान्ति जिसका घर है, आहाहा! उसके सन्मुख रहना। राग और पुण्य से विमुख होना। समझ में आया? आहाहा! सन्मुख-सत्मुख। सत्स्वरूप जो पूर्ण आनन्द, शान्ति, उसके सन्मुख होना। आहाहा! राग के सन्मुख दिशा है, वह दिशा बदल डाल। दिशा बदलने से तेरी दशा बदल जायेगी। राग के प्रेम में पड़ा (तो) तेरी दशा मिथ्यात्व की है। आहाहा! स्वभाव पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति ऐसा जो स्वतत्त्व निजरूप, उसके सन्मुख हो, उसके सामने देख। आहाहा! उसके सामने तूने कभी देखा नहीं। आहाहा! ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का वैराग्यसहित का तत्त्व का उपदेश है।

**इसलिए भाव के सन्मुख रहना,...** भाव अर्थात् आत्मा आत्मस्वरूप, शुद्ध चैतन्यघन की सन्मुखता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह उसकी सन्मुखता है। आहाहा! और रागादि के भाव, वे स्वभाव से विमुख हैं। राग से सन्मुख है और स्वभाव से विमुख है। और यह भावना स्वभाव के सन्मुख है और राग से विमुख है। आहाहा! ज्ञानी को व्यवहार की भावना नहीं होती, ऐसा कहते हैं। व्यवहार हो, परन्तु उसकी भावना नहीं होती।

आहाहा! **इसलिए भाव के सन्मुख रहना,...** भाव अर्थात् आत्मस्वरूप के सन्मुख होना, वह सम्यग्दर्शन। आहाहा! उस बिना की सब बातें यह दया पालन की, व्रत लिये, भक्ति की, साधु (हुआ)। सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! मिथ्यात्व की दीक्षा है। मिथ्यात्व की शिक्षा है। दीक्षा और शिक्षा मिथ्यात्व की। यह तो सम्यग्दर्शन की दीक्षा। वह दरबार कहे न, दीक्षा दो। परन्तु क्या किसकी दीक्षा? अन्तर (में) ले न। तेरी तुझे लेना है या बाहर प्रसिद्ध होना है? आहाहा!

**भाव के बिना अपवित्र स्थान मिले हैं।** आहाहा! यह आत्मा के सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना अकेला द्रव्यलिंग धारण किया। आहाहा! तो यह अपवित्र स्थान तुझे अनन्त बार मिले। उससे छूटना हो तो स्वभाव के सन्मुख हो। विभाव से विमुख हो। एक बात है। आहाहा! यह शरीर और जन्म, गर्भवास ऐसे दु:ख कहे। फिर गर्भवास के दु:ख कहे, फिर जन्म के बाद बालक के कहे। यह दु:खों का पूरा वर्णन। अब यह शरीर और माँस और हड्डियाँवाला है, अकेला हड्डियाँ, माँस, चमड़ी भरे रुधिर में, ऐसी अशुचि की दृष्टि छोड़ दे और शुचि ऐसा भगवान, उसकी दृष्टि कर। इसकी व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल ५, सोमवार, दिनांक-२४-०६-१९७४
गाथा - ४२ से ४५, प्रवचन-१८२

**आगे कहते हैं कि यह देह इस प्रकार है...** शरीर में रोग लिये। फिर रोग को... ऐसे दु:ख सहन किये। आत्मा... सम्यग्दर्शन अर्थात् पुण्य-पाप के राग से भिन्न और अपने शुद्ध पूर्ण स्वभाव से अभिन्न—ऐसा आत्मा, उसे अनुसरकर अनुभव होने पर प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन भावलिंग कहते हैं। वह भावलिंग प्राप्त किये बिना अनन्त-अनन्त देह धारण किये। यह देह की स्थिति का वर्णन करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ४२

**मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्ततसवत्तकुणिमदुग्गंधं।**
**खरिसवसापूय खिब्भिस भरियं चिंत्तेहि देहउडं ॥४२॥**

कहते हैं कि तेरा भगवान आत्मा तो शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम।' शुद्ध अर्थात् पवित्र है, बुद्ध अर्थात् ज्ञानमूर्ति है, चैतन्यघन असंख्यप्रदेशी पिण्ड है। स्वयं ज्योति, उसकी कोई उत्पत्ति किसी कारण से नहीं। स्वयं ज्योति सत् अनादि का है और सुखधाम—आनन्द का स्थान है वह। अतीन्द्रिय आनन्द का ठिकाना / धाम आत्मा। उसकी दृष्टि छोड़कर ऐसे दुर्गन्ध शरीर की रुचि में पड़ा है, उसका वर्णन करते हैं। कहाँ प्रभु निष्कलंक पवित्र आनन्द और कहाँ हड्डियाँ और माँस से भरपूर यह शरीर। (शरीर) अशुचि और यह (आत्मा) शुचि। शुचि का भान कराने के लिये अशुचि शरीर का वर्णन यहाँ करते हैं।

**अर्थ :- हे मुने!** द्रव्यलिंगी मुनि के विषय में। द्रव्यलिंग धारण किया परन्तु भाव बिना ऐसे देह को भी तूने मेरा मानकर, यह देह की क्रिया को भी मेरी मानकर और अन्दर राग का भाव हो, पुण्य का, दया, दान का, वह भी भावशरीरी कर्म है, उसे अपना

मानकर और इस शरीर की दुर्गन्ध में भाव में रचा। **देहरूप घट को इस प्रकार विचार,...** देहरूपी घट मिट्टी का पिण्ड यह। उसका ऐसा विचार कर। **कैसा है देहघट ? माँस, हाड,...** जिसमें अकेला माँस भरा है। आहाहा! हड्डियाँ हैं। **शुक्र ( वीर्य ),...** भरा है अन्दर। आहाहा! **श्रोणित ( रुधिर ),...** खून है। **पित्त ( उष्ण विकार )...** पित्त विकार होता है न उष्ण? उष्णता अन्दर विकार। पित्त हुआ है, उसे ऐसा कहते हैं न!

**और अंत्र ( अंतडियां ) आदि द्वारा तत्काल मृतक की तरह दुर्गन्ध है...** आहाहा! उसकी एकताबुद्धि छोड़, ऐसा कहना है। कहाँ पवित्र भगवान आत्मा और कहाँ अशुचि शरीर माँस और हड्डियाँ। उसके भोग का प्रेम, उसे भोग सकता नहीं परन्तु उसके प्रति होनेवाला राग। राग को अनुभव करके इस शरीर को भोगता हूँ, ऐसा मानता है। परन्तु चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु है, उसकी महिमा करके उसका इसने भोग नहीं किया। चैतन्य आनन्द का अनुभव इसने नहीं किया। यह त्रिकाल आनन्द से भरपूर पदार्थ है। ऐसे अपवित्र शरीर का विचार कर, कहते हैं।

**तत्काल मृतक की तरह दुर्गन्ध है...** मर गया हुआ मुर्दा हो न, दुर्गन्ध, ऐसा है, कहते हैं। **तथा खरिस ( रुधिर से मिला अपक्वमल ), वसा ( मेद ), पूय ( खराब खून )...** पीव-पीव। पीव होता है न। फोड़ा सड़े। अनाज में से दुर्गन्ध होने का यह शरीर एक यन्त्र है। अनाज और मैसूर चाहे जो खाया हो, वह दुर्गन्ध होकर उसका परिणाम आता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं। शरीर पुष्ट क्या होता था? हड्डियाँ-चमड़ी है यह तो। आहाहा! अमृत का सागर प्रभु, अमृत के स्वभाव से डोल रहा है। उसका तूने श्रद्धा-ज्ञान नहीं किया, ऐसा कहते हैं। पवित्र भगवान आत्मा की पवित्रता की प्रतीति नहीं की और यह अपवित्र ऐसा मलिन शरीर, उसे भोगने का, रखने का, रक्षा करने का भाव रखा, वह सब मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। **राध, इन सब मलिन वस्तुओं से पूरा भरा है,...** आहाहा! **इस प्रकार देहरूप घट का विचार करो।**

**भावार्थ :- यह जीव तो पवित्र है...** प्रभु तो अन्दर। आहाहा! शुद्ध बुद्ध। पवित्र

है और बुद्ध—ज्ञान की मूर्ति है वह तो। आहाहा! शुद्ध-बुद्ध **शुद्धज्ञानमयी है...** वह तो शुद्ध ज्ञानमयी प्रभु है। अकेला ज्ञान जिसका त्रिकाल स्वभाव। सर्वज्ञस्वभावमय वह वस्तु है। यह शरीर अत्यन्त दुर्गन्धमय वस्तु है। ऐसे भानसहित की दुर्गन्धता का विचार करे, उसकी बात है। ऐसे तो अज्ञानरूप से तो शरीर की अनित्यता के विचार तो अनन्त बार किये, परन्तु वास्तविक तत्त्व की दृष्टि किये बिना वह सब निरर्थक गया। आहाहा! भावलिंग का वजन देते हैं न यहाँ।

**यह देह इस प्रकार है, इसमें रहना अयोग्य है...** आहाहा! कठोर रोग आवे, तब उसमें—शरीर में न रहूँ अब। क्षणमात्र भी न रहूँ शरीर में, ऐसा इसे लगता है। चारों ओर दर्द हो। दर्द-दर्द। दर्द अन्दर निकले। आँतें आँतों में गर्मी की चिंगारी मारे। गर्मी की चिंगारी। तब ऐसा कहे कि आहाहा! इस शरीर में क्षणमात्र रहना, वह ठीक नहीं। परन्तु जहाँ अच्छा हो, तब वह सब भूल जाये वापस।

**मुमुक्षु :** बहुत भुलक्कड़।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्दर चैतन्य के आनन्द की खबर नहीं, इसलिए ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, अनाकुल शान्ति का रस है वह। ऐसे अनाकुल आनन्द के नाथ को स्मरण बिना, उसके अनुभव की प्रतीति बिना, ऐसी जो जिनभावना—वस्तु के स्वभाव की एकाग्रता, वह जिनभावना, उसके बिना ऐसे अनन्त शरीर मृतक जैसे शरीर में क्षणमात्र रहनेयोग्य नहीं, उसमें रहा। आहाहा! कठोर रोग आवे, तब ऐसा हो जाये कि आहाहा! यह तो आ गया है पहले। एक अँगुल में छियानवें रोग। एक अँगुल में छियानवे रोग। ऐसा पूरा शरीर रोग से भरा है।

★ ★ ★

## गाथा - ४३

**आगे कहते हैं कि जो कुटुम्ब से छूटा, वह नहीं छूटा,...** ऐसा कहते हैं। कोई स्त्री, पुत्र, दुकान छोड़कर बैठा, वह छोड़ा नहीं। **भाव से छूटे हुए को ही छूटा कहते हैं:—**अन्तर की राग की वासना की एकत्वबुद्धि से छूटे, उसे छूटा कहा जाता है। आहाहा! राग का विकल्प जो है शुभ-अशुभ, उसके प्रेम से छूटे और स्वभाव के प्रेम के आनन्द में आवे तो वह छूटा कहलाता है। बाहर के कुटुम्ब छोड़कर बैठे परन्तु अभ्यन्तर गन्ध—राग की एकता की गन्ध बैठी है। यह कहते हैं। अभी कहेंगे। इसमें ही आता है, लो। इसमें ही यह आया ४३ (गाथा)। '**भावविमुक्को मुत्तो**' राग के विकल्प से भगवान छूटा है। वह राग से छूटा, वह छूटा, वह भाव से मुक्त है। आहाहा!

**भावविमुक्को मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण।**
**इय भाविऊण उज्झसु गंथं अब्भंतरं धीर॥४३॥**

आहाहा! हे धीर! यह वहाँ संस्कृत में अर्थ किया है इसमें ही वह। उसमें दूसरा किया है। हे बुद्धि का रांत धीर, ऐसा कहा था, नहीं? रांत का अर्थ क्या किया है? स्वीकार, यह किया है? स्वीकार आया था। पहले आया था। धीर-रांत-स्वीकार। उसमें नहीं आया था कल? संस्कृत इसमें नहीं नहीं? उसमें है। पहले धीर शब्द आ गया था। कहाँ? पीछे की गाथा में न! वहाँ कहा है, हों! वहाँ यह कहीं आया नहीं था? यह आया, लो। आज आया, देखा! 'केवलज्ञान साम्राज्यलक्ष्मी रांती।' रांती-वीरा। वीरा विशिष्टं केवलज्ञान समलक्ष्मी रांती स्वीकृतंती वीरा। स्वीकृत कहीं आया था। स्वीकार आया। यह वीरा में आया, लो। 'विशिष्टं केवलज्ञान साम्राज्य लक्ष्मी रांति।' 'वि' का विशेष अर्थ किया और 'र' का रांति। स्वीकृति। स्वीकुर्वंति। स्वीकुर्वंति वीरा। उसे वीर कहते हैं। आहाहा!

चैतन्य भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति की लक्ष्मीवाला, उसे स्वीकृति करे, उसका स्वीकार करे, उसका आदर करे, उसे वीर कहते हैं। आहाहा! लो, यह ठीक आया। स्वीकृत कहा, कहीं आया था। इस जगह है। चिह्न किया है। रांति स्वीकुर्वंति इति वीरा। स्वीकुर्वंति अर्थात् स्वीकार न? ऐई! पण्डितजी!

**मुमुक्षु :** स्वीकुर्वंति।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अर्थात् क्या?

**मुमुक्षु :** स्वीकार करना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस, स्वीकार करता है। स्वीकुर्वंति।

यहाँ धीर है। बुद्धि में 'र' अर्थात् रांति, आनन्द का नाथ भगवान अनन्त लक्ष्मीवाला, उसे स्वीकृत करे, उसका नाम धीर कहा जाता है। वीर में वह विशिष्ट अनन्त लक्ष्मी आदि। धीर में अपनी धी—बुद्धि, उसमें त्रिकाली ज्ञानानन्द लक्ष्मी अपना पूर्ण स्वरूप राग और विकल्परहित, उसका स्वीकार करे, उसे धीर कहते हैं। आहाहा! जिसका—पर्याय का भी स्वीकार नहीं, ऐसा कहते हैं। निमित्त का स्वीकार नहीं, राग का स्वीकार नहीं, पर्याय का स्वीकार नहीं। त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव शुद्ध चैतन्यघन का स्वीकार। आहाहा! उसने मिथ्यात्वभाव को जीता, ऐसा कहते हैं। उसे वीर कहते हैं और उसे धीर कहते हैं। आहाहा! यह कहते हैं।

**अर्थ :- जो मुनि भावों से मुक्त हुआ उसी को मुक्त कहते हैं...** अन्दर में शुभराग की एकताबुद्धि से छूटा और शुद्ध आनन्द के नाथ को अन्दर अनुभव किया, वह भाव से मुक्त हुआ, उसे मुक्त कहा जाता है। बाहर से द्रव्यलिंग धारण किये, कुटुम्ब, लक्ष्मी छोड़ी, वह कुछ छोड़ा नहीं, कहते हैं। आहाहा! **बांधव आदि कुटुम्ब तथा मित्र आदि से मुक्त हुआ...** बांधव उपरान्त मित्र डाला है। प्रिय मित्र हो न! मित्र प्रिय बहुत हों सैकड़ों मित्र। उसे तूने छोड़ा। परन्तु वह छोड़ा नहीं, कहते हैं। आहाहा! स्वभाव चैतन्य की सामग्री जो पड़ी है अन्दर, उसका प्रेम और प्रीति छोड़कर जिसने राग के विकल्प के साथ प्रीति जोड़ी, वह भाव से मुक्त नहीं। **बांधव आदि कुटुम्ब तथा मित्र आदि से मुक्त हुआ, उसको मुक्त नहीं कहते हैं,...** आहाहा!

बन्धु। परमात्मप्रकाश में आता है न! बन्धु को मारा। रागादि भाव अनादिकाल से बाँधव रूप से साथ में चले आते थे, उसे मारा। परमात्मप्रकाश में है। मुनि ने बाँधव को मार डाला। जो आत्मा के साथ राग का विकल्प शुभ और अशुभ अनादि से बाँधवरूप से साथ में (था)। उसे कभी छोड़ा नहीं। राग ने चैतन्य को कभी छोड़ा नहीं। साथ का

साथ रहता है अनादि से। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसा बन्धु है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा बन्धु। उस बन्धु का घात किया। आहाहा! तेरा राग-विकल्प... उसका जिसने स्वभाव की दृष्टि करके चैतन्य शुद्ध आनन्द में आरूढ़ होकर जिसने एकत्वबुद्धि छोड़ दी, वह मुक्त है। वह मुक्त बिना बाहर से मुक्त होकर बैठे, उसे मुक्त नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**इसलिए हे धीर मुनि!** धी-बुद्धि। र... वहाँ रांति कहलाये उस वीर में जैसे रांति। धी-बुद्धि अन्दर ज्ञान की बुद्धि में त्रिकाल आनन्द का नाथ प्रभु का रांति अर्थात् स्वीकार, उस जीव को यहाँ धीर कहते हैं। आहाहा! बाहर का यह क्रियाकाण्ड करके मर गया अनन्त बार। व्रत, भक्ति, पूजा, दया, दान, तप और अपवास, दो-दो महीने के संथारा। आहाहा! वह तो सब राग की क्रिया थी। आहाहा! वह राग का प्रेम जिसने छोड़ा नहीं। वह बाँधव आदि को भी उसने छोड़ा ही नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

**हे धीर मुनि! तू इस प्रकार जानकर अभ्यन्तर की वासना...** अर्थात् गन्ध। अभ्यन्तर की गन्ध को छोड़। गन्ध अन्दर घुस गयी है। आहाहा! यह काँच की बोतल होती है न काँच की बोतल, नहीं? शीशा क्या कहते हैं? दर्पण नहीं। बोतल। अन्दर डट्टा होता है न नीचे डट्टा। और उसमें केरोसीन हो तो निकाल डाले तो भी डट्टा के आसपास ऐसा केरोसीन लगा हुआ हो। डट्टा होता है न अन्दर डट्टा। यह उसमें से केरोसीन की गन्ध निकलना, तेजाब डालकर लोहे का सरिया डाले। इसी प्रकार अनादि की अभ्यन्तर गन्ध। शुद्ध चैतन्यधीर प्रभु का इसने स्वीकार किया नहीं और राग की क्रिया पुण्य, दया, दान, व्रत का स्वीकार है, वह द्रव्यलिंगी मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! **हे धीर मुनि! तू इस प्रकार जानकर अभ्यन्तर की वासना को छोड़।** बाँधव से मुक्त, वह मुक्त नहीं। भाव से मुक्त वह मुक्त, ऐसा। ऐसा जानकर, ऐसा। **अभ्यन्तर की वासना को छोड़।**

भाई ने लिया है न, वह मोक्षमार्गप्रकाशक में, नहीं? छह काय की हिंसा में अन्दर अभिप्राय। लिया है न सब बहुत लिया। वासना ली है। वास बैठी है, कहते हैं। तुझे राग के प्रेम की वास बैठी है। आहाहा! भगवान आत्मा राग के विकल्प से रहित है।

चैतन्यघन प्रभु है। आहाहा! उसे उसका प्रेम छोड़कर, उसकी गन्ध छोड़ी, उसकी वासना छोड़ी, राग की वासना की गन्ध बैठी है तुझे। आहाहा! वह राग तुझे सूँघने में आता है। भगवान आत्मा उससे भिन्न, उसका भान नहीं। आहाहा! अभ्यन्तर गन्ध को छोड़। आहाहा! भाषा प्रयोग की है न!

निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध-बुद्ध। आता है न! जयसेनाचार्य में बहुत आता है, जयसेनाचार्य की टीका में। शुद्ध-बुद्ध, फिर कुछ शब्द है।

**मुमुक्षु :** एक स्वभावी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक स्वभावी। शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी है, ऐसा। एकस्वभावी है, भेद कहाँ है? आहाहा! पवित्र और अकेला ज्ञान का पिण्ड। एक स्वभावी वस्तु। उसके सन्मुखता की एकता किये बिना राग की गन्ध छूटती नहीं। गहरे-गहरे अन्दर राग का प्रेम और वासना-गन्ध रह जाती है। यह छोड़ा नहीं, उसने बाहर का छोड़ा नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**भावार्थ :- जो बाह्य बांधव, कुटुम्ब तथा मित्र इनको छोड़कर निर्ग्रन्थ हुआ...** नग्नमुनि हुआ मुनि। दिगम्बर मुनि नग्न। यह वस्त्रवाले मुनि को तो द्रव्यलिंग भी नहीं कहते उसे। वस्त्रसहित जो साधु, वे तो भावलिंग तो नहीं, मिथ्यादृष्टि तो हैं, परन्तु द्रव्यलिंग भी उसे नहीं। द्रव्यलिंग तो नग्नदिगम्बर और पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण बराबर हो, उसे द्रव्यलिंग कहते हैं। बातें बहुत कठिन जगत को। पूरे वाड़ा पर चोट पड़ती है। वह भाई कहते न... नहीं? तुम्हारे वह गुजर गये नहीं अभी दयाशंकर न? क्या नाम? ... वह महीने रहे थे न। यहाँ कार्यकर्ता थे न। वह क्या कहलाता है? प्रधान प्रधान थे। वह दयाशंकरभाई थे। यहाँ राजकोट थे। जूनागढ़ के। अभी गुजर गये केन्सर में। वह यहाँ महीना रहे थे। ब्राह्मण थे। परन्तु सुनकर ऐसा कहा, महाराज! जगत के सामने विप्लव है बड़ा। विप्लव है यह। किसी का बिछाया हुआ आसन उड़ा देते हैं। वह ... रहे हैं, नहीं? जयचन्दभाई! वे महीने रहे थे। नानालालभाई के मकान में। अभी गुजर गये। केन्सर। अभी कोई बीमार पड़ा था बड़ा कहते हैं वह राधा। राधाकृष्ण। बेसुध है बेसुध। कोई कहता था कल। लड़के बातें करे। हेमरेज हो गया था। वह बेसुध

था। छह दर्शन का अभ्यासी है। बेसुध पड़ा है, कहते हैं। वह बदल गया है अन्दर से कुछ। आहाहा!

वह तो बाह्य से बेसुध है, परन्तु जिसे राग का प्रेम है, वह अन्दर में बेसुध है। आहाहा! बेसुध अर्थात्? दो शुद्धि होगी? बेखबरो नहीं कहते हैं? बेखबरो। बेखबरो अर्थात् दो खबर है? खबररहित। यह भाषा उसकी है न। फारसी भाषा, ऐसा कोई कहता था। कहता था। वह सुना हुआ हो, वह याद आवे दूसरे। फारसी भाषा है। बेखबरो। खबर दो, ऐसा नहीं, परन्तु खबर बिना का। आहाहा! ऐसे बेशुद्धि अर्थात् शुद्धिरहित। आहाहा! वह (है) जीवित, परन्तु राग की एकतावाले को बेसुध कहते हैं। आहाहा! उस चैतन्य की जागृतदशा को याद नहीं किया। जागती ज्योति चैतन्यस्वरूप से विराजमान भगवान को तूने स्मरण में नहीं लिया। वह तूने राग को स्मरण में लिया, वह बेसुध जीव है। आहाहा! बड़ा राजा हो और दीवान हो, अरबों रुपये की आमदनी हो, बेसुध जीव है। आहाहा!

देखो न कल आया है न वीरायतन थे एक राजगृही नगरी में। वीरायतन। भगवान का आयतन। २५०० वर्ष होते हैं न! आयतन—स्थान बनाते हैं। एक अमरचन्दजी स्थानकवासी साधु हैं वे। उनके पड़े हैं, उन्हें पैसा-बैसा एक करोड़ का करना है, ऐसा लिखा है। अरबपति पड़ा है जयपुरवाला। एक छेलशंकर है। अरबपति है। अर्थात् ५०-६० करोड़ है। झबेरी यहाँ के थे। मोरबी में। दुर्लभजी का छोटा पुत्र है। वह उसमें पड़ा है सामने। आहाहा! वीर के स्थान बनाकर। परन्तु वीर का स्थान कहाँ है? वीरायतन तो यहाँ है। वीर तो यह आया नहीं अपने? वीर अर्थात् विशिष्ट अन्तर आनन्द और अनन्त लक्ष्मी का स्वीकार करे, वह वीरायतन उसने किया। आहाहा! वीर-आयतन। आयतन अर्थात् स्थान घर। वहाँ करनेवाले हैं। एक करोड़। कल आया था। लड़कियाँ यहाँ आयी थीं कलकत्ता की। कि यह वीरायतन यह होता है, इसलिए कुछ....

भाई! यह वीरायतन इसका कर न अब। वह तो सब बाहर के करके मर गया। अब उसमें क्या है? और वह कुछ तुझसे होता है? वह तो होने के काल में होवे तो होता है। तेरा भाव हो जरा शुभ कि भगवान के नाम से शुभ इतना। वह शुभ, वह भी व्यभिचार है। आहाहा! शुभराग का रसीला अनन्द का रसिकपना छोड़ा है जिसने, वह

बेसुध है। आहाहा! उसे चैतन्य ज्ञाता शुद्ध चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा आनन्द की जिसे शुद्धि नहीं।

चैतन्यस्वरूप आनन्द और परमानन्द की मूर्ति की जिसे शुद्धि नहीं। वह राग के कण की उसमें रुक गया, बेसुध है। आहाहा! वीरायतन तो यह है। हो... हा... हो गया है वहाँ तो। ओहो! कितने ५१ तो उसके कोई बड़े सदस्य हैं। उसमें तुम्हारे में से कोई वाडीलाल है। कलकत्ता नहीं भाई? वाडीलाल करोड़पति है न। यहाँ का प्रेम है। स्थानकवासी का प्रमुख है करोड़पति कलकत्ता में। वाडीलाल कानजी। कानजी पानाचन्द। यहाँ आता है, यहाँ का प्रेम है। मार्ग यह है, ऐसा उसे दृष्टि में है। परन्तु वह प्रमुख है। करोड़पति है। उसके पिता को प्रेम था कानजीभाई को। पहले गये तब गये थे घर में। तब कानजीभाई नहीं आ सके। घर में गये तो महाराज मैं आ सकता नहीं, परन्तु मुझे प्रेम है। फिर ऐसा कि पैसे रखे थे कुछ सौ-डेढ़ सौ रुपये।

यह बात ऐसी कठिन है। कठिन अर्थात् कि इसे अभ्यास में नहीं, इसलिए कठिन है। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! है उसे प्राप्त करना, उसमें कठिनपना कहना, वह तो जरा दुर्लभता बतलाने के लिये (बात है)। अनादि की अपेक्षा से। आहाहा! कहते हैं, **बाह्य बांधव, कुटुम्ब तथा मित्र इनको छोड़कर निर्ग्रन्थ हुआ...** निर्ग्रन्थ, हों! दिगम्बर मुनि। **और अभ्यन्तर की ममत्वभावरूप वासना...** यह मिथ्यात्व कहते हैं मूल। अभ्यन्तर राग का प्रेम जो मिथ्यात्वभाव, ऐसा कहते हैं। आहाहा! महाप्रभु चैतन्य शुद्ध का प्रेम छोड़कर... उसका प्रेम। समकिती को राग होता है, परन्तु उस राग का प्रेम नहीं। आहाहा! राग की क्रिया समकिती को होती है। भोग की क्रिया होती है, परन्तु उसमें सुखबुद्धि नहीं है। उसमें उसे खेद होता है। आहाहा! समझ में आया? वह राग छूटता न हो, इसलिए राग में जुड़ जाता है, परन्तु राग की एकताबुद्धि उसे नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जिसे अभ्यन्तर में परद्रव्य के प्रति, राग के प्रति, ममत्व अर्थात् ममत्व शब्द से यह मेरे, ऐसा। रागादि विकल्प ममत्व अर्थात् यह मेरे, ऐसा। उसका नाम ममत्व। समझ में आया? राग का विकल्प जो उठता है। चो तो दया, दान, व्रत, भक्ति का हो, परन्तु 'वह मेरे', यह मिथ्यात्व की वासना है। **तथा इष्ट, अनिष्ट में राग-द्वेष वासना...** अनुकूल देखकर राग तथा प्रतिकूल देखकर द्वेष, वह भी मिथ्यात्व की वासना है। धर्मी को राग-द्वेष भी आता है। रौद्रध्यान भी होता है। परन्तु उसे इष्ट-अनिष्ट

के कारण से रौद्रध्यान हुआ नहीं। निर्बलता के कारण से हुआ है। समझ में आया? यह चीज़ अनुकूल है, इसलिए राग हुआ है, ऐसा नहीं। इसी प्रकार प्रतिकूल चीज़ है, इसलिए द्वेष (हुआ है) ऐसा नहीं। अज्ञानी को अनुकूल है, इसलिए राग और प्रतिकूल (लगे), इसलिए द्वेष, वह मिथ्यात्व का राग-द्वेष है, अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष है। समझ में आया?

दो बोल डाले, देखा! **निर्ग्रन्थ हुआ...** दिगम्बर मुनि हुआ। कुटुम्ब, कबीला, मित्रों को छोड़ा, बाँधवों को छोड़ा, परन्तु अभ्यन्तर की ममता—स्वद्रव्य के अतिरिक्त जितना विकल्प से लेकर परवस्तु, 'वह मेरी'—ऐसी जो ममत्व की वासना, उसे नहीं छोड़ा। समझ में आया? टीका भी देखो न कैसी की है! **ममत्वभावरूप वासना...** अर्थात् मिथ्यात्व की। वे मेरे। शुभराग भी मेरा, मुझे हितकर है, मुझे लाभदायक है। उस राग को अपना माना, वही मिथ्यात्व की ममता है। **तथा इष्ट-अनिष्ट में...** उसमें लिया है यहाँ। इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष। धर्मी को राग-द्वेष होता है। युद्ध का भाव होता है, परन्तु वह अनिष्ट वस्तु है, इसलिए हुआ है—ऐसा नहीं। आहाहा! और अज्ञानी को तो यह इष्ट है, इसलिए राग है; अनिष्ट है, इसलिए द्वेष है। यह अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष है। उस मिथ्यात्व की वासनासहित इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष की वासना नहीं छूटी तो **तो उसको निर्ग्रन्थ नहीं कहते हैं।** आहाहा! तो वह ग्रन्थ में से निकला है, ऐसा नहीं कहते हैं। उसे निर्ग्रन्थ नहीं कहते। आहाहा!

**मुमुक्षु :** निर्ग्रन्थ मुनि नहीं कहते?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं कहते। मुनि नहीं कहते। ऐसी बात है, भाई!

जिसे भगवान चैतन्यस्वरूप शुद्ध की रुचि, अन्तर में पोषण, प्रेम जगा नहीं, उसे उस राग से लेकर परद्रव्य सब ही वे देव-गुरु मेरे और मुझे कल्याण करेंगे, यह भी मिथ्यात्वभाव है। ममत्व शब्द है न! ममत्व—मेरे। राग से लेकर सब चीज़ें। यह चैतन्यमूर्ति अपनी है, उसे न मानकर, यह सब मेरा है। आहाहा! उसे मिथ्यात्व की गन्ध, मिथ्यात्व की वासना कहते हैं। तूने यह सब छोड़ा, परन्तु यह वासना छोड़ी नहीं, कहते हैं, इसलिए तू साधु नहीं। आहाहा!

**वासना न छूटी तो उसको निर्ग्रन्थ नहीं कहते हैं।** आहाहा! **अभ्यन्तर वासना छूटने पर निर्ग्रन्थ होता है,...** चैतन्य ज्ञायकमूर्ति प्रभु की रुचि के समक्ष राग चाहे जिस प्रकार का हो और शरीर चाहे जैसा हो, देव-गुरु-शास्त्र भी हो, परन्तु अभ्यन्तर वे मेरे हैं, यह वासना ज्ञानी को छूट गयी होती है। आहाहा! **अभ्यन्तर वासना छूटने पर निर्ग्रन्थ होता है,...** देखो! यह राग की एकता की गन्ध जिसे छूट गयी, निर्ग्रन्थ। वह निर्ग्रन्थ है। आहाहा! क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही निर्ग्रन्थ है। यह आता है न नियमसार में, नहीं? निर्ग्रन्थ न! ४३ गाथा, शुद्धभाव अधिकार। निर्ग्रन्थ है, ऐसा है, ऐसे बहुत शब्द आते हैं। निर्दंडो, निर्द्वंद्व, ऐसा स्वरूप ही इसका है। नियमसार में आता है। यह निर्ग्रन्थस्वरूप ही है प्रभु आत्मा का। अर्थात्? कि राग के कणरहित और रजकणरहित वह चीज़—वस्तु है। रजकण अर्थात् अजीव तथा राग अर्थात् आस्रव / विकार। अर्थात् आस्रव और अजीवरहित वह चीज़ है। आहाहा! उसे आस्रव—रागवाली और शरीर—रजकणोंवाली मानना, वही ममत्व और मिथ्यात्व है। आहाहा!

**वासना छूटने पर निर्ग्रन्थ होता है,...** आहाहा! **इसलिए यह उपदेश है कि अभ्यन्तर मिथ्यात्व कषाय छोड़कर...** देखो! दो भाषा ली। वह ममत्वभाव, वह मिथ्यात्व (और) इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष अर्थात् अभ्यन्तर मिथ्यात्व और कषाय दो लिये। गजब! मिथ्यात्व और कषाय, वह भी इष्ट-अनिष्टवाला कषाय। वैसे तो कषाय मुनि को संज्वलन की होती है। वह लेंगे अभी। बाहुबलीजी को जरा संज्वलन की कषाय रह गयी। यह बारह-बारह महीने खड़े रहे ध्यान में। बेलड़ियाँ लिपट गयीं परन्तु आत्मा में लिपटे नहीं। आहाहा! संज्वलन का एक छोटा सा अंश (कि) मैं भरत की भूमि पर खड़ा हूँ, इतना जरा संज्वलन का मान अंश रह गया। बाहुबली; भगवान के पुत्र, भरत का भाई। उसके कारण बारह महीने तक... उसमें से जब भरत आते हैं, पूजा करते हैं कि ओहो! वह खटक रहती थी, वह निकल गयी। हुआ अन्दर केवलज्ञान अन्तर्मुख। आहाहा! यह तो भावलिंगीवाले को भी ऐसा। यह तो द्रव्यलिंगी की तो बात क्या करना, कहते हैं। (जिसे) भावलिंग प्रगट हुआ, वह भी यदि ऐसे संज्वलन के भाग के अंश में रुकेगा, केवल(ज्ञान) नहीं पा सकेगा। आहाहा! यहाँ तक तो सब द्रव्यलिंगी की बातें की हैं।

**मिथ्यात्व कषाय छोड़कर भावमुनि बनना चाहिए।** आहाहा! पर राग से लेकर

परद्रव्य मेरे, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसे छोड़कर तथा अनुकूल-प्रतिकूल के प्रति इष्ट-अनिष्टता, यह भाव छोड़कर। क्योंकि जगत की सब चीज़ें ज्ञेय हैं। कोई अनुकूल और प्रतिकूल तो इसकी मान्यता से खड़ी की है। कोई अनुकूल-प्रतिकूल चीज़ है ही नहीं जगत में। ज्ञान का ज्ञेय है। जाननेयोग्य वे दोनों ज्ञेय हैं। उसमें भाग किये कि यह इष्ट है और अनिष्ट है, यह अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व है। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ४४

**आगे कहते हैं कि जो पहले मुनि हुए उन्होंने भावशुद्धि बिना सिद्धि नहीं पाई है।** यहाँ तो अब भावशुद्धि संज्वलन के लोभ की। आहाहा! यहाँ शुद्धि भावशुद्धि तो मिथ्यात्व और कषाय की नहीं थी। परन्तु जिसे मिथ्यात्व की एकता छूटी है, ऐसे सन्त बाहुबली **पहले मुनि हुए, उन्होंने भावशुद्धि बिना सिद्धि नहीं पाई है। उनका उदाहरणमात्र नाम कहते हैं। प्रथम ही बाहुबली का उदाहरण कहते हैं:—** लो!

**देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर!।**
**अत्तावणेण जादो बाहुबली कित्तियं कालं॥४४॥**

देखो, धीर तो कहा।

**अर्थ :- देखो, बाहुबली श्री ऋषभदेव का पुत्र देहादिक परिग्रह को छोड़कर निर्ग्रन्थ मुनि बन गया,...** देखो! यह तो निर्ग्रन्थ मुनि, हों! भावमुनि। आहाहा! **तो भी मान-कषाय से कलुष परिणामरूप...** यह संज्वलन का मान-कषाय का भाव रह गया। आहाहा! **मान-कषाय से कलुष परिणामरूप होकर...** लो, यह तो छठवें गुणस्थान में मान के कलुषित परिणाम हुए। मुनि भावलिंगी हैं। वह दु:खरूप होंगे या क्या होंगे? ऐई! चेतनजी! यह कलुषितभाव दु:खरूप होंगे? आहाहा! यहाँ कलुषित आया था तीसरी गाथा में।

**मुमुक्षु :** आर्तध्यान है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह आर्तध्यान ही है, वह राग वास्तव में परमार्थ से तो।

संज्वलन का उदय है न, मान! वहाँ आत्मा की शान्ति पीड़ित होती है। आहाहा! पाँच महाव्रत के परिणाम, वे आर्तध्यान हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** शुक्लध्यान .... वह क्या है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुक्लध्यान में कहाँ आया? नहीं, वहाँ नहीं। यहाँ तो आर्त और रौद्र नीचे होते हैं।

**मुमुक्षु :** बाहुबलीजी की बात है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाहुबलीजी अभी छठवें गुणस्थान में हैं न, आर्तध्यान इसलिए। आर्तध्यान होता है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, श्रेणी कहाँ माँडी है? यहाँ तो अभी छठवें में है। आर्तध्यान होता है या नहीं मुनि को? पंचम गुणस्थान तक रौद्रध्यान होता है। छठवें तक आर्तध्यान होता है। आर्तध्यान में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है। एक संज्वलन का अभाव, वह तो भी आर्तध्यान कहा।

**मुमुक्षु :** श्रेणी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह पहले की बात है न। श्रेणी माँडे तब तो केवल (ज्ञान) हो जाये। आहाहा!

राग का एक अंश भी जिसे संज्वलन का भी खटका है। आहाहा! उसने श्रेणी नहीं माँडने दी उसे। कलुषित परिणाम हुए वे, कहते हैं। आहाहा! आनन्द का नाथ, उसके समक्ष यह... तीसरे पद में यह आया न! अमृतचन्द्राचार्य बोले न, मेरे अनादि के मोह के निमित्त से कलुषित परिणाम मुझमें है। मैं हूँ द्रव्यदृष्टि से शुद्ध चैतन्यघन, परन्तु पर्याय में अनादि से मुझे अभी कलुषितता है। यह अनादि की हुई है, ऐसा कहते हैं। अनादि की कलुषितता बिल्कुल तो गयी नहीं थी। उस कलुषित का अभी एक अंश पड़ा है, कहते हैं। अनादि का है। आहाहा!

यह यहाँ कहा, देखो! '**कलुसिओ**' बाहुबली भावलिंगी सन्त हैं। मिथ्यादृष्टि

नहीं। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं। भरत की भूमि पर मैं हूँ, यह कैसे यह? इतना जरा मान का विकल्प रह गया। केवल (ज्ञान) नहीं हुआ। आहाहा! **देहादिक परिग्रह को छोड़कर निर्ग्रन्थ मुनि बन गया, तो भी मान-कषाय से कलुष परिणामरूप होकर कुछ समय तक आतापन योग धारण कर...** बारह-बारह महीने तक बेलड़ियाँ लिपट गयीं। पैर में सर्पों ने बिल बना लिये। धूल दो पैरों के बीच। बिल बना लिये। सर्दी, गर्मी, चातुर्मास। बारह महीने तो तीनों ऋतु आयी होगी न उसमें? सर्दी की ठण्डी, ऊनाला की गर्मी, चौमासे में बरसात की धारा पानी की। मूसलाधार वर्षा पड़ती हो, उस समय। ऐसे **आतापन योग धारण कर स्थित हो गया, फिर भी सिद्धि नहीं पाई।** संज्वलन के मान के अंश से। आहाहा!

**मुमुक्षु :** छठवें-सातवें में।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** छठवें-सातवें में।

**भावार्थ :- बाहुबली से भरतचक्रवर्ती ने विरोध कर युद्ध आरम्भ किया,...** भरत चक्रवर्ती ऐसा कहते हैं। **बाहुबली से भरतचक्रवर्ती ने विरोध कर युद्ध आरम्भ किया, भरत का अपमान हुआ। उसके बाद बाहुबली विरक्त होकर निर्ग्रन्थ मुनि...** चक्र मारा ऐसे अन्त में। परन्तु वह चक्र बाहुबली के हाथ में गया। वापस छोड़ दिया। यह तेरा निकाला हुआ चक्र। पुण्यवन्त प्राणी चरमशरीरी हैं। वे कहीं मरते नहीं। आहाहा! **विरक्त होकर निर्ग्रन्थ मुनि बन गये।** बाहुबली! भरत का अपमान हुआ, स्वयं ने छोड़ दिया, यह राज चाहिए नहीं, जाओ। **मुनि बन गये।** हों, सच्चे मुनि। भावलिंगी। सम्यग्दर्शनसहित तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव।

**कुछ मान-कषाय की कलुषता रही कि भरत की भूमि पर मैं कैसे रहूँ? तब कायोत्सर्ग योग से एक वर्ष तक खड़े रहे परन्तु केवलज्ञान नहीं पाया। पीछे कलुषता मिटी, तब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।** यह आता है अपने। लिखा है वह। प्रवचनमण्डप में है न! भरत आकर बाहुबली को पूजते हैं। ऐसा जहाँ, ओहोहो! इसे तो कुछ नहीं। यह जमीन-बमीन किसकी? हट गया। केवलज्ञान, अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान। मुनि तो थे। आहाहा! **पीछे कलुषता मिटी, तब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इसलिए कहते हैं कि ऐसे महान पुरुष बड़ी शक्ति के धारक के...**

**मुमुक्षु :** .... विकल्प ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह छठवें-सातवें में, छठवें-सातवें में परन्तु छठवें में रहा। आहाहा! छठवें में। और सातवें में तो आते हैं तुरन्त। परन्तु छठवें में रहा करे वह। शल्य (विकल्प) रहा करे इतना वह। आहाहा! ऐसे तो अन्तर्मुहूर्त में सातवाँ आता है। परन्तु छठवाँ साथ में पड़ा है। ऐसे तो प्रमाद था छठवें में, परन्तु साथ में यह एक भाव था। प्रमाद का अंश भाग एक था। आहाहा!

**पीछे कलुषता मिटी, तब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इसलिए कहते हैं कि ऐसे महान पुरुष बड़ी शक्ति के धारक के भी भावशुद्धि के बिना सिद्धि नहीं पाई...** आहाहा! पूर्ण शुद्धता केवलज्ञान नहीं पाये। **तब अन्य की क्या बात ?** साधारण मनुष्य का क्या कहना ? बारह-बारह महीने ऐसे खड़े नग्न। प्रतिमा है न वहाँ बाहुबली। ५७ फीट ऊँची। हजार वर्ष पहले की है। लोग देखने बहुत आते हैं चारों ओर से। अब सरकार ने आधीन कर ली है। बिगाड़े नहीं। कोई बिगाड़े नहीं। ऐतिहासिक चीज़ है न। **इसलिए भावों को शुद्ध करना चाहिए,...** लो! **यह उपदेश है।** भावों को शुद्ध करना चाहिए।

★ ★ ★

**गाथा - ४५**

**आगे मधुपिंगल मुनि का उदाहरण कहते हैं :—**

**महुपिंगो णाम मुणी देहाहारादिचत्तवावारो।**
**सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय ॥४५॥**

नमनेयोग्य मुनि, ऐसा कहा न! भव्यजीवों नमनेयोग्य मुनि तू देख, ऐसा। भव्य को नमनेयोग्य, भव्य जीव को नमनेयोग्य मुनि हैं! जो यह पिंगल को ऐसा हुआ।

**अर्थ :- मधुपिंगल नाम का मुनि कैसा हुआ ? देह आहारादि में व्यापार छोड़कर भी निदानमात्र से भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुआ...** यह निदान किया। आहाहा! **उसको भव्यजीवों से नमने योग्य मुनि, तू देख। उसको भव्यजीवों से नमने योग्य मुनि,**

**तू देख।** ऐसे पिंगल ने भी निदान करके बिगाड़ा सब। भावलिंग, द्रव्यलिंग अकेला धारण हो गया। अन्दर में नहीं होता। पुराण में उसकी कथा है।

**इस भरतक्षेत्र के सुरम्य देश में पोदनापुर का राजा तृणपिंगल का पुत्र मधुपिंगल था। वह चारणयुगलनगर के राजा सुयोधन की पुत्री सुलसा के स्वयंवर में आया था।** सुलसा का स्वयंवर था, उसमें आया था वह। **वहीं साकेतापुरी का राजा सगर आया था। सगर के मन्त्री ने मधुपिंगल को कपट से नया सामुद्रिक शास्त्र बनाकर...** सागर के मन्त्री ने यह मधुपिंगल था, वह बहुत राज्य के योग्य महापुण्यशाली था और राज के योग्य। परन्तु उसे नया सामुद्रिक (शास्त्र) बनाया कि जिसकी आँखें माँजरी हों। क्या कहा यह? मांजरी, वह राज्य के योग्य नहीं होता।

**मुमुक्षु :** बिल्ली जैसी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। वास्तव में तो वही महापुण्यशाली है। सामुद्रिक आदि लक्षण में वही लक्षण है। परन्तु नया सामुद्रिक बनाया।

**जो कन्या इसको वरे सो मरण को प्राप्त हो।** उसमें ऐसा लिखा उसने। मांजरी आँखवाले को यदि कन्या वरे तो वह कन्या मर जाये। **कन्या ने सगर के गले में वरमाला पहिना दी। मधुपिंगल का वरण नहीं किया, तब मधुपिंगल ने विरक्त होकर दीक्षा ले ली।** लो! **फिर कारण पाकर सगर के मन्त्री ने कपट को जानकर...** कपट की खबर पड़ी मधुपिंगल को। क्योंकि दूसरे किसी ने देखा कि अरे! यह तो राजा के योग्य है और यह साधु क्यों हुआ है? दूसरे ज्योतिषियों ने देखो। यह पुरुष तो राजयोग है। जिसमें आँख पिंगली, राजा के योग्य है, यह तो राजा है। इसने दीक्षा क्यों ली? इसने ऐसा सुना कि ओहोहो! यह तो मन्त्री ने सामुद्रिक शास्त्र बनाकर कपट किया। उसके ऊपर क्रोध हुआ।

**जानकर क्रोध से निदान किया कि मेरे तप का फल यह हो—अगले जन्म में सगर के कुल को निर्मूल करूँ।** लो! अन्दर में भावना आनन्द के भान बिना यह सब बाहर में क्रोध आ जाये द्रव्यलिंगी को। अवसर आवे, तब फिर अन्दर से खीझ जाये। अन्तर वस्तु नहीं। प्रसंग मान, अपमान के आवे, अपनी महत्ता के आवे या ऐसा आवे तो

खीझ जाये फिर। अन्दर दृष्टि के आनन्द की तो खबर नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** कपट तो मन्त्री ने किया। फल राजा को।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह राजा को किसे? वह राजा कौनसा?

**मुमुक्षु :** मन्त्री ने कपट तो मन्त्री ने किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मन्त्री ने कपट किया। उसने तो सामुद्रिक बनाया ऐसा। उसने सामुद्रिक बनाया कि ऐसा नहीं होता। बस, वह तो उसके पास रहा। उसकी यहाँ क्या है? परन्तु उसे राज मिला नहीं, ऐसी उसे खबर पड़ी कि इस कारण से नहीं मिला। इसलिए उसने निदान किया। सगर के राज के ऊपर। सगर का मन्त्री था न, उसने वह सामुद्रिक बनाया।

**उसके पीछे मधुपिंगल मरकर महाकालासुर नाम का असुर देव हुआ, तब सगर को मन्त्री सहित मारने का उपाय सोचने लगा।** विशेष बात है.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**आषाढ़ शुक्ल ६, मंगलवार, दिनांक-२६-०६-१९७४**
**गाथा - ४६ से ५०, प्रवचन-१८३**

यह भावपाहुड़ की ४५ गाथा है। इसके भावार्थ में। पढ़ लेना जरा। मधुपिंगल की कथा। वह निदानबन्ध करके नरक में गया। ऐसी बड़ी लम्बी कथा है। पढ़ लेना।

★ ★ ★

**गाथा - ४६**

४६ (गाथा)। अब वशिष्ठ मुनि का उदाहरण है। कंस का... कंस हो गया न, कंस? श्रीकृष्ण ने जिसे मारा न, वह पूर्व में वशिष्ठ मुनि था, उसने ऐसा किया। यहाँ कहते हैं कि आत्मा का सम्यग्दर्शन पाये बिना आत्मा का भावलिंग जो चैतन्य का शुद्ध अनुभव, उसके बिना यह सब द्रव्यलिंग धारण करे, उसे अन्त में बिगड़ने का प्रसंग होता है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** भावलिंग का अर्थ आपने सम्यग्दर्शन किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्यग्दर्शन ही है यहाँ जिनलिंग। जिनलिंग है न! जिनभावना। और मुनिपना दोनों लिया। मूल तो जिनभावना आत्मा पूर्ण वीतरागस्वरूप शुद्ध चैतन्य की दृष्टि अनुभव की, इसके बिना वीतरागस्वभावी वस्तु की भावना नहीं हो सकती। उसे जिनभावना कहते हैं। यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे सब रागभाव हैं। ऐसे धारण किये, तथापि जिसे आत्मदर्शन सम्यक् अनुभव पूर्ण आनन्द के भाव का भासन ज्ञान में हुआ नहीं, इसलिए उसे बिगड़ने का प्रसंग '**णियाण**' (निदान) करे,... आदि। मूल चीज़ हाथ आयी नहीं, इसलिए फिर बाहर में जाये, ऐसा कहते हैं। भावपाहुड़ है न!

**मुमुक्षु :** पहले से ही भावलिंगी नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पहले से ही नहीं। मिथ्यादृष्टि है।

**अण्णं च वसिट्ठमुणी पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।**
**सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो॥४६॥**

एक वशिष्ठ नाम का मुनि। वह कंस का पूर्व का जीव। कंस। **निदान के दोष से दुःख को प्राप्त हुआ, इसलिए लोक में ऐसा वासस्थान नहीं है...** चौदह राजूलोक में ऐसा कोई स्थान नहीं कि **यह जीव जन्म-मरणसहित भ्रमण को प्राप्त नहीं हुआ।** सम्यग्दर्शन बिना अन्तर सम्यक् अनुभव के आनन्द के भान बिना द्रव्यलिंग धारण करके कोई ऐसा प्रदेश बाकी नहीं कि जहाँ तूने जन्म-मरण न किया हो। ऐसे द्रव्यलिंग भी अनन्त बार धारण किये। परन्तु वीतरागीस्वरूप दृष्टि में नहीं आया, इसलिए उसकी भावना जगी नहीं। राग और पुण्य-पाप के भाव की रुचि और उसकी भावना रही, ऐसा कहते हैं। चैतन्यस्वरूप पूर्ण शुद्ध बुद्ध आनन्दघन का स्वाद न आया और उसका अनुभव नहीं हुआ, इसलिए उसे वीतरागीस्वभाव की भावना नहीं रही। उसे तो जो कुछ क्रियाकाण्ड करता है रागादि, उस राग की भावना रही। इसलिए प्रसंग आने पर वह निदान आदि करके भव को बिगाड़ेगा। यह वशिष्ठ का दृष्टान्त।

**अर्थ :- अन्य और एक वशिष्ठ नामक मुनि निदान के दोष से...** निदान किया है। **दुःख को प्राप्त हुआ, इसलिए लोक में ऐसा वासस्थान नहीं है, जिसमें यह जीव जन्म-मरणसहित भ्रमण को प्राप्त नहीं हुआ।** यह कथा पढ़ लेना। कंस की कथा है कंस की बड़ी। कंस राजा सुना है न यह तो सब। पूर्व में साधु था और महीने-महीने के अपवास किये। यह उग्रसेन ने उसे आहार देने का कहा, परन्तु मिलता नहीं था आहार ऐसा। फिर उसे क्रोध चढ़ा और निदान किया कि इसके कुल में जन्मूँ और इसके कुल का नाश करूँ।

★ ★ ★

**गाथा - ४७**

**आगे कहते हैं कि भावरहित चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है :—**

**सो णत्थि तप्पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।**
**भावविरओ वि सवणो जत्थ णं ढुरुढुल्लिओ जीव॥४७॥**

**अर्थ :- इस संसार में चौरासी लाख योनि,...** जीव को उत्पन्न होने के चौरासी लाख स्थान। **उनके निवास में ऐसा कोई प्रदेश नहीं है...** उसमें कोई ऐसा क्षेत्र नहीं रहा कि **जिसमें इस जीव ने द्रव्यलिंगी मुनि होकर...** साधु हुआ क्रियाकाण्डी। राग की क्रियावाला। आहाहा! परन्तु रागरहित आत्मा के स्वभाव के भान बिना उसे आत्मा के स्वभाव की भावना न जगी। उसे राग की, क्रिया की रुचि में राग की भावना रहीं, वह तो मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। **ऐसा स्थान नहीं रहा, जिसमें मरण नहीं हुआ हो।**

**आगे चौरासी लाख योनि के भेद कहते हैं—पृथ्वी, अप, तेज, वायु, नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये सात-सात लाख हैं, सब बयालीस लाख हुए, वनस्पति दस लाख हैं, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय दो-दो लाख हैं, पंचेन्द्रिय तिर्यंच चार लाख, देव चार लाख, नारकी चार लाख, मनुष्य चौदह लाख। इस प्रकार चौरासी लाख हैं। ये जीवों के उत्पन्न होने के स्थान हैं।** उसमें कोई स्थान, द्रव्यलिंग धारण करके भी, जन्म-मरण बिना का कोई स्थान रहा नहीं उसे। द्रव्यलिंग धारण करने पर भी। मिथ्यात्व है, कहते हैं। यही कहा है न यहाँ, देखो न! '**भावविरआं वि सवणो**'

चैतन्य वीतरागीस्वभाव का अनुभव नहीं, वहाँ उसकी—स्वभाव की भावना होती नहीं। राग की क्रिया करता है, उसकी उसे रुचि और उसकी उसे भावना। आहाहा! ऐसा कहते हैं। इससे चौरासी लाख योनि में ऐसा कोई स्थान नहीं रहा, द्रव्यलिंगी को भी। ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न पाठ में है न जीव को द्रव्यलिंगी '**भावविरआं वि सवणो**' सम्यग्दर्शनरहित साधु, ऐसा। आहाहा! लोगों को सम्यग्दर्शन क्या है, इसकी कीमत (नहीं)। बाहर की यह क्रिया करना, यह करना और यह करना। जो राग की क्रिया है, वह तो विभाव की। और जो उस राग की क्रिया की रुचि में पड़ा है, उसकी उसे—राग की भावना होती है, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! वीतरागी आत्मा का स्वभाव, उसने अन्तर दृष्टि में लिया नहीं, इसलिए उसे द्रव्यश्रमणपना रहा, भावश्रमणपना प्रगट नहीं हुआ। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ४८

**आगे कहते हैं कि द्रव्यमात्र से लिंगी नहीं होता है...** साधु अकेला पंच महाव्रत पालन करे निरतिचार, पाँच समिति, तीन गुप्ति व्यवहारचारित्र जिसे कहते हैं। वह चुस्त पालन करे। ऐसा द्रव्यलिंगी। उससे लिंग नहीं, यह कहते हैं। वह सच्चा लिंग नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहार श्रद्धा और व्यवहार चारित्र और व्यवहार शास्त्र का ज्ञान। ऐसे **द्रव्यमात्र से लिंगी नहीं होता है...** उसे साधु नहीं कहते, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! **भाव से होता है:**—वस्तुस्वभाव अविकारी वीतरागी स्वरूपी भगवान। उसकी अनुभव दृष्टि बिना, भावलिंग बिना द्रव्यश्रमण को लिंग ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।**
**तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण॥४८॥**

ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा! ऐसी दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, कषाय की मन्दता की क्रिया, उस लिंग को द्रव्यलिंग ही नहीं कहते, कहते हैं। भावलिंग प्रगट हुए बिना ऐसे पंच महाव्रत आदि को द्रव्यलिंग भी नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। उसे लिंग ही नहीं कहते। आहाहा!

वस्तु तो आत्मा ज्ञाता-दृष्टा और वीतरागीस्वरूप, उसकी सन्मुखता, उसकी समीपता, उसका आश्रय लिये बिना मात्र द्रव्यलिंग धारण किया तो, कहते हैं कि उसे लिंग ही नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे लिंगी तो, भावलिंग सम्यग्दर्शन व्यवहार की रुचि छूटकर, निमित्त की रुचि छूटकर और स्वभाव की दृष्टि का अनुभव हो, तब उसे लिंगी साधु कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

देखो न, कितने दुःख लोगों के। पक्षघात के, यह फलाना के, ढींकणा के सुनते हैं। आहाहा! वह अभी कोई कहता है न राधाकृष्ण असाध्य में पड़ा है। कल कोई कहता था। हो गया असाध्य। पढ़ा है, कहते हैं, छह दर्शन। उसमें क्या हुआ? आहाहा! आत्मदर्शन बिना के दर्शन सब फीके हैं। आहाहा! कहते हैं कि जिसे आत्मा वस्तु है, उसका अनुभव में विश्वास आया नहीं, इससे वीतराग भावना जगी नहीं, इसलिए जिनभावना जो सम्यग्दर्शन, वह हुआ नहीं, ऐसे जीव को—द्रव्यलिंगी को द्रव्यलिंगी भी

नहीं कहते। आहाहा! कहो, ऐसा है यह।

**अर्थ :- लिंगी होता है, सो भावलिंग ही से होता है...** ठीक! आहाहा! चैतन्य सनाथ प्रभु अपनी सम्पदा का स्वामी, ऐसे चैतन्य की सम्पदा की ऋद्धि, समृद्धि की दृष्टि हुई नहीं। आहाहा! पूर्ण सम्पदा से भरपूर भगवान मेरा आत्मा है। मुझे बाहर से कुछ लेना नहीं और किसी को देना नहीं। आहाहा! ऐसा जो वीतरागीस्वभाव, उसकी जिसे अन्तरदृष्टि स्वभाव समीप हुई नहीं, और द्रव्यलिंग धारण किया, वह तो स्वभाव से विभावरूप में पड़ा है। ओहोहो! कल आया नहीं अपने १०८ में? १०८ कलश में। कि यह सम्यग्दर्शन बिना के यह व्रत और तप और सब जो है व्यवहारचारित्र, पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति इत्यादि, वे दुष्ट हैं, अनिष्ट हैं और घातक हैं। तीन विशेषण दिये थे। आहाहा! आनन्द का नाथ जगे बिना तेरे ये परिणाम क्या करे?

रुचि से दिशा बदली नहीं तो उसके द्रव्यलिंग को लिंग ही कहा नहीं जाता, कहते हैं। आहाहा! जो रुचना चाहिए, वह तो आत्मा का स्वभाव रुचना चाहिए। पूर्ण शान्त सम्पदा का भरपूर भगवान, अकेली वीतरागता की सम्पदा जिसमें पड़ी है। ऐसा सम्पदावान प्रभु... यह वीर की बात आती है न! वीर का आया नहीं? अपने वीर का आया न! ऐसी विशिष्ट जो सम्पदा चैतन्य की, उसकी रांति। वीर। ऐसी पूर्ण आनन्द और शान्ति के अनन्त सागर का स्वभाव, उसकी जिसे विशिष्ट लक्ष्मी का स्वीकार हुआ, वह भावलिंगी समकिती हुआ। वह वीर का सेवक हुआ। यह बाहर का करते हैं न वीरायतन, फलाना, ढींकणा। यह सब बाहर में कहाँ वीर के स्थान हैं? वीर के स्थान तो यहाँ हैं। आहाहा! आनन्दघनजी ने नहीं कहा? सवेरे कहा था न, 'वीरपणुं ते आतम ठाणे जाण्युं ... वाणे।' इतनी बात ली। 'वीरपणुं ते आतम ठाणे, जाण्युं ... वाणे। ध्यान विणाणे शक्ति प्रमाणे निज ध्रुवपद पहिचाणे' अपनी ज्ञान और विज्ञान की शक्ति की योग्यता प्रमाण ध्रुव को देखे। वह वीर का स्थान है। कहो, देवचन्दजी! आहाहा!

'वीर जिनेश्वर चरणे लागुं' ऐसा आता है न? 'वीर जिनेश्वर चरणे लागुं। वीरपणुं ते मागुं रे। मिथ्यामोह तिमिर भय भांग्यो जीत नगारुं वाग्युं।' आहाहा! वीर के स्वभाव की जागृति अन्तर में हुई, वह जीत नगाड़ा मैं अब जीता। आहाहा! राग में घात हो जाता था, राग में जीता जाता था, वह राग की रुचि छोड़ दी। आहाहा! चाहे तो

तीर्थंकरगोत्र का राग हो, परन्तु वह रुचि नहीं। आहाहा! वीतरागधर्म तो वीतराग की रुचि कराता है। ऐसे वीतरागस्वभाव के स्थान में उसका भान होने पर 'मोह तिमिर भय भांग्युं।' मोह से अज्ञान अन्धकार नाश होता है और आत्मा के चैतन्य के स्वभाव के अनन्त गुण अंकुर फूटते हैं। ऐसी जहाँ दृष्टि और अनुभव नहीं, वहाँ साधुपने की क्रियायें सब नग्न-दिगम्बर की, हों! यह वस्त्रवाले की तो द्रव्यलिंग भी नहीं वह तो। वस्त्रसहित जो मुनिपना मानते हैं, उन्हें तो द्रव्यलिंग भी नहीं। मिथ्यादृष्टि तो है, भावलिंग में मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठोर बात है, भाई!

**मुमुक्षु :** अहिंसा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह अहिंसा, वह राग की उत्पत्ति न होना, वह (अहिंसा है)। राग की उत्पत्ति न हो और वीतराग की उत्पत्ति हो, इसका नाम अहिंसा।

**मुमुक्षु :** मनुष्य अपनी अहिंसा करे और दूसरे की अहिंसा करे....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दूसरे की हिंसा न करना, अहिंसा वह नहीं। यह दृष्टि ही खोटी है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में लिया है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय है न अमृतचन्द्राचार्य का। जो कुछ पर की दया पालने का भाव, सत्य बोलने का भाव, ब्रह्मचर्य पालने का भाव, ऐसा जो शुभराग, वह हिंसा है।

**मुमुक्षु :** प्रादुर्भाव रागादि....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रादुर्भाव रागादि। इनको यह कलश मुखाग्र है। राग का उत्पन्न होना, वह हिंसा और आत्मा का वीतरागस्वभाव, उसकी—वीतरागभाव की पर्याय में उत्पत्ति होना, इसका नाम अहिंसा परमोधर्म कहा जाता है।

**मुमुक्षु :** वस्तु पूरी बदल डालो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो कहते थे बेचारे। वहाँ अर्थ लिखो अपने कहे दरबार। ...दरबार। वहाँ अर्थ सुनने आते थे न भाई चन्दुभाई। शिक्षा अधिकारी वह ... दरबार। पूरे उसके होशियार थे। पटेल थे। गुजर गये। सुनने आवे तो वे वहाँ दरबार को कहे कि महाराज ऐसे अर्थ करते हैं। हें, ऐसे अर्थ करते हैं? तो अपने पुस्तक में डालो। लिखे हैं। अपने यह पुस्तक है उसमें। क्या कहलाये भागवत। भगवत् गौमण्डल। बड़ी पुस्तक

है। उसमें यहाँ का कहीं डाला है। निध्धत और निकाचित के सब अर्थ किये न। वे दरबार आये नहीं थे परन्तु दरबार के पास जाकर सुनावे उसे कि महाराज ऐसा कहते हैं। अपने शब्दकोष में डालो यह शब्द। उसे कुछ ठिकाना नहीं। थोड़े डाले हैं। आहाहा!

यह अर्थ ही वीतराग की जाति ही अलग है। यह तो पुरुषार्थसिद्धिउपाय में है। कितनी गाथा है? (गाथा ४४) '**अप्रार्दुभावः खलु रागादिनां भवत्यहिंसासेति।**' संस्कृत है, अमृतचन्द्राचार्य का। जो यह समयसार की टीका की, उनका। '**तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः**' जिनागम का सार यह है कि **निश्चय से रागादिभावों का प्रगट न होना, वह अहिंसा...** यह तो अमृतचन्द्राचार्य हजार वर्ष पहले समयसार की टीका जिन्होंने की, उनका यह ग्रन्थ बनाया हुआ है। **और उन रागादि भावों का उत्पन्न होना, वह हिंसा है। ऐसा जैन सिद्धान्त का सार है।** '**जिनागमस्य**' जिन आगम का वीतराग की वाणी में (यह आया है)। आहाहा! अहिंसा। आता है न... परन्तु सब व्याख्या में अन्तर है।

**मुमुक्षु :** अर्थ करने की भूल है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ भूल है उसकी। परजीव की दया पालना। दया पाल सकता नहीं। परजीव की दया पाले, वह पाल सकता नहीं। पाल सकता है, ऐसा माने, वह मिथ्यात्वभाव है। और पालन किये बिना का भाव हो, दया पालने का, वह हिंसा है।

**मुमुक्षु :** किसकी?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपनी। दूसरे की कहाँ हिंसा होती थी?

**मुमुक्षु :** दूसरे की हिंसा कौन कर सकता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन करे? अपने को शान्त अरागी वीतरागीस्वभाव में राग का उत्पन्न होना, वह वीतरागभाव की हिंसा है। बहुत सूक्ष्म बात! अहिंसा की व्याख्या में बड़ा अन्तर! यह ४४ गाथा कही। आहाहा!

**उन रागादिभावों का उत्पन्न होना, वह हिंसा है। ऐसा जैन सिद्धान्त का...** रहस्य है। यह लिखा है।

**मुमुक्षु :** चारित्र का ग्रन्थ है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, चारित्र ग्रन्थ है। चरणानुयोग का ग्रन्थ है, उसमें यह डाला है। आहाहा! शुभभाव, पंच महाव्रत के भाव होना, वह हिंसा है। यह वह बातें! क्योंकि वृत्ति का उत्थान है, राग है। राग है, वह दु:ख है, शान्ति का घात करता है। ऐसा वीतराग का मार्ग है, भाई! आहाहा!

देखो न, हिंसा-अहिंसा का निश्चय लक्षण वर्णन किया। ४४ (गाथा)। दो चौगड़ा। '**अप्रार्दुभावः खलु रागादिनां भवत्यहिंसासेति।**' उसमें पुण्य का राग भी उत्पन्न न हो और स्वभाव शुद्ध चैतन्य की अरागीदशा—वीतरागी परिणति उत्पन्न हो, उसे अहिंसा कहते हैं। वीतराग जिनागम का यह रहस्य है। संक्षेप कहा न। '**जिनागमस्य संक्षेपः**' जिनागम का यह रहस्य है। इसकी तो खबर नहीं होती। परजीव को न मारना, एकेन्द्रिय को न मारना, दो इन्द्रिय को न मारना। एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौ इन्द्रिया, वत्तिया लेश्या... आता है न ईरिया... में। ईरिया, जीविया वहोरविया तस्समिच्छामी दुक्कडम। कौन जीविया कौन उसे मार सके? परद्रव्य की पर्याय को कौन मारे? उसे कौन जिलावे और कौन उसे मारे? आहाहा!

अपना भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप से विराजमान परमात्मस्वरूप से, उसका अनादर होकर उसके स्वभाव का समीपपना छोड़कर परदया के भाव का राग, हिंसा है। आहाहा! ऐसा वीतराग का अहिंसा धर्म है। 'अहिंसा परमो धर्म।' वह परम धर्म यह है। पर की दया पालना, वह परमधर्म। वह तो अनन्त बार किया था। मर गया तो कुछ हुआ नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! वीतराग... पाठ यह लिया न, देखो न! '**जिनागमस्य संक्षेपः**' सम्पूर्ण जिनागम का सार हो तो यह है। पंच महाव्रत का विकल्प उठना, आहाहा! वह आस्त्रव है, वह दु:ख है। वह स्वरूप की शान्ति को घातता है, वह हिंसा है। ऐसी बात! क्योंकि वह तो ज्ञानस्वरूपी प्रभु है। उस ज्ञान में वीतरागता है। वह ज्ञान वीतरागीज्ञान है। आहाहा! अर्थात्? कि ज्ञानस्वरूप है, वह चारित्रस्वरूप है त्रिकाल। वीतरागस्वरूप है ज्ञान। उसमें राग की उत्पत्ति होना, वह हिंसा है। आहाहा! भगवान की भक्ति का भाव हो, परन्तु है हिंसा। आहाहा! ऐसी बात बहुत कठिन पड़े। जब तक वीतरागता न हो, तब तक ऐसा भाव आवे, परन्तु है तो स्वरूप की हिंसा का दु:ख। यहाँ तो जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी आत्मा की शान्ति की हिंसा है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** बन्ध से....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बन्ध किस प्रकार से होता है? बन्ध धर्म से होता है? बन्ध होता है, वह तो राग से बन्ध होता है। तो राग है, वही हिंसा है। आहाहा! ऐसी बात! बात सच्ची। बात ऐसी है। वीतराग परमेश्वर... यह विकल्प की वृत्ति उठे, यह करूँ, इसे न मारूँ और इसे जिलाऊँ, यह वृत्ति ही हिंसा है, कहते हैं। पर की हिंसा कौन कर सकता है? उसका आयुष्य पूर्ण हुए बिना, वह मरता नहीं और आयुष्य पूर्ण होने पर तू जिलाना चाहे तो भी जीता नहीं। आहाहा! उसके साथ सम्बन्ध नहीं। परन्तु तेरा जीवन जो ज्ञान और वीतरागीस्वभाव का जीवन तेरा, उसे जीव कहते हैं। उस जीव में वीतरागीभाव उत्पन्न हो, उसे जीव की दया और जीव की अहिंसा कहा जाता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह क्या है देखो न! इसमें तो पाठ भी दूसरा है।

'**अप्रार्दुभावः खलु रागादिनां भवत्यहिंसासेति। तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः**' चारों ही अनुयोग भगवान ने कहे—द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग (प्रथमानुयोग, करणानुयोग)। यह चरणानुयोग का ग्रन्थ है। इसमें भी कहते हैं कि जिनागम का यदि संक्षेप में कहें तो यह उसका अर्थ है। आहाहा! मैं पर को सुखी करूँ, दुःखी करूँ—ऐसा विकल्प, सुखी करूँ, ऐसा विकल्प हिंसा है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपनी शान्ति मर गयी। दूसरा कौन मरे? जीवन उसका वीतरागी जीवन है, उस वीतरागी जीवन का उसने ह्रास किया, नाश किया पर्याय में अकेला। स्वभाव तो वीतराग है ही। आहाहा! भाई! वीतराग का मार्ग अलग प्रकार का है। जहाँ हो, वहाँ लगावे धम्मो मंगलं... अहिंसा ... जीव की दया पालना।

यह तो हमारे गुरु भी ऐसा कहते थे, हों! हीराजी महाराज। बहुत थे क्रिया। बहुत सरल भी थे। कषाय मन्द थी। महिमा बहुत थी। हीराजी थे बोटाद सम्प्रदाय के। उसमें दीक्षा ली थी न। हीराजी अर्थात् इतन हीर ऐसा कहलाते। बहुत शान्त। कुछ घमण्ड नहीं था। शान्त—कषाय मन्द और हीरा इतने हीर बाकी सूत के फालका, ऐसा

कहलाते थे। हीरा! तू तो हीरा पका, ऐसा कहते थे। बहुत गम्भीर थे। गम्भीर, कषाय मन्द, ब्रह्मचर्य का रंग। परन्तु यह बात कि पर की दया पालना और पर को न मारना, यह अहिंसा समयं चेव। यह अहिंसा सिद्धान्त का सार है, ऐसा कहते थे। शान्त, हों! हजारों लोग व्याख्यान में। बहुत व्याख्यान में। महिलाओं के झुण्ड हों, ऊँची नजर नहीं। भाई! भगवान ऐसा कहते हैं। बहुत शान्त। ऐसे थे वहाँ। मन्दिरमार्गी के साधु को भी शंका पड़ गयी थी। ऐसे स्थानकवासी में ऐसे साधु पके! ऐसे चले तो मदमस्त हाथी की भाँति रास्ते में नजर रखकर ऐसे (चले)। इधर-उधर नजर नहीं। नीचे नजर करके (चले)। अरे! उपाश्रय में चले तो भी हाथ से रजोणुं फिराकर कदम रखे। ऐसी (वृत्ति) थी। परन्तु इस वस्तु की खबर नहीं। यह अहिंसा कहते हैं। ... यह ज्ञानी का सार यह है कि ... किसी भी प्राणी को जरा भी घातना नहीं। बस, पर प्राणी को, हों! यह ज्ञानी का सार है। अहिंसा समयं चेव। किसी भी प्राणी को नहीं मारना, यह अहिंसा सिद्धान्त का सार है। ऐता वत्तं वियाणिया। यह जाना उसने सब जाना, ऐसा कहते हैं। परन्तु यह राग। यह तो सुना हुआ था। यह बात भी नहीं थी। बहुत शान्त थे। नरम बहुत। बैठे हों तो शान्त... शान्त... बाह्य। व्याख्यान वाँचे तो मोरनी की भाँति सभा डोले, ऐसी वैराग्यवाणी बात। तत्त्व की चीज़ बिल्कुल खबर नहीं। दृष्टि बिल्कुल विपरीत। आहाहा! (संवत्) १९७४ में गुजर गये। ७४ में। चैत्र कृष्ण अष्टमी (हिन्दी वैशाख कृष्ण अष्टमी)। रास्ते में चलते हुए गुजर गये। चलते हुए श्वास आया, बैठ गये। रास्ते में देह छूट गयी।

जिनकी मृत्यु के अवसर पर जब उन्हें पालकी में बैठाया। पालकी की थी। लाखोंपति पाँच-पाँच लाख के आसामी, लड़का बीस वर्ष का मर गया हो वैसे रोते थे। मैं पाँच कोस दूर था। आने के पश्चात् पालकी उठाई। करे ने पालकी? चैत्र कृष्ण अष्टमी को गुजर गये। नौवीं के दिन साढ़े नौ बजे हम आये। पाँच कोस दूर से। वहाँ तक रखे। महाराज को आने दो। मैं और मूलचन्द दोनों बाहर थे। परन्तु वह उठाया न (तो मानो) बीस वर्ष का लड़का मर गया हो और रोवे। साधु रोवे, साध्वी रोवे, श्रावक रोवे, श्राविका रोवे। भाई! ऐसा प्रेम। ... बाहर की प्रवृत्ति क्रिया ऐसी चुस्त। परन्तु यह क्या?

यहाँ तो कहते हैं कि नग्नपना धारण किया जिसने। वस्त्र का टुकड़ा नहीं। जिसने पंच महाव्रत चुस्त पालन किये। परन्तु वह सम्यग्दर्शन बिना द्रव्यलिंग को

लिंगित किया नहीं। आहाहा! और द्रव्यलिंगीत भाव हो तो उसको द्रव्यलिंग का व्यवहार कहा जाता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! ओहोहो! ४४वीं गाथा। **जैन सिद्धान्त का विस्तार तो बहुत बहुत है,...** ऐसा लिखते हैं भावार्थ में। **परन्तु सर्व का रहस्य संक्षेप में इतना है कि धर्म का लक्षण अहिंसा ( अर्थात् ) रागादि भावों का अभाव होना, वह अहिंसा।**

**मुमुक्षु :** पर की दया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, वह नहीं। पर की दया पाले कौन? और पर की दया का भाव, वह राग, वह हिंसा है वह तो। आहाहा!

यह तो गाँधीजी व्याख्यान में आये, तब यह कहा तो जरा कड़क पड़ा था उन्हें। गाँधीजी यह मोहनलाल गाँधी। व्याख्यान में आये थे राजकोट। (संवत्) १९९५ के ज्येष्ठ सुद त्रयोदशी। व्याख्यान में आये थे। फिर यह बात यह निकली तो जरा उन्हें कड़क लगा। मैंने कहा, पर की दया का भाव, वह धर्म है, ऐसा माने, वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। फिर बहुत वर्ष में किसी को कहा, कि मुझे एक महाराज मूढ़ कहते थे, वे महाराज कहाँ हैं? नटुभाई। बेचरभाई के नटुभाई। नटुभाई को कहा। बेचरभाई वहाँ थे। मैंने कोई उनको नहीं (कहा था)। मैंने तो साधारण बात चलती थी, सभा भरी न बड़ी। सब आये थे। उन लोगों में से। कैसे? महादेवभाई, कस्तूरबेन सब व्याख्यान में आये थे। ९५ में। इसलिए कहे, एक महाराज मुझे मूढ़ कहते थे। ऐसा कि पर की दया पालने का भाव, उसे धर्म मानना, वह मूढ़ अज्ञानी है। पाठ है न इसमें। समयसार में बन्ध अधिकार है। पर को जिला सकता हूँ, पर को सुखी कर सकता हूँ, मूढ़ अज्ञानी है। समयसार में (कहा है)। यह ३५ वर्ष पहले की बात है। भाई! मार्ग तो यह है, बापू! तुम मानकर बैठे, ... हिंसा नहीं करते, यह करते हैं और यह करते हैं, सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

वीतरागमार्ग जगत से निराला है। जगत के साथ मिलान करने जायेगा तो मिलान नहीं खायेगा। बहुत सरस! देखो प्रश्न किया है अन्दर, हों! **प्रश्न :- हिंसा का लक्षण पर जीव के प्राणों को पीड़ित करना, ऐसा क्यों नहीं कहा?**

**मुमुक्षु :** तुम ऐसा कहो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तुमने ऐसा कहा।

**उत्तर :- इस लक्षण में अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोनों दोष लगते हैं।** इसलिए। यह कहा, देखो! **वहाँ प्रथम ही अतिव्याप्ति दोष बताते हैं:-**

**युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि।**
**न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव॥४४॥**

गाथा १०५ में वहाँ है। **योग्य आचरणवाले सन्त पुरुष के रागादिभावों बिना केवल प्राण पीडन से हिंसा कभी भी नहीं होती।** दूसरे के प्राण पीड़ित हों परन्तु यहाँ राग की उत्पत्ति नहीं, ऐसे वीतरागी को हिंसा नहीं लगती। दूसरे के प्राण पीड़ित होने पर भी वह प्रमादभाव नहीं, रागभाव नहीं, वीतरागभाव वह है। इसे उसकी हिंसा नहीं लगती। आहाहा! यह अतिव्याप्ति दोष है उसका। उससे लगे तो अतिव्याप्ति दोष हो जाये। आहाहा! राग होता है, वही हिंसा है। शुभराग। चाहे तो दया का, भक्ति का, पूजा का, व्रत का हो, तप का—अपवास का हो। यह अपवास का हो, अपवास करूँ यह विकल्प-राग है। वह उपवास नहीं, वह तो माठो (बुरा) वास है। आहाहा! उपवास तो विषय-कषाय आहारो त्यागो... वहाँ विषय-कषाय के परिणाम का त्याग और स्वभाव की एकाग्रता, वहाँ आगे उसे उप अर्थात् आत्मा के समीप में बसे, उसे उपवास कहते हैं। आहाहा! व्याख्या दूसरी सब... बहुत लिया है, हों!

**इसलिए भावलिंग ही धारण करना,...** देखा! **लिंगी होता है, सो भावलिंग ही से होता है,...** ऐसा कहते हैं। **द्रव्यलिंग से लिंगी नहीं होता है...** आहाहा! ऐसे पंच महाव्रत और पाँच समिति, गुप्ति से कोई लिंगी साधु नहीं कहलाता। आहाहा! कल आया था नहीं अपने उसमें? १०८ (कलश) में। यह व्यवहारचारित्र धारकर हम मोक्षमार्ग में आये, यह यतिपना है। यह यतिपना है ही नहीं। आहाहा! तू ठगा जायेगा। यति का यह भाव ही नहीं। वह तो राग का भाव है। आहाहा! यतिभाव है न? है न। उसमें आया था। कलश में आया था। १०८ कलश। उसमें अन्त में लिया। **कोई जीव क्रियारूप यतिपना पाता है, उस यतिपने में मग्न होता है कि हम मोक्षमार्ग पाये, जो**

**कुछ करने का था, वह किया; इसलिए उन जीवों को समझाते हैं कि यतिपने का भरोसा छोड़कर शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव करो।** यह यतिपने की क्रिया का भरोसा छोड़ दे। वह तो धूल भी नहीं। उसमें तो राग है, संसार है। आहाहा! कहो, चेतनजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरों ने तो आगम में यह कहा है। इससे विरुद्ध अर्थ करे, वे सब अज्ञानी हैं। आहाहा! देखो न कितना किया! बहुत सरस किया। दुष्ट। तीन तो (विशेषण) लिये हैं। **व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है; इसलिए विषय-कषाय की भाँति क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है...** आहाहा! उसकी भाँति निषेध है। उसका भी कहाँ ठिकाना है। आहाहा! व्यक्ति के लिये नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! मार्ग की पद्धति ही ऐसी है, वहाँ उसमें क्या करना? आहाहा! और उसमें तो कहा था न कि भाई! प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना, तो प्रतिज्ञा नहीं लेना, इसका कोई दण्ड नहीं है। भले अव्रतपने रहे, परन्तु कोई दण्ड नहीं। किन्तु प्रतिज्ञा लेकर तोड़ डालता है। अहिंसा के नाम से हिंसा करे क्रिया में (तो) उसके महाव्रत का भी ठिकाना नहीं। आहाहा!

**लिंगी होता है सो भावलिंगी ही से होता है, द्रव्यलिंग से लिंगी नहीं होता है, यह प्रकट है; इसलिए भावलिंग ही धारण करना, द्रव्यलिंग से क्या सिद्ध होता है?** ओहोहो! आत्मा का दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह भावलिंग निश्चय। वह भावलिंग धारण करना। आहाहा! इस द्रव्यलिंग को लिंग भी नहीं कहते, व्यवहार भी नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। भावलिंग ऐसा होवे तो फिर उसे व्यवहार से द्रव्यलिंग कहा जाता है। वरना तो व्यवहार से भी द्रव्यलिंगी नहीं कहा जाता, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! यह पाठ ऐसा है, देखो न! '**भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ**' अन्तर आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मरमणता को भावलिंगवाला यतिपना कहते हैं, उसे लिंग कहते हैं। उसके बिना अकेला द्रव्यलिंग (हो), उसे द्रव्यलिंग ही नहीं कहते हैं, (ऐसा) कहते हैं।

ऐसी शैली से डाला। निश्चय जो भाव अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीतरागी सम्यक्, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र प्रगट हुआ हो तो उसे पंच महाव्रतादि और नग्नपने को द्रव्यलिंग कहा जाता है। वरना तो द्रव्यलिंग भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें वस्त्रवालें को तो द्रव्यलिंगाभास भी नहीं है। कठोर बात है। वीतराग का

मार्ग यह है। दिगम्बर धर्म, यह अनादि सनातन सत्य है। इसमें से बाद में यह नये पंथ निकले श्वेताम्बर और स्थानकवासी। उन्हें तो कुन्दकुन्दाचार्य जैनधर्म में गिनते नहीं। वस्तु ऐसी है न! जिसे वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनिपना माने तो निगोद में जाये, ऐसा वीतराग का मार्ग। उसमें—वस्त्र में यह चलता है और यह चलता है, ऐसा भगवान के नाम से लिख डाला। इतने वस्त्र, इतने पात्र, इतने कम्बल, इतना यह करना। मार्ग बिल्कुल जैन वीतराग का नहीं। आहाहा! कठिन बात। किसी के प्रति विरोध नहीं, किसी व्यक्ति के प्रति वैर नहीं, वह आत्मा है। परन्तु वस्तु की स्थिति तो ऐसी है।

**भावार्थ :- आचार्य कहते हैं कि इससे अधिक क्या कहा जावे, भावलिंग बिना लिंगी नाम ही नहीं होता है,...** देखो न! भाषा देखो न! आहाहा! चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा का जिसे पता नहीं, जिसकी प्रतीति नहीं, उसका ज्ञान करके प्रतीति नहीं, ज्ञान करके ज्ञेय बनाया नहीं और उसमें स्थिर नहीं हुआ, ऐसे भावलिंग बिना... आहाहा! **लिंगी नाम ही नहीं होता है...** पंच महाव्रत पालन करे, पाँच समिति, गुप्ति, नग्नपना रखे तो उसे द्रव्यलिंगी नहीं कहते, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। वह द्रव्यलिंगी। वह ऐसे पाँच महाव्रत, नग्नपना हो उसे। उसे द्रव्यलिंगी नहीं कहते। आहाहा! तीन लोक के नाथ की यह ध्वनि है। वीतराग परमात्मा की यह ध्वनि है, गणधरों इन्द्रों के बीच भगवान का यह हुकम है। आहाहा!

अरे! भगवान! सुना है न अभी वहाँ दिल्ली में। ऐसा कि हमको मुमुक्षु के विद्वान द्रव्यलिंगी कहते हैं। मुमुक्षु मण्डल के विद्वान। तो मैं कहता हूँ कि मूर्खमण्डल है, ऐसा (उन्होंने) कहा। सभा में कहा था। ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को। उसे लगे उसमें क्या करे? उसे दुःख हो। आहाहा! मूर्ख मण्डल है। मुमुक्षु मण्डल नहीं, ऐसा कहा था। बापू! भाई! ऐसा नहीं है। आहाहा! और कहे कि दूसरे मिथ्यादृष्टि मानते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि तो सबको सम्यग्दृष्टि ही माने। ले, ऐसा कहा था। पहले भी आया था, उसमें भी आया। बहुत भगवान! मार्ग बहुत... आहाहा! अरे रे!

यहाँ तो आचार्य कहते हैं **भावलिंग बिना लिंगी नाम ही नहीं होता है,...** आहाहा!

जिसे राग की एकता टूटी नहीं और स्वभाव की दृष्टि हुई नहीं और ऐसे स्वरूप की रमणता लगी नहीं, इसके बिना द्रव्यलिंगी को लिंगी ही नहीं कहते। नाम है न? **नाम ही नहीं होता है,...** आहाहा! श्रीमद् कहते हैं न, दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की विपरीतता के कारण रस ठण्डा पड़ गया। श्रीमद् का वाक्य है। मोळाश का अर्थ विपरीतता। आहाहा! मोळाश अर्थात् शिथिलपना नहीं होता? प्रवचनसार में अन्त में। अन्तिम बोल में शिथिल। शिथिल अर्थात् विपरीत है। पीछे आता है। बात हो गयी थी।

**भावलिंग बिना लिंगी नाम ही नहीं होता है,...** कहो यह क्या कहते हैं? आचार्य स्वयं कहते हैं या नहीं? मूल पाठ। जो अभी राग में धर्म मनावे, पर की सेवा करने में धर्म मनावे। देशसेवा में धर्म है, पर की सेवा करना दुखियों के दुःख दूर करना, वह धर्म है, ऐसे तो मिथ्यादृष्टि हैं। परन्तु जिसे वह न मनावे, परन्तु जिसके द्रव्यलिंग में पाँच महाव्रतादि निरतिचार हों, परन्तु अन्दर सम्यग्दर्शन, अन्तर चैतन्य वीतरागी लिंग नहीं। तो वह नाम लिंग भी नहीं कहते, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। कल पत्र आया है। वह नहीं? बंसीधरजी। ऐसा कि यह मुनि की आलोचना मैं करता हूँ तो मुझे दोष लगता है? वडोदरा है न। यह लगे तो नहीं करना। अपने किसी का क्या काम है? वस्तु का स्वरूप यह है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह दोष। वस्तुस्थिति ऐसी है। वीतराग ने कहा। जगत में ३६३ पाखण्ड हैं। कहा स्पष्ट। ऐसा नहीं कि पाखण्ड कहने से दूसरे को दुःख लगेगा तो। ऐसी कोई चीज़ है कि दूसरे को दुःख न लगे? ऐसा कौनसा भाव है? सत्य को तो सुनते हुए न जँचे, उसे दुःख लगे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं। आचार्य कहते हैं। अर्थ भी रखा है न। **इससे अधिक क्या कहा जावे, भावलिंग बिना...** सम्यग्दर्शन। राग से लाभ नहीं, पुण्य से लाभ नहीं, पर की सेवा से नुकसान है। भाव में राग है, वह तो पाप है, बन्धन है। आहाहा! ऐसा भावलिंग जिसे नहीं, उसे द्रव्यलिंगी को भी लिंगी नाम भी नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पाठ ही है न, ध्वनि देखो न! '**भावेण होइ लिंगी ण हु**

**लिंगी होइ दव्वमित्तेण'** ४८-४८। **'तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण'** आहाहा! भाव तो उसे कहते हैं कि जो शुद्ध चैतन्यस्वभाव में से शुद्धता प्रगट हो, उसे भाव कहते हैं। बाकी रागादि को तो नहीं, द्रव्यलिंग को नहीं। ऐसे भाव बिना उसके पाँच महाव्रतवाले को द्रव्यलिंगी भी नहीं कहते। आहाहा!

**क्योंकि यह प्रगट है कि भाव शुद्ध न देखे, तब लोग ही कहें कि काहे का मुनि है ?** ऐसा दृष्टान्त दिया है। जिसकी शुद्धता की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति नहीं, उसे न देखे तो **लोग ही कहें कि काहे का मुनि है ? कपटी है।** आहाहा! **द्रव्यलिंग से कुछ सिद्धि नहीं है,...** ऐसे पंच महाव्रत के व्यवहारचारित्र के क्रियाकाण्ड से या व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान से कुछ भी सिद्धि नहीं। व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान से भी कुछ सिद्धि नहीं। आहाहा! **इसलिए भावलिंग ही धारण करनेयोग्य है।** बहुत सरस। इसलिए भावलिंग धारण करना उचित है। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ४९

**आगे इसी को दृढ़ करने के लिये द्रव्यलिंगधारक को उल्टा उपद्रव हुआ...** जिसे आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन भावलिंग नहीं, उसने साधुपना लिया, महानुकसान रव रव नरक में गया, कहते हैं। सातवें नरक में। यह दृष्टान्त दिया है। रव रव नरक। सातवाँ नरक है वहाँ।

**दंडयणयरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।**
**जिणलिंगेण वि बाहू पडिओ सो रउरवे णरए॥४९॥**

लो! जिन का लिंग तो था, कहते हैं वीतरागी। रव रव नरक। सातवें नरक का।

**अर्थ :- देखो, बाहु नामक मुनि बाह्य जिनलिंग सहित था...** बाह्य तो जिनलिंग था, कहते हैं। **तो भी अभ्यन्तर के दोष से समस्त दण्डक नामक नगर को दग्ध किया...** जला डाला। **और सप्तम पृथ्वी के रौरव नामक बिल में गिरा।** आहाहा! अभी वहाँ पड़ा होगा बेचारा। अभी गया हो तो यह।

**भावार्थ :- द्रव्यलिंग धारण कर कुछ तप करे...** अपवास आदि क्रियाकाण्ड व्यवहार मुनिपना। **उससे कुछ सामर्थ्य बढ़े, तब कुछ कारण पाकर क्रोध से अपना और दूसरे का उपद्रव करने का कारण बनावे,...** बराबर है। अपने को उपद्रव करे और दूसरे को भी उपद्रव करने का प्रसंग बने। आहाहा! **इसलिए द्रव्यलिंग भावसहित धारण करना ही श्रेष्ठ है और केवल द्रव्यलिंग तो उपद्रव का कारण होता है।** लो! **उसका उदाहरण बाहु मुनि का बताया। उसकी कथा ऐसे है**—यह कथा पढ़ लेना। यह निदान ऐसा किया था, फिर दूसरे को जला डाला। वस्तु की दृष्टि नहीं, इसलिए फिर ऐसा हुए बिना रहता नहीं। उपद्रव। आहाहा!

भाव चैतन्यमूर्ति भगवान आनन्द का तो भान नहीं। इसलिए फिर बाहर में द्रव्यलिंग में बिगाड़ हुए बिना नहीं रहता। निदान करे, क्रोध करे, मान करे, कपट करे।

★ ★ ★

## गाथा - ५०

**इस ही अर्थ पर दीपायन मुनि का उदाहरण कहते हैं:**—दीपायन मुनि। यह दृष्टान्त तो बहुत जगह आता है।

**अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।**
**दीवायणो त्ति णामो अणंतसंसारिओ जाओ॥५०॥**

लो! वहाँ वापस द्रव्यश्रमण तो कहा। द्वारिका में द्वीपायन है। यह कथा तो बहुत बार आती है। पढ़ लेना।

**अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि जैसे पहिले बाहु मुनि कहा वैसे ही और भी दीपायन नाम का द्रव्यश्रमण...** वहाँ द्रव्यश्रमण नाम कहा है। पहिचानना दूसरा क्या? **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट होकर अनन्त संसारी हुआ है।** लो! द्वीपायन। मिथ्यात्व तो था, परन्तु उससे विशेष भ्रष्ट हो गया। क्रोध आया तो द्वारिका को जला दिया। मदिरा पीये हुए का दृष्टान्त है न! यह कथा पढ़ लेना, लो! यह पूरा हो गया, लो! अब अन्तिम गाथा आयेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष कृष्ण १२, शनिवार, दिनांक-१९-०१-१९७४**
**गाथा - ५१ से ५३, प्रवचन-९३**

भावपाहुड़। ... है उसमें वैराग्य की बातें। ... यह जिनभावना बिना प्रत्येक प्रदेश में, प्रत्येक समय में, प्रत्येक परिणाम में, प्रत्येक प्रकृति से, प्रत्येक आयुष्य के समय की स्थिति में अनन्त बार जन्मा और मरा। अनन्त संसार में प्रत्येक प्रदेश में लोक में। प्रत्येक समय में आयुष्य के। ... एक-एके समय में, प्रत्येक परिणाम-अनेक शुभाशुभभाव, प्रत्येक उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी के एक-एक समय में अनन्त बार प्रत्येक परमाणु को ग्रहण करके अनन्त बार जन्म-मरण किये, एक जिनभावना बिना। जिनभावना अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञायकभाव का उसने आश्रय नहीं लिया। लाख बात करे सब तो भी क्या? आत्मद्रव्य, उसके अनन्त गुणों की सत्ता का अस्तित्व, उसका उसे वस्तुस्वभाव सन्मुख होकर स्वीकार नहीं किया। समझ में आया?

शक्ति का चलता है अपने। एक आत्मा में अनन्त शक्तियाँ और एक-एक शक्ति का अनन्त सामर्थ्य और एक-एक शक्ति की अनन्त पर्याय। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें जो अनन्त गुण हैं और गुण का एकरूप है, ऐसी सत्ता है, ऐसा इसे स्वीकार नहीं हुआ। ऐसा अस्तिरूप से मैं हूँ—ऐसा अन्तर्मुख होकर जिनभावना प्रगट नहीं की। इसके बिना बहिर्मुख अनेक परिणाम, अनेक पर्याय अनेक... अनेक परमाणु को ग्रहण करके जन्मा और मरा। इससे कहीं जन्म-मरण घटे नहीं। आहाहा! यह यहाँ दृष्टान्त देते हैं, ५१ (गाथा) में।

★ ★ ★

## गाथा - ५१

**आगे भावशुद्धिसहित मुनि हुए, उन्होंने सिद्धि पाई, उसका उदाहरण कहते हैं:**—देखो!

**भावसमणो य धीरो जुवईजणवेढिओ विसुद्धमई।**
**णामेण सिवकुमारो परीत्तसंसारिओ जादो॥५१॥**

लो, यहाँ भाव आया। भावपाहुड़ है न यह।

**अर्थ :- शिवकुमार नामक भावश्रमण...** भावश्रमण का अर्थ... यह अपने भाव में आ गया है शक्ति में। कि आत्मा में एक भाव नाम की शक्ति—गुण है। वह अनन्त-अनन्त गुण में उस भावशक्ति का रूप है। ऐसी जो महासत्ता 'है' ऐसा भाव, उसे स्वीकार किये बिना अनन्त-अनन्त परिणाम शुभाशुभ अनन्तबार किये, परन्तु उसमें जन्म-मरण का अन्त नहीं आया। परन्तु भाव, वह आत्मवस्तु है, अन्दर भाव नाम का गुण है और वह भाव और भाव का धारक भाववान, उसका स्वीकार होने से उसकी पर्याय में निर्मलता की अवस्था की विद्यमानता रहे, ऐसा वह भाव नाम के गुण का स्वभाव है। भाव शक्ति त्रिकाल है। समझ में आया? भाव नाम की शक्ति जो है गुण है, वह तो सत् का सत्त्व है। सत् का सत्पना है, भाववान का भावपना है। परन्तु उस भावपने का जिसने स्वीकार किया है, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं और उस सम्यग्दृष्टि को भावगुण के स्वीकार के कारण से उसकी अवस्था अनन्त गुण की निर्मल विद्यमान वर्तमान होती ही है। समझ में आया?

जितने गुणों की संख्या है, अनन्त गुण की संख्या। परन्तु उन अनन्त गुणों का जहाँ स्वीकार, उसमें भाव नामक गुण का स्वीकार आया तो उस भावगुण का स्वरूप ऐसा है कि उसकी पर्याय में निर्मलता की अस्ति होती है, होती है और होती ही है। आहाहा! समझ में आया? जब से सम्यग्दर्शन हुआ, तब से अनन्त गुणों की वर्तमान अवस्था शुद्ध निर्मल विद्यमान ही रहती है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! आहाहा! यह वस्तु में... रात्रि में तो... यह छह भाव उसमें है। उसमें है न! भाव-अभाव। छह द्रव्य में होंगे या नहीं? वे षट्कारक छह द्रव्य में हैं। भाव नाम का गुण है जीव का, इसी

प्रकार दूसरे के भाव का होगा ? ऐसा। छह भाव। भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव। आहाहा!

पहले आया '**भावसमणो**' भावश्रमण अर्थात् जिसे भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसका जहाँ अन्तर सन्मुख से स्वीकार (आया कि) ऐसा है। है, उसकी अन्तर श्रद्धा बिना 'है'—ऐसा उसे निर्णय नहीं होता। द्रव्य जो है अनन्त गुण का पिण्ड, परन्तु वह सत्ता यह है, ऐसा ज्ञान में भासित हुए बिना, दृष्टि में आये बिना वह 'है', उसका स्वीकार हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया ? और वह है, ऐसा आत्मा है, इतनी सत्तावाला शाश्वत् तत्त्व है, वह जिसने ज्ञान की वर्तमान पर्याय में उसे ज्ञेय बनाकर 'है'—ऐसी अन्दर में प्रतीति ज्ञान होकर होती है, उसकी दशा अनन्त गुण की निर्मल अवस्था की अस्ति होती है, होती है और होती है। चौथे गुणस्थान में। समझ में आया ? उसकी विद्यमान अवस्था अर्थात् निर्मलदशायें होती ही हैं। भाव नाम के गुण के कारण से और उस गुण का रूप तो अनन्त गुण में है वापस; इसलिए अनन्त गुण में उसका रूप है, गुण नहीं। एक गुण दूसरे गुण में नहीं, परन्तु एक गुण का रूप दूसरे गुण में है।

जैसे कि अस्तित्वगुण है। अस्तित्वगुण। वह अस्तित्वगुण है, वह ज्ञानगुण में अस्तित्वगुण नहीं, परन्तु अस्तित्व 'है'—ऐसा एक ज्ञानगुण में अस्तित्व का रूप है। ज्ञान का अस्तित्वरूप उसका अपना अपने कारण से। उस अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। समझ में आया ? इसलिए यहाँ कहा कि जो भावश्रमण। यह भाव से शुरु किया है न देखो! ...स्त्री के वृन्द में रहेगा, ऐसा उसमें पाठ है। स्त्रियों के समुदाय में रहता है घर में। ऐसा उसे ... दूसरा परिचय कुछ नहीं, परन्तु घर में रहकर साधुपना पालता है। वह है न, देखो न! '**जुवईजणवेढिओ विसुद्धमई**' है ? ज्योति है न। यहाँ तो भाव की प्रधानता बतलाने को (बात है)। बाह्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये। स्त्रियों का परिवार, कुटुम्ब सब छोड़ा, ऐसा कहा जाता है। परन्तु जिसे अन्तर में वीतराग मूर्ति आत्मा का उसे स्पर्श नहीं, तो वह सब द्रव्यलिंगीपना निरर्थक चार गति में भटकने के लिये है। समझ में आया ? और कदाचित् वह स्त्री आदि के उसमें उसे रहना पड़े कोई ऐसा... '**जुवईजणवेढिओ**' युवती के समुदाय में रहा हुआ परन्तु भावश्रमण है। ऐई! उलट-पुलट बात की।

द्रव्यश्रमण नौ-नौ कोटि से ब्रह्मचर्य पाले, स्त्री का संग न करे, पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण हों, तथापि वह भावलिंग नहीं, ऐसा। अन्तर चैतन्य भगवान संख्या से अनन्त गुणवाला, उसकी अन्तर में उसकी दृष्टि गयी नहीं, दूसरा स्वीकार हुआ शास्त्र के पठन का, व्यवहार श्रद्धा का, परन्तु यह वस्तु अन्दर में प्रभु है, इसकी उसे प्रभुता की प्रभुता का उपयोग नहीं हुआ। समझ में आया? उसके सामने यहाँ डाला है। जब इस प्रकार से त्यागी हुआ सब स्त्री, परिवार छोड़कर जंगल में रहा, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, तथापि भगवान अनन्त गुण का नाथ प्रभु परमेश्वर जिसका रूप और परमेश्वर जिसका स्वरूप, उसे यह दृष्टि में नहीं लिया। वह जिनभावना नहीं ली। जिन वीतरागस्वरूपी प्रभु की भावना अर्थात् एकाग्रता।

तब यहाँ दूसरे प्रकार से कहते हैं कि भले युवती जन के मध्य में पड़ा हो। परन्तु जिसे अन्दर भाव अनन्त गुण स्वरूप है, उसमें एक भाव नाम का गुण है। वह भाव शुद्ध बताते हैं। पर्याय को यहाँ तो बतलाना है। यह भावपाहुड़ शुद्ध भावपाहुड़ शुद्धपर्याय की बात चलती है। परन्तु वह शुद्धपर्याय प्रगटे कब? कि जिसे अन्दर आत्मा गुण अनन्त है, उसमें एक भाव नाम का गुण है गुण। जैसे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, आनन्दगुण है। स्वच्छतागुण, प्रभुतागुण, विभुतागुण (है), ऐसा भाव नाम का गुण है। उस गुण का ऐसा स्वरूप ही है कि वह अनन्त गुण की वर्तमान अस्ति निर्मल की होती ही है। भले बाह्य में प्रतिकूल संयोग आदि स्त्री में पड़ा हो, कहते हैं। धन्नालालजी! कठिन बात, भाई!

'**भावसमणो**' है? **स्त्रीजनों से वेष्टित होते हुए भी...** बाह्य त्याग ऐसे नहीं दिखता स्त्री... '**विसुद्धमई**' है न? **विशुद्ध बुद्धि का धारक...** आहाहा! जिसने आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जिसमें भाव नाम का गुण है। वह गुण है, ऐसे गुण के धारक गुणी को जिसने सन्मुख होकर जिसने जाना, उसकी दशा में विशुद्धता अनन्त गुण की निर्मल की विद्यमानता ही होती है। उसे मलिन की पर्याय होती ही नहीं। समझ में आया? **विशुद्ध बुद्धि का धारक धीर...** ऐसा शब्द है न देखो! यह धीरो। '**भावसमणो**' और '**धीरो**' आहाहा! समाया है अन्दर में, कहते हैं। अनन्त गुण की राशि, उसकी निर्मलता की दशा में वह पड़ा है। सम्यग्दृष्टि उपरान्त इसे तो साधुपना आया है।

जिसकी पर्याय में अनन्त गुणों की शुद्धि की विद्यमानता ही उसे होती है। उसे

अशुद्धता नहीं होती। ऐसी स्थिति में रहा हुआ जीव भाव का आदर जिसे त्रिकाल का था, इससे उसे पर्याय में विशुद्ध बुद्धि की पर्याय, अनन्त गुण की निर्मल पर्याय प्रगट हुई। वह **संसार को त्यागनेवाला हुआ...** उदयभाव का त्याग जहाँ कहते हैं। निश्चय से सम्यग्दृष्टि को उदयभाव का आदर नहीं। उदयभाव, वह संसार है। उसका आदर ही नहीं। आहाहा! निश्चय से तो भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन होने के काल में वह संसार के परिणमन से रहित है। पाटनीजी! देखो, संसार का परिणमन। क्योंकि वह तो संसार का भाव और उसका जो फल, उससे रहित भगवान आत्मा तो है। संसार का जो भाव, उस भावरहित आत्मा है और अनन्त अनन्त निर्मल भावसहित है। आहाहा! ऐसे आत्मा को अन्तर में जिसने जाना, पहिचाना, पहिचाना, आदर किया, सत्कार किया। आहाहा! वह संसार के त्यागवाला है। उसे संसार है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह कथा रखी है फिर। यह तो उसका सार।

**जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश के वीतशोकपुर में महापद्म राजा वनमाला रानी के शिवकुमार नामक पुत्र हुआ।** यह जम्बूकुमार का पूर्वभव। **एक दिन मित्र सहित वनक्रिया करके नगर में आ रहा था। उसने मार्ग में लोगों को पूजा की सामग्री ले जाते हुए देखा। तब मित्र को पूछा—ये कहाँ जा रहे हैं? मित्र ने कहा, ये सागरदत्त नामक ऋद्धिधारी...** सागरदत्त नाम के ऋद्धिधारी **मुनि को पूजने के लिये वन में जा रहे हैं। तब शिवकुमार ने मुनि के पास जाकर अपना पूर्वभव सुन...** ओहो! पूर्वभव पूछा। मुनि भी ऐसे थे, कहते हैं। **अपना पूर्वभव सुन संसार से विरक्त हो दीक्षा ले ली...** नग्न दिगम्बर मुनि भावलिंगी और बाह्य में वह। आहाहा!

**और दृढ़धर नामक श्रावक के घर...** श्रावक के घर में गया। **प्रासुक आहार लिया।** निर्दोष आहार लिया। उसके घर में जो बनता हो, वह निर्दोष। भाव साधु, हों! **उसके बाद स्त्रियों के निकट असिधाराव्रत परम ब्रह्मचर्य पालते हुए...** आहाहा! **स्त्रियों के निकट असिधाराव्रत...** तलवार की धार जैसा जो ब्रह्मचर्य, उसे पालता था। आहाहा! जो ब्रह्मानन्द के आनन्द में जिसकी मौज मनाता था अन्दर, कहते हैं। भले स्त्रियों का परिचय (हो), परन्तु ज्ञेयरूप से चीज़ है। स्त्रियाँ नजदीक हों, दूर हों, इससे कहीं ज्ञान के लिये दूर और नजदीकपना किया नहीं। जिसे नजदीक में हो, उसे जाने और दूर में

हो उसे जाने। आहाहा! यह ऐसी शैली ली है। यह तो आता है न भाई, नहीं एक? सर्वविशुद्ध में। ज्ञान। वहाँ आता है, नहीं? दूर हो या नजदीक हो। जानो वह दंसण....

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ यह। यह कुछ नजदीक हो तो ज्ञात हो और दूर हो तो न ज्ञात हो, ऐसा कुछ ज्ञान में है ही नहीं। ज्ञान का स्वभाव है, इसलिए यहाँ नजदीक में हो या दूर हो अलोक, वह तो जान लेने का इसका स्वभाव है। इसी प्रकार यहाँ भावश्रमण के ज्ञान में स्त्रियाँ नजदीक हों या दूर हों। आहाहा! जिसने अन्दर के भाव का आदर किया है, उसकी वीतरागता की धुन ही अन्दर में जगी है। वह वीतरागता की धुन में उसे स्त्री के संग में होने पर भी, आहाहा! गृहस्थ के घर में रहकर, आहाहा! ब्रह्मचर्य पालन किया। भाव की प्रधानता बतानी है न! समझ में आया?

**बारह वर्ष तक तप कर...** बारह वर्ष तक। आहाहा! परन्तु आनन्द का नाथ जहाँ अन्दर में स्पर्श में आया है। हो स्त्री आदि सब। आहाहा! वहाँ तो निश्चय दृष्टि के विषय में जैसे द्रव्य पूर्ण है, गुण पूर्ण है, वैसे उसकी दृष्टि के विषय में और उसकी पर्याय में भी निर्मल अवस्था ही है अकेली। मलिन अवस्था है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! इससे कहते हैं कि उसमें रहा, परन्तु दृढ़तर ब्रह्मचर्य पालन किया। आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आत्मा का आनन्द, उसमें जिसे चरना, रहना, टिकना परिणमना था। आहाहा! उसे विकल्प का परिणमन नहीं था। ऐसा गजब मार्ग! आहाहा!

**वहाँ से चयकर जम्बूकुमार हुआ...** यहाँ से मरकर संन्यास धारण कर लिया, लो! **ब्रह्मकल्प में विद्यन्माली देव हुआ।** विद्युन्माली। **वहाँ से चयकर जम्बूकुमार हुआ...** लो, दीक्षा हुई अन्तिम जम्बूकुमार अन्तिम (केवली)। वह **केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया। इस प्रकार शिवकुमार भावमुनि ने...** भाषा के पीछे उसका भाव क्या है? कि जिसे स्वभाव में अनन्त शान्ति और आनन्द पड़ा है, उसे जो पहुँच गया है अन्दर में। वह जीव भले बाहर के कोई संयोग जगत के छोड़नेयोग्य हो, वह न छूटे हों बाहर से। आहाहा! परन्तु भाव में से छूट गये हैं। आहाहा! समझ में आया?

**इसकी विस्तार सहित कथा जम्बूचरित्र में है,...** यहाँ द्रव्यलिंग के दृष्टान्त पहले

बहुत दे गये हैं। द्रव्यलिंग तो अनन्त बार हुए और परिभ्रमण किया। पंच महाव्रत पालना, अट्ठाईस मूलगुण, वह कोई चीज़ नहीं। वह कोई वस्तु नहीं। वह तो परद्रव्य अजीव है। समझ में आया? पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण, वह भाव अजीव है, वह जीव नहीं। तो ऐसे द्रव्यलिंग अजीवरूप से तो बहुत धारण किये परन्तु इसने जीवस्वरूप को पकड़ा नहीं। आहाहा! जिसे जीव कहते हैं, जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो पूर्ण अनन्त गुण के पिण्डरूप प्रभु है। श्रद्धा से उसे पकड़ा जब पूरे त्रिकाल को, तो कहते हैं कि उसकी विशुद्धि पर्याय में वर्तती है। ब्रह्म अर्थात् आनन्द की लहर उठती है। आहाहा! आनन्द की लहर के झूले में झूलता है वह। हीचके शब्द से? झूले। झूलता। झूले में झूलता है। आहाहा!

एक ओर स्त्रियों के वृन्द में जवान स्त्रियाँ। प्रस्फुटित शरीर। शरीर के अवयव सब पुष्ट। एक-एक अवयव में शृंगार पूरा दिखायी दे। परन्तु भगवान आत्मा... आहाहा! वहाँ अपने ब्रह्मानन्द में जहाँ आया है, उसे ब्रह्मचर्य की परिणति में वह विकल्प ही नहीं जिसे। निश्चय से देखें तो वह आहार करता है, और आहार का जो विकल्प है, वह उसकी पर्याय में नहीं। दृष्टि का स्वभाव पर्याय में है नहीं। अजीव है न वह। आहाहा! जीव अर्थात् आत्मा, आत्मा का आत्मा, आत्मा के गुण आत्मा और आत्मा की पर्याय आत्मा। वह निर्मल, वह आत्मा। मलिन जो पंच महाव्रतादि का राग, वह अनात्मा है। आहाहा! कठिन ऐसी बात। इसे महिमा आयी नहीं। जिसकी महिमा चाहिए, वह महिमा आयी नहीं। और जिसकी महिमा करनेयोग्य नहीं, उसकी महिमा इसे आयी। पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, शुक्ललेश्या। धूल है वह तो सब अजीव है, कहते हैं। स्वरूपचन्दभाई! ऐसी बातें है यह।

कुन्दकुन्दाचार्य शुद्धभाव के नगाड़े बजाते हुए प्रसिद्ध करते हैं, पवित्रता जिसे अन्तर के स्वभाव को स्पर्श कर प्रगट हुई है, उसे दूसरे निमित्त चाहे जैसे... अन्तिम में अन्तिम निमित्त तो लिये। युवा स्त्रियाँ लीं पाठ में। आहाहा! वे तो ज्ञेयरूप से है। उनका ज्ञान नहीं। अपना उस काल का, उस सम्बन्धी का, अपना ज्ञान अपने कारण से प्रगट हुआ है। समझ में आया? आहाहा! यह स्त्रियाँ जवान है और ऐसा जानते हैं, इसलिए उनका ज्ञान है। उनका अर्थात्? उन सम्बन्धी का ज्ञान है, ऐसा भी नहीं। वह स्वभाव

सम्बन्धी का ज्ञान है, वह स्व-परप्रकाशक की पर्याय वहाँ खड़ी हुई। आहाहा! ऐसा भावश्रमण साधु... आहाहा! देखो यह! गिरधरभाई! आहाहा! भाव की प्रधानता से कहा न! अन्तिम आया न। आहाहा!

**इस प्रकार भावलिंग प्रधान है।** भले द्रव्यलिंग हो। परन्तु उसकी मुख्यता नहीं। आहाहा! अब इसकी सूझ पड़े नहीं और दूसरे में से निकलना सुहावे नहीं। अन्तर वीतरागमूर्ति महाप्रभु के माहात्म्य की सूझ-बूझ पड़े नहीं और राग तथा निमित्त की सूझ-बूझ में रुका, उसमें से हटे नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ५२

**आगे शास्त्र पढ़े...** अब दूसरा। आहाहा! शास्त्र पढ़े। यह क्या है, वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है। **और सम्यग्दर्शनादिरूप भाव विशुद्ध न हो...** शास्त्र, वीतराग की वाणी या वीतराग को सुनने से उसे ज्ञान होता है पर्याय में, वह भले उनसे हुआ नहीं। ज्ञान की पर्याय होती है, परन्तु वह ज्ञान की पर्याय ज्ञान ही नहीं। वह ज्ञान की पर्याय ज्ञान ही नहीं। आहाहा! जिस ज्ञान ने आत्मा को विषय बनाकर चैतन्य परिणति प्रगटी, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! **उदाहरण अभव्यसेन का कहते हैं:—**

**केवलिजिणपण्णत्तं एयादसअंग सयलसुयणाणं।**
**पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो॥५२॥**

आहाहा! अभव्यसेन नाम का एक द्रव्यलिंगी मुनि था। वह **केवली भगवान से उपदिष्ट...** ... ऐसा कहना है न। दूसरे के कहे हुए शास्त्र, परन्तु केवली के कहे हुए शास्त्र। यह एक। कहो, समझ में आया? **केवली भगवान से उपदिष्ट...** त्रिलोक के नाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि आयी। उसका जिसे ज्ञान हुआ ग्यारह अंग का, कहते हैं। आहाहा! **ग्यारह अंग पढ़े और ग्यारह अंग को पूर्ण श्रुतज्ञान भी कहते हैं,...** ऐसा कहते हैं। **क्योंकि इतने पढ़े हुए को अर्थ अपेक्षा पूर्ण श्रुतज्ञान भी हो जाता है।** क्या कहते हैं? उसके अर्थ में, उसके भाव में पूर्ण श्रुतज्ञान आ जाये। आहाहा!

**अभव्यसेन इतना पढ़ा,...** आहाहा! क्योंकि अज्ञान में भी बहुत जानने की उसकी सामर्थ्य है। शास्त्र के ग्यारह अंग का सब अर्थ और भाव। भाव अर्थात् उसे क्या कहना है, ऐसा उसे ज्ञान की पर्याय में उसको आ जाता है। आहाहा! **इतना पढ़ा, तो भी भावश्रमणपने को प्राप्त न हुआ।** आहाहा! बिना वर की बारात जोड़ दी। जान कहते हैं? दूल्हा। बारात बारात। परन्तु वर बिना की बारात ही कहलाती नहीं। वह तो टोला कहलाता है। मनुष्यों का टोला कहलाता है। बारात तो वह वर हो तो बारात कहलाये न! इसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा तीन लोक का नाथ ज्ञान का सागर उसमें से उसने एक बिन्दु भी उतारा नहीं... और यहाँ से... बड़ा। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के भाव के, वे दिगम्बर सन्त, वे तो केवलज्ञान के पथानुगामी हैं वे सब।

यहाँ तो चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान में उदयभाव का अभाव, जिसमें परमपारिणामिकस्वभावभाव की अस्ति, आहाहा! ऐसे भाव के भान बिना वह सम्यग्ज्ञान नहीं पाया। इतना ग्यारह अंग का ज्ञान तो सम्यग्ज्ञान नहीं! वह वहाँ पाँच समिति और तीन गुप्ति जो अन्तर के भाव को स्पर्शकर ज्ञान हुआ तो उसे मुख्य भाव सम्यग्ज्ञान कहा। आहाहा! और यह एक आचारांग का एक पद, एक आचारांग के अठारह हजार पद। और एक पद के इक्यावन करोड़ अधिक श्लोक। ऐसे दुगुने-दुगुने। आचारांग के अठारह हजार पद, सूयगडांग के छत्तीस हजार, उसके बहत्तर... ऐसे ग्यारह अंग पढ़ा। परन्तु वह हुकम का इक्का नहीं आया अन्दर। इक्का होता है न। हुकम का इक्का आवे तो पूरा हो गया। आहाहा! सेठ आये, तब इतनी बात हुई थी। आहाहा!

कहते हैं, इतने ग्यारह अंग कि जिसके एक पद के इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। एक-एक श्लोक के बत्तीस... अक्षर... ऐसे-ऐसे अठारह हजार पद, ऐसे छत्तीस हजार पद, बहत्तर हजार पद, एक लाख चौबालीस हजार पद।... स्वरूपचन्दभाई! यह ज्ञान होने पर भी वह ज्ञान नहीं। आहाहा! **भावश्रमण को प्राप्त न हुआ।** आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप का स्वसंवेदन ज्ञान नहीं किया। स्वज्ञान का प्रत्यक्ष वेदन, वह नहीं हुआ। यह ग्यारह अंग आदि पढ़ा, (परन्तु) कुछ लाभ नहीं। आहाहा! भावार्थ में आता है न, भाई वहाँ नहीं? सम्यग्ज्ञान हुआ सम्यग्दृष्टि को। तो उस ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है। भले थोड़ा हुआ। अर्थ में, ७४ में। उसे विज्ञान कहा जाता है। आहाहा! अपना

आत्मा जो परिपूर्ण ज्ञान का सागर, उसके सन्मुख होकर जो ज्ञान हुआ, भले थोड़ा हुआ तो भी विज्ञान कहलाता है और ऐसे ग्यारह अंग का ज्ञान, परन्तु उसे अज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

**भावार्थ :- यहाँ ऐसा आशय है कि कोई जानेगा बाह्यक्रिया मात्र से तो सिद्धि नहीं है...** उसमें क्रिया नहीं? बाह्य द्रव्यक्रिया से तो भले न आया। **और शास्त्र के पढ़ने से तो सिद्धि है...** या नहीं? आहाहा! **तो इस प्रकार जानना भी सत्य नहीं है, क्योंकि शास्त्र पढ़नेमात्र से भी सिद्धि नहीं है—**जिसने दिशा को बदलकर दशा प्रगट की नहीं। ऐसी जो दिशा है, उसे बदलकर ऐसे दिशा करके दशा प्रगट नहीं की, उसके ग्यारह अंग का ज्ञान, ज्ञान नहीं कहलाता। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि ग्यारह अंग का ज्ञान पर के लक्ष्य और पर की दिशावाली दशा है। स्व की दिशावाली दशा (नहीं है)। आहाहा! भले स्व के दिशावाली दशा थोड़ा ज्ञान हो, परन्तु उसे विज्ञान कहते हैं, सम्यग्ज्ञान कहते हैं, भावज्ञान कहते हैं। आहाहा! जिसमें जन्म-मरण का अन्त है। देखो, यह भाव का माहात्म्य बताते हैं।

**मुमुक्षु :** शुद्धभाव का माहात्म्य।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाव का माहात्म्य। मेंढ़क हो। मेंढ़क.. मेंढ़क। क्या कहा? मेंढ़क। मेंढ़क, मेंढ़क। उसे सम्यग्ज्ञान हो। आहाहा! क्षेत्र छोटा इतना, पर्याय में भी स्वस्पर्शी ज्ञान थोड़ा। आहाहा! तथापि वह सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! और यह ऐसा ... वह ... अभव्य के लिये है यह। परन्तु भव्य ने ऐसा अनन्त बार किया, सुन न! इसके लिये तो यह दृष्टान्त है। आहाहा! लो, इसके लिये तो दृष्टान्त है।...में तो अभव्य का दृष्टान्त दिया है न? जिनवर ने कही हुई क्रिया... वह तो अभव्य के लिये बात है। अरे! भगवान! क्या कहते हैं, भाई? भव्य और अभव्य दोनों। परलक्ष्य की क्रिया और परलक्ष्य के ज्ञान में रुका हुआ, उसे ज्ञान और चारित्र कहते नहीं। समझ में आया? स्वयं भगवान चिदानन्द जिन की मूर्ति प्रभु, वह जिसके ज्ञान में आया नहीं, उसे ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! देखो, सन्तों की वाणी तो देखो! रामबाण मारा है न! आहाहा! उसका गर्व उतर जाये, अरर! हाय! हाय! सुन बापू, भाई!

**क्योंकि शास्त्र पढ़नेमात्र से भी सिद्धि नहीं है—** ज्ञानमात्र नहीं, ऐसा आता है बन्ध अधिकार में। ७२। २७२। यह ऐसा सब करे परन्तु ज्ञानमात्र आत्मा है, ऐसा जाने नहीं कहीं। वह शास्त्र के पठन का विकल्प है, वह उसके स्वरूप में नहीं। समझ में आया? अकेला ज्ञानस्वभावी चैतन्यज्योति प्रभु। बिजली की चमक में जैसे मोती पिरो लो, वैसे चैतन्य की चमक में अन्दर से, आहाहा! जिसने आत्मा को ज्ञान में पिरोया, उसके थोड़े ज्ञान को भी सम्यग्ज्ञान कहते हैं, (ऐसा) कहते हैं। और उसके अन्तर्मुख के ज्ञान बिना के बहिर्मुख के ग्यारह अंग के ज्ञान को भी अज्ञान कहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** तो शास्त्र पढ़ना या नहीं पढ़ना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह प्रश्न उठा था एक बार। मोक्षमार्गप्रकाशक में किया था। तब कहे, ऐसा कहे तो पढ़ना या नहीं? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....ले लेवे तो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लिया हुआ ही है उसमें कहाँ... यह तो गणधर को भी सुनने का विकल्प आता है। जिसे स्व-आश्रय ज्ञान प्रगट हुआ है, स्व-आश्रय चारित्र प्रगट हुआ है, स्व-आश्रित... तथापि आवे सही, परन्तु उसमें वजन देनेयोग्य नहीं है। आहाहा! वह तो अपने काम का काम है या दुनिया को प्रसन्न करने का काम है यहाँ? आहाहा! अपना भगवान प्रसन्न हुआ, तब कहते हैं कि भले अन्तर में ज्ञान थोड़ा हो, अरे! समझाना न आवे वह ज्ञान ... आहाहा! और ग्यारह अंग का पठन भी अन्तर के भगवान के ज्ञान के आश्रय बिना वह पठन भी आत्मा नहीं। वह आत्मा नहीं, वह अनात्मा का ज्ञान है वह तो। आहाहा! भावपाहुड़ है। यह भाव है, वह शुद्धि की बात है, हों! यह पर्याय की बात है यह। शुद्धभाव... शुद्धभाव... **अभव्यसेन की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है, वहाँ से जानिये।** ठीक।

★ ★ ★

## गाथा - ५३

अब उसके सामने दृष्टान्त। '**तुषमासं घोसंतो**' दृष्टान्त यह। वह ग्यारह अंग तक यहाँ ले गये। उसको ... आहाहा! यहाँ अब एक तुषमाष शब्द याद न रहे। आहाहा!

**तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।**
**णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ॥५३॥**

तुरन्त केवलज्ञान हुआ, कहते हैं। आहाहा!

**अर्थ :- आचार्य कहते हैं...** शिवभूति मुनि को। मुनि कहा। **शास्त्र नहीं पढ़े थे,...** शास्त्र पढ़ा नहीं था। आहाहा! (समयसार कलश की) राजमल टीका में तो वहाँ तक लिया है कि आत्मा की अनुभूति हुई, उसे शास्त्र पढ़ने की अटक नहीं। धन्नालालजी! है? राजमलजी (कृत) कलशटीका।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** डाला है। कलश। कलश। ... 'कोई जानेगा कि द्वादशांग का ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है। उसका समाधान—द्वादशज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है।' आहाहा! शुद्ध आनन्द का नाथ परमात्मा, उसकी अनुभूति, वह ज्ञान है, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! 'इसलिए शुद्धात्मानुभूति होने पर शास्त्र पढ़ने का कोई बन्धन-अटक नहीं।' आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने और दिगम्बर के गृहस्थों ने भी गजब काम किया है। सनातन सत्य है न यह तो। यह कहीं कल्पना करूँ तो काम (नहीं) सनातन सत्य। आहाहा!

**आचार्य कहते हैं कि शिवभूति मुनि ने शास्त्र नहीं पढ़े थे,...** वजन देना है शुद्धभाव का और शुद्धभाव द्रव्य के आश्रय से होता है। कोई विकल्प के, पर्याय के आश्रय से नहीं होता। आहाहा! **परन्तु तुष-माष ऐसे शब्द को रटते हुए...** तुष-माष। फोतरा-छिलका और दाल। उड़द की-उड़द की। यह उड़द की दाल। धुली दाल। छडी कहलाती है हमारे में। छडी अर्थात् छिलका रहित। ऐसे **विशुद्धता से महानुभाव होकर...** आहाहा! **केवलज्ञान पाया...** अन्दर आश्रय द्रव्य का था, उसमें से पाया, ऐसा कहते हैं। शास्त्रज्ञान तो ऐसा कुछ नहीं था। याद रहता (नहीं था) आहाहा! परन्तु जहाँ

ज्ञान का सागर अनन्त गुण से भरपूर परमात्मा विराजता है, वहाँ जिसकी नजर गयी। आहाहा! उन महानुभाव को तुष-माष ऐसे शब्द याद नहीं रहते, कहते हैं। केवलज्ञान हुआ। अन्तर के आश्रय में जो ज्ञान था, वह ज्ञान अन्तर का उग्र आश्रय करके केवल (ज्ञान) प्राप्त किया। ऐसा कहकर कहते हैं कि रटने का ज्ञान नहीं था भले और उस प्रकार का पाँच समिति, गुप्ति थोड़ा भावज्ञान तो था, शब्दज्ञान नहीं था। समझ में आया? वह भावज्ञान जो थोड़ा स्वभाव यह और विभाव के बीच के विभाजन का ज्ञान था, उस ज्ञान ने केवलज्ञान प्राप्त कराया। भेदज्ञान। समझ में आया? आहाहा!

**केवलज्ञान पाया, यह प्रकट है।** पहले में ऐसी जवान स्त्रियों के वृन्द में... तब वे लोग कहते हैं न स्थूलिभद्र वेश्या के घर में रहे। ऐई! चेतनजी! यह नहीं होता। यह तो कहे नहीं। स्थूलिभद्र श्वेताम्बर में आता है। वेश्या के घर रहे, ऐसा कहते हैं। यह तो वैरागी मनुष्य थे और बाहर की उस प्रकार की आज्ञा मिली नहीं और वहाँ उन्हें रहना पड़ा, इस अपेक्षा से बात है। समझ में आया? गुरु ने आज्ञा दी है और रहे हैं, ऐसा भी यहाँ कहाँ है? यहाँ तो ऐसा प्रसंग बन गया है, तथापि अन्दर में निर्लेप रहा है। उसका वजन है। आहाहा! और यह शब्द का ज्ञान भी नहीं था। इतना ज्ञान याद नहीं था, ऐसा कहते हैं।

**भावार्थ :- कोई जानेगा कि शास्त्र पढ़ने से ही सिद्धि है तो इस प्रकार भी नहीं है। शिवभूति मुनि ने तुष-माष ऐसा शब्दमात्र रटने से ही भावों की विशुद्धता से केवलज्ञान पाया। इसकी कथा इस प्रकार है—कोई शिवभूति नाम मुनि था। उसके गुरु के पास शास्त्र पढ़े परन्तु धारणा नहीं हुई।** याद न रहे। शास्त्र, हों, याद न रहे। शब्द।

**मुमुक्षु :** भाव बराबर याद रहे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाव तो अन्दर जाना है न! आहाहा! चैतन्य का नाथ मेरा प्रभु, ज्ञान से विराजमान, आनन्द से विराजमान अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका ज्ञान है। आहाहा!

**तब गुरु ने यह शब्द पढ़ाया कि मा रुष मा तुष। सो इस शब्द को घोखने लगा।**

**इसका अर्थ यह है कि रोष मत करे, तोष मत करे...** दुनिया से प्रसन्न न हो। अर्थात् राग-द्वेष न कर, ऐसा। **राग-द्वेष मत करे, इससे सर्व सिद्धि है।** आहाहा! दुनिया से प्रसन्न न हो, दुनिया से खेद-खिन्न न हो जा। यह मा तुष और मा रुष इतना कहा। वह भाव उन्होंने अन्दर पकड़ा। पर तरफ की वीतरागता, स्व सन्मुख के आश्रय में पड़ा और वीतरागभाव से केवलज्ञान लिया। भले भाव... क्या था? कि याद रहा नहीं था। ऐसी भावशुद्धि की महिमा है, कहते हैं। समझ में आया?

**तब कोई एक स्त्री उड़द की दाल धो रही थी, उसको किसी ने पूछा, तू क्या कर रही है? उसने कहा—तुष और माष भिन्न-भिन्न कर रही हूँ। तब यह सुनकर मुनि ने तुष-माष शब्द का भावार्थ यह जाना कि यह शरीर तो तुष है और यह आत्मा माष है,...** आहाहा! विकल्प, वह छिलका है। आहाहा! छिलका। और माल जो अन्दर चिदानन्द वीतरागमूर्ति विकल्प के पीछे पड़ा है, वह माल है।

**मुमुक्षु :** उड़द की दाल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उड़द की दाल, हमारे यहाँ छडी (दाल) कहते हैं। छडी दाल कहते हैं। (छिलकारहित) सफेद-सफेद कहते हैं न!

**उस प्रकार भाव जानकर आत्मा का अनुभव करने लगा। चिन्मात्र शुद्ध आत्मा को जानकर...** बस इतनी बात। **उनमें लीन हुआ, तब घातिकर्म का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार भावों की विशुद्धता से सिद्धि हुई जानकर भाव शुद्ध करना, यह उपदेश है।**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौषण कृष्ण १३, रविवार, दिनांक-२०-०१-१९७४
गाथा - ५४ से ५६, प्रवचन-९४

यह अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़ चलता है।

**मुमुक्षु :** भावपाहुड़ लिखा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ इसलिए। भावपाहुड़ अर्थात् प्राभृत अर्थात् सार। यहाँ ५४ में आता है। देखो, ५४ गाथा। शब्द भी पड़ा है।

★ ★ ★

गाथा - ५४

**भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।**
**कम्मपयडीण णियरं णासइ भावेण दव्वेण॥५४॥**

यहाँ आचार्य महाराज भावशुद्धि अर्थात्... राग की एकताबुद्धि, वह मिथ्यात्व है। चाहे तो शुभराग भगवान की भक्ति का हो, पंच महाव्रत का हो, वह राग और भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव दोनों एक हैं, उसकी एकत्वबुद्धि जिसकी है, उसे यहाँ भावरहित को मिथ्यात्वभाव कहने में आता है। यहाँ भाव उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा अन्दर में शुद्ध आनन्दघन, राग की एकता टूटकर सम्यग्दर्शन में आत्मा का अनुभव हुआ हो, जिसकी दशा में शुद्धाशुद्ध परिणाम से रहित... शुद्ध अशुद्ध। अशुद्ध अर्थात् शुभाशुभ दोनों। शुद्ध नहीं। वह शुभाशुभ परिणामरहित स्वरूप शुद्ध अखण्ड द्रव्यस्वभाव भूतार्थ सत्यार्थ प्रभु जो है, उसे स्पर्शकर जो शुद्धभाव होता है, उसे यहाँ भाव कहा जाता है। समझ में आया? '**भावेण होइ णग्गो**' जिसे अन्तर में राग की एकता टूटकर स्वरूप की शुद्धता अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ स्वाद आया है। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शनरूपी भाव कहा जाता है। ....

**अर्थ :- भाव से नग्न होता है,...** यह पहला शब्द है। आत्मा उसे कहते हैं कि

जिसमें... इसमें यह आया देखो, भाई! भावगुण चलता है न अपने? भावगुण है न, आत्मा में एक भाव नाम का गुण है। उसकी पर्याय की बात है इसमें। अर्थात् क्या? कि आत्मा में अनन्त गुण संख्या से है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान (अधिकरण) आदि। एक वस्तु भगवान आत्मा में अनन्त संख्या से गुण हैं, जो आकाश के सर्वव्यापक आकाश के प्रदेश की संख्या से अनन्तगुणे गुण हैं। एक आत्मा में आकाश के प्रदेश की संख्या से अनन्तगुणे गुण हैं। सामान्य भी अनन्त हैं, विशेष भी अनन्त हैं। ऐसा आत्मा, उसमें एक भाव नाम का गुण है अनादि, कि जिस गुण के कारण से उस भावगुण का धारक भाववान आत्मा, उसकी दृष्टि होने पर उसकी पर्याय में निर्मलता, शुद्धता, रागरहितता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि की परिणति हो, उसे यहाँ भाव कहा जाता है। यह पर्याय का भाव। वह गुण है, वह भावगुण त्रिकाल।

**मुमुक्षु :** भावगुण की शुद्ध पर्याय।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भावगुण की पर्याय। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह अनन्त जितने गुण हैं, उन अनन्त गुण को जहाँ सम्यग्दर्शन में, प्रतीति में लिया, विश्वास निर्विकल्प दृष्टि से अनन्त गुण का... एक-एक गुण का अनन्तरूप, अनन्त माहात्म्य, ऐसे-ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप, ऐसी जो अन्तर्मुख दृष्टि हुई, तब उसकी परिणति दशा में शुद्धता, आनन्दता, स्वच्छता, प्रभुता इत्यादि दशायें निर्मल हों, उसे यहाँ भाव कहा जाता है। गजब, बापू!

'**भावेण होइ णग्गो**' यह शुभ-अशुभभाव भी द्रव्यलिंग है। पंच महाव्रत के परिणाम, नग्नदशा देह की, वह सब कहीं धर्म और निर्जरा का कारण नहीं। उस द्रव्यलिंग से कर्म का नाश अंश भी होता नहीं। यह कहते हैं, देखो न! '**भावेण होइ णग्गो**' आहाहा! वह जिसकी सत्ता में अस्तिरूप से अनन्त संख्या से गुण हैं, उनका जहाँ आदर हुआ, अर्थात् कि जो अनादि से राग और एक समय की पर्याय की रुचि का आदर था, तब ऐसे अनन्त गुण की पवित्रता का उसे अनादर था। आहाहा! और जब वह उसकी भगवान आत्मा की दृष्टि जहाँ द्रव्य के ऊपर गयी...

देखो न, (समयसार की) ११ वीं गाथा में कहा है न! '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ, सत्यार्थ, अस्ति, पूर्ण, शुद्ध को जहाँ अन्दर दृष्टि में लिया, आहाहा! ऐसे भाव

को, तब जो निर्मल दशा वीतरागी हो, उसे यहाँ भावलिंग में गिनने में आया है। आहाहा! तदुपरान्त यहाँ तो मुनिपने की बात है अभी। यह सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप में लीनता जिसे अतीन्द्रिय आनन्द में, अतीन्द्रिय आनन्द तो शाश्वत् ध्रुव है, परन्तु उसमें जिसकी जमावट जम गयी है, अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे दशा में लहर उठती है। जैसे फब्बारे को दबाने से पानी बाहर निकलता है, वैसे भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसे जहाँ एकाग्र होकर, वहाँ उसका फब्बारा पर्याय में फटता (प्रगट) होता है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, स्वच्छता का अनुभव, प्रभुता की प्रतापना अखण्ड प्रताप की स्वतन्त्र शोभा, वह सब दशा में प्रगट होती है। आहाहा! ऐसे भाव बिना का '**भावेण होइ णग्गो**' पहले तो भाव में नग्नपना होना चाहिए, कहते हैं।

**'बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण' भाव से नग्न होता है, बाह्य नग्नलिंग से क्या कार्य होता है? क्या कार्य होता है?** पंच महाव्रत हो, नग्नपना हो, इससे आत्मा का कार्य क्या हो? समझ में आया? '**किं च णग्गेण**' '**बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण**' पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, नग्नदशा, उस बाह्यलिंग से क्या हुआ तुझे? आहाहा! **क्योंकि भावसहित द्रव्यलिंग से...** वापस द्रव्यलिंग डाला। आहाहा! जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन का अनुभव, तदुपरान्त जिसे प्रचुर आनन्द का स्वसंवेदन ऐसा जो भावलिंग हो, उसे द्रव्यलिंग तो पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नपना होता ही है। ऐसा भावलिंग हो और कोई ऐसा कहे कि मुझे वस्त्र और पात्रसहित है, द्रव्य (द्रव्यलिंग) में। ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? ऐसा। पहले निकाला परन्तु वापस रखे दोनों इकट्ठे।

अन्तर भगवान आत्मा वह आनन्द का धाम है। वह तो अतीन्द्रिय की लहर है। असंख्य प्रदेश में ठसाठस अतीन्द्रिय आनन्द जिसमें भरा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को स्पर्शकर जो सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, तदुपरान्त जिसकी अन्तर में लीनता हम गयी है, उसे भावलिंग कहा जाता है। ऐसे भावलिंग बिना द्रव्यलिंग से कहीं आत्मा का कार्य नहीं होता। हाँ, ऐसा भाव जहाँ हो, वहाँ द्रव्यलिंग भी ऐसा ही होता है। कोई कहे कि हमको अन्दर में भावलिंग साधुपना प्रगट हुआ है, परन्तु हम गृहस्थ के वेश में हैं, वस्त्र के वेशसहित है—यह बात झूठी है।

**मुमुक्षु :** कल तो आया था....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह कहाँ अन्दर भाव में कहाँ था? वह तो ऐसा संयोग था। वह तो उसके भाव में यह है मेरे, ऐसा उसे कहाँ है?

**मुमुक्षु :** यह भावलिंग की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भावलिंग है। कल वह... थी न। युवतियों के वृन्द में रहा हुआ जम्बूकुमार का जीव पूर्व भव में शिवकुमार। परन्तु वह ज्ञेय पदार्थ नजदीक हो या दूर हो ऐसे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। वह वस्तु वस्त्रादि मेरे हैं, वह चीज मेरी है—ऐसी बुद्धि यदि हो तो वह वस्तु परिग्रह है।

**मुमुक्षु :** ....नग्न दिगम्बर ही थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नग्न थे।

**मुमुक्षु :** ....से

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वे तो घरवासी नग्न थे। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। यह तो भाव का अधिकार है न, इसलिए ऐसा वर्णन किया है, देखो! **'भावसमणो य धीरो जुवईजणवेढिआ'** युवती, जवान स्त्री के वृन्द में स्वयं भगवान मुनि आत्मा आनन्द में रहते थे। ऐसा ही कोई योग हुआ तो कोई बाह्य और निर्दोष जो घर में रहते, वहाँ उनके लिये बनाया हुआ आहार नहीं, निर्दोष आहार लेते थे। यहाँ भावशुद्धि की पुष्टि करनी है। बाह्य में ऐसा होने पर भी उसके लिये वस्त्र है, ऐसा यहाँ नहीं कहा। यहाँ युवतियों के झुण्ड में घिरा हुआ है। कोई अघाति के कारण से ऐसे संयोग आये हैं, अन्तर में उसकी चोट नहीं। आहाहा! जिसे अन्तर ब्रह्मानन्द प्रभु आत्मा के आनन्द की लहर अन्दर उठती है। समझ में आया? आहाहा! आनन्दमूर्ति प्रभु में जितनी एकाग्रता ऐसे करता है, उतनी आनन्द की उग्रदशा प्रगट होती है। उसे युवती यह बाहर में हो या कुटुम्बादि हो, वह उसे अवरोधक नहीं। जिसने मेरा मानकर रखा है... तब कहे, वस्त्र रखे तो मेरा (माने) बिना? ऐसा नहीं हो सकता।

**मुमुक्षु :** वस्त्र रखने की (वृत्ति) शरीर के प्रति राग है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जिसे वस्त्र रखने की वृत्ति है, वहाँ मुनिपना हो सकता ही नहीं।

**मुमुक्षु :** घर में रहना चाहिए?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** घर में कहाँ रहते हैं? वे तो अन्दर में रहे हैं। आहाहा! यहाँ तो भावशुद्धि का अधिकार है, वह ऐसा बताया है कि जिसकी निर्मलता आनन्द की अन्दर में, जैसे नारियल में गोला पृथक् पड़ गया। नारियल में। भले बाहर निकला नहीं, है अभी कांचली के अन्दर में, परन्तु है पृथक्। उसी प्रकार जिसे शरीर और वस्त्र और बाहर की चीज़ों की रुचि छोड़कर जिसने भगवान आत्मा के आनन्द का स्पर्श किया है। आहाहा! वह गोला पृथक् ही वर्तता है। समझ में आया? यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! अन्दर दशा सम्यग्दर्शन, वह वीतरागीदशा है। कोई कहते हैं न कि सम्यग्दर्शन सरागी हो सातवें तक, छठवें तक, सातवें में वीतरागी समकित होता है। भाई! ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह स्वयं वीतरागी दशा है। जिनस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा में जहाँ एकता हुई, वहाँ उसे निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्याय से अकषाय परिणति की वीतरागदशा है। आहाहा! उस दशावन्त को भावलिंगी कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा भावलिंग न हो और अकेला नग्नपना और पंच महाव्रत को पाले, इससे कहीं आत्मा का कार्य सरता नहीं (होता नहीं)। आहाहा!

परन्तु '**भावेण**' '**दव्वेण**' शब्द डाला है अन्तिम। अन्तिम डाला है। जिसे अन्तर में वीतरागदशा मुनिपने की निरालम्बी अवस्था अन्तर में प्रगट हुई है, उसे द्रव्य से तो पंच महाव्रत का विकल्प होता है और नग्नदशा हो तो कर्म के नाश का कारण तो वह भावलिंग है। है न बाद में देखो न! '**कम्मपयडीण णियरं**' कर्मप्रकृति का निकर—समूह। कर्म का ढ़ेर पड़ा हो, उसके नाश का उपाय तो भावलिंग है। तथापि उसे द्रव्यलिंग नग्नपना आदि होता है, होता और होता ही है। वस्त्र रखे और ऐसा धारे कि हमारे भावलिंग प्रगट हुआ है। (वह) मिथ्यादृष्टि मूढ़ है।

**मुमुक्षु :** गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गृहीत मिथ्यादृष्टि है। ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। यह कहीं ऐसा हो तो यह पक्ष मेरा गिना जाये, ऐसा हो तो यह मेरा पक्ष न गिना जाये—ऐसा है यह? वस्तु की स्थिति की सीम, सीम अर्थात् उसकी मर्यादा ही इतनी इस प्रकार की है। आहाहा!

जिसे भावलिंगसहित, सम्यग्दर्शन और अकषाय परिणति, वह भावलिंग है, वह पर्याय है। उसे द्रव्यलिंग है। भाषा देखो! पीछे द्रव्यलिंग है साथ में। **कर्मप्रकृति के समूह का नाश होता है।** लो! आहाहा! एक गाथा में भी गजब काम करते हैं न!

**भावार्थ :- आत्मा के कर्मप्रकृति के नाश से निर्जरा तथा मोक्ष होना कार्य है।** क्या कहते हैं? आत्मा को कर्म की प्रकृति के नाश से निर्जरा और मोक्ष होता है। शुद्धता निर्जरा की और मोक्ष पूर्ण शुद्ध। **यह कार्य द्रव्यलिंग से नहीं होता।** पंच महाव्रत की क्रिया, अट्ठाईस मूलगुण 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या? कि पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, नग्नपना, हजारों रानियों का त्यागादि किया, परन्तु उसमें सुख नहीं था। यह पंच महाव्रत के परिणाम, वह सुख नहीं था, वह तो दुःख था। मणिभाई! आहाहा! 'मुनिव्रत धार...' 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो...' तो व्रत धारण किये, वह सुख नहीं। आहाहा! वह तो विकल्प है, आस्रव है, दुःख है, जहर का प्याला है। समझ में आया? ऐसा द्रव्यलिंग भावलिंगवाले को होता है, कहते हैं, परन्तु उस द्रव्यलिंग से कर्म का नाश होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कर्म का नाश होने से निर्जरा और मुक्ति होती है, शुद्धि की अपूर्णता प्रगट होना, वह निर्जरा और शुद्धि की पूर्णता प्रगट होना, वह मोक्ष। वह तो भावलिंग के द्वारा होता है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा रत्नकरण्डश्रावकाचार में नहीं कहा? गृहस्थो मोख्खमग्गो। सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो तो भी वह मोक्षमार्ग में है। मुनिपना भले न हो। और अणगार परन्तु यदि मिथ्यात्वसहित है तो वह मोक्ष के मार्ग में नहीं, संसार मार्ग में है अभी। आहाहा! क्यों? कि जो राग का विकल्प है, वह उदयभाव है, वह संसार है। उस संसार के भाव में जिसकी एकताबुद्धि है, वह संसारी ही प्राणी है। आहाहा! वह अणगार नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि **आत्मा के कर्मप्रकृति के नाश से निर्जरा तथा मोक्ष होना कार्य है। यह कार्य द्रव्यलिंग से नहीं होता।** आहाहा! यह पंच महाव्रत के परिणाम तो आस्रव और बन्ध का कारण है। उससे निर्जरा और मोक्ष नहीं होता। आहाहा! **भावसहित द्रव्यलिंग होने पर कर्म की निर्जरा नामक कार्य होता है।** वीतरागी परिणति प्रभु ऐसा... है, भाई! वह कोई विकल्प से प्राप्त हो या बाह्य क्रिया करे तो प्राप्त हो या गृहस्थाश्रम

छोड़कर, राजपाट छोड़कर बैठा, इसलिए यहाँ प्राप्त हो—ऐसी वह चीज़ नहीं। क्योंकि मिथ्यात्व नाम का परिग्रह तो मूल वह है। मिथ्यात्व अभ्यन्तर परिग्रह है न? उसमें मिथ्यात्व परिग्रह तो मूल परिग्रह है।

जिसे इस शुभराग की एकताबुद्धि है, उसे मिथ्यात्व का परिग्रह तो पड़ा है, कहते हैं। उसने क्या छोड़ा? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें! और जिसने मिथ्यात्व का परिग्रह छोड़ा, उसे अभ्यन्तर परिग्रह की ममता का तो एकत्व टूट गया। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो तदुपरान्त मुनिपने की बात लेनी है। **भावसहित द्रव्यलिंग होने पर कर्म की निर्जरा नामक कार्य होता है। केवल द्रव्यलिंग से तो नहीं होता है,...** परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं लेना कि द्रव्यलिंग नहीं होता और भावलिंग अकेला होता है। ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह वस्तु होती ही है वह। उसकी स्थिति की मर्यादा ही यह है। यह कहीं नयी घड़ी है? जिसे तीन कषाय (चौकड़ी) और मिथ्यात्व का अभाव हुआ, उसका द्रव्यलिंग नग्न और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्पवाला ही होता है। समझ में आया? आहाहा! कहो, चाँदमलजी! अभी अकेले मूलगुण, वह नहीं, ऐसा कहते हैं। यह पंच महाव्रत पालते हैं। व्यवहारचारित्र तो पालते हैं न? व्यवहार धूल भी नहीं, सुन न! अभी अन्दर राग की एकता टूटे बिना और स्वभाव की एकता हुए बिना एकत्व-विभक्त... स्वभाव चिदानन्द का नाथ प्रभु स्वयं अपने में एकत्व न हो और राग से पृथक् न हो, उस समय तो दूसरे को....

**मुमुक्षु :** आने न दे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आने न दे। आहाहा!

**केवल द्रव्यलिंग से तो नहीं होता है, इसलिए भावसहित द्रव्यलिंग धारण करने का यह उपदेश है।** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वस्तुस्थिति की इस मर्यादा का उपदेश है।

★ ★ ★

## गाथा - ५५

**आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं :—**

**णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।**
**इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर॥५५॥**

आहाहा! देखो! कुन्दकुन्दाचार्य सम्बोधन करते हैं। हे धीर! धैर्य अर्थात् बुद्धि और धी अर्थात् बुद्धि। जिसने शुद्ध आत्मा के शुद्ध आनन्द में प्रेरी है, उसे धीर कहा जाता है। हे धीर! आहाहा! जिसने अन्दर के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की बुद्धि को भगवान परमानन्द के नाथ में जिसने बुद्धि को प्रेरी है। धीर। धी को प्रेरी है, उसे यहाँ धीर कहा जाता है। जिसने राग में बुद्धि को प्रेरी है, उसे धीर नहीं कहा जाता। आहाहा! समझ में आया?

**अर्थ :- भावरहित नग्नत्व अकार्य है,...** भाषा है न! उसमें कार्य रखा था। अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन, अनुभव अर्थात् पूर्ण अनन्त गुण की शुद्धता को अनुसरकर निर्मलदशा का होना, ऐसी वीतरागता अन्तर में उग्ररूप से उत्पन्न होना, उस भावलिंग बिना नग्न अकार्य है। ऐसा नग्नपना... बहुत कहे, नग्न हुए नौवें ग्रैवेयक तो जायेगा न? अरे! नौ ग्रैवेयक गया उसमें क्या हुआ? मक्खी उड़कर लकड़ी पर ऊँचे गयी, वह ऊँची हो गयी? वह तो क्षेत्र जरा ऊँचा है। क्षेत्र ऊँचा है। वहाँ निगोद भी पड़े हैं। आहाहा! जिसे अन्दर में मिथ्यात्व के रंग से रंगा हुआ भगवान है। आहाहा! वह चाहे जिस क्षेत्र में जाये, सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ निगोद विराजता है, वहाँ निगोद। सिद्ध भगवान जहाँ हैं, वहाँ अनन्त निगोद के जीव मिथ्यात्व के रंगे हुए पड़े हैं अन्दर सिद्ध के पेट में। समझ में आया? आहाहा! इससे क्या हुआ? ... यह वस्तु से तो अघाति के वेश हैं सब। वह अघातिकर्म के, पुण्य-पाप के सब वेश हैं। घाति के ऊपर चोट किये बिना, स्वरूप की एकता किये बिना तीन काल में लाभ नहीं होता। आहाहा!

**भावरहित नग्नत्व...** नग्नत्व है न। '**णग्गत्तणं**' नग्नपना। आहाहा! '**अकज्जं**' अकार्य है। कार्य बिलकुल नहीं उसमें। आहाहा! '**भावणरहियं**' क्योंकि आत्मा में एक कर्म नाम का गुण है। लो! कर्म अर्थात् यह जड़कर्म नहीं, भावकर्म नहीं, पर्याय भी

नहीं। कर्म का कार्य होने का कर्म नाम का एक ज्ञानगुण के साथ एक कर्म नाम का गुण अन्दर है। उस गुण का कार्य निर्मल वीतरागीपना होना, वह गुण का उसका कार्य है। तो ऐसे गुण को पकड़े बिना तेरे नग्नदशा सब थोथा है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कर्म चार प्रकार के। एक जड़कर्म, उसे कर्म कहते हैं, जड़ की अवस्था। एक पुण्य-पाप के भाव भावकर्म, उसे कर्म कहते हैं मलिन अवस्था। एक निर्मल वीतरागी पर्यायरूपी कर्म अर्थात् कार्य कहते हैं। वह वीतरागी कर्म। और त्रिकाल गुणरूप जो कर्म, वह ध्रुवकर्म। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं कि '**णग्गत्तणं अकज्जं**' क्योंकि जो कार्य नाम का गुण भगवान आत्मा में है, ऐसे गुणी को तो उसने पकड़ा नहीं। आहाहा! और ऐसे विकल्प और पंच महाव्रत और नग्नपना लिया, बापू! तेरा कार्य उसमें नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया?

वस्त्रसहित जो मुनि हैं, मानते हैं, वे तो मानो जैनदर्शन में ही नहीं। कठिन पड़े, प्रभु! माने, न माने, परन्तु मार्ग यह है। वस्त्र रखकर मुनिपना मानता है, उसे तो कुन्दकुन्दाचार्य १४वीं गाथा में दर्शनपाहुड़ में कहते हैं, वह जैनदर्शन ही नहीं। आहाहा! १४वीं गाथा है। देखो, है? दर्शनपाहुड़, पृष्ठ २१। १४ (गाथा) है न? २१ पृष्ठ पर अर्थ। २०वें पृष्ठ पर अकेली गाथा है १४ गाथा?

**दुविहं पि गंधचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।**
**णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥१४॥**

यह जैनदर्शन। आहाहा! **अर्थ :- जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो...** भावलिंग उसका निर्मल हो और बाह्य में जिसे वस्त्र आदि का धागा न हो। **और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो..** तीन (योग) तीन (करण ऐसा) नौ-नौ कोटि से जिसका संयम होता है अन्दर। आहाहा! **कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों...** ज्ञान में तीन करण। नौ-नौ कोटि से शुद्धता हो। अज्ञानी को कोई ज्ञानादि का उघाड़ हुआ हो तो उसकी प्रशंसा करता हो तो वह उसका ज्ञान शुद्ध नहीं। समझ में आया? आहाहा! इन्होंने बहुत समाहित किया है अन्दर। अज्ञानी को मिथ्यात्व में नौ पूर्व का ज्ञान हो जाता है। ग्यारह अंग और नौ पूर्व। वह कोई ज्ञान नहीं।

ज्ञान तो भगवान आत्मा आनन्द का नाथ, उसे अन्तर में स्पर्श कर जो ज्ञान का अंश आया, वह अनुमोदनयोग्य करण, करावन और अनुमोदनयोग्य है। यह अज्ञानी के ज्ञान में क्षयोपशम बहुत हो गया हो और लाखों लोगों को रिझाता हो। कहते हैं कि ऐसे ज्ञान को जो अनुमोदे, उसका ज्ञान सच्चा नहीं। समझ में आया? **कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे ऐसा, खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे,...** आहाहा! खड़े-खड़े आहार-पानी। यह है? **इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।** यह मूर्ति में दर्शन का स्वरूप यह है जैनदर्शन का। आहाहा! धन्नालालजी! वहाँ भी १४वीं गाथा कही। वहाँ कही है बोधपाहुड़ में। दो जगह है। बोधपाहुड़ में भी १४वीं है और यह भी १४वीं है। बोधपाहुड़ में देखनी है पण्डितजी को? वह भी १४वीं है। यह भी १४वीं है, देखो! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो केवलज्ञान को टिकाये रखा है। यह मार्ग है। आहाहा! है?

१४वीं गाथा बोधपाहुड़। **आगे दर्शन का स्वरूप कहते हैं:—** दर्शन किसे कहते हैं? जैनदर्शन, हों! समकित किसे कहते हैं, ऐसा नहीं। '**दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजम सुधम्मं च।**' जो मोक्षमार्ग तीन कषाय का अभाव और समकित, ऐसा जो मोक्षमार्ग दिखाये अन्दर। समकित, संयम और सुधर्म हो। निर्ग्रन्थदशा जिसकी हो। '**णाणमयं**' और अकेली ज्ञानमयदशा जिसकी प्रगटी हो। विकल्प है, वह कुछ ज्ञानमय नहीं। '**जिणमग्गे दंसणं भणियं**' जैनमार्ग में उसे जैनदर्शन कहा जाता है। इससे विरुद्ध को जैनदर्शन नहीं कहा जाता। पण्डितजी! वह जैनदर्शन यह। मार्ग ऐसा, बापू! दूसरों को कठोर लगे। सम्प्रदाय बँधे हैं न, बापू! मार्ग तो यह है, भाई! वस्तु की स्थिति अनादि की यह है। यह कोई नयी की हुई है, नया पक्ष है, ऐसा है नहीं। '**दंसणं भणियं**' जिनदेव ने उसे जैनदर्शन, जिनमार्ग में उसे दर्शन कहा। दर्शन की मूर्ति तीन कषाय का जहाँ अभाव। खड़े-खड़े आहार, निर्दोष जिसका ज्ञान, निर्दोष जिसका संयम। आहाहा! उसे दर्शन की मूर्ति, मूर्ति उसका दर्शनस्वरूप ही वह है, कहते हैं। ऐसे दर्शन के अतिरिक्त दूसरे प्रकार से कल्पित हो, उसे जैनदर्शन नहीं कहते। समझ में आया? आहाहा!

**भावरहित नग्नत्व अकार्य है,...** ५५, अपने चलती (गाथा)। **कुछ कार्यकारी नहीं है।** कुछ कार्यकारी नहीं है। लो, वह कहे भाई! नौवें ग्रैवेयक तो जाये। वह तो वह की वह दशा है। आहाहा! यह तो आया न! कहा न यह। ... अबुधा महाभागा सं दंसण

रहित... कौनसी गाथा आयी ? श्वेताम्बर में है और एक अपने यह प्रवचनसार में। कि जो बुधा महाभागा वीरा समंत दंसिणो शुद्धं... अफलं... जो कोई सम्यग्ज्ञानी धर्मात्मा बुद्धिवन्त है। जो बुधा महाभागा। पुण्यवन्त भी है। दुनिया जिसे मान्य रखे। जो बुधा महाभागा वीरा है। अन्तर स्वरूप में वीर जिसने स्वरूप की सावधानी में वीर्य को प्रेरित किया है। ऐसा वीरा समत्तदंसिणो। सम्यग्दर्शन है। शुद्धतेसिं ... उसका जो निर्मल पुरुषार्थ सब शुद्ध है। अफलं होई। उसके पुरुषार्थ का फल संसार नहीं। अफल होय, ऐसा कहते हैं। वह मोक्ष के मार्ग का फल अफल है, ऐसा कहते हैं। अफल अर्थात् संसार नहीं, ऐसा। प्रवचनसार में है। समझ में आया ? जे अबुधा महाभागा वीरा असंत्तदंसिणो अशुद्ध ... सफलं होई... तेरा सब सफल है प्रभु चार गति में भटकने के लिये। आहाहा! यही कहते हैं। यह ... है सूयगडांग में ... है न यह श्वेताम्बर में। यह सब तब कण्ठस्थ किया था। छह हजार गाथायें की थीं। छह हजार गाथायें मुखाग्र थीं कण्ठस्थ। । उसमें यह गाथा थी। जे वीरा जे अबुधा। जिसे तत्त्वज्ञान का भान नहीं, जिसे राग की एकता टूटी नहीं और जहाँ ज्ञान के क्षयोपशम में बहुत उघाड़ हो गया हो, वह अबुधा महाभागा। कोई पूर्व की पुण्य प्रकृति के कारण दुनिया में पुजाता हो, दुनिया उसे बड़े रूप से मानती हो। वीरा हो। महीने-महीने के अपवास करे। संथारा दो-दो महीने के। वीरा परन्तु असमंत्तसंदिणो। जिसे सम्यग्दर्शनरहित दशा है, अशुद्धं तेसि। उसका सब पराक्रम अशुद्ध है। सफलं न होई। वह सब सफल होगा। वह अनादि से भव फलते आते हैं, वे भव फलेंगे। पण्डितजी! आहाहा! उसका मोक्षमार्ग निष्फल, इसका बन्धमार्ग सफल। किस अपेक्षा से जानना चाहिए न!

यहाँ कहते हैं **ऐसा जिन भगवान ने कहा है।** है न पाठ ? '**जिणेहिं पण्णत्तं**' स्वयं कहते हैं परन्तु वीतराग को सामने रखकर बात करते हैं। बापू! यह तो वीतराग ने ऐसा कहा है। जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा है कि नग्नपना, अकेले पंच महाव्रत के परिणाम, वह सब अकार्य है। ऐसा '**जिणेहिं पण्णत्तं**' आहाहा! **इस प्रकार जानकर हे धीर!** आहाहा! व्यवहार के विकल्प में बुद्धि को तूने फिरा रखी है, वह अज्ञानभाव है। व्यवहार के आचरण में जो बुद्धि को सावधान कर रखी है, वह अधीरबुद्धि, बुद्धि नहीं। आहाहा! जो बुद्धि निश्चय में 'धी' अर्थात् बुद्धि को 'र' अर्थात् प्रेरी है

अन्तर में। भले उसका ज्ञान अल्प और थोड़ा हो, तो भी वह धीर कहा जाता है। आहाहा! और अज्ञानी को ग्यारह अंग का उघाड़ हो, परन्तु जहाँ उसे राग की एकता का मिथ्यात्वभाव पड़ा है, उसे बुद्धि राग में प्रेरित हो गयी है। व्यवहार के विकल्प में दौड़ गया है, उसे अबुद्धि कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह डॉक्टरपने का ज्ञान और यह वकालत का ज्ञान और यह बुद्धियाँ सब राग में प्रेरित हो गयी है, ऐसा कहते हैं। अरे! शास्त्र का ज्ञान, परन्तु उसमें से जिसने राग से लाभ माना, ऐसा जो निकाला है, वह सब अज्ञान है। आहाहा!

**धैर्यवान मुने! निरन्तर नित्य आत्मा की ही भावना कर।** भाषा है न, देखो! '**अप्पयं धीर**' '**भाविज्जहि अप्पयं**' यह पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नपना, वह आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसा आया न? '**भाविज्जहि अप्पयं धीर**' जो रागरहित निर्विकल्प प्रभु आत्मा का स्वभाव, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता की भावना कर। आहाहा! '**भाविज्जहि अप्पयं**' ऐसे आत्मा को भा। उसे आत्मा कहते हैं। राग और विकल्पवाला, वह आत्मा नहीं। राग तो अनात्मा है। पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण, शास्त्र का ज्ञान परसन्मुख का, पाँच महाव्रत के परिणाम, वे तो अनात्मा हैं। आहाहा!

**निरन्तर नित्य...** निरन्तर नित्य, ऐसा। यह निकाला है। '**णिच्चं**' शब्द पड़ा है न। '**इय णाऊण य णिच्चं**' ऐसा कहने में क्या कहते हैं? कि रागादि के विकल्प, उसकी भावना छोड़ दे और नित्य आत्मा की भावना कर। आहाहा! ऐसा मार्ग कठिन लगे न, इसलिए लोगों को समझ में नहीं आता, इसलिए फिर अन्यत्र दौड़ गये। माना कि हम कुछ मार्ग में हैं। बापू! उसमें लाभ क्या, भाई? दुनिया तो कहेगी, दुनिया में मान मिलेगा। वह कहीं गिरवी रखा जाये ऐसा है? गीरो। गीरो कहते हैं न। गीरो रखना। तुम्हारे धरोहर कहते हैं। गिरवी (रखना)। आहाहा! ऐसे जिनेन्द्रदेव निरन्तर नित्य आत्मा की भावना कर, ऐसा कहते हैं। समकिती को द्रव्यदृष्टि और द्रव्य का ध्येय किसी समय छूटता नहीं। समझ में आया? आहाहा! मुनि आहार—पानी लेता हो, उसमें दिखायी दे। कहते हैं कि उस काल में भी जो आहार का विकल्प और आहार की क्रिया, उसमें तो वह मुनि है ही नहीं। आहाहा! मुनि तो उस समय अकषाय परिणाम में मुनि वर्तते हैं। आहाहा! उस समय उसे आत्मा की निरन्तर भावना वर्तती है। वह राग

आया, उसकी भावना उसे होती नहीं। समझ में आया? बहुत कठिन बातें।

**निरन्तर नित्य...** ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि वस्तु का जो स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन, उसकी दृष्टि जो तुझे हुई तो निरन्तर उस ध्येय को लक्ष्य में रखना। किसी समय व्यवहार की मुख्यता हो जाये और पर्याय की मुख्यता हो जाये और निमित्त की मुख्यता हो जाये—ऐसा समकिती को होता नहीं। समझ में आया? पाटनीजी! आहाहा! '**इय णाऊण**' क्या '**इय णाऊण**' कि नग्नपना वह अकार्य है। भावरहित लाभ नहीं, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है—ऐसा जानकर। '**णिच्चं भाविज्जहि**' आहाहा! वीतराग मूर्ति प्रभु की भावना निरन्तर रख। ऐसा कहकर ऐसा भी कहना चाहते हैं कि कोई मुनि को रोगादि हो और वैयावृत्य का विकल्प आवे, तो उसकी भावना नहीं होती कि यह क्रिया करूँ। सोलह प्रकार के यह तीर्थंकरगोत्र आते हैं न! षोड्शकारण भावना। वह तो राग है। आवे, अलग बात। परन्तु उसकी भावना करना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावना तो '**अप्पयं धीर**' धर्मी जीव को तो, धर्मी का ध्येय तो आत्मा पूर्णानन्द के ऊपर है। उस ध्येय को निरन्तर रहता है, उसमें अन्तराल एक समय का भी पड़ता नहीं। आहाहा! '**भाविज्जहि अप्पयं धीर**' आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य को जब यह विकल्प होगा और यह गाथा लिखी गयी। उस समय अन्दर में, कहते हैं, हम तो हमारे आत्मा की भावना में हैं, हों! यह शास्त्र लिखने का विकल्प है, इसलिए हम उसमें आये हैं। धन्नालालजी! आहाहा! यह तो धीर का मार्ग है, भाई! धीर और वीर। जिसने बुद्धि को अन्तर में प्रेरा है। जिसकी महत्ता की महिमा ज्ञान में आत्मा की आयी है, उसे राग और व्यवहार की महत्ता अन्दर में से उड़ गयी है। आहाहा! हो। महिमा और महत्ता उड़ गयी है। आहाहा! कहते हैं, **निरन्तर नित्य आत्मा की ही भावना कर।** आहाहा!

**भावार्थ :- आत्मा की भावना बिना...** आत्मा किसे कहते हैं परन्तु पहले? यह। शुभ-अशुभ विकल्प है, वह आस्रव है, वह आत्मा नहीं। शरीर, कर्म है, उसकी क्रिया सब अजीव है वह तो, वह आत्मा नहीं। आत्मा तो पुण्य और पाप के, राग और शरीर के अजीव की जड़ से भिन्न ऐसा पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा, उसकी भावना कर। भावपाहुड़ है न! ऐसा लगे कि यह ... सूक्ष्म बहुत। यहाँ तो... यह अकेला वीतरागभाव के घोलन की ही बात करते हैं। समझ में आया? यह कहा न, देखो न! **आत्मा की**

**भावना बिना...** आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यघन की ओर की एकाग्रता बिना, उसकी भावना शब्द से (आशय) उसमें एकाग्रता बिना **केवल नग्नत्व कुछ कार्य करनेवाला नहीं है,...** आहाहा! **केवल नग्नत्व कुछ कार्य करनेवाला नहीं है, इसलिए चिदानन्दस्वरूप आत्मा...** इसका स्पष्टीकरण किया कि आत्मा अर्थात् क्या? चिदानन्दस्वरूप आत्मा। वह ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु है। अकेला ज्ञान का सागर है। आनन्द से भरपूर भरा हुआ उसका स्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से भरपूर पूर्ण प्रभु आत्मा है, उसे हम आत्मा कहते हैं, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! कितने ही कहे, यह तो सब ऊँची बात है।

**मुमुक्षु :** सूक्ष्म है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सूक्ष्म है। हमारे लिये छोटा कहो न, ऐसा कहते हैं। सेठ बहुत कहते थे वे दिल्ली। शाहूजी। अब यह तो सब बात तो... परन्तु हम गृहस्थाश्रम में हैं हम... परन्तु गृहस्थाश्रम में भी धर्म समकित है, उसकी यह बात चलती है। आहाहा! मूल तो लोगों के उस बाहर में चढ़ा दिया है न, इसलिए उन्हें यह अन्तर में अभी सम्यग्दर्शन की महिमा की खबर नहीं होती। सम्यग्दर्शन का विषय महामहिमावन्त है। सम्यग्दर्शन का विषय पंच महाव्रत और निमित्त, वह उसका विषय नहीं। आहाहा! समझ में आया? पहले गृहस्थाश्रम के सम्यग्दर्शन की बात है यह तो। आहाहा!

**चिदानन्दस्वरूप आत्मा...** यह तो ज्ञान, चिद् अर्थात् ज्ञानस्वरूपी पूर्ण और अतीन्द्रिय आनन्द का अविनाभावी भाववाला तत्त्व, उसकी भावना अर्थात् उस ओर का झुकाव, अर्थात् उस ओर की एकाग्रता **निरन्तर करना,...** निरन्तर करना। आहाहा! कोई ऐसा आयेगा पहले कि देखो, व्यवहार में आवे न तो जरा विश्राम मिले। और फिर उसे पुष्टि-जोर बढ़े, तो निश्चय में जाये। आया था पहले खबर नहीं होगी तुमको। छोटालालजी। अब तो अभी बदल गये हैं। पत्र था पहला। मेरी बात पहली भूल थी। अब मैं इस बात में... उसने ऐसा लिखा है। त्याग मार्ग है वीतराग का। त्याग मार्ग। जितना त्याग। परन्तु कौनसा त्याग? मिथ्यात्व के त्याग बिना का त्याग किसका? आहाहा! इसलिए ऐसा लिखा, व्यवहार में आयें और फिर जरा पुरुषार्थ अधिक हो। जरा ऐसे विश्राम मिले और फिर निश्चय में जाया जाये। धूल भी नहीं जाया जाये, सुन न! ऐई!

**मुमुक्षु :** व्यवहार में विश्राम मिलता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विश्राम मिलता है। आहाहा! ठीक!

**निरन्तर करना, आत्मा की भावनासहित नग्नत्व सफल होता है।** जिसे आत्मा श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में जिसने भाया है, उसका नग्नपना पंच महाव्रत के विकल्प भले हों तो उसका सफल है, कहते हैं। समझ में आया? उस भाव के कारण। इसके बिना नग्नपना... आचार्य महाराज तो यह पुकारते हैं।

★★★

## गाथा - ५६

अब शिष्य स्पष्टीकरण पूछता है, हों! महाराज! गाथा में आना चाहिए न फिर इसलिए। आप भावलिंग... भावलिंग करते हो। वह **भावलिंग को प्रधान कर निरूपण किया, वह भावलिंग कैसा है?** वह भावलिंग है कैसा? आहाहा! **इसका समाधान करने के लिये भावलिंग का निरूपण करते हैं:—'देहादिसंगरहिओ'** बड़ा शब्द। आहाहा! देह आदि। शरीर, राग निमित्त आदि सब संग, वह पर है। उससे **'रहिओ'** आहाहा! देहादि में मिथ्यात्व भी अन्दर साथ में आ गया। इस मिथ्यात्व के संग से जीव रहित है। आहाहा!

**देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।**
**अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू॥५६॥**

**अर्थ :- भावलिंगी साधु ऐसा होता है—देहादिक परिग्रहों से रहित होता है...** देहादि शब्द से मिथ्यात्व आदि सब उसमें आया। आहाहा! देह, मिथ्यात्व, पुण्य और पाप, रागादिभाव, वह सब देहादि में जाता है। आहाहा! उसमें ऐसा कहते हैं कि वे पंच महाव्रत के परिणाम भी वह सब देहादि की स्थिति में जाते हैं। ऐसे परिग्रह से रहित... आहाहा! यह जन्म-मरणरहित होना है, भाई! पूरी दिशा पलटानी है। शुभाशुभभाव की दशा विकारी, परसन्मुख की दिशावाली है। शुभाशुभभाव की दशा परदिशा-सन्मुख की है और शुद्धभाव की दशा स्वदिशा-सन्मुख की है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक-२१-०१-१९७४**
**गाथा - ५६ से ५८, प्रवचन-९५**

अष्टपाहुड़ में ५६ गाथा। अर्थ चल गया है। '**देहादिसंगरहिओ**' अर्थात् कि यह आत्मा भगवान पूर्ण आनन्द आदि जिनसम्पन्न, उसके असंग स्वभाव से स्वयं अभेद है। परन्तु देह, राग, पुण्य, विकल्प से तो वह भिन्न है। वह '**देहादिसंग**' अर्थात् राग का संग, व्यवहार का संग, शरीर का संग, उससे रहित है। '**माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो**' भगवान आत्मा जिसे भावलिंग कहें साधु का अथवा धर्मी का। कि जिसे पुण्यादि के विकल्प का अहंपना छूट गया है। व्यवहार का जो विकल्प है, शरीरादि तो पर अजीव है, दोनों बाह्य शरीर और अभ्यन्तर रागादि। उसका जिसे मान '**सयलपरिचत्तो**' आहाहा! नास्ति से बात की है न पहली? रागादि विकल्प है, उसके प्रति अहंपना जिसे अन्तर से छूट गया है। समझ में आया? आहाहा!

और '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' नास्ति से पहले बात की। धर्म की शुरुआत ही सम्यग्दर्शन से होती है। सम्यग्दर्शन में, यहाँ तो भावलिंगी मुनि की व्याख्या है, परन्तु वह स्वरूप, वही है उसका। जितना अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प की वृत्ति साथ में और शरीर तथा कर्म आदि हो, उसके प्रति का अस्तित्व मुझमें है, ऐसा राग जिसे उड़ गया है। आहाहा! समझ में आया? और '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' अब यहाँ से जब नास्ति की, तब भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन-आनन्द के स्वभाव से भरपूर, वह आत्मा निर्मल पर्याय द्वारा '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' अपने आत्मा में जो लीन हो, ऐसा जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द के परिणाम, उसे भावलिंग कहते हैं, उसे धर्म कहते हैं, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

'**भावलिंगी हवे साहू**' चौथा पद यह है। साधु अर्थात् साधक। स्वरूप चिदानन्द भगवान आत्मा का साधक साधु, वह रागादि के अहंकार से छूट गया है। ऐसे अहंपना छूट गया है और ऐसे पूर्णानन्द में अहंपना आया है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में से यह शुरु होता है। जिसे सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प गुण-गुणी के भेद का

हो, उसके प्रति भी अहंपना, ममपना (अर्थात्) यह मैं और यह मेरे, यह दृष्टि छूट गयी है, तब वह आत्मा आनन्दस्वरूप में अपने निजस्वभाव के परिणामरूप जो ज्ञान, दर्शन और आनन्द, उसमें जो लीन है। आहाहा! उसे यहाँ भावलिंगी साधु कहा जाता है। द्रव्यलिंग चाहे जो हो, परन्तु भावलिंग यह न हो तो द्रव्यलिंग की कोई गिनती नहीं है। है न भावार्थ? **आत्मा के स्वाभाविक परिणाम को भाव कहते हैं,...** यहाँ, हों! वरना तो शरीर उसे भी भाव कहते हैं, पुण्य-पाप के भाव को भी भाव कहते हैं, निर्मल वीतरागी चैतन्य के अवलम्ब से परिणाम हुए, उन्हें भी भाव कहते हैं और त्रिकाली वस्तु को भी भाव कहते हैं। तथापि यहाँ जो लेना है, वह निर्मल परिणाम को भाव लेना है। भावपाहुड़ है न? जो अन्तर में द्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव उसे जिसने अवलम्बन किया है जिस परिणाम ने, वह परिणाम, वह ज्ञान, दर्शन और आनन्द के हैं। उस परिणाम को भावलिंग कहा जाता है। आहाहा! भारी कठिन काम! लोगों को निश्चय-निश्चय लगे। निश्चय, यही सत्य है। समझ में आया?

लक्षण कहो या भावरूप कहो। **आत्मा अमूर्तिक चेतनारूप है, उसका परिणाम दर्शन-ज्ञान है।** जानने और देखने के परिणाम, वह आत्मा है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वे आत्मा के नहीं, वे तो आस्रवभाव हैं। आहाहा! समझ में आया? **उसमें कर्म के निमित्ते ( पराश्रय करने से ) बाह्य तो शरीरादिक...** और अन्तर मिथ्या राग-द्वेषादि परिणाम, उनका अहंकार जिसे छूट गया है। आहाहा! चैतन्य चौसला आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी अस्ति का स्वीकार सन्मुख होकर रहा और उससे विरुद्धभाव को स्वभाव से विमुख जितने परिणाम हैं, उन सब परिणाम का अहंपना, ममपना छूट गया है। उसे धर्मी और उसे मोक्षमार्गी कहते हैं। आहाहा!

**बाह्य तो देहादिक परिग्रह से रहित और अन्तरंग रागादि परिणाम में अहंकाररूप मान-कषाय...** है न मूल पाठ में। मान का अर्थ ही यह है कि सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प राग हो, वह मैं—यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! उसके भावरहित और अपने आत्मा के भावसहित। है न? **अपने दर्शनज्ञानरूप चेतनाभाव में लीन...** उसे यहाँ भावलिंग कहा जाता है।

★★★

## गाथा - ५७

अब ५७ गाथा लेते हैं।

**ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।**
**आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे॥५७॥**

धर्मी जीव को, भावलिंगी मुनि को कहो या धर्मीजीव को कहो। **इस प्रकार के भाव होते हैं—मैं परद्रव्य और परभावों से ममत्व ( अपना मानना ) को छोड़ता हूँ...** आहाहा! उसमें जो सामान्य बात थी, यहाँ विशेष स्पष्टीकरण किया। मेरा जो स्वभाव ध्रुव, चिदानन्द आत्मा, उसमें मैं लीन होता हूँ और रागादिभाव नास्तिरूप से मुझमें नहीं, ऐसा मैं परिणमता हूँ। आहाहा! है ? **मेरा निजभाव ममत्वरहित है... 'ममत्तिं परिवज्जामि'** है न ? **'परिवज्जामि'** समस्त प्रकार से पर का ममत्व छोड़कर। कोई भी अंश, परमात्मा के प्रति भक्ति या परद्रव्य के प्रति झुकाववाली वृत्ति में से मेरा अहंपना छोड़ देता हूँ। वे मेरे नहीं। मेरे हों, वे पृथक् पड़े नहीं और पृथक् पड़ें, वे मेरे नहीं। समझ में आया ?

**मेरा निजभाव ममत्वरहित है...** आहाहा! मेरा भाव... एक ओर—राम-आत्माराम तथा एक ओर विकल्प से लेकर पूरा गाँव। आहाहा! मेरा चैतन्य नाथ अनन्त गुण से भरपूर भगवान, 'निजपद रमे सो राम कहिये।' अपने शुद्ध आनन्दस्वभाव में रमे, उसे—आत्मा को आत्माराम कहते हैं। तो मैं यह रागादि सकलभाव का अहंपना छोड़ देता हूँ। आहाहा! देखो, यह सम्यग्दर्शन से लेकर यह मुनि की बात है। आहाहा! **उसको अंगीकार कर स्थित हूँ।** किसे अंगीकार करके ? **मेरा निजभाव ममत्वरहित है उसको...** आहाहा! बहुत धीरज की बातें हैं, भाई!

भगवान आत्मा ऐसी भावना करता है। साधु अथवा धर्मी। वह रागादिभाव मेरे भाव से भिन्न हैं और रागादिभाव से रहित मेरा भाव भिन्न है। आहाहा! ऐसे भाव को मैं अंगीकार करता हूँ। उसे छोड़ता हूँ, इसे ग्रहण करता हूँ, इतना आया। शुभाशुभभाव आदि से लेकर उसके प्रति का अहंपना छोड़ता हूँ और मेरे स्वभाव के प्रति का शुद्धता का भाव, उसे मैं अंगीकार करता हूँ। आहाहा! अब यह धार्मिक क्रिया। बाहर का छोड़ने-रखने की बात नहीं, परन्तु यह तो रागादि भी मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! जिस भाव से

तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी मेरा नहीं। मूलचन्दभाई! आहाहा! बापू! तेरा भाव हो, वह तो निर्मल होता है। भगवान आत्मा द्रव्य और गुण से तो निर्मलानन्द प्रभु है। तो उसके परिणाम, भाव, दशा रागरहित निर्मल होती है। वह भाव मेरा। यह रागादि मेरे नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भी राग, वह मेरा नहीं। उस भावरहित जो परिणाम उसे मैं अंगीकार करता हूँ। आहाहा! क्यों? '**आलंबणं च मे आदा**' आहाहा! मेरा तो आलम्बन भगवान है, आत्मा है। मेरे आलम्बन में तो प्रभु है। '**आलंबणं च मे आदा**' मेरे आलम्बन में मेरा प्रभु है। आहाहा! भगवान परमात्मा भी मेरे आलम्बन का स्थान नहीं। पण्डितजी! परन्तु गजब मार्ग!

तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हो या मुनि निर्ग्रन्थ भावलिंगी सन्त हो या भगवान ने कहा हुआ अनेकान्तमय शास्त्र हो, वह मुझे अवलम्बन नहीं। आहाहा! लोगों को बात कठिन लगे। भाई! स्वरूप है पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण सम्पन्न चैतन्य, वह मुझे आलम्बन में है। मेरा आधार हो तो यह आत्मा है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में आलम्बन आत्मा ही है। आहाहा! है? '**आलंबणं च मे आदा**' मेरा आत्मा ही मुझे... 'ही' है, हों ही। च शब्द है न। मेरा आत्मा ही अवलम्बन है। कब अवलम्बन हो? कि निज आत्मा ध्रुव सामान्य है, वह जब दृष्टि में आवे तब, वह परिणाम कहते हैं कि मेरा आत्मा मुझे आलम्बन है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म परन्तु भाई! मार्ग तो ऐसा है न, बापू! आहाहा!

गहरे उतरने पर प्रभु सामान्य ध्रुव में एकाग्र हो, कहते हैं कि उस परिणाम में आधार मेरा ध्रुव है। मेरी पर्याय का भी मुझे आधार नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मेरे धर्म के परिणाम के लिये देव, गुरु तो आलम्बन नहीं, उनकी श्रद्धा का किया हुआ राग, वह भी आलम्बन नहीं। अरे! उस समय की जो राग की जानने की दशा-पर्याय-ज्ञान का अंश, वह भी मुझे आलम्बन नहीं। आहाहा! '**आलंबणं च मे आदा**' आहाहा! समझाते हैं, उसमें किस प्रकार समझावे? बस, यह आलम्बन मेरा आत्मा, वह भी एक विकल्प है। समझ में आया? आहाहा! तीन लोक का नाथ अनन्त सिद्ध की पर्याय को संग्रह कर पड़ा हुआ प्रभु, अनन्त सिद्ध की पर्याय को संग्रह कर पड़ा हुआ प्रभु आत्मा है। संग्रहीने समझ में आया? अनन्त सिद्ध की पर्याय को। आहाहा!

अलिंगग्रहण में आता है न। अव्यक्त में आता है। ४९ गाथा समयसार की। मेरा महाचैतन्य जो सामान्य, मेरा चैतन्य जो सामान्य, उसमें चैतन्य की व्यक्तायें जो निर्मल पर्यायें, वे भी मेरे चैतन्य सामान्य में अन्तरमग्न है। मेरा चैतन्य सामान्य वस्तु जो सामान्य ध्रुव, उसमें चैतन्य की निर्मल व्यक्त पर्यायें वर्तमान नहीं, और है, इसके अतिरिक्त नहीं, वह सब पर्यायें मुझमें पड़ी हैं अन्दर। चैतन्य की विशेष व्यक्तायें जो चैतन्य सामान्य में अन्तरमग्न हैं, अन्तरमग्न हैं, इसलिए उस आत्मा को अव्यक्त कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो पूरे जगत से उदास होकर और स्वभाव में आसन डाले, तब समझ में आये ऐसा है। समझ में आया?

कहते हैं, अरे! मेरा आत्मा ही मुझे आलम्बन है। आहाहा! भगवान अरिहन्त पंच परमेष्ठी आलम्बन है, वह भी यहाँ तो निकाल दिया। बापू! वे तो परद्रव्य हैं न, भगवान! परद्रव्य का आलम्बन लेने जायेगा तो राग होगा। कहो, गोदीकाजी! ऐसी सब बातें! और वापस ऐसा सब हो। उसके काल में वह होता है, होने के काल में होता है, उसे कोई कर्ता-फर्ता है नहीं। आहाहा! वह तो उसके परावर्तन के प्रसंग में परमाणु की पर्याय, उसका स्वकाल अभी परिणमन का यह काल आवे, तब ऐसा होता है। साथ में निमित्त जीव हो, उसमें कोई शुभभाव हो, उसे निमित्त कहा जाता है। परन्तु उस शुभभाव से यह होता है, ऐसा नहीं। क्योंकि यह हुआ, इसलिए शुभभाव होता है—ऐसा भी नहीं। क्योंकि शुभभाव होता है, इसलिए धर्म का आलम्बन है उसका, ऐसा भी नहीं।

**मुमुक्षु :** उसकी मेहनत बेकार है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मेहनत कहाँ करता है? आत्मा का वीर्य कहाँ काम करता है? आत्मा का वीर्य अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तक में हुआ, यह उसकी मर्यादा है। वह वीर्य आगे जाकर राग में जाये, उसे वीर्य कहते नहीं। आत्मा का वीर्य नाम का गुण है, उसका तो अर्थ यह शक्ति में आया है। स्वरूप की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं। भगवान आत्मा राग से भिन्न प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ ऐसा अनन्त गुण की रचना पर्याय में करे, निर्मल रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं। यह राग में राग की रचना करे, उसे नपुंसक कहते हैं। कहो, गोदीकाजी! पैसा-बैसा कमाने में होशियार, उसे क्या कहना?

**मुमुक्षु :** शास्त्र तो ऐसा ही कहे न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शास्त्र। यह मूर्ख कुछ दूसरा कहे, इसलिए होता होगा कुछ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! मेरा आत्मा मुझे अवलम्बन। आहाहा! सब निकाल दे। संयोगी चीज़ को निकाल दी, संयोग के लक्ष्य से होते विकल्प को निकाल दिया, विकल्प का ज्ञान करनेवाली वर्तमान पर्याय परलक्ष्यी, उसे भी निकाल दिया। आहाहा! कहो, समझ में आया? मेरा आत्मा मुझे अवलम्बन है। आहाहा! गजब बात की है न! धर्मी की दृष्टि में तो आत्मा ही अवलम्बन में है। यह बाह्य मूर्ति और शास्त्र और आगम को ऐसा कहा जाता है, वह तो जब शुभभाव हो, उस काल में उस ओर का लक्ष्य जाता है, तथापि शुभभाव का वह अवलम्बन नहीं। समझ में आया? शुभभाव भी स्वतन्त्र उस काल में उस समय का समय होता है, तब वह होता है। इसलिए शुभभाव के लिये भी परवस्तु आलम्बन नहीं। आहाहा! गजब बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि मुझे मेरे आत्मा को तीन लोक के नाथ सिद्ध, अरिहन्त, पंच परमेष्ठी मुझे आलम्बन नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को धर्म की शुरुआत होने से पहले श्रेणी का विकाररहित धर्मभाव, वह ऐसा पुकार करता है कि मुझे आलम्बन तो प्रभु आत्मा का है। मुझे आलम्बन में मेरी पर्याय का आलम्बन नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आलम्बन तो वह पर्याय ऐसे जाती है, परन्तु वह पर्याय, पर्याय का आलम्बन है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? '**आलंबनं**' पाठ है न मूल, देखो! यह गाथायें तो स्थानकवासी सम्प्रदाय में छूटी-छूटी गाथाओं में यह गाथायें आती थीं, पहले से। यह '**ममत्तिं परिवज्जामि**' ऐसी छूटी-छूटी गाथायें उन लोगों ने... की और पहली शुरुआत में उन लोगों को... स्तुति है भगवान की, उसमें इकट्ठी यह सब गाथायें आती हैं। यह ५७, ५८, यह ५९, ये तीन गाथायें हैं। सम्प्रदाय में चलती थीं। (छूटक) गाथा कहलाये उसका नाम। छूटी-छूटी। परन्तु इसके अर्थ की खबर नहीं होती, भाव की खबर नहीं होती। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मेरी प्रसन्नता तो आत्मा के आलम्बन में प्रसन्नता है। मुझे पर के आलम्बन में प्रसन्नता मुझे नहीं, भाई! क्योंकि यदि मैं पर के आलम्बन में जाता हूँ, तब मुझे राग होता है। समझ में आया? मेरा आतमराम का आलम्बन मुझे होने पर मुझे

आराम मिलता है। आहाहा! वह सीताजी रावण के वश नहीं होती थीं। रावण सीताजी को ले गया। वे तो महासती सम्यग्दृष्टि जीव धर्मात्मा हैं न! रावण कहता है, सती! वश हो। हरकर ले आया हूँ जो मेरे बाग में। ऐसे देखे तो ओहोहो! यह बाग। सीताजी को उठा ले गया। फिर वश न हो, तब रावण कहता है दूसरे को कि यह सीता वश नहीं होती, अब करना क्या? राम का रूप ले तो वश होगी। राम का रूप ले तो वश होगी। भाई! राम का रूप जहाँ लेता हूँ, वहाँ सीता माता दिखती है। मैं जहाँ राम का रूप धारण करता हूँ, वहाँ सीता माता दिखती है। ऐसा कहते हैं कि जहाँ आत्मा का रूप धारण करूँ, तब मुझे रागादि का हेयपना ज्ञात होकर आत्मा का प्रेम मुझे वहाँ होता है। समझ में आया? मैं मेरे रूप में जब आऊँ, तब मेरा रूप प्रसन्न होता है। आहाहा! राग और पुण्य की क्रिया में मेरा रूप नहीं। उसमें मेरी प्रसन्नता नहीं, उसमें मेरा उत्साह नहीं, उसमें मैं नहीं और वह मुझमें नहीं। आहाहा! यह भेदज्ञान। यह भेदज्ञान। '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।**' अमृतचन्द्राचार्य। जितने अभी तक मुक्ति को प्राप्त हुए अनन्त जीव, (वे) भेदविज्ञान से (प्राप्त हुए हैं)। यह राग और संयोग से भिन्न करके मुक्ति को पाये हैं। मुक्ति शब्द से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप, यह सब भेदज्ञान से पाये हैं। '**अस्यैवाभावतो बद्धा**' भेदज्ञान का जहाँ अभाव है, वे सब बन्धन को पाकर नरक और निगोद में भटकते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, मेरा आत्मा... गजब बात की है। सम्यग्दृष्टि जीव को धर्मी जीव का आधार और आलम्बन हो तो प्रभु आत्मा है। क्योंकि उस आत्मा में एक अधिकरण नाम का गुण है। समझ में आया? अधिकरण नाम का एक गुण है कि जो अपने आधार से निर्मल पर्याय हो। उसके आधार को दूसरे रागादि व्यवहार की आवश्यकता नहीं। अब यहाँ तो कहते हैं कि वह व्यवहार जितना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, बारह व्रत का और शास्त्र की ओर के पठन की दशा, वह मेरा आलम्बन ही नहीं। वह मुझमें है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! मेरा वह आलम्बन ही नहीं और मुझमें वह नहीं न! आहाहा! उस सब व्यवहार का तो मैं निषेध करता हूँ और भगवान आत्मा को अंगीकार करके आदर करता हूँ। आहाहा! ऐसा जिसे भान नहीं '**अस्यैवाभावतो बद्धा**' ऐसा वहाँ नहीं कहा कि कर्म के कारण बँधे और

दर्शनमोह के कारण बँधे। ऐसा नहीं कहा। राग और आत्मा के भेदज्ञान के अभाव के कारण बँधा हुआ है। धन्नालालजी! आहाहा! मार्ग प्रभु तेरे पास है। दूर नहीं। तू स्वयं है। आहाहा! कैसे महिमा आवे? कोई बीड़ी में लुट जाये। एक बीड़ी अच्छी पीवे, वहाँ ऐसे मानो। मगज तृप्त हो जाये। दो बीड़ी, सिगरेट पीवे, तब पाखाने में दस्त उतरे, उड़द की दाल एकरस न हो तो ढींचणीयुं (पुराने समय में भोजन करते समय घुटने के सहारे के लिए बायें घुटने के नीचे रखा जानेवाला छोटा लकड़ी का टुकड़ा) फैंके। अब उसे यह बात कैसे बैठे? आहाहा! अरे! परन्तु दो, पाँच, दस लाख पैसा मिले और प्रसन्नता हो, बापू! वह तेरी सब खोटी प्रसन्नता है। आहाहा! राम को रीझा आत्मा को। समझ में आया?

'**आलंबणं च मे आदा**' मुझे तो आत्मा आलम्बन है। आहाहा! स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी में विवाद है न? स्थानकवासी कहते हैं कि मूर्ति का आलम्बन नहीं होता। वे कहे कि मूर्ति का आलम्बन होता है। यह विवाद पहले से करते थे। यह एक अपेक्षा से शुभभाव जब हो, तब मूर्ति, देव-गुरु-शास्त्र का आलम्बन है—ऐसा निमित्त से कहा जाता है। परन्तु वह शुभभाव और बाहर की चीज़, वह आत्मा के अवलम्बन के लिये काम की नहीं। समझ में आया? और ऐसे आत्मा का आलम्बन जिसने लिया और दर्शन, ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई, उसे भी जब तक पूर्णता न हो, तब तक उसे शुभभाव आवे और शुभभाव में बाहर की चीज़ और निमित्त को आलम्बन कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं '**आलंबणं च मे आदा**' आहाहा! '**अवसेसाइं वोसरे**' देखो! '**वोसरे**' शब्द इसमें आया। भाई! उसमें आता है न '**वोसरे**' '**वोसरे**' नियमसार में आता है न। आहाहा! मेरा भगवान पूर्णानन्द का नाथ ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव से भरपूर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से ठसाठस भरपूर मेरा नाथ मुझे आधार है। आहाहा! उसके आधार से मेरा धर्म होता है। मैं उसके आधार से जीवित हूँ। आहाहा! समझ में आया? रागादिभाव, वे मेरे नहीं और मेरे प्रति मुझे उनसे लाभ भी नहीं होता। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ५८

अब गाथा ५८। **आगे कहते हैं कि ज्ञान, दर्शन, संयम, त्याग, संवर और योग ये भाव भावलिंगी मुनि के होते हैं,...** क्या कहते हैं? आत्मा में '**आदा खु मज्झ णाणे**' मेरी ज्ञान की निर्मल पर्याय में आत्मा ही आलम्बन—आधार है। उसमें आत्मा आया है, कहते हैं। मेरे सम्यग्ज्ञान की पर्याय में ... है न? **मेरे ज्ञानभाव प्रकट है, उसमें आत्मा की ही भावना है,...** बात तो ऐसी है। '**आदा खु मज्झ णाणे**' मेरे सम्यग्ज्ञान की पर्याय में आत्मा है। सम्यग्ज्ञान की पर्याय में शास्त्रज्ञान या परवस्तु, वह मेरे सम्यग्ज्ञान में नहीं। पण्डितजी! शास्त्रज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**आदा खु**' वापस ऐसा है न! निश्चय से कहते हैं कि मेरे आत्मा में, मेरे ज्ञान में, सम्यग्ज्ञान में आत्मा है। मेरा सम्यग्ज्ञान आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुआ है। मेरा सम्यग्ज्ञान शास्त्र और देव-गुरु के अवलम्बन से भी प्रगट नहीं हुआ। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह तो समझाने की भाषा ... बात यह है। '**आदा खु मज्झ णाणे**' मेरी ज्ञान की दशा। दशा, हों! पर्याय। उसमें आत्मा बसा। परन्तु वह ज्ञान की पर्याय आत्मा से हुई है। वह ज्ञान की पर्याय कोई राग और व्यवहार और निमित्त से हुई नहीं। आहाहा! जगत को यह बात बैठना (कठिन)। कहते हैं कि तुम सुनो, तुमको ज्ञान होगा। हे सकर्ण! आता है न दर्शनपाहुड़ में। हे कानवाला! सुन। उसे—सम्यग्दर्शनरहित प्राणी को वन्दन करना नहीं। जो मिथ्यात्व के सेवन करनेवाले हैं। आहाहा! हे सकर्ण! यहाँ कहते हैं कि यह जो मैंने कहा था, वह तो अपेक्षित व्यवहार था। समझ में आया?

अब सुनने का तुझे कहा ... और यहाँ है न '**वोच्छामि समयपाहुडम**' पहली गाथा में। मैं समयप्राभृत को कहूँगा। भाई! आत्मा... खपे नहीं और कहूँगा कहाँ से आया यह? भाई! समझाने में यह आये बिना रहता नहीं। तथापि आचार्य तो पुकार करते हैं कि मैं विकल्प में आता नहीं तो वाणी में आऊँ, यह कहाँ से बने? मेरा भगवान आत्मा तो निर्मल परिणाम में आत्मा रहा हुआ है, क्योंकि उसके लक्ष्य से, उसके ध्येय से और उसके ध्यान से प्रगट हुआ ज्ञान है। कोई शास्त्र के पठन से प्रगट हुआ, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! निश्चय बातें जगत को ऐसी लगे। परम सत्य यह है। आहाहा! यह

व्यवहारिक ज्ञान जितना हो शास्त्र आदि का, उसमें आत्मा नहीं आया, ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा... **आत्मा की ही भावना है, ज्ञान कोई भिन्न वस्तु नहीं है, ज्ञान है, वह आत्मा ही है...** आहाहा! मूल तो ज्ञान की परिणति, वह आत्मा से हुई है और वह आत्मा के आधीन होकर हुई है... ज्ञान की परिणति आत्मा के आधीन हुई है। वह राग के आधीन और व्यवहार के आधीन होकर ज्ञान की परिणति हुई नहीं। आहाहा! फिर लोग कहे, हों! .... यह सोनगढ़ में तो व्यवहार का तो नाश कर डालते हैं। अरे! भगवान! यह क्या कहते हैं? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। '**आदा खु मज्झ णाणे**' यह गाथा अपने आती है समयसार में। '**आदा खु मज्झ णाणे**' आहाहा! चारों ओर से समेटकर पूर्ण भगवान आत्मा के भेद में ज्ञानगुण, तब कहते हैं कि मेरी ज्ञान की पर्याय में तो आत्मा आया है। आहाहा! आत्मा द्रवा है। वह ज्ञान की पर्याय में द्रवण, श्रवण, वहेण, परिणमन उसका है। वह ज्ञान का परिणमन राग और निमित्त का नहीं। वह मेरे ज्ञान का परिणमन व्यवहार का नहीं। आहाहा! बलुभाई! ऐसा बहुत सूक्ष्म परन्तु, हों! दवाखाना में तो क्या सीधे गोलियाँ चलावे और यह करे। वह भी चला सकता नहीं, ऐसा कहते हैं।

'**आदा मे दंसणे चरित्ते य**' आहाहा! मेरे सम्यग्दर्शन में आत्मा है। मेरी प्रतीति जो हुई है निर्विकल्प, वह आत्मा से हुई है, इसलिए आत्मा उसमें आया है। दर्शन में आत्मा को पूर्णानन्द का नाथ को मैंने स्वीकार किया है। उसे राग की और निमित्त के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसमें मेरा आत्मा ही आधार है। आहाहा! व्यवहार-फ्यवहार को तो उड़ाकर भुक्का कर दिया है। मूलचन्दभाई! मेरे **दर्शन में भी आत्मा ही है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन—शुद्ध स्वभाव ध्रुव परिपूर्ण प्रभु, उसके अवलम्बन से हुई दृष्टि, उस दृष्टि में भगवान लक्ष्य में आया, तब दृष्टि हुई है। उस दृष्टि में राग और पर्याय लक्ष्य में जब तक रहे, तब तक दर्शन नहीं होता—ऐसा कहते हैं। दर्शन में पूरा आत्मा ऐसा का ऐसा है, ऐसा कहते हैं। दर्शन में, ज्ञान में, वह पर्याय, राग और निमित्त नहीं। ज्ञान में वह पूरा आत्मा मुझे अवलम्बन था। आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन की पर्याय में मेरा आत्मा है। उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में देव-गुरु आधार नहीं, उसे देव-गुरु की श्रद्धा प्रगट हुई विकल्प नहीं आधार, विकल्प में वह नहीं और दर्शन की

पर्याय में वह विकल्प नहीं और ज्ञान की वर्तमान पर्याय का अंश जो परलक्षी है, उसमें आत्मा आया नहीं। इसलिए वह ज्ञान की परलक्षी पर्याय मुझसे भिन्न है। आहाहा! ऐसी बातें, भाई!

दर्शन में आत्मा है। आहाहा! पहले तो सामान्य सम्यग्ज्ञान की पर्याय कही, उसमें भी आत्मा कहा। सम्यग्ज्ञान में पर्याय आयी है, ऐसा नहीं कहा। पण्डितजी! आहाहा! ध्रुव चैतन्य का बिम्ब पूरा तेजमय, जिसके तेज में पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय का आधार और आलम्बन तो वह आत्मा ही रहा। आहाहा! चारों ओर से समेटकर अन्दर में जा, ऐसा कहते हैं। इसके बिना तेरा आश्रय कोई मिलेगा नहीं।

'**दंसणे**' दर्शन में भी। जैसा ज्ञान में आत्मा है, वैसा दर्शन में आत्मा ही है। सम्यग्दर्शन का धर्म जो है... आहाहा! उसमें नहीं देव-गुरु-शास्त्र, उसमें नहीं देव-गुरु-शास्त्र से श्रद्धा हुई... श्रद्धा का राग, उसमें नहीं उस पर्याय का आधार। आहाहा! समझ में आया? कुछ समझ में आया, ऐसा कहा जाता है न? मार्ग ऐसा है, बापू! 'प्रभु का मार्ग है शूरों का, यह कायर का काम नहीं वहाँ।' समझ में आया? यह वीर का मार्ग वीर का है। वीर का मार्ग वीरों का है। रंक, नपुंसक का यह मार्ग नहीं। ऐं... ऐं... यह व्यवहार चला जायेगा न! अब सुन न! यहाँ तो वहाँ तक कहा कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को रचे, राग, वह वीर्य नहीं, नपुंसक है। धन्नालालजी!

**मुमुक्षु :** कठिन लगता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मूल बात तो कठिन ही लगे न! आहाहा! बापू! तुझे तेरा आत्मा कितना और कैसा है, इसकी खबर नहीं। आहाहा! यह तो अलिंगग्रहण में नहीं कहा? आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात होता है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। अलिंगग्रहण में आता है। छठवाँ बोल आता है। अलिंगग्रहण में बीस बोल आते हैं। उसका छठवाँ बोल यह है। आत्मा अपने स्वभाव से (ज्ञात होता है), राग से, निमित्त से, पर से नहीं। आहाहा! अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा और वह प्रत्यक्ष दृष्टा है, प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! परोक्षपना रहना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। वस्तु स्वयं प्रत्यक्ष हो, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! प्रत्यक्ष ज्ञाता है। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है। उसे किसी प्रकार से, दूसरे प्रकार से कल्पे तो वह आत्मा ज्ञात नहीं होगा।

परोक्षरूप से भी आत्मा रहे, ऐसा भी आत्मा का स्वरूप नहीं—ऐसा कहते। आहाहा! शक्ति के वर्णन में आ गया है यह। बारहवीं प्रकाशशक्ति है। शक्ति है न ४७ में एक प्रकाशशक्ति है। उस शक्ति का स्वरूप क्या? कि आत्मा प्रत्यक्ष वेदन में आवे, ऐसा ही उसका गुण है। आहाहा! अभी यहाँ के लोग न समझे, उसे विलायत के लोगों को समझाना कठिन। धूल भी समझे नहीं न! ऐई! मूलचन्दभाई! मूलचन्दभाई कल आये थे।

**मुमुक्षु :** समझानेवाले....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मूलचन्दभाई कल आये थे, कोई है न वह नरेन्द्र। अमेरिका। मन्दिर बनानेवाले हैं। पुस्तकें दो सब। परन्तु यहाँ की पुस्तक वाँचना आयेगा किसे?

**मुमुक्षु :** आप पधारोगे तो सब समझेंगे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वहाँ कौन जाता था अमेरिका? आहाहा! यह चीज़, बापू! यह कुछ गुरुगम बिना और आत्मगम बिना समझ में आये ऐसी नहीं। अब यहाँ के अभी जैन में रहे हुए जन्मे और मुश्किल-मुश्किल से समझ में आये। ऐई! जयन्तीभाई! उसे खबर नहीं होगी? जयन्तीभाई वहाँ भटकते हैं, वह अमेरिका में लड़के के पास। अभी यहाँ समझ में आये नहीं, वह वहाँ उन लोगों को किस प्रकार समझ में आता होगा? समझ में आया? यह प्याला अजर प्याला है यह तो। जिसका कल्याण करना हो, जिसे जन्म-मरण का चक्र मिटाना हो, उसके लिये यह बात है। ... होवे, उसके लिये यह बात नहीं। आहाहा! परन्तु जिसे समझना हो उसे अच्छा लगे। वरना तो अच्छा अनाज हो तो अच्छा न लगे, भूख न लगी हो तो। आहाहा! इसी प्रकार जिसे आत्मा... अरे! मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? कैसे हूँ यह? और मेरा धर्म मुझे क्यों प्रगट नहीं होता? समझ में आया?

प्रश्न किया था न? एक बार यहाँ हुआ था। कि महाराज! यह आत्मा जब कारणपरमात्मा है। कारणपरमात्मा आत्मा है तो कारणपरमात्मा का कार्य तो आना चाहिए। कारण है तो कार्य आना चाहिए। प्रश्न हुआ था। आत्मा को कारणपरमात्मा कहो, कारणपरमात्मा ध्रुव चैतन्य भगवान, उसे जब तुम कारणपरमात्मा कहो तो कारण का कार्य तो आना ही चाहिए। और क्यों यह कारणपरमात्मा है और कार्य आता नहीं? क्या कहा, पण्डितजी! समझ में आया? कारणपरमात्मा हो तो कार्य आना चाहिए।

बापू! परन्तु कारणपरमात्मा है, वह तूने स्वीकार कहाँ किया है? कारणपरमात्मा स्वयं भगवान त्रिलोकनाथ अखण्डानन्द चैतन्य है, ऐसा कारणपरमात्मा वह तो शास्त्र में, सर्वज्ञ ने कहा, परन्तु तेरी श्रद्धा में, प्रतीति में, विश्वास में कारणपरमात्मा आवे, तब तेरे लिए कारणपरमात्मा है। समझ में आया? तब कार्य आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा कारणप्रभु। नियमसार में तो बहुत आता है न। कारणपरमात्मा... कारणपरमात्मा। यह प्रश्न उठा था भाई एक वारिया को। कारण है तो कार्य आवे ही वह। किसने इनकार किया? कहा। कारणपरमात्मा है, वह दृष्टि में आया है? दृष्टि में आया है? विश्वास में आया है? रुचि की है? उसकी रुचि की नहीं और कारणपरमात्मा है, कहाँ है? तेरी दृष्टि में तो है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि जिसे यह आत्मा कारणपरमात्मा पूर्णानन्द का नाथ है, ऐसी जिसे श्रद्धा में आश्रय लेकर प्रगट हुआ है, उस श्रद्धा में मेरा आत्मा है। उस श्रद्धा में मेरा आत्मा बसा हुआ है। आहाहा! बसा, उसे कारणपरमात्मा है। नहीं बसा... परन्तु एक समय की पर्याय को जाने, राग को जाने, निमित्त को जाने और वह कहे कारणपरमात्मा। तो है कहाँ? तुझे कहाँ आया वह? समझ में आया? आहाहा! भाई! है तो है। परन्तु है, उसका विश्वास किसे आया? आहाहा! जिसने उसे लक्ष्य में लेकर, आश्रय करके दृष्टि प्रगट की, उसे कारणपरमात्मा है, वह है। और उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का कार्य आये बिना नहीं रहता। आहाहा! कठिन बातें, भाई! आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

दर्शन में मेरा आत्मा आया है। मैंने दर्शन में मेरे आत्मा को स्वीकार किया है। आहाहा! ऐसा महाप्रभु जिसमें, अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें जिसके एक ज्ञानगुण में समा गयी है। ऐसी-ऐसी क्षायिक समकित की अनन्त पर्यायें जिसके श्रद्धागुण में पड़ी हैं। यथाख्यात की चारित्र की रमणता की पर्याय ऐसी अनन्त रमणता की पर्यायें जिसके अन्तर चारित्रगुण में पड़ी हैं। सुख की सादि-अनन्त जो पर्याय पूर्णानन्द आदि, वे सब पर्यायें मेरे सुखगुण में पड़ी हैं। उन सब गुणों का पुंज वह आत्मा है। वह आत्मा मेरे दर्शन में बसता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा आत्मा मेरे दर्शन में बसता है। समझ में आया? मेरी प्रतीति में आया हो तो ऐसा आत्मा आया, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'**आदा में दंसणे चरित्ते य**' तीसरा बोल। चारित्र में मेरा आत्मा है। आहाहा! मेरी

रमणता, वह चैतन्य के आश्रय से हुई है। उस मेरी रमणता में आत्मा आया है। मेरी रमणता में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आया नहीं। आहाहा! यह चिल्लाहट मचाते हैं न कि व्यवहाररत्नत्रय साधन है, व्यवहार कारण है। यह सब बातें व्यवहार के कथन छोड़ दे। व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। अरे! यह तो व्यवहार का ज्ञान कराने के लिये कहा है। साधन-फाधन कैसा? जिसे व्यवहार से साधन कहा, वह अन्तर निश्चय में बाधक है। समझ में आया? आहाहा!

मेरे चारित्र में... ज्ञान में स्थिर रहना, वह चारित्र। चारित्र कोई यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह चारित्र नहीं। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी प्रभु में स्थिर होना, रमना, जम जाना, आत्मा के आनन्द का भोजन उग्ररूप से करना। आहाहा! आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का—नित्यानन्द का जिसके वेदन में आनन्द का उग्रपना हुआ, उस आनन्द के उग्रपने में मेरा नाथ आया है। मेरे चारित्र में आत्मा है। आहाहा! मेरे चारित्र में राग और व्यवहार है नहीं। ऐसी बातें हैं, बापू! साधारण प्राणी को तो यह दुनिया भटककर मर गया है ऐसा का ऐसा चौरासी अवतार में। ऐसा दुःखी... दुःखी... दुःखी... दुःखी है, उसे खबर नहीं। आनन्द का नाथ तेरा स्वभाव है। पूर्णानन्द का प्रभु स्वयं है। मेरी रमणता में मेरा आत्मा आया है, कहते हैं। आहाहा!

'**चरित्ते**' आहाहा! ऐसे मेरे आत्मा में प्रत्याख्यान। आहाहा! प्रत्याख्यान जिसे पच्चखाण कहते हैं न, वह प्रत्याख्यान निर्मल वीतरागी पर्याय है। यह प्रत्याख्यान किये हमारे छह ... यह नहीं। आहाहा! आत्मा आनन्द का ज्ञानस्वरूपी, उसकी ज्ञान की दशा की... ज्ञान, वह प्रत्याख्यान आता है न, ३४ गाथा में। प्रत्याख्यान शब्द से (आशय) राग का अभाव और निर्मलता—वीतराग की पर्याय का सद्भाव, ऐसा जो प्रत्याख्यान उसमें मेरा आत्मा है। आहाहा! आत्मा के आधार से हुआ है, आत्मा उसमें रहा है और वह आत्मा का शुद्ध परिणमन है। भारी कठिन बातें लगती हैं! व्यवहार की पक्षियों को तो—व्यवहार के आग्रहियों को तो यह लगे कि यह तो दो नय का विषय है। (और) यह एक नय की बातें हैं। यह दो नय में दूसरे नय का निषेध आया और एक नय का आश्रय आया। दोनों नय आ गये। परन्तु तू उसे व्यवहारनय को आदरणीय मान और इसे आदरणीय मान, तो दो नय, वह नय ही नहीं।

**आगामी परद्रव्य का सम्बन्ध छोड़ना है,...** परद्रव्य का सम्बन्ध छोड़ने का, राग का छोड़ना, उसमें मेरा आत्मा ही है। असंगी प्रभु को संग करने से वह राग का संग छूट जाता है, ऐसा असंग परमात्मा के संग में परिणमित परिणति, उस परिणति में मेरा प्रभु है। आहाहा! कहो, समझ में आया? आत्मा के गीत हैं यह। **आत्मा ही है संवर,...** लो, यह संवर-संवर।... उसमें प्रत्याख्यान कराओ। धूल भी नहीं संवर, सुन न! संवर में तो शुद्धि का प्रगट होना है। भावपाहुड़ है न! पुण्य और पाप के रागरहित जहाँ शुद्धि की प्रगटता, उस शुद्धि की प्रगटता में प्रभु आत्मा बसता है। उस आत्मा के आश्रय से शुद्धि प्रगट हुई है। वह कहीं शुभभाव के आश्रय से संवरदशा प्रगट नहीं होती। ऐसा तीन काल-तीन लोक में वस्तु में नहीं है। आज मान, कल मान, बाद में मान, यह मानना ही पड़ेगा। आहाहा!

कहते हैं, मेरे संवर में मेरा नाथ आत्मा है। आहाहा! **और योग का अर्थ एकाग्रचित्तरूप समाधि-ध्यान है,...** आहाहा! क्या कहते हैं यह? ... परमात्मा का ध्यान करना, अरिहन्त का ध्यान करना। ज्ञानार्णव में बहुत आता है। ऐसा चिन्तवन करना, ऐसा चिन्तवन करना, ऐसा चिन्तवन करना। कहते हैं कि बापू! ध्यान तो उसे कहते हैं कि जिसमें आत्मा ध्येय में, लक्ष्य में आवे। आत्मा का ध्येय ध्यान हो, वहाँ ध्यान में आत्मा आया है। आत्मा के ध्येय बिना के तेरे ध्यान, उसे ध्यान नहीं कहते। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... करते हैं। धूल भी ध्यान नहीं, सुन न! मेरा योग अर्थात् जुड़ान, ध्यान। मेरा पूर्णानन्द का स्वरूप, उसके ध्यान में ध्येय तो आत्मा है। ध्यान में ध्येय कोई विकल्प और पर्याय भी है नहीं। आहाहा! मेरे ध्यान की दशा में आत्मा ध्येय है। मेरे ध्यान की दशा में देव-गुरु-शास्त्र नहीं, उनकी मानी हुई श्रद्धा नहीं और एक समय की पर्याय मेरे ध्यान का ध्येय नहीं। आहाहा! यह **मेरा आत्मा है।** आहाहा! कितने बोल हुए? ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर और योग। छह बोल हुए, छह। सब में आत्मा, आत्मा उसे कहें तो वह धर्म कहलाये। वरना वह धर्म की पर्याय हो नहीं सकती।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पौष कृष्ण १४, मंगलवार, दिनांक-२२-०१-१९७४**
**गाथा - ५८-५९, प्रवचन-९६**

इस अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ५८वीं गाथा का भावार्थ है न? इसमें क्या कहा? कि जो आत्मा में सम्यग्ज्ञान होता है, मोक्ष का कारण, ऐसी सम्यग्ज्ञान की पर्याय जो है, उसका आधार—अवलम्बन आत्मा है। यह सम्यग्ज्ञान की पर्याय आत्मा के अवलम्बन से होती है। अथवा इस सम्यग्ज्ञान का कार्य, वह आत्मा का कार्य है। वह कोई शास्त्र पठन करे या पंच महाव्रत आदि पालन करे तो उससे ज्ञान का कार्य होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्योंकि **ज्ञानादिक कुछ भिन्न पदार्थ तो हैं नहीं,...** यह ज्ञान अर्थात् ये पुस्तक-शास्त्र का ज्ञान नहीं। जो ज्ञान की पर्याय—अवस्था, सम्यग्ज्ञान की दर्शनसहित, उस ज्ञान की पर्याय का कार्य वह आत्मा का है। वह कार्य कोई शास्त्र पठन से हुआ है या कोई गुरु की कृपा से हुआ है या शास्त्र और गुरु के कारण से यह ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

**आत्मा के ही भाव हैं,...** वह सम्यग्ज्ञान की पर्याय, तथा सम्यग्दर्शन की पर्याय वह आत्मा का ही भाव है—आत्मा की ही पर्याय है, वह सम्यग्दर्शन का कार्य आत्मा का है। सम्यग्दर्शन का कार्य कोई व्यवहार रागादि या निमित्त का यह कार्य नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें, भाई! जगत को तत्त्व क्या है, (उसकी खबर नहीं)। यह गाथा बहुत मर्म की रखी है। आत्मा की सम्यग्दर्शनपर्याय, जो अनन्त काल में हुई नहीं, ऐसी जो सम्यक्पर्याय, उसका कारण अथवा सम्यग्दर्शन में वह आत्मा आया है। सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा आया है। उसकी पर्याय में राग और निमित्त से वह पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार सम्यक्चारित्र। है न सब बोल? चारित्र की जो वीतरागी पर्याय अन्दर में होती है, वह कार्य आत्मा का है। उस चारित्र की पर्याय में आत्मा निर्मल भगवान स्वयं आया हुआ है। आहाहा! वह चारित्र की पर्याय आत्मा का स्वरूप ही

है। क्योंकि निर्विकारी दशा आत्मा में होती है, पंच महाव्रत के परिणाम, वे कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! इसी तरह साधु के जो अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हैं, वे चारित्र नहीं हैं, तथा वह चारित्र का कारण नहीं। पंच महाव्रत परिणाम चारित्र का कारण नहीं है।

**मुमुक्षु :** यह मुनि को चारित्रगुण...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुनि को चले नहीं। ...

**मुमुक्षु :** अब तो एक महीना हिन्दी में चलना चाहिए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक महीना नहीं चले। पंचमी से चलेगा। रविवार से बहुत लोग आवें तो चलेगा। महोत्सव में तो हिन्दी चलेगा। महोत्सव के पहले भी थोड़े हिन्दी आयेंगे तो... हिन्दी है तो हिन्दी चलाओ, ऐसा कहते हैं।

ऐसा कहते हैं कि आत्मा की ज्ञानरूपी जो सम्यक् पर्याय है, वह आत्मा का कार्य है। उस सम्यग्ज्ञान की पर्याय में आत्मा परिणमन करके आया है। कोई शास्त्र परिणमन करके ज्ञान आया है, ऐसा है नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा परिपूर्ण शुद्ध ध्रुव चैतन्यधातु से भरा पड़ा है। वह सम्यग्ज्ञान की पर्याय में या सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप कार्य में या सम्यक्चारित्ररूपी पर्याय-कार्य में आत्मा ही बसा है। वह आत्मा का ही भाव है और आत्मा का वह कार्य है। और उस पर्याय में आत्मा ही आलम्बन है। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म है। दुनिया को बाहर में लगा दिया। पंच महाव्रत पालो, शास्त्र का ज्ञान करो, वह ज्ञान। धूल में भी ज्ञान नहीं है।

**मुमुक्षु :** मान तो मिले।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मान मिले। ... पागल पागल की प्रशंसा करे। समझ में आया? पागल के अस्पताल में पागल बड़ा अच्छा हो, उसे अच्छा कहे।

यहाँ तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के कॉलेज की बात है। आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा का यह हुकम है, यह आज्ञा है, यह आदेश है, दिव्यध्वनि में यह कथन है। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। '**आदा खु मज्झ णाणे**' देखो न, भाषा कैसी ली है!

आहाहा! शास्त्र का पठन करे और ज्ञान हो, वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! जिस ज्ञान की पर्याय में-कार्य में आत्मा आये, उसे ज्ञानपर्याय कहने में आती है। वैसे सम्यग्दर्शन की पर्याय कोई देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा करना या नव तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा करना वह सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं है। वह सम्यग्दर्शन नहीं और नव तत्त्व के भेदरूप श्रद्धा के कारण सम्यग्दर्शन का कार्य पर्याय हो, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन की धर्म की चौथे गुणस्थान की पर्याय, उस सम्यग्दर्शन की पर्याय का कार्य आत्मा का है। त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ ध्रुव स्वरूप विराजमान है, उसका सम्यग्दर्शन पर्याय कार्य है। अथवा उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा परिणमित हुआ है। आहाहा! ऐ... धन्नालालजी! ऐसी बातें बहुत कठिन। सम्प्रदाय में यह सब ... लगे। सच्चे भगवान, सच्चे देव-गुरु को माने वह सम्यग्दर्शन। तीन काल में वह बात सत्य नहीं है, बिल्कुल झूठी है।

जिसमें भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पुंज ध्रुव राशि, वह जिसकी श्रद्धा में आया नहीं और श्रद्धा के कार्य में आत्मा का अवलम्बन नहीं है, उसे श्रद्धा कहते नहीं। कहो, समझ में आता है?

वैसे चारित्र की पर्याय। चारित्र पर्याय वीतरागी है। तो पर्याय है, वह कार्य है। पर्याय कहो या कार्य कहो। उस कार्य में कारण तो भगवान त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु उस चारित्र के कारण में कार्य है। उस चारित्र का कारण आत्मा, उसका वह कार्य है। पंच महाव्रत के परिणाम हो, उससे चारित्र होता है, ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है। समझ में आया? पंच महाव्रत के विकल्प हैं, वह आस्रव है, वह बन्ध है, भावबन्धरूप भाव है; और चारित्र है, वह अबन्ध परिणाम है।

चारित्र वस्तु ऐसी कोई चीज़ है कि अभी तो महादुर्लभ है। समझ में आया? उसे समझनेवालों में दुर्लभता हो गयी है। आहाहा! वीतरागी परिणति अन्दर हो, आनन्द की लहर उठे। चारित्र तो उसे कहें कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट हो। और उस अतीन्द्रिय आनन्द की दशा का वीतरागता का कारण भगवान आत्मा है। समझ में चारित्र की पर्याय और आत्मा, ऐसे संज्ञाभेद से भेद भले ही कहो। है न? **संख्या, लक्षण और प्रयोजन के भेद से भिन्न कहते हैं, वहाँ अभेददृष्टि से देखें तो ये सब भाव**

**आत्मा ही हैं,** आत्मा की चारित्र की आनन्ददशा भी आत्मा की है, सम्यग्ज्ञान की पर्याय स्वसंवेदन-ज्ञान का स्वसंवेदन अपना प्रत्यक्ष होना, उसमें आत्मा कारण है। आहाहा! उसमें शास्त्र भणतर-बणतर कारण है नहीं। भगवान की वाणी सुनने से सम्यग्ज्ञान होता है, यह बात सत्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। पाटनीजी! सम्यग्ज्ञान में कारण तो प्रभु आत्मा त्रिकाली ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। वह सम्यग्ज्ञान में कारण होकर कार्य होता है। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! जगत के पास वीतराग क्या कहते हैं, यह बात रखी नहीं है, दूसरी ही (बात रखी है)। अजैन की क्रियायें जैन के नाम से चलायी। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, कि प्रत्याख्यान, पच्चखाण करते हैं न? पच्चखाण। वह पच्चखाण क्या चीज़ है? पच्चखाण किया, लो। ... विकल्प हुआ। वह पच्चखाण है? वह तो राग है। आहाहा! प्रत्याख्यान-पच्चखाण परमात्मा इसको कहते हैं कि जिसमें वीतरागी पर्याय हो और उसका कारण आत्मा हो और वीतरागी पर्याय का कार्य आत्मा का है, उसको पच्चखाण कहने में आता है। आहाहा!

संवर... संवर। संवर करते हैं न? संवर। जामनगर में बहुत संवर होते हैं। ... सब लंघन है। संवर भगवान उसको कहते हैं कि जिस वीतरागी पर्याय में आनन्द (आये) और उस आनन्द की पर्याय का कारण आत्मा है, आत्मा का कारण का यह कार्य है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो जो मोक्ष का मार्ग है न? मोक्ष का मार्ग जो है—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, आत्मा ध्रुव दृष्टि में आया, ज्ञेय बनाया, चारित्र में ध्येय किया तब वह पर्याय प्रगट हुई तो वह आत्मा के कारण से प्रगट हुई है। आहाहा! अभी तो चीज़ किसको कहना यह मालूम नहीं। अनादि से भटकता आत्मा दुःखी है, वह मिथ्यादृष्टि बेचारा दुःखी है। दुःखी है, दुःखी। ये पैसेवाले अरबोंपति, धूलवाले देव दिखे, वे सब बेचारे भिखारी दुःखी हैं। आहाहा! रांका... रांका... शास्त्र में वरांका कहा है।

जिसे आत्मा चिदानन्दमूर्ति अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, जिसकी दृष्टि में आया नहीं, जिसके ज्ञान में आया नहीं, जिसकी शान्ति में आया नहीं, वह सब जगत के

भटकनेवाले प्राणी हैं। वर्तमान में भी दुःखी और भविष्य में भी दुःखी। आहाहा! समझ में आया? क्या है? जगत में ये सब पैसेवाले सुखी कहलाते हैं न? पागल इकट्ठे होकर (कहते हैं)। पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ पैसे हो... बादशाही है। धूल में भी बादशाही नहीं है, सुन न। वह तो विकार की पर्याय है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** भले विकार की पर्याय है, पैसा तो लाये न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसा कौन लाये? धूल लाये। वह तो पूर्व के पुण्य हो तो आये। उसके पास आते हैं? उसके पास कहाँ आते हैं? उसके पास आये तो ममता उसके पास आयी। वह चीज़ तो दूर रह गयी। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु... आहाहा! ऐसे ध्रुव आनन्द की डली। डली कहते हैं न? आहाहा! ऐसा आनन्द का नाथ डली जिसके श्रद्धा-ज्ञान में आया नहीं और दूसरी (चीज) श्रद्धा-ज्ञान में आती है, वह श्रद्धा-ज्ञान नहीं। आहाहा! वीतराग की बातें ऐसी है कि जगत में और कहीं है नहीं, वीतराग में उस जाति की बात मानो बिखर गयी हो।

यहाँ तो कहते हैं, संवर में भी आत्मा है। संवर शब्द से (आशय) आस्रव-पुण्य के पाप जो आस्रव है, उससे रहित जो संवर दशा है उसमें आत्मा आया है। संवर के कार्य में आत्मा कारण है। संवर के कार्य में दया, दान, व्रत आदि का शुभभाव है, वह कारण है और संवर कार्य है, ऐसा है नहीं। मूलचन्दभाई! कठिन बात, भाई!

**मुमुक्षु :** और कारण कौन हो सकता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी कारण नहीं है। दो कारण, दो करण कहते हैं न? ....

संवर। योग। योग अर्थात् ध्यान। एकाग्र चिन्ता निरोध। चिन्ता का निरोध। आत्मा को ध्येय करके, ज्ञेय करके ज्ञान में ध्यानदशा प्रगट हो, वह ध्यान की दशा आत्मा है। ध्यान की दशा कोई विकल्प और ऐसा-वैसा... भगवान का ध्यान किया, भगवान ऐसे हैं और परमात्मा ऐसे हैं, वह सब विकल्प है, वह सब राग है, वह ध्यान नहीं। आहाहा! ध्यान में तो भगवान आत्मा शुद्ध कारणपरमात्मा परमस्वभावभाव स्वरूप आत्मा, ध्यान की पर्याय का कारण वह है। और जो ध्यान का कार्य है, ध्यान एक कार्य है, वीतरागी दशा यह ध्यान कार्य है, उस कार्य का कारण आत्मा है। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा है, आनन्द धर्म की जो पर्याय है, उसमें कोई निमित्त कारण नहीं, पूर्व की पर्याय कारण नहीं। वर्तमान सीधा भगवान आत्मा उसका कारण है। आहाहा! अरे! वीतराग की वाणी सुनने मिलनी मुश्किल हो गयी। धर्म तो मुश्किल हो गया, परन्तु वाणी क्या कहती है, यह बात सुननी मुश्किल हो गयी। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसकी पात्रता ऐसी हो तो मिल बिना रहे नहीं। आहाहा! उसकी स्वयं की कमी है। अपनी स्वयं की कमी है। दूसरे की कमी है? आहाहा!

कहते हैं, अभेद दृष्टि से देखने पर सम्यग्ज्ञान निर्मल आनन्द की पर्याय के साथ श्रद्धापर्याय, चारित्रपर्याय, संवरपर्याय, ध्यानपर्याय वह सब अभेददृष्टि देखो तो आत्मा है। भेद से कथन कहो कि यह ध्यान, यह ध्यान करनेवाला, यह ज्ञान और ज्ञान का कारण। वह अभेद है। आहाहा! **ये सब भाव आत्मा ही हैं, इसलिए भावलिंगी मुनि के...** जो सच्चे मुनि होते हैं, (उनके) **अभेद अनुभव में विकल्प नहीं है,...** आनन्द और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के ध्यान में जो ध्येय आत्मा पकड़ा, उसमें अभेद में कोई विकल्प नहीं। पहले भगवान का स्मरण किया, फिर मन स्थिर हुआ, फिर ध्यान हुआ, ऐसा नहीं। कठिन बातें, भाई!

जिसे एक समय की निर्मल वीतरागी पर्याय, जो मोक्ष का मार्ग, मोक्ष के मार्ग का कारण तो द्रव्यस्वरूप है। ध्रुवस्वरूप उसका कारण है। आहाहा! यहाँ तो यह भी कहा, केवलज्ञानरूपी कार्य में भी आत्मा (कारण है)। पर्याय है न वह? उसमें आत्मा कारण है। मोक्षमार्ग की पर्याय भी कारण नहीं। उसका तो व्यय होता है। आहाहा! केवलज्ञान की... यहाँ तो साधक अवस्था की बात है। परन्तु साध्य अवस्था जो केवलज्ञान हुआ, उस ज्ञान में भी आत्मा कारण है। वह तो सबेरे आया था। भाव, अभाव। कर्म का अभाव हुआ, इसलिए स्वभाव हुआ तो केवलज्ञान पर्याय हुई, ऐसा है नहीं। उस केवलज्ञान की पर्याय के कार्य में परमात्मा—आत्मा स्वयं अन्दर आता है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! ऐसी बातें कठिन। बाहर में धमाधम चलती है। पाँच-पच्चीस लाख का खर्च तो कहे, धर्म हो गया। धर्म धुरन्धर श्रावक है बड़ा, ऐसा कहे। आहाहा! महीने-दो महीने के

उपवास करे, वर्षी तप करे। ये वर्षीतप नहीं करते ? एक दिन खाना और एक दिन उपवास। सब लंघन है, लंघन। वह उपवास नहीं। वह उपवास नहीं है, अपवास है। अपवास- आत्मा के वास से छूटकर विकल्प के वास में आया, उसका नाम अपवास है। उपवास तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ उप अर्थात् समीप जाकर स्थिर होना, उसका नाम परमात्मा उपवास कहते हैं। उस उपवास की निर्मल पर्याय का कारण आत्मा है। आहाहा!

**इसलिए भावलिंगी मुनि के अभेद अनुभव में विकल्प नहीं है,...** आहाहा! भावलिंगी मुनि को द्रव्यलिंग तो नग्न ही होता है। समझ में आया ? वस्त्रसहित तो द्रव्यलिंग भी झूठा है। जो वस्त्रसहित है, वह भावलिंगी भी नहीं है और द्रव्यलिंगी भी नहीं है। समझ में आया ? परन्तु जिसे नग्नपना द्रव्यलिंग में आया तो भावलिंग चारित्र हुआ, ऐसा नहीं। भावलिंग जो वीतरागी पर्याय का कारण तो भगवान आत्मा है। द्रव्यलिंग और विकल्प उसका कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

चौथे, पाँचवें गुणस्थान में जब मुनिपना लेने की भावना आती है तो पहले पंच महाव्रत का विकल्प, नग्नपना आता है। परन्तु नग्नपना का विकल्प चारित्र का कारण है, ऐसा नहीं। जिसको चारित्रदशा आत्मा के अवलम्बने से प्रगट हुई, उसको नग्नदशा और पंच महाव्रत का विकल्प सहज आ जाता है। आहाहा! गजब मार्ग, बापू! वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव का यह हुकम है।

कहते हैं, यह जानकर **अतः निर्विकल्प अनुभव से सिद्धि है,...** आहाहा! अन्दर में पंच महाव्रत का विकल्प या बारह व्रत का विकल्प-राग या शास्त्र पढ़ने का विकल्प-राग, वह कोई वस्तु नहीं है-वह कोई धर्म नहीं। भगवान आत्मा का अन्दर में निर्विकल्प दृष्टि, निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प अनुभव आनन्द और चारित्र हो, वही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! **यह जानकर इस प्रकार करता है।** देखो! **निर्विकल्प अनुभव से सिद्धि है, यह जानकर इस प्रकार करता है।** आत्मा त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर अपनी ज्ञान—दर्शन पर्याय को प्रगट करता है। आहाहा! जैसा गुजराती में आये ऐसा हिन्दी में नहीं आता। क्योंकि भाषा वहाँ अटक जाती है। मूल भाषा नहीं है। आहाहा! उस समय तो...

★ ★ ★

## गाथा - ५९

५९ (गाथा)।

**एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।**
**सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥५९॥**

आहाहा! सन्त भावलिंगी मुनि सच्चे मुनि हो, वे तो विचारते हैं कि **ज्ञान, दर्शन लक्षणरूप और शाश्वत अर्थात् नित्य ऐसा आत्मा है, वही एक मेरा है।** आहाहा! अन्दर नग्नपना हुआ, पंच महाव्रत का विकल्प हुआ, वह मेरा नहीं। मैं तो ज्ञान-दर्शन-त्रिकाल ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला आत्मा है, वह मैं (हूँ)। त्रिकाली ज्ञान और दर्शन उपयोगस्वरूप मैं अथवा वर्तमान मति-श्रुतज्ञान आदि की पर्याय का भेदवाला लक्षण, वह व्यवहारनय है। वह लक्षणभेद। त्रिकाली ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप 'उपयोग लक्षण जीवो' वह निश्चय। आहाहा! और मति और श्रुतज्ञान की पर्याय भेदवाली है, वह व्यवहार हुआ। वह लक्षणवाला मैं हूँ। मेरा आत्मा मति और श्रुतज्ञान के लक्षण से लक्षित होता है। मेरा आत्मा ध्येय में मति और श्रुतज्ञान का लक्षण से ध्येय में आता है, ध्यान में आता है। कोई विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान, दया के भाव से आत्मा ध्यान में आता है, ऐसा आत्मा है नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय से भी लक्ष्य में आता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। '**एगो मे सस्सदो अप्पा**' शाश्वत। मैं तो त्रिकाल ध्रुव हूँ, शाश्वत् हूँ। मेरी उत्पत्ति नहीं, मेरा अभाव नहीं और वर्तमान में मेरे स्वभाव से मैं शून्य नहीं। आहाहा! ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव या सम्यग्दृष्टि, ज्ञान, चारित्र सहित भावलिंगी मुनि अपने को ऐसा विचारते हैं। समझ में आया?

'**एगो मे सस्सदो अप्पा**' मैं तो शाश्वत् ध्रुव आत्मा हूँ। आहाहा! कैसा? '**णाणदंसणलक्खणो**' जानना-देखना, यह मेरा शाश्वत् लक्षण है। **लक्षणरूप और शाश्वत अर्थात् नित्य ऐसा आत्मा है,...** वही एक मेरा है। आहाहा! यह मेरा है, ऐसा पर्याय निर्णय करती है। पर्याय जो निर्विकल्प पर्याय-अवस्था है, वह निर्णय करती है कि यह ध्रुव मैं हूँ, मैं शाश्वत् हूँ। निर्णय करने की पर्याय कहती है कि यह शाश्वत् मैं हूँ। समझ में आया? यह तो अलौकिक मार्ग है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव

त्रिलोकनाथ का मार्ग कोई अलौकिक है। जगत को सुनने मिलना मुश्किल हो गया। आहाहा!

कहते हैं, '**एगो मे सस्सदो अप्पा**' कौन निश्चय करता है? कौन विचारता है? वर्तमान पर्याय, वर्तमान दशा। '**एगो मे सस्सदो अप्पा**' यह ध्रुव शाश्वत् मैं हूँ। पर्याय कहती है, मैं पर्याय नहीं। ये तो इस ओर (ध्रुव की ओर) आ गयी है न। एकरूप हुई, इस ओर सन्मुख हुई, उस अपेक्षा से एकरूप हुई। बाकी पर्याय पर्यायरूप रही है, ध्रुव ध्रुवरूप रहा है। दोनों एक होते नहीं।

**मुमुक्षु :** अभेद का अर्थ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभेद का अर्थ इस ओर सन्मुख हुई, इसलिए अभेद। क्या पर्याय और ध्रुव एक हो जाते हैं? सूक्ष्म बात है, भगवान!

जो वर्तमान पर्याय राग और पुण्य की क्रिया और बाह्य पर थी, वह भेद में थी, ऐसा कहने में आता है। वह पर्याय अन्तर्मुख में गयी तो अभेद हुई, ऐसा कहने में आता है। उसका अर्थ (यह कि) पर की ओर का झुकाव छोड़कर अन्तर्मुख के झुकाव में आया तो अभेद कहने में आया। बाकी जो पर्याय है, वह तो पर्यायरूप ही रही है, वह ध्रुवरूप नहीं हुई और ध्रुव जो है, वह पर्यायरूप होता नहीं। समझ में आया?

'**एगो मे सस्सदो अप्पा**' मैं एक शाश्वत् आत्मा (हूँ)। आहाहा! अनित्यपना निकाल दिया, अशाश्वत् अर्थात् अनित्य पर्याय निकाल दी। '**एगो मे सस्सदो अप्पा**' एकरूप मैं, शाश्वत्रूप मेरा आत्मा, उसका ज्ञान-दर्शन लक्षण है। जानना-देखना लक्षण से आत्मा लक्षित होता है। जानन-देखन लक्षण से भगवान आत्मा लक्षित-ज्ञान में ज्ञेयरूप जानने में आता है। मलूकचन्दभाई! ऐसा सब यह सूक्ष्म है। वहाँ अमेरिका में मन्दिर करवाते हैं, वहाँ शास्त्र भेजिये। यहाँ अभी तुम्हें समझ में नहीं आता, वहाँ कौन समझे?

**मुमुक्षु :** भावना ऊँची है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह भावना सच्ची नहीं है।

**मुमुक्षु :** कोई माँगे तो देना चाहिए न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** माँगे, क्या माँगे? उसे भान नहीं, क्या माँगे? मुफ्त में माँगे कि हमें मुफ्त में भेजिये। परन्तु पुस्तक में क्या है, वह समझेगा कहाँ? यहाँ जैन में समझनेवाले नहीं।... कुछ नहीं। व्रत पाले, ये करें, वह करें, धूल करे, वह धर्म। धूल में भी धर्म नहीं है। आहाहा! शास्त्र क्या समझे? शास्त्र के जो निश्चय वाक्य, व्यवहार वाक्य, उसका भावार्थ, आगम वाक्य क्या? अन्यमति क्या (कहते हैं)? यहाँ अपने में (समझनेवाले नहीं मिलते) कि शास्त्र का क्या कहना है? ६०-६० वर्ष से साधु होकर बैठे, नग्न होकर, हों! उसे भी मालूम नहीं है कि क्या है चारित्र और क्या है सम्यग्दर्शन। वह तो समझे कि पाँच महाव्रत पालते हैं। अभी तो पाँच महाव्रत भी कहाँ है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** आपके चरण पड़े तो सब सरल हो जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहाँ जाये? यहाँ तो तुम्हारा ठिकाना नहीं है और वहाँ चरण करवाने हैं? यहाँ तो सीधी बात है। समझ में आया? आहाहा! भाई! यह तो वीतराग का मार्ग है, प्रभु!... परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई, यह वाणी है। आहाहा! उस वाणी कुन्दकुन्दाचार्य जगत को कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो बीच में आड़तिया हैं, माल तो वीतराग का है। आहाहा! समझ में आया?

मैं **नित्य ऐसा आत्मा है, वही एक मेरा है।** ओहोहो! गजब बात करते हैं न! वर्तमान पर्याय निर्मल मति-श्रुतज्ञान की पर्याय ऐसा विचार करती है कि मैं नित्य ऐसा आत्मा है, वह मेरा है। बापू! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई! साधारण दया पालो, व्रत पालो, ऐसा तो कुम्हार भी कहते हैं। वीतराग का मार्ग वैसा होगा? अनन्त काल में किया नहीं। जिसे इन्द्र स्वीकार करते हैं, जिसको गणधर मानते हैं, वह चीज़ कैसी होगी? समझ में आया? दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो, ऐसा तो कुम्हार भी कहते हैं। ऐई!

यहाँ तो तीन लोक के नाथ परमात्मा वीतराग के श्रीमुख से निकली वाणी में तो ऐसा आया है कि धर्मीजीव की मतिज्ञान की धारा में, श्रुतज्ञान की धारा में ऐसी विचारणा चलती है कि '**एगो मे सस्सदो अप्पा**' पर्याय है, वह तो अशाश्वत् है, शाश्वत् नहीं। जो निर्णय और विचार करती है, वह पर्याय अशाश्वत् है, नाशवान है, अनित्य है। ऐई! अनित्य, नित्य का निर्णय करती है। शाश्वत् वस्तु की स्वीकारता... अनन्त गुण का

एकरूप अभेद, ध्रुव, वह एक मेरा है। ध्रुव एक मेरा है। ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप भान हुआ, तो कहते हैं कि शाश्वत् एक ध्रुव ही मैं हूँ। समझ में आया?

न्यालभाई में आता है तो लोग विरोध करते हैं न? न्यालभाई कहते हैं, पर्याय मेरा ध्यान करती है, मैं किसका ध्यान करूँ? बाबूलालजी! तीसरे भाग में आता है न? न्यालभाई है न? सामने फोटो है। अजमेर के थे। कलकत्ता में बड़ी दुकान है। वे तो गुजर गये। लड़का बड़ा लखपति है। पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ? ... बड़ा गृहस्थ था, बड़ा लखपति। गुजर गये। मैं आत्मा शाश्वत् ध्रुव नित्य, यह मैं हूँ। पर्याय ऐसा कहती है कि मैं पर्याय नहीं। आहाहा! पर्याय मैं, वह तो पर्यायबुद्धिवाला मानता है, ऐसा कहते हैं। जिसकी अंशबुद्धि है, पर्यायबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है, बहिरबुद्धि है... आहाहा! वह ऐसा कहता है कि मैं पर्याय हूँ।

सम्यग्ज्ञान की पर्याय, धर्मी की सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की पर्याय, मैं एकरूप शाश्वत् हूँ '**एगो मे सस्सदो अप्पा**' वह मैं। '**एगो मे सस्सदो अप्पा**' '**एगो मे सस्सदो अप्पा**'। आहाहा! बापू! यह तो पूरा संसार को उखाड़ देना है। मेरे में संसार तो नहीं, मेरे में संसार का विकल्प (नहीं)। विकल्प ही संसार है। संसार कोई स्त्री-पुत्र नहीं है, वह तो बाह्य पर है, उसमें संसार कहाँ आया? मिथ्यात्वभाव-पर्याय जितना मैं, राग मैं —ऐसा मिथ्याबुद्धि है, वह संसार है। संसार कोई स्त्री-पुत्र नहीं है, वे तो बेचारे पर हैं। तेरे में वह कहाँ घुस गये हैं? तेरी चीज़ जो आनन्दकन्द है, उसमें से संसरण अर्थात् हटकर मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान में आया, उसका नाम संसार कहते हैं। यह संसार उसने एक समय भी कभी छोड़ा नहीं। ये स्त्री-पुत्र छोड़कर दीक्षा ली तो संसार छोड़ा, धूल में भी संसार छोड़ा नहीं। सुन न! संसार किसको कहना, यह तुझे खबर नहीं। संसार छोड़ा, इसने त्याग किया, त्याग किया। बड़ा व्यापार था, धन्धा था, दुकान थी। धूल भी नहीं था। उसका कहाँ था वह?

निर्मल भगवान आत्मा की पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान की, विचारता है ज्ञान; श्रद्धता है समकित; स्थिर होता है, वह चारित्र। मतिज्ञान की पर्याय (ऐसा विचारती है), '**एगो मे सस्सदो अप्पा**' मैं एक शाश्वत् आत्मा (हूँ)। शाश्वत् ध्रुव मैं हूँ, ऐसा पर्याय कहती

है। ध्रुव नहीं कहता, ध्रुव में ऐसा है नहीं। समझ में आया? जिसने स्वीकार किया, मेरी पर्याय में पूर्णानन्द का नाथ कभी स्वीकारता में आया नहीं था, वह मेरी स्वीकारता में आया कि यह मैं हूँ। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया?

**'एगो मे सस्सदो अप्पा' 'एगो मे सस्सदो अप्पा'** वह मैं। ऐसा हुआ न? आहाहा! नित्य ध्रुव। स्थानकवासी में ये सब श्लोक चलते हैं। ....अर्थ कुछ न समझे। ऐई... चिमनभाई! जगत की बाहर की मिठास, इज्जत, पैसे, शरीर सुन्दर, पुत्र-पुत्री कुछ ठीक हो... आहाहा! करोड़-दो करोड़ की पूँजी हो, पुत्र की अच्छे जगह शादी हुई हो। लड़की अच्छे ठिकाने हो बाद में मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाए। धूल भी नहीं है, सुन तो सही। भगवान आत्मा नित्यानन्द का नाथ ध्रुव शाश्वत् वस्तु है, वह तेरी है। और कोई तेरी चीज़ नहीं। पर्याय मेरी नहीं, ऐसा कहते हैं। मैं तो यह हूँ। राग मेरा, पुण्य मेरा, शरीर मेरा, स्त्री मेरी, पुत्र मेरा, मेरा गाँव कहाँ से आया? उठाईगीर। तेरी चीज़ में नहीं उसको मेरा मानना, उठाईगीर है-चोर है। आहाहा!

शाश्वत् दल, चैतन्यदल, ध्रुव... आहाहा! गजब किया है न! मुनि विचारते हैं, ऐसा लिखा है न? **ज्ञान, दर्शन लक्षणरूप और शाश्वत अर्थात् नित्य ऐसा आत्मा...** आत्मा का लक्षण जानना-देखना। और यह लक्षण विचारता है कि मैं तो यह हूँ। लक्ष्य जो हुआ वह मैं हूँ। आहाहा! अनन्त पुरुषार्थ है, भाई! वह कोई बात करने से काम नहीं होता। आहाहा! वही एक मेरा है। ऐसा तो कहते हैं, यह मेरा है, ऐसा विकल्प भी मेरा नहीं। समझ में आया? समझाये तब तो ऐसे समझाये न?

नित्यानन्द का नाथ प्रभु, नित्य जो ध्रुव दल, ध्रुव नित्य शाश्वत् मैं हूँ। **शेष भाव हैं, वे मुझसे बाह्य हैं,...** है न? **'सेसा मे बाहिरा भावा'** स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश तो बाह्य है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प भी बाह्य है, मेरा स्वरूप नहीं। वह संयोगलक्षणी चीज़ है। संयोग से उत्पन्न हुआ, वह भाव मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! **शेष भाव...** ध्रुव भाव से अलावा शेष भाव **मुझसे बाह्य हैं,...** ध्रुव के अतिरिक्त पर्याय भी मुझसे बाह्य है। पर्याय भी अन्दर में नहीं है। समझ में आया? ऐसा मैं भाव, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सर्वज्ञ के पथानुगामी परमात्मा के वे पुत्र हैं। लोग कहते हैं, ईशु परमेश्वर

का पुत्र है। सब बातें। इनको तो शास्त्र में गणधर को सर्वज्ञ के पुत्र कहे हैं। धवल शास्त्र में कहा है। गणधर सर्वज्ञ के पुत्र हैं। आहाहा! और इनको भी वहाँ कहा न? 'जिनेश्वर के लघुनन्दन' समकिती को कहा। समझ में आया? आहा! सम्यग्दृष्टि जीव जिनेश्वर का लघुनन्दन है-छोटा पुत्र है; मुनि हैं, वे बड़े पुत्र हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मेरा ध्रुव स्वरूप से जो चीज़ है, पर्याय है, वह भी बाह्य है। निर्णय करनेवाली पर्याय भी ध्रुव से बाह्य है। **वे सब ही संयोगस्वरूप हैं,...** पंचास्तिकाय में आता है न? भाई! पर्याय भी उत्पन्न होती है, वह संयोग है और पर्याय का वियोग होता है, व्यय होता है, वह उसका वियोग है। पर्याय का संयोग और वियोग। पर्याय की व्याख्या ली है। पंचास्तिकाय में। ध्रुव वस्तु जो भगवान, उसमें निर्मल पर्याय का उत्पन्न होना, वह भी संयोग हुआ। आहाहा! और उसका व्यय होना, वह वियोग हुआ। संयोग-वियोग पर्याय में है। कठिन बातें, भाई! 'प्रभु का मार्ग है शूरों का, कायर का नहि काम वहाँ' 'हरि का मार्ग है शूरों का, कायर का नहि काम जोने...' हरि (अर्थात्) आत्मा। अज्ञान और राग-द्वेष का नाशकर उत्पन्न हुआ भगवान आत्मा, वह हरि है। 'हरि का मार्ग है शूरों का, कायर का नहि काम जोने, प्रथम पहेला मस्तक मूकी, पछी लेवुं नाम जोने।' एकदम अर्पणता करनी। शूरवीर का काम है। समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! आहाहा! अरे! ऐसी जैनदर्शन की बात होगी? जैनदर्शन तो... स्थानकवासी कहते हैं, व्रत पालना, दया पालनी, ये करना। श्वेताम्बर में कहे, पूजा करनी, भक्ति करनी, यात्रा करनी, दस-बीस लाख का खर्च करके संघ निकालना, सूर्यास्त पूर्व भोजन करना, जमीकन्द नहीं खाना। दिगम्बर में वस्त्र छोड़ना, ये छोड़ना। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुछ क्या करना? सच्चा करना या झूठा? अनादि से झूठा करता आ रहा है। वह तो अनादि से करता है। आहाहा!

शरीर संयोगलक्षण। आहाहा! कहते हैं कि संयोगी चीज़... देव-गुरु-शास्त्र, वह संयोगलक्षण है। वह बाह्य चीज़ है, वह मेरे में नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति के राग की मन्दता का पुण्य परिणाम हो, वह बाह्य लक्षण है। वह संयोगी विकारी भाव संयोगी है। आहाहा! और आगे तो पर्याय भी संयोग से उत्पन्न हुई है। स्वभाव में वह नहीं है।

ध्रुव स्वभाव में सभी पर्यायें अन्तर्मग्न हैं, वह अलग बात है। परन्तु उसके साथ वर्तमान में एक नहीं है। ...

सामान्य चेतना में विशेष चेतना व्यक्तियाँ अन्तर निमग्न है। आता है न? अव्यक्त में। अव्यक्त के छह बोल आते हैं। समयसार ४९ गाथा। उसमें यह तीसरा बोल है। पहला बोल यह है कि छह द्रव्यस्वरूप लोक व्यक्त है, ज्ञेय है, व्यक्त है। उससे भगवान भिन्न है, इसलिए अव्यक्त है। आहाहा! भाषा भी कैसी! व्यक्त और अव्यक्त। ऐसा जैनदर्शन में होगा? ये नहीं खाना, फलाना करना... ऐसा समझ में तो आये। वह तो अज्ञान है, सुन न। वह तो अनादि से समझा है, उसमें है क्या? आहाहा! एक समय की पर्याय कहती है, मैं शाश्वत् आत्मा। आहा! पर्याय कहती है कि मैं शाश्वत् आत्मा हूँ और वह पर्याय स्वभाव से भिन्न लक्षणवाली संयोगलक्षणी है, उत्पाद-व्ययवाली है। समझ में आया? आहाहा!

**शेष बाहर है...** है सही। है? नहीं है, ऐसा नहीं। **'बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा'** शेष है, ऐसा कहा। शेष बाह्य भाव है, ध्रुव के अलावा। वह संयोगलक्षण है। त्रिकाल स्वभाव का लक्षण मेरा ध्रुव है, वह मैं हूँ। समझ में आता है? **परद्रव्य हैं।** स्वद्रव्य की मुख्यता की अपेक्षा एक समय की निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय भी परद्रव्य है। यह तो ४९ (गाथा में) आता है। नियमसार। ये अव्यक्त के छह बोल है, वह भी समयसार की ४९ गाथा। ... आहाहा!

द्रव्य तो त्रिकाली ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... है... है... है, वह मैं और पर्याय भी परद्रव्य है। क्यों? कि जैसे परद्रव्य में से निर्मलता नहीं होती, वैसे पर्याय में से नयी निर्मल पर्याय नहीं होती। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव में से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है। **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** है न। सब गाथा याद कर ली थी, आठ साल पहले। (संवत्) १९६८ वर्ष। १९६८-६८। छह हजार गाथायें कण्ठस्थ की थी। छह हजार गाथा। उसमें कुछ सार नहीं। भाव समझनेवाले थे नहीं, भाव की खबर नहीं थी। पहाड़ा रट ले, ऐसा रट लिया था। आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है,...** जानन-देखन स्वरूप नित्य आत्मा। एक आत्मा मेरा रूप है। वह मेरी जाति की, रूप की चीज़ है। **एक स्वरूप है**

**और अन्य परद्रव्य हैं, वे मुझसे बाह्य हैं, सब संयोगस्वरूप हैं, भिन्न हैं। यह भावना भावलिंगी मुनि के है।** भावसन्त जो है, उनकी यह भावना है। आहाहा! उसे भावलिंगी साधु (कहते हैं)। नग्न द्रव्यलिंग नग्न तो होता ही है। जिसे भावलिंग है, उसका द्रव्यलिंग नग्न ही होता है और जंगल में उसका वास होता है। समझ में आया? उसे यहाँ मोक्षमार्गी भावशुद्धता (कहते हैं)। यह भावपाहुड़ शुद्धपर्याय की बात है। और शुद्धपर्याय कहती है कि यह मैं हूँ। आहाहा! उसके आश्रय से यह प्रगट हुई है। उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**माघ शुक्ल ०१, गुरुवार, दिनांक-२४-०१-१९७४**
**गाथा - ५९ से ६२, प्रवचन-९७**

अष्टपाहुड़ में पाँचवाँ पाहुड़ है। ५९ गाथा का भावार्थ। धर्मात्मा पहला आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन है, ऐसा जानकर जिसने आत्मा का अनुभव किया है, वह धर्मात्मा भावना किसकी करता है, यह बात है।

**भावार्थ - ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है,...** जानना और देखना, यह जिसका स्वरूप नित्य एक आत्मा है। यहाँ लक्षण भले दो कहे। ज्ञान-दर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा। गुण भले दो परन्तु वस्तु एक। **वह तो मेरा रूप है,...** बहुत संक्षिप्त में। ज्ञान, दर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा। ओहोहो! **वह तो मेरा रूप है,...** मेरा स्वरूप एक है। एक परन्तु वह एक स्वरूप है। एक 'अेगो मे' है न? उसमें दो लिये। एक तो वह एक है। ज्ञान-दर्शन जानने-देखने का स्वरूप एक नित्य एक। वह एक स्वरूप है। आहाहा!

**और अन्य परद्रव्य हैं, वे मुझसे बाह्य हैं,...** जितने परपदार्थ हैं, देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, कर्म, पुण्य-पाप के भाव, वे सब मुझसे बाह्य हैं। 'सब संयोगस्वरूप हैं...' वे तो संयोग से रहे हुए स्वरूप है। स्वभाव में रहा हुआ उनका स्वरूप नहीं है। शरीर, मन, पुण्य और पाप के विकल्प राग, वे सब संयोगस्वरूप हैं। कल तो अधिक कहा था। मेरा एक ध्रुव स्वरूप है, वह मैं हूँ। बाकी सब पर्यायें भी संयोगस्वरूप से आती हैं, जाती हैं... आती-जाती हैं।

**मुमुक्षु :** आज इतना ही क्यों कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आज अभी इतना कहा। वह अब कहा। पर्याय भी निश्चय से, जो निर्णय करती है, वह पर्याय भी मुझसे भिन्न है। एक शब्द प्रयोग किया है न? मैं तो एक स्वरूप। ज्ञान और दर्शन के दो लक्षण होने पर भी मैं दो स्वरूप नहीं। मैं शरीररूप, रागरूप तो नहीं परन्तु मैं दो स्वरूप नहीं। आहाहा! मैं तो एक ध्रुव स्वरूप, नित्यस्वरूप, शाश्वत वस्तु, वह मैं हूँ। आहाहा!

**भिन्न हैं।** बाकी सब चीज़ें भिन्न है। **यह भावना...** धर्मात्मा... यहाँ तो भावलिंगी मुनि कहते हैं। परन्तु धर्मात्मा की कायम की यह भावना होती है। कुछ करना, षोड़शकारणभावना भाना और यह भावना धर्मी की नहीं होती। भावता है न, सोलहकारण भावना...

**मुमुक्षु :** भावना तो पर्याय में होती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो तो उसकी भावना करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! यह तो ज्ञान-दर्शनस्वरूप एकरूप विराजमान, उसकी भावना, उसमें एकाग्रता, वह भावना करनेयोग्य है। बाकी यह षोडशकारण (भावना का) विकल्प भी भावना करनेयोग्य नहीं है। आ जाए, हो। आहाहा! भावपाहुड़ है न।

**यह भावना भावलिंगी मुनि के है।** अथवा यह भावना धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि की यह भावना है। इतना इसका भावार्थ है। यह सब चरणानुयोग के ... शास्त्र में है न। पंच महाव्रत, उसके अतिचार पालना, उसे दोष नहीं लगाना।

**मुमुक्षु :** यह जीव का भाव कहाँ है? यह तो रागभाव है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चरणानुयोग की क्रिया है न। वह बीच में होती है, इसलिए उसका ज्ञान कराया है, परन्तु उसकी भावना करनेयोग्य नहीं। आहाहा! भावना तो ध्रुव चैतन्यस्वरूप को दृष्टि में लेकर जिसने अनुभव किया है, ऐसे अनुभवी को तो ध्रुव की भावना करना चाहिए। यह ५९ गाथा (हुई)।

★ ★ ★

## गाथा - ६०

**आगे कहते हैं कि जो मोक्ष चाहे...** जिसे पूर्ण आनन्द की पर्याय की भावना हो। **वह इस प्रकार आत्मा की भावना करे –** पूर्णानन्द की दशा की प्राप्ति, वह मोक्ष। उसकी जिसे चाह है, उसे आत्मा की भावना करना चाहिए। आहाहा!

**भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव।**
**लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं।।६०।।**

**अर्थ – हे मुनिजनों ! यदि चारगतिरूप संसार से छूटकर...** है न? **'लहु चउगइ चइऊणं'** चार गति से शीघ्ररूप से जिसे छूटना हो तो **शाश्वत सुखरूप मोक्ष तुम चाहो... शीघ्र शाश्वत सुखरूप मोक्ष तुम चाहो...** देखो! मोक्ष की पर्याय है, वह शाश्वत् रहती है, क्यों रहती है। है तो वह पर्याय। परन्तु कायम रहती है, इसलिए उसे शाश्वत् कहा जाता है। एक ओर पहले **'एगो'** आत्मा शाश्वत् कहा और यहाँ मोक्ष को भी शाश्वत् कहा। वह दशा प्रगट हुई, वह ऐसी की ऐसी कायम रहती है, इसलिए उसे शाश्वत् कहा जाता है। नहीं तो मोक्ष की पर्याय भी परिणमती है, बदलती है। एक समय की दशा है, वह दूसरे समय नहीं होती। भले वैसी हो, वह नहीं होती। वैसी उस जाति की होती है, इसलिए उस मोक्ष के सुख को शाश्वत कहा जाता है। एक ओर आत्मा त्रिकाल को शाश्वत् कहा। एक ओर उसकी मूल आनन्द की पर्याय पूरी प्रगट हो, उसे शाश्वत् कहा।

**सुखरूप मोक्ष तुम चाहो तो भाव से शुद्ध जैसे हो वैसे...** भाव से शुद्ध जैसे हो, वैसे। **वैसे अतिशय विशुद्ध निर्मल आत्मा को भावो।** शुद्ध परिणाम से, शुद्ध भाव से आत्मा को भाओ, ऐसा कहते हैं। विशुद्धभाव से, शुद्धभाव से अर्थात् कि शुद्ध उपयोग से **विशुद्ध निर्मल आत्मा...** वह ध्येय। विशुद्ध-शुद्ध निर्मल आत्मा को ध्याओ। आहाहा! यहाँ तो व्यवहार का विस्तार शास्त्र में कितना आता है। वह सब हो, बीच में आवे परन्तु वह भावना करने जैसी दृष्टि नहीं है। आस्रव की भावना करने जैसी है? चरणानुयोग में जितने महाव्रत आदि के कथन है, वे सब आस्रव हैं। आहाहा! चाहे तो ... अतिचार पालना और.... गजब!

एक भगवान शाश्वत् वस्तु, उसकी शुद्ध भावना द्वारा भावना करने से पूर्ण आनन्दरूपी मोक्ष वह शाश्वत् उसे प्राप्त होता है। ऐसा मार्ग है। **विशुद्ध निर्मल...** यह विशुद्ध शब्द से पवित्र पूर्ण कहना है। विशुद्ध के बहुत अर्थ हैं। शुभभाव को विशुद्ध कहते हैं, शुद्धभाव को विशुद्ध कहते हैं, निर्मल शुद्ध पर्याय को विशुद्ध कहते हैं और त्रिकाली को विशुद्ध कहते हैं। समझ में आया? यहाँ विशुद्ध निर्मल आत्मा की भावना ऐसा है। विशुद्ध त्रिकाली निर्मलानन्द पवित्र का पिण्ड प्रभु, ऐसा जो विशुद्ध भाव। नहीं तो शुभभाव को भी विशुद्ध कहा जाता है। संक्लेश को अशुभ और विशुद्ध को शुभ।

जिस स्थान में जो कहने का प्रकार हो, उसे समझना चाहिए न? शब्द को नहीं पकड़ना चाहिए। जिस जगह उसका भाव क्या कहना है। यहाँ तो पर्याय की विशुद्धता-शुद्धता द्वारा विशुद्ध आत्मा का ध्यान करना, उसकी भावना करना, यह बात है। उसकी अन्तिम मर्यादा यहाँ जाती है। आहाहा! समझ में आया?

**भावार्थ – यदि संसार से निवृत्त होकर...** उदयभाव जो संसार, उदयभाव। संसार कोई दूसरी चीज़ नहीं है। उदयभाव (संसार है)। चार गति का उदयभाव, वह संसार। राग-द्वेष-मिथ्यात्वभाव, वह संसार है। संसरण इति संसारः। त्रिकाली शुद्धभाव में से हट गया है और रागादि में आया है, वह रागादि का भाव ही संसार है। समझ में आया? उस **संसार से निवृत्त होकर मोक्ष चाहो तो...** पूर्ण आनन्द की प्राप्ति चाहो तो **द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित...** सहित होने पर भी रहित। व्यवहारनय से सहित और निश्चयनय से रहित। आहाहा! यह जड़कर्म। भावकर्म अर्थात् शुभपरिणाम, शुभाशुभभाव, तीर्थंकरगोत्र का भाव, वह भावकर्म है। **और नोकर्म से रहित...** आहाहा! शरीर, भाषा, पर्याप्ति आदि नोकर्म। उनसे रहित अन्दर भगवान चैतन्यसत्ता शाश्वत् है। जिसका अस्तित्व सत्ता मौजूदगी, पूर्ण स्वरूप है, वह पर से रहित **शुद्ध आत्मा को भावो...** उसमें विशुद्ध कहा था। सुविशुद्ध कहा। पाठ में विशुद्ध कहा। '**अप्पा सुविसुद्धणिम्मल**' ऐसा था न? फिर अर्थ में विशुद्ध किया। पाठ तो '**सुविसुद्ध**' ऐसा है।

कारण कि शुभभाव को विशुद्ध कहा जाता है, शुद्धभाव को विशुद्ध कहा जाता है। यह तो सुविशुद्ध है। आहाहा! ... बहुत आवे। वीतरागी भाव प्रगट करना। वीतराग जिनस्वरूप ही, वीतरागस्वरूप ही है। 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही है कर्म' अकषाय रस का सत्त्व, वह आत्मा। ऐसे आत्मा को यहाँ '**सुविसुद्ध**' कहा। '**सुविसुद्ध**' पूर्ण स्वरूप, पूर्ण निर्मल... निर्मल... निर्मल। उसे शुद्धभाव से भावना करो। पवित्र परिणति से उसके सन्मुख देखकर, सन्मुख होकर, उसमें एकाग्र होओ। गजब मार्ग, भाई! कहो, पाटनीजी! यह व्यवहारवालों को ऐसा लगे कि व्यवहार लोप हो जाएगा। ऐसा कहते हैं। सोनगढ़ में अकेली निश्चय की बातें और हमारे निश्चय और व्यवहार दोनों। अनेकान्त है हमारे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो... यह क्या आया इसमें? **'भावेह भावसुद्धं अप्पा'** भावना कर, भाव शुद्ध के भाव से। **'अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव। लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं।'** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के यह आत्म उद्गार है। हृदय के उद्गार है। आहाहा! भाई! तुझे जो परम आनन्द, मोक्षप्राप्ति करनी हो, क्योंकि तेरा ध्येय तो सुख की प्राप्ति का है, तो पूर्ण सुख तो मोक्ष में है। ऐसे पूर्ण आनन्द की प्राप्ति जो इच्छा और चाहना हो तो शुद्धभाव द्वारा सुविशुद्ध निर्मल भगवान आत्मा की भावना कर। आहाहा! यह तो निश्चय की बात, फिर व्यवहार उसका साधन (क्या)? ऐसा कहते हैं।

जब अगास में दोपहर में व्याख्यान हुआ न? श्रीमद् का अगास है न? वहाँ। सबने सुना। रात्रि में एक व्यक्ति आया। यह बात सब ठीक है परन्तु इसका साधन क्या? ऐसा कि उसे ऐसा कि यह भक्ति करना, वाँचन करना, श्रवण करना, यह सब साधन। बापू! यह साधन नहीं है। आहाहा! लोगों को यह मूल चीज़ कठिन पड़ती है न, इसलिए फिर बाहर की चीज़ का साधन होवे तो ठीक पड़े, दिखे, ख्याल में आवे, (कि) कुछ करते हैं। वह अन्दर में जाना, यह करे तो ख्याल में आवे नहीं। आहाहा! ध्रुव के ध्येय में परिणति जो अभेद हो, वह तो ख्याल में आवे नहीं। (इसमें तो दिखता है) यह ऐसा करते हैं और भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, दान करते हैं, दया पालते हैं, व्रत पालते हैं, संवर करते हैं, ऐसा करते हैं। देखकर चलते हैं, विचार कर बोलते हैं। यह सब बातें ख्याल में आवे। आहाहा! मार्ग तो यह है। भावपाहुड़ का अधिकार है न? भावसार। प्राभृत-भेंट। शुद्धपर्याय की भेंट जीव को दे, वह आत्मभावना कर सकता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह ख्याति और लाभ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कब मिले?

**मुमुक्षु :** शुभभाव।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुभभाव में धूल भी नहीं।

**मुमुक्षु :** वह ख्याति कब हो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह ख्याति—आत्मख्याति।

**मुमुक्षु :** फिर तो कोई जाने नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसके लिये तो पहले बात की।

**मुमुक्षु :** मान मिले, रोटियाँ मिले...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मान और रोटियाँ अब धूल में ... मिले। आहाहा! देखो न! पाण्डव ध्यान में थे। आहाहा! और उपसर्ग, लोहे के गर्म किये हुए (आभूषण पहनाये)। सहदेव और नकुल को विकल्प आया, अरे! बन्धुओं को, साधर्मी भाईयों को... ऐसे तो सहोदर है, उनको क्या (होता होगा)? बड़ी उम्र के धर्मराजा, भीम, अर्जुन। ऐसा एक विकल्प आया, उसमें दो भव हुए।

**मुमुक्षु :** विकल्प एक और भव दो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सर्वार्थसिद्धि का भव और वहाँ से मनुष्य का भव। आहाहा! तीन—भीम, अर्जुन और धर्मराजा अन्तर में ध्रुव के ध्यान में स्थिर होकर केवल(ज्ञान) प्राप्त हुए। पाँचों सहोदर साधर्मी जीव, सन्त। आहाहा! भावलिंगी सन्त। ऐसा जरा विकल्प उठा कि अरे रे! मुनिराज-बड़े मुनिराज को, बड़े बन्धु मुनिराज को क्या होता होगा? लोहे के तमतमाते डाले। अरे! नेमिनाथ भगवान का समय था न? नेमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे तब ... किया। ऐसे समय में भी ऐसी दशा! परन्तु यहाँ तो यह कहना है कि साधर्मी मुनियों के प्रति विकल्प आया कि कैसे है? (उसमें) ३३ सागर का आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि का ३३ सागर। संसार में ३३ सागर रहना पड़ा।

**मुमुक्षु :** संसार में या सर्वार्थसिद्धि में?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** संसार में। सर्वार्थसिद्धि अर्थात् संसार। आहाहा! नेमचन्दभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो इतनी स्पष्ट बात की है। नहीं तो वह तो शुभभाव था। वह कहीं स्वयं के लिये नहीं था। स्वयं के लिये कमजोरी आयी, जिससे विकल्प उठा। ३३ सागर। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। और एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। और वहाँ से निकलकर वापस मनुष्य होंगे। आहाहा! वह शुभराग भी चाहनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, भगवान! उसमें राग का कण भी नुकसानकारक है।

अभी इसकी श्रद्धा का ठिकाना न हो। उसे अन्दर में शुद्ध में जाना भारी कठिन

पड़ता है। किस प्रकार जाए? उसे पर से खाली न करे (तो कहाँ से अन्दर जाए)? किसी कारण से आत्मा प्राप्त न हो। वह तो शुद्धता के भाव से ही प्राप्त होता है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पन्थ' ऐसा ही मार्ग, उसे शुद्धभाव से आत्मा विशुद्ध को भा। आहाहा! आचार्य का हृदय उस समय... यह लिखते समय विकल्प है परन्तु विकल्प की भावना नहीं। आ गया है विकल्प। शास्त्र लिखने का विकल्प भी भाने योग्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तू वीतरागस्वरूप है और उस वीतराग की परिणति द्वारा ही प्राप्त होता है। दूसरी कोई पद्धति नहीं है। समझ में आया?

छहढाला में नहीं कहा? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ।' आता है न? पण्डितजी! 'छोड़ी जगत द्वंद्व फंद...' यह तो दौलतरामजी का है। जिससे उदास होना है, उसकी भावना कैसे हो सकती है? आहाहा! अर्थात् कि जिसका उत्थापन राग से भिन्न करके अन्दर में स्थिर होना है, उसे ऐसे राग की भावना कैसे होगी? सुविशुद्ध ऐसा परमात्मा निर्मलानन्द नाथ प्रभु की शुद्धभाव से भावना कर। आहाहा! व्यवहार की तो बात उड़ा दी है।

★ ★ ★

## गाथा - ६१

**आगे कहते हैं कि जो आत्मा को भावे, वह इसके स्वभाव को जानकर भावे,...** यह क्या कहते हैं? कि आत्मा को एकाग्र होना, परन्तु उसका स्वभाव क्या? उसका कायमी स्व-भाव। वह वस्तु, उसका कायमी गुण क्या? आत्मा तो आत्मा कहा। वह तो आत्मा वस्तु। परन्तु उसका स्वभाव, स्व-अपना भाव शाश्वत् क्या चीज़ है? उसके भाव को जानकर फिर भावना करे। **इसके स्वभाव को जानकर भावे,...** ऐसे तो जड़ परमाणु भी द्रव्य है। आत्मा भी द्रव्य है। परन्तु आत्मा का स्वभाव क्या? उसका स्वभाव आनन्द और ज्ञान। दो बाद में लेंगे। ज्ञानस्वभाव और चेतनास्वरूप, ऐसा लेंगे। ६२ में। अर्थात् कि यह आत्मा वस्तु है, वह तो द्रव्य हुआ। परन्तु उसका वास्तविक त्रिकाली गुणस्वभाव क्या है? कि जिससे यह ऐसा स्वभाव है, उस स्वभाववन्त को भाना। यह ६१ गाथा में कहते हैं। **जानकर भावे, वही मोक्ष पाता है –**

**जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो।**
**सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं।।६१।।**

**अर्थ – जो भव्यपुरुष...** लायक पुरुष। भव्य को है न मोक्ष? दूसरे को कहाँ है? आहाहा! दुनिया में दिखाने का भाव हो, उसे छोड़ दे, कहते हैं। दुनिया में कुछ दिखाऊँ, मुझे सामने गिनती में गिने। बापू! तुझे क्या काम है? तेरी गिनती गिन न। तेरा स्वभाव क्या है? आहाहा! नित्यानन्द का नाथ भगवान उसका भाव है जानना और देखना। चेतना उसका स्वभाव है। चेतना उसका स्वभाव है। चेतने के दो प्रकार—ज्ञान और दर्शन उसका स्वभाव है। यहाँ ज्ञान स्वभाव लिया है।

जो वस्तु की भावना, एकाग्रता पर्याय से की है, उसका स्वभाव क्या? अर्थात् कि द्रव्य आत्मा और उसका स्वभाव ज्ञान और चेतना। उसमें एकाग्र होना, वह पर्याय। तीनों आ गये। आहाहा! द्रव्य अर्थात् आत्मा पदार्थ वस्तु, उसका स्वभाव चेतना और ज्ञानस्वभाव है, वह शाश्वत। परन्तु उसका स्वभाव यह। उसकी एकाग्रता, वह शुद्ध पर्याय। यह द्रव्य-गुण-पर्याय तीन आये। आहाहा!

**जो भव्यपुरुष जीव को भाता हुआ...** भगवान आत्मा की भावना करता हुआ **भले भाव से संयुक्त होता हुआ...** यहाँ भला भाव अर्थात् शुद्ध। भला है न? **'सुभावसंजुत्तो'** तो है न मूल? **'जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो'** ऐसा है न? पद में है। **'जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो'** सुभाव अर्थात् शुद्धभाव से सहित। आहाहा! इन शुभ-अशुभभाव से रहित शुद्धभाव से भाता हुआ। आहाहा! ऐसी बात पाँचवें काल में होगी? कोई कहता है कि चौथे काल के लिये है। भगवानदास सेठ सागरवाले... यह तो चौथे काल के लिये है। साधु पंचम काल के हैं। पाँचवें काल के लिये कहते हैं। ऐसी बातें तो चौथे काल के लिये हो। पाँचवें काल के साधु पाँचवें काल के भव्य जीव को कहते हैं। अर्थात् ऐसा कि अभी कुछ दूसरा हो। सेठ भी ऐसा कहते हैं न? बारम्बार पूछा। साहूजी। महाराज! हम गृहस्थ हैं। हमारे योग्य कुछ कहो न। अरे! भगवान! गृहस्थ या मुनि तो पर्याय है। आत्मा वैसा है ही नहीं।

गृहस्थ तो उसे कहते हैं। गृह-अपने निजघर में स्थिर हो, रहे-टिके, उसे गृहस्थ

कहते हैं। आहाहा! यह पंचसंग्रह में आता है। अध्यात्म पंचसंग्रह पुस्तक है न? दीपचन्दजी कृत। अध्यात्म पंचसंग्रह। आता है, पंचसंग्रह आता है। उसमें यह आता है। गृहस्थ किसे कहना? गृह-घर, निजघर नित्यानन्द प्रभु में स्थिर हो। शुद्धभाव से स्थिर हो, वह गृहस्थ है। गृहस्थ। स्थ—रहना। आहाहा! यह तो पैसेवाले हों तो गृहस्थ कहलाये, अमुक हो तो गृहस्थ कहलाये। धूल भी नहीं, सुन न अब। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्धस्वभावी, उसे **भले भाव से संयुक्त होता हुआ...** देखा! शुद्धभाव से सहित होता हुआ। आहाहा! त्रिकाली शुद्धभाव ऐसा शुद्ध चैतन्यस्वभाव अस्ति शाश्वत् ऐसे भाव को, उस भले भावसहित होता हुआ। यह टीका में कर्तापना बताते हैं। शुद्ध **'सुभावसंजुत्तो'** देखा! निर्मल पर्यायसहित। यह **'सुभावसंजुत्तो'** कहा। मार्ग, ऐसा मार्ग है, इसलिए लोगों को ऐसा लगता है व्यवहार करो, व्यवहार करो। व्यवहार कुछ करें। हमारे तो यह हो। प्रवचनसार में आता है न? श्रावक को तो व्यवहार धर्म से ही मुक्ति होती है, लो! प्रवचनसार चरणानुयोग में ऐसा वहाँ पाठ है। उसे शुभभाव से ही मुक्ति होती है। वह तो शुभभाव उसे अशुभ टालने के लिये होता है। परन्तु उसमें जितना अंश टलता है, उतना लाभ का कारण है। और फिर शुभ का अंश भी टलेगा, तब उसे शुद्ध होगा। आहाहा! यह बड़ी चर्चा हुई थी। राजकोट, राजकोट नहीं, मोरबी। (संवत्) २००६ वर्ष। उन स्थानकवासी को है न? रतनलालजी। चेलाना, चेलाना गाँव है। चेलाना नागर है। वह स्थानकवासी का पत्र प्रकाशित करता है। उसका नाम क्या?

**मुमुक्षु :** सम्यग्दर्शन।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्यग्दर्शन, हाँ, सत्य बात है। सम्यग्दर्शन पत्र प्रकाशित करता है। चेला के रतनलाल। बहुत वर्षा से। उसमें २००६ के वर्ष में वहाँ मोरबी ... वहाँ आये थे। वे कहे, महाराज! देखो! यह प्रवचनसार में ऐसा कहा है। वाँचने लगे हैं। परन्तु तुम्हारे प्रवचनसार मान्य नहीं और उसके दृष्टान्त क्या? वह बचाव करने के लिये। कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है। शुभभाव से गृहस्थ को परम्परा से मुक्ति मिलती है, यह प्रश्न किया था। स्थानकवासी 'चेलाना' के पत्रकार। क्या कहना? अरे! भाई! यह तो गृहस्थ को अशुभ टालने की अपेक्षा में शुभ आता है। उसमें जितना अशुभ टलता है,

उतना लाभदायक है परन्तु उसे गृहस्थाश्रम में बहुत शुभभाव हो, इस अपेक्षा से उसे शुभभाव टलता है और परम्परा टालेगा, उसे मुक्ति का कारण उसके कहा है। शुभराग कभी मुक्ति का कारण नहीं हो सकता। आहाहा! सब यह दृष्टान्त देते हैं। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आता है न समयसार की १२वीं गाथा?

**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।**
**ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।१२।।**

देखा, व्यवहार का उपदेश करना। वे और स्थानकवासी थे, कपूरभाई। वह (संवत्) १९९४ में यहाँ आया था। दरियापरी था, दरियापरी। कपूरभाई नहीं थे, दरियापरी था। उसका पुत्र था नटु-नटु। १९९४ में आया था। बहुत वर्ष हो गये। ३६। वह कहे, महाराज! परन्तु १२वीं गाथा में ऐसा कहा है किन्तु तुमको... तुम्हारे समयसार नहीं न। बचाव करने के लिये। १२वीं गाथा में तो ऐसा कहा कि व्यवहारियों को व्यवहार का उपदेश देना। व्यवहार का उपदेश देना। भाई! ऐसा वहाँ नहीं कहा। यह इस सेठ ने स्वयं ऐसा कहा था, साहूजी दिल्ली। यह व्यवहार का उपदेश .... व्यवहार का उपदेश देना। ऐसा उसमें लिखा है। उन पण्डितों ने कहा है न। साहूजी। बापू! ऐसा उसका अर्थ नहीं है। **'ववहारदेसिदा पुण'** का अर्थ उपदेश देना, ऐसा नहीं है।

**'ववहारदेसिदा पुण'** का वाच्य वह निर्मल पर्याय थोड़ी है और अशुद्ध पर्याय साथ में है, उसे जानना, इसका नाम व्यवहार प्रयोजन है। जानना। आदर करने की बात नहीं, करने की बात नहीं, उपदेश देने की बात वहाँ नहीं है। वह तो पद में ऐसा **'ववहारदेसिदा'** शब्द आया है, परन्तु उसके भाव में अमृतचन्द्राचार्य ने तो कहा है कि जो कुछ अशुद्धभाव के अंश हों, उस काल में उसे जानना। जाना हुआ प्रयोजनवान है। **'तदात्वे'** प्रयोजनवान। पण्डितजी! **'तदात्वे', 'तदात्वे'। 'परिज्ञायमानस्त' 'तदात्वे परिज्ञायमानस्त'** उस काल में जाना हुआ—इतना शब्द है। इसका अर्थ क्या? कहा। जिस-जिस समय में जो-जो राग की मन्दता होती है, उस-उस काल में उस प्रकार का ज्ञान जानना, वह प्रयोजनवान। दूसरे समय में राग की मन्दता हो, उस प्रकार का ज्ञान करके जानना। **'तदात्वे परिज्ञायमानस्त'** ऐसा है। उपदेश-बुपदेश की व्याख्या है ही नहीं। **'ववहारदेसिदा'।**

**मुमुक्षु :** **'देसिदा'** शब्द पड़ा है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। **'देसिदा'** यह तो वाचक का वाच्य यह है कि उस काल का जो अशुद्धभाव आदि हो, उसका जानना। उसमें यह बात है। कहना और उपदेश करना, यह व्याख्या है ही नहीं। साहूजी ने दस मिनिट थोड़ी सभा में लगायी थी। पण्डित कहते हैं। अरे! भगवान! क्या हो?

यहाँ कहते हैं, **जो भव्यपुरुष जीव को भाता हुआ, भले भाव से संयुक्त हुआ...** **'सु'** शब्द है न? **'सुभावसंजुत्तो'** भले भाव अर्थात् शुद्ध। भला भाव अर्थात् शुद्ध।

**मुमुक्षु :** शुभ नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुभ नहीं। शुभ भला है ही नहीं। इस शुद्ध को ही शुभ कहा है। समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में। शुद्ध को शुभ कहा है। और शुभ-अशुभ को अशुभ कहा है। आहाहा!

**भले भाव से संयुक्त हुआ जीव के स्वभाव को जानकर भावे,...** शुद्ध परिणति, शुद्ध पर्याय से सहित होता हुआ **जीव के स्वभाव को जानकर...** भगवान आत्मा को जानकर भावे। **वह जरा-मरण का विनाश कर...** वह जीर्णता का, मरण— देह का छूटना, उसका अभाव करके **प्रगट निर्वाण को प्राप्त करता है।** प्रत्यक्ष पूर्णानन्द की प्राप्ति उसे होगी। वाद-विवाद से पार नहीं आता। इतनी चर्चा हुई है तो भी अभी फिर से चर्चा करो, ऐसा कहते हैं। मक्खनलालजी कहते हैं। भाई! ... बापू! वस्तु की स्थिति ऐसी है, ऐसा समझे तो पार आवे। वाद-विवाद से पार आवे?

**मुमुक्षु :** चर्चा व्यर्थ है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़ा व्यर्थ ... तुम्हारे ओर की दलील भी व्यर्थ?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु उसमें कहा था न पहले? हाँ किया था। पाँच-पाँच हजार रुपये इकट्ठा करके अपने ... फिर ऐसा हुआ कि अपनी पोल निकलेगी, इसलिए इनकार कर दिया। यह कहे, मुझे छापना है। तुम्हारी दलील है और यह भी दलील है। दोनों की है।

**मुमुक्षु :** वापस फेरफार किया न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जरा भी फेरफार नहीं किया। पूछा था फेरफार कुछ खबर है न उनके हस्ताक्षर हैं। बंशीधरजी के हस्ताक्षर हैं। उनके हस्ताक्षर होकर फिर तो प्रकाशित किया है। ऐसी गड़बड़ कुछ चले? उसमें सबके हस्ताक्षर हैं। आहाहा! **जरा-मरण का विनाश कर प्रगट निर्वाण को प्राप्त करता है।**

**भावार्थ - 'जीव' ऐसा नाम तो लोक में प्रसिद्ध है,...** जीव... जीव... जीव... जीव... लो! **परन्तु इसका स्वभाव कैसा है?** वस्तु तो कही, भले जीव, परन्तु उसका शाश्वत स्वभाव क्या? वस्तु है, वह तो जीव कही। अस्ति। अब उसका स्वभाव अस्तित्व कैसा है? आहाहा! जीव तो एक वस्तु हुई स्वभाववान। परन्तु उसका स्वभाव क्या? आहाहा! **स्वभाव कैसा है? इस प्रकार लोगों को यथार्थ ज्ञान नहीं है...** लोगों को यथार्थ ज्ञान नहीं कि यह जीव है, इसका स्वभाव चेतना और ज्ञान है। उसका दूसरा स्वरूप ही नहीं है। ऐसी खबर नहीं है। इसलिए कोई कुछ कल्पित करता है, कोई कुछ कल्पित करता है। **और मतान्तर के दोष से इसका स्वरूप विपर्यय हो रहा है।** जगत के अनेक मतों में वास्तविक जीव के स्वभाव में मतान्तर अनेक अन्तर अर्थात् अनेक मत हो गये हैं। वास्तविक स्वरूप की दृष्टि वहाँ नहीं रही। आहाहा! **इसलिए इसका यथार्थ स्वरूप जानकर...** भगवान आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानकर... आहाहा! **भावना करते हैं।** यह क्या स्वभाव कहेंगे।

**वे संसार से निर्वृत्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।** पर्याय में उदयभाव का अभाव होकर पारिणामिक क्षायिकभाव की पर्याय प्रगट करेंगे। क्योंकि स्वभाव में मोक्ष की पर्याय तो उसके स्वभाव में अनन्त पड़ी है। ज्ञान-दर्शन आदि मुक्तस्वरूप वह है। उसका स्वभाव मुक्त स्वभाव है। ऐसे मुक्त स्वभाव को भाने से नित्य स्वभाव में रही हुई आनन्द की शक्ति पर्याय में प्रगट होगी। इसलिए उसे परमानन्दरूपी मोक्ष का शाश्वत् लाभ (होता है)। यह शाश्वत् कहा। यह तो... एक गति में से दूसरी। सर्वार्थसिद्धि में से मनुष्य के भव में... और... आहाहा! कहाँ सर्वार्थसिद्धि का जीव हो, वह छूटकर माता के गर्भ में सवा नौ महीने उल्टे सिर (रहे)। आहाहा! अभी एक भव करना है न सर्वार्थसिद्धिवाले को? भव तो यह है। आहाहा! जिसके श्वास लेने की क्रिया को

सुविधा न मिले। चारों ओर कफ और माँस और हड्डियाँ, उसमें बीच में उल्टे सिर। आहाहा! अरे! यह किस प्रकार रहा? इसके इतिहास की इसे खबर नहीं। आहाहा! इसकी जिन्दगी में क्या हुआ यह सब? इसका पूर्व का इतिहास स्वयं देखे तो ... इसे खबर पड़े। ओहोहो! भव-भव में दु:ख में रहा।

ऐसा जीव का स्वभाव जानकर **भावना करते हैं। वे संसार से निर्वृत्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।** आहाहा! जीव, उसका स्वभाव धर्म। धर्म स्वभाव। धर्म अर्थात् ज्ञान और चेतना स्वभाव। उसकी पर्याय में शुद्धता से भावना भाते हुए, वह जो स्वभाव चैतन्य का ज्ञानादि है, वह पर्याय में पूर्ण प्राप्त होगा। इसका नाम मुक्ति है।

★ ★ ★

## गाथा - ६२

**आगे जीव का स्वरूप सर्वज्ञदेव ने कहा है, वह कहते हैं –** आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! सर्वज्ञदेव ने कहा। पाठ है न इसमें?

**जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहावो य चेयणासहिओ।**
**सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो।।६२।।**

जिसे जानना कर्मक्षय के कारण से। आहाहा!

**अर्थ – जिन सर्वज्ञदेव ने जीव का स्वरूप इस प्रकार कहा है...** इसका स्वभाव और इसका स्वरूप इस प्रकार से कहा है। **जीव है, वह चेतनासहित है...** वस्तु है तो कोई स्वभाव होगा न उसका? मिश्री का मीठा स्वभाव, नमक का-लवण का खारा स्वभाव, खड़ी का सफेद स्वभाव; वैसे भगवान आत्मा का स्वभाव चेतना और ज्ञान। **ज्ञानस्वभाव है,...** लो! चेतनासहित ज्ञानस्वभाव। अकेला जानना और देखना ऐसा चेतना ही उसका स्वरूप है। ऐसा चेतना, ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव है। जानना और देखना, वही उसका स्वरूप है। अकेला जागृत होकर जानना और देखना वह उसका स्वरूप है। राग करना और राग होना और शरीर सम्बन्ध, वह कोई उसका स्वभाव नहीं है, वह कोई उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा!

जिसका ध्यान करना है, उसका स्वभाव क्या? कहते हैं। जीव का ध्यान करना है अर्थात् उस ओर झुकना है। जिसकी ओर झुकना है, उसका स्वभाव क्या? कि इस चेतनासहित ज्ञानस्वभाव। यह चेते ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव। आहाहा! रात्रि में व्याख्यान ऐसा दे शीघ्र बुलावे एक घण्टे में। यह तो धीरे-धीरे मानों कोई... आहाहा! ऐसा पकड़ में आवे नहीं। विचार ... मौका मिलना चाहिए न? भाई! तू जीव है। तो जीव का स्वभाव सर्वज्ञ ने क्या कहा? जिसे ज्ञान में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, उसने तेरे स्वभाव को कैसा कहा? वह तो चेतना। चेतना ऐसा ज्ञानस्वभाव... चेतना ऐसा ज्ञानस्वभाव। बस। आहाहा! चेतना ऐसा ज्ञानस्वभाव। कुछ करना, ऐसा ज्ञानस्वभाव, ज्ञान करना— ऐसा भी नहीं। वह तो चेतना, ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव है।

**इस प्रकार जीव की भावना करना,...** जीव एक द्रव्य हुआ। चेतनासहित ज्ञानस्वभाव उसका गुण हुआ, स्वभाव हुआ, भाव हुआ। भाववान, भाव। उसकी भावना, वह पर्याय हुई। आहाहा! समझ में आया? **इस प्रकार जीव की भावना करना,...** ऐसे जीव की एकाग्रता करना। ऐसे जीव की चेतनासहित ज्ञानस्वभाव ऐसे जीव की एकाग्रता करना। आहाहा! गजब मार्ग है। **जो कर्म के क्षय के निमित्त जानना चाहिए।** कर्म का क्षय तो उसकी पर्याय से होता है। परन्तु उसमें यह भाव, निमित्त है। आहाहा! समझ में आया? जीव, उसका चेतनासहित ज्ञानस्वभाव, उसकी एकाग्रता की शुद्ध पर्याय की भावना, वह कर्मक्षय का, कर्म का क्षय तो उसकी पर्याय में उसके कारण से होता है, परन्तु उस कर्मक्षय में निमित्त है यह शुद्धभाव। उपादान उसका (कर्म का)। समझ में आया? यह कहे, आत्मा कर्मक्षय करता है, कर्म का क्षय होता है तो यह ज्ञान होता है। ऐसा नहीं है, भाई! यहाँ तो द्रव्य का स्वभाव चेतनासहित ज्ञान, उसकी जो एकाग्रता ऐसी शुद्ध पर्याय, वह शुद्ध पर्याय कर्म के क्षय के काल में यह शुद्ध पर्याय उसे निमित्तकारण कही जाती है। आहाहा! यह शुद्धपर्याय कर्मक्षय नहीं करती। कर्म तो जड़ है।

**मुमुक्षु :** कर्मक्षय कौन करता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह पर्याय उसकी कर्म की। कर्म का अभाव होना कर्मरूप पर्याय की अकर्मरूप पर्याय होना, वह तो उसका स्वभाव है।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसके कारण से वहाँ हुआ। यह तो निमित्त कहा न? शुद्धपर्याय तो निमित्त है। उपादान तो क्षय होने का कर्मपर्याय में उसके कारण से है। ऐसी बात करते हैं। समझ में आया? इसमें शुद्ध पर्याय पूर्ण प्रगट की, इसलिए कर्म को नाश होना पड़ा, ऐसा नहीं है। वह कर्म का उसमें नाश का उसका काल था। उससे वह कर्मरूप पर्याय हुई है। कर्मरूप पर्याय के क्षय का अर्थ कर्मरूप पर्याय अकर्मरूप हुई। उसमें इस शुद्ध परिणाम को निमित्त कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बातें, भाई! इसे समझना निमित्त कारण है, इसलिए वहाँ क्षय हुई है, ऐसा नहीं है। इसमें शुद्धभाव किया, इसलिए कर्म को नष्ट होना पड़ा और कर्म का नाश हुआ, इसलिए शुद्धपर्याय केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? तत्त्वार्थसूत्र में आवे—कर्मक्षयात्। चार कर्म क्षय हो तो नवलब्धि प्रगटे। यह तो निमित्त के कथन हैं। उमास्वामी ने भी वहाँ व्यवहार को बतलाया है।

**मुमुक्षु :** पूरा व्यवहार का...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह पूरा व्यवहार का ग्रन्थ है।

यह देखो न भाषा। **'सो जीवो णायव्वो'** इस जीव को इस प्रकार से जानना और जानने से कर्मक्षय तो उसका निमित्त है। उसकी शुद्धपर्याय ही कर्मक्षय होने में निमित्त है। कर्म का क्षय तो उस काल में उसकी पर्याय में होने का काल ही था। कर्म की अवस्था का अभाव होना, वह तो उस कर्म की अवस्था का ही स्वकाल था। समझ में आया? आत्मा ने शुद्धभाव किया, इसलिए कर्म का अभाव हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसलिए निमित्त शब्द प्रयोग किया है न? **'कम्मक्खय-करणणिम्मित्तो'** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली गजब की शैली है! रतनचन्दजी कहते हैं न, तुम ऐसा कहते हो कि शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, इसलिए कर्म उसके कारण से नाश होते हैं। हम ऐसा कहते हैं कि कर्म का नाश होता है, तब शुद्धभाव-केवलज्ञान प्रगट होता है। भाई! तुझे खबर नहीं। ऐसा नहीं है।

यहाँ इसने राग-द्वेष किया, इसलिए वहाँ कर्म की पर्याय को कर्मरूप होना

पड़ा ? ऐसा है नहीं। वह तो उसके कर्म परमाणुओं में कर्म की पर्याय होने के योग्य उस समय में थी, वे कर्मरूप परिणमे हैं। यहाँ राग-द्वेष किये, इसलिए उसरूप कर्म परिणमा है, ऐसा नहीं है। राग-द्वेष तो निमित्त है। राग-द्वेष तो निमित्त है। कर्म की पर्याय उपादानरूप से उस समय उस पर्यायरूप से परिणमने की थी, उसका वह उपादान है। बड़ा उपादान निमित्त का घोटाला है। पण्डितजी ! बड़ी चर्चा। पाँच की चर्चा—उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्ध—यह सोनगढ़ के सामने पाँच का... आहाहा! पाँचों का एक सवाल में उड़ जाए ऐसा है सब।

जिस काल में स्वकाल है प्रत्येक पर्याय का। अपने स्वचतुष्टय में जीव है या प्रत्येक द्रव्य है, परचतुष्टय से नहीं। समाप्त हो गया। स्वचतुष्टय से है। अपने स्वकाल के कारण जीव है। चाहे तो निर्मल के समय, चाहे तो मलिन के समय। पर तो निमित्त है, उससे कुछ हुआ नहीं। और स्वकाल है, वह क्रमबद्ध है। एक के बाद एक स्वकाल और स्वकाल में व्यवहार है; इसलिए निश्चय हुआ, ऐसा नहीं आता। जिस काल में निर्मल पर्याय हुई, उस काल में राग साथ में है। ... राग है, उसे व्यवहार कहा जाता है और इसे निश्चय। परन्तु राग से, व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसी बात है नहीं। पाँचों ही बोल एक सवाल में उड़ जाते हैं। समझ में आया ? कर्म का निमित्त है। भावार्थ कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ शुक्ल ०२, शुक्रवार, दिनांक-२५-०१-१९७४
गाथा - ६२ से ६४, प्रवचन-९८

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़। गाथा-६२। भावार्थ है न?

**भावार्थ – जीव का चेतनासहित विशेषण करने से...** गाथा का स्पष्टीकरण करते हैं। जीव के स्वभाव का ध्यान करना। ऐसा है न मूल? जिन भणन्ते—वीतराग ने जीव का स्वभाव कैसा कहा है, वह कहते हैं। **जीव का चेतनासहित विशेषण करने से तो चार्वाक जीव को चेतनासहित नहीं मानता है,...** चार्वाक है न एक नास्तिक? चेतना आत्मा है, ऐसा नहीं मानते। नास्तिक। **उसका निराकरण है। ज्ञानस्वभाव विशेषण से सांख्यमती ज्ञान को प्रधान का धर्म मानता है,...** सांख्यमति हैं, वे रजो, तमो, सत्व इन प्रकृति के गुणों को ज्ञान मानते हैं। **सांख्यमती ज्ञान को प्रधान धर्म मानता है, जीव को उदासीन नित्य चेतनारूप मानता है,...** चेतना जाने, ऐसा नहीं। उदासीन चेतना। **उसका निराकरण...** होता है। ज्ञानस्वभाव और चेतनागुणसहित है। उसके ऐसे स्वभाव को जानना।

**'णायव्वो'** है न? **'सो जीवो णायव्वो'** चेतनास्वभाव, वह ज्ञानस्वभाव। वह जो जाने, उसका नाम जीव। उसकी भावना एकाग्रता की, वह धर्म। लो! **नैयायिकमती गुण-गुणी का भेद मानकर ज्ञान को सदा भिन्न मानता है,...** नैयायिकमत है, वह गुण-गुणी, द्रव्य और ज्ञान दो भिन्न है। जीवद्रव्य और ज्ञान अत्यन्त भिन्न है, ऐसा मानता है। **सदा भिन्न मानता है, उसका निराकरण है। ऐसे जीव के स्वरूप को भाना...** ऐसा जो जीव का ज्ञानस्वरूप और चेतनास्वभाव, उसकी भावना करना, इसका नाम वास्तविक जीव का धर्म है। लो! ऐसा करना, यह पूजा करना, भक्ति करना, यह करना, यह कोई बात नहीं ली है।

**मुमुक्षु :** दूसरे शास्त्र में ली हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दूसरे शास्त्र में क्या? व्यवहार होता है, उसका ज्ञान कराया है।

बाकी वह कोई धर्म नहीं है। धर्म तो जीव चेतनासहित और ज्ञानस्वभाव, उसकी एकाग्रता करना, इसका नाम धर्म है। है न?

**ऐसे जीव के स्वरूप को...** ऐसे जीव के भाव को। ऐसा जो जीवद्रव्य, उसका जो स्वरूप, भावस्वरूप, चेतनास्वरूप, ज्ञानभाव को **भाना...** भावना करना। बहुत संक्षिप्त कहा है। जीवद्रव्य, चेतना और ज्ञान उसका स्वभाव त्रिकाल। उसकी एकाग्रता करना, यह पर्याय धर्म। ऐसा ... स्वभाव है। यहाँ व्यवहाररत्नत्रय इसमें नहीं आता। वह तो राग में जाता है। भावपाहुड़ है न? जो भाव शुद्ध हुआ, पवित्र है, वह शुद्ध पवित्र ऐसा त्रिकाली स्वभाव, उसकी भावना, वह पवित्र शुद्धभाव है। वह परमधर्म है। कठिन लगे। बाहर में कुछ करना हो तो इसे लगे कुछ करते हैं।

यहाँ तो चैतन्यद्रव्य, उसकी चेतना और ज्ञान उसका स्वभाव, उसमें एकाग्र होना, उस ज्ञान और चेतना में एकाग्र होना, उसकी भावना भाना, उसमें लीनता करना, इसका नाम भाव शुद्ध और धर्म है। वह **कर्म के क्षय के निमित्त होता है,...** वह पवित्र परिणाम-त्रिकाली चेतना और ज्ञानस्वभाव की एकाग्रतारूप पवित्र परिणाम कर्मक्षय का निमित्त है। कर्मक्षय तो उसके कारण से होता है। कर्म की पर्याय का अकर्मरूप होना, वह तो उसके कारण से, जड़ के कारण से (होता है)। उसमें यह परिणाम निमित्त कहे जाते हैं। **अन्य प्रकार मिथ्याभाव है।** ऐसा ज्ञानस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, उसकी एकाग्रता के अतिरिक्त, दूसरे कोई भी पुण्य और पाप का भाव, वह धर्म है, यह मिथ्याभाव है। और यहाँ तो अकेला व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... चलता है।

**मुमुक्षु :** ...सद्भूतव्यवहार नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह व्यवहार नहीं। दया, व्रत, तपस्या, पूजा, भक्ति क्रिया वह तो असद्भूत है, राग है। वह व्यवहार में कहाँ है?

अपना त्रिकाली स्वरूप वस्तु और उसका जो स्वस्वरूप भाव, वह त्रिकाल, उसे ध्येय में लेकर एकाग्र होना, बस, यह एक धर्म है। आहाहा! उसका नाम भावपाहुड़ अर्थात् भाव की शुद्धता कहीं जाती है। वह अन्य प्रकार मिथ्याभाव है, दूसरे प्रकार से माने तो वह दुःखभाव है। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ६३

**आगे कहते हैं कि जो पुरुष जीव का अस्तित्व मानते हैं, वे सिद्ध होते हैं –**

**जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।**
**ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा।।६३।।**

**अर्थ – जिन भव्यजीवों के जीवनामक पदार्थ सद्भावरूप है और सर्वथा अभावरूप नहीं है,...** पर से अभावरूप है। शरीर, कर्म आदि से अभावरूप है। अपने स्वभाव से सद्भावरूप है। शरीर (का) नाश (होता) होने पर भी अथवा पर्याय बदलती होने पर भी सद्भावरूप नित्यरूप आत्मा है। ध्रुव ध्रुव आत्मा सद्भाव, सत्भावरूप आत्मा है। शरीर पलटने से कहीं आत्मा का नाश नहीं होता। एक समय की पर्याय पलटने से कहीं नित्य का नाश नहीं होता। ऐसा **जीव नामक पदार्थ सद्भावरूप है और सर्वथा अभावरूप नहीं है,...** कथंचित् अभाव है। शरीर आदि से अभावरूप है, ऐसे एक समय की पर्याय से भी अभावरूप है। कथंचित् अभावरूप है, सर्वथा अभावरूप नहीं। आहाहा! एक-एक शब्द में कितना भरा! देखो न! वस्तु सद्भाव सत् स्वभावरूप है। सर्वथा अभावरूप नहीं। ऐसा कहा न पाठ में? सर्वथा अभावरूप नहीं। कथंचित् अभावरूप है। पर की अपेक्षा से अथवा पर्याय की अपेक्षा से अभावरूप है परन्तु वस्तु की अपेक्षा से तो सद्भावरूप है। आहाहा!

**वे भव्यजीव देह से भिन्न...** देह से भिन्न भगवान आत्मा **तथा वचनगोचरातीत...** जो ऐसे जीव स्वभाव का सद्भावरूप, सर्वथा अभावरूप नहीं ऐसे जीव का जो ध्यान और ज्ञान करता है, वह वचनगोचरातीत तो सिद्ध है। वचन को गम्य नहीं, ऐसे सिद्धपद को पाता है। वह मोक्षपद को पाता है। जीव सद्भावरूप है। वह ... नित्यानन्द है, प्रभु ध्रुव है। ऐसा जो नित्य स्वभाव, वह जिसे दृष्टि में आता है, वह जीव कथंचित् पर से अभावस्वरूप है परन्तु अपने स्वभाव से सद्भावस्वरूप है। ऐसी जिसकी दृष्टि हुई, वह सिद्धपद को पाता है। वह निर्मल पूर्ण पर्याय को पाता है। लो! यह तो मोक्ष का मार्ग यह और उसका मोक्ष यह। आहाहा! इन चरणानुयोग में कथनों का पार नहीं मिलता। ऐसे व्रत और उसकी पर्याय, उसमें अतिचार लगे और उसका प्रायश्चित लेना, यह दोष

टालना। सब अधिकार कहाँ गये ? वह सब विकल्प की बात हो, बतलानी हो तब होती है। स्वरूप में वह विकल्प नहीं और वह विकल्प स्वरूप का साधन नहीं। आहाहा!

**भावार्थ – जीव द्रव्यपर्यायस्वरूप है,...** भगवान आत्मा जीवद्रव्य वस्तु और एक समय की पर्यायरूप, इतना अस्तित्व प्रमाण का विषय उसे कहते हैं। **कथंचित् अस्तिस्वरूप है,...** अपने सद्भाव की अपेक्षा से अस्ति। कथंचित् अर्थात् अपने सद्भाव की अपेक्षा से अस्ति। **कथंचित् नास्तिस्वरूप है।** परन्तु पर शरीरादि की अपेक्षा से नास्ति। और एक समय की पर्याय की अपेक्षा से भी नास्ति।

**पर्याय अनित्य है, इस जीव के कर्म के निमित्त से...** पर्याय तो अनित्य है। नित्य तो द्रव्यस्वरूप ध्रुव है। **जीव के कर्म के निमित्त से मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारक पर्याय होती है, इसका कदाचित् अभाव देखकर...** शरीर का अभाव देखकर आत्मा का अभाव हो गया, ऐसा नहीं जानना। शरीर छूट गया, इसलिए साथ में आत्मा भी छूट गया, ऐसा नहीं। देह का अभाव होने पर जीवतत्त्व का ध्रुवस्वभाव सद्भाव है, ऐसा जानकर। सर्वथा नास्ति है, ऐसा नहीं मानना। **इसका कदाचित् अभाव देखकर जीव का सर्वथा अभाव मानते हैं। उनको सम्बोधन करने के लिए ऐसा कहा है कि जीव का द्रव्यदृष्टि से नित्य स्वभाव है।** लो! वस्तु है ध्रुव, नित्य, उस दृष्टि से तो सद्भाव त्रिकाल है।

**पर्याय का अभाव होने पर सर्वथा अभाव नहीं मानता है,...** ऐसे एक समय की पर्याय बदलती और शरीर बदलता देखकर उसे नाशवान नहीं मानना। विचार भी बदल जाए, पर्याय बदल जाए, (यह) बदलने से वस्तु बदल जाती है ? बहुत संक्षिप्त बात है।

भूतार्थ का आश्रय करना, यह आया। पर्याय बदलती है, इससे कहीं पूरी चीज़ बदल जाती है, ऐसा नहीं है। (समयसार की) छठवीं गाथा में तो कहा, प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय जिसमें नहीं। लो! आहाहा! **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।'** यह तो ज्ञायकभाव चैतन्यस्वभावभाव सद्भाव ऐसी जो त्रिकाली चीज़, यह ज्ञायकभाव, वह वस्तु। उसमें तो पर्याय भी नहीं। आहाहा! **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो'** कौन सी पर्याय बाकी रह गयी ? पहले से छठवीं भूमिका तक की पर्याय प्रमत्त,

सातवें से चौदहवें तक की अप्रमत्त। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो'** भगवान सद्भाव ध्रुवरूप अस्ति, इस पर्याय का उसमें अभाव है। आहाहा! ऐसे ज्ञायकभाव को उस पर्याय में अनुभव करना। पर से लक्ष्य छोड़कर अपने त्रिकाल भाव का सेवन करना। उसे पर्याय में शुद्धता अनुभव में आवे, उसे यहाँ भावशुद्ध कहते हैं। और भावशुद्ध में त्रिकाली शुद्ध है, वह दृष्टि में आता है। चीज़ तो है सद्भावरूप। परन्तु जब उसकी ओर के लक्ष्य और झुकाव से, आत्मा त्रिकाल की सेवना जिस पर्याय ने की, वह पर्याय भावशुद्ध है और उस पर्याय में यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा प्रसिद्ध हुआ। यह त्रिकाली शुद्ध है, ऐसा प्रतीति में आया। आहाहा! पलाखुं तो बहुत संक्षिप्त है। पलाखुं समझते हो? पहाड़ा। पहाड़ा कहते हैं न? ऐकड़े एक और बिगड़े दो और तिगड़े तीन। भाव बहुत सूक्ष्म।

कहते हैं कि जो कोई जीव का सर्वथा अभाव मानता है, उसके सम्बोधनरूप से कहा। **जीव का द्रव्यदृष्टि से नित्य स्वभाव है। पर्याय का अभाव होने पर सर्वथा अभाव नहीं मानता है,...** पण्डित जयचन्द्रजी ने स्पष्टीकरण किया है। **वह देह से भिन्न होकर सिद्ध परमात्मा होता है,...** देह से अभाव हो जाए, इसलिए उसका— जीव का अभाव हो, ऐसा नहीं है। देह का अभाव होने से तो सिद्धपर्याय प्रगट होती है। देह की पर्याय का नाश होने पर भगवान आत्मा तो सिद्धपर्याय को पाता है। नित्य वस्तु है, वह इस पर्याय को पाती है। यह पर्याय हट गयी। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग परमार्थ का ऐसा रूखा लगे, रूखा।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह वीतरागी अर्थात् रूखा। रागवाले को रूखा लगे। क्या कहते हैं यह? बापू! भगवान! तेरा अस्तित्व.... अस्तित्व... नित्य और ध्रुव है। उसे देह का अभाव हो अथवा उस क्षण की पर्याय का अभाव हो तो वह सिद्ध होगा। समझ में आया? आहाहा!

**पर्याय का अभाव होने पर सर्वथा अभाव नहीं मानता है, वह देह से भिन्न होकर सिद्ध परमात्मा होता है, वे सिद्ध वचनगोचर नहीं हैं।** वह सिद्ध वाणीगम्य नहीं। अरे! विकल्प—शुभराग गम्य नहीं। आहाहा! वह तो स्वसंवेदनगम्य है। है तो

उसके देह से भिन्न, राग से भिन्न ऐसा अपना ज्ञानस्वरूप सं-प्रत्यक्ष वेदनगम्य है। आहाहा! **वे सिद्ध वचनगोचर नहीं हैं। जो देह को नष्ट होते देखकर जीव का सर्वथा नाश मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं, वे सिद्ध-परमात्मा कैसे हो सकते हैं?** ऐसे जीव शुद्ध परमात्मा किस प्रकार हों, ऐसा कहते हैं। जिसे द्रव्यस्वभाव नित्य ध्रुव श्रद्धा में अस्तित्व आता नहीं और इस देह के अभाव से मानो मेरा अभाव हो जाए अथवा एक समय की पर्याय के अभाव से मेरा अभाव हो जाए, उसे सिद्धपद किस प्रकार मिले? उसे अज्ञानपद मिले भटकने का। आहाहा! **कैसे हो सकते हैं? अर्थात् नहीं होते हैं।** जिसे त्रिकाली ध्रुवस्वभाव का ही अन्तर में स्वीकार नहीं और पलटती चीज़ देखकर मानो मैं भी नाश होता हूँ, ऐसी जिसकी मान्यता है, उसे सिद्धपद किस प्रकार होगा? उसे भटकने का अज्ञानपद संसारपद होगा। आहाहा!

★ ★ ★

## गाथा - ६४

यह गाथा आयी अब। प्रत्येक में यह गाथा है। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, धवल और यह अष्टपाहुड़। प्रत्येक में यह गाथा है। प्रत्येक ग्रन्थ में यह गाथा है। ६४।

**आगे कहते हैं कि जो जीव का स्वरूप वचन के अगोचर है और अनुभवगम्य है,...** विकल्प और वचन से ज्ञात हो, ऐसा नहीं, तथापि ज्ञानगम्य है, अनुभवगम्य है। आहाहा!

**अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।**
**जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।६४।।**

**'जाण'** शब्द पड़ा है न? अर्थात् गुरु का सम्बोधन है। जान। हे शिष्य! ऐसा तू जान। आहाहा!

**अर्थ - हे भव्य! 'जाण'** कहा न? **तू जीव का स्वरूप इस प्रकार जान...** लो! भगवान आत्मा का स्वरूप, स्व-रूप, अरूप। वह स्वरूप। अरूप, तथापि उसका

स्वरूप ऐसा जान। **कैसा है? अरस अर्थात् पाँच प्रकार के खट्टे, मीठे, कडुवे, कषायले और खारे रस से रहित है।** आनन्दरस सहित है, इस रस रहित है। पहला रस लिया है न? खट्टा, मीठा आदि रस है, वह तो जड़ की पर्याय है। उस रस से तो भगवान आत्मा भिन्न है। वहाँ यह इन्द्रिय के विषय के रसवाला मैं नहीं। मैं तो अतीन्द्रिय रस के आनन्द का स्वरूप उसका है। आहाहा! निर्विकल्प रसवाला वह तत्त्व है। पंचेन्द्रिय रस वह इस रसरूप नहीं, ऐसा पहले यह सिद्ध किया। दूसरे बोल पहले न लेकर यह पहले लिया। वर्णरहित और गन्धरहित, ऐसा न लेकर, पहले रसरहित (लिया)। उसका रस तो आनन्दरस है। अतीन्द्रिय आनन्द में एकाकार होना, वह उसका रस है। इन्द्रिय के विषय का रस है, वह तो उसके स्वरूप में है नहीं। आहाहा! एक-एक बोल में आत्मा को प्रसिद्ध किया है।

**काला, पीला, लाल, सफेद और हरा इस प्रकार अरूप...** यह रूप उसमें नहीं। **अर्थात् पाँच प्रकार के रूप से रहित है।** इस रूप से रहित है, अरूप सहित है। अरूप जिसका स्वरूप है। रूप जिसके स्वरूप से रहित है। अरूप जिसका स्वरूप है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि अरूप जिसका स्वरूप है। यह नास्ति से बात करते हैं न? फिर कहेंगे, चेतनागुण। चेतनागुण है न? यह अस्ति से सिद्ध किया है। यह सब नास्ति से बात करते हैं। यह नहीं, तब है क्या? यह है।

**'चेदणा'** है न? चेतना-चेतना। वह चेतना का रस है। वह चेतना का रूप है। आहाहा! इस रस और रूप से रहित चेतनारस और चेतनारूप सहित। अस्ति-नास्ति की है। आहाहा! यह बड़ी पण्डिताई से कहीं पकड़ में आये ऐसा नहीं है। आहाहा! पण्डिताई की बाहर की चीज़ कहाँ वस्तु है। यह गाथा समयसार में बहुत वर्णन की है।

**दो प्रकार की गन्ध से रहित है।** भगवान आत्मा सुगन्ध और दुर्गन्ध नामक जड़ की पर्याय से रहित है, परन्तु चेतना के आनन्द के गन्धसहित है। समझ में आया? यह गन्ध का आ गया। नहीं आया था? वह गाथा रख दी। उसमें गन्ध आया है न? वह गाथा रख दी। उसमें। वह ४३ गाथा है। ४३ है, ४३। **'उज्झसु गंधं'** ४३ है। हे भावियों! आत्मा के आनन्द को भाकर **'उज्झसु गंधं अब्भंतरं'** यह बाहर की गन्ध की वासना

जीव छोड़ दे। वह जड़ गन्ध तो नहीं परन्तु राग की वासना की गन्ध भी उसमें नहीं। समझ में आया? जिसमें जड़ गन्ध तो नहीं परन्तु विषय की वासना की गन्ध, विकार की गन्ध उसमें नहीं। उसमें नहीं, उसे छोड़। है, उसे पकड़। आहाहा! आनन्द की गन्ध जिसमें है, आनन्द का जिसमें वास है, उसकी वासना ले। आहाहा! इस गन्ध को सूँघते हैं न? आत्मा की गन्ध आनन्द है, उसे सूँघ—उसे अनुभव कर। आहाहा!

**अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों के गोचर व्यक्त नहीं है। इन्द्रियों के व्यक्त नहीं है।** ...छह बोल लिये हैं, समयसार में। अव्यक्त के छह बोल लिये हैं। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय-व्यक्त है, उससे जीव अव्यक्त है। ऐसे छह बोल लिये हैं। यह पहला है। छह द्रव्यस्वरूप लोक, एक ओर लोक और एक ओर सातवाँ आत्मा, ऐसा लिया है। सप्तम आत्मा हो जाता है। सम्यग्ज्ञान दीपिका में ऐसा लिखा है न, आत्मा सप्तम हो जाता है, छह द्रव्य से भिन्न सप्तम, गाथा है, यह उसमें से लिया है। ४९ गाथा। समयसार। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है, व्यक्त है। उससे जीव भिन्न अव्यक्त है। छह द्रव्यस्वरूप से भिन्न आत्मा है, ऐसा लिया है। छह द्रव्य में नहीं? छह द्रव्य को जानने की पर्यायवाला पूरा भिन्न तत्त्व है। ज्ञेय है न वह? छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय, यह ज्ञान। वह व्यक्त, उससे भिन्न अव्यक्त। ऐसा बोल लिया है। समझ में आया? अव्यक्त ... मात्र इन्द्रियगम्य नहीं इतना।

प्रवचनसार में, पंचास्तिकाय में, नियमसार में ... समयसार में बहुत स्पष्ट किया। दूसरा बोल आया—कषाय के समूहरूप भावकभाव व्यक्त है। कषाय अर्थात् यह पुण्य-पाप के भाव, वे सब व्यक्त हैं। उनसे जीव अव्यक्त है। समझ में आया?

तीसरा बोल—चेतना सामान्य में चेतना की सर्व व्यक्तियाँ अन्तर निमग्न है। चेतना सामान्य में चेतना की पर्याय व्यक्त आदि जो है, वह उसमें अन्तर निमग्न है। सामान्य में सभी चेतना की विशेष पर्यायें अन्तर मग्न है, इसलिए उसे अव्यक्त कहा जाता है। आहाहा! समयसार तो महासमुद्र है।

**मुमुक्षु :**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चेतना सामान्य में चेतना की विशेष व्यक्ति—अवस्थाएँ अन्तर

निमग्न हैं। एक समय की अवस्था सिवाय सभी अवस्था अन्दर मग्न है। सामान्य में विशेष भरा हुआ है। आहाहा! इसलिए उसे अव्यक्त कहा जाता है।

चौथा बोल—क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं, इसलिए अव्यक्त है। क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं। ऐसा कहते हैं कि पर्याय की क्षणिकता की व्यक्तिमात्र नहीं, इसलिए अव्यक्त है। समझ में आया? (पाँचवाँ बोल)—व्यक्त और अव्यक्त अनुभव में आने पर भी, व्यक्त को वह स्पर्शता नहीं। द्रव्य है, वह प्रगट पर्याय को स्पर्शा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? व्यक्त और अव्यक्त दोनों ज्ञान में जानने में—जनाने में आने पर भी उस व्यक्त को अव्यक्त द्रव्य स्पर्शता नहीं। द्रव्य, पर्याय को छूता नहीं; इसलिए अव्यक्त है। आहाहा!

छठवाँ बोल—व्यक्त और अव्यक्त बाह्य और अभ्यन्तर अनुभव में आने पर भी व्यक्त के प्रति उदासीन प्रद्योतमान है। बाह्य और अभ्यन्तर अनुभव में आने पर भी व्यक्त पर्याय के प्रति उदासीन है। पर्याय में वह रहता ही नहीं। द्रव्य में आ जाता है। सूक्ष्म बातें हैं, भाई! अमृतचन्द्राचार्य की टीका है न! बाह्य-अभ्यन्तर अनुभव में आने पर भी—द्रव्य और पर्याय वेदन में आने पर भी, वह पर्याय-वेदन की पर्याय के प्रति उदासीन प्रद्योतमान है। वहाँ टिकता ही नहीं। एकदम द्रव्य में जाता है। समझ में आया? यह तो सब दिगम्बर सन्तों की क्रीड़ा है। राम की क्रीड़ा जिसने लगायी है अन्दर। समझ में आया? उनके एक-एक वाक्य में बहुत गम्भीरता है।

वह इन्द्रिय से गम्य नहीं। ऊँची बात रखी है। अर्थात् कि वह वचन से आदि सबसे गम्य नहीं। और वह पूरा द्रव्य जो है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह तो अलिंगग्रहण में आता है न? १८-१९-२० बोल। २०वें में आता है। द्रव्य पर्याय को करता नहीं। पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं और द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। यह शुद्ध अनुभव की पर्याय उतना ही आत्मा। द्रव्य का अनुभव नहीं हो सकता; अनुभव तो पर्याय का ही होता है। आनन्द का, शान्ति का, वीतराग पर्याय का अनुभव होता है। वह अपने अनुभव पर्यायमात्र है, उस द्रव्य को अनुभवपर्याय छूती नहीं। सवेरे आता है न? पर्याय द्रव्य।

पर्याय और द्रव्य के प्रदेश भिन्न हैं। निहालभाई ने लिखा है। चिद्विलास में है। चिद्विलास में है। आप्तमीमांसा में है। धर्म और धर्मी दोनों निरपेक्ष तत्त्व है। धर्म और

धर्मी दोनों एकरूप नहीं। आहाहा! द्रव्य और पर्याय दो तत्त्व सत्त्व भिन्न है। बहुत सूक्ष्म बात। वीतराग का मार्ग है, बापू! ऐसी बात कहीं होती नहीं। सर्वज्ञ, वह भी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं है। आहाहा!

यह द्रव्य जो है, वह अव्यक्त है, वह व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। उसे स्पर्श करे तो द्रव्य पर्यायरूप हो जाए। और पर्याय का जो अनुभव है, पर्याय का अनुभव है, वह अनुभव द्रव्य का हो जाए, वह तो पर्याय द्रव्यरूप हो जाए और द्रव्य का अनुभव हो सकता नहीं कभी। ध्रुव का अनुभव हो सकता ही नहीं। आहाहा! द्रव्य जो ध्रुव है, उसका वेदन क्या हो? वेदन तो पर्याय का होता है। तथापि जब ध्रुव के लक्ष्य में पर्याय जाती है, तब ध्रुव को वेदन करती है, ऐसा कहने में आता है। परन्तु वेदती तो है पर्याय को। आहाहा!

(समयसार) ११वीं गाथा में आता है—ज्ञायक प्रगट होता है, ऐसा आता है न? भाई! ११वीं गाथा। ज्ञायक प्रगट होता है। ज्ञायक प्रगटे क्या? ज्ञायक तो ज्ञायक ही है, ध्रुव है। परन्तु पर्याय में उसका भान हुआ, इसलिए ज्ञायक प्रगट हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा बहुत सूक्ष्म मार्ग है, भाई! इसका मार्ग बहुत सूक्ष्म। यह बाहर की पण्डिताई और बाहर की प्रवृत्ति से कहीं पता खाये, ऐसा नहीं है। दुनिया बहुत महिमा करे, इसकी महिमा करे, इससे इसे हाथ आ जाए, ऐसी चीज़ नहीं है।

**इन्द्रियों के गोचर व्यक्त नहीं है।** इतना अर्थ किया। वहाँ इतने अर्थ किये। आहाहा! वहाँ तो यह अर्थ सिद्ध किया है। व्यक्त को स्पर्श नहीं करता, ऐसा अर्थ वहाँ किया है। अव्यक्त है, वह व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। द्रव्य है, वह पर्याय को नहीं छूता। आहाहा! ध्रुव है, वह ध्रुव में रहता है। ध्रुव, वह कहीं पर्याय में नहीं आता। आहाहा! और पर्याय जो है, एक समय का वेदन, वह (पर्याय) कहीं ध्रुव में नहीं जाती, ध्रुव को वेदती नहीं, ध्रुव को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! ऐई! शान्तिभाई! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है। तुम्हारे हीरा-माणिक में बहुत खोज करे ऐसे और वैसे। सब धूल की बातें हैं। यह तो चैतन्यरत्न भगवान। भाषा समझ में आती है? भाई! तुम्हारे पिताजी को कहा। आहाहा!

अव्यक्त है, भगवान अव्यक्त है। अर्थात् कि पर्याय में नहीं आता। क्योंकि राग

और पर से ज्ञात नहीं होता। आहाहा! तथा उस अव्यक्त में व्यक्त की सभी पर्यायें अन्तरमग्न हैं। आहाहा! जल की तरंग जल में समाती है। जल... जल, उसकी तरंग। उसकी पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह व्यय होने पर उसमें समा जाती है। आहाहा! उत्पन्न हुई निर्मल पर्याय या अरे! मलिन हो। जल की तरंग जल में समाती है। वे पर्यायें उत्पन्न हुई, व्यय होने पर सामान्य में समा जाती है। आहाहा! जो पर्याय व्यक्तरूप से उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकरूप कहलाती थी, जो पर्याय प्रगटरूप से वर्तने से उसे— विकारी को उदय कहा जाता था, निर्मल को उपशम कहा जाता था, क्षयोपशम कहा जाता था, वहाँ निर्मल और उदय को, क्षायिक कही जाती निर्मल पर्याय को। वह पर्याय अन्तरमग्न होने पर उसे पारिणामिकभाव कहा जाता है। पाटनीजी! यह सब अव्यक्त का चलता है। बापू! यह मार्ग अलग, भाई! यह चैतन्यसमुद्र... आहाहा! यह नास्ति से बात की।

**चेतना गुणवाला है,...** यह अस्ति से बात की। आहाहा! चेतना की पर्यायें जितनी है, वे अन्दर चेतनागुण में लीन है। आहाहा! अरे! भाई! तेरी चीज़ को तू जानने का प्रयत्न तो कर कि यह क्या है? दूसरे सब प्रयत्न करके मर गया। शास्त्र को जानना, ग्यारह अंग और नौ पूर्व। ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा। थोथा निकला। आहाहा! जिसमें अपना द्रव्य जो अव्यक्त है, उसे नहीं जाना (तो) वह ग्यारह अंग और नौ पूर्व सब बन्ध के कारण हुए। अबन्ध ऐसा जो भगवान अव्यक्त आत्मा, उसके ज्ञान और श्रद्धा के अन्तर्मुख के भान बिना वे सब निरर्थक गये। उसकी महत्ता की महिमा को तूने जाना नहीं। भगवान आत्मा की अव्यक्त जो महिमा है, उतनी रीति से उसे महिमा को महिमारूप से नहीं जाना। आहाहा! और इसे किसी प्रकार से हीन, पर्यायवाला, राग से ज्ञात हो, इससे ज्ञात हो, ऐसी उसकी महिमा को तूने कलंक लगाया। समझ में आया? वह तो अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! यह अलिंगग्रहण का बोल है। भगवान आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। उसे तूने दूसरे प्रकार से माना, यह कलंक लगाया। समझ में आया? आहाहा! यह हड़ताल है आज। यहाँ खिलवट है आज। ऐई! उल्टा होवे न जगत से? आहाहा!

**मुमुक्षु :** यहाँ राग की हड़ताल है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** राग की हड़ताल है। स्वभाव की जागृति है। भगवान! तू

कितना ? इतना और ऐसा। इतना। उसमें कुछ भी यदि कम, अधिक या विपरीत माना... कलंक लगाया। आहाहा! पाटनीजी! आहाहा! अरेरे! ऐसी बातें सुनने को मिली नहीं। वह कब विचार में जाए और कब अन्तर में उतरने की पद्धति को जाने ? आहाहा! वाद-विवाद करके खोटा... अरे! भगवान! जैनधर्म है, भाई! स्वरूप में जाना कठिन बात है। और उसमें गये बिना उसकी प्राप्ति कभी होगी ? राग में रहे, पर्यायबुद्धि में रहे, उसकी प्राप्ति नहीं होगी। समझ में आया ? ऐसी बात है। फिर विवाद करे और यह करे।

यह देखो न, २४-२५ की है न ? कौन कहता था ? पण्डितजी कहते थे। ... तुम्हारे ... सलूम्बर को ? उदयपुर सलूम्बर की अरे! सलूम्बर! भगवान वह वस्तु है वह जगत की। यह मार्ग कोई अलग प्रकार का है। यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है।

यह भगवान आत्मा... यहाँ तो कहते हैं कि चेतनागुणवाला है। आहाहा! यह चेतनागुण, यह अस्ति से सिद्ध किया। यह तो चेतनागुणस्वरूप भगवान है। यह सब रहित है। स्पर्श, गन्ध, रस, रंग से रहित है। इस सहित है। जाणक स्वभाव। चेतना स्वभाव से सहित स्वरूप है। यह अस्ति तत्त्व की अन्दर अनुभव में प्रतीति आना, उसे यहाँ परमात्मा सम्यग्दर्शन कहते हैं।

**अशब्द...** आहाहा! भगवान आत्मा में शब्द नहीं है। शब्द की उत्पत्ति का वह स्थान नहीं है। शब्द की ध्वनि उठती है, इसका वह क्षेत्र नहीं है। आहाहा! उसमें शब्द पके, ऐसा वह क्षेत्र नहीं है। शब्दातीत बात है। भगवान आत्मा अशब्द है। शब्दरहित है। उसके बदले वापस वे... आता है न ? यह चर्चा में आता है, भाई! ज्ञान का कार्य, वह शब्द। एक शब्द आता है। भाषा, वह ज्ञान का कार्य है। ज्ञान में नित्यपना गिनकर भाषा को कार्य उपचार से कहा है। पाठ में है। धवल में है। आहाहा! ज्ञान का कार्य प्रभु! ज्ञान का कार्य तो ज्ञान की पर्याय होता है। ज्ञान का कार्य वाणी होगा ? ज्ञान का कार्य राग होगा ? यह शब्द छिपाकर उसने चर्चा की थी। ... क्या हो ? वाणी का कारण... परन्तु निमित्तरूप से ज्ञान है न केवलज्ञान ? इसलिए ऐसा कहा है। बाकी ज्ञान का कार्य वाणी ? आहाहा! शब्द... ऐसे भगवान के वाक्य जहाँ हो और उसे यथार्थ मानकर अर्थ करे,

भाई! ऐसा नहीं होता। किस नय का वाक्य है और नय को जोड़कर अर्थ होता है।

शास्त्र का कोई भी शब्द है, उसका शब्दार्थ हो, आगमार्थ हो तो आगम की रीति उसका क्या अर्थ है? और अन्यमति की अपेक्षा से उसका क्या अभाव है इसमें? नय की अपेक्षा से किस नय का यह (कथन है)? असद्भूतव्यवहारनय का वाक्य है? सद्भूतव्यवहार का है? उपचरित का है? अशुद्ध निश्चय का है? या शुद्ध निश्चय का है? ऐसे प्रत्येक शब्द में नय लगाकर अर्थ करना चाहिए। तत्पश्चात् अन्त में तात्पर्य लेना चाहिए। वहाँ पाँच अर्थ किये हैं। समयसार, द्रव्यसंग्रह। प्रत्येक शब्द के पाँच-पाँच बोल से अर्थ करे। आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह निर्णय करने के लिये निवृत्त कौन है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निवृत्त कौन है? आहाहा! द्रव्यसंग्रह में, समयसार में, पंचास्तिकाय में कहा है। शब्दार्थ, आगमार्थ, मतार्थ, नयार्थ, तात्पर्य—भावार्थ पाँच बोल हैं। प्रभु! यह तो काम करना हो, उसे तो यह सब निर्णय करना पड़ेगा। एक पक्ष में खड़े रहकर बात करे, यह नहीं चलता। आचार्यों ने किस नय से यह कहा है? ऐसे नय का वाच्य क्या है? किस नय से, ऐसा निर्णय करना पड़ेगा। आचार्यों ने कहा है, इसलिए यह सच्चा, लो! परन्तु किस नय से कहा है? आहाहा! यह अपेक्षा जाने बिना सत्य का असत्य हो जाएगा, असत्य का सत्य हो जाएगा।

**अलिंगग्रहण अर्थात् जिसका कोई चिह्न इन्द्रिय द्वारा ग्रहण में नहीं आता है।** बीस बोल लिये हैं। प्रवचनसार के एक अलिंगग्रहण के बीस बोल लिये है। अव्यक्त के छह हैं। समयसार में अलिंगग्रहण का एक ही वाक्य है। अमृतचन्द्राचार्य स्वयं टीकाकार हैं न? आहाहा! ... इन्द्रिय द्वारा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह तो स्वभाव द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। विकल्प द्वारा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। बीस बोल हैं। वह प्रकाशित हो गये हैं अपने अलिंगग्रहण पुस्तक में।

**अनिर्दिष्ट संस्थान अर्थात् चोकोर-गोल आदि कुछ आकार उसका कहा नहीं जाता है,...** उसका आकार क्या? जड़ के आकार से उसे क्या कहना? वह आकार नहीं। द्रव्य है, इसलिए प्रदेशगुण के कारण से उसका आकार होता है। अरूपी

को भी आकार तो है। यह चौकोर इसका आकार उसमें नहीं। वस्तु है न? वस्तु है, वह आकार बिना की होती ही नहीं। अरूपी आकार हो या रूपी आकार, आकाश को भी आकार है न। सर्व व्यापक आकाश, तो भी प्रदेशगुण के कारण से द्रव्य का वह आकार होता ही है। गजब बातें! सर्व व्यापक को आकार कहना। जहाँ कहीं अन्त नहीं, वहाँ उसे आकार, तथापि उसे प्रदेशगुण के कारण से द्रव्य में आकार तो होता है। अरूपी, तथापि उसे आकार अरूपी का होता है। यह रूपी का आकार नहीं होता। आहाहा! **इस प्रकार जीव जानो।** लो! आचार्य महाराज का वचन है न? '**जाण**' है न? '**जाण**' है न इस प्रकार से जान। आहाहा! ऐसा आत्मा है।

**अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।**
**जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।**

जीव को जान। ऐसा जीव है, उसे पहिचान। उसकी पहिचान में खान तुझे पहिचानने में आयेगी। खान पूरी निधान में तुझे पहिचान होगी। आहाहा! ओळखाण कहते हैं न? आहाहा! तुझे उसमें सब बहुत ज्ञात होगा। तुझे पूरे सिद्धान्त के हल उसमें से निकलेंगे। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सिद्धान्त को भगवान को परमात्मा को क्या कहना है, वह ऐसे जीव को जान तो तुझे सब हल हो जाएगा। 'सब आगमभेद सु उर बसे।' श्रीमद् कहते हैं न? 'सब आगमभेद सु उर बसे' सम्यग्ज्ञान होने पर, जीव का भान होने पर सब आगम भेद उसके उर में—हृदय में, सब भास हो जाता है। आहाहा! ऐसे आत्मा को जान। भावार्थ कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**माघ शुक्ल ०३, शनिवार, दिनांक-२६-०१-१९७४**
**गाथा - ६४ से ६७, प्रवचन-९९**

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। गाथा ६४ का भावार्थ। आत्मा अरस, अगन्ध ऐसा जो कहा, उसका स्पष्टीकरण है।

**भावार्थ – रस, रूप, गन्ध, शब्द ये तो पुद्गल के गुण हैं,...** पुद्गल के गुण हैं। **इनका निषेधरूप जीव कहा,...** इनके अभावरूप जीव कहा। रस, गन्ध आदि जो सात हैं। **अव्यक्त अलिंगग्रहण अनिर्दिष्टसंस्थान कहा, इस प्रकार ये भी पुद्गल के स्वभाव की अपेक्षा से निषेधरूप ही जीव कहा...** अलिंगग्रहण में इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं, ऐसा लिया है न? वह भी पुद्गल से अभावरूप उसका वर्णन किया है। **और चेतना गुण कहा तो यह जीव का विधिरूप कहा।** विधि—जीव चेतनस्वरूप है। वह रस, गन्ध, आदि अव्यक्त, अनिर्दिष्टसंस्थान, पुद्गलस्वभावरूप नहीं है।

**निषेध अपेक्षा तो वचन के अगोचर जानना और विधि अपेक्षा स्वसंवेदन गोचर जानना।** .. अभावस्वरूप है उसमें से ... स्वस्वरूप विधि है। वह स्वसंवेदनरूप है। अर्थात् ज्ञान से प्रत्यक्ष ज्ञान ज्ञात हो, ऐसी विधि चीज़ है। अस्तिरूप चेतनागुण अस्तिरूप स्वभाव, उस अस्ति के स्ववेदन से जानने में आवे, ऐसा है। समझ में आया? **इस प्रकार जीव का स्वरूप जानकर अनुभवगोचर करना।** जीव का स्वरूप जानकर अनुभवगम्य करना। पश्चात् तो यह पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। समयसार में और इस गाथा में डाला है, वह पण्डित जयचन्द्रजी की बात नहीं है। वे लिखनेवाले हैं।

★★★

## गाथा - ६५

**आगे जीव का स्वभाव...** इसमें यह नहीं डालना चाहिए। पण्डित जयचन्द्रजी बात में किसी के घर की बात नहीं डालना चाहिए। पण्डित जयचन्द्रजी का जितना है, उतना डालना चाहिए। दूसरी बात है यह। पण्डित जयचन्द्रजी का लेखन है, ऐसा हो जाए। पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है ? लिखनेवाले ने लिखा है।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... डालना हो तो भी यह ... पण्डित जयचन्द्रजी ने डाला नहीं।

**मुमुक्षु :** निश्चय से कहा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निश्चय से कहा जा सकता है कि अभावरूप स्वभाव यह किस प्रकार से ? वह किस प्रकार से है, यह ख्याल में, वेदन में आ नहीं सकता, ऐसा कहना है। अस्ति है, वह वेदन में आ सके, ऐसा कहते हैं। अभावरूप है, वह वेदन से ही ... ऐसा। ... पण्डित जयचन्द्रजी ने ....

**आगे जीव का स्वभाव ज्ञानस्वरूप भावना कहा,...** भावना कहा, **वह ज्ञान कितने प्रकार का भाना यह कहते हैं –** यह व्यवहार से अर्थ कहते हैं।

**भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।**
**भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणो होइ।।६५।।**

**अर्थ – हे भव्यजन!** आचार्य महाराज कहते हैं न, **'भावहि'** सम्बोधन करते हैं न ? **तू यह ज्ञान पाँच प्रकार से भा,...** यद्यपि ज्ञान की पर्याय में भेद है, उसे भाने में तो ऐसा होता है इतना भाव, ऐसा कहते हैं। फिर कोई पाँच प्रकार के भेद से कहीं भावना नहीं होती। ज्ञानस्वरूप भगवान एकरूप है, उसकी एकाग्रता होती है। यहाँ अज्ञान के नाश की अपेक्षा लेकर ज्ञान की पाँच प्रकार की भावना करे, ऐसा कहा गया है। **कैसा है यह ज्ञान ? अज्ञान का नाश करनेवाला है,...** ऐसा कहना है न साथ में ? मतिअज्ञानादि का नाश मतिज्ञान से होता है। श्रुत अज्ञान का नाश श्रुतज्ञान से होता है, इत्यादि पाँच ज्ञान की भावना से अज्ञान का नाश होता है।

**कैसा होकर भा ? भावना से भावित जो भाव उससहित भा,...** अर्थात् स्वरूप

जो ज्ञानस्वरूप चैतन्य है, उसकी एकाग्रता की भावना, उससे भायी ऐसा जो भाव निर्मल पर्याय शुद्ध, चैतन्यसन्मुख की निर्मल पर्याय का भाव, उससहित भा। उससहित भावना रख। आहाहा! ज्ञायकस्वभाव सन्मुख का एकाग्रपनासहित भावना भा। अकेली कल्पना से, चिन्तवना से, ऐसा नहीं। **शीघ्र भा,...** पाठ शीघ्र है न? आहाहा! आनन्द भगवान ज्ञानस्वरूप की अन्तर की एकाग्रता शीघ्र से कर। विलम्ब न कर। आहाहा! अन्तर्मुख होने का शीघ्र कर, ऐसा कहते हैं। चैतन्यस्वरूप से भरपूर भण्डार भगवान, उसमें एकाग्रता के लिये शीघ्र कर, ऐसा कहते हैं।

**इससे तू दिव (स्वर्ग) और शिव (मोक्ष) का पात्र होगा।** ... ज्ञान की पाँच भावना का भेद किया है न? उसके भेद में विकल्प भी रहता है और अभेद में निर्विकल्प रहता है। वह विकल्प जो है, उससे पुण्य बँधता है। अभेद भावना से संवर और निर्जरा होती है। उससे तू स्वर्ग और **मोक्ष का पात्र होगा।** भावार्थ है पण्डित जयचन्द्रजी का।

**भावार्थ – यद्यपि ज्ञान जानने के स्वभाव से एक प्रकार का है...** जानने के स्वभाव की अपेक्षा से वह ज्ञान एक ही प्रकार का है। जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... उसमें यह मति और श्रुत (ऐसे भेद) जानना, उसमें नहीं आते। **तो भी कर्म के क्षयोपशम और क्षय की अपेक्षा पाँच प्रकार का है।** निमित्त की प्रधानता से कथन ले तो उसके पाँच प्रकार ज्ञान के पड़ते हैं। **उसमें मिथ्यात्वभाव की अपेक्षा से मति, श्रुत और अवधि ये तीन मिथ्याज्ञान...** विपरीत मान्यता की भावना से हुए मति, श्रुत, अवधि यह मिथ्याज्ञान है। **इसलिए मिथ्याज्ञान का अभाव करने के लिए मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञानस्वरूप पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान जानकर उनको भाना।** अन्तर्मुख होकर मति-श्रुतादि की भावना कर, ऐसा कहते हैं। **परमार्थ विचार से ज्ञान एक ही प्रकार का है।** भेद से विचार है, वह तो अभी विकल्पवाला भाव है, पाँच प्रकार के ज्ञान का। इसलिए अन्तर में ज्ञान की एकता स्वभाव की भावना, वह वास्तविक एकरूप ज्ञान है। **परमार्थ विचार से ज्ञान एक ही प्रकार का है।**

★ ★ ★

गाथा - ६६

**आगे कहते हैं कि पढ़ना-सुनना भी भाव बिना कुछ नहीं है –** भाव अर्थात् सम्यग्दर्शन। शुद्ध स्वरूप का अनुभव होकर प्रतीति, उसका जो भाव—सम्यग्दर्शन, उसे जिनभावना कहते हैं। इन गाथाओं में उसे जिनभावना कहते हैं। सम्यग्दर्शन को जिनभावना कहते हैं कि जो अनन्त काल में उसे हुआ नहीं, की नहीं। ऐसा जो जिनस्वरूप अपना भगवान, उसकी श्रद्धा, निर्विकल्प उसका अनुभव, ऐसे सम्यग्दर्शन के भावसहित **पढ़ना-सुनना भी भाव बिना कुछ नहीं है –** ऐसे सम्यग्दर्शन बिना पढ़े या सुने, उसमें कुछ आत्मा को लाभ नहीं है, ऐसा कहते हैं।

**पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण।**
**भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं।।६६।।**

**अर्थ – भावरहित...** सम्यग्दर्शन जो मूल भाव। चैतन्य की परिपूर्ण सत्ता का स्वीकार और सन्मुख होकर प्रतीति, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसके बिना **पढ़ने-सुनने से क्या होता है?** पढ़े तो भी क्या? कहते हैं। **'पढिएण वि किं'** ऐसा है न? **पढ़ने-सुनने से क्या होता है?** अन्दर सम्यग्दर्शन ही जहाँ नहीं। स्वभाव परिपूर्ण की अन्तर दृष्टि के अनुभवसहित जिनपने की वीतरागता जहाँ प्रगट नहीं हुई और वीतराग भावना के अतिरिक्त **'पढिएण वि किं'** पढ़े, उसमें क्या? कहते हैं। ग्यारह अंग, नौ पूर्व। ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा परन्तु मूल चीज़ वस्तु का स्वभाव वीतरागपना, उसकी पर्याय में वीतरागता प्रगट न हुई। उस वीतरागता के भावप्रधान बिना पढ़कर क्या करेगा? ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन बिना तेरा पढ़ना निरर्थक है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार से आवे परन्तु परमार्थ की दृष्टि बिना (निरर्थक है)। वस्तु तो यह है। किया नहीं। करना तो यह था। आहाहा! सुनकर करने का तो यह था।

यह परम परमात्मस्वरूप की प्रतीति, अनुभव और ज्ञान, उसका करना था। आहाहा!

यह यदि नहीं हुआ तो **पढ़ने-सुनने से क्या होता है?** सुनने से क्या होगा? 'सुन-सुन करके फूटे कान...' नहीं आता? 'तो भी नहीं आया ब्रह्म ज्ञान।' अन्यमत में यह आता है। भजन में आता है। 'सुनकर सुनकर फूटे कान, तो भी न आया हरि का भान।' ब्रह्म का ज्ञान, ब्रह्म। ... यह तो वास्तविक भगवान आत्मा पूर्णानन्द जो सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा आत्मा दृष्टि में, जिनभावना में लिया नहीं और उसके बिना उसे पढ़ना और सुनना, सब निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। ऐसे तो कबीर आदि दूसरे सब भले कहे, परन्तु उसे कुछ वस्तुस्थिति की खबर नहीं। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ, देखा हुआ आत्मा, वह आत्मा असंख्य प्रदेशी, वह आत्मा अन्यत्र कहीं नहीं होता। कबीर या नरसिंह मेहता जो बातें करते हैं,... 'ज्या लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' इसलिए जरा उदाहरणरूप से कहा जाता है। उदाहरण तो कहा था न? भक्तामर में नहीं? बृहस्पति को ... ऐसा कहा जाता है। यह तो अन्यमति की बात है। उदाहरणरूप से कहकर सिद्धान्त सिद्ध करना हो तो कहा जाता है। सर्वज्ञ ने देखे हुए इस आत्मा की बात उनके पास है ही नहीं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं। वह तो असंख्य प्रदेश। यह बात है नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं है।

एक आत्मा असंख्य प्रदेश जिसकी भूमिका, उसमें प्रदेश में एक-एक में अनन्त गुण व्याप्त हैं। ऐसा जो क्षेत्र, ऐसा जो भाव, उसका एकरूप ऐसा जो द्रव्य, उसकी अन्तर जिनभावना, सम्यग्दर्शन की भावना, भावना शब्द से चिन्तवना ऐसा नहीं, यहाँ तो एकाग्रता है। सम्यग्दर्शन की चारित्र की अन्तर में एकाग्रता। निर्विकल्प दृष्टि भिन्न भावना में है। थोड़ा परन्तु बहुत समाहित किया है। महाप्रभु पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा के सन्मुख की एकाग्रता, वह सम्यग्दर्शन जिनभावना कही जाती है। इसके बिना तेरा पढ़ना और सुनना किस काम का? वह सब दुनिया में दिखाव के लिये है, ऐसा कहते हैं। तेरे आत्मा के हित के लिये नहीं है। आहाहा!

**पढ़ने-सुनने से क्या होता है? अर्थात् कुछ भी कार्यकारी नहीं है,...** आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन के संस्कार नहीं पड़े, कहते हैं। ... संस्कार जिनभावना के संस्कार हैं। उस भावना बिना सब सुनना, ... श्रावक का, मुनिपना पंचाचार... **इसलिए श्रावकत्व तथा मुनित्व इनका कारणभूत भाव ही है।** यह सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। श्रावकपना, मुनिपना का मूलकारण तो सम्यग्दर्शन है। आहाहा! इस वस्तु की प्रतीति और वस्तु कैसी है, इसकी खबर न हो तो श्रावकपना और मुनिपना आया कहाँ से? उसका मूल तो सम्यग्दर्शन है। परन्तु मूल नहीं और फिर यह सब व्रत, तप, त्याग और प्रतिमा आयी कहाँ से? कहते हैं।

**भावार्थ - मोक्षमार्ग में एकदेश, सर्वदेश व्रतों की प्रवृत्तिरूप...** एकदेश श्रावक और सर्वदेश मुनि, **उन दोनों का कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव हैं।** देखो! स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं। पण्डित जयचन्द्र। निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय, हों! व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह कोई वस्तु नहीं; व्यवहार ज्ञान, वह कोई ज्ञान नहीं; व्यवहार व्रत, वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! भावपाहुड़ है न? शुद्धस्वरूप परमात्मा की एकाग्रता का सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान-उसका ज्ञान—आत्मा का, उसमें रमणता ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना, इस भाव बिना **दोनों का कारणभूत...** श्रावक और मुनि को कारणभूत तो यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान है। व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका कारण है, ऐसा यहाँ नहीं कहा। व्यवहार है, करते हैं। वह तो निश्चयचारित्र जहाँ तक प्राप्त न हो, वहाँ तक व्यवहारचारित्र करना और व्यवहारचारित्र करने से निश्चय होगा। यह वस्तु वीतराग के घर की नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जिसे भगवान परमानन्दस्वरूप, जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ ही जहाँ दृष्टि और ज्ञान में नहीं आयी तो वह स्थिर किसमें होगा? स्थिर होना अर्थात् चारित्र। जिस चीज़ की वस्तु जो है, उसमें स्थिर होना है परन्तु वह वस्तु कैसी है, कैसे है, यह दृष्टि में-अनुभव में आयी नहीं। उसमें स्थिर होना नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन चीज़ क्या है ... उसके माहात्म्य की खबर नहीं। बाहर की बातों में सब दौड़ गये हैं। मुनिपना, प्रतिमा ले ली, वस्त्र बदले और आठ प्रतिमा, दस प्रतिमा, ग्यारह प्रतिमा, अधिक ली। उसे भान कहाँ है प्रतिमा क्या कहलाती है?

**मुमुक्षु :** उसमें से....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कार्य करने का क्या है? वस्तु है, ऐसी श्रद्धा करना, उसमें पुरुषार्थ है। पश्चात् अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। जैसी चीज़ है, वैसी चीज़ का पहले विकल्पसहित श्रद्धा, उसकी विकल्पसहित श्रद्धा (हो) वह ... तथापि वह श्रद्धा भी यथार्थ नहीं है। पहले आवे अवश्य। आहाहा!

आता है, (समयसार) कर्ता-कर्म १४४ गाथा में कहा है न? पहली, चीज़ ज्ञानस्वरूप है, ऐसा विकल्प से निर्णय करे। १४४ गाथा, कर्ता-कर्म में आया है। जैसी वस्तु है, ऐसी रागमिश्रित विचार में उसे उस जाति का भास तो पहले आना चाहिए, तथापि उस वस्तु से अन्दर अनुभव हो, ऐसा नहीं है। तथा अनुभव होने से पहले ऐसा आये बिना रहता नहीं। ऐसी बात है। १३वीं गाथा में कहा है न? नय, निश्चय, प्रमाण से आत्मा को जानना। यह विकल्प सहित की बात है। १३वीं गाथा, समयसार। **'भूदत्थेणाभिगदा'** भावमिश्रित विचार की भूमिका में नय से, निश्चय से, व्यवहार से, प्रमाण से, निक्षेप से, ज्ञेय के भेद निक्षेप हैं, ज्ञान के भेद नय हैं। ज्ञेय के भेद, वह निक्षेप है। ज्ञान के भेद, नय हैं। उनसे बराबर वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा उसे विकल्पसहित भूमिका में जानना। तथापि वह अभूतार्थ है। वस्तु की दृष्टि करने पर, अनुभव करने पर वे सब नय और निक्षेप और प्रमाण से वस्तु का विकल्प है, वह जो नय को कहा, वह सब अभूतार्थ है। आहाहा! झूठा है।

**मुमुक्षु :** अभूतार्थ में कुछ लगता नहीं, झूठा में लगता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभूतार्थ कहो या असत्य कहो। अभूत—असत्य। असत्य अर्थात् झूठा। ... ... अभूतार्थ कहते हैं। पर्यायमात्र अभूतार्थ है।

**मुमुक्षु :** अभूतार्थ कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** असत्यार्थ कहते हैं, झूठी कहते हैं। वस्तु स्वभाव त्रिकाल, वही सत्यार्थ है। इस अपेक्षा से पर्यायमात्र असत्यार्थ है। इस अपेक्षा से, हों! पर्याय अपेक्षा से पर्याय सत्यार्थ है। त्रिकाल सत्यार्थ की अपेक्षा से वह पर्याय असत्यार्थ है। चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय हो, वह भी असत्यार्थ है। आहाहा! सत्यार्थ, भूतार्थ एक

त्रिकाली ध्रुव स्वभाव एक ही सत्यार्थ है। ... भेद पड़ा, व्यवहार हो गया। जैनदर्शन बहुत सूक्ष्म। लोगों ने बाहर से माना है, ऐसा वह जैनदर्शन नहीं है। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं, वस्तु का स्वरूप है। वस्तु का स्वरूप ...

यहाँ तो कहते हैं, **उन दोनों का कारणभूत...** श्रावक और मुनिपना। उनका मूलकारण तो **कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव हैं।** आहाहा! सम्यग्दर्शन निश्चय ज्ञानादि हुए नहीं और श्रावक और मुनिपना नाम धरावे। धराओ, बिना अंक के शून्य हैं। शून्य-शून्य। **भाव बिना व्रतक्रिया की कथनी कुछ कार्यकारी नहीं है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान और स्वरूप का आचरण ऐसा निश्चय भाव, जो शुद्धभाव, उसके बिना व्रतादि की क्रिया कुछ भी कार्यकारी नहीं है। **व्रतक्रिया की कथनी कुछ कार्यकारी नहीं है,...** वह तो कथनी है। पंच महाव्रत और बारह व्रत और कथनमात्र के व्यवहार हैं। आहाहा! वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा!

अनन्त-अनन्त सागरोपम सातवें नरक में रहा। वहाँ ३३ सागर का आयुष्य। उस ३३ सागर में तो एक सागर में तो दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। और एक पल्योपम में असंख्य भाग में असंख्य वर्ष जाते हैं। चौबीसी तो दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम। एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की एक चौबीसी। ऐसे-ऐसे अनन्त सागरोपम ... रहा। बाहर के मान और अभिमान में, बाहर में महत्ता दी, वह सब भूल गया। अनन्त सागर कैसे जाते हैं? आहाहा! इस मिथ्यात्व के कारण यह सब हुआ, कहते हैं।

मुनि हुआ, नौवें ग्रैवेयक जाए ऐसा। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' यह पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण यह दुःखरूप है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' तब यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, यह सुख नहीं; यह तो दुःख है। आहाहा! सातवें नरक के दुःख भोगे और ऐसे नौवें ग्रैवेयक जाने के ऐसे पंच महाव्रतादि की भाव के दुःख भोगे। आहाहा! उस दुःख से रहित होने का मूार्ग तो भगवान पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर में सन्मुख होकर प्रतीति और ज्ञान के संस्कार सम्यग्दर्शन के पड़ना... इस बिना व्रत क्रिया **कुछ कार्यकारी नहीं है,...** व्रत की क्रिया कथनी तो ऐसी है, इसके व्रत ऐसे हैं, इसके अतिचार ऐसे... परन्तु मूल बिना? निरतिचार

व्रत पालते हैं। व्रत में दोष नहीं लगने देते। यह सब कथनी किस काम की तेरे? आहाहा! जिसमें परम आनन्द का नाथ हाथ न आया और ऐसे दुःख के परिणाम को पकड़कर बैठा। आहाहा! ....भाई! ऐसी बातें हैं। सब पैसेवाले को चैन नहीं, ऐसा कहते हैं। दुःखी है। व्रतधारी दुःखी है। तो पैसेवाले बहुत दुःखी। आहाहा! व्रत और तप के भाव सब दुःखरूप है। शुभराग है न, वह विकल्प है। आहाहा! तो यह और पैसा और इज्जत के धनी होकर सुखी होकर बैठे, मूढ़ है। दुःख में जल गये हैं, दुःख में जल गये हैं।

पंचास्तिकाय में कहते हैं न? कषाय के अंगारों में स्वर्ग के देव जल रहे हैं। आहाहा! उसकी सुविधा का पार नहीं। कषाय के भाव से सुलग रहे हैं। उन्हें भगवान आत्मा अकषायस्वरूप शान्तरस का कन्द प्रभु वीतरागमूर्ति आत्मा की जिसे दृष्टि सम्यक् नहीं है, उसे यह सब व्रत, क्रिया आदि की कथनी, उपवास की कथनियाँ निरर्थक है। आहाहा! भावपाहुड़ है न? भाव में सम्यग्दर्शन भाव, शुद्धभाव (लेना है) ऐसे शुद्ध भाव के भान बिना यह सब निरर्थक है। दुनिया के दिखाव के लिये भले दुनिया करे और देखनेवाला उसे बहुत आगे बढ़ा है, धर्म करता है, ऐसा कहे, वह कोई वस्तु नहीं है।

**इसलिए ऐसा उपदेश है कि भाव बिना पढ़ने-सुनने आदि से क्या होता है?** शास्त्र पढ़े और वाँचन करे। सात-सात घण्टे तक सुने। उससे क्या? कर्ता-कर्म में तो यहाँ तक लिया है कि मैं निश्चय से एक अबद्ध हूँ और व्यवहार से बद्ध हूँ। निश्चय से त्रिकाल शुद्ध हूँ, पर्याय से अशुद्ध हूँ—ऐसे विकल्प से क्या है? ऐसे विकल्प से तुझे क्या लाभ? उससे क्या? यहाँ तक आया, उससे क्या? आहाहा! मैं शुद्ध हूँ, पूर्ण हूँ, अबद्ध हूँ ऐसा जो विकल्प, वहाँ तक आया, उससे क्या? ऐसा कहते हैं। क्योंकि तब तक विकल्प का कर्तापना खड़ा है। विकल्प, वह कार्य और उसका मैं कर्ता, यह मिथ्यात्वभाव खड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसलिए ही समझ में नहीं आता। सुनने में ध्यान रखो। सच्ची नहीं। सच्ची तो निर्विकल्प दृष्टि करे, तब सच्ची हो। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! ... भाई! वीतराग का मार्ग सुनना ही कठिन है। दुनिया ने मान रखा है और वह ठीक, ऐसा नहीं है। यह विकल्प से (हुआ) निर्णय, वह भी सच्चा निर्णय नहीं

है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तक तो अनन्त बार आया है, कहते हैं। भाई! तेरे घर में तू आया नहीं। वह भी सब बाहर की बातें हैं। आहाहा! मैं शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ—ऐसा जो विकल्प है, उसका कार्य और कर्तापना, वह सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सुनो। प्रश्न करने की अपेक्षा सुनने में ध्यान रखे तो सब स्पष्टीकरण (आता है)। यह मार्ग अलग, बापू!

यह भगवान आत्मा... कहते हैं कि विकल्प से सच्चा यह है... सच्चा यह है, ऐसा करे तो वह भी सच्चा नहीं। और राग स्वयं खोटा है। राग उसके स्वभाव में नहीं है और उसके द्वारा निर्णय किया, वह सच्चा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का, भाई! प्रभु का अर्थात् तेरा, ऐसा। देखो न! आचार्य कहते हैं। ओहोहो! एक ओर कहे कि ... सुनो। **'वोचच्छामि समयपाहुडम्'** कहते हैं न? सुनो। यहाँ कहते हैं कि परन्तु इस सम्यग्दर्शन बिना तेरा सुनना (निरर्थक है)। आहाहा! जो सन्मुख दृष्टि की नहीं, जो भगवान परमात्मस्वरूप पूर्ण ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, जिसकी सिद्ध की पर्याय से भी अनन्तगुणा जिसका माहात्म्य है, ऐसे माहात्म्यवन्त पदार्थ के सन्मुख देखा नहीं और उससे विमुख होकर सुनना और पढ़ना, वह सब तेरा निरर्थक है। आहाहा! समझ में आया?

दुनिया तुम्हें अच्छा कहेगी, दुनिया में सामने तो करेंगे। दुनिया में न? वह बहिरात्मा है। आहाहा! यह पढ़कर हम पढ़े और हमें आता है और सुनकर हमें आया, यह सब अभिमान है ... क्योंकि जानपना तो प्रभु ने उसे कहा है कि पूर्णानन्दस्वरूप भगवान की अन्तर में सन्मुख होकर प्रतीति में लिया, ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाया, उसे सच्चा ज्ञान और सच्ची श्रद्धा कहते हैं। भले दूसरा जानपना कम हो, समझाना भी न आवे... समझ में आया? सभारंजन करना न आवे, उससे क्या? और सभारंजन करना आया, उससे क्या? आहाहा! प्रभु! तेरा आत्मा पूर्णानन्दसहित है। उसका तुझे विश्वास निर्विकल्प श्रद्धा में आया नहीं, तब क्या...? कुन्दकुन्दाचार्य की करुणा, उनकी करुणा का स्रोत बहता है। आहाहा! व्रत से क्या हुआ? और पढ़ने-गुणने से क्या हुआ? दो हुआ न? पहले में पढ़ने-गुणने से कहा था। दूसरे में 'लळूळफजूळफडळजैं' भावकारणभूत। तो इस भाव बिना तेरा व्रत और तप का क्या हुआ? दोनों बातें ली हैं। आहाहा! जिसमें सत्

का सत् फल न आवे, वह तेरा पठन किस काम का? कहते हैं। जिसमें सत्य का सत्य फल अन्दर में श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति न आवे, वह तेरे व्रत और तप मुनिपने के-श्रावक के किस काम के?

**भाव बिना पढ़ने-सुनने आदि से क्या होता है? केवल खेदमात्र है,...** देखो! पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा! सुनना और पढ़ना, वह दुःख है, कहते हैं। वह विकल्प है, वह दुःख है, खेद है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि तो हुई नहीं। दुनिया में मान हो, न हो, दुनिया माने, न माने, उसके साथ कोई सत्य और श्रद्धा को सम्बन्ध नहीं है। संख्या अधिक हो, उसे माननेवाले... इसलिए उसका सत्य सच्चा कहलाये, ऐसे सत्य को संसार की आवश्यकता नहीं है। सत्य को सत्य की आवश्यकता है। ऐसा कहते हैं। व्रत धारते हैं, सत्य धारते हैं, यात्रा करनेवाले, पूजा के करनेवाले उनकी संख्या बहुत निकले। दस-दस लाख खर्च करके यात्रा निकाले, लो! परन्तु उसमें क्या हुआ? यात्रा जहाँ ले जाना है, वहाँ तो ले नहीं गया और सम्मेदशिखर की और शत्रुंजय की यात्रा निकाली। दस-दस लाख लोग, दो करोड़ का खर्च... परन्तु उसमें क्या हुआ? भाई! बेकार है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** जाने बिना बिकार है परन्तु जानने के बाद तो...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जानने के बाद भी राग है, दुःख है। जानने के पश्चात् भाव आवे, वह भी दुःख है। व्यवहार आता है, हेयबुद्धि से आता है। दुःख है, दुःख है। ... राग है, राग आता है, पंच महाव्रत, बारह व्रत वह दुःख है। विकल्प है तो दुःख है।

**केवल खेदमात्र है,...** भाषा देखी? आहाहा! यह पढ़ना और सुनना, व्रत और तप की क्रिया अन्तर सम्यग्दर्शन के भाव बिना अकेला खेद है। अकेला खेद अर्थात् वस्तु नहीं, वहाँ इतना खेद है। वस्तु का भान होने के पश्चात् होवे तो अकेला खेद नहीं। आनन्द है, उसके साथ वह खेद है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन के अन्तर अनुभव बिना... 'अनुभव रत्नचिन्तामणि अनुभव है रसकूप, अनुभव मार्ग मोक्ष का अनुभव मोक्षस्वरूप।' इस अनुभव के बिना तेरे व्रत, तप और बहुत सुना, सब केवल खेद, अकेला खेद है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन और ज्ञान की भूमिकासहित ऐसे विकल्प आवे तो वह भी खेद। आनन्द है, उसके साथ थोड़ा खेद है। केवल खेद है, ऐसा कहा। यह अभी ...

अट्ठाईस मूलगुण ... ... उसके लिए संख्या नहीं। लाखों लोग और ऐसे और ऐसे...

**इसलिए भावसहित जो करो वह सफल है।** अर्थात् कि निर्मलभावसहित का शुभभाव होवे तो इतना अन्दर अशुभ टलता है, इतना सफल है। निश्चय बिना तो शुभभाव में अशुभ टलता नहीं। सम्यग्दर्शन और अनुभव बिना वह शुभभाव है, उसमें अशुभ टलता नहीं। निश्चय के भानसहित ऐसा शुभभाव होता है, उसमें अशुभ टलता है उतना... बाकी जितना शुभ है, वह तो अशुद्ध है। आहाहा! **यहाँ ऐसा आशय है कि कोई जाने कि पढ़ना-सुनना ही ज्ञान है...** सुनना और पढ़ना, वह ज्ञान। **तो इस प्रकार नहीं है,...** ऐसा नहीं है, भाई!

**पढ़कर-सुनकर आपको ज्ञानस्वरूप जानकर अनुभव करे...** वाँचकर-पढ़कर, जानकर, सुनकर। **आपको ज्ञानस्वरूप...** भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप ही ज्ञाता है। ऐसा वह अनुभव करे। ज्ञानस्वरूप जानकर अनुभव करे, **तब भाव जाना जाता है,...** तब उसका भाव सच्चा है, ऐसा जानने में आवे। ... व्यवहार की भारी विपरीतता कठिन है न? व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है, ऐसी विपरीतता घुस गयी है। वह तो निश्चय के साथ ऐसे भानसहित में ऐसे भाव होते हैं, उन्हें व्यवहार से साधकरूप का आरोप दिया जाता है। ऐसी वस्तु है। समझ में आया?

**तब भाव जाना जाता है,...** अर्थात्? कि सुनकर, वाँचकर भी ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, यह विकल्प भी नहीं, राग भी नहीं, शरीर भी नहीं। यह ज्ञानस्वरूप कहने से पूरा आत्मा। उसमें अनन्त गुण आ गये। वह ज्ञानस्वरूपी पवित्र भगवान है, उसका अनुभव करे, तब **भाव जाना जाता है,...** तब उसका भाव सच्चा है, ऐसा जानने में आता है। समझ में आया? गजब मार्ग! **इसलिए बारबार भावना से भाव लगाने पर ही सिद्धि है।** इसलिए बारम्बार शुद्धस्वभाव में एकाग्रता का भाव लगाने से सिद्धि है। कोई व्यवहार के कारण से सिद्धि है नहीं। **बारबार भावना से भाव लगाने पर...** अन्तर स्वरूप में एकाग्र होने से **सिद्धि है।** तब उसकी मुक्ति है। अन्तर द्रव्यस्वभाव में एकाग्र होने से। श्रद्धा की एकाग्रता, ज्ञान की एकाग्रता और चारित्र की एकाग्रता से सिद्धि है। व्यवहार व्रत बीच में हो, वह बन्ध का कारण है।

★ ★ ★

## गाथा - ६७

**आगे कहते हैं कि यदि बाह्य नग्नपने से ही सिद्धि हो तो नग्न तो सब ही होते हैं –**

**दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।**
**परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता।।६७।।**

**अर्थ – द्रव्य से बाह्य में तो सब प्राणी नग्न होते हैं। नारकी जीव...** तो पूरा समुदाय ही नग्न है। असंख्य नारकी का समुदाय वह नग्न है। वस्त्र का धागा भी नहीं। रहने को मकान नहीं। **तिर्यंच जीव...** भी नग्न है। उन्हें कहाँ वस्त्र है? ... नग्न है। **निरन्तर वस्त्रादि से रहित नग्न ही रहते हैं। 'सकलसंघात' कहने से अन्य मनुष्य आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं...** आहाहा! विषय के समय मनुष्य भी नग्न होता है। उससे क्या? ऐसा कहते हैं। आहाहा! वासना के काल में मनुष्य भी नग्न होता है। पशु और नारकी तो सदा ही नग्न रहते हैं। **'सकलसंघात' कहने से अन्य मनुष्य आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं तो भी परिणामों से अशुद्ध हैं,...** आहाहा! नहाने के काल में नग्न हो। ... नहाये, नहाये। ... नग्न है। नग्न हुआ तो क्या? **परिणामों से अशुद्ध हैं,...** आहाहा! नारकी नग्न, पशु नग्न, विषयवासना के काल में शरीर नग्न और नहाने के काल में... नग्न। आदमी भी कोई एकान्त हो तो नग्नपने नहावे। उससे क्या? नग्न हुआ तो क्या?

**मुमुक्षु :**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, नग्न अर्थात् बाबा।

**मुमुक्षु :**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। मुसलमान ने किया। घोराजी के मुसलमान। नग्न। नग्न पीर करते हैं। वह पानीयारुँ होता है न पानीयारुँ? पानीयारुँ समझते हो? जल-जल। ... होती है न जगह? ऊपर पानीयारुं होता है और नीचे गड्डा होता है न गड्डा। उसमें ... अन्दर बैठे नग्न। युवक मनुष्य, हों! २५-३० वर्ष का। नग्न बैठे, बोले नहीं। खावे, पीवे, ... वह नग्न पीर कहलाये। पीर, मुसलमान में। .... उससे भिन्न पड़ गया हुआ।

नग्न। माँ, बाप, स्त्री, पुत्र होने पर भी वह नग्न बैठा हो, पानीयारा के नीचे। पानीयारा के नीचे खानुं होता है न? उसमें बैठे...

**मुमुक्षु :** उसे वे मानता रखे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मानता रखे। लोग तो पागल-मूर्ख है। मूर्ख के गाँव भरे हैं न सब। उसे पीर मानते है, पीर। नग्न पीर। आहाहा!

कहते हैं, शरीर के नग्नपने से परिणाम में तो नग्नता गयी नहीं। मिथ्यात्व की जो नग्नता है, वह तो गयी नहीं। आहाहा! और नग्न बाबा-साधु होकर रहा। क्या अन्तर है तुझे? **इसलिए भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए।** ऐसा नग्नपना अनन्त बार धारण किया। आनन्दस्वरूप भगवान को अनुभवा नहीं। आनन्द का स्वाद नहीं लिया। वह भावसाधु नहीं हुआ। आहाहा! वह तो दुःख के वेदन में रहा। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, विकल्प, वह सब दुःख का वेदन है। आहाहा! क्योंकि वह कषाय का अंश है, राग है, हिंसा है। आहाहा! वीतराग मार्ग, बापू! वीतरागभाव से... रागभाव से वीतरागभाव नहीं होता। यह तो धीर का काम है। अन्तर स्वरूप की रमणता, यह वीर का नाम है। बाहर से वीरपना तो अनन्त बार प्रगट किया। वीर, वीर्य। वी अर्थात् वीर्य। ... स्वरूप की प्रेरणा में वीर्य को प्रस्फुटित नहीं किया। आहाहा! उसे जीव नहीं कहा।

... ... दृष्टान्त और दलील और रमझट... ऐई! पाटनीजी! आहाहा! भगवान .... दुनिया में चाहे जो माने, मनावे, शास्त्र के व्यवहार के दृष्टान्त के शरण में व्यवहार की बातें करे, उसमें कुछ नहीं होता। इस शास्त्र में ऐसा कहा, इस शास्त्र में ऐसा कहा। सब कहा, बापू! यहाँ साधक कहा है व्यवहार को। और व्यवहार से ऐसा होता है। आहाहा! पंचास्तिकाय में नहीं आता? १७२ गाथा में? क्या कहलाता है वह? ... है न?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** टीपे वह माणल पानी में वस्त्र धोवे न? टीपे अर्थात् मैल निकल जाए। व्यवहार से आत्मा को टीपे अन्दर। ... ऐसा पाठ है वहाँ, समय-समय में। १७२ गाथा। व्यवहार से समय-समय में आगे जाए। बापू! ... आहाहा! लोगों

को कथन सुनते हुए किस अपेक्षा का कथन है, वह अपेक्षा न जाने और अर्थ करे अपने को समुचित लगता हुआ, बापू! ऐसा नहीं होता। अर्थ का अनर्थ होता है। है न? शुद्धता सिद्धि नहीं होती। उसमें शुद्धता की प्रवृत्ति की वृद्धि नहीं होती। वे सब अर्थ के अनर्थ करनेवाले हैं। आहाहा! लो! **इसलिए भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए।**

**भावार्थ – यदि नग्न रहने से ही मुनिलिंग हो तो नारकी तिर्यंच आदि सब जीवसमूह नग्न रहते हैं, वे सब ही मुनि ठहरे; इसलिए मुनिपना तो भाव शुद्ध होने पर...** ... शुद्ध। पुण्य और भाव के विकल्प से रहित निर्विकल्प शुद्धभाव होने से होता है **अशुद्ध भाव होने पर...** यह पुण्यभाव आदि जो व्यवहार है, वह अशुद्धभाव है। **नग्न भी हो तो भावमुनिपना नहीं पाता है।** उसे भावमुनिपना नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

:प्रकाशक:
श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ला, मुंबइ
www.vitragvani.com

अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत
अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्ट